अमृता प्रीतम

जन्म हुआ 31 अगस्त, 1919 को गुजरांवाला (पंजाब) में।
बचपन बीता लाहौर में, शिक्षा भी वहीं हुई।
लिखना शुरू किया किशोरावस्था से
जिस का क्रम बना रहा है निरंतर
कविता भी, कहानी भी, उपन्यास भी, निबन्ध भी।
पुस्तकें 50 से भी अधिक।
महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अनेक देशी विदेशी भाषाओं में अनूदित।
पत्रकारिता में रुचि का प्रमाण है 'नागमणि' मासिक
1966 से निरंतर छप रहा है जो निजी देख रेख में।
1957 में कविता-संकलन 'सुनहरे' पर अकादमी पुरस्कार से
1958 में पंजाब सरकार के भाषा विभाग द्वारा
1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट्. की मानद उपाधि से
1980 में बुलगारिया के वप्त्सरोव पुरस्कार (अन्तर्राष्ट्रीय) से
और अब
1982 में भारत के सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार
ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित।



लोकोदय ग्रंथमाला ग्रंथांक 420

अमृता प्रीतम चुने हुए उपन्यास
(AMRITA PRITAM CHUNE HUE UPANYAS)

प्रथम संस्करण 1982

मूल्य 90/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी 45 47 कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली 110001

मुद्रक
पूजा प्रेस
क्यू 52, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

अपने वेटे नवराज के नाम

نذر



पिंजर

1935

मटमैला दिन था। बोरी के टुकडे पर बैठी पूरो मटर छील रही थी। उँगलियों में पकडी हुई फली के मुह को खोलकर जब उस ने दानो को मुट्ठी मे सरकाना चाहा, तो एक सफेद कीडा उस के अँगूठे पर लग गया।

जैसे एकाएक कीचड भरे गड्ढे मे पाव जा पडने पर एक सिहरन-सी हो उठती है, वैसी ही सिहरन पूरो के सारे शरीर मे दौड गयी। हाथ झटकाकर उस ने कीडे को परे फेंक दिया और अपने हाथो को अपने घुटनो में भीच लिया।

पूरो के सामने मटर की फलिया, निकाले हुए दाने और खाली छिलके बिखरे पडे रहे। उस ने जोडे हुए घुटनो के बीच में से दोनों हाथ निकालकर अपने कलेजे को थाम लिया। उसे लगा, मानो सिर से पाँव तक उस का शरीर मटर की उस फली की भाति हो जिस के भीतर मटर के स्वच्छ दानो के स्थान पर कोई गन्दा कीडा पल रहा है।

पूरो को अपने शरीर के अग अग मे घिन आने लगी। उस का मन चाहा कि वह अपने पेट में पल रहे कीडे को पटकार दे, उसे अपने शरीर से दूर झाड दे एसे जैसे कोई चुभे हुए काँटे को नाखूनो मे फँसाकर निकाल देता है, जैसे कोई धँसे हुए गोखरू को उखाडकर फेंक देता है जैसे कोई चिपटी हुई किलनी को नोचकर

अलग कर देता है, जसे कोई चिपटी हुई जाक को तोड फेंकता है।

पूरा सामने नीवार की ओर देखने लगी। बीते हुए दिन एक एक कर के वहा से गुजर रहे थे।

पूरा गुजरात जिले के एक गाव छत्ताआनी के शाहो की बेटी थी—शाह, जिन का साहूकार का काम कब का खत्म हो चुका था, किन्तु फिर भी वह कहलाते शाह ही थे। समय के कुचक्र से शाहा के उस घर का यह हाल हो गया कि देग और कण्डाल जसे उन के बडे बडे बरतन भी बिक गये—वे बरतन जिन पर उन के पूवजो के नाम खुदे हुए थे। प्रति दिन की इस जीती जागती ग्लानि से बचने के लिए पूरो के पिता और चाचा अपना गाव छोडकर सियाम चले गये। वहा उन के दिन पलक मारते ही पलट गये।

उन दिनो पूरा दौडती फिरती थी और उस की मां की गोद मे एक लडका था। उजडे हुए शाहो का यह परिवार फिर अपने गाव छत्तोआनी आया। पूरो के पिता ने अपना गिरवी पडा हुआ मकान छुडवाकर अपने बाप दादा के नाम की लाज रख ली। यद्यपि उस के पिता को नया मकान बनवाने मे इस से भी कम पैसे खरचने पडते पर उस ने अधाधुंध लगाये हुए ब्याज की भी परवा न की और एक बार दात भीचकर अपने पवजो के नाम की रक्षा कर ली।

अनाज, चारा और अन्य वस्तुओ की ठीक-ठीक व्यवस्था कर के वह सियाम चले गये, किन्तु उन का मकान उन का नाम, उन के पीछे गाँव मे रहता रहा। अगली बार जब वह अपने गाँव लौटे, उस समय पूरो पूरे चौदह वर्ष की थी। उस से छोटा उस का एक भाई था, उस से छोटी पूरो की ऊपर तले की तीन बहनें थी और अब के पूरा की मा को छठी बार फिर किसी बच्चे की उम्मीद थी।

शाहा के उस परिवार ने गाव आकर पहला काम किया कि पास के गाव रत्तोवाल के एक अच्छे खाते पीते घर मे पूरो के लिए लडका देखा। पूरा की मा सोचती थी कि जब वह नहा धोकर उठेगी तो बडे चाव से पूरा का काज आरम्भ करगी। इस बार वह पक्की तरह सोचकर आये थे कि इस भार को उतारकर ही लौटेंगे।

पूरो की होनवाली ससुराल मे उन दिनो तीन दुधार पशु थे और गाव मे उन का मकान पहला था जिस के ऊपर पक्की ईंटो की बरसाती बनी हुई थी। मकान के माथे पर उन्होंने ओम लिखवाया हुआ था। लडका सूरत का अच्छा और बुद्धिमान दीख पडता था।

पूरो के पिता ने पाच रुपये और गुड की भेली देकर लडका रोक लिया था। उन दिनो गुजरात जिले मे अदला बदली के सम्बन्ध होते थे। जिस लडके से पूरो की सगाई हुई उस लडके की बहन की सगाई पूरो के भाई के साथ की गयी

यद्यपि पूरो का भाई उस समय मुश्किल से बारह बरस का था और उस की मँगेतर बहुत ही छोटी थी।

दो दो बरस के अंतर मे ऊपर तले तीन लडकियो को जन्म देने के कारण पूरो की मा का मन क्षुब्ध सा हो गया था। अब जब कि उन के दिन फिर गये थे, घर मे मन भर खाने को था, जी भर पहनने का था, उस का मन करता था कि उस के फिर एक लडका हो।

इस बार आकर पूरो की मा ने दूसरा काम यह किया कि विधि माता की पूजा की। गाँव की कुछ स्त्रियो ने पूरो के घर के आँगन मे गोबर की एक गुडिया बनायी, लाल चुनरी की किनारी लगाकर उसे उस गुडिया के सिर पर चढा लिया, दो माशे सोने की छोटी सी नथ बनवाकर उस की नाक मे डाली, और सब ने मिलकर गाया

विधमाता रस्सी आवी ते मन्नी जावी,
विधमाता रस्सी आवी ते मन्नी जावी।

उन के अपने गाव म और आसपास के गाँवा म स्त्रियो का यह विश्वास था कि प्रत्येक बालक के जन्म के समय विधिमाता स्वय आती है। यदि विधिमाता अपने पति से हँसती खेलती आती है तो आकर झटपट लडकी बनाकर चली जाती है क्योंकि उसे अपने पति के पास लौटने की जल्दी होती है। किन्तु यदि विधिमाता अपने पति से रूठकर आती है तो उसे लौटने की कोई विशेष जल्दी तो होती नही वह आकर बहुत समय तक बैठती है और आराम से लडका बनाती है। सो सब स्त्रियो ने मिलकर फिर गाना आरम्भ किया

विधमाता रस्सी आवी ते मन्नी जावी,
विधमाता रस्सी आवी ते मन्नी जावी।

विधिमाता शायद कही पास ही सुन रही थी, उस ने उन का कहा मान लिया। पन्द्रह सोलह दिन बाद पूरो की माँ के लडका हो गया। शाहा के दूर-पार के सम्बन्धियो को भी बधाइयाँ मिलने लगी। चिन्ताजनक केवल एक बात थी, और वह यह कि लडका तेलड था। तीन बहनो पर भाई हुआ था। पूरो की माँ को बडी चिन्ता थी, राम करे किसी प्रकार लडका बच जाये और बच जाये तो माता पिता को भारी न हो। विधिमाता को मनानेवाली स्त्रिया फिर एक बार इकट्ठी हुई और कासी के एक बडे से थाल के बीच मे बडा सा छेद करके लडके को उस म से आर-पार निकाला साथ मे गाती रही

त्रिखलाँ दी धाड आयी,
त्रिखलाँ दी धाड आयी।

तीन लडकियो के दल के बाद ईश्वर की कृपा से उत्पन्न हुए शगुन मनाकर अब सब को विश्वास हो गया कि लडका बच जाय

पन्द्रहवा वर्ष आरम्भ होते होते पूरो के अंग-प्रत्यंग मे एक हुलार सा आ गया। पिछले बरस की सारी कमीजें उस के शरीर पर तंग हो गयी। पूरो ने पास की मण्डी से फूलोवाली छींट लाकर नये कुरते सिलवाये। कितना सारा अबरक लगाकर चुनरिया तयार की।

पूरो की सहेलियो ने उसे दूर से उस का मंगेतर रामचन्द दिखा दिया था। पूरो की आखों मे उस की छवि पूरी की पूरी उतर गयी थी। उस का ध्यान आते ही पूरो का मुह लाल हो जाता था।

पूरो नि शक होकर बहुत कम ही बाहर निकल सकती थी, क्योकि पास के गाववालो का इस गाव म आना जाना बहुत रहता था। उस की ससुराल के गाव-वाले कही पूरो को देख न लें, इस बात से पूरो बहुत डरती थी। और फिर वह गाव बहुत करके मुसलमानो का हो गया था।

वसे जरा दिन-ढले पूरो और उस की सहेलियाँ खेतो मे घूम फिर आती थी। कई बार पूरो अपने खेतो के पास स गुजरती हुई कच्ची सडक के आसपास अटक रहती कभी कोई साग चुनने बैठ जाती, कभी किसी बेरी के पड से लगकर खडी हो जाती, बेर गिराती उन्ह चुनती और सहेलियो को बातो मे लगाय रखती। वह सडक उस की होनेवाली ससुराल को जाती थी।

मन ही मन वह सोचती यदि उस का मंगेतर आज इधर से गुजर जाये! वह उसे गुजरते हुए एक बार देख ले! पूरो का दिल उस सडक के किनारे खडे होते ही धक धक करने लगता। फिर सारी रात पूरो अपने युवा मंगेतर के स्वप्नो म मग्न रहती।

एक दिन पूरो की नयी जूती उस की एडी मे बहुत लग रही थी। सहेलियो के साथ चलते वह पीछे रह रह जाती थी। पूरो और उस की सहेलिया खेतो मे से होकर घर लौट रही थी। साझ का अन्धकार पिघले हुए सिक्के की भाति चारो ओर बिखर गया था। लडकियाँ खेतो की डौल डौल चलती अब गाव की पगडण्डी पर आ गयी थी। यह पगडण्डी कही चौडी और खुली हुई खाली भूमि पर होकर जाती थी और कही कुछ पेडो, पीपलो और झाडियो के साथ-साथ मानो उन की बाह पकड पकडकर आगे बढती थी। सब लडकिया आगे पीछे इसी पगडण्डी पर चली जा रही थी। पूरो जरा पीछे रह गयी थी। बायें पाव की एडी के पास एक बडा सा छाला उभर आया था। पूरो ने तंग जूती दोनो पैरो से उतारकर हाथो म ले ली और पाव तेजी से बढाने लगी।

लडकिया पूरो से कहा करती थी कि उस का दाया पैर बायें पैर से भारी था, इसलिए उस के दाहिने पैर म जूती लगती थी। इसी तरह पूरो का दाया हाथ भी बायें हाथ से भारी था। 'हाँ जी चूडी पहनने हुए पता चलेगा' कहकर लडकियाँ पूरो को छेडा करती थीं। पूरो की आखो के सामने आ गया, मानो सच्चे

हाथीदांत की लाल चूडियां उस के हाथों मे पहनायी जा रही हैं। पिछली बटी-बडी खुली चूडियां पहनाने के बाद आगे की छोटी चूडियां उस के दायें हाथ म फँस गयी हैं। नाई ने तेल से उस के अँगूठे को हड्डी को मला और हाथीदात की लाल चूडी का उस के हाथ मे जोर से धकेलने लगा। पूरो का खयाल आया, कही उस की हाथीदांत की लाल चूडी उस के दाहिने हाथ मे टूट जाये तो! पूरो के कलेजे को एक धक्का-सा लगा। हाय! यह शगुन कितना बुरा है। उस की शगुन की चूडी उस के सुहाग की चूडी उस के हाथो म क्यो टूट! पूरो न अपने दाहिने हाथ का तिरस्कार से देखा। भगवान! उस का मँगेतर युग युग जिय! हजार-लाख वष जिये! पूरो के हृदय न कामना की। फिर पूरो को याद आया, उस के गांव म चूडा चढाते समय एक लडकी की चूडी सचमुच टूट गयी थी। पास खडी हुई स्त्रियां 'राम, राम कहकर भगवान् से उस के पति की कुशल याचना करन लगी थी। फिर सुनार से सान का एक पतला-सा तार टूटी हुई चूडी मे पुरवाकर उस लडकी को फिर वही चूडी पहनायी थी, मानो उन्होंने उस के पति की टूटी हुई जीवन डोरी को जोड लिया हो।

पूरो इन्ही शगुन-अपशगुन के विचारो म फँसी हुई थी कि बायें हाथ की ओर के पीपल के पीछे से एक व्यक्ति निकलकर पूरो के सामने खडा हो गया। पूरो के कलेजे पर माना हथौडा सा पडा। पूरो न जल्दी से देखा, उस के गांव का जवान लडका रशीद उस के सामने खडा था। रशीद की आयु बाईस चौबीस वष की हागी। उस की भरी हुई जवानी उस के मुह पर प्रत्यक्ष बोल रही थी।

पूरो ने देखा, रशीद की दोनो बडी-बडी आखें पूरा के मुह पर गडी हुई हैं। वह काप उठी। उस के मुह से एक हल्की-सी चीख निकली और वह रशीद के पास से बचती हुई भाग खडी हुई।

पूरो भागती भागती लडकियो के साथ जा मिली। अब वह अपने घरो के पास पहुँच गयी थी। पूरो का सास ठिकाने न था। इतना ही भला हुआ कि रशीद ने उस के हाथ न लगाया, रशीद ने उस से मुह से कुछ न कहा।

"अरी, लडका था या कोई शेर था!" सहेलियो ने उस से ठिठोली की, किन्तु अभी तक पूरो की जान मे जान नही आयी थी।

"शेर तो सिर्फ फाडकर खा जाता है, कहते है कि अगर रीछ को कोई औरत अकेली मिल जाये तो वह उसे मारता नही, उठाकर ले जाता है। अपनी गुफा म ले जाकर उस का अपनी स्त्री बना लेता है।" सहेलियो म से एक ने यह बात सुनायी।

पूरो की जान फिर सूखन लगी। हाय, उस करमो जली का क्या हाल होगा जिसे रीछ अपनी स्त्री बना ले! यह सोच सोचकर पूरा का रग उडने लगा। पूरो को फिर रशीद की फैली फली आखें याद आ गयी।

अब पूरो अपने घर पहुँच गयी थी। सहेलियां हँसती बोलती आगे बढ गयी।

दूसरे दिन जब पूरो और उस की सहेलियां खेतो म सीगरे तोड रही थी, जल्दी से पूरो दो मुट्ठी सीगर पास ही चलते हुए रहँट पर धोने ले गयी। छोटे-छोटे सीगरा की डण्डिया तोडकर दो चार सीगरे पूरो ने अपने मुह म डाल लिये। तभी उस न देखा कि पास क पेड के साथ रशीद खडा हुआ है। उस की टाँगा म से मानो किसी ने जान ही खीच ली। भय उस के मुह पर छा गया।

"अजी डरती क्या हो? हम तो तुम्हारे चाकर है।" आज रशीद बोल उठा। उस के मुह से शरारत टपक रही थी।

पूरो को ऐसे लगा जैसे अभी रशीद रीछ के चौडे पजे की भाति उस के मुख पर झपट पडेगा उस की लम्बी लम्बी उँगलियाँ रीछ के नाखूना की भाँति उस की गरदन के चारो ओर फैल जायेंगी। फिर वह उसे खीचता हुआ ले जायेगा और फिर फिर ?

सौभाग्यवश पूरो ने देखा सामने से दो किसान चले आ रहे है। रशीद वसे का वसा ही खडा था। पूरो लाल टमाटरो से भरी हुइ क्यारी के ऊपर से छलाग मारकर जल्दी जल्दी पग फेकती सहेलियो से जा मिली।

उस दिन पूरो बहुत निढाल सी रही। सारे रास्ते लडकियो का हाथ पकड-पकडकर चलती रही। परछाइयो से भी काप काँप उठती जरा जरा सी खड-खडाहट से भी चोक चौक उठती।

पूरो न न तो कुछ अपनी मा को बताया, न अपन पिता का। उस की सहेलियाँ कहती थी, भला यह भी मा-बाप से कहन की कोई बात है! जवान लडकियो को रास्ता चलते शोहदे सदा से ही ताकते चाकते आये है। मुहजबानी कभी उन के गुलाम बनते है, कभी अपने आप को उन का चाकर कहते है, ऐसे ऊल जलूल बकत ही आये है। वह बका करें भूका करें, भला कोई कुत्तो के भूकन से डरकर सडको पर चलना छोड देता है।

उस दिन उन के गाव मे एक छह सात बरस के लडके को एक पागल कुत्ते न काट खाया। गली मुहल्ले की स्त्रियो न मिलकर लडके के घाव पर लाल मिरचे बाँध दी। मिरचा की तेजी मे कुत्ते के दाता का जहर कट जाता है। पूरो न जब यह खबर सुनी तो तुरत ही उस के मन मे विचार आया कि वह लाल मिरचें कूटकर रशीद की आँखो म झाक दे। जितना वह रशीद की आखो के सम्बन्ध म सोचती थी, उतना ही उस जहर चढता था।

सहेलियाँ पूरो की बाँह पकडकर खीचती थी पर पूरो को साहस न होता था कि वह खेतो की ओर जाय।

और फिर अब पूरो का विवाह भी दिन दिन पास आ रहा था। पूरो के पिता

न घी और मैदा इक्ट्ठा करके घर म घर लिया था। पूरो की मा ने पीले रेशम से कढी हुई लाल फुलकारियो से लकडी का सदूक भर लिया था। सियाम से लाये हुए रेशमी जोडा से उस ने दहेजवाला सफेद ट्रक मुह तक भर दिया था। चुनरिया की छोटी बांकडी चुन चुनकर उस के पारव दुखने लग थे। पिछली ओर का भीतरवाला कमरा, जहा उस ने पूरो के दहेज के लिए पीतल के इक्यावन बरतन जाडे थ, झमाझम कर रहा था। उन दिनो देहातो मे क्रोशिये के काम का वडा चलन था। पूरो ने क्रोशिये से बनाय हुए फूल जोड-जोडकर पलग की पूरी चादर बनायी थी। दुसूती के तार गिन गिनकर उस ने फूल काढन सीखे थे। अपने हाथ से अपने दहेज के लिए डलिया और मूढे बनाय थे।

एक दिन पालक के नरम नरम पत्तो को तोडकर पूरो ने साग काटा। पूरो की मा सुतली की बुनी हुई पीढो पर बैठी अपने लडके को दूध पिला रही थी। पूरो ने मिटटी की हँडिया को बान के छोटे-से गुच्छे से अच्छी तरह माजा फिर साग को पानी से दो बार धोकर और उस मे चन की दाल मिलाकर हँडिया का मुह तक भर दिया। हारे की मीठी मीठी आग पर दूध पडा कढ रहा था। पूरो ने चूल्हे मे दो चार छिपटिया लगाकर साग चढा लिया।

पूरो का विवाह अब कम बिलकुल पास आ गया था। पूरो की मा का प्रतीक्षा थी कि कौन जाने आज या कल पूरो को ससुराल से कोई नाप लेने ही आ जाव। पूरो कितनी सुन्दर सुघड लडकी है! रोटी टुकडा तो वह आगन म इधर से उधर चलत फिरते ही कर लेती है। पूरो की सहेलिया कहती थी कि पूरो को जवानी भी तो भरपूर चढी है। पूरो के गोरे निमल मुख पर आख ठहरती न थी। पूरो की मा ने एक चाहत भरी दृष्टि स पूरो की ओर देखा, शायद वह सोचती थी कि पूरो अब ससुराल चली जायेगी, पूरो के मायके का घर भाय-भाय करेगा। पूरो अपनी मा का दाहिना हाथ थी। मा की आखो म आसू भर आये। हर बेटी की मा को रोना पडता है। बैठी-बैठी पूरो की मा गाने लगी

लावी ते लावी नी कलेजे दे नाल माए
दस्सी ते दस्सी इक बात नी।
बातां ते लम्मीया नी धीया क्या जम्मिया नी,
अज्ज विछोडे वाली रात नी।

पूरो की मा का कलेजा भर आया। पूरो चौके मे छोटे छोटे काम निबटाती हुई अपनी मा की आवाज सुन रही थी। पूरो के दिल म विछोड की एक हौल सी उठी। पूरो की मा आगे गाने लगी

चरखा जु डाहनीयां मैं छाप जु पानीयां मैं
पिडिया ते वाले मेरे खेस नी।

पुत्तां नू दित्ते उच्चे महल ते माडियाँ
धीयाँ नू दित्ता परदेस नी ।

पूरो दौडी-दौडी आकर माँ के गले से लिपट गयी । माँ-बेटी दोनों रो पडीं । हर लडकी का यौवन उसे अपनी माँ से अलग कर देता है ।

पूरो की माँ ने जी कडा किया । बेटी के कन्धे पर प्यार किया । सन्ध्या समय का अन्धकार उन के आँगन म भी उतर आया था । पूरो की माँ का याद आया कि दूसरी चीज़ चढाने को इस समय घर म कुछ भी नहीं थी, कौन जाने पूरो की ससुराल स कोई आदमी आता ही हो ।

पूरो से उस न कहा कि छोटी बहन की उँगली पकडकर पास के खेतों म से चार भिण्डियाँ ही तोड ला । और चावलो की एक मुट्ठी और गुड की भेली डालकर मीठे चावल भी चढा दे ।

पूरो का दिल भी आज भर भर आता था । उस न अपनी छोटी बहन का साथ लिया और बाहर चली गयी ।

पूरो न भिण्डिया तोडी, दो चार सीगरे तोडे और उलटे पाँव छोटी बहन को साथ लेकर घर की ओर चली । लौटते समय पूरो को केवल यह विचार आ रहा था कि अब वह अपनी मा से अलग हो जायगी, अपनी बहनों से बिछुड जायेगी अपने नन्हे से भाई से दूर चली जायेगी । वज्र के प्रहार के समान पूरो को एकाएक खयाल आया यदि यहा रशीद मिल जाय तो ?

और वह पाव उठाकर चलने लगी । "पूरो, दौड क्या रही है ?" पूरो की छोटी बहन का सास चढ गया था ।

पूरो के पीछे की ओर से एक घोडी दौडती हुई आयी । पूरो अभी पगडण्डी से हट भी न पायी थी कि न जाने घोडी या घुडसवार कौन पूरो के दाहिने कन्धे से टकरा गया । पूरो गिरने ही लगी थी कि किसी ने उसे कन्धे से पकडकर घोडी के ऊपर डाल लिया । पूरो की चीखें उडती हुई घोडी के साथ पल पल दूर होती चली गयी । उस की बहन खडी काँपती रह गयी ।

न जाने वह घोडी कहाँ से आयी थी उस का सवार कौन था घोडी कितनी देर तक दौडती रही पूरो अचेत थी ।

पूरो को जब होश आया वह एक कमरे मे चारपाई पर पडी थी । चारो ओर दीवारें थी सामने एक बन्द दरवाजा ।

पूरो को सब कुछ याद आ गया । उस न दीवारो स अपना सिर दे दे मारा, उस ने दरवाज़े से अपना सिर दे दे मारा ।

हार थक के पूरो चारपाई पर आ पडी । वह फिर अचेत हो गयी ।

पूरो को जब होश आया, कोई उस के सिर से गरम घी मल रहा था । पूरो ने एक बार सोचा, शायद उस की मा उस के सिरहाने बैठी हुई थी और पूरो को

बहुत तेज बुखार चढा था।

"ओ, मा !" पूरो के मुख से निकला।

"मेरी गलती माफ कर और एक बार होश मे आ, पूरो !" किसी न सिरहाने की ओर से कहा।

ज्वर से जलती हुई पूरो ने सिर उठाकर देखा, रशीद उस के सिरहान बैठा था। पूरा की एक चीख निकली और वह मूर्च्छित हो गयी।

पूरो ने देखा, काली खालवाला एक रीछ उस के बाला मे अपने पजे फेर रहा है पूरो एक गुफा मे पडी है, वह सिकुडती जाती है, रीछ फलता जाता है, रीछ ने अपनी बालोवाली बाहो मे पूरा को लपेट लिया है।

पूरो ने आखें फाड फाडकर देखा, कोई उस के पैरो के तलव मल रहा था। फिर किसी ने उस के कधा को दबाया। फिर किसी ने उस के मह मे चुल्लू भर-भर पानी डाला।

रीछ की गुफा या रशीद का घर ? पूरो के सिर मे चक्कर आ रह थे। फिर शायद पूरो सो गयी।

पूरो को अपनी मा, अपना गाव सभी कुछ याद था। वैसे उस लगता था कि उस गुफा मे पडे पडे उस कई वष हो गये है। रशीद की सूरत देखन की उसे आदत हो गयी थी। न रशीद ने उस से कभी कुछ कहा, न उस ने रशीद को बुलाया। सोती हुई पूरो के मुह मे रशीद गरम किया हुआ गुड और घी चमचे से डाल देता था। कभी कुछ पूरो के गले के नीचे उतर जाता था, कभी पूरो थूक डालती थी।

फिर पूरा ने साहस करके दीवार के साथ पीठ लगायी और चारपाई पर बैठ गयी।

"मैं कहा हूँ ?" पूरो न पूछा।

"मेरे पास।" रशीद चारपाई के सामने स्टूल पर बठा था। रशीद का मुख झुका हुआ था। आज उस की आखें फट-फटकर पूरो के मुख पर नही पड रही थी।

"तू मुझे यहा क्यो लाया है ?" पूरो को पूछने का साहस हुआ।

"फिर कभी बताऊँगा।" रशीद ने इतना ही कहा और उठकर बाहर चला गया। पूरो गुमसुम चारपाई पर पडी रही।

इस समय कमरे का दरवाजा खुला हुआ था। पूरो ने देखा, बाहर एक छोटा-सा दालान है, दालान के साथ ही एक छाटी सी डयोढी है, और फिर बाहर का दरवाजा।

पूरो कापते कापते उठी। उसने चारो आर दीवारो को देखा। वह डर रही थी, अभी इन दीवारा मे से कोई निकल आयेगा, उस की बाँह पकडकर उसे चार

पाई पर डाल देगा। किन्तु दीवारा म से कोई न निक्ला। पूरो बाहर म दालान म आ गयी।

आगन के एक कोने म चूल्हे म आग बुझी हुई थी। पास ही एक हांडी और तवा परात बिखरे पडे थे। पानी का एक घडा भरा हुआ कोन म पडा था। पर कोइ आदमी कही नजर नही आता था।

पूरो कांपते पैरा स ड्योढी म आयी, बाहर के दरवाजे के पास आयी, फिर पीछे मुडकर कोठरी की ओर देखा, फिर दरवाजे के पास को हो गयी।

पर मकान का दरवाजा पूरो के भाग्य की भांति बन्द पडा था। पूरो न बन्द दरवाजे के साथ अपना सिर लगा दिया, पर दरवाजे को न पूरो के झुके हुए सिर पर तरस आया, न मुरझाये हुए चेहरे पर न भीगी हुई आंखो पर।

पल्ले से मुह पोछकर पूरो दरवाजे से लौट आयी। घडे म से पानी का एक चुल्लू भर कर पूरो ने अपनी आंखो पर डाला। फिर पूरो को विचार आया कि वह दरवाजा पीटकर देखे, शायद कोई अडोसी-पडोसी या रास्ता चलता उस की आवाज सुन ले।

पूरो ने आगन की कच्ची ऊँची दीवारो की ओर देखा फिर एक बार साहस जुटाकर दरवाजे को पीटना आरम्भ कर दिया। पूरो न दरवाजे की दराजा के बीच से देखा बाहर खुला मैदान ही मैदान था, कोई मकान, कोठरी दिखाई नही देती। पूरो सोच सोचकर थक गयी, न जाने वह किस जगल म थी।

पूरो दरवाजे के पास ही खडी हुई थी कि बाहर स दरवाजा खुला। रशीद न भीतर आकर दरवाजा बन्द कर लिया और ताला लगा दिया। पूरो वही की वही बठ गयी।

'पूरो ! क्यो व्यथ म हवा से टक्करें मारती है ! भीतर चल, कुछ अपने मुह मे डाल तू ने दो दिन से कुछ नही खाया है।' रशीद ने खडे-खडे कहा। बस न उस न पूरो का हाथ पकडकर उसे उठाया न उस की ओर आखें फाड फाडकर देखा।

"मुझ पर दया कर, रशीद ! मुझे घर छोड आ।' पूरो उस के परा पर गिर पडी।

इस बार रशीद ने पूरो को अपनी लाठी जैसी जवान बाहों मे उठा लिया और गठरी बनी हुई पूरो को कसकर अपने सीन से लगा लिया।

"मेरे दिल की आग कौन बुझायेगा ?" रशीद न हाथ पाव मारती हुई पूरो को अपनी बाहो मे कस रखा।

वह दिन भी बीत गया, वह रात भी बीत गयी। रशीद न उस से फिर कुछ नही कहा। दरवाजा वसे का वसा बन्द था, रशीद वस का वसा ही पहरे पर था।

रशीद उस घर से बाहर भी जाता। घण्टे दो घण्टे बाहर भी लगा आता। पूरो कैद रहती। फिर तारों की छाँह में पूरो का हाथ पकड़कर रशीद उसे घर से बाहर ले जाने लगा। पूरो ने देखा, उस घर के सिवा उस लम्बे चौड़े मैदान में और कोई घर नहीं था। रशीद के इस मकान के पास एक बहुत दूर तक फैला हुआ बाग था। शायद यह घर बाग के मालियों का घर हो। बाग में माली अवश्य होंगे, पर पूरो ने उन्हें कभी देखा न था, न उनकी आवाज ही सुनी थी न तो पूरो के दिन ही बीतते थे, न उसकी रातें ही काटे कटती थीं। पूरो को केवल यही सन्तोष था कि रशीद ने उसे कोई बुरी-भली बात नहीं कही थी। पूरो की मर्यादा अभी तक बची हुई थी। यह और बात थी कि रशीद पर न पूरो की प्रार्थनाओं का असर होता था, न पूरो की गालियों का।

पूरो के अपने अनुमान के अनुसार उसे कैद हुए पूरे पन्द्रह दिन हो गये थे।

एक दिन रशीद ने लाल रेशम का एक जोड़ा पूरो के सामने लाकर रखा। इससे पहले भी रशीद ने पूरो को बदलने के लिए दो जोड़े सूती कपड़ों के लाकर दिये थे। पर इस बार रशीद ने लाल रेशम का जोड़ा पूरो के आगे रखते हुए कहा, "कल सवेरे नहा धोकर तैयार हो जाना, मौलवी आकर हमारा निकाह पढ़ा देगा।"

पूरो का दिल धक् से हो गया। जो अब तक नहीं हुआ है क्या अब होकर ही रहेगा!

उस दिन पूरो फिर रशीद के पैरों पर गिर पड़ी।

'पूरो! रोना धोना कुछ नहीं। अब मेरे सिर पर गुनाहों का बोझ न लाद। कसम है अल्लाह पाक की, मुझ से तेरा यह रोना नहीं देखा जाता।" रशीद ने मुंह परे करके कहा।

पूरो की समझ में न आता था कि रशीद यदि ऐसा दयावान् ही था, तो उस ने उसके सिर पर विपत्ति का यह पहाड़ क्यों डाल दिया?

"तुझे अपने अल्लाह की कसम है, रशीद। सच सच बता, तू ने मेरे साथ ऐसी क्यों की है?'

'पूरो! तेरा मेरा सम्बन्ध कोई पिछला लेना देना ही है। अब तुझे इन बातों से क्या मिलेगा? जो हो गया सो हो गया। मैं तुझे सारी उम्र तकलीफ न होने दूंगा।'

पूरो हैरान थी, परेशान थी, यह कैसा आदमी है! "पूरो! हमारे शेखों के घराने में और तुम्हारे शाहों के घराने में दादा पड़दादा के समय से एक वैर चला आ रहा है। तेरे दादा ने पाँच सौ रुपये में गिरवी रखे हुए हमारे मकान पर ब्याज दर ब्याज लगाया था और कुर्की कराकर शेखों के घराने को घर से बेघर किया था। सिर्फ इतना ही नहीं, उस के मुंशियों कारिन्दों ने हमारे घर की

औरतो को बोल कुबोल कहे और मेरे दादा की बड़ी लड़की को जबरदस्ती तेरे दादा के बड़े लड़के ने तीन रात घर म रखा। मेरे दादा के देखते-देखते यह सब हुआ। पर उस समय शेखो का घराना पके हुए गन्ने की भांति था। सब गून के आंसू पीकर रह गये। पर मेरे दादा न मेरे चाचा-ताउओ का और मेरे पिता का कुरान उठवाकर कसम दिलवायी थी कि व इस का बदला लेकर ही रहग। उस की अगली पीढी के समय बात सो गयी। अब जब तेरा ब्याह इसी गांव म रचा जाने लगा, मेरे चाचा ताउओ क लहू म पुराना बदला खौलने लगा। उन्हाने मुझे कसम दिलायी, मेरे लहू को ललकारा और मुझ स कौल कराये कि मैं शाहों की लड़की को ब्याह से पहले किसी भी दिन उठा ले जाऊं।" रशीद चुप हो गया।

पूरा धैर्यपूर्वक अपनी किस्मत की कहानी सुनती रही।

"पूरो! पहले ही दिन जब मैं ने तुझे देखा, खुदा गवाह है, मुझे तुझ से इश्क हो गया। एक तो मेरी मुहब्बत का जोर दूसरे मेरी पीठ पर सारा शेख घराना। मैं तुझे ले आया हूं, पर मुझ स कसम ले ले, मुझ से तेरा दुख नही देखा जाता।" रशीद न कहा।

पूरो न दोनो हाथों म अपना सिर थाम लिया।

'तेरी बूआ को मेरे ताऊ न उठा लिया पर रशीद! इस में मेरा क्या दोष? हाय! मैं कहीं की न रही!' पूरो का मुह आसुओ से भीग गया।

'यही तो मैं कहता था, पर मेरे चाचा मुझ पर फिटकार करते थे।"

"तो रशीद! उन के उकसाने के कारण तू ने मुझे मार डाला?' पूरो न रोते रोते कहा।

'पूरो! मैं सारी उम्र तेरे आगे जग की नेमतें ला लाकर रखूंगा," रशीद ने भरे हुए गले से कहा, 'मैं तेरे ताऊ की तरह नहीं करूंगा कि तीन रातो के बाद बेचारी औरत को धक्का दे दू।"

"रशीद! एक बार मुझे मेरी मां से मिला दे।" पूरो को कहने के लिए यही मिला।

'ओ नेकबख्त! अब उस घर मे तेरे लिए कोई जगह नही। उन की बिरादरी का कौन हिन्दू फिर शाहो के घर का पानी पियेगा? तू मेरे घर म पूरे पन्द्रह दिन रह चुकी है।'

'पर मैं ने तो सिर्फ तेरे घर के अन्न पानी से मुह लगाया है मैं " पूरो आगे कुछ न कह सकी, पर जो कुछ पूरो कहना चाहती थी उसे रशीद समझ गया।

'इस बात को कौन मानेगा पूरो! यह तो मेरी शराफत है कि पहले मैं तेरे साथ निकाह पढवाऊंगा रशीद ने नरम आंखो से पूरो की ओर देखा।

पूरो की आखो के सामने उस का मंगेतर फिर गया। अभी पूरो के तेल

चढना था, पूरो ने 'माइएँ पडना' था, पूरो के हल्दी का उबटन मला जाना था, पूरो को सच्चे हाथीदात का लाल चूडा चढना था, पूरो को कौडियो वाले कलीरे छनकाने थे, पूरो को रेशमी जोडे पहनने थे, पूरा के रूप चढना था, पूरो को डाली मे बैठना था पूरो पूरो पूरो

परो निर्दोष थी। वह कसे समझ लेती कि उस की मा का दिल पत्थर हो जायेगा, उस के पिता का दिल लाहे का बन जायेगा, वे अपनी बेटी को घर स निकाल देंगे, उन के घर की दीवारें उसे अन्दर रखन से इनकार कर देंगी !

'मैं जब लौटकर घर नही पहुँची तो उस समय मरे माता पिता का क्या हाल हुआ हागा ! मेरी बहन !" पूरो को वह समय याद आ गया जब हानी उस के सिर पर टूट पडी थी।

"वे रोते कलपते रहे हैं, उसी तरह जैसे मेरा दादा, मेरा पिता मेरे चाचा मेरी बूआ के चले जान पर रोये थे। पुलिस भी बहुत खोज-खबर लगाकर हार गयी है, पर उन्ह भी कोई अता-पता नही लग सका है। और उन्ह पता लग भी कैसे सकता है ! पुलिस ने पूरा पाच सौ रुपया खाया है।" रशीद अपनी हँसी न राक सका। "तू तो जानती ही है कि इस समय हमारा पलडा भारी है। सारा गाव मुसलमानो का है। कोई हिन्दू का बच्चा आख उठाकर हमारी ओर देख नही सकता। यही गनीमत है कि उन की जान माल सलामत है। उन्हें अपनी जान प्यारी है, व कुछ बोल नही सकते। अगर व हमारे घर की ओर उँगली भी उठाते, तो हमारे आदमी उन्हें नहर भी पार करने न देते।' रशीद ने कुछ हँस कर कहा। शायद उस के दिल म पुराने बदले की आग धधक उठी थी।

पूरा का रशीद का मुख देखकर बडी घृणा हुई। उस का जन्म नष्ट हो गया। यह लोक गया, परलोक गया। शायद उस के माता पिता छत्तोआनी का अपनी पुत्री की बलि चढाकर वापस सियाम लौट भी गये हो।

"क्या मेरे माता-पिता सियाम चले गये हैं ?" पूरो ने तडपकर पूछा।

"नही, अभी नही !" रशीद ने उत्तर दिया।

'मैं कहाँ रह रही हूँ ? अपने गाँव से कितनी दूर ?" पूरो न उसी प्रकार पूछा।

"तू अपने गाव के पिछली ओर माघोकिया के कुएँ के पार मरे अपन बाग़ मे है। पर शायद तू अपने गाँव जाने का सपना देख रही है। अभी नही। जरा बात ठण्डी हो ले, छह महीने बीत जायँ, वहाँ भी ले चलूँगा।" रशीद मुसकरान लगा।

पूरा चुप हा गयी। रशीद ने चावल के पुलाव की एक तश्तरी भरकर पूरो के आगे रखी। रशीद जब बाहर जाता था तब शायद किसी के हाथ अपने गाँव से पकवान मँगवा लेता था। पूरो का कुछ पता न था।

उस दिन पूरो के मन म कुछ उधेड़बुन लगी रही। उस डर था कहा उस का साहस उस जवाब न दे जाय इसलिए पूरो न चावल के दो चार कौर अपन मुँह म डाल लिय। पानी भी घूट घूट करके एक कटोरा पी लिया।

उस रात पूरो ने सारा साहस इकट्ठा करके अपना मन पक्का किया। रशीद के सिरहान दरवाजे की चाबी रखी हुई थी। पूरो ने चुपके स उसे उठा लिया, दरवाजा खोला। उस का दिल धक धक कर रहा था कि रशीद अब जागा, अब जागा पर दुर्भाग्य से या सौभाग्य से कहा रशीद की आँख न खुली।

बाहर रात के सन्नाटे को देखकर पूरो कांप उठी। एक बार उस का जी किया कि वह लौटकर रशीद के पास चली जाय। न जाने रात के अँधेरे म वह छत्तोआनी का रास्ता पा सकेगी या नहीं। कहीं रात क अँधेरे म वह रशीद [redacted] भी गय बीते किसी आदमी के हाथ तो न पड जायगी, न जाने उस की क्या दशा होगी। पर पूरो को अपनी माँ का चेहरा याद [redacted] गया, पूरो को अपने पिता का मुखडा याद आ गया, बहन भाई याद आ गय। पूरो न बस ही एक पगडण्डी पर चलना आरम्भ कर दिया, शायद यही माघोकियाँ के कुए का रास्ता हो। डरती डरती कांपती वह चलती रही।

रात का गहरा अधेरा फट चला था। माघाकिया के कुएँ का रास्ता ठीक निकला। पूरो ने झुटपुटे अँधेरे मे ही छत्तोआनी गाँव का पिछवाडा पहचान लिया।

अब पूरो न इधर म थी न उधर म। उस न अपनी बची हुई शक्ति का अपन पावों म डाला। वह दौडन लगी।

पूरो ने छत्तोआनी गाव को पहचाना अपने घर की ओर मुडती हुई गली का पहचाना, अँधेरे म अपन घर की दीवारो को पहचाना।

पूरो न दरवाजा खटखटाया। जस ही किसी न भीतर से दरवाजा खाला, पूरो ड्योढी म फश पर गिर पडी। वह अपनी शक्ति का अन्तिम अश भी खच कर चुकी थी। अब वह दौड दाडकर हाफ हाफकर दाई को छू चुकी थी। अब मानो पूरा की सम्पूण शक्ति नि शेष हो चुकी थी।

पूरा की आँखा म अँधेरा छा रहा था। उस ने देखा, उस की माँ, उस का पिता, हाथ म दिया लेकर उस के पास खडे हुए है। वह एक घायल पक्षी की भाति ड्योढी के कच्चे फश पर सिसकने लगी। उस ने देखा, माँ की आँखा से पानी की धाराएँ वह रही है। माँ ने पूरो को उठाकर अपनी बाहो म ले लिया पूरो न मा की छाती स अपने सिर को एसे लगा लिया मानो उन के टूट हुए सम्बन्ध फिर से जुड जायेंगे। पूरो की माँ की चीखें निकल गयी।

'लोग इकट्ठे हो जायेंगे।' पूरा के पिता न अपनी स्त्री का कन्धा हिलाकर कहा। पूरो की मा न अपन पल्ल के कोन को इकट्ठा कर के अपने मुह म ठस

न्यिा।

"बेटा, तेरी किस्मत ! अब हमारे बस का कुछ नही !" पूरो को अपने पिता का स्वर सुनाई दिया। वह अपनी मा से चिपटी रही।

"अभी शेखा के यहाँ से लोग आ जायेंगे और हमारे बच्चे-बच्चे को पर डालेंगे।"

"मुझे लेकर सियाम चले चलो।" पूरो न मा की छाती से मुह जरा हटाकर बडे आग्रह के साथ कहा।

'हम तुम्हे कहाँ रखेंगे ? तुझे कौन ब्याह कर ले जायगा ? तेरा धम गया, तेरा ज म गया। हम जो इस समय कुछ भी बोले तो यहाँ हमारे लहू की एक बूद भी नही बचेगी।"

'हाय, मुझे अपने हाथ से ही मार डालो !" पूरो ने तडपकर कहा।

'बेटा ! जनमते ही मर गयी होती ! अब यहा से चली जा। शेख आते ही होंगे। तेरे पिता, तेरे भाई का कही पता भी नही मिलेगा। वे सब को मार डालेंगे।" माँ ने न जाने कैसे अपने दिल पर पत्थर रखकर यह बात कही।

पुरो को ध्यान आया, रशीद ने कहा था, 'ओ नेकबख्त, अब उस घर म तेरे लिए कोई जगह नही। क्या रशीद ने सच ही कहा था ?

पूरो को एक बार मँगेतर रामच द का ध्यान आया। क्या सगाई, और क्या ब्याह ? क्या पूरो उस की कुछ न लगती थी ? उस ने पूरो की बात भी न पूछी ?

फिर पूरो का जीने का मन न किया। उस ने सोचा, और सब रास्ते ना ब द हैं, शायद मौत का रास्ता खुला हो। वह उठकर बाहर की ओर चल दी।

न मा ने रोका, न पिता ने। पूरो चलती गयी। आते समय पूरो जीवन से भेंट करने आ रही थी उस के हृदय मे लालसा थी, जीने की, माता पिता से मिलने की। बहुत डरती-काँपती आयी थी। लौटते समय वह मृत्यु से भेंट करने चली थी। अब उस के मन मे कोई डर नही था, कोई भय नही था। मृत्यु से बढकर कोई उस का क्या कर सकता था !

पूरो नि शक माधोकियाँ के कुए की ओर जा रही थी। प्रभात का नवप्रकाश सब पगडण्डियो पर बिखरा हुआ था।

सामने से रशीद डग भरता चला आ रहा था। पूरो के पाव वहीं जम गये। मृत्यु ने भी पूरो पर अपना दरवाजा ब द कर लिया था।

पूरो को लगा कि इन प द्रह दिनो न उस के शरीर पर से सारा मास उतार लिया है, अब वह निरा पिंजर है। उस की न कोई आकृति है, न सूरत, न कोई मन, न मरजी। रशीद ने आकर पूरो की बाह पकड ली। वह उस के साथ चल दी।

तीसरे दिन एक मौलवी आया। दो-तीन आदमी और आये। उ होंने रशीद

के साथ पूरो का निकाह पढ़वा दिया। फिर अपने आप ही रशीद ने पूरो को बताया कि उस के माता पिता कुशलपूर्वक सियाम चले गये।

छत्तोआनी का नाम लेते हुए भी पूरो का कलेजा काँपने लगता। रशीद इस बात को समझता था। और फिर पूरो को छत्तोआनी ले जाना भी खतरे से खाली नहीं था। शायद रशीद सोचता था कि कहीं वहाँ के या आस-पास के गाँवों के हिन्दू भड़क न जायें, यद्यपि अब पूरा महीना होनेवाला था और किसी का साहस न पड़ा था कि एक शब्द भी बोल सका हो। और फिर दूसरे की आग में कौन कूदता है? यह तो पीढ़ियों के वर थे, किसी ने अपने मन में दबा लिये, किसी ने निकाल लिये।

रशीद की माँ या कोई बहन उस समय जीवित न थी। भाई थे, चाचा थे। रशीद ने पूरो से कहा कि वह उसे वहाँ से कोसों दूर अपने एक गाँव सक्कड़आली ले जायेगा जहाँ दादा-पोतों के रिश्ते के एक भाई रहीम की ज़मीन थी। शायद उस की कुछ ज़मीन को भी अपनी इधर की ज़मीन से बदल ले।

अब पूरो होनी के हर धक्के के लिए तैयार थी। जब सगे माता पिता ने ही धक्का दे दिया तो अब गाँवों में ही क्या पड़ा था? यहाँ न सही, वहाँ सही।

रशीद स्वयं ही घर के बड़े की भाँति दो-तीन ट्रंक लाया, फिर कुछ और सामान लाया, और फिर पूरो को साथ लेकर सक्कड़आली चल दिया। रास्ते में जैसे कोई आँखें मींचकर चलता हो, ठीक उसी तरह रशीद के साथ-साथ चलकर पूरो नये गाँव में आ गयी। नये गाँव में पहुँचते ही उन्हें एक अलग मकान मिल गया। शायद रशीद ने पहले ही रहीम से कह-सुनकर यह व्यवस्था कर ली थी। रहीम का घर उन के घर से काफी दूर था। फिर भी रहीम के घर की स्त्रियाँ उस से मिलने आयीं। यह पहली बार थी, जब पूरो को रशीद के सम्बन्धियों में स्त्रियों से मिलने का अवसर पड़ा।

पूरो एक खोयी हुई बछिया की भाँति उन के पास बैठी रही। उन्होंने पूरो से बहुत पूछताछ न की। छोटी मोटी घर की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ही पूछती रहीं।

रशीद पूरो को पूरो ही कहकर बुलाता। निकाह के समय पूरो का नाम हमीदा रखा गया था, वह अभी उस की ज़बान पर नहीं चढ़ा था।

एक दिन अचानक ही रशीद एक आदमी को घर ले आया। वह बाँहों पर स्त्रियों-पुरुषों के नाम गोदता था। उस दिन फिर पूरो का हृदय टीस उठा, परन्तु जैसे ही रशीद ने कहा, उस ने बाँह आगे कर दी और उस की बायीं बाँह पर 'हमीदा' गहरे हरे रंग के अक्षरों में गोदा गया। रशीद भी उस दिन से उसे हमीदा पुकारने लगा। शायद यह सलाह रहीम के घरवालों ने दी थी।

पूरो अब हमीदा बन गयी। किन्तु अभी तक जब रात को वह सो जाती थी,

उस के सपनों में उस की सहेलियाँ मिलती थी, सपनों में वह अपने माता पिता के घर खेलती-कूदती फिरती थी, सब उसे पूरो ही पुकारते थे। दिन के प्रकाश में पूरो हमीदा बन जाती थी, रात के अंधकार में वह पूरो रहती। किन्तु पूरो सोचती थी वह वास्तव में हमीदा थी न पूरो, वह केवल एक पिंजर थी, केवल पिंजर—जिसका कोई रूप न था, कोई नाम न था।

पाँच छह महीने बीते होंगे कि पूरो के पिंजर में एक नन्ही-सी जान फड़कने लगी।



वैसाखी का मेला

मटमैला दिन था। बीते हुए दिन एक-एक करके पूरो की आखों के आगे से गुज़र गये। बोरी के एक टुकड़े को अपने पैरों के नीचे लेकर पूरो पत्थर का बुत बनी हुई उन्हें देखती रही।

बाहर के दरवाज़े को खोलकर रशीद भीतर के आगन में आकर खड़ा हो गया। पूरो को जैसे खड़का सुनाई ही नहीं दिया, पूरो को जैसे कोई आता दिखाई ही नहीं दिया। वह बैठी की बैठी रही। रशीद को शायद सचमुच ही पूरो से प्रेम था, वह चुपके से आकर पूरो के पास बैठ गया।

"क्या सोच रही है?" रशीद ने अपनी एक बाह पूरो के शरीर से सटा दी। पूरो आज अत्यन्त उदास थी, वह न हिल सकी न बोल सकी।

रशीद उसे दुलार करता रहा। फिर बहुत देर बाद पूरो ने कहा, "आज मुझे ऐसा लगता है जैसे कोई मेरे भीतर मेरी अँतड़ियों को नोच रहा हो।"

रशीद हँसता रहा और पूरो के मन को ढाढस बँधाता रहा। फिर रशीद ने चूल्हे में बुझी हुई आग को सुलगाया और पूरो को पास बिठाकर वह खुद एक पतीले में बटेर भूनने लगा।

"न तू कहीं आती-जाती है, न किसी से मिलती जुलती है। ऐसे तो अच्छे-

भने आदमी का जी घबरा उठता है।" रशीद ने थोडी देर ठहरकर कहा।

"कहाँ जाऊँ? मेरे लिए और जगह ही कौन सी है?" पूरो ने बुझे हुए मन से कहा।

'अब तू घर की मालकिन है, और चार दिन मे तेरे आँगन मे एक जीव खेलने लगेगा। मेरे लिए न सही, उसके लिए ही सही, तुझे अपने मन को छोटा नही करना चाहिए। उस बेचारे ने तेरा क्या बिगाडा है?" रशीद को अपने होने वाले बच्चे का ध्यान आ गया, उस ने उसी की दुहाई देकर पूरो से यह आग्रह किया।

पूरो को फिर मटर की फली मे से निकले कीडे का ध्यान आ गया जिसे देखकर जी मिचला उठे, जिस के पासवाले मटर के दानो को फेंक दिया जाये।

'ला, बटेरो के मसाले म थोडे से मटर डालने है।' रशीद ने पूरो के आगे बिखरे हुए मटर के दानो की ओर देखकर कहा।

'मटर तो सब पकी हुई है। अब मटरा की कौन सी बहार है, अब तो बैसाख चढनेवाला है।" पूरो जानती थी आज वह मटर नही खा सकेगी।

"हाँ, सच! कल तो वसाखी का बडा भारी मेला लगेगा।" रशीद ने सहज भाव से कहा।

'वसाखी वसाखी " पूरो के कानो मे गूजने लगा। वह परात मे दो तीन मुट्ठी आटा डालकर गथने लगी जिस से उस का मन बँट जाये।

"आज तो मेरा जी कर रहा है कि गुड डालकर सेवइया बनायी जायें।" रशीद ने कहा। पूरो चुपके से भीतर से सेवइया और गुड ले आयी।

उसी समय पूरो को एक बहुत पुरानी बात याद आ गयी। एक दिन पूरो की माँ बैठकर सूजी की सेवइया तोड रही थी कि पूरो ने कहा, 'मा, री माँ, मेरा तो मशीन की तोडी हुई सेवइयाँ खान को जी करता है।' इस पर मा ने तुरन्त कहा था, 'हट, वह तो मुसलमान खाते है।'

यह बात याद आते ही पहल तो पूरो की आखो मे आसू भर आये, फिर वह हँस पडी।

रशीद न उस की हँसी का कारण पूछा, पूरो ने वह बात सुना दी। सुनाते-सुनाते वह फिर रो पडी। रशीद लज्जित-सा बठा हँसता रहा।

दूसर दिन सवेरे जब पूरो साकर उठी गाँव मे बसाखी के ढोल बज रहे थे। पहले तो पूरो घर के काम काज म लगी रही फिर वह छत पर चढकर दूर गाँव म लगा हुआ वसाखी मेला दखने लगी।

दूर खडी पूरो को लोगा का एक विशाल समूह दीख पड रहा था। लम्बे तडंगे जाट कमर म कोर तहमद बाँधे हुए, हाथा म तेल से चमकायी हुई लाठियाँ लिय, और हृदय म उत्साह और उल्लास भरे इधर से उधर आ जा रहे थे। बहुत-

से घोडियो पर चढे हुए थे, पीछे अपनी स्त्रियो को बिठाये आगे एक दो बाल-बच्चो को भी लिय घूम रहे थे। कई बलिष्ठ नवयुवक अपने यौवन और बल के मद म चूर सीना ताने चल रहे थे, कुछ गाते जाते थे, कुछ बातें करते जाते थे। दूर परे मैदान मे कुश्तियाँ हो रही होगी, जलेबियो के थाल लगे हुए होंगे, गरम पकौडियो की महक दूर तक हवा मे फैली हुई होगी। गुड के शक्करपारे, मैदे की मठरियाँ और मिठाइयो के ढेर के ढेर लोहे के चौडे थालो मे सजे हुए होंगे।

पूरो के मस्तिष्क मे एक विचार उत्पन्न हुआ, मानो किसी ने उस के सिर मे हथौडा दे मारा। उस की माँ ने तीन लडकियो के बाद इस बार पुत्र को जन्म दिया था और वह यह उस की पहली बैसाखी थी।

पूरो खडी थी, छत पर बैठ गयी। कौन जाने इस समय उस की माँ ने उस के छोटे भाई को पानी चखाया होगा। पास बहती हुई किसी नदी का पानी लेकर गुलाब के फूल को उस पानी मे भिगोकर, उस के भाई के नन्हे गुलाबी होंठो से लगाया होगा। फिर उस की माँ को बधाइयाँ मिली होगी। और कौन जाने कौन जाने इस समय उस की माँ का अपनी पट की जायी पूरो की याद आ गयी होगी

पूरो की आखो मे आसू भी आ-आकर थक चुके थे। वह दोनो हाथो मे सिर को पकडे बैठी रही।

युवा जाट लडको की एक टोली कानो मे फूल अडाये हँसती गाती परे से गुजर रही थी। उन मे से कोई 'बोली' गा रहा था

ग्वह ते बैठी दातन करदी
चिट्टिया दन्दा दी मारी
नी आपे तैनू ल जाणगे
जिन्हा नू लगें पियारी
नी आपे तैन् लै जाणगे

"काश! कोई प्यारी लगनेवालियो के हाल तो देखे।" पूरो के मुँह से धीरे से निकल गयी।

फिर पूरो के मन मे एक विचार आया, वह रशीद का ही प्यारी लगी, रशीद उसे ले आया। वह अपने मँगेतर रामचन्द को क्यो प्यारी न लगी? उस ने तो उस की बात भी नही पूछी। वह तो रामचन्द को प्यारी लगना चाहती थी। रशीद को न तो उस ने स्वय ढूढा था, न ही उस के माता पिता ने उसे चुना था।

जाट हँसते जा रहे थे, कूदते जा रहे थे, भगडा नाचते जा रहे थे, 'बालियाँ गाते जा रहे थे

तेरे लौंग दा वज्जा लिशकारा
हालिया नू हल भुल्ल गये

तेरा भिज्जया परी दा लहँगा
पच्छी दिया पैण कणियाँ
सानू कण्ड ना देईं मुटियारे
नी राहे राह जाण वालीए

पूरो सोचती रही, सब गीत सुन्दर लड़कियों के ही गुण गाते हैं, सारे भजन सच्चे प्रेम का ही वर्णन करते हैं। क्या कभी ऐसे गीत भी बनेंगे जिन में मुझ जैसी लड़कियों के रुदन की कथा लिखी जायगी? क्या कभी ऐसे भजन भी होंगे जिन का कोई भगवान् ही न होगा?

चढ़ती जवानीवाली कुछ नवयुवतियाँ अपने यौवन की उच्छृंखलता में अपनी एक अलग टोली बनाकर मेले में चली जा रही थीं। कुछ दूर पर जा रहे जाट लड़के अपनी टोलियों में से मुड़ मुड़कर उनकी ओर ताक-ताक रहे थे, और हँस रहे थे। शायद उनसे हँसी मजाक कर रहे हों। पूरो सोचने लगी, यदि सब जवान लड़कियों को यह लड़के अपनी-अपनी घोड़ियों पर उठाकर भाग जायें, फिर क्या हो? यदि ये इन लड़कियों को उठाकर ले जायें



पूरो का बच्चा

भरी गरमी आ गयी थी। 'छिपटियाँ' डालकर जलाये गये तन्दूर की भाँति धरती जल रही थी।

पूरो कभी बैठती, कभी उठती, कभी लेट रहती थी। आज उस का जी ठीक नहीं था। पल-पल पर वह पानी पी रही थी। उसकी पड़ोसिन ने उस से कहा था, 'जैसे भी हो आज नहा ले और अपना सिर भी धो ले, फिर क्या पता रात को या सवेरे ही तेरे घर कुछ हो जाये, फिर तू कितने ही दिन उठने योग्य न रहेगी।'

रशीद ने देखा, पूरो का रंग शरीर में उठती पीड़ा के साथ-साथ पूनी जैसा सफेद होता जा रहा था। रशीद को वह समय याद आ गया जब वह छत्तोआनी

की कच्ची सडक से पूरो को अपने आगे घोडी पर बिठाकर भगा लाया था। उस समय भी पूरो का रग सफेद फिटकरी जसा हो गया था। उस समय पूरो की आत्मा मे से चीसे उठ रही थी, आज उस के रक्त मास मे से।

रशीद ने रहीम के घर अपन खेतो पर काम करनेवाला एक नौकर भेजा। पूरो का अकेली छोडकर जाने का उसे साहस न होता था। अब रहीम की मा पहुँची, उस समय बढती हुई पीडा पूरो के मुख पर बल खा रही थी। आते समय रहीम की माँ अपनी गलीवाली उस रेशमा दाई का भी लेती आयी थी जिस न रहीम की दोनो स्त्रियो के दो दो, तीन-तीन लडके-लडकियाँ पैदा होने के समय मदद दी थी।

दाई ने आत ही एक पुरानी दरी फश पर डालकर उस पर पूरो को लिटा दिया। पूरो चारपाई की नरमाई को छोडकर कडी जमीन पर लेटी कराहने लगी।

रशीद बाहर देहली के पास खडा था। बन्द किये हुए भीतरी किवाड के अन्दर से पूरो की दातो म भिची हुई लम्बी लम्बी हुकार रशीद का सुनाई देती रही। उस का मन कर रहा था, पूरो के शरीर मे से बहुत नही तो कम से कम आधी पीडा निकालकर अपने मे डाल ले। पूरो अकेली ही पडी कराह रही थी।

दाई नयी गोटवाले पखे से पूरो के मुख पर धीरे-धीरे हवा करती रही। कितनी ही बार रहीम की मा न घूट-घूट करके पूरो के मुह म पानी डाला।

बाहर खडे हुए रशीद ने तीन जोर की चीखो के बाद बच्चे के टिटियाने की आवाज सुनी। उस के बाद पूरो के मुख से कोई आवाज न निकली। उस का कष्ट समाप्त हो चुका था। रशीद ने चन का सास लिया। उसका जी कर रहा था कि वह भीतर चला जाये। दाई तो शायद बच्चे की देखभाल मे लगी होगी, वह जाकर पूरो को सँभाले। पूरो अभी तक उस के हाथा रोती ही रही थी, पूरो अभी तक उस के कारण कराहती ही रही थी। पर भीतर उस की चाची बैठी हुई थी, भीतर दाई बैठी हुई थी। जब तक व उसे भीतर न बुलावे, भीतर जाना उसे बडी अभद्रता प्रतीत होती थी।

मिनट पर मिनट बीतते गये, पूरो की फिर आवाज नही आयी। रशीद के दिल मे घबराहट उत्पन्न हुई—पूरो जीवित तो है? उस की आवाज इतनी सी भी क्यो नही आती?

इसी प्रकार आधा घण्टा बीत गया। दाई ने बाहर आकर रशीद से कहा, "बेटा, बधाई हो, लडका हुआ है।"

"उस का क्या हाल है?" रशीद ने पूछा।

"ठीक ठाक है, बेटा! ऐसे ही कुनबे बढते हैं, लडके छत से तो गिर नही पडते।" दाई ने हौसले के साथ मुसकराकर कहा, पर उसी हौसले के साथ जिस से

उस ने सैंकडो स्त्रियो की पीडा को अपने हाथो पर झेला था।

जब रशीद अन्दर गया तो पूरो लेटी हुई थी। उस की आखें निढाल थीं। उस के पास ही एक सफेद कपडे मे लपेटा हुआ उस का और रशीद का पुत्र पडा अंगूठा चूस रहा था।

रशीद का हृदय गर्व से भर उठा। उस ने पूरो पर विजय प्राप्त कर ली थी, इस जुए मे उसने सारी की सारी पूरो को जीत लिया था। पूरो अब केवल उस की भगायी हुई रखैल ही नही थी, वह अब केवल उस को घर मे डाली हुई स्त्री ही नही थी अब वह उस के पुत्र की माँ भी थी।

रहीम की मा के कहे अनुसार रशीद ने एक रुपया और गुड की भेली अपने पुत्र के ऊपर वारी। पूरो की उनीदी आखें खुली, उस ने रशीद को देखा।

"अब तू मुझ से क्या कहता है? मैं ने तुझे अपना आपा दिया, मैं ने तुझे एक पुत्र दिया है, अब मेरे पास बाकी क्या रह गया है?" माता पूरो ने मूक जिह्वा से रशीद से कहा। फिर पूरो ने आखें मीच ली।

गरम गुड और पिसे हुए बादाम कुछ चम्मच पीकर जब पूरो के शरीर मे कुछ जान आयी तो उस ने देखा कि उस के बच्चे का नरम-नरम मुह उस की बाँह से लग रहा है। पूरो के शरीर मे एक कँपकँपी सी आ गयी। उसे लगा कि एक नरम सफेद कीडा उस के शरीर पर चढ रहा है। पूरो को घृणा सी हुई। उस का मन किया, अपनी बाहो से लगे हुए कीडे को वह तोड डाले, अपने पास से उसे दूर फेंक दे, ऐसे जैसे कोई चुभे हुए काटे को नाखूनो मे फँसाकर निकाल देता है, जैसे कोई धँसे हुए गोखरू को उखाडकर फेंक देता है, जैसे कोई चिपटी हुई किलनी को नोचकर अलग कर देता है, जैसे कोई चिपटी हुई जोक को तोड फेंकता है।

रहीम की मा को इन के घर पूरे तेरह दिन रहना था। अभी पूरो के लडका हुए केवल चार दिन हुए थे।

पाचवें दिन पूरो के दूध उतरा। अब तक दाई रुई की बत्तियाँ बनाकर लडके के मुह मे दूध देती रही थी। आज उस ने लडके को पूरो के स्तन से लगा दिया।

लडका पूरो की गोदी मे पडा रहा। उस के शरीर से चिपटा रहा। पूरो ने अपनी अँतडियो मे एक खिचन सी अनुभव की। उस का मन किया कि वह लडके को गले लगाकर फूट फूटकर रोये। लडका उस के अपने रक्त का बना हुआ खिलौना था, उस के ही मास का बना हुआ पुतला था। इस भरे-पूरे ससार मे यह एक लडका ही उस का अपना था। वह अब कभी भी अपनी माँ का मुख न देख सकेगी, वह अब कभी भी अपने पिता का मुख न देख सकेगी, वह अपने भाई-बहनो को भी कभी न देख सकेगी वह वह केवल अपने लडके का मुह देखा करेगी, जिस के रक्त मे उस के अपने माता पिता का रक्त भी मिला हुआ था। उस के माता पिता उसे तो तोडकर अलग फेंक गये किन्तु अपने रक्त को कैसे अलग कर

गोरी थी, और हथेली के पीछे की ओर मास इस तरह उभरा हुआ था कि पूरो का उस के हाथ बिलकुल मोम के उस बबुए जैसे लगते थे जिसे छुटपन म उस ने सियाम से आते हुए कलकत्ते के एक बाजार म खरीदा था। पूरो ने उस बबुए का आशिय से बनकर एक कुरता पहनाया था छोटे मोतियो को एक धागे म पिराकर उस बबुए को माला पहनायी थी। जावद के हाथ बिलकुल उस बबुए के हाथो की भाति थल थल करते थ। मोम का वह बबुआ शायद अभी तक नही टूटा होगा। पूरो सोचने लगती, कभी कभी काच और मिट्टी की वस्तुओ का जीवन भी कितना लम्बा हो जाता है शायद आज भी उस बबुए स पूरो की कोई बहन मेल रही होगी।

मुह-अँधेरे ही पूरो खेतों म जाती। रशीद लडक क पास बैठता। एक दिन अभी अँधेरा ही था पूरो खेतों से लौट रही थी। गाव के बाहर मुसलमानो के कुएँ पर उस ने हाथ-पर धोये और जब वह अपन घर को लौट रही थी, उस अपनी गली की एक लडकी कम्मो दिखाई दी।

शरद् ऋतु की हलकी हलकी ठण्ड थी। कम्मो पानी की बटलोई का पत्थर के एक छोटे से घडे पर रखकर खडी हो गयी थी। पूरो जब उस के पास से गुजरी कम्मो ने कांपते हुए हाथ से पानी की उस बटलाई को उठा लिया। शायद उस के कधे बटलोई का भार सहार न सके बटलोई कम्मो क कधे से गिरन लगी। बटलोई के नीचे टिकी हुई कम्मो की हथेली भार के कारण बीच से ही दोहरी होती हुई प्रतीत होती थी। दायें हाथ से बटलोई को सहारा देते हुए कम्मो के मुह से निकला—'आ मा!"

पूरो के पाव रुक गये। पूरो कम्मो के पास हो गयी। उस का मन किया, दस-बारह बरस की इस लडकी कम्मो के कधे स बटलाई उतार ल। कम्मो उस के साथ साथ चलती जाये, कम्मो जो पावो से नगी थी जो सदा खद्दर के सुथन के पायँचे ऊपर को मोडे रखती थी, जिस की धारियावाली कमीज के मोढो पर लगा हुआ पेबन्द कभी उधड जाता था, कभी फिर लग जाता था, जिस की चुनरी के पल्ल सदा तार तार होकर लटके रहते थे, जिस के बाल सदा बान जैसे खश्क और बिखर रहते थ और जिसे पूरो न सदा दूर से ही देखा था। आज वह उस के पास जाकर उस के उन कधो पर स बटलाई उतार ले जिन कधो की हड्डियाँ पीतल की बटलाई से टक्कर खा रही थी।

बडी दर हो गयी है?' बरतन के भार के नीचे दबी कम्मो न मानो पूरो से आज देर न होन का एक सहारा मागा।

'अभी तो दिन भी नही निकला।' पूरो ने स्थिर स्वर मे कहा।

न जाने लडकी म कुछ साहस आ गया, उस ने अपने कधो का भार फिर धरती पर रख दिया। बटलाई के मुह म से कोई एक चुल्लू भर पानी छलक-

कर कम्मो के कन्धो पर गिर पडा । घिसी हुई धारियो वाली कमीज को पार कर के पानी की ठण्ड कम्मो के शरीर मे फल गयी । जाडो की ठिठुरन कम्मो के बदन मे दौड गयी ।

पूरो रुक गयी । कम्मो पूरो की ओर देखकर हँस पडी । एक घटो पहले वह दर हो जाने के डर से और बरतन के बोझ से सहमी हुई थी । पूरो न कम्मो के मुख पर सदा वही भय का भाव देखा था । उस समय उस के चौडे होठो पर फली हुई हँसी पूरो को ऐसी लगती जैसे कि उस लडकी को हँसना आता ही न हो, वह यो ही अपने होठ मरोड रही हो मानो किसी को मुह चिढा रही हो ।

"कम्मो ! तू रोज इसी वक्त आती है ?" कम्मो को जो आवाजें पडती थीं उन से पूरो को कम्मा का नाम मालूम हो गया था ।

"लगता है, आज कुछ देर हो गयी है, मुझे मार पडेगी ।" कम्मो न फिर बटलोई पर हाथ धर लिया । मानो समय का जिक्र ही उस के लिए डरावना हो गया हो । उस के मुख पर से उस की हँसी कच्चे रग की भाति उतर आयी और फिर वही पुराना भय का भाव उस के मुख पर आ गया ।

"कम्मो ! वह तेरी कौन लगती है ?"

"चाची ।" कम्मा ने कहा और उस की बाँह बटलोई के भार के नीचे मुड गयी, कौन जान उस बोझ के कारण था चाची के नाम मे !

"तू कहे तो मैं तेरी बटलोई ले चलू ।" पूरो ने कहा, पर अपना हाथ आगे न बढाया । पूरा को इस बात का पूरी तरह ध्यान था कि लोग जानते थे कि उस का नाम हमीदा है—हमीदा—रशीद की पत्नी और कम्मो एक हिन्दू लडकी थी ।

"बटलोई भ्रष्ट हो जायेगी ।" कम्मो ने नि शक कहा ।

"पानी तो भ्रष्ट नही होगा । मैं पानी को हाथ नही लगाऊगी, तू जाकर बाहर से बटलोई माज लीजो ।" कहते-कहते पूरो हँस पडी । कम्मो भी हँस पडी, पर वह बटलोई उठाये रही ।

दोनो अभी थोडी ही दूर गयी होगी कि कम्मो का पर मुड गया । गिरती हुई बटलोई को पूरो ने रोक लिया, पर कम्मा ककड पत्थरो पर गिर पडी । कम्मा के पैर मे मोच आ गयी ।

पूरो न बटलोई धरकर कम्मा का पर थामा, हथेली से कम्मो के पर को टखने के पास मला । दखते-दखते कम्मो उठने योग्य हो गयी । पूरो बटलोई उठा कर उस क साथ साथ चलने लगी ।

"ओ, मा !" कहकर कम्मो रोने लगी । पूरो को लगा जैसे कम्मा अपन तमाम दुखो के लिए अपनी परलोक वासी माँ को उलाहना दे रही है ।

'पदा करके हमारे लिए छोड गये,' पूरो न कई बार कम्मो की चाची का

कहते सुना था। कम्मो के माता पिता कोई न था। कम्मो का पिता तो शायद जीवित था, पर कहते थे उस ने शहर मे कोई औरत रखी हुई थी। वह कम्मो की बात न पूछती थी, और इसी कारण कम्मो का पिता भी उस से कोई वास्ता न रखता था। पूरो सोच रही थी, जब माँएँ मर जाती है तब बाप भी पराये हो जाते हैं सोचते सोचते उस का ध्यान अपने जीवन की ओर चला गया, माँएँ जीवित हो फिर भी पिता पराये हो जाते हैं, माएँ भी परायी हो जाती है

गाव अब स्पष्ट दीख पडने लगा था। प्रकाश भी बढ गया था और उन की गली का मोड भी अब आ गया था। फिर दोनो को यह डर था कि कोई पूरो का बटलाई उठाये न देख ले। कम्मो ने जब बटलोई सँभाली, उस के पांव कांप रहे थे। पूरो ने जल्दी जल्दी क़दम बढाये और कम्मो से अलग हो अपनी गली मे मुड गयी।

उसी दिन दोपहर के समय पूरो का लडका कुछ जिद करके रो रहा था और पूरो उसे बहलाने म लगी हुई थी, जब दरवाजा खोलकर कम्मो उस के घर मे आ गयी।

पूरो ने आगे बढकर कम्मो को अपने से चिपटा लिया। पूरो को लगा, उस के पुत्र की अपेक्षा कम्मो को बहलाये जाने की अधिक आवश्यकता है। कम्मो, जिस के आँसू पोछने वाला कोई न था।

कम्मो के आँसू पूरो की बाह पर गिर रह थे। पूरो के जी मे यही विचार रह-रहकर आ रहा था कि जसे वह जावेद की मा है वसे ही कम्मो की मा भी बन जाय,—कम्मो एठकर रोने लग, वह उसे उठा उठाकर बिठाये, उसे गोद मे ले लेकर फिरे, उसे चूमते न थके। वह जावेद की मा है, वह कम्मो की माँ भी बन जाय, वह सब अनाथो की मा बन जाये। वह एक अच्छी पुत्री नही बन सकी थी, वह एक अच्छी माँ बन जाये

कम्मो हिन्दू थी और पूरो पूरो एक मुसलमाननी थी, यद्यपि अभी तक अपने आप को वह पूरो ही समझती थी। कम्मो पूरो के घर का कुछ खा नही सकती थी, पर पूरो का जी करता था कि कम्मो को अपने हाथ स कौर खिलाय, उसे अपने हाथ से दूध का कटोरा पिलाये

पूरो ने फिर कम्मो का पर मला हथेलियो से गरम गरम घी रगडा रुई से सेंक किया।

कम्मो घर जाने की जल्दी करने लगी। उस की चाची की लम्बी झाड उस की आँखो म सलाखो की भाति फिर रही थी। कम्मो दुलाई निरांदने वाली सुई लाने के बहाने चली आयी थी।

पूरो ने कम्मो को बादाम वाला गुड खिलाया और फिर दुलाई निरांदने वाली सुई भीतर से निकालकर दी।

जाडा दिन दिन बढ रहा था। लोगो ने माटे कपडे पहन लिये थे। लोगो ने रुई भरवाकर काली छीट की फतूहिया सिलवायी थी। लोगो ने मोट खेसो मे अपन कन्धो को लपेट लिया था।

कम्मो अपनी आयु के वप खाये जा रही थी। न उस के शरीर पर यौवन चढना था, न ही उस के शरीर पर कभी नये वस्त्र दिखाई दिये थे। उन के नगे पर अब ठण्ड से ठिठुरने लगे थे।

पूरो ने कम्मो के लिए एक नयी जूती बनवायी, पर कम्मो के लिए अपने पैरो मे उस जूती को पहनना आसान काम नही था।

बहुत सोच-विचार के बाद कम्मो को वह जूती पहना दी गयी, और कम्मा ने अपनी चाची से कह दिया कि सामने ईख के खेत मे पडी मिली है। चाची न यह बात मानी तो नही—भला गाव मे ऐसी कौन होगी जो अपनी नयी जूती ऐसे फेंक आयी—पर वह कुछ बोली नही। कम्मा जूती पहनती रही।

किन्तु हर रोज तो नयी चीजें पडी नही मिल सकती। पूरो कम्मो की ठिठुरती हुई हड्डियो को देखकर रह जाती।

केवल रात्रि के अन्तिम प्रहर का अन्धकार यह बात जानता था कि पूरो कम्मो की एक-दो बटलोइयाँ उठाकर उसे सास ले लेने देती थी।

कम्मो दिन मे एकाध फेरा पूरो के घर का लगा लेती थी—कभी बेलन मे रुई साफ कर लेती, कभी चक्की मे चने दल लेती, कभी हाअनदस्ते म मसाला कूट लेती। पूरो उस का हाथ बँटाती। चाची का काफी काम हो जाता। नन्हा बच्चा जावद कम्मो से हिल गया था। कभी कम्मो न आती तो पूरो उसे छोटे लडके का उलाहना देती। जहा तक कम्मो से बन पडता वह कभी नागा न करती।

अब पूरो और कम्मो मा बेटियो की भाति एक-दूसरे से लड लेती थी, दो सहेलियो की भाँति एक दूसरे से चिपट चिपटकर बैठ जाती थी।

कई बार पूरो का मन करता था कि वह कम्मो के लिए कुछ बनाये। कम्मा के सूखे हुए शरीर पर अब एक हलका-सा उभार आने लगा था—कम्मो के पिचके हुए गालो पर गोलाई आ गयी थी। पूरो के घर आकर कम्मो अपन बाल सँवारती, पूरो चिकनाई का हाथ लगाकर कम्मो की मेढिया करती।

एक दिन सवेरे मुह-अँधेरे कम्मो पूरा को पकडकर बेतरह रोन लगी। पूरो ने ध्यानपूवक उस की ओर देखा, कम्मो मन की भाँति पेरी हुई जान पडती थी।

पूरा ने उसे अपने कलेजे से लगाया, उस का माथा चूमा—किन्तु कम्मा का राना किसी प्रकार थमन मे न आता था। आसुओ से उस की चुनरी भीग गयी थी, आँसुओ स उस के हाथ भीग गये थे।

'मरी चाची कहती है, जा तू अब उस के घर गयी तो मैं तेरा खून पी

डालूगी।" कम्मो ने कहा और पूरो की छाती से लगकर सिसक सिसककर रोने लगी। वह जी भरकर रोयी, मानो पूरो उस का एक सहारा हो और उस से अलग करने के लिए कम्मो को कोई हाथ पकडकर खीच रहा हो।

'पर क्यो ? मैं ने क्या किया है ?" पूरो ने ठहरकर पूछा।

'चाची कहती है, सुना है वह घर से भागकर आयी है, तू भी किसी दिन उस की तरह भाग जायेगी।" कम्मो ने रोना बन्द करके कहा। प्रभात का प्रकाश उजला होने लगा था। पूरो टूटी हुई पूनी की भाति हो गयी थी।



कटु सत्य

पूरो के हृदय पर एक के बाद एक चोटें पडती रही थी। उस का मन और मस्तिष्क इतने अल्प समय म ही कम से कम दस बरस बडे हो गये थे। पूरो की आयु बीस वर्ष से अधिक नही थी, किन्तु आयु उसे जो कुछ नही सिखा सकती थी, वह उसे जीवन के कुठाराघातो ने सिखा दिया था। एक बुद्धिमान् विचारक की भाँति पूरो गम्भीर हो गयी थी। पूरो का मन बडी विलक्षण बातें सोचता था, बहुत कुछ सोचता था। किन्तु पूरो को अपने विचारो को व्यक्त करना न आता था। पानी के टकराने से जसे झाग उठते हैं और फिर पानी म समा जाते है उसी प्रकार पूरो के हृदय म उमगें उठती और विलीन हो जाती थी।

कभी-कभार पूरो रहीम के घर उस के घर की स्त्रियो के पास चली जाती थी। उन के पडोस की एक लडकी के पीले मुख से वह बहुत आकर्षित हुई थी। कई बार पूरो का मन करता कि उसे बुला ले। दुखी को दुखी ही पहचानता है। उस लडकी के म्लान मुख पर बडी-बडी थकी हुई-सी आँखें थी जो पूरो की ओर कुछ ऐसे मुक पडती थी मानो उन्हे भी पूरो की आवश्यकता हो। होते होते पूरो का पता लगा कि पिछले से पिछले साल इस लडकी का विवाह हुआ था। कोई कहता था कि उस पर भूत प्रेत था, कोई कहता था, उसे कोई भीतरी रोग था।

न जाने उसे क्या हो गया था, उस का शरीर बहुत दुबल हो गया था, उस का मुख पीला पड गया था।

पूरो ने इसी तरह आते-जाते उस लडकी से परिचय कर लिया, और उस परिचय को उस की मा के जरिये से अपने खेस बुनवाकर बढा लिया। उस लडकी को सब तारा पुकारते थे।

कुछ दिनो बाद पूरो ने सुना, तारो का कई बार दौरे भी पड जाते है। उन दिनो तारो अपने मायके आयी हुई थी। अब उसे अपनी ससुराल जाना था। पूरो ने सुना, हर बार अपनी ससुराल जाते समय तारो को इसी प्रकार होता था, और जितनी बार वह अपनी ससुराल से लौटकर आती थी, उस के शरीर का मास पहले से भी कम होता था, हर बार उस के शरीर की हडिया पहले से भी अधिक निकली हुई होती थी।

देखने वाले अपने मन म समझते थे कि बस दो तीन फेरो की बात और है फिर और सूखने के लिए उस के शरीर पर मास रह ही नही जायेगा फिर और दुखने के लिए उस की हड्डियो म जान ही न रह जायेगी। किन्तु मुह से कोई कुछ न कहता था, न ले जाने वाले ससुराली कुछ कहते थे, न भेजने वाले मायके के कुछ बोलते थे।

एक दिन तारो बिलकुल अकेली बैठी हुई थी। पूरो उस के पास जाकर बैठ गयी। पहले भी कई बार उस से थोडी-बहुत बातचीत कर चुकी थी, आज उस से बातें करने के लिए बठ ही गयी।

"तारा! कोई सयाना तो बताता होगा, तुझे क्या हुआ है?"

"कुछ भी नही।"

"किसी ने नब्ज तो देखी होगी?"

"वक्वाले मुरब्बे और अर्क की बोतले पीते पीते मैं थक गयी हूँ।"

"तारो, कुछ तो बता, क्यो अपनी जान की गाहक बनी है?"

"अच्छा है, धरती का कुछ भार हलका हो जायेगा, बहन! तू क्या चिन्ता करती है?"

"धरती पर तो न जाने कितना भार पडा हुआ है, तेरे न रहने से कितना कम हो जायेगा। अपनी माँ से पूछकर देख जिस ने तुझे अनेक कष्ट झेलकर पाला है।"

"पाला होगा," तारो ने बेपरवाही से कहा, "दो चार दिन रो धोकर अपने आप चुप हो जायेगी। वह कौन-सी सुखी है!"

"पर ऐसी क्या बात है, माँ से वह तुझे कुछ दिन और न भेजे।"

"फिर क्या फर्क पड जायेगा! जसी यहा हूँ, वैसी वहा।"

"हाँ, लडकियो को कोई कितने दिन रख सकता है।"

"लडकिया, हूँह " और तारो बडबडा कर चुप हो गयी। तारो के मन मे न जाने क्या उलझन पडी हुई थी, न जाने वह क्या कहना चाहती थी, पर कह न पाती थी।

'लडकियो का क्या है, माँ-बाप चाहे जिस के हाथ मे उस के गले की रस्सी पकडा दें।' तारो न थोडी देर ठहरकर कहा।

"वहा का पानी अच्छा है ?" पूरो ने पूछा।

"अच्छा न भी हो तो भी अच्छा ही है।" तारो ने उत्तर दिया।

'हो सकता है तुम्हे वहाँ का पानी माफिक न आया हो।" पूरो ने बात को चलाये रखने के लिए कहा।

"लडकियो को सदा पानी माफिक आता है।' तारो ने कुछ ऐसा कहा कि पूरो उस के मुख की ओर देखती रह गयी।

"तारो, मैं तेरी अपनी ही हूँ, तू कुछ बताती क्यो नही ?" पूरो ने ऐसे अपनपन से कहा कि तारो का हृदय खुल गया।

'बहन, मैं क्या बताऊँ ! लडकियो को भगवान् ने कुछ कहने योग्य ज़बान ही नही दी।"

'ठीक है, तारो !"

'माँ-बाप के पास मेरे लिए कोई जगह नही है, क्योकि किसी भी लडकी के लिए मा-बाप के पास जगह होती ही नही, और मेरे पति के पास भी मेरे लिए जगह नही है क्योकि उन के दिल और घर म एक और औरत बसी हुई है।"

है ! तारा क्या तेरे आदमी का पहले ब्याह हो चुका था ? तो फिर तेरे माँ-बाप न तुझ वहाँ क्या दे दिया ?

'उन्हे पहले खबर नही थी और न ही उस का पहले ब्याह हुआ था। उस ने तो बस एक औरत का घर म रखा हुआ है।"

'पर उस के माँ-बाप को तो खबर होगी ?"

"जानते सभी थे। वह औरत उन की जात की नही है नीच जात की है। उस के माँ-बाप कहते थे कि बहू घर मे अपनी ही जात की आनी चाहिए।"

"पर उन्होंने यह न सोचा कि परायी बेटी का क्या हाल हागा ?"

"दूसरे के दुख की कौन परवा करता है, बहन ! फिर ये लोग कहते है कि रोटी देते है, कपडा देते है, खुला हाथ है, फिर किस बात का दुख है ?'

"जैसे औरत को केवल रोटी और कपडा ही चाहिए ?" पूरो ने कहा।

'मेरे हृदय म आग सी धधक उठती है। तू नही देखती सब देखते है। पूरो, दो बरस हो गय हैं, रोटी और कपडे के लिए मै अपना शरीर बेचती हूँ देख, मैं वेश्या हूँ देख, मैं वेश्या हूँ कहते-कहते तारो गिर पडी, उस की मुट्ठियाँ भिच गयी उस की आँखें ऊपर चढ गयी, उस का शरीर लकडी के फट्टे

की भाँति अकड गया।

पूरो डर गयी। तारो के घर मे उस समय और कोई नही था। पूरो यह न जानती थी कि उसे क्या करना चाहिए। वह डर रही थी, घबरा रही थी। वह तारो की टाँगें दबाने लगी, उस के कन्धे दवाने लगी, उस के तलवे सहलाने लगी।

तारो को होश आ गया।

"तू मुझे हाथ मत लगा, मैं वश्या हूँ तू देखती नही तू देखती नही " तारो ऐसी ही बातें कर रही थी।

पूरो सोच रही थी कि अभी इसे होश नही आया है कि इतने म तारो की माँ आ गयी।

"हाय रे, मैं क्या करूँ, एक तो हमे हमारी किस्मत ने मार डाला, अब इस की बातें मार डालेंगी।" तारो की माँ निढाल सी होकर बैठ गयी। पूरो चुप रही।

"इस ने और इस के भाई ने तो हमारी जान हलकान कर रखी है। लाहौर कालिज मे पढने क्या गया है, बहन को भी पढा-पढाकर बिगाड दिया है। देख कैसी ऊलजलूल बातें करती है।" तारो की मा ने फिर दु खपूवक कहा।

"अम्मा, जुल्म भी तो बेचारी पर बहुत ही हुआ है।" पूरो न कहा।

"बेटा ! हम ने लडकी दे दी, हमारा मुह बन्द हो गया। हम अब क्या बोल सकते हैं ! वह अच्छी तरह रखे या दुख दे, मद की जात है।" तारो की मा ने कहा।

"मेरे मुह पर ताला डाल दिया गया, मेरे पैरो म बेडी डाल दी गयी, उस का क्या बिगडा ! भगवान ने उसे बन्धन म न डाला। उस बाधने के लिए भगवान् जनमा ही नही। सारी रस्सिया भगवान् ने मेरे परो मे ही डाल दी।' तारो की मुट्ठिया भिच गयी, उस की टागें फिर अकड गयी। उस की मा ने उस के मुह पर पानी के छीटे मारे, चुल्लू भर-भरकर उस के मुह मे पानी डाला।

पूरो ठक सी हो गयी थी। आज उस ने पहली बार अनुभव किया था कि लडकियाँ इस तरह भी सोच सकती है, लडकिया इस तरह भी बोल सकती हैं। वैसे तो पूरो के मन मे भी गुबार उठा करते थे पर उन्हे व्यक्त करना उसे न आता था।

यह धोखा है, निरा धोखा है। मेरा ब्याह नही हुआ, तुम सब झूठ बोलत हो। तुम ने मुझे क्यो पकड रखा है ? परे हटो ' और बेसुध तारो अपने परा को धरती पर पटकने लगी।

"तारो, होश मे आ। कैसी बाते मुह से निकालती है ! कोई सुनगा तो क्या कहेगा ! वह तेरा पति है, जरा मुह मे लगाम द ऐसे न बोल।' तारो की मा

ऐसे कह रही थी मानो बेसुध पड़ी तारा को झिड़क रही हो, यद्यपि उस की आँखें भर आयी थीं।

तारो की चेतना कभी लौट आती थी, कभी वह फिर अचेत हो जाती थी।

'वहाँ जाकर ऐसा पागलपन मत बखेरना। अपनी जीभ का ध्यान रखना। वह समझे या न समझे, ईश्वर तो गवाह है कि वह तुझे ब्याह कर ले गया है।" तारो की माँ कह रही थी।

'माँ, ईश्वर ने अगर मेरे ब्याह की गवाही दी है तो झूठी गवाही दी है। माँ, मेरा ब्याह नहीं ...' तारो पागलों की भाँति छत की लम्बी लम्बी कड़ियों की ओर देखने लगी। पूरो तारा के चेहरे की ओर देख रही थी, तारा जो कि सब कुछ कहने के बाद भी विवाह के इस महान् असत्य से मुक्त न हो सकती थी, वरन उस की आयु के दिवस बड़ी द्रुत गति से जीवन में सत्य असत्य को पीछे छोड़ते आगे बढ़ते जा रहे थे।

गोधूलि की वेला थी। पूरो हृदय पर बोझ लिये हुए उठ खड़ी हुई। पूरो का मन मानो इस भरे पूरे संसार से एकाएक उचाट हो गया।

पिछले कुछ दिनों से पूरो अपने घर की दीवारों से परच गयी थी। रशीद की छोटी छोटी ठिठोलियों ने, घर के छोटे बड़े कामकाज ने, और सब से अधिक जावेद की तोतली बोली ने मानो पूरो के उचाट मन को पतले-पतले धागों से लपेट लिया था। उस का मन कुछ टिक गया था। आज तारो की बावली बातों ने जैसे पूरो के मन पर लिपटे कई धागों को तोड़ दिया। उस का मन विकल हो गया। रात को रोटी टुकड़ा करते समय उसे नमक मसाले का अन्दाज़ भी भूल गया, दाल गुलभत्ता हो गयी रोटियाँ कच्ची पक्की रह गयीं।

आगे के दिनों में भी उस की उदासीनता में कुछ अन्तर न पड़ा। फिर न जाने उस ने क्या-क्या संकल्प धारण कर लिये। वह दिन में एक बार भोजन करने लगी। पहर रात रहते जाग उठती, ध्यान करती और घण्टों अपनी आँखें और कान बन्द किये रहती मानो उस ने संसार से अपना चित्त हटा लिया हो।

पूरो की नींद कम हो गयी। उस का खाना कम हो गया। धीरे धीरे उस ने अपने लिए सूखे छानस में नमक डालकर केवल एक रोटी पकानी आरम्भ कर दी। उस रोटी में न वह घी चुपड़ती, न ही उसे दूध या दही के साथ खाती। उसी एक रोटी के सहारे वह पूरा दिन काट लेती। कुछ ही दिनों में पूरो की आँखों के नीचे नीले-नीले हलके पड़ गये, उस का सारा शरीर कान्तिहीन हो गया।

इधर कुछ दिनों से रशीद भी बातचीत में पूरो का मन बहलाने में अधिक व्यस्त हो गया था। रोजों और नियम-व्रत आदि को लेकर वह हँसी ठठोली करता, पूरो के मन को पलटने की चेष्टा करता और प्यार भी पहले से अधिक करने लगा था। किन्तु रशीद के सारे जतन विफल रहे। पूरो के मन और मस्तिष्क

पर रशीद के प्रयत्नो का कोई प्रभाव न पडा। पूरो के आचार-व्यवहार मे कोई अन्तर न आया।

प्रतिदिन के इस बरताव के बाद मानो अब रशीद का हृदय बुझने लगा था। दिन दिन उतरता हुआ पूरो का मुह रशीद से देखा न जाता था। उस के घर म मानो वीरानी ने अपने पैर जमा लिये थे। रशीद के चेहरे पर भी एक वेदनापूर्ण मौन दीख पडने लगा था। दोनो प्राणी घर की, समाज की, शरीर की दीवारो मे घिरे हुए थे, पर दोना के बीच जैसे अब एक भीत खडी हो गयी थी।

पूरो के यहा एक भस थी। वह नियम से दूध जमाती, दही रिडकती। रशीद के खेतो मे काम करने वाले जब पशुओ के लिए चारा लेकर आते, तो पूरो उन को और उन के बच्चो को गिलास भर-भर कर लस्सी देती, ऊपर से मक्खन के पेडे भी डाल देती थी। पूरो के मुह मे कुछ न पडता। रशीद का मन भी खाने-पीने से हट सा गया था। घर के चूल्हे मे आग जलती अवश्य थी, पर घर की *बोलचाल पर और जीवन की हरियाली पर जसे कोहरा जम गया था।*

जावेद के भोले मुख पर भी जसे अपन माता पिता के उदास मुख की परछाइ पड गयी थी। जावेद के लिए भी कोई विशेष लाड न था, यद्यपि पूरो उस के सारे काम नियम से करती थी और रशीद उसे दिल से प्यार करता था।

एक रात सोते-सोते रशीद को ज्वर हो गया। उसका शरीर जलने लगा। सवेरे जब पूरो ने रसीद के माथे पर हाथ रखकर देखा तो रशीद को बहुत तेज बुखार चढा हुआ था।

गाव के हकीम की दवा-दारू हुई। रशीद को ज्वर आये तीन दिन हो गये थे, जब हकीम ने शका प्रकट की कि रशीद को शायद मियादी बुखार हो गया है।

रशीद की बीमारी ने पूरो के नेम धरम और वैराग्य को अपनी ओर खीच लिया। पूरो दवा दारू देती, रशीद के शरीर को दबाती, चौके चूल्हे को देखती थी। जावेद का मुह उतरा हुआ दीख पडने लगा। दुपहरी चढ जाती, जावेद के मुह पर फिटकार बरसने लगती, किन्तु पूरो को उस की सुधि लेने का अवकाश न मिलता था। और कई रातें बीत गयी। कई दिन बीत गये पर रशीद का बुखार न हटा।

"पूरो! मेरा गुनाह बख्श दे। मेरा कुसूर माफ कर। पूरो पूरो" रशीद ने बुखार की तेजी मे कहा। रात्रि का तीसरा पहर था। पूरो घबरा उठी। इतने दिना की लगातार चिता और रातो के जागरण ने उसे पहले ही थका डाला था। वह उठकर घबरायी हुई-सी रशीद की खाट के पास बैठ गयी। रशीद के माथे पर हाथ फेरती रही, रशीद के पैर दबाती रही, पर रशीद का अपना होश न था।

'अच्छा, पूरा, मैं चलता हूँ पूरा, मेरी रूह" और रशीद टूटे फूटे शब्द बोलता रहा। पूरो का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा।

बस कर रशीद, मेरे घावों पर नमक मत छिड़क।" पूरो ने आर्त स्वर में कहा। पर रशीद को बिलकुल होश न था, वह उसी प्रकार अस्पष्ट शब्द बोलता रहा। कोई-कोई बात पूरो की समझ में आ जाती, और कई बातें रशीद के कण्ठ से उठकर उस के होठों पर ही शेष हो जातीं।

प्रलय-सी काली अन्धकारमय रात थी। पूरो घर में अकेली थी, पर उसे ऐसा लग रहा था मानो वह इस विशाल संसार में अकेली हो। रशीद के सिवा उस के घावों पर फाहा रखने वाला और कौन था!

पूरो ने रशीद के माथे पर घड़े के ठण्डे पानी में भिगो भिगोकर पट्टियाँ रखीं। उस का माथा चूल्हे की ईंट की भाँति गरम था। वह पटिटयाँ भिगोती रही। कटोरे का पानी मिनटों में ही एक काढ़ा सा बन गया। पूरो ने पानी बदला। उस की आँखों से आंसू ढुलक-ढुलककर रशीद के माथे पर गिरते रहे।

सवेरे पौ फटते तक, न जाने पानी की ठण्डक के कारण या आँसुओं के गीलेपन से, रशीद का ज्वर उतर गया। उस का शरीर घुल गया था। उस की बेहोशी आराम की नींद में बदल गयी।

जब रशीद की आँख खुली उसे अपना शरीर हलका सा प्रतीत हुआ। आज उस के माथे में पीड़ा की चीसें नहीं थीं। रशीद ने आराम की एक लम्बी साँस लेकर करवट बदली। पूरो रशीद के सिरहाने की ओर जमीन पर बैठी बैठी चारपाई का सहारा लिये सो गयी थी। उस के एक हाथ में अभी तक कपड़े की पट्टी थी और पाँव के पास पानी का कटोरा पड़ा हुआ था।

पूरो को देखकर रशीद का जी भर आया। उस ने उस के चेहरे की ओर देखा। उस का उतरा हुआ मुख नींद में डूबा हुआ था।

अपनी बीमारी और पूरो की टहल रशीद के मन में एक उथल-पुथल-सी मचा रही थी। पूरो के मुख से और कपड़े की पटिटयों से रशीद ने भली भाँति जान लिया कि बीती रात कितनी कठिन रही होगी। रशीद ने अपना कमजोर सा दाहिना हाथ उठाकर पूरो के सिर पर धर दिया। पूरो के बिखरे हुए बालों में रशीद की उंगलियाँ घूमती रहीं। उस की उँगलियाँ पूरो के कानों को, उस के माथे को धीरे धीरे छूती रहीं। पूरो का सारा शरीर निद्रा की गोद में मग्न था। रशीद की आँखों के कोनों से ढुलक-ढुलककर आंसू बिस्तर पर पड़ते रहे। रशीद एक विचित्र से आनन्द का अनुभव करता हुआ जागता रहा।

रशीद ने पूरो के शरीर पर तो पूरा अधिकार कर ही लिया था, पर उस की यह वासना थी कि वह पूरो की आत्मा पर भी पूर्ण अधिकार प्राप्त कर ले। पूरो का उदास रहना उसे खाये जाता था। इस समय पूरो तोड़ी हुई सरसों की

हण्डी की भाँति रशीद की चारपाई से लगी सो रही थी।

रशीद मे शक्ति नही थी, पर उस के हृदय मे यह भाव आ रहा था कि वह पूरो को अपने कलेजे से लगा ले। पिछले कुछ दिनो की घोर उदासी के कारण रशीद का हृदय अत्यन्त पीडित था। इस समय रशीद को पूरो के मुख पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि पूरो के तन मन म रशीद के सिवा और कुछ नही था। रशीद ने अपनी बाह और आगे बढाकर पूरो के गले स लगा दी। शायद बाँह कुछ जोर से लिपटी, पूरो जाग गयी। वह काँप उठी। पर रशीद ठीक था, उस का ज्वर उतर चुका था, वह बडी निढाल आँखो से पूरो को देख रहा था।

रशीद को खाट पर पडे पूरे दस दिन हो गये थे। उस का ज्वर उतर गया था। वह बहुत ही दुबल हो गया था, पर उस का मन बहुत उल्लसित था। पूरो ने अपना सम्पूर्ण प्रेम रशीद की ओर मोड लिया था। रशीद के पास बैठ बैठकर पूरो ने दिन रात एक कर दिये थे। पूरो जावेद को बना सँवारकर रशीद के पास बैठा देती थी। उस ने जावेद को कितने ही छोटे छोटे शब्द बोलने सिखा दिये थे। जावेद रशीद के पास-पास घुटनो चलता, उस की नकल करता था, माँ के सिखाये हुए शब्दो को तोड-मोडकर बोलता था। रशीद का मन उत्फुल्ल था, शरीर फूल की भाँति हलका था। वह मन ही मन अपनी बीमारी को दुआएँ देता था। उस के आँगन म खुशी दुगुनी तिगुनी होकर लौट आयी थी।

पूरो का मन करने लगा कि वह सचमुच भूल जाये कि रशीद ने उस के साथ बुरा किया था। वह रशीद को बहुत प्यार करने लगे। रशीद उस का पति था, रशीद उस के पुत्र का पिता था। बस यही एक सत्य था और सब कुछ झूठ



एक और पिंजर

अगले कुछ दिनों मे रशीद ने एक दो फेरे अपने गाँव छत्तोआनी के लगा लिये थे। उस के भाई के साथ जो साझे म उस की जमीन थी, उस का अनाज-दाना लेकर

रशीद न बेच लिया था। पर पूरो जिस दिन स सका"आले आयी थी, उस दिन से उस न गाव के बाहर पांव नही धरा था। कभी रशीद कुछ कहता तो पूरा हँसकर कह देती 'मैं न अपनी मरजी से इस गाँव म आयी थी, न अपनी मरजी से इस गाव स जाऊँगी।'

जावद अब दौडता फिरता था। रशीद वैसे ही शुरू से स्वभाव का नरम था, पूरो को वसे ही वह बहुत प्यार करता था, पर जावद पर उस का अपार स्नेह था। जावेद को चूमते, प्यार करते वह अघाता नही था। जावेद अब कुछ कुछ तुतलाकर बोलने लगा था। अब्बा-अब्बा कहता रशीद की टाँगो से चिपट जाता था।

पूरो चूल्हे को चिकनी मिट्टी से पोतती तो जावेद दौडा-दौडा आकर गीली मिट्टी का थपकने लगता, पूरो के बने हुए चूल्ह का बिगाड जाता। पूरो लस्सी म नमक मिलाकर पीने लगती तो जावद हल्दी और मिरचें उस क लस्सी के कटोरे मे डाल देता। जावेद किवाडो के पीछे छिप जाता, रशीद उसे ढूंढता रहता। जावेद की इन छोटी छोटी क्रीडाओ से, उस की हँसी से रशीद मक्ई के दाने की भाति खिलता रहता।

एक दिन एक स्त्री 'घुग्गू घोड लेकर गलियो म बेचती फिर रही थी। जावेद ने मिटटी के छोटे छोटे खिलौनो का और सरकण्डे के झुनझुनो को देख लिया। लगा पूरो का पल्ला खीचने। पूरो ने मुटठी भर अनाज और पुराने कपडे देकर घुग्गू घाडे ले लिये। वह अभी गली म ही बैठी थी कि दूर से दौडती हुई एक पागल औरत गुज़री।

स्त्रियो ने दौडकर अपन बच्चे छिपा लिये, दरवाज़े बन्द कर लिये, छोट अनजान बालक चीखने चिल्लाने लगे। पगली के शरीर पर पिण्डलियो जितनी ऊँची एक सलवार थी गले मे कोई कपडा न था। उसका रग शायद धूप से झुलस गया था, या फिर था ही काला। उस के सिर पर बालो की उलझी हुई धूल सनी लटें थी। जान पडता था मानो जब से वह जनमी थी, कभी नहायी नही थी। अपनी टागो को वह अजीब तरह मरोडती थी, बाँहो को वह अजीब तरह फलाती थी, चलते हुए भी दौडती हुई लगती थी। उस के मुख की ओर देखते ही उस की डरावनी हँसी म बिखर हुए दाँतो की ओर दृष्टि जाती थी। उस के सूखे हुए, जले हुए शरीर से उस की आयु का कोई अनुमान नही लगाया जा सकता था। बस एक पिंजर था जो दौडता फिरता था।

पूरो देखती खडी रही। पगली दौडती हुई आयी और खिलौने बेचनेवाली कुजडिन के छाज मे से अपनी दोनो मुटिठयाँ घुग्गू घोडो से भरकर भाग गयी। उस की डरावनी चीखती हुई सी हँसी की आवाज़ देर तक गली मे गूजती रही।

पगली सारा-सारा दिन घूमती रहती, खेतों में फिरती रहती, क्यारियों में से भी कुछ तोड़कर खा लेती। कभी-कभी स्त्रियाँ एक-दो रोटियाँ बैठी हुई पगली के आगे डाल देतीं, वह उन्हें चबा जाती। कभी कभी स्त्रियाँ कोई फटा-पुराना कुरता उसे पहना देतीं, पगली खिलखिलाकर हँसती। कुरता पहने रहती फिर उस के बटन तोड़ डालती, फिर किसी दिन कुरते को दाँतों से फाड़ देती। फटी धज्जियाँ उस के गले में लटकी रहतीं। फिर पगली उन धज्जियों को भी खींच-खींचकर अपने शरीर से दूर कर देती। कभी-कभी अपने शरीर पर से सब कुछ उतार फेंकती। स्त्रियाँ फिर कोई फटी-पुरानी सलवार, कोई फटा-पुराना कुरता उसे पहना देतीं।

पगली अब गाँव सक्कड़वाली में जैसे रच-बस गयी थी। उसे प्रति दिन देखने की सब को आदत-सी पड़ गयी थी। कभी कभी गाँव के छोटे-छोटे लड़के उस के पीछे लग जाते, तालियाँ बजाते, पगली को दौड़ाते और खुद उस के पीछे पीछे दौड़ते। फिर रास्ता चलता कोई सयाना आदमी उन्हें झिड़क देता। लड़के उस का पीछा छोड़ देते।

नन्हें बालकों ने हठ करना छोड़ दिया। माताएँ उन्हें पगली का डरावा देती थीं, 'पगली पकड़कर ले जायेगी।' रोते हुए बच्चे सहमकर चुप हो जाते थे।

पगली किसी पुआल के नीचे पड़ रहती। कभी कोई पानी का प्याला उस के पास धर जाता, कभी कोई रोटी के टुकड़े उस के सिरहाने रख देता। किसी दयालु ने एक फटी हुई रज़ाई एक पुआल के नीचे धर दी थी। पगली रात को नियम से वहाँ जाकर पड़ रहती थी।

पगली बस दौड़ती थी और हँसती थी। किसी के बच्चे को कभी कुछ भला-बुरा नहीं कहती थी, किसी की चीज़-वस्तु को कभी हाथ नहीं लगाती थी। ज़मीन पर गिरे हुए रोटी के टुकड़ों को उठा लेती, ज़मीन पर पड़ी हुई वही किसी खाने की चीज़ को चाट लेती थी।

कुछ ही दिनों में सब ने देखा, और पूरों ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि पगली का नंगा पेट उभरता आ रहा है। सारे गाँव की स्त्रियाँ जैसे लाज के मारे गड़ रही हों। पगली न कुछ बोलती न कुछ बताती थी।

पगली का शरीर दिन-दिन भरता जा रहा था।

गाँव की स्त्रियों का जी करता था कि वह पगली के शरीर को ढककर रखें। वह उसे किसी तहखाने में डाल दें। पगली की समझ में कुछ न आता था। वह पहले की ही भाँति हँसती रहती थी, वह वैसे ही दौड़ती रहती थी।

एक दिन कुछ आदमियों ने मिलकर पगली को गाँव के बाहर ले जाकर छोड़ दिया। अँधेरा गहरा हो गया था। उस रात किसी ने पगली को नहीं देखा। सब सोचने लगे कि पगली अब इस गाँव से गयी। आँख से दूर, दिल से दूर, अब वह

किसी दूसरे गाव चली जायेगी।

दूसरा दिन अभी आधा भी न बीता था कि पगली ठीक पहले की भांति गाव की गलियाँ मे दौड रही थी। वह ठीक पहले की ही भांति खेतो मे हँस रही थी।

"वह कसा पुरुष था! वह अवश्य ही कोई पशु होगा जिस ने इस जसी पागल स्त्री की यह दुदशा बना दी!" सब स्त्रियाँ त्राहि त्राहि करती थी। उन का जी पगली के ध्यान से मिचला उठता था।

'जिस के पास न सुदरता थी, न जवानी थी, मात्र का एक शरीर, जिसे अपनी सुध न थी, जो केवल हड्डियो का एक जीवित पिंजर। एक पागल पिंजर था चीला ने उसे भी नोच-नोचकर खा लिया' सोच-सोचकर पूरो थक जाती थी।

पगली का पेट दिन दिन बढता जा रहा था।



पिंजर मे पिंजर

वही रात के पिछले पहर का अँधेरा था, जिस मे पूरो नियमपूवक खेतो मे जाया करती थी। पूरो अभी बाहर वाली पगडण्डी पर आयी ही थी कि एक पेड के तने के पास उसे एक मनुष्य की आकृति-सी गिरी दीख पडी। पूरो काप उठी पर वह ऐसे कच्चे जिगरे की औरत नही थी। धीरे से वह गिरे हुए शरीर की ओर बढी। पूरो के लिए उसे पहचानना कठिन नही था। पगली एक पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चल उस पेड के नीचे पडी हुई थी। उस के परो के पास एक नवजात बच्चे का शरीर था जिस की नाल अभी उसी की आंचल के साथ जुडी हुई थी।

पूरो एक लम्बा साम खीचकर रह गयी। उस की आँखो के आगे अँधेरा छा गया। फिर जसे उसे कुछ सुध न रही।

पूरो की रीढ़ की हड्डी में एकाएक कम्पन दौड़ गया। वह उलटे पांव दौड़-कर रशीद को बुला लायी।

पूरो ने एक फटी हुई चद्दर का टुकड़ा पगली के शरीर पर डाल दिया। फिर रशीद न पगली की नाड़ी टोही। नाड़ी भी टोहने की आवश्यकता नही थी, पगली के मुख पर मौन की मुहर स्पष्ट लगी दिख पड़ती थी। बालो की एक लट उस क माथे पर जम गयी थी।

प्रकृति अपनी पूरी धड़कन के साथ पगली के बालक म धड़क रही थी। बालक के मुह मे उस का अपना दाहिना अगूठा पड़ा हुआ था।

"या अल्लाह !" रशीद के मुख से निकला और चाकू से उस ने बालक की नाल को काट दिया।

पूरो ने बालक को अपने सिरवाले पल्ले मे लपट लिया, और फिर दोनो जीव घर को लौट गये।

प्रात काल की धूप की भांति यह खबर सारे गांव मे फैल गयी। जो स्त्रियां आटा गूंध रही थी, उन के हाथो से परात छिटक गयी। जो रोटी बनाने जा रही थी वे उबलते तन्दूर छोड़-छोड़कर पूरो के घर आती और बालक को देख-देख जाती थी।

रुई के गाले जसे चिट्टे और निमल बालक को पूरो ने नहलाकर एक खटोली मे लिटा रखा था। कुनकुने दूध म एक कपड़े का छोटा सा टुकड़ा भिगो भिगो-कर पूरो ने उस के होंठो से लगाया। बालक पूरी चेतनता से दूध की बूंदें चूसने लगा। जावेद अपने घर आये छोटे से पाहुने को झुक झुककर देखता था।

"रब तेरा भला करे?" तेरे बच्चे जिएँ !" बड़ा पुण्य किया है!"—गांव की स्त्रियां आ-आकर कहती, अनाथ बालक पर दया करने के लिए शाबाशी देती और लौट जाती।

दो-चार आदमियो ने मिलकर पगली के शव को ठिकाने लगा दिया।

अँधेरा हो चला था। पूरो बच्चे के काम-काज म लगी हुई थी। रशीद न लालटेन की बत्ती साफ करके उसे जलाया। बालक न अपनी मोटी माटी चेतन आँखो से लालटेन की ओर देखा। अभी उस की कच्ची दृष्टि टिकती नही थी। फिर उस का ध्यान किसी दूसरी ओर हो गया।

पूरो विचारो म डूब गयी।

सोचने लगी, कसा था वह मद जिस न पगली म बाल-कनूट कमाल का हाथ लगाया। क्या ऐसा पगली की मरजी से हुआ, या उस क साथ जोर-जबर-दस्ती की गयी। उस मद का कभी भूल स भी ध्यान न आया कि उस न पगली पर कितना भारी अत्याचार किया है। उस मद का कभी अपन बालक का भी ध्यान न आया जिस उस न पगली के पास [illegible] के रूप म रखा था।

शायद पगली यह जानती ही न होगी कि उस के घर एक बालक का जन्म होगा। प्रसव की पीडा उस ने कैसे सही होगी ! उस पर किसी दाई को दया न आयी। रात के अँधेरे में वह चीखती रही होगी ! खुली हवा के झोंके उस के शरीर में शूल मारते रहे होंगे ! ठण्डी भूमि पर पडी वह बिलखती रही होगी ! परन्तु प्रकृति के कठोर नियम में बँधा उस का बालक दर्द पूरा होने पर अपने आप दुनिया में आया होगा भूमि पर गिर पडा होगा, और पीडा से निचुडी हुई पगली की जीवन-डोर टूट गयी होगी !

फिर पूरो सोचने लगी—पगली को जीकर भी क्या लेना था ! वह अपने बालक को क्या देख रेख कर सकती थी ! अच्छा हुआ उस की जान छूट गयी। उस का बालक कितना सुन्दर है। टेढी मेढी हड्डियों के झुलसे हुए पिंजर में कैसे इतना सुन्दर बालक पल गया ! कैसी मोटी मोटी आँखें हैं इस की ! सारे नक्शे सुन्दर हैं। पूरे मर्द का एक छोटा सा रूप ! न जाने इस का पिता अभागा-कौन है !

सोचते सोचते पूरो ऊँघ गयी। पूरो ने देखा, एक दौडती घोडी पर डाल कर रशीद उसे भगाये ले जा रहा है। किसी बाग की एक छोटी-सी कोठरी में पूरे तीन दिन रखकर रशीद ने पूरो को घर से निकाल दिया है। पूरो पागल हो गयी है। वह गलियों में घूमने लगी है। उस के पेट में बच्चा सरसराने लगा है, और फिर फिर एक दिन एक पेड की छाया में उस ने एक बालक को जन्म दिया है, जिस की शक्ल सूरत बिलकुल जावेद की-सी है। उस का बालक उस की छाती से लग कर दूध के लिए रो रहा है, पर पूरो के दूध उतर नहीं रहा है

काँपकर पूरो जाग उठी। सामने खटोली में उस का नया बालक टिटिया-कर रो रहा था। उस ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया, फिर डरकर अपने जावेद के मुख की ओर देखा, वह अभी कुछ ही देर हुई पास वाली चारपाई पर सो गया था। फिर उस ने डरते-डरते बाहर चूल्हे के पास बैठे हुए रशीद की ओर देखा। रशीद अभी तक उसे छोडकर नहीं गया था और न ही उस ने पूरो को अपने घर से निकाला था। वह अपने घर सही सलामत थी। रशीद उस का दयालु पति था, जावेद उस का घुघराले बालों वाला सुन्दर पुत्र था। उस की गली वाली मम्मो भी चोरी छिपे उस से घुट घुटकर बातें किया करती थी, पूरो के प्यार में हिस्सा बँटाती थी। और पूरो का परिवार और बढ गया था। उस के घर में भगवान ने अपने आप एक पुत्र और भेज दिया था। उस ने झुक-कर नये बालक का माथा चूम लिया।

फिर उस ने उठकर हथेली भरकर सफेद जीरा खाया। जावेद ने पूरे दो बरस पूरो का दूध पिया था, और उस का दूध छुडाये उसे अभी बहुत दिन नहीं

हुए थे। उस ने यह सुना हुआ था कि सफेद जीरा खाने से औरत के दूध उतर आता है। पूरो ने छोटे बच्चे को अपने स्तन से लगा लिया।

तीन दिन के बाद सचमुच पूरो के दूध उतर आया। गाँव की स्त्रिया देख-देख कर अचरज करती थी। लडका पूरो का छोटा पुत्र बनकर पलने लगा।



दावेदार

जुड़े हुए उपलो म जैसे धीरे-धीरे आग सिकती है, उसी प्रकार गाव मे खुसुर-फुसुर चल रही थी 'पगली हिन्दू थी, उस के बच्चे को मुसलमानो ने ले लिया है, सारे गाव मे देखते देखते उन्होंने हिन्दू बच्चे को मुसलमान बना लिया है '

जसे बिल्ली अपने बच्चे को दुनिया की निगाहो से छिपाकर रखती है वैसे ही पूरो भी छोटे लडके को कलेजे से लगाये मकान की भीतरी कोठरी मे बैठी रहती थी। फिर भी बातें दीवारो को भेदकर उस के कानो मे पड जाती थी।

पहले तो एक दो हिन्दू घरो मे बैठकें होती रही।

"यह बात पक्की है कि पगली हिन्दू थी ?" कोई कहता।

"हम ने अपने कानो से सुना है वह लालमूसे के एक अच्छे घराने की लडकी थी, अच्छी भली थी। जब उस की सौतन ने उसे मुरदे की राख खिला दी, बस तभी से वह पागल हो गयी।' कोई कहता।

"सुना है उस के घरवालो ने उसे दरवाजो मे बन्द करके रखा, पर उस के भाग्य मे तो ख्वारी लिखी थी।" कोई कहता।

"अजी, यह तो कोरी बातें हैं। मैं ने खुद उस की बाह पर 'आम' खुदा हुआ देखा है।" कोई धरती पर हाथ मारकर कहता।

"अन्धेर है, यारो, हमारे देखते-देखते मुसलमान हमारी आँख मे धूल झोक

गये।"

"धिक्कार है हम पर, हिन्दू बालक को उन्हा ने मिनटों मे मुसलमान बना लिया "

' छोडो भी, यारो, न जाने वह लटका किस की वला है किस की नहो, हम उस पिल्ले को कहा बाघते फिरेंग।" कोई जना बीच मे यह भी कह देता।

"नालायक ! सवाल इस समय धरम का है। इस तरह तो कल वह सारा गाव मुसलमान बना लेंग और तू उन का मुह देखता रह जायगा।" एक-दो व्यक्ति एक साथ ऊँचे स्वर म बोल उठते।

कमरे की हवा एसी हो जाती मानो बन्द दरवाजो मे वह घुट गयी हो।

"लडके का हम वापस लायेंग, देखत है, कौन हमारा हाथ पकडता है।"

' असल म यही चार पसा की बात है ? महरी को चन्दा इकट्ठा करके दे देंगे, वह लडके का अपन आप पाल लेगी।' काई जाश के साथ अपनी जगह से जरा आगे सरककर कहता।

ऐसे गये बीते ता नही सारा गाँव मिलकर क्या एक लडके को न पाल सकेगा ?"

'कौन कह सकता है कि लडका भी पगली की तरह गूगा-बहरा निकलता है या बीच मे फिर कोई कह उठता।

फिर क्या हुआ, बडा हाकर धमशाला मे झाडू लगा दिया करेगा । दो रोटियाँ ही खायेगा न !"

फिर वह एक-दूसरे के साहस पर साधुवाद करते प्रसन्न होते।

' पहले महरी से ता पूछ ला।" काई कहता।

लो देखा। क्या वह न रखेंगी ? पहले चादी की जूती उस के सिर पर रखेंगे, फिर उस से बात करेंगे।"

'अरे भई, लडके का क्या है। धमशाला म तो ढोर डगर का ही इतना काम है मुफ्त म काम करने वाला मिल जायेगा।"

' अजी, अभी इस की बिसात ही क्या है, लडका पल तो जाये । पहले उस का "

अरे, तुम लोग मरे क्यो जात हो ! धरम के नाम पर इतना भी नही कर सकत ता अन्धे कुएँ मे कूद मरो।'

'तुम्हारे खेत का पानी कोइ अपन खेत मे लगा ले तो तुम उस का सिर फाड देते हो, आज तुम्हारा हिन्दुओ का लडका वह उठाकर ले गय हे तो तुम्हार मुह पर ताला पड गया है !'

कमरे की हवा एसी हा जाती, मानो उस मे पत्थर के कायल का धुआँ मिल गया हो।

अब जब रशीद अपने खेतो को जाता तो पास से गुजरते हुए हिन्दू उस की ओर कडवी आँखो से देखते। रशीद अपने ध्यान मे मग्न चला जाता।

एक-दो बार उस ने बातो बातो मे पूरो से कहा कि भई, गाँव की हवा अच्छी नही है, हमे इस झगडे मे पडकर क्या लेना है! बात लम्बी हो जायेगी। व लडका ले जायें अगर उन की यही मरजी है। जो लडके के भाग्य म होगा, हो जायगा।

पूरो कहती तो कुछ न थी, पर उस का मन व्याकुल हो उठता था। हड्डियो के एक छोटे से पिंजर को दिन-रात कलेजे से लगाकर उस ने छह महीने का किया था। अब वह भी जावेद की भाँति गोलमटोल निकलता आता था। उस की आँखें अब पूरो को पहचानने लगी थी, जिधर-जिधर पूरो जाती उधर उधर उस की आँखें घूमती थी। वह रशीद को देखकर बाहे फैलाने लगा था

फिर पूरो सोचती, पहले दिन ही हिन्दुओ को उस की सुधि क्यो न आयी? वह उसे ले जाते, पाल लेते, उसे माँ की सी गोद देते, उसे पिता का सा स्नेह देते। पूरे छह महीने पूरो ने रातें जागकर काटी थी, जीरा फाँक-फाँककर अपनी नसो मे से दूध उत्पन्न किया था, उस का मल धो धोकर अपने नाखून घिसा लिये थे।

फिर पूरो को ध्यान आता था कि उस ने लडके को शहद चटाया था और अपने पडोस के मुसलमानो के घरो मे पजीरी बाटी थी कि लडके को बडा होकर यह विचार न आये कि उस के जन्म पर किसी ने उस का कुछ न किया।

एक दिन गाव के प्रमुख हिन्दुओ ने रशीद को बुला भेजा। पूरो के होठो पर पपडी जम गयी। पूरो सोच मे पड गयी। बच्चे को पालने का बीडा तो उस ने उठाया था पर वे लोग रशीद को बुरा भला कहेंगे, रशीद का अपमान करेंगे

पूरो कह रही थी कि वह भी रशीद के साथ जायेगी। वही उन के सवालो की जवाबदार थी। वह स्वय जाकर उन से लडके की भीख माँग लेगी पर रशीद न माना, वह अकेले ही वहाँ चला गया जहा उन लोगो न उसे बुलाया था।

गाँव के एक सम्मानित हिन्दू के मकान के आँगन म तीन चारपाइयाँ पडी थी, जिन पर गाँव के कुछ प्रमुख हिन्दू बैठे हुए थे। उन का विचार था कि रशीद दो चार साथियो को लेकर आयेगा या शायद न भी आव, तब वे उस से दूसरे ही ढग से निबटेंगे। पर रशीद बिलकुल अकेला ही चला आया। सलाम दुआ करके उन के सामने बठ गया।

"क्यो भई, क्या सलाह है तेरी? लडका वापस देगा या नही?" हुक्के की

नली मुह से निकाल कर उन म से एक ने अपनी भारी भरकम आवाज म कहा।

'मेरी क्या मजाल है। अल्लाह की देन है, मैं कौन हूँ देन वाला, लेन वाला।" रशीद ने एक हाथ से अपने माथे को छूकर आकाश की ओर देखा।

'यह तो टालबाजी की बातें है। इन्हें छोड, सीधी तरह बात कर।" एक व्यक्ति ने क्रोधावेश म आकर कहा।

'मैं ने तो अल्लाह के रहम पर उसे उठा लिया था। दा घडी, दो घडी और वहा न पहुँचता तो क्या पता कोई कुत्ता बिल्ली ही उसे मुह मे धर लेता। अल्लाह के यहाँ से उस की जिन्दगी थी "

'ठीक ह अगर भगवान् के यहा से उसका धागा लम्बा है, तो उसे कोई तोड नही सकता। पर एक बात तुझे मालूम होना चाहिए कि उस की मा एक हिन्दू औरत था और तेरा एक हिन्दू बच्चे को उठाकर ले जाना हम सह नही सकते।

'नही मुझे नही मालूम कि वह हिन्दू थी कि कौन। वह हिन्दू घरो स भी खाना लेकर खाती थी, मुसलमान घरो से भी " रशीद कह रहा था।

'पर वह तो बावली थी, तू तो बावला नही।" बीच म बात काटकर कोई बोल उठा।

'ठीक है, पर आप पहले दिन ही उस लडके को ले लेते, पाल लेते, मैं न कब इनकार किया था। मुट्ठी भर वह पिंजर था। मेरी घर वाली ने जो जान एक करके छह महीने काटे ह। अब जब लडका बच गया है तब आप को भी उस की याद आती है। अल्लाह का खौफ खाइये। रब के नाम पर ही आप उसे पालेंगे, रब के नाम पर ही मैं उसे पाल रहा हूँ, नही तो मुझे इस से और क्या हासिल है " रशीद ने कुछ इस तरह कहा कि दो तीन व्यक्तियो के मुख पर यही भाव झलकने लगा कि भई, छोडो, जाने दो किस्से का। पालता है तो पाले, मुफ्त की बला गले मे क्यो डाल रखें।

'देख, हम बात का बढाना नही चाहते। वह न हमारा कोई लगता है, न तेरा कोई लगता है। यह तो धम का सवाल है, सो तुझे धरम की राह म नही आना चाहिए। नाहक तू अपनी जान को सकट मे डाल लेगा। किसी न तेरे साथ कुछ बुरा भला कर दिया तो हम जिम्मेदार नही होगे। सो अपने आप सीधे रास्ते पर आ जा और लडका वापस कर दे। और जो इतने दिन खिलान पिलाने के दो चार रुपये लेना चाहता हो, वह भी ले ले।' एक ने कहा।

"बेशक! बेशक!" सब बोल उठे।

'अल्लाह अल्लाह " रशीद न दोनो हाथ अपने कानो पर रख लिय।

महरी खडी हुई है, हमारे साथ दो-तीन आदमी और चलते है और तेरे घर

से लडके को ले आते हैं। उसे शुद्ध हम अपने आप कर लेंगे।"

"मैं एक बार आप सब मे विनती करता हूँ कि उस लडके पर रहम करें और वह जहाँ है उसे वही रहने दें। मेरी घरवाली उसे अपने पेट के जाये की तरह पाल रही है।" रशीद न दोनों हाथ जोडकर कहा।

"हम न तुम्हे सीधा रास्ता बता दिया है। जो तू खैर चाहता है तो भला आदमी बनकर उठ चल। नही तो हम भी जानते हैं कि सीधी उँगली घी नही निकला करता।"—दो-तीन आदमी चारपाइयों से उठकर खडे हो गये।

मकान के भीतर से महरी चादर ओढे हुए आ गयी। रशीद को खडा होना पडा। फिर सब रशीद के घर की ओर चल पडे।

पूरो अपने मकान के दरवाजे पर खडी गली की आहट ले रही थी। जैसे ही उस ने रशीद को सिर नीचा किये तीन चार आदमियों के साथ आते हुए देखा, उस का कलेजा धक से हो गया।

पूरो की आँखों के आगे वह दिन फिर गया जिस दिन उस की मा उस से अलग हो गयी थी, जिस दिन उस का पिता उस से बिछुड गया था, जिस दिन उस के भाई-बहन उस से छुट गये थे। यह लडका उस का आत्मीय बन चुका था, इस से बिछुडने मे भी उतनी ही पीडा थी।

पूरो ने दौडकर उस लडके को अपनी छाती से चिपटा लिया। रशीद अपने मकान के आगन मे आकर ऐसे खडा हो गया मानो उसे अपनी कोई सुध-बुध न हो।

न रशीद का कुछ कहने की आवश्यकता थी, न पूरो को कुछ पूछने की।

महरी भी एक पल को ठिठक गयी। पूरो की छाती से बालक को हटा लेना उसे बहुत कठिन लगा।

"जल्दी कर, देर हो रही है, फिर हम भी तो काम पर लगना है।" रशीद के साथ आये हुए आदमियों ने तीखे होकर कहा।

महरी ने दोनों हाथ बढाकर पूरो के हाथों मे से बालक को ले लिया। लडके की मुट्ठी मे पूरो का पल्ला आ गया। पूरो को लगा मानो वह लडका अपनी मुट्ठी म भरकर उस का दिल भी लिये जा रहा हो। पूरो का पल्ला साथ खिंचता गया।

महरी ने लडके की मुट्ठी खोलकर पल्ला छुडा दिया। लडका चिल्लाकर रोने लगा शायद अनजान हाथों के स्पर्श के कारण।

पूरो टूटी हुई टहनी की भाति दीवार का सहारा लेकर बैठ गयी। गली के मोड से बच्चे के रोने की आवाज आ रही थी।

अँधेरा पडने तक पूरो के स्तनों से दूध की धारें निकलने से उस की कमीज़ गीली हो गयी थी। पूरो कहती थी, लडका जरूर भूख से बिलख रहा होगा, तभी

ता उस की छातियों से दूध की धारें बह रही थी।

रात को पूरो के यहां न किसी ने कुछ पकाया न किसी ने कुछ खाया।

जब जावेद सहज स्वभाव से पूछता, "अब्बा! हमारे काके को कहां ले गये है?" या "अब्बा! हमारा काका कब आयेगा?" तब पूरो और रशीद निरुत्तर से जावेद की ओर देखकर रह जाते लज्जित से सिर झुकाकर चुप हो जाते।

पूरो की आंखों के आगे कम्मो का मुख फिर जाता, उस की आँखों के आगे रह रहकर लडके का मुख आता। पूरो सोचने लगी वह टूटे हुए फूलों को क्यों अपने गले से लगाकर रखती है? टूटी हुई कलियों पर पानी छिडक छिडककर उन्हें क्या हरा करती है? सभी पराये थे। उस का अपना कोई न बन सकता था। रशीद का मुख उसे अच्छा लगने लगा एक रशीद ने ही उस का साथ निबाहा था। यद्यपि सब से सम्बन्ध छुडवानेवाला भी वही था, फिर भी वह उस का अपना था, उस के जावेद का पिता था।

तीन दिन बीत गये। चौथे दिन सारे गाँव में एक ही चर्चा चल रही थी, "लडका नही बचेगा, लडका तो मरने को पडा है, लडके का बुरा हाल है, बस दो घटी का मेहमान है, जो दूध की घूट उस के अन्दर जाती है, वैसी की वैसी ही बाहर निकल जाती है।'

पूरो दीवारों से लग लगकर रोती थी। उस के स्तन दूध इकट्ठा हो जाने के कारण अकडने लगे थे और उधर वह बच्चा था कि दूध न मिलने के कारण उस का मुह सूख गया था। लडके के मुह और स्तन के दूध के बीच बडी दूरी पड गयी थी।

'लडके का दूध छुडा दिया है लम्बे की आह पड जायेगी।'

"अगर लडका मर गया तो गाव भर पर 'साडसती' आ जायेगी।"

"मैं तो अपने आदमी से कहती हूँ कि भले आदमी बनो और जहा से लडका लाये हो वही छोड आओ।"

हम तो आप बाल-बच्चेदार हैं किसी की आह अच्छी नही होती!"

'मेरा मरद ही आप मनमानी करता है मैं तो पहले ही मना कर रही थी कि परायी आग मे कूदकर तुम क्या लोगे!'

'कहते है कल रात महरी ने लडके को ठण्डा दूध पिला दिया। बस तब से ही लडका कुछ का कुछ हो गया।"

"भला भैंस का दूध इतने छोटे बालक को पच सकता है! लडके को उल-टियाँ आने लगी।"

"नही, जी नही, लडका हुडक उठा है। जब से हुआ, उसी का मुह देखता रहा, अब और किसी से परचे तो कैसे परचे!'

'बचारा बेजबान है!"

गाव की हिन्दू स्त्रियो के मुह पर यही बातें थी। पूरो आहट लेती थी, चौक चौंक पडती थी। उस का जी करता था कि वह दौडी दौडी धर्मशाला चली जाय, उन लोगो से विनती करे कि इस तरह किसी जीव को न मारो। लडके को मेरी झोली म डाल दो, वह ठीक हो जायगा।

पर पूरो को साहस न होता था उस के पैर न उठते थे। पूरो को आशा नहीं थी कि मजहब के पत्थर जमे कान उस की विनती सुन लेंगे।

उस के अगले दिन भी कोई बात न हुई।

फिर अचानक ही रशीद के मकान के आगन म दो-तीन आदमी आकर खडे हो गये।

"यह लो, इस की जान तुम्हारे हवाले करते हैं बच सके तो बचा लो।' और उन्होंने एक सफेद कपडे म लिपटे हुए पीले, प्राय निर्जीव बालक को रशीद के हाथो म थमा दिया।

एक बार तो रशीद के मन म आया कि वह कसकर एक थप्पड उन के मुह पर मारे, 'मेरी छह महीने की सेवा के लिए तुम मुझ चार ठीकरे देते थे अब उस के पैर कब्र मे लटकाकर मेरे हवाले करने आये हो। जाओ, जहा मरजी आये ले जाओ।'

पूरो का उल्लसित मुख देखकर रशीद सब कुछ पी गया।

एक सप्ताह के भीतर ही सारे गाँव ने देखा कि लडका पूरो के आँगन मे अच्छा भला खेल रहा था।



रत्तोवाल

रहीमे की बुढिया मा की आखें दिन दिन खराब होती जा रही थी। रहीमे की एक पत्नी सात महीने की अबोध बालिका को छोडकर मर गयी थी दूसरी पत्नी की अपनी सास से कम बनती थी। रहीमे की मा अपनी आखो का और भी रोती थी।

अभी तक वह चौके के दस काम करके चलती थी, रुई कात कातकर उस ने दरियों से ट्रंक भर लिये थे, महीन सूत कात कातकर उस ने दुतहियों और चौतहियों से घर भर दिया था। अभी तक वह अपने बुड्ढे हाथों से अनाज फटक लेती थी आटा पीस लेती थी कपास बेल लेती थी, सुबह के समय मथानी लेकर दही बिलोने बैठ जाती थी। फिर भी उस की बहू बुराइयां निकालती रहती थी। बुढिया सोचती थी कि जो वह आंखों से मोहताज हो गयी तो उसे कोई मिट्टी के ठीकरे में भी पानी न देगा।

रहीमे की मां को यही चिन्ता दिन रात सताती थी। एक दिन उस ने पूरो से बिनती करते हुए कहा कि जो वह कोई पन्द्रह दिन के लिए उस के साथ चली चले तो वह अपनी आंखों का इलाज कराकर देख ले, कौन जाने उस की सुनवाई हो जाय।

अम्मा! वह सयाना कहां रहता है?" पूरो ने पूछा।

सयाना नहीं है बेटा! एक बावली है, उसे पीरों का वरदान है। कहते हैं कि उस के पानी से रोज सवेरे नमाज पढकर आंखें धोने से कुछ ही दिनों में आंखें भली चंगी हो जाती हैं। सुना है कि कइयों की बन्द आंखें भी वहां जाकर खुल गयीं। बावली की मिट्टी भी आंखों को लगाते हैं।"

"अम्मा! वह बावली है कहां?"

"रत्तोवाल गांव में है। एक साईं वहां रहता है, आये गये मरीजों के लिए उस ने वहां बावली के पास तम्बू लगवाये हुए हैं।"

पूरो के कानों में मानो किसी ने सलाख भोंक दी। रत्तोवाल... रत्तोवाल... छत्तोआनी के खेतों में खडे होकर जिस रत्तोवाल को जाती हुई कच्ची सडक को पूरो चाव से देखा करती थी, जिस सडक पर से कोई पूरो को लेने के लिए घोडी पर चढकर आनेवाला था जिस सडक पर से गांव के चार कहार पूरो की डोली ले जानेवाले थे! ... रत्तोवाल... रत्तोवाल...

पूरो के पांवों से वह पथ मला न हुआ था पूरो की आंखों ने वह गांव देखा न था। पूरो को एक भूला हुआ नाम स्मरण हो आया... रामचन्द... रामचन्द...

पूरो के भीतर से एक धुआं सा उठा, उस के मन में उलाहने उठने लगे, 'एक बार उस का मुख तो देख लूं कैसा है, एक बार उस का गांव तो देख लूं कैसा है...'

"अच्छा, अम्मा! मैं तुम्हारे साथ चलूंगी।' पूरो के मुख से अनायास ही निकल गया। फिर लज्जित सी होकर पूरो उस के मुख की ओर देखने लगी। पूरो को लगा मानो रहीमे की मां ने उस के हृदय की बात जान ली हो।

"साईं, तेरे बच्चे जियें, तू दूधों नहाये पूतों फले।' रहीमे की मां के हृदय से आशीर्वाद निकलने लगे। कौन जाने उस के मन में यह कामना उत्पन्न हुई, क्या

ही अच्छा होता जो मेरी बहू भी ऐसे ही मीठा बोल सकती !

"अम्मा ! जावेद के अब्बा को तुम मना लेना, मैं नहीं कहूँगी।" पूरो ने लजाते हुए कहा।

'ले देख ! वह तो मेरा बेटा है, कभी इनकार कर सकता है ! मेरी ख़ातिर चार दिन दुख-सुख से काट लेगा।" रहीमे की माँ ने अपनापा दर्शाते हुए कहा।

पूरो भली भांति जानती थी कि रशीद उस की बात को कभी नहीं टालता, पर रशीद के सामने रत्तोवाल का नाम लेना ही बस कठिन था।

उस रात पूरो के मन में परस्पर विरोधी विचार उत्पन्न होते रहे, 'वह मेरा कौन लगता है ? मैं तो उस की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखूंगी। पराया मर्द, मुझे उस के गाँव से क्या लेना वह गाँव में रहता है तो रहा करे, अम्मा अपना इलाज करायेगी, फिर हम लौट आयेंगे। तेरा ही मन उस के लिए उमग रहा है, उस को तो बुरे सपने की भांति कभी तेरा ध्यान भी न आया होगा '

पूरो सोचती, उस गाँव में जाकर रात पड़ते ही उस के भीतर जैसे कोई सोयी हुई क़ब्र को खोदेगा ! उस के भीतर जैसे कोई गड़े मुरदों को उठायेगा ! इन क़फ़नों को उतारने से क्या लाभ ? वह रत्तोवाल नहीं जायेगी। वह रत्तोवाल के रास्ते में ही न गुज़रेगी।

पूरो हाँ या ना कुछ न कहती थी।

जावेद अपने पिता को न छोड़ता था। रशीद ने उसे साथ न भेजा। दोनों स्त्रियों को पहुँचाने के लिए रहीम के यहाँ का एक पुराना काम करनेवाला अशरफ़ साथ गया। पूरो छोटे लड़के को साथ ले गयी।

अशरफ़ अगले फट्टे पर इक्केवाले के साथ बैठ गया। सारा सामान पीछे रखकर पूरो और अम्मा आमने-सामने फट्टों पर बैठ गयीं। इक्के के पहले हिचकोलों से ही पूरो का लड़का उस की गोदी में सो गया। आगे बैठे हुए अशरफ़ ने पूरो के लड़के को उठा लिया। इक्का रत्तोवाल की सड़क पर चला जा रहा था।

घोड़े की टापों की आवाज़ जैसे पूरो के सिर पर हथौड़ा चला रही थी। पूरो ने अपना माथा इक्के की बाँह से लगा लिया। वह ऊँघ गयी थी।. सजी हुई डोली में चाँदी के झब्बेवाला एक गाव-तकिया सिर के नीचे रखे हुए पूरो लेटी हुई थी। चूड़े के बोझ से उस की बाँह कठिनाई से उठती थी। हवा के एक झोंके से डोली का परदा ज़रा सरक गया। उस मद्धिम से प्रकाश में उस ने देखा, पूरो के हाथों पर मेहँदी खूब खिली हुई थी। कितनी सारी मेहँदी थी, पूरो की सहेलियों ने कितनी सारी थोप दी थी ! यह कहार कितने बुरे हैं, न जाने कैसे चलते हैं ! डोली में बैठे-बैठे पूरो की कमर दुखने लगी थी डोली में हिचकोले भी कैसे आते हैं ! पूरो के गुँदे हुए सिर से उस का पल्ला सरक गया। पूरो ने हाथ

उठाकर पल्ला ठीक किया। हाथ मे पहन हुए आभूपणो की छन-छन सारी डाली म गूज उठी। पूरा का जी वठा जा रहा था। कल से उस से कुछ खाया नही गया था। पूरो की मा ने मठरियो की एक डलिया उस की झोली म डाल दी थी, पूरो का मन किया कि मठरी का एक टुकडा मुह म डाल ले, उस का जी ठिकाने नही आ रहा था

अम्मा पूरो का कधा पकडकर हिला रही थी, 'ठीक दुपहरी सिर पर आ गयी, एक दा कौर तो मुह मे डाल ले।'

इक्केवाले ने इक्का खडा किया हुआ था। रास्ते म एक छोटे से गाव के पास खाने पीने के लिए वे लोग रुके थे, पूरा कापकर जाग उठी। न कोई डाली थी, न आभूपण थे न मेहँदी थी, न चूडा था। पूरो इक्के के पिछले फट्टे पर अम्मा के सामने बैठी हुई थी

पूरा ने रास्ते के लिए घी का हाथ लगाकर पराठे बनाकर रख लिये थे। अम्मा ने वही गठरी खोली। अशरफ को चार पराठे दिये, इक्केवाले को दिये, खुद लिये, पूरा के आग धर दिये।

पूरो के गले से कौर नही उतरता था। पराठे के घी से पूरा को मिचलाहट-सी आती थी।

'थोडा ही रास्ता रह गया है, जल्दी से निबटा लें। रात को घाडी को साँस दिलाकर मुझे सवेरे ही लौटना है।" इक्केवाला कह रहा था। फिर सब सवारिया वैसे ही इक्के मे बैठ गयी। पूरा ने अपना माथा इक्के की बाहु से लगा लिया। पूरो ने रात भर जागकर आने का सब सामान-असबाब बाधा था, उसे रात भर का उनींदा था।

"डोली फिर हिचकोले खाने लगी। रत्तोवाल का रास्ता खत्म होने म न आता था। एकाएक तेज बाजो और शहनाइयो की आवाज बहुत ऊँची हो गयी। डोली मे इधर उधर बाजे बज रहे थे। पूरो ने समझा रत्तोवाल आ गया है। बाजे और जार से बजने लगे लडकिया गीत गा रही थी एक स्त्री ने उस का घूघट उठाया फिर किसी ने एक छोटा सा बालक उस की गोदी म डाल दिया। बालक अपरिचित गोदी मे आकर रोने लगा, स्त्रिया खिलखिलाकर हस रही थी, वह बालक का शगुन कर रही थी

अम्मा उस के कधे को हिला रही थी, 'आज तुझे बडी नीद आ रही है देख लडका रो रहा है।"

पूरा फिर कँपकँपी लेकर जागी। इक्के के पिछल फट्टे पर बैठी हुई अम्मा उस से बात कर रही थी।

'हमारे पास स इतनी भारी बरात गुजरी है मार बाजे ही बाजे बज रहे थे, आप की आँख नहीं खुली?" अशरफ कह रहा था।

"तुझ सोती को उस ने लडका पकडवाया, वह भी तू ने पकड लिया, फिर भी तेरी नींद नही टूटी " कहते-कहते अम्मा हँसने लगी।

इक्का रत्तोवाल के निकट पहुँच गया था। जब बावली के पास जाकर सब लोग इक्के से उतरे तो सामने ही साइं का घर दिखाई दिया। तम्बुओं की जगह अब साइं ने दो-तीन कच्ची कोठरियां बनवा दी थी जिन मे दूर पार के आये हुए मुसाफिर रहते थे। बावली की मिट्टी, बावली का पानी आखों को लगाते थे, मनोकामना पाते थे।

साइं ने इन नये मुसाफिरो को एक कोठरी दिलवा दी। अशरफ ने सब सामान गठरी पोटली कोठरी मे रखा और अम्मा को लेकर साइं के पास चला गया। पूरो ने कोठरी मे पडी हुई चारपाई पर खेस बिछाकर लडके को लिटा दिया। फिर वह दरवाजे पर खडी होकर सामने खेतो के पार गाव के घरो की ओर देखने लगी।

मैं रत्तोवाल आ गयी, मुझे किसी ने बुलाया नही, मुझे एक भी आदमी लेने न आया, किसी ने भी शहनाई न बजायी, किसी ने भी गाना न गाया, किसी ने भी मेरे हाथो मे चूडी न पहनायी, एक भी कौडी मेरे हाथो मे न छनकी, मेहँदी की एक पत्ती भी मेरे हाथो पर न लगी

गाव के बाहर इस बावली पर बडा सन्नाटा था। पूरो का जी उडा जाता था। उस का मन करता था कि वह दौडकर उस गाव मे चली जाये, यहा से भाग जाये। रह रहकर पूरो के मन मे विचार उठता, कसे लोग है इस गाँव के! कोई उस से नही कहता, 'बैठ जाओ', कोई उस से नही कहता, 'जीती रहो!' कोई उस से नही कहता

फिर पूरो कुछ सँभली। पूरो को लगा, वह कुछ पागल होती जा रही है। कही वह पागलो की भाति गाव की गलियों मे न दौडने लगे, कही वह अपने कपडे न फाड डाले, कही वह चिल्ला चिल्लाकर बोलने न लगे

साइं ने अम्मा को बताया कि उन्हे वहाँ पूरे तेरह दिन रहना पडेगा। उन का नौकर अगले दिन वापस अपने गाव सक्कडआली चला गया। आटा दाल वे अपने साथ ले आयी थीं। पूरो और अम्मा अपनी रोटी खुद पकाती थी। वैसे यदि कोई चाहे तो साईं की दरगाह से भी भोजन पा सकता था।

पूरो ने गाव की ओर मुख न किया। फिर गाव के बारे मे पूरो किस से पूछती और क्या पूछती? दिन पर दिन बीतते जा रहे थे। गाव मे वह जाती भी तो किस बहाने? यदि किसी चीज की आवश्यकता होती थी तो साइं के नौकर-चाकर वहीं ला देते थे। यह सोचकर पूरो का दिल व्याकुल हो उठता था कि वह गाँव की दहलीज तक आकर लौट जायेगी पर गाव न देख सकेगी। पूरो के मन मे आता था कि किसी न किसी तरह से वह जाकर सारा गाँव देख आवे उस का

घर भी देख आवे, उसे भी देख आवे, पर उसे कोई न जान सके फिर पूरो सोचती, पूरो को कसे मालूम होगा कि उस का घर कौन-सा है, वह किसी से पूछे भी तो कसे, फिर घर का भीतर से कसे देखेगी फिर पूरो सोचती, उस के घर को देखकर भी क्या लेना है, उस का उस घर से सम्बन्ध ही क्या है, क्यो उस के मन म ऐसी बातें उठती हैं

पूरो का जी ठिकाने न आता था। एक के बाद एक कर के दिन बीतत जात थे। बठे-बैठे पूरो को एक भूला हुआ गाना याद आ गया

जये आये तये टुर चल्ले
साडे आया दा कदर नयी
हाय रब्बा, साडे आयां दा सबर पवी।

कितनी ही बार पूरो की आखो मे आसू भर भर आते, वह उन्हें पी जाती।

लडके को अम्मा के पास लिटाकर वह खेता म घूम आती।

पूरो सोचती, एक बार देखू तो पहचान ता लू।

फिर पूरो सोचती, इतने बरस हा गये हैं कौन जाने कैसी सूरत हा गयी हा! अगर मेरे पास से भी गुजर जाये, ता मैं क्या पहचान सकूगी!

खेतो म किसानो से कभी-कभी पूरो पूछ लेती, "भाई! ये खेत किस क हैं थो गाजरें लेनी थी, हम तो मुसाफिर है।" किसान कभी किसी का नाम लेते कभी किसी का, रामचन्द का नाम कोई न लेता।

अगले दिन किसी ने सचमुच रामचन्द का नाम ले दिया। पूरो के पांव एसे हो गये मानो धरती मे गड गये हो!

पूरो का सिर चकराने लगा। उसे लगा, वह उसी मिट्टी पर गिर पडेगी, वह उसी मिट्टी पर मिट्टी हो जायेगी

पूरो उसी कीकर के नीचे खडी की खडी रह गयी। उस के पैरों मे से जस किसी ने शक्ति खीच ली हो। उस के पर जैस जमकर बफ के ढेले बन गये हो। उस मिट्टी ने जसे पूरो को कसकर अपनी लपेट मे ले लिया हो

पूरो को जान पडा, वह खडी की खडी अनार का पेड बनकर उग आयी थी, जिस के लाल अनारों को जब भी कोई तोडने लगता, वह अगारे बनकर धरती पर गिर पडते, उस के लाल अनारो को जब भी रामचन्द तोडता अनार के लाल दाने लहू की बूदें बनकर उस के कुरते पर गिर पडते और उसे अनार के पेड म से एक आवाज सुनाई देती

मैं बूटा उग्गी होई आं
मैं बे मुरादी मोयी हा।

किसान ने काटे हुए चनो का गटठर बनाकर सिर पर धर लिया। पूरो का ध्यान टूटा। उसे याद आया कि जो राजकुमारी अनार का पोधा बनकर उगी थी

उस की कहानी उस ने जब छोटी थी, सुनी थी। पूरो अभी तक न राजकुमारी बनी थी, न अनार का पौधा।

"मालिक आ रहा है" कहते हुए किसान चने का गट्ठर लेकर कुएँ की ओर चल दिया।

पूरो की आँखो से आसू बहन लगे। रामचन्द जब पूरो के पास से गुजरा, उस की आखें पूरो की ओर उठी। पूरो का मुह आसुओ से भीगा हुआ था।

पूरो को न कीकर की ओट होना याद रहा, न अपन पल्ले से आसू पोछ लेना। शायद आसुओ के बहने के कारण उसे रामचन्द का मुह भी दिखाई नही दे रहा था।

"तुम कौन हो, बीबी ? तुम्हें क्या हुआ है ?" रामचन्द के पैर रुक गये।

पूरो कुछ न बोल सकी।

"तुम्हें कोई तकलीफ है, बीबी ?" पूरो के कानो मे फिर रामचन्द की आवाज आयी। पूरो की जीभ जैसे किसी ने पीछे खीच ली थी, वह मूर्ति की भाति खडी रही। पूरो के मन मे बाढ-सी उठी पर उसके मुह से एक शब्द भी न निकला।

रामचन्द ठिठक गया। उस ने इधर-उधर देखा। शायद वह किसी किसान को सहायता के लिए बुलाता। उसी समय पूरो के परो मे शक्ति लौट आयी और वह चुप की चुप, गुम-सुम, खेतो से बाहर चली गयी।

पूरो चुपचाप आकर अपनी कोठरी मे पड रही। उसी शाम सक्कडवाली से अशरफ आ गया था। अगले दिन तडके ही उन सब को अपने गाव लौटना था।

उस रात पूरो की आख न लगी। 'एक शब्द भी मैं ने उस से न कहा पूछता था, तुम कौन हो, बीबी। मैं उसे क्या बताती मैं कौन हूँ ! मेरी व्यथा को बोलकर कौन बता सकता है ! कभी सोते, उठते, बठते उसे मरे रोते हुए मुख का ध्यान आयेगा तो वह सोचेगा कि वह कौन थी फिर कौन जाने उसे कोई बिसरी हुई कहानी याद आ जाये उस की मरी हुई पूरो उसे याद आ जाये फिर शायद उसकी आखो से दो एक आँसू गिर पडें !' फिर पूरो सोचती, 'यदि मैं भी उस राजकुमारी की भाँति अनार का पौधा बन सकती, उस के खेतो म उग आती, वह मेरे अनारो को तोडता फिर मैं अनारो से बोलती न जाने *यह सब किस युग की बातें हैं आजकल तो कोई मनुष्य पौधा नही बनता*

रात का पिछला पहर अभी भोर नही बना था कि जस किसी ने पूरो का हाथ पकडकर उस चारपाई से उठा दिया। पूरो बाहर खेतो को चली गयी। रात के अँधेरे म भी पूरो ने उस जगह को पहचान लिया, उस कीकर को पहचान लिया, जहाँ कल साँझ को रामचन्द उस के सामने खडा था। झुककर पूरो ने उसी स्थान पर से उस के चरणो की धूल उठा ली और अपनी आँख बन्द करके एक चुटकी अपनी आँखो से लगा ली।

ओस में भीगे हुए पूरो के दोनों हाथ किसी ने अपने हाथों में ले लिये। पूरो ने चौंककर देखा, रामचन्द उसके सामने खड़ा हुआ था।

"क्या तू पूरो है?" रामचन्द पूछ रहा था, "सारी रात यही एक नाम मेरे दिमाग में चक्कर लगाता रहा। मर-मर बता तेरा नाम पूरो है?"

पूरो का हृदय कहता था वह रामचन्द के पैरों पर गिर पड़े, वह जी भरभर रोये और कहे कि वह पूरो है, चीख चीखकर बताये कि वह पूरो है, वह उसी की पूरो है जिस संग उसे घोड़ी पर चढ़कर जाना था, जिस के साथ उसकी भाँवरें पड़नी थीं। यह वही पूरो है जिसे उस के घर डोली चढ़कर आना था... वही पूरो है पूरो।

पूरो की जीभ को आज भी किसी ने खींच लिया। पूरो एक भी शब्द न बोल सकी। रामचन्द के हाथों से उस ने अपने हाथ छुड़ा लिये। पूरो घर को चली, गुमसुम, वहाँ से लौट चली।

"जो तू पूरो है तो मुझे एक बार बता जा।" रामचन्द ने पूरो के पीछे कदम बढ़ाते हुए कहा, "मैं सारी रात इन खेतों में घूमता रहा हूँ। पता नहीं क्या मेरा दिल गवाही देता था तू फिर आयेगी, मेरा दिल गवाही देता है तू पूरो है।"

"पूरो तो कब की मर चुकी है।" न जाने कैसे पूरो के मुँह से निकल गया। उस ने पीछे मुड़कर भी न देखा, वह आगे बढ़ती गयी।

अम्मा ने बावली के साईं को मिठाई का चढ़ावा चढ़ाया। अम्मा और उस के बाकी साथियों से लदा हुआ इक्का धूप चढ़ने से पहले सक्कर्खाली की सड़क पर पड़ गया।



एक आग

एक एक करके कई दिन बीत गये, दिन दिन करके महीने, और महीना महीना करके कई बरस बीत गये।

दूध की भरी हुई काढनी को जब पूरो चूल्हे पर कढने के लिए रखते समय मुंमे कण्डे जोडती, और सारा दिन जलने के लिए कण्डो म धीमी धीमी आग सुलग जाती, तब पूरो को लगता कि उस की छाती की भीतर वाली तह म कोयले की एक चिनगारी पडी हुई है जिस म न जान कितने दिनो से उस के अन्तस्तल म कुछ आग-सी सुलग रही है।

कभी पूरो सोचती कि आजकल उस का खाया-पिया उस की छाती पर ही धरा रहता है। उसे अपने गले म कुछ अटा हुआ मालूम होता। दो तीन बार बासी पानी के साथ उस ने चुटकी भर भरकर अजवायन भी फाकी थी। कभी पूरो सोचती, मेरे अन्दर गरमी हो गयी है, उस ने तीन चार दिन कच्ची लस्सी के कटोरे भर भरकर पिये। कभी पूरो सोचती थी, कौन जाने माँ का जी कैसा हो। पता नही क्या उस के मन म ऐसे विचार उठते थे।

इन्ही दिनो एक दिन जब रशीद घर आया, उस का मुह इतना उतरा हुआ था मानो वह महीनो का रोगी हो।

रशीद ने घर म कुछ न कहा। पूरो से बातें करता रहा, जावद से मदरसे की बातें करता रहा, छोटे लडके के साथ हँसता खेलता रहा। खाना खाते समय पूरो रशीद के मुख को देखती रही। उसे लगा मानो कौर रशीद के गले से नीचे नही उतर रहा है। पानी के घूट के साथ रशीद ने कुछ कौर नीचे उतार लिये। रशीद के मन की दशा पूरो से छिपी न रह सकी।

पास पास पडी हुई चारपाइयो पर लेटने के बाद पूरो ने रशीद के जी का हाल पूछा।

"आज मेरे गाव म एक आदमी आया था, हमारे अपने खेतो पर काम करता है। रशीद ने एक पल चुप रहकर कहा।

"छत्तोआनी से ?"

'हां।

'फिर ?'

वह कह रहा था कि हमारी कटी हुई फसल के ढेर लगे हुए थे, मनो अनाज ढेरो का ढेर पडा था '

"फिर ?"

"किसी ने रातोरात आग लगा दी।"

"है।

"सारी फसल म से एक दाना भी नही बचा।"

' किसी ने जान-बूझकर लगायी ?"

"शक तो ऐसा ही है।'

"ऐसा कौन था ?"

"वह आदमी कह रहा था, आग की लपटों मे सारा आसमान लाल हो गया था।"

"फिर अब ! हमारा जो हिस्सा था सो तो था ही, वे बेचारे क्या करेंगे ?" उन बेचारो मे पूरो का अभिप्राय रशीद के भाई, उस के चाचा-ताउओ से था जिन का फसल मे साझा था।

रशीद चुप हो गया। पूरो भी जैसे सोच मे पड गयी। बच्चे तो सो गये थे, पर रशीद और पूरो की आखो मे नीद नही थी।

'पर दूसरे का घर फूककर किसी को क्या मिला ?' पूरो ने कई बार रह-रहकर अपने मन मे सोचा। रशीद चुप रहा। पूरो देखती रही, कभी रशीद दायी करवट लेता है, कभी बायी करवट लेता है, फिर सीधा लेट जाता है। कभी-कभी वह अपनी आखें मीचकर भी लेटा रहा, पर नीद उस के पास न फटकती थी। कई बार उठकर रशीद ने पानी भी पिया।

'लडके को अलग चारपाई पर लिटा दे, मुझे आज इस के पास नीद नही आती। रशीद ने कहा।

जावेद सदा अब्बा के पास सोता था और छोटे लडके को पूरो अपने पास सुलाती थी। पहले कभी रशीद ने यह बात न कही थी। पूरो को आश्चर्य तो हुआ पर उस ने चुपचाप जावेद को उठाकर अलग चारपाई पर लिटा दिया।

फिर भी कितना ही समय बीत गया। रशीद करवटें ही बदलता रहा, पर नीद उस की आँखो के पास न आयी।

"एक उडती उडती बात सुनी है, पता नही, सच है या झूठ !" रशीद ने लेटे लेटे कहा।

क्या ?" पूरो ने चौंककर पूछा।

रशीद फिर चुप हो गया, मानो वह अपने मन मे निर्णय कर रहा हो कि वह बात पूरो को बतानी चाहिए या नही।

रशीद बडी देर तक चुप रहा। पूरो अपनी चारपाई से उठकर रशीद की चारपाई पर जा बैठी।

'*सुना है कि गाँव मे एक अपरिचित जवान आया था। वह किसी से बहुत* मिला-जुला नही। गाव के लोगो का शायद शक है कि शायद वह वह तेरा भाई था।'

'मेरा भाई ?' पूरो मानो अनायास बोल उठी।

"कुछ कहा नही जा सकता। मुझे तो गाँव गये भी कितने दिन हो गये है। वह जो आदमी आया था, वह यह सब बातें कह रहा था।' कहकर रशीद फिर चुप हो गया।

पूरो के सिर मे जैसे चक्कर आने लगे।

'मेरा भाई ? मेरा भाई अब जवान हो गया होगा। मुझे उस की सूरत देखे दस-बारह बरस तो हो ही गये हैं। कौन जाने अब देखने में कैसा लगता हो। उसे अचानक देख लूँ तो शायद पहचानूँ भी नहीं। मसें भीगने लगी होंगी। तो दस बरस का तो यह आवेद ही होने आया।' पूरो के मन में अनेक विचार उठने लगे।

रशीद ने उसे केवल इतना और बताया कि पूरो के पुराने मकान के सम्बन्ध में उस ने किसी आदमी से पूछा था कि यह घर किस का है, पर अपने सम्बन्ध में अपने मुँह से उस ने किसी को कुछ नहीं बताया। लोगों को केवल शक ही है। किसी ने अपने कानों से कुछ नहीं सुना।

'क्या सचमुच वह गाँव आया होगा ? उसे मेरा ध्यान आया होगा, उस की बहन, उस की अपनी बहन, उस की सगी, माँ जायी बहन !' पूरो के मन में उथल-पुथल होने लगी, उस की आँखों में आँसू आ गये।

फिर उसे आग लगने का दुख भूल गया, जले हुए गेहूँ की राख में से माँ जाये भाई बहना का स्नेह उभरने लगा। प्रेम की एक उज्ज्वल चिनगारी उस के हृदय में चमकने लगी।

'कौन जाने उस ने आग लगायी हो' शायद अपने भरे हुए दिल का गुबार निकालने के लिए इस प्रकार बदला लिया हो ! उस की जवान काया में नया लहू चलता होगा। कौन जाने उसे बहन के दुख का ध्यान व्याकुल करता हो मैं एक बार उस का मुँह देख लेती ! कौन जाने मेरे भाग्य में क्या लिखा हुआ है ! ऐसे ही पूरो सोचती रही।

फिर उस के मन में चिन्ताएँ आने लगीं। एक घड़ी पहले पूरो का सम्बन्ध उन के साथ था जिन का मानो अन्न जलकर राख हो गया था और एक घड़ी बाद पूरो का अपनत्व उस के साथ हो गया था जिस ने शायद उस अन्न को जलाकर राख कर दिया था।

'आग लगानेवाला कहीं वह ही न हो ! कहीं आग किसी और ने लगायी हो और शक शुबह में वह पकड़ा जाये !' पूरो की चिन्ता बढ़ने लगी। कुछ भी हो वह अपने भाई की कुशल चाहती थी। वह सोचती थी कौन जाने उस के भाई के हृदय में दुख और प्रेम की कोई आग जल रही हो उसी जलती आग में से उस ने एक चिनगारी खेतों को लगा दी हो। शायद उस के भाई को यह भी पता न होगा कि रशीद छत्तोआनी में नहीं रहता।

पूरो निढाल होकर अपनी चारपाई पर लेट गयी। विचार उस के मन में डूबते-उतराते रहे।

जब पूरो की आँख लगी—उस के सामने आग ही आग लगी हुई थी, नीचे धरती पर घास के तिनकों से लेकर पीपल की-सी ऊँचाई तक सब कुछ जल रहा था। फिर पूरो ने सपने में देखा, एक सुन्दर नवयुवक आग की ऊँची उठती हुई

लपटा के पास बैठा अपने हाथ ताप रहा है।

पूरो चौककर जाग उठी। पूरा का जाड जोड दुख रहा था।

पूरो को लगा, इतने दिनो से उस की छाती म जा धुकधुकी-सी लगी हुई थी, जिस के लिए वह कभी अजवायन फाँकती थी, कभी कच्ची लस्सी पीती थी, आज उस म से लपटें निरल निकलकर उसके शरीर का जला रही थीं। पर पूरो की समझ म नहीं आता था कि इस आग से उस के शरीर को सेंक लग रहा था या कि उस क भाई क स्नेह की ज्याति उद्दीप्त हा रही थी।



1947

जिस तरह खरबूजा फाक फाक हा जाता है, उसी प्रकार शहरा मे, गावो म मनुष्या से मनुष्य फटते जाते थे।

जसे हवा के साथ उड उडकर धल आती है, वसे ही आसपास के कसबो से खबरें आती थीं। आदमी पर आदमी मारे जा रहे हैं, घर के घर जल रहे हैं। पडोसी को पडोसी मार रहा है। राह चलते को राह चलता तलवार के घाट उतार जाता है। लोगो की जान सुरक्षित नही थी, उन का माल सुरक्षित नही था।

पूरो सब कुछ आखो से दखती थी काना से सुनती थी। उस के अपन गाव म और आसपास के गावो म लोग लोहा इकट्ठा कर रहे थे, लोहे पर शान धर रहे थे, अपने घरा की छता पर ईंटें इकट्ठी कर रहे थे, भाले और बरछिया सँभाल सँभालकर अपनी कोठरिया मे रख रहे थे।

'यहा हमारा अपना राज हागा, यहा हमारी हुकूमत होगी," हरेक यही कहता था। 'यहा हम हिन्दू का बीज भी रहने नही देंगे," लोग चौराहा पर खडे हो होकर कहत थे।

'कभी ऐसा होत भी सुना है!' पूरा बार बार सोचती। 'भला इतनी सृष्टि जायगी कहाँ? पूरो रह रहकर सोचती।

'लोगो को झूठमूठ एक जनून आता है," पूरो कहती, "चार दिनो की आधी है, आयेगी और चली जायेगी।"

पर लाग थे कि मानो पागल हो गय थे, बस बुरी बुरी बातें ही करत थ। कही से भी भलो खबर न आती थी। फिर पूरो ने सुना, शहरा म गलिया लहू से भर गयी हैं, बाजार के बाजार मुरदो से पट गय हैं सडती हुई लाशो स बदबू उठन लगी है, उन्ह कोई जलाता-फूकता नही, कोई उन्ह दबाता गाडता नही। लोग कह रह थे, इतने मुरदो की सडाध से सारे देश मे बीमारी फल जायेगी।

फिर उस वष की पन्द्रह अगस्त बीत गयी। गाँव म ढाल बजे चाँद और तारो वाले हरे रग के झण्डे लगे। प्रतिदिन मसजिद मे लोग इकट्ठे होत थे। गाव के हिन्दुओ के मुख पर मानो किसी ने हलदी फेर दी थी।

फिर पूरो ने सुना, कुछ शहरा मे सीमाएँ बना दी गयी थी। इन के एक ओर मुसममान रह गये थे, दूसरी ओर सारे हिन्दू चले गये थे। फिर पूरो न सुना, उधर दूसरी ओर से मुसलमान मरते-कटते चले आ रहे थे, बहुत से वही मर गय थ, बहुत से रास्ते म खत्म हो गय थे, बहुत से इधर पहुँचकर मर रहे थे।

पूरो के कान सुन सुनकर जसे फट चले हो।—पूरो ने सुना, मुसलमान हिन्दुओ की लडकिया को और हिन्दू मुसलमानो की लडकियो को उठाकर ल गये है। कइयो ने उन्ह अपने घरो म डाल लिया है, कइयो न उन्ह जान से मार डाला है, और कइया को वह नगा कर के गलियो और बाजारो मे घुमा रह ह।

गुजरात जिले के उन गाँवा म, जो पूरो के गाँव के आस पास लगे हुए थे, सब से पीछे उपद्रव हुए। पूरो के अपने गाव वाले, उस की अपनी बिरादरीवाले पूरो के अपने रशीद को छोडकर, रशीद के सारे सम्बन्धी कुटुम्बी भी, वहशी बन फिरते थे। पूरा का साहस न होता था, और न रशीद के बस की बात थी कि किसी को कुछ समझायें बुझायें।

उन के आस पास के गाँवों के हिन्दू भागने लग। उन की गाये अपने खूटो से बँधी रह गयी, उन की भैंसें भा भा डकराने लगी—उन के भरे भराये घर पीछे छूट गये, उन क मेत मालिको के मुह ताकते रहे। वे राता रात भागत, वे गाँवो की सीमा पर मार जाते, वह बीसिया कोस चलते रहने के बाद मरे हुए मिलते।

पूरा के गाँव के सारे हिन्दू अपनी एक बडी हवेली म चले गये थे। यदि कोई खिडकी या दरवाजा खालकर बाहर आ जाता तो तुरत मत्यु उस अपन झपटे म ले लेती थी। कहते थ कि हवेली मे उन्होने अनाज इकटठा किया हुआ

था। कोई हिन्दू बाहर दिखता नहीं था। कोई हिन्दू स्त्री बाहर झाँकती नहीं थी।

पूरो के गाँव में केवल मुसलमान रह गये थे। गाँव में हिन्दू पशुओं की भाँति हवेली में फँसे हुए थे। एक दिन उस में गाँववालों ने मिलकर हवेली पर हमला किया। उन्होंने निश्चय किया था कि वह हवेलीवालों का नाम मिटा देंगे। उन्होंने बंद घरों के ताले तोड़ डाले, अलग-अलग घरों के मालिक बन बैठे। यदि कभी रात बिरात कोई हवेली से नीचे उतरता अगले दिन पूरा गाँव में उस की लाश पड़ी रहती थी।

एक दिन उन्होंने न जाने किस तरह हवेली के दरवाजों और खिड़कियों पर तेल डाला और तेल से भीगे हुए दरवाजों और खिड़कियों में आग भी लगा दी थी जब हिन्दू मिलिटरी के ट्रक उन के गाँव में पहुँच गये।

हवेली के भीतर से आग की लपटें जितनी ऊँची चोटी भी निकल रही थी जब कि मिलिटरी ने आग बुझायी और भीतर से आदमी निकाले। डर घबराये हुए लोगों को उन्होंने लारियों में बठा दिया। आध जले हुए तीन आदमी भी निकाले गये जिन के शरीर से चरबी बह रही थी, जिन का मांस जलकर हड्डियों से अलग-अलग लटक गया था। कुहनियों और घुटनों पर से जिन का पिंजर बाहर को निकल आया था। लोगों के लारियों में बैठते बैठते उन तीनों ने जान तोड़ दी। उन तीनों की लाशों को वहीं भूमि पर फेंककर लारियाँ चल दीं। उन के घरवाले चीखते चिल्लाते रह गये, पर मिलिटरी के पास उन्हें जलाने फूकने का समय नहीं था।

पूरो का गाँव खाली हो गया था। पराई कौम का कोई आदमी भी बाकी नहीं रह गया था। केवल तीन लाशें हवेली के बाहर पड़ी हुई थी, जिन के पिंजर पर बचे हुए मांस को दिन में ही गाँव के कुत्तों और कौवों ने नोच लिया था।

पूरो की आँखों में जैसे किसी ने सीसे के कण डाल दिये हों! एक दिन पूरो ने दस-बारह मनचले नवयुवकों को एक नगी जवान लड़की को अपने आगे करके, दोनों हाथों से ढोल-ढमके बजाते अपने गाँव के पास से गुजरते देखा। न जाने वे किस गाँव से आये थे और किस गाँव को चले गये।

पूरो को लगता मानो इस संसार में जीना दूभर हो गया हो, मानो इस युग में लड़की का जन्म लेना ही पाप हो।

उसी दिन संध्या के समय पूरो को गन्ने के खेत में छिपी हुई एक लड़की दीख पड़ी जिसे रात के घोर अन्धकार में वह अपने घर ले आयी।

उस लड़की ने पूरो को बताया कि पास के गाँव में एक कम्प खुला हुआ था जहाँ गाँव के हिन्दू इकट्ठे हो गये थे और प्रतीक्षा कर रहे थे कि मिलिटरी उन्हें

ही नहीं रहेगा । इस के बाद फिर कभी भी वह उस का कुशल न सुन सकेगी । उस के बाद फिर कभी भी उस के गाँव की हवा भी इस ओर न आयेगी ।

काफिले वाले अपने बचे खुचे गहने और रुपये देकर रास्ते के गाँवों के लोगों से अनाज मोल लेते थे । गाँव के कुछ स्त्री पुरुष आकर उन से मोल कर लेते थे और पहरे वाले सिपाहियों की देख रेख में अनाज, मक्का, बाजरा मोल के भाव बेच देते थे । इसी बहाने जाकर पूरो ने काफिले पर एक नज़र मारी ।

पूरो ने काफिले में बैठे हुए रामचन्द को देखा । रामचन्द ने रत्तोवाल के खेतों में खड़ी हुई आँसुओं से भीगे मुँहवाली पूरो को पहचाना ।

रत्तोवाल के खेतों में पूरो का मुँह उस के रूठते हुए साहस ने बन्द कर दिया था, आज उस का मुँह पास खड़े हुए पहरे के सिपाहियों ने बन्द किया हुआ था । पूरो कुछ कह न सकी ।

'तुम्हें अनाज-दाना कुछ चाहिए ?' उस ने रामचन्द की ओर मुँह करके कहा ।

"हाँ ।" रामचन्द की आँखें पूरो के मुख पर से न हटती थीं, शायद अब भी वह उसे पहचानने की चेष्टा कर रहा था ।

'अच्छा, रुपये तैयार रखना, मैं रात को पहुँचा जाऊँगी ।" पास खड़े हुए सिपाही की ओर देखकर पूरो ने फिर रामचन्द की ओर देखा और फिर लौट आयी ।

पूरो ने रशीद से कहा कि उसे घर में छिपी हुई लड़की को काफिले में पहुँचाना है और वह आटे और मिट्टी के पुरवे में रखे हुए घी को कपड़े में बाँध-कर और लड़की को साथ लेकर रात के अँधेरे में सोये हुए काफिले की ओर चल दी ।

दिन दिन भर चलने से लोग थके हुए पड़े थे । हर समय का भय चाहे चमगादड़ों की तरह उन के सिर पर मँडरा रहा था, पर फिर भी घोड़े बेचकर सोये हुए थे ।

'मैं रात को पहुँचा जाऊँगी ।' रामचन्द के कानों में पूरो की आवाज़ शाम से गूँज रही थी । रामचन्द रात की निस्तब्धता में किसी के पैरों की आहट ले रहा था ।

सिपाही घूमकर पहरा दे रहे थे । पूरो पंजों पर चलकर काफिले में जा पहुँची ।

सिर से गठरी उतारकर उस ने रामचन्द के आगे रख दी, और लड़की से बैठ जाने को कहा ।

'तू पूरो ही है न ?" आज भी रामचन्द ने वही रत्तोवाल के खेतों वाला

प्रश्न किया।

"अब भी पूछना बाकी है ?" पूरो ने उलाहने से कहा। अपने जीवन मे रामचन्द को उस का यह पहला और अन्तिम उलाहना था। रामचन्द ने सिर झुका लिया।

"मेरे माता पिता की कोई खबर ?" पूरो ने एक गहरा श्वास लेकर पूछा।

"वे तो जब के ब्याह करके गये हैं, लौटे ही नही, पर " रामचन्द कहते-कहते रुक गया।

"ब्याह ? किसका ब्याह ?" पूरो ने पूछा।

"तेरे खो जाने के बाद उन्होंने एक रात चुपचाप तेरी छोटी बहन के फेरे मुझ से कर दिये और तेरे भाई के साथ मेरी बहन के फेरे हो गये। तब से वे गाव नहीं लौटे हैं। आजकल सियाम ही हैं। पर " रामचन्द कहता-कहता रुक गया।

"मेरी बहन फिर तो वह काफिले मे होगी ?" पूरो के लिए रामचन्द के साथ उस की बहन के ब्याह की बात बिलकुल नयी थी।

"नही, पिछले दिनो तेरा भाई आया था, वह अपनी औरत को मायके छोड गया था और बहन को अपने साथ ले गया था। जो वह यहाँ होती तो वह भी. ।" रामचन्द की आखो मे आंसू छलछला आये।

"वह भी क्या हुआ किसे " पूरो की समझ म न आया था।

"पता नहीं लगा, किस समय मेरी बहन को उठाकर ले गये। जब हम घर से निकले वह साथ थी। मैं बुढिया माँ को पीठ पर उठाये काफिले म आया हूँ तब तक वह मेरे पीछे-पीछे चली आ रही थी। पर अब काफिले मे नही है " रामचन्द ने गले से जोर से निकलन की चेष्टा करते हुए स्वर को रोक-रोककर कहा। उस को रुलाई आ रही थी, पर उस ने अपनी पगडी को अपने मुह म डाल लिया। "मेरी मा ने पीट पीटकर अपने शरीर को नीला कर लिया है !" रामचन्द ने कहा।

पूरो की अँतडिया मे एक ऐंठन सी पडने लगी।

"कोशिश करना, कुछ पता लग जावे। न जाने जीती है या मर गयी।" रामचन्द ने फिर से कहा।

अँतडियो मे उठती हुई पीडा के कारण पूरो कुछ बोल न सकी।

'उस का नाम शायद लाजो है ?' पूरो को याद आया। अपनी सगाई के समय उस ने अपने भाई की मँगेतर का नाम सुना था।

"हाँ, उस की बाह पर भी उसका नाम गुदा हुआ है।" रामचन्द ने बताया। सिपाही घूम घूमकर पहरा दे रहे थे। सोये हुए लोगो के बीच मे बैठे हुए रामचन्द और पूरो धीरे-धीरे बातें कर रहे थे।

"इस बेचारी को मैं तुम्हें सौंपने आयी हूँ। इसे काफिले में ले जाओ। हिन्दुस्तान जाकर पता कर लेना, जो इसके माँ-बाप मिल गये तो" पूरो ने लड़की की बाँह रामचन्द के हाथ में पकड़ा दी।

'मेरा भाई यहाँ आया था, चाहती थी उसे एक बार देख लेती' पूरो ने अपनी कामना प्रकट करते हुए कहा।

"पिछले दिनों जब तुम्हारे छत्तीआनी वाले खेतों में आग लगी थी, याद है" रामचन्द कह रहा था।

"आग? हाँ, आग लगी थी। क्या यह सच है कि मेरे भाई ने ही आग लगायी थी?" पूरो को उस दिन ध्यान आ गया जब रशीद ने एक अफवाह सुनायी थी।

"हाँ, उसी ने आग लगायी थी। तेरा तो उसे पता मालूम नहीं था कि तू कहाँ रहती है। गुस्से में आकर उस ने रशीद के धान जला डाले।"

पूरो को रोमांच हो आया। उस का भाई अब जवान हो गया था, उस के हृदय में बदले की ज्वाला धधक रही थी, उस के दिल में बहन की याद थी। साथ ही उसे उस दुर्घटना की याद आयी, उस के भाई की स्त्री गुम हो गयी थी, किसी ने उसे जबरदस्ती उठा लिया था, न जाने वह किस हाल में थी, वह उस के रामचन्द की बहन"

"मुझे यहाँ सक्कडवाली के पते से चिट्ठी लिखना, अपना पता भी लिखना, जो लाजो का कुछ पता लगा तो मैं लिख भेजूंगी" पूरो ने कहा।

रात का अँधेरा हलका होता जा रहा था। सिपाही काफिलेवालों को जगा रहे थे। काफिले को आगे बढ़ना था। पूरो उठ खड़ी हुई।

पूरो ने रामचन्द को हाथ जोड़े। वह कुछ बोल न सकी।

पूरो ने काफिले से बाहर पाँव धरा ही था कि एक सिपाही ने उस पर लाठी तान ली, "तू कौन है? कहाँ चली है?"

"मैं अनाज बेचने आयी थी।"

'कितने का बेचा है? पैसे दिखा।" सिपाही ने चिल्लाकर कहा।

पूरो ने चादर में हाथ डालकर अपनी चाँदी की बाँक उतार ली और सिपाही को दिखाकर तेज कदमों से गाँव को लौट गयी।

सिपाही ने शायद यह न सोचा कि हिन्दू चाँदी के आभूषण प्रायः कम ही पहनते हैं, इस औरत को अनाज के बदले चाँदी की बाँक कहाँ से मिल गयी!



पूरो की भाभी

रात को चारपाई पर पडे-पडे पूरो छत के काले शहतीरो को देखती रहती। पूरो का मन उन लोगो की बन्द कोठरियो के चक्कर लगाता रहता जिन के भीतर लोगो ने औरो की लडकियो, बहनो और स्त्रियो को जबरदस्ती डाल रखा था। उन्ही मे एक लाजो होगी। लाजो, रामचन्द की बहन, उस की अपनी भाभी। लाजो का अनदेखा मुख पूरो की आखो के आगे आ जाता था, टूटे हुए पत्ते जैसा मुह, झडे हुए पख जैसा चेहरा।

पूरो सोचती थी, लाजो ब्याही हुई है, शायद उसे कोई बाल-बच्चा भी हो। उस के दिल पर न जाने क्या-क्या बीता होगा, उस के शरीर पर क्या गुजरी होगी। न जाने वह इस समय कहा है। मैं उसे कैसे खोजू? मैं उसे कैसे पहचान सकती हू? उस दिन ईख मे छिपी हुई वह लडकी लाजो ही निकल आती, मैं उसे काफिले मे मिला आती मैं उसे रामचन्द के हवाले कर आती

पूरो ने सब बात रशीद को बतायी और उस के पाव पर गिर पडी।

"जैसे भी हो मुझ पर दया करो। मैं ने सारी उमर तुम से कुछ नही मागा। मुझे लाजो का पता ला दो, जैसे भी हो" पूरो की आंखो के आंसू नही रुकते थे। रशीद ने पूरो से प्रतिज्ञा की कि वह अपनी ओर से कोई कसर न रहने देगा।

रशीद बहुत सोचने के बाद इसी निश्चय पर पहुँचा कि हो न हो लाजो है रत्तोवाल मे ही। वह घर से अपने भाई के साथ निकली, पर काफिले मे मिली नही। काफिले मे इकट्ठे होनेवाले लोगो की आपाधापी मे ही वह किसी के हाथ पड गयी होगी।

रशीद ने रत्तोवाल के दो चक्कर लगाये, पर वह लोगो के मकानो म कसे झांक सकता था। उस ने गाँव की कितनी ही दुकानो से सौदा-सुलुफ खरीदा, पर उसे लाजो का कोई सुराग न लगा। इतना उस ने अवश्य सुन लिया था कि गाँव के कुछ लडको ने जाते हुए काफिले मे से दो चार लडकियो को उठा लिया था।

रशीद को पूरा विश्वास था कि लाजो भी उन्ही म है।

उस गाँववाले रशीद से परिचित नही थे, न ही उस गाँव म रशीद का कोई सम्बन्धी रहता था। वह किस के पास चार दिन रहता, किस से वह गाँव मे हाल चाल लेता।

पूरो ने रशीद के साथ एक चाल निकाली। बावलीवाले साइ को वह जानते थे। वे दोनो बच्चो का लेकर साइ की एक कोठरी म जा टिके। वैसे भी दिन-रात की चिन्ता के कारण पूरो की आँखें घुटी-सी रहने लगी थी। पूरो रोज सवेरे नमाज पढकर बावली के जल से अपनी आँखें धोती, साइ को मिठाई चढाती और दिन मे कोरे खेसो की गठरी बाँधकर गाँव म बेचने चली जाती।

उस समय गाँव के मद खेतो पर होते, गाँव की स्त्रियाँ घरो मे अपने गृहस्थी के काम-काज म लगी होती। पूरो हर घर म जाकर पूछती। पूरो खेसो के दाम इतने अधिक बताती थी कि उस का सौदा कठिनाई से पटता था। वैसे भी गाँवों म लागो क पास अपनी ही बनायी हुई दरियाँ और खेस बहुतेरे होते हैं, फिर उन्हें लूट-मार से भी बहुत कुछ मिल गया था। पूरो से खरीदने की किसी को आवश्यकता न थी, पर पूरो ढीठो की भांति उन के आँगना म जा बैठती, भीतर-बाहर झाँकती, स्त्रियो का बातो मे लगा लेती, गाँव की लूट मार की बातें छेड देती, उन से हँस हँसकर पूछती कि किस के हिस्से क्या-क्या आया था। फिर हिन्दुओ के छोडे हुए मकानो की बात छेड देती। पूरो रामचन्द का घर पहचानती न थी, पर गाँववालो से बातचीत करके उस ने रामचन्द के मकान का पता लगा लिया था। रशीद और पूरो को शक था कि हो न हो जिस ने लाजो को उठाया है उस ने शायद लाजो के मकान को भी सँभाल लिया है। पूरो ने उस मकान का भी एकाध फेरा लगाया, पर हर बार एक बुढिया उसे बाहर की ड्योढी से ही लौटा देती थी, कह देती थी कि हमे कुछ नही लेना है।

जसे कोई किसी के घर मे जबरदस्ती घुसता है वैसे ही एक दिन पूरो भी उस मकान के आँगन मे चली गयी।

"अम्मा, तुम लेना कुछ नही, पर देख तो लो। मैं तुम से देखने के दाम ता नही माँगती।" और पूरो ने खेसो की गठरी धरती पर धरकर खेस इधर उधर बखेर दिये। आँगन मे उस बुढिया के अतिरिक्त और कोई नहीं था।

"अल्ला खैर करे! मुझे एक घूट पानी पिला दो, सवेर से प्यासी हू।" पूरो न साहस करके बुढिया से कहा।

"अरे पानी छोड तू लस्सी पी ले, पर जो तू चादरें और खेस बेचना चाहती है तो किसी शहर जा। वहाँ न लोग सूत कातते हैं, न कपडा बुनते हैं। गावो मे किस के पास खेसो का घाटा है!" बुढिया ने पूरो का सलाह दी, और भीतर कोठरी की ओर मुख कर के उस ने आवाज दी, "ओ नेकबख्त एक कटोरा लस्सी

तो भर के ले आ।"

पूरो का जी धडकने लगा। भीतर से आनेवाली लडकी का चेहरा सचमुच टूटे हुए पत्ते की भाँति था, चडे हुए पख की तरह था। पूरो का माथा ठनका, हो न हो यही लाजो है।

जब तक पूरो को लाजो के किसी जगह होने का शक नही पडा था, तब तक उस के मन मे एक लगन थी कि कही लाजो दीख जाये। अब उसे शक पड गया था कि लाजो उसी घर मे है, पर अब उस की समझ मे न आता था कि अपनी शका का समाधान कैसे करे।

"यह तुम्हारी लडकी ठीक तो है?" पूरो ने बुढिया से बडी सहानुभूति से कहा, और लडकी के हाथ से लस्सी का कटोरा ले लिया।

"ठीक ही है ऐसे ही कुछ " बुढिया ने बात आयी-गयी कर दी।

"थोडा नमक देना, लस्सी मे मिला लू।" पूरो ने लस्सी का एक घूट भरकर कटोरा हाथ मे लिये रखा।

लडकी ने चुपचाप नमक लाकर पूरो के आगे कर दिया। उस के हाथ से नमक लेते समय पूरो ने उस की एक उँगली को दबाया। नवयुवती ने जरा चौंककर पूरो की ओर देखा, पर न तो उस के होठो पर हँसी की रेखा आयी न उस के मुँह से कोई शब्द ही निकला। लडकी ईख के छिलके की भाति पेरी हुई दीख पडती थी।

पूरो को और भी विश्वास हो गया कि यह लडकी लाजो हो या न हो, पर कोई जबरदस्ती भगायी हुई लडकी अवश्य है। घर के सम्बन्ध मे पूरो का पता लग गया था कि यह रामचन्द का घर था। और पूरो को यह भी पक्का विश्वास होता जाता था कि हो न हो यही लडकी लाजो है।

लस्सी पीकर कटोरा धरती पर रखते हुए पूरो ने उस युवती की बाह पकड ली।

"इधर आ, मैं तेरी नाडी देखू। रग ता तेरा हल्दी जैसा हो रहा है।" कहते-कहते पूरो ने एक हाथ से उस की बाँह पर से कुरता जरा पीछे को हटा दिया। नवयुवती की बाह पर हिन्दी मे उस का नाम गुदा हुआ था, 'लाजो'। फिर भी वह कुछ न बोली-चाली। उस के होठो पर पूस माघ के कोहरे की भाँति चुप्पी जमी हुई थी।

"कोई गण्डा बाध दे न। लडकी घर से परच जाये। लडके से भी कुछ नही बोलती-चालती।" बुढिया ने उदास मुख से कहा।

पूरो को स्वय को सँभालना कठिन हो रहा था, फिर भी उस ने जल्दी से उत्तर दिया, "मेरे पास जसा जन्तर है, उस से यह कुछ ही दिनों म मक्ई के दाने की भाँति खिल उठेगी।"

"तू जो मांगेगी तुझे दूंगी, मुझे वह उत्तर ला दे।" बुढ़िया ने पूरो की चादर पकड़ ली।

"यह कौन बड़ी बात है, मैं कल ही ले आऊँगी। अल्ला ने चाहा तो "
कहते कहते पूरो ने खेसो की गठरी बांध ली। नवयुवती गूंग-बहरे बुत की भांति उस की ओर देख रही थी।

खेसों की गठरी के भार से आज पूरो की कमर टूटती जा रही थी। बड़ी कठिनाई से पूरो अपनी बावलीवाली कोठरी में पहुँची।

अब आगे, तू जाने तेरा काम जाने।' पूरो ने रशीद को सारी बात बताकर कहा।

"कोई ऐसा ब्योंत बने " रशीद सोचने लगा।

'जैसे मुझे घोड़ी पर उठा लाया था, वैसे ही अब भी हिम्मत कर " पूरो ने रशीद के एक चुटकी ली और हँस पड़ी।

फिर पूरो और रशीद ने कई युक्तियां सोची, पर कोई भी उन्हें जँचती नहीं थी। रशीद कहता था कि यहां से उसे भगाकर ले जाना तो कठिन नहीं है, पर उसे आगे कैसे पहुँचायेंगे?

पूरो के मन में एक विचार आया जो अब तक कभी न आया था—मेरे माता-पिता ने मुझे अपनी बेटी का तो वापस कबूल नहीं किया, क्या अब अपनी बहू को स्वीकार कर लेंगे? उन्होंने यदि वापस लेने से इनकार कर दिया तब क्या होगा?

रशीद ने पूरो को बताया कि उन की सरकार की ओर से सूचनाएँ निकली हैं कि जबरदस्ती ले जायी गयी लड़कियों को खोज खोजकर लौटा दो, क्योंकि उन के बदले में दूसरी ओर से इसी प्रकार खोजी हुई लड़कियां मिलेंगी। लड़कियों के माता पिता उन्हें वापस ले लेंगे।

पूरो के हृदय में कसक-सी उठी, उस की बार दुनिया के सब धर्म उस के रास्ते में कांटे बन कर बिछ गये थे, उस के माता पिता ने उसे स्वीकार नहीं किया, उस के ससुरालवालों ने उसे स्वीकार नहीं किया। आज सब मजहबों के मान टूट चुके थे, आज

अपने विषय में सोचना पूरो ने छोड़ दिया। वह लाजो के सम्बन्ध में सोचने लगी।

वह रात पूरो ने तारे गिन गिनकर काटी। सवेरा होते ही वह इस टोह में लग गयी कि लाजो के घरवाली बुढ़िया अपने बेटे के लिए रोटी लेकर खेतों को कब जाती है। उस ने फिर दो एक कोरे खेस सिर पर रखे और कपड़े के एक टुकड़े में थोड़ी सी राख बाँधकर चल दी।

लाजो के घर के भिड़े हुए दरवाजे को अपने हाथों से खोलते समय पूरो ने

सारे पीर फकीरो का ध्यान किया। एक समय से भूले हुए देवी-देवता उसे स्मरण हो आये। पहले प्राय रब और खुदा का नाम लेते समय पूरो कहा करती थी कि रब उस का सौतेला पिता था और खुदा की वह सौतेली बेटी थी, कोई भी रब या खुदा उस के दुख दर्द की परवा न करता था। पर आज पूरो के हृदय पर एक प्रकार का भय छा गया, पूरो ने झिझकते हुए किसी भी रब रहीम से प्रार्थना की कि किसी प्रकार लाजो से आज उस की भेंट अकेले मे हो जाये।

पूरो का लाजो के घर पहुँचते पहुँचते भी दोपहरी का समय हो गया। बुढ़िया अपने बेटे को रोटी देने गयी हुई थी। लाजो अकेली ही आगन मे बिना बिछावन की खाट पर पड़ी थी।

"अम्मा कहाँ है?" पूरो ने आँगन मे पैर धरते ही पूछा।

"खेत गयी है।" लाजो ने कल की खेस बेचनेवाली की ओर देखकर कहा। लाजो के हृदय म खेसवाली की ओर नया जागा हुआ आकर्षण उस के मुख पर स्पष्ट दीख पड रहा था। लाजो उठकर खाट पर बैठ गयी।

एक क्षण मे ही पूरो को लाजो की मुखाकृति मे अपनी माँ, अपनी बहन और अपनी भाभी के मुख दीख पडे। वह उस के गले से चिपट गयी।

पूरो को लगा कि वह रो उठेगी, इतने ज़ोर से कि उस का रोना दीवारो को फाड देगा, उस का रोना खेतो को पार कर जायेगा, उस का रोना गाँवो को लाँघ जायेगा, उस का रोना शहर से भी आगे निकल जायेगा, उस का रोना

पूरो ने अपने रोने को गले के बाहर न निकलने दिया।

'तू लाजो है मेरी भाभी " पूरो ने अपने हृदय मे उठते हुए तूफान को दबाकर कहा।

"तू पूरो है?" लाजो ने जरा उस की छाती से हटकर उस का मुख देखा। पर लाजो ने पूरो को पहले कभी न देखा था जो अब पहचानती, फिर भी लाजो को पूरो का मुख बिलकुल उस के भाई जैसा ही लगा, अपने पति जैसा लाजो के हृदय म एक लाज सी उत्पन्न हुई, मानो वह अपने पति के मुख की ओर आँख उठाकर न देख सकती हो लाजो पूरो की गोद मे गिर पडी।

लाजो के अन्तस्तल मे उस समय जो कुछ बीत रहा था, शायद वह पूरो की नसो मे प्रवेश करता जा रहा था। पूरो को कुछ भी पूछने की आवश्यकता न थी। पूरो ने लाजो को कलेजे से लगाये रखा।

"कोई आ जायेगा, लाजो! मेरी बात सुन।" पूरो को बीतते समय का ध्यान आया। लाजो की सिसकियाँ न रुकती थी, उस की साँस ठिकाने न आती थी।

"वह कब तक लौट आती है?" पूरो ने पूछा।

"मुझे कुछ पता नही। मुझे अपने पास ले चल।" लाजो सीधी न होती थी, पूरो की गोद को न छोडती थी।

"तुझे लेने तो आये ही है, और क्या करने आये हैं ! मेरी बात सुन।" पूरो ने लाजो को कंधे से पकडकर उठाया।

"हाय, मुझे ले चल !"

"पर तू सँभलकर बैठ, कोई आ जायेगा "

"मुझे लेकर भाग चल। मैं सारी उमर तेरी बांदी बनकर रहूँगी।"

"पागल न बन ! ऐसे भागकर मैं कहा ले जाऊँ ? मेरी बात तो सुन।"

"हाय ! मैं कहा जाऊँगी, मैं यही तडप-तडपकर मर जाऊँगी।" लाजो रोये जा रही थी। पूरो को डर था कि बात भी न हो सकेगी और बुढिया आ जायेगी। पूरो ने अपने पल्ले से लाजो का मुह पोछा और समझा-बुझाकर उसे चुप कराया।

'कभी तो घर से बाहर निकलती है ?"

"नही।"

"पर सवेरे तो खेतो को जाती होगी !"

"वह साथ होती है।"

'आज सयोग से अमावस है, आज रात को जो तू बाहरवाले कुएँ के पास आ सके तो वहाँ तुझे रशीद घोडी लिये तैयार मिलेगा।"

लाजो जैसे झेंप गयी। रात को अकेले कुएँ के पास पहुँचना उसे अत्यन्त कठिन लग रहा था। फिर वह रशीद को भी नही जानती थी। और यदि किसी ने देख लिया तो फिर किसी की जान भी सलामत न थी।

'मैं घर से बाहर कैसे निकलूगी ?"

"रात को जब सब सो जायें तब दावँ लगाकर निकल आना।"

"वह तो दारू भी पीता है। रात को जैसे तैसे करके दो चार घूट ज्यादा दे दूगी, पर बाहर के आँगन मे बुढ़िया "

"बुढिया कुछ अफीम-उफीम नही खाती ?'

' मैं ने तो खाते नही देखा।"

' एक बार जो तू वहाँ पहुँच जाये "

"पर वहाँ मैं उसे जानती भी तो नही। जो वहाँ पर तू मिल जाये "

"वह तो रातोरात पैंडा मार लेगा और जो मैं भी साथ हुई तो फिर तो हम दोना ही रह जायेंगी।"

"मैं ने तो उसे कभी देखा ही नही।"

तू मुझ पर भरोसा कर। तेरी तसल्ली के लिए यह कर दूगी। यह देख मेरे हाथ की यह अँगूठी उस के हाथ मे पड़ी होगी, देख लीजो।"

"आज रात दावँ न लगा तब "

'फिर बस रात, वह पूरी तीन रातें तेरी राह देखेगा।"

"गली में से आहट आ रही है, शायद कोई आ रहा है।"

पूरो खाट से उठकर नीचे बैठ गयी। खाट के पैताने खेसो को रखकर पूरो ने पल्ले में बधी हुई राख की पुड़िया को देखा कि यदि बुढ़िया आ जाये तो उसे वह जन्तर और भस्म दे सके।

पर बुढ़िया अभी नही आयी थी।

"जो तू मुझे इस जन्तर के बहाने रोज किसी बावली या कुएँ पर ले जाये और फिर एक दिन ।" लाजो ने अपना स्वर पहले से भी धीमा कर लिया।

"इस तरह मेरे ऊपर पूरा शक हो जायेगा। मैं चाहती हूँ कि वह तुझे लेकर गाव से निकल जाये और मैं बाद में भी दो-तीन दिन गाव मे फेरी लगाती रहूँ। मेरे ऊपर कोई उँगली न उठा सके।"

"मुझे डर लगता है कहीं कोई रास्ते में ही न पकड़ ले।"

"फिर जो किस्मत मे लिखा है वह तो होगा ही। आगे कौन-से करम सीधे है ?"

"पर मैं सारी उमर तेरे ऊपर भार बन जाऊँगी।"

"यह बातें फिर करेंगे, इन के लिए यह समय नहीं है। मेरी सलाह है कि मैं अब चलूँ, यही अच्छा है। आज बुढ़िया मुझे न देखे तो

"हाय ! मुझे भी ले चल।" पूरो उठने लगी तो लाजो बच्चो की भाँति उस से चिपट गयी। पूरो ने दरवाजे की ओर देखते हुए लाजो को कसकर अपनी छाती से लगा लिया और बोली, "आज रात आधी रात का कल पर मत डालना।" और फिर वह खेसों को सँभालकर घर से बाहर निकल गयी।

बान की खाट पर लाजो दोनो पैर पसारकर लेट गयी। आज उसे अपने शरीर के अंग-अंग मे एक प्रकार की प्रफुल्लता का अनुभव हो रहा था। फिर जैसे लाजो को मकान की दीवारो मे से आवाज आती सुनाई दी, 'आज रात आधी रात को ।' लाजो ने दालान की एक-एक ईट को देखा। 'यही मेरा घर था। यही मैं पैदा हुई, यही पली। यही मैं बड़ी हुई। इस घर से मेरी डोली निकली। यही लौटकर मैं मायके आयी। सब इस घर से चले गये, पर मेरा मुरदा यही पड़ा रहा। मैं अपने ही घर मे परदेसी बन गयी। इसी घर ने मुझे पैदा किया, इसी घर ने मुझे खा लिया।' लाजो घर की चहारदीवारी को देखने लगी। 'इन दीवारो को भी लाज न आयी, इन्होंने मेरा सत्यानाश होते देखा, इन्होंने मेरी मर्यादा लुटती देखी, पर आज, आज रात आधी रात को सभी दीवारें टूट जायेंगी, सभी चौखटें गिर पड़ेंगी मैं ।'

बुढ़िया बाहर का भिड़ा हुआ दरवाजा खोलकर आँगन में आ गयी थी।

'बड़े अच्छे समय आयी है।' लाजो ने मन ही मन कहा।

"आज वह खेसोवाली आनेवाली थी, अभी आयी तो नहीं ?" बुढ़िया ने आते

ही यह पहली बात पूछी और हाथ का साग भाजी का बरतन धरती पर रखकर लाजोवाली खाट की पटटी पर बैठ गयी।

खेसावाली का नाम सुनकर लाजो के मुख पर एक चमक सी आ गयी। लाजो ने सिर हिलाकर कहा, "नही।" और फिर सोचने लगी, 'पूरो को यह कसे पता लगा कि मैं यहा रह रही हूँ? वह मुझे क्या ढूढने आयी? वह किस गाँव म रहती है? मैं न उस से कुछ भी न पूछा। पूछने का समय भी कहाँ था।'—'आज रात आधी रात का' फिर यह ध्वनि लाजो के कानो से उठकर उस के कानो म ही समाने लगी।

"मैं ने कहा, एक मुटठी मोठ डालकर बटलोई मे चावल चढ़ा दे। मैं तो थक गयी।" कहते कहते बुढिया चारपाई पर निश्चल लेट गयी।

जिस प्रकार अंतिम बार के काम को कोई जल्दी-जल्दी निबटाता है, उसी प्रकार लाजो ने उठकर मोठ बीनें, चावल बीने और चूल्हे मे दो चार लकडियाँ लगाकर खिचडी पकने धर दी। पहले प्राय बुढिया आटा गूधती थी, पर आज स्वय ही लाजो न आटा छाना और गूध लिया।

आज का दिन टूटे हुए जूते की भाँति बढता ही जाता था। मुश्किल से करके रात आयी। आज जब बुढिया का लडका घर आया तो लाजो को बहुत कडवाहट न चढी। पहले रोज जब लाजो उसे देखती थी, उसे लगता था मानो सैकडा ठीकर उस के माथे पर टूटने लगे हो।

बटलोई मे कडछी घुमाते हुए आज तीन बार लाजो के हाथ से कडछी छिटकी। दो बार उस के हाथो से बेलन छूट छूट गया। एक-दो बार तो उस के हाथ से कासे का कटोरा भी छूट गया।

'ढग से काम कर।" एक-दो बार बुढिया ने खिजलाकर कहा।

"आँखें है कि बटन!" बुढिया के बेटे न भी उसे टोका।

पर आज लाजो को बुढिया का एक बोल भी कुबोल न लग रहा था। बुढिया के बेटे की बात आज जैसे वह सुन ही नही रही थी। उसे लग रहा था, मानो घर का सब माल असबाब भी आज बुढिया और उस के बेटे का मुह चिढा रहा हो।

लाजो मे आज अपूर्व साहस आ गया था। न उस का जी डरता था, न उस के मन मे कोई चिन्ता आती थी। बस, एक निश्चित समय जैसे निकट, और निकट आता जा रहा था। अभी रात पड जायेगी, अभी सब सो जायेंगे और जसे साबुन लगे हाथ म से चूडी निकल जाती है, वह इस घर से निकल जायेगी।

पहले लाजो जलती कुढती उठकर शराब की बोतल बुढिया के बेटे के आगे लाकर धर देती थी पर आज लाजो स्वय ही भीतर से वह शराब की बोतल निकाल लायी जो बुढिया के बेटे ने इलायचियाँ डलवाकर दुगुनी आँच की खिच-

यायी थी और पुरानी और तेज हान के कारण अलग रखी हुई थी।

बुढ़िया का बेटा सोच रहा था, आज लाजा न मोठ की खिचड़ी भी मलाई जैसी बनायी है, आज लाजो दारू की बोतल भी स्वय निकाल लायी है, आज लाजो खुश है, आज ।

बुढ़िया झपकियाँ ल रही थी।

"आँगन मे ठण्ड हा गयी है, मैं न तेरी खाट भीतर डाल दी है, जा भीतर जाकर लेट।" लाजो ने घर की मालकिन की भाँति बुढ़िया से कहा। एक बार बुढ़िया ने आँखें फाड़कर लाजो की ओर देखा।

'आज ता जैसे दिन ही पलट गय हैं। आज तो मैं इसे जरूर पहचानेवाली थी, यह तो पहले ही असर हो गया दीखता है।' बुढ़िया ने अपने मन ही मन सोचा और भीतर जाकर लेट गयी।

रात का अन्धकार पल-पल गहरा होता जा रहा था। बुढ़िया का बेटा शराब म धुत होकर लाजो की बाँह खींच रहा था।

रात का पहला पहर कब का बीत गया था। बुढ़िया का बेटा शराब म धुत हाकर खाट पर सो रहा था।

उस घर की दीवारो न, उस घर की कड़ियों न जहाँ पहले इतन परिवतन देखे थे, उस आधी रात को यह भी देखा कि लाजो दबे पाँव ड्योढ़ी का दरवाजा खालकर उस घर की दहली से बाहर निकल गयी।

लाजो थोड़ी दूर चलती, उसे डर लगता, शायद कोई उस के पीछे पीछे आ रहा है, किसी ने उसे कधे से पकड लिया है, किसी ने उसे गरदन से नाप लिया है। जाड़े की आधी रात की ठण्ड मे भी लाजो के माथे पर पसीन की बूँदें आ गयी थीं।

यद्यपि अमावस की रात थी, फिर भी आकाश पर छिटके हुए तारा का प्रकाश भी लाजो को तीव्रा लग रहा था। अपन घर की दीवार लाँघने क बाद अगले घरा के रास्ते पर बढते हुए लाजा एकाएक ठिठक गयी। लाजा ने गरदन घुमाकर अपन घर की लम्बी दीवार की ओर देखा। कोहर की भाँति सारी गली म चुप्पी जमी हुई थी। फिर भी लाजा न गली का सीधा रास्ता छोड़कर घरा के पिछली ओर वाला लम्बा रास्ता पकड लिया।

घरो की पक्ति समाप्त हा गयी। बाहर के कुएँ तक पहुँचने के लिए एक लम्बा चौड़ा मैदान पड़ता था। यहाँ लाजो के नगे पैरों से एक कम्पन उठकर उस के माथे की नसो मे फैल गया। लाजो न पीछे मुड़कर कब्रा की भाँति सोते हुए घरा को देखा। अभी तक प्रलय नहीं हुई थी, अभी तक कब्रा म स कोई मुरदा नहीं उठा था। लाजा को अपनी साँस की आवाज भी सुनार की धौकनी की भाँति सुनाई द रही थी। पर लाजो के पास विचारा मे डूबने के लिए समय भी कहाँ

था। लाजो ने एक बार तारा के धुधले प्रकाश को देखा, और मैदान मे आगे बढ गयी।

लाजो के दिल को एक यह धडका था कि मैदान मे से जाते समय उस दूर से कोई भी देख सकता था। लाजो के शरीर पर कपडे भी कुछ सफेद ही थे, उसे भले अधकार मे अपने कपडो की सफेदी से भी डर लग रहा था। पर अब तो लाजो ने पूरा मदान पार कर लिया था। उस ने घूमकर पीछे देखा। सारा मैदान खाली था। कुएँ की ओर देखते ही लाजो का जी घबरा उठा। कुएँ पर कोई नही था। रशीद नही आया, अब वह कही की न रही। गाँव लौटने का विचार लाजो के लिए असह्य था। उस ने कुएँ का एक चक्कर लगाया, माना अपने मन मे धार लिया हो कि यदि अब इस ससार म उसे कोई जगह न मिली तो वह इसी कुएँ म डूब जायेगी।

चादर मे स्वय को लपेटे हुए एक व्यक्ति पास की झाडियो मे से निकला—"बहन, क्या तू लाजो है ?" उस व्यक्ति ने लाजो के पास आकर चादर म स अपना मुह निकाला।

"भाई, मेरी निशानी दिखा दे।" लाजो ने रशीद की आर एक दृष्टि देखा। रशीद के चेहरे पर मानो करुणा की मोहर लगी हुई थी। लाजो का चित्त स्थिर हुआ। रशीद ने अपने हाथ की अँगूठी लाजो के आगे कर दी।

"तुझे पहुँचाकर कल या परसो पूरो को ले जाऊँगा, बच्चे उसी के पास हैं।" रशीद कुएँ के घेरे से उतरकर झाडियो के पीछे बँधी हुई घोडी खोल लाया।

"या अल्ला !" रशीद न एक बार कहा और लाजो को बाँह का सहारा देकर घोडी पर बठा लिया।

घोडी को पहली एड लगाते ही रशीद को वह समय याद आ गया जब उस ने पूरो को छत्तोआनी के कच्चे रास्ते से उठाकर अपनी घोडी पर डाल लिया था। रशीद आज हैरान था, उसे फिर एक बार अपनी घोडी दौडानी पडी। गाँव की एक और नवयुवती फिर एक बार भगानी पडी। जवानी का वह उत्साह आज रशीद की बाँहों म नही था। पर रशीद सोच रहा था, पूरो को उठाने के बाद ज्यो ज्यो वह अपनी घोडी दौडाता जाता था, मनो भार का एक पत्थर जैसे उस की आत्मा पर बैठता जाता था। कई वर्षों से वह बोझ उस की आत्मा पर पडा रहा था। आज ज्यो ज्यो रशीद की घोडी रत्तोवाल की सीमाओ को दूर छोडती जाती थी, रशीद को लगता था कि उस की आत्मा पर पडा वह भारी बोझ सरकता जा रहा है। घोडी को मानो पख लग गये थे।



हमीदा

भोर के फैलते हुए प्रकाश के साथ ही लाजो के गुम हो जाने की खबर गाव भर मे फैल गयी। अभी दही मे मथनिया पडी ही हुई थीं कि हर घर मे लाजो की चर्चा होने लगी।

आसपास के गावो मे किसी हिन्दू का नाम-निशान तक नही था, और कोई मुसलमान यह काम क्यो करता ? लोग हैरान परेशान थे।

प्रकाश जल्दी-जल्दी बढकर चढी हुई धूप बन गया था। उपलो के चूल्हो मे दाल पक चुकी थी, स्त्रिया अभी तन्दूर गरम कर रही थीं जिन मे से जलती हुई छिपटियो की सुगन्ध और धुएँ की लपटें निकलकर सारे गाव पर छा रही थी। तभी पूरो ने गाव म प्रवेश किया।

आज लाजो के घर का दरवाजा किसी मृत पशु के मुह की भाति खुला हुआ था। पूरो ने जब उस घर के दरवाजे के भीतर पैर धरा, आँगन मे बिखरे हुए रात के जूठे बरतनो पर मक्खिया भिनक रही थीं। पूरो ने देख लिया कि आज सवेरे से किसी ने कुछ खाया पिया नही है।

"अरी, तू ने कही उस कलमुही को देखा ?" बुढिया के माथे पर इतनी तेवरिया चढी हुई थी कि जान पडता था जसे किसी ने मिटटी की हाडी उस के माथे पर फोड डाली हो।

"कौन अम्मा ?" पूरो ने अपने सिर पर से खेस उतारकर आगन मे धरते हुए पूछा।

"अरी, वही चाण्डाल, अल्ला उस से समझे।" बुढिया ने फिर अपनी सारी घृणा अपने माथे के बलो म भरकर कहा

"हाय, हाय, कौन ? बहू कहा है ?'

"वही जलजानी तो भाग गयी है।'

"हाय-हाय, किस के साथ ? मैं तो उस के लिए जन्तर और भसम लेकर

आयी हूँ।"

"चूल्हे में जायें जंतर और भसम! उसे तो न जाने जिन ले गये या भूत।"

"क्या कहती हो अम्मा! गाँव में कौन है जो ले जायगा! बाहर खेतों में गयी होगी, आ जायेगी अभी।"

"लो सुनो! खेतों में गयी है। धूप सिर पर आ गयी और "

"पर अम्मा! वह कोई रोटी का टुकड़ा तो नहीं जिसे कौए उठाकर ले गये।"

"यही तो मैं कहती हूँ। क्या जाने किसी कुएँ में डूब मरी है, क्या जाने किसी जोहड़ में गिर पड़ी है। मैं तो पहले दिन से ही उस पर भरोसा नहीं करती थी। पर यह लड़का ही उस के चोचले किया करता था कहता था, "अम्मा! अब यह कहां जायेगी, इस का कोई सगा न पराया ।"

"क्यों, अम्मा! उस के मां-बाप किस गाँव के हैं?"

"भाड़ में जायें माँ-बाप। मैं ने तो पहले दिन ही कहा था, ऐसे परायी इटों से घर नहीं बसते। पर उस का तो दिल जा आ गया था, बुढ़िया की कौन सुनता था! ले, अब तुझ से क्या छिपा है, सारा गाँव जानता है यह हिन्दुओं की बेटी थी। जब गाँव से हिन्दू भागने लगे, यह लड़का इसे कहीं से ले आया। अल्ला जानता है, मैं तो पहले दिन से ही कह रही हूँ, बेटियाँ-बहुएँ सब के होती हैं। अल्लादित्ता नाहक इस पाप की गठरी को उठा लाया है। न जाने कौन से दिन यह पाप सिर से उतार सकेंगे "

"अच्छा, यह बात थी! तभी अम्मा, वह घेरी हुई लगती थी। पर भागकर जायेगी कहां? यहाँ उस का कोई आसपास का तो है नहीं। कौओं से बचेगी चीलों में फँसेगी। मैं समझती हूँ वह किसी कुएँ खाई में गिर गिरा पड़ी है, चाहे वह जानकर मरी है या फिर उस की ऐसे ही आयी हुई थी।"

"हम पर से कलंक तो हटा। पर लड़के ने मेरी जान खा रखी है। कहता है तू अंधी थी जो तुझे पता न लगा, वह कोई चिड़िया का बच्चा तो नहीं है जो किसी ने उसे अपनी जेब में डाल लिया।"

"पर, अम्मा, वह पहले भी कभी घर के बाहर अकेली जाती थी?"

"कहाँ! उसे क्या मरी के पास जाना था! पहले पहले तो जब मैं लड़के को रोटी देने जाती थी तो बाहर से ताला लगा जाती थी। फिर लड़के ने भी कहा और मैं ने भी सोचा कि यह बेचारी जायेगी कहाँ! जो किसी के सिर पर आठों पहर सवार रहो तो उस का जी घर में भी नहीं लगेगा। वह दोपहर को ही घड़ी-दो घड़ी बस घर में अकेली रहती थी। कल भी मैं रोटी देकर आयी हूँ, अच्छी भली यहाँ बैठी हुई थी। मोठ डालकर रात को खिचड़ी बनायी, बथुए का साग पतीले में पकाया, रोटियाँ सेंकी, हम माँ-बेटों को खिलायीं, खुद खायी, फिर मेरी

चारपाई भीतर डाल गयी, कहा, अम्मा आँगन म अब ठण्ड हो गयी है, लडके ने जरा दारू पी, फिर मैं तो सो गयी। फिर पता नही कैसी होनी किस समय हो गयी। सवेरे उठी हूँ तो मैं ने आवाजें दी, पर कोई हो तो बोले "

"मैं न कहा, कुएँ-जोहड दिखवाये है या नही ? वह किसी के साथ निकल जानेवाली तो दिखाई नही देती थी।"

"जाना भी किस के साथ था ! " बुढ़िया ने अपने सिर को अपने घुटनो पर रख लिया।

"बडे अचरज की बात है। मास की बोटी तो थी नही कि कुत्ते बिल्ली ने उसे मुह म डाल लिया। गाँव तो तुम ने ढुढवा लिया होगा ?"

"हाँ, सवेरे से गाँव का एक एक आदमी यहाँ आ चुका है। लोगो ने चप्पा-चप्पा भूमि छान मारी है। इस समय तो मेरा अल्लादित्ता और गाँव के कुछ लडके कुएँ पर गये हुए हैं। जो कही मरी हुई की लाश भी मिल जाये तो लडके के मन मे यह तो न रह जायेगा कि न जाने कहाँ गयी। लडके की जान सलामत रहे, औरतें और बहुतेरी "

अब तक पूरो के मुख पर हर्ष और शोक के भाव उतरते-चढते रहे थे, अब दो-तीन आदमी बाहर से आ गये।

"हम तो सारे कुएँ-खाई देख आये है, उस की तो कही हड्डी पसली भी नही मिलती।" कहकर तीनो आँगन मे पडी खाटो पर बैठ गये।

"खाये अपने माँ-बाप को ! तू ने क्यो अपनी जान को रोग लगा लिया है ! उठा लिया होगा भूत प्रेतो ने।' बुढिया ने अल्लादित्ता की ओर मुख करके बडे प्यार से कहा। पूरो ने समझ लिया, यही अल्लादित्ता है।

पूरो को लाजो का उतरा हुआ चेहरा याद आ गया, और उसे लगा कि मानो लाजो का मुह उस चिडिया के पिंजर की भाति हो जो इस गलीज चील के पजो मे कई दिन तक फँसी रही हो।

"मेरी समझ मे तो वह रात बिरात उठकर बाहर गयी है, और उसे कोई जानवर उठा ले गया है।" उन मे से एक ने अल्लादित्ता की ओर मुह करके कहा।

"यहाँ तो कोई गीदड-लोमडी भले ही फिरती हो, और इस गाव के पास कौन-सा जानवर आया होगा !" दूसरे ने पास बैठे हुए कहा।

"हमारी तरफ से चार ले गये, ले जाये। तू उठकर दो कौर तो मुँह मे डाल।" बुढिया ने अपने पुत्र को दिलासा देने के लिए कहा और उठकर रोटी-टुक्डे का प्रबन्ध करने लगी।

"अच्छा, अम्मा ! अल्ला तेरे जी को शान्ति दे, मैं चलती हूँ।" पूरो ने खेसो की बँधी-बधाई गठरी सिर पर उठा ली।

"मैं ने कहा, तू कौन है ?" अल्लादित्ता ने पूरो की ओर घूरकर देखते हुए कहा। अब तक पूरो को गाँव की ही कोई स्त्री समझते हुए अल्लादित्ता ने ध्यान नहीं दिया था, पर खेसों की गठरी उठाते हुए उसे देखकर अल्लादित्ता ने उस से धुड़ककर पूछा।

"यह कौन है ! खेस बेचती है, और कौन है !" पास से ही बुढ़िया ने उत्तर दिया।

"मैं ने पहले तो तुझे कभी नहीं देखा गाव मे ?" अल्लादित्ता ने सन्देहपूर्वक पूछा।

"कितने दिनो से तो बेचारी यहाँ बेचती फिरती है !" बुढ़िया ने फिर लड़के को डाटते हुए कहा।

"पर तू किस गाव से आयी है ?" अल्लादित्ता ने पूरो की ओर मुख करके कहा।

"दो बालक मेरी गोदी मे है, गाव मे घूम घूमकर दो-चार पैसे कमा लेती हूं।" पूरो का मन कर रहा था कि किसी प्रकार पंख लगाकर वहाँ से उड़ जाये। क्या वह गाव म रह गयी ? रात को वह भी साथ चली जाती तो कौन उस का पता लगा सकता था !

'पर तू हिन्दू है कि मुसलमान ?' अल्लादित्ता का शक अभी तक दूर नहीं हुआ था। उस के दोनो साथी मुसकराने लगे।

"क्यो भाई, क्या सलाह है ? क्या अब इसे घर म डालोगे ?' अल्लादित्ता के एक साथी ने उसे चुटकी काटते हुए कहा।

"क्या कहते हो, भाई ! मैं यहाँ हिन्दू कहाँ से आयी ?" और पूरो ने परे पड़ी हुई जूती को अपने पाँव मे अड़ाया और गठरी सँभालकर बाहर जाने लगी।

"हिन्दू का नाम उस के माथे पर तो लिखा हुआ नहीं होता।' अल्लादित्ता ने फिर जोर से कहा।

"तेरा तो, भाई, शक दूर ही नहीं होता, यह देख मेरा नाम हमीदा है।' और पूरो ने दहलीज मे खड़े-खड़े अपनी बायी बाँह पर गुदा हुआ नाम दिखा दिया।

"जा, भई, जा, इस का तो सिर फिरा हुआ है।" बुढ़िया ने कहा।

"मुझे अगर कुछ पता चला तो मैं खुद आकर बताऊँगी, अम्मा !' कहते कहते पूरो तेज कदमो से गली मे हो ली। बावली वाली कोठरी म पूरो ने अपने दोनो बालक छोड़े हुए थे। जावेद अब सयाना हो चला था, वह छोटे लड़के को बहलाये रखता था।

पूरो ने वह रात घड़िया गिन गिनकर काटी। दूसरे दिन सवेरे रशीद लाजो को सक्कडआली अपने घर छोड़कर पूरो के पास लौटकर आनवाला था। वहीं

हुए हिरनो की डार को कोई नयी खोह मिल गयी हो।

लाजो और पूरो—दोनो को लगा मानो वे साथ खेली हों, साथ पली हों, दोनो एक दूसरे की आत्मा हो, पर समय के फेर के कारण वर्षों के लिए बिछुड गयी हो और आज किसी तूफान के बाद, किसी आ धी के बाद दोनो फिर अपने आप मिल गयी हो वर्षों के विरह और जीवन की कहानिया दोनों के होठों पर जमकर रह गयी हो। दोनो ही अपनी-अपनी कहनेको व्याकुल थी, दोनो ही एक-दूसरे की सुनने को व्याकुल थी।

खाने पीने से निबटते निबटते दिन अच्छी तरह चढ गया था। रशीद यह बात समझता था कि दोनो को अकेले मे बैठकर एक-दूसरे से अपने दिल की कह-सुन लेनी चाहिए। वास्तव मे आरम्भ से ही रशीद दिल का खोटा नही था। वह सोचता था, पूरो के साथ उस के कुछ लेन-देन के हिसाब थे, नही तो वह इतना बुरा आदमी नही था कि रास्ता चलती किसी की शरीफ बहन-बेटी को जबरदस्ती अपने घर मे डाल लेता। पूरो को अपनी स्त्री बना लेने के बाद रशीद ने कभी आँख उठाकर किसी की बहन-बेटी को नही देखा था।

दोनो बालको को लिटाकर दोनो जनी भीतर वाली कोठरी म खाट डाल-कर लेट रही। रशीद उस दिन साथ के बरामदे मे सोया।

"रत्तोवाल का काफिला इसी गाँव से गुजरा था।' पूरो ने ही बात चलायी।

"तू ने देखा था ?" लाजो और पूरो अभी तक मिलकर नही बैठ सकी थी। लाजो को कुछ पता न था कि पूरो ने उसे क्यों और कैसे ढूढ निकाला।

' मैं तेरे भाई से मिली थी, तभी तो मुझ तेरा पता लगा।"

"हूँ ? "

'हा।" और काफिले के दिन वाला रामचन्द का मुख पूरो की आँखो के सामने आ गया।

"तू ने उसे कसे पहचाना ? तू ने तो उसे कभी देखा भी न था !" लाजो के मन मे अनेक बातें उठ रही थी, कैसे पूरो की उस के भाई के साथ सगाई हुई थी, कैसे उस के भाई का विवाह रचा जाने वाला था कसे फिर पूरो एकाएक गुम हो गयी थी फिर पूरो की छोटी बहन उस के भाई को ब्याही गयी थी।

'मैं ने उसे एक बार पहले भी देखा था।" पूरो ने रत्तोवाल के खेतो वाली बात लाजो को सुनायी। पूरो ने यह भी बताया कि उस समय तक उसे यह पता न था कि रामचन्द उस का बहनोई बन चुका है।

'मुझे कभी भी कोई खैर-खबर नही मिली। केवल जिस दिन काफिला इधर से गुजरा मरे हुआ को भी लोग याद करते हैं, उन के नाम से श्राद्ध खिलाते हैं कभी कभी घर मे कोई मेरा नाम भी ले लेता होगा ?" पूरो का गला भर आया।

लाजो ने उसे बताया कि उस का पिता दो साल हुए मर चुका था, उस की माँ कई बार उस का नाम ले-लेकर रो लेती थी।

'मेरी माँ के करम, बेटी भी उस की जीते-जी मर गयी और बहू भी।" पूरो ने कहा और पूरो और लाजो दोनों रोने लगी।

बूचड़खाने की गाया की भाँति दोनों अपनी चारपाइयों की पटटियों से लगी पड़ी रही।

"तू जब वहाँ जायगी, मेरी माँ से मिलेगी तो उस से कहना कि एक बार मुझ जीती का मुह तो देख ले ' पूरो ने और भी रोकर कहा।

"मैं मैं वहाँ जाऊँगी "

"तू अपने घर जायेगी, अपने पति के पास, अपने भाई के पास।'

मैं तो जीती मर चुकी हूँ, मुझे अब कौन कबूल करेगा ?"

'नही लाजो, मैं अपने जीते यह अन्याय न होने दूँगी। तू अपने घर जायेगी। तेरा इस मे क्या दोप है ?"

'पर तेरा ही क्या दोप था ? तुझे आज तक घर वालो ने न बुलाया।"

"मेरी बात और थी, लाजो।'

"तेरी बात और कैसे थी ? तू क्या अपनी मरजी से आयी थी ? तू भी तो '

"हाँ लाजो। पर तब मैं अकेली थी। मेरे माँ-बाप को साहस न हुआ कि वे लोगो की बातें सुन सकें और उन्होंने अपनी ममता को अपने से अलग तोडकर फेंक दिया। अब किसी एक को नही सब के कलेजे पर लगी है।"

"नही, पूरो! मेरी किस्मत अच्छी होती तो पहले ही मेरे साथ यह अत्याचार न होता। मैं जानती हूँ मुझे कोई लेने नही आयेगा।'

'मैं कहती हूँ, तेरे भाई का पत्र जरूर आयेगा। हम तेरा पता देंगे और वे तुझे लेने जरूर आयेंगे। अच्छा यह तो बता, मेरा भाई देखने मे कैसा लगता है ?' पूरो ने लगाव से पूछा।

लाजो को अपने पति का ध्यान आ गया। वह कैसे उस का मुख देख सकेगी, वह कैसे घर वालो के सामने पड सकेगी—लाजो सोचने लगी। पर उस के दिल मे माना विश्वास था कि उसे लेने कोई नही आयेगा वैसे मन के लड्डू वह चाहे जितने मन मे फोड ले।

'नही, लाजो! कोई न कोई तुझे लेने जरूर आयगा। आज किसी को किसी से शिकायत नही, सब अपनी बेटियो, बहनो को ले जा रहे हैं। रशीद कहता है, उधर से भी ढूँढ-ढूँढकर लोग अपनी स्त्रियो को वापस ला रहे हैं कइयो के तो बच्चे भी हो गये हैं।' और फिर दोनो की दोनो गुमसुम होकर स्त्रियो की इस विवशता पर विचार करने लगी।

लाजो सोचने लगी, आज तक उस के घर कोई बाल-बच्चा नही हुआ था, पता नही उस मे क्या दोष था। आज यही दोष उसे फला, नही तो न जाने उस की क्या दुदशा होती।

"जहाँ वे एक के लिए रोते है, अब दो के लिए रो लेंगे। मैं कही नही जाऊँगी, पूरो! मैं क्या मुह लेकर जाऊँगी! मैं तेरे बालका की टहल करके रोटी खा लूगी।"

'ऐसे क्यो कहती है, लाजो! मेरे घावो पर नमक मत छिडक। यह तेरा अपना घर है। पर लाजो! वे तुझे जरूर ले जायेंगे। मैं सारी दुनिया का वास्ता देकर उन्ह मना लूगी।"

पूरो ने लाजो को अपनी बाहो मे कस लिया

'तू अपने घर मजे मे है, पूरो?'

"रशीद का पीठ पीछा है। पहला गुनाह जो इस ने किया सो सो किया, पर उस के बाद इस ने मुझे कभी बुरा भला नही कहा। वह मेरे साथ न होता तो मैं तुझे खोजकर कसे ले आती?"

"मुझे ले आने मे उस ने अपनी जान बडी जोखिम मे डाली। जो कही उस राक्षस को पता चल जाता तो वह मेरी हड्डियो को फूककर ही पानी पीता"

"वे कहाँ फूकते है बावली! वे लोग तो गाड देते हैं।"

"कुछ सही, पर, पूरो, कही वह इस गाव का पता तो नही लगा लेगा? मरा तो जी डरता है, कही तुम्हारा बसा हुआ घर न उजाड दे।"

'अभी तक तो उन्ह तेरी परछाइ का भी पता नही लगा है!" और पूरो ने लाजो को खो जाने के बाद बुढिया और बढिया के बेटे से अपने मिलने की सारी बात कह सुनायी।

"पहले भी इसी पिछली कोठरी म कई दिन तक मैं ने एक हिदू लडकी छिपाकर रखी थी। किसी को उस की हवा तक न लगने दी। फिर उस दिन मैं उसे काफिले मे छोड आयी। तुझे भी यहा भीतर चोरी-चोरी रखूगी, ताकि गाँव म कही कुछ बात न उड जाये। जिस दिन खत पत्र आ गया, तुझे चुपके से ले जाकर लाहौर छोड आयेंगे। किसी को कानोकान खबर भी न होगी।"

"और जो उन का पत्र न आया"

मेरा दिल गवाही देता है, लाजो! तेरा भाई अवश्य पत्र डालेगा।'



हिचकोले

दिन पर दिन बीतते गय, भोर होती सांझ होती। न लाजो की खबर घर के बाहर निकली, न लाजो के परवालों को कोई खैर-खबर आयी। वैसे पूरो और लाजो हर घड़ी साथ रहती थी। रात को जब उन की आंखों म नींद घुल जाती, दोनों की आंखों म सपन ही सपने बिखर जाते थे। मुंह अंधेरे उठकर व बातें करन लगती, सपनों क शकुन-अपशकुन विचारती। कभी उन का मन स्थिर हो जाता, कभी उन का मन चक्कर म पड़ जाता। कितनी ही बार लाजो बालकों की भांति चूल्हे मे से कोयला निकालकर धरती पर लकीरें खींचने बैठ जाती। कभी शकुन शुभ निकलता, कभी अशुभ। कभी बातें करते लाजो की आंखों स आंसुओं की धाराएं बह निकलती, कभी वह पूरो के बच्चों के साथ खेलकर अपना जी बहला लेती। वैसे लाजो के मन म प्राय निराशाजनक बातें ही उठा करती थी। उसे आशा नहीं थी कि कभी कोई उसकी खबर लगा। पर पूरो के मन को अन्दर से न जाने कौन बढ़ावा देता था कि किसी दिन चुपके से कोई आ पहुंचेगा, किसी दिन अचानक ही कोई खत पत्र आ जायगा, लाजो के दिन फिर जायेंगे। पूरो ने अपनी ओर से लाजो का आतिथ्य-सत्कार करन म कोई कसर न उठा रखी थी। वह सोचती थी कि लाजो थोड़े दिनों के लिए धरोहर के रूप म उस के पास है, फिर शायद वह उस स कभी न मिल सकेगी, उसे कभी न देख सकेगी, सबो के मुख भी उस समय केवल लाजो की मुखाकृति म ही दीख पड़ते थे। कौन उस के घर रहने के लिए आयगा, कौन उस मिलने के लिए आयेगा। उस के अपने सम्बंधियों मे स लाजो ही उस के घर की प्रथम तथा अंतिम अतिथि थी।

दिन के प्रकाश म लाजो ने कभी ड्योढ़ी न लांघी थी। रात के अंधकार ने लाजो का भेद बड़ ही ध्यान से सुरक्षित रखा था। पर गांव के डाकिय ने तीन पैसे वाला कार्ड भी उस के आंगन म न फेंका।

लाजो और पूरो के मुख पर चिंता की रेखाएं दीखने लगी। लाजो के मन को केवल एक यह संतोष अवश्य था कि पूरो और रशीद ने कभी उसे जो छोटा

करने न दिया। पर सारा सारा दिन छिपे हुए, दुबके हुए लाजो सोचती कि पहाड़ जसी उमर उस के सिर पर लटक रही है, कब इस प्रतीक्षा के दिन पूरे होंगे !

पूरो का किसी के यहाँ बहुत आना जाना नही था। लाजो पिछली कोठरी मे ही उठती-बैठती थी। दोपहर को कभी-कभी दोनों जनी बाहर का कुण्डा लगाकर चरखा कातने बैठ जाती थीं। दिन बीत जाता था, पर सोचें खत्म होने मे नहीं आती थी।

जाड़ा बीत चुका था। फागुन भी बीतने को था। पानी म ठण्ड न रही थी। एक दिन ढलती दोपहरी के समय जब रशीद ड्योढी लाघकर घर आया तो लाजो और पूरो को देखते ही उस की आखें डबडबा गयी।

सहमी हुई दोनो उस के पास आयी। कई मिनट तक वह कुछ न बोल सका। लाजो को लग रहा था, कोई उस के कलेजे को बाहर खीच रहा है। उसे एक यही डर था कि कही रत्तावाल की बुढिया और उस के बेटे को लाजो का पता लग गया है, वे उसे जबरदस्ती घसीटकर ले जायेंगे, पता नही, परो पर क्या बीते !

रशीद चारपाई की पट्टी पर बैठ गया, कुरते की बाँह से दोनो आखें पोछकर उस ने लाजो की पीठ पर प्यार से थपकी दी। उस के हाथो मे वही प्रेम था जो एक बुजुर्ग पिता को लडकी को ससुराल भेजते समय होता है। रशीद का दिल भर आया था। उस ने अपने मन को स्थिर करके कहा, "आज रामचन्द आया है।"

'यहाँ ?" लाजो और पूरो एक साथ बोल उठी।

"हा, साथ मे हिन्दुस्तान पुलिस के कुछ सिपाही है कुछ पाकिस्तान के। लोग इसी तरह गाँवो और शहरों मे खोयी हुई लडकियो को ढूढ रहे हैं। रामचन्द मुझे अकेले म भी मिला था।" रशीद कह रहा था।

"सचमुच मुझे लेने आये हैं ?" लाजो के मुख से अकस्मात ही निकल गया, पर फिर वह स्वयं ही लज्जित सी हो गयी।

पगली कही की, और वह यहा क्या करने आये हैं ?" रशीद ने कहा।

पूरो अभी तक चुप बैठी थी। उसे अपने अन्तस्तल म एक अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव हो रहा था, क्योकि उस का विश्वास सत्य सिद्ध हुआ था। वह जानती थी रामचन्द आयेगा, वह जानती थी उस की भाभी अपने ठिकाने पहुँच जायेगी। लाजो तो व्यर्थ ही दिल हार बैठती थी। जिन दिनो रशीद भी निराश-सा हो जाता था, पूरो के मन म मानो कोई गवाही देता था कि रामचन्द अवश्य आयेगा। सो आज वह दिन आ गया था। रामचन्द सचमुच ही आ गया था।

'क्या अकेला आया है ?" लाजो ने पूछा।

रशीद समझ गया कि लाजो के इस प्रश्न का क्या अर्थ है। बोला, "हाँ, अभी तो अकेला ही आया है। पर तू चिन्ता न कर। तेरे घर के सब के सब तुझे सिर-आँखो पर बिठलाकर ले जायेंगे।'

लाजो के मन को कुछ सन्तोष हुआ।

'तेरा नाम सुनकर, तेरी खबर सुनकर रामचन्द रोता ही रहा, उस के आंसू किसी तरह थमते न थे। उसे देखता था तो मेरा जी भी भर भर आता था।' रशीद की आँखें फिर भर आयी। लाजो और पूरो रोने लगी।

"मैं ने उन्हें अच्छी तरह समझा बुझा दिया है। आज तुझे यहाँ पर इसी तरह दे देने से सारे गाव को खबर हो जाती। कौन जाने बात रत्तोवाल तक भी पहुँच जाती। मैं ने उन से कहा है, तुम वापस लाहौर चलो, मै लडकी को लेकर लाहौर पहुँचता हू, वहाँ तुम्हारे हवाले कर दूगा।"

"यह अच्छा किया।" पूरो ने कहा।

'हम वहाँ आज से पाचवें दिन पहुँचेंगे। तब तक वह अमृतसर से पूरो के भाई को भी बुला लेंगे। मैं ने सोचा, एक बार पूरो भी अपने भाई से मिल लेगी।'' रशीद लाजो की पीठ पर प्यार से हाथ फेरता हुआ कह रहा था।

पूरो की रुंधी हुई रुलाई निकल गयी। लाजो ने पूरो की गोदी म सिर रख-कर उसे अपने से चिपटा लिया। दोनो एक दूसरे म खोयी हुई थी, दोनो एक-दूसरे के दुख की साझीदार हो गयी थी, दोनो के आसू आपस म मिल गये थे।

लाहौर का रास्ता मुश्किल से कोई डेढ दिन का था। यहाँ से चलने मे अभी पूरे तीन दिन रहते थे।

अगले दिन पूरो ने बेसन मँगवाया, इकट्ठा किया हुआ भस के दूध का मक्खन निकाला बादाम और मेवा डालकर पूरो दिन भर लड्डू बनाती रही। जैसे लडकियो को ससुराल विदा करते समय किया जाता है पूरो ने एक रेशमी जोडा निकाला। लाजो को वह बार-बार अपने गले से लगाती, बार-बार उस से मिल-कर रोती।

तीसरे दिन दोना बालको को साथ लेकर पूरो, लाजो और रशीद मुह-अँधेरे ही गाँव से निकलकर रेलगाडी पर सवार हो गये।

पिछले चार दिनो से पूरो के हृदय म अनेक प्रकार के विचार उठते रहे थे उस की रातें सोचते-सोचते बीती थी। पूरो अपने मन म निश्चय करती, 'मैं लाजो से कहूँगी, मेरी मा से जाकर यह कहना, मेरी मा को जाकर यह बताना, उस से कहना, एक बार मुझ जीती का मुह तो देख ले ' सोचते-सोचते पूरो का गला भर आता सोचते सोचते पूरो को कहने के लिए बहुत कुछ सूझता, सोचते सोचते फिर पूरो के मुह से एक बात भी न निकलती थी।

लाजो को अपने भाई और अपने पति का मुख देखना बड ही अचरज की बात जान पडती थी, ऐसी ही जैसे कोई मरकर अगली दुनिया म बिछुडे हुए लोगा से मिलने की आशा रखता हो। यद्यपि लाजो को अपने घरवालो से बिछुड हुए पांच-छह महीने ही हुए थे उस को लगता था कि वह एक बार मरकर इस धरती

पर जीवित हो गयी है।

सारे रास्ते दोनो का मन हिचकोले खाता रहा।



एक घडी

पुलिस के पहरे म जब वे मिले, लाजो से अपनी पलकें उठाये न उठती थी। पूरो ने अपने भाई के मुख की ओर देखा। मिलन की इस एक घडी के एक ओर चिर-काल का बिछोह था, मिलन की इस घडी के दूसरी ओर असीम बिछाह दृष्टि-गोचर हो रहा था। किसी के भी आसू थमने म न आते थे।

मरद मानसो का जिगरा भी टूट गया था। होनी का जो यह पहाड उन पर टूट पडा था उस के आगे किसी को किसी से कुछ पूछना न रह गया था। रो रोकर उन्होंने अपने हाथ भिगो लिये, रो रोकर उन्होंने अपने कपडे भिगो लिये।

"सुनना जी ! कभी भूल स भी लाजो का निरादर न करना।" सब से पहले पूरो बोली।

लाजो के पति का मुह नीचा था, लाजो के भाई का मुँह नीचा था।

'पूरो, हमे लज्जित न कर।" लाजो के भाई ने कहा।

लाजो का पति कुछ न बोल सका। शायद वह कुछ सुन भी न सका था। आज उस न केवल अपनी खोयी हुई पत्नी ही नही देखी थी, बल्कि अपने होश सँभालने से पहले की खोयी हुई अपनी बहन को देखा था। वर्षों से उस के हृदय म एक आग सुलगती रही थी, जिस की एक चिनगारी उस ने रशीद के खेत मे लगा दी थी जिस से सब कुछ जलकर राख हो गया था। अनेक वर्षों से वह उस राज-कुमारी की कहानी के सम्बन्ध मे सोचता रहा था, जिसे एक दैत्य चुराकर ले गया था और फिर पूर्व देश का एक राजकुमार उसे अपने जादू के तीरों के बल से छुडाकर लाया था। छुटपन म उस न कई बार साधु-सन्ता से जादू के वह तीर माँगे थे। बडे होने पर पूरो के ध्यान से वह व्याकुल हो उठता था। आज वर्षों की खोयी हुई पूरो उस की आँखो के सम्मुख खडी थी। इस घडी वह भूल गया था

कि रशीद ने उस की पत्नी को बचाया है इस घड़ी उसे केवल यही याद था कि रशीद उस की बहन को उठाकर भाग गया था ।

पुलिस की लारी तैयार हो गयी । हिंदुस्तानी पुलिस के सिपाहियों ने आवाज़ दी "उधर जाने वाले हिंदू एक ओर हो जायें । लारी तैयार है ।"

रामचन्द ने रशीद को बार बार अपने गले से लगाया और बार-बार कहा, 'भाई, तेरी बड़ी कृपा है, मैं तेरा उपकार कभी नहीं भूलूंगा ।" रशीद के मुख पर यह उपकार करने की प्रसन्नता तो थी, पर उस की आखें लाजो को बचाने के बाद भी लज्जित थी । उसे पूरो को उठाकर भगा लाना याद आ रहा था । फिर भी उसे लग रहा था कि उस के सिर पर चढ़ा हुआ ऋण कुछ न कुछ कम हो रहा था ।

आवाज फिर आयी, " उधर जाने वाले हिंदू एक ओर को हो जायें ।"

पूरो ने वह रेशमी जोड़ा और बेसन के लड्डुओं की गठरी लाजो के हाथ में थमा दी, लाजो को कसकर अपने गले से लगाया और फिर अपने भाई से अंतिम बार मिलते हुए उस के गले से लिपट गयी ।

'पूरो ।" पूरो का भाई केवल इतना ही कह सका और उस ने पूरो की बाँह को कसकर पकड़ लिया ।

"मेरी बात सुन, इस समय " पूरो के भाई ने साहस करके कहा । पूरो अपने भाई की बात समझ गयी । पूरो के मन में भी एक बार रीझ उत्पन्न हुई 'जो मैं इस समय कह दूँ मैं एक हिंदू स्त्री हूँ तो मुझे अवश्य ही वह इन सब के साथ लारी में बिठाकर ले जायेंगे । मैं भी लौट सकती हूँ, लाजो की भांति देश की हजारों लड़कियों की भांति "

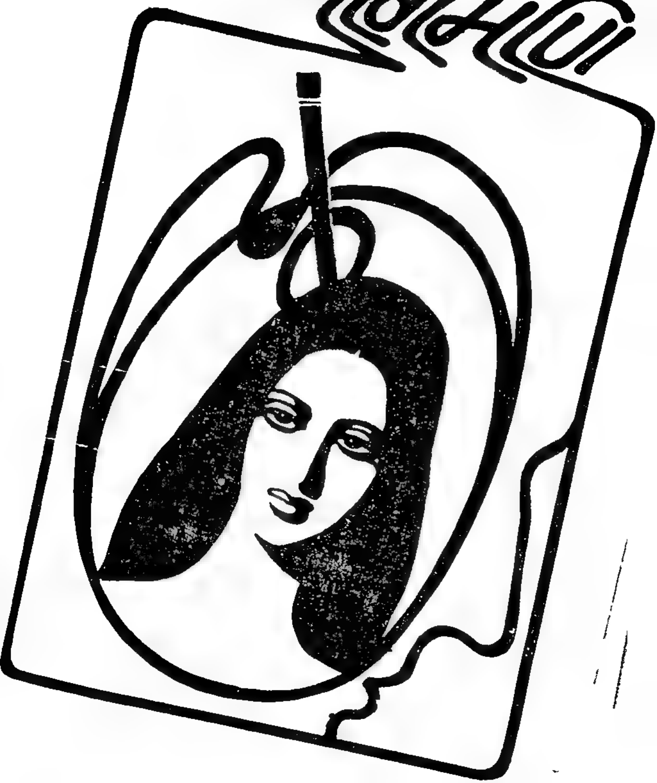
पूरो की आखों में रोके हुए आंसू उभर आये । उस ने धीरे से अपने भाई के हाथ से अपनी बांह छुड़ा ली और परे खड़े हुए रशीद के पास जाकर अपने लड़के को उठा कर अपने गले से लगा लिया ।

"लाजो अपने घर लौट रही है, समझ लेना कि इसी में पूरो भी गयी । मेरे लिए तो अब यही जगह रह गयी है ।" पूरो ने धीरे से अपने भाई से कहा जो लारी पर चढ़ रहा था ।

रामचन्द ने नतमस्तक हो पूरो के आगे हाथ जोड़े, शायद अंतस्तल की कोई पीड़ा उस के होठों पर आकर जम गयी थी, वह कुछ बोल न सका ।

'चाहे कोई लड़की हिंदू हो या मुसलमान, जो भी लड़की लौटकर अपने ठिकाने पहुँचती है समझो कि उसी के साथ पूरो की आत्मा भी ठिकाने पहुंच गयी ।' पूरो ने अपने मन में कहा और अपनी आंखों को धरती की ओर झुकाकर रामचन्द को अंतिम प्रणाम किया ।

लारी चल पड़ी थी । खाली सड़क पर धूल उड़ने लगी ।





नागमणि

बत्ती के चारों तरफ पीतल की छलनी जैसा खोल चढ़ा हुआ था। कुमार जब भी इस बत्ती को जलाता, बत्ती की रोशनी पीतल के सूराखों में से दूध की धाराओं की तरह बहने लगती जिस से कमरे की दीवारें और कमरे का फर्श रोशनी से छिटका हुआ दिखता। यह बत्ती कमरे की छत में लगी हुई थी। दूसरी बत्ती कुमार की मेज पर लगी हुई थी। बत्ती के माथे पर पीतल का एक ढक्कन लगा हुआ था जिस से छितराकर इस बत्ती की रोशनी मेज पर रखे हुए शीशे के प्याले में भर जाती थी, और प्याला हर समय छलकता हुआ दिखाई देता। कुमार जब कुछ सोच रहा होता तो उस की मेज की बत्ती बुझी हुई होती और छत की बत्ती जल रही होती थी। पीतल के सैकड़ों सूराखों में से छितराती हुई बत्ती की रोशनी जिस तरह सैकड़ों अलग अलग धाराओं में बँटी हुई होती थी कुमार के खयाल भी सैकड़ों अलग अलग लकीरों में चलते थे। पर जब कभी उस के मन में ये लकीरें जुड़ जातीं तो वह छत की बत्ती बुझा कर मेज की बत्ती जला लेता था। रोशनी एक ही जगह जमा होकर शीशे के प्याले को भरने लगती और कुमार के मन में जुड़ी हुई तसवीर उस के सामने पड़े हुए कागज़ों पर उतरने लगती।

आज कुमार पिछले तीन घण्टा से अपनी मेज पर सिर झुकाये काम म जुटा हुआ था। अलका ने मेज के पास रखे हुए स्टूल पर कॉफी का प्याला रखते हुए धीरे स चम्मच को खनखनाया ताकि कुमार को मालूम हो जाये कि उस न कॉफी का प्याला रख दिया था। पर कुछ मिनटो बाद अलका ने देखा कि कॉफी का प्याला उसी तरह रखा हुआ था, और कुमार उसी तरह मेज पर सिर झुका कर काम म जुटा हुआ था।

अलका ने मुह से कुछ कहे बगर प्याले को थोडा-सा सरका दिया। कुमार न प्याले की ओर इस तरह देखा जसे कि खिडकी म आती हुई हवा से खिडकी की साँकल हिलने की आवाज आयी हो। साँकल फिर जैसे स्थिर हो गयी हो, और कुमार का ध्यान जैसे अपनी मेज पर केन्द्रित हो गया हो।

अलका को कुमार के स्टूडियो मे आकर काम सीखते हुए छह महीने होने आये थे, और अलका को छह महीने म नही, पहले महीने म ही मालूम हो गया था कि जिस समय कुमार काम करता हो, अलका की कही हुई किसी बात म, या प्याले के चम्मच म, अथवा खिडकी की साँकल म कोई अन्तर नही रहता। इसलिए अलका मुह से कुछ न बोली।

करीब आधे घण्टे के बाद कुमार न मेज से सिर उठाया। जब वह बहुत थक जाता तो उस के माथे पर एक नाडी उभर आती। इस नाडी का कसाव उस की आखे भी महसूस करती। उस न एक मिनट आँखें बन्द की, और फिर माथे की नाडी को अपनी पोरो से सहलाते हुए उस ने अलका की ओर देखा, "कॉफी का एक प्याला मिलेगा ?"

अलका ने स्टूल पर रखे हुए प्याले को उठाया, और कमरे से सटे हुए छोटे बरामदे म चली गयी। रसोई कुछ दूर पडती थी, इसलिए कुमार ने चाय बनाने का सामान बरामदे मे रख छोडा था। चूल्हे पर पानी रखकर अलका ने प्याले की ठण्डी काफी को गिरा दिया और प्याला धोन लगी।

गरम कॉफी का प्याला लेकर अलका जब लौटकर कमरे मे आयी तो कुमार मेज पर के कागज को ध्यान से देख रहा था।

"आज इतनी खुशबू कहा से आ रही है ?" कुमार ने इस तरह पूछा जसे वह खुशबू को नजर गडाकर ढूढ रहा हो।

अलका ने भी तसवीर की ओर गरदन घुमायी, और फिर तसवीर की लडकी के बालो म टँगे हुए फूलो की ओर देखती हुई कहने लगी 'इन फूलो से आ रही होगी।

अलका के हाथ से काफी का प्याला पकडते हुए कुमार खिलखिलाकर हँस पडा, "अभी मैं ने अपना होश इतना नही खोया कि कागज पर बनाये हुए फूलो मे से मुझे खुशबू आने लगे।'

अलका चुप साधे रही। उस ने दीवान के पाये के पास पडी हुई चौकी की ओर देखा, जसे कह रही हो कि इतना होश जरूर जाता रहा है कि कमरे म पड हुए ताजे फूल अभी तक दिखाई नही दिये थे। ये फूल अलका ने सुबह आते ही कमरे म लगा दिये थे।

"ओह- ' कुमार ने होश म होने का दावा वापस ले लिया, और काफी का गरम घूट भरते हुए कहने लगा, "पर यह आदत नही डालनी चाहिए थी।"

"कसी आदत ?"

' कॉफी की आदत फूलो की आदत "

"और ?"

"पसे की आदत शोहरत की आदत औरत की आदत "

"और अपने आप की आदत ?"

"क्या मतलब ?"

"अपने आप की आदत भी नही डालनी चाहिए। कभी किसी माइकेल एंजेलो को माइकेल एंजेलो रहना चाहिए, और कभी उसे बाजार के एक कोने मे बैठा हुआ हलवाई भी बन जाना चाहिए। कभी नमक-तेल बेचने वाला बनिया, और कभी पान-बीडी बेचने वाला "

कुमार हँस दिया, ' तुम समझ नही पायी हो अलका । एक अपने आप की आदत भर के लिए बाकी कोई आदत नही डालनी चाहिए। मैं सोचता हूँ कि अपने आप की पूरी आदत केवल तभी पड सकती है जब आदमी बाकी आदतो से मुक्त हो जाये।"

"यह मैं मानती हूँ। पर मेरे विचार मे शोहरत और औरत मे बहुत फर्क होता है।"

"किसी आदत और आदत मे कोई अन्तर नही होता मैं एक बार "

"चुप क्या हो रहे ?"

"तुम्हारी जगह अगर कोई दूसरी लडकी होती तो मैं शायद चुप रहता। किसी को भी कुछ बताने की मुझे कभी जरूरत नही पडी। जरूरत अब भी कोई नही पर शायद बताने म कुछ हरज नही। तुम मुझे गलत नही समझोगी।"

' मुझे भी खुद पर भरोसा है।"

"मैं यह बताने चला था कि एक बार मुझ म ऐसी भूख जगी कि मैं कई दिन सो न सका। वह सिर्फ जिस्म की भूख थी, एक औरत के जिस्म की भूख। पर मैं किसी भी औरत के साथ अपनी जिन्दगी के साल बाधने के लिए तैयार न था, कभी तैयार नही हो सकता। इसलिए कुछ दिन मै ऐसी औरत के पास जाता रहा जा रोज के बीस रुपये लेती थी, और मेरी स्वतन्त्रता को कभी नही माँगती थी।"

अलका ने कुछ नही कहा। सिर्फ नजर गडाकर उस ने कुमार के चेहरे की

ओर देखा।

"तुम मेरे मन की बात समझी हो क्या ?"

"हाँ।"

"या तुम सोचती हो कि मैं एक अच्छा आदमी नहीं हूँ ?"

"नही, मैं यह नही सोचती।"

"पर तुम कुछ सोच रही हो "

"हाँ।'

'क्या ?"

' कि मैं वह औरत होती जिस के पास आप रोज बीस रुपये देकर जाया करते थे।'

"अलका !"

कुमार के हाथ म पकडा हुआ कॉफी का प्याला कांप गया। पर अलका उसी तरह निष्कम्प खडी रही, जिस तरह वह पहले खडी थी। कुमार घबराकर दीवान पर बैठ गया।

"मैं कह रही थी कि शोहरत और औरत मे बडा फक होता है।"

"मैं समझा नही।"

"शोहरत किसी को अपने आप को समझने मे मदद नहीं करती, और न ही पसा करता है। पर औरत किसी को अपने आप को समझने मे उसी तरह मदद करती है, जिस तरह किसी की कला उस की मदद करती है।"

'कला व्यक्ति का ही एक अग होती है—जसे बाजू या हाथ-पाँव।'

"मुहब्बत भी अपना ही एक अग होती है। अपनी आखो की तरह या अपनी जबान की तरह। शायद इस से भी अधिक। ये आखें नहीं आखो की नजर होती है। नजर भा नही—एक नुक्ता-नजर होती है '

"मेरा नुक्ता नजर बिलकुल अलग है, अलका।"

"यह मैं जानती हूँ।"

यह तुम्हारे नुक्ता-नजर से कभी मेल नही खा सकता।

"शायद।"

"शायद नही, यह सच है।"

"मैं न यह नही कहा कि यह कभी मेल खा जाये '

'फिर "

'मैं न कुछ नही कहा।'

"पर तुम ने यह क्यो कहा कि तुम '

' कि मैं वह औरत होती जिस के पास आप बीस रुपये रोज देकर जाया करते थे ?'

"तुम ने यह क्यो कहा ?"

"रुपये कमाने के लिए "

इस बार अलका हँस पडी, पर कुमार की हँसी उस के गले मे ही सकपका गयी।

'क्या, यह ठीक नही ? बीस रुपये रोज़ के कम है क्या ?"

"तुम-सी गम्भीर लडकी "

"मैं सचमुच ही बडी गम्भीर हूँ ?'

'हा, अपने काम मे तो सच ही ,

'मैं जिन्दगी म भी वैसी ही हूँ।'

"फिर तुम ने यह बात कैसे कही।'

'इसलिए कि मैं बहुत गम्भीर हू।'

"वह गम्भीर बात है ?"

'इतनी कि इस से अधिक गम्भीर बात कोई और नही हो सकती।"

"मैं इसे यो नही समझ पाऊँगा, अलका। नही तो मैं दिल म दुखी होता रहूँगा।"

"फिर भूल जाइये कि मैं ने यह बात कही थी।

तुम भूल सकोगी इस बात को ?"

"मैं कभी याद नही दिलाऊँगी।'

हम रोज वसे ही काम करेंगे जस पहले करते रहे हैं ?'

'हम रोज वैसे ही काम करते रहेंगे जसे पहल करते रहे हैं।'

'हम कभी व्यक्तिगत बाते नही करेंग ?'

'हम कभी व्यक्तिगत बातें नही करेंगे।'

"हम सिफ अपने काम स वास्ता रखेंगे।'

"हम सिर्फ अपन काम से वास्ता रखेंगे ?'

तुम मरी जिन्दगी म कोई दखल न दोगी ?'

'मैं आप की जिन्दगी म दखल नही दूगी।'

'विशेपकर मुहब्बत की बात नहा करोगी ?'

'विशेपकर मुहब्बत की बात नही करूँगी।"

"अलका।'

'जी।'

तुम यो बोलती जा रही हा, जस कोई बच्ची मास्टर के सामन दो दूनी चार' का पहाडा पढ रही हो। तुम सीरियस क्यो नही हो ?

'मैं बिलकुल सीरियस हूँ। मैं सारे वचनो को इस तरह दोहरा रही हूँ जस गुरु से म त्र लेत समय कोइ गुर के शब्दा को दोहराता है।

कुमार ने अपने माथे की उभरी हुई नाडी को उँगलियो से मला और कहने लगा "मैं तुम्हे बिलकुल नही समझ सकता, अलका !"

"पर मैं अपने आप को समझ सकती हू ।"

कुमार ने अभी तक मेज की बत्ती नहीं बुझायी थी। उस ने एक बार मेज पर पडे हुए कागज की ओर देखा, और फिर मेज की बत्ती बुझा कर छत की बत्ती को जला दिया ।

छत की बत्ती की रोशनी पीतल के सूराखो म से पतली पतली धाराओं म बँटकर बहने लगी । कमरे की दीवारो और फर्श पर रोशनी छितराने लगी। पर कुमार को रोशनी से भीगे हुए फर्श पर पाव रखते हुए लगा, जैसे इस गीले फर्श से उस का पाव फिसल जायेगा ।



आज से पहले कुमार को जब किसी औरत का सपना आया था, वह औरत हमेशा ऐसी होती थी जिस का याद रहने योग्य कोई चेहरा नही होता था । जिस औरत का कोई चेहरा न हो, उस औरत की कोई पहचान नही होती। जिस औरत की कोई पहचान न हो, उस औरत की कभी तलाश नही होती । और जिस औरत की तलाश न हो उस के लिए दिल म कोई दर्द नही होता । कुमार को इस तरह का कोई बेसिरपैर का सपना हमेशा तभी आता था, जब उस के जिस्म मे औरत के जिस्म के लिए भूख जगती थी । और यह भूख कुमार के जिस्म मे कभी-कभार ही जगती थी । इस लिए जब कभी भी कुमार को यह सपना आता था, बाद मे इस की याद कुमार को विस्मृत हो जाती थी।

पर आज रात कुमार को जो सपना आया, उस की याद कुमार को साल रही थी। इस सपने मे उस ने औरत का चेहरा देखा था, चेहरे को पहचाना था, और उस डर था कि कही यह पहचान उसी की तलाश न बन जाये । तलाश हमेशा रिश्ते बाँधती है। और वह अपनी कला के सिवा किसी चीज से कोई रिश्ता

नही बाधना चाहता था।

रात अपने आखिरी पहर तक कजरा आयी थी। कुमार ने पहले छत की बत्ती जलायी। पर फिर रोशनी की सैंकडा धाराओ से घबराकर उस ने बत्ती बुझा दी। वह एकाग्र होना चाहता था—एक मन होना चाहता था। उस ने अपनी मेज की बत्ती जलायी। चाहे उस ने मेज पर अभी कोई काम नही करना था, पर मेज की बत्ती की रोशनी उसे अच्छी लगी। पीतल के एक छोटे से ढक्कन की आड रोशनी को बिखरन से बचाकर एक स्थान पर केंद्रित कर रही थी।

कितनी साधारण सी बात है—मैं या ही घबरा रहा था। मन के विचारो को भी एक जगह केंद्रित करने के लिए एक छोटे-से ढक्कन की जरूरत होती है—एक छोटी सी आड की जरूरत होती है।' और कुमार के मन म एकदम यह खयाल आया कि कला ही राशनी होती है, और कला ही उस की आड।

कुमार ने अपने लिए एक चाय का प्याला बनाया और अपनी कुरसी पर बठकर वक्त से पहले ही काम करना शुरू कर दिया।

सूरज की पहली किरण निकलते ही कुमार को अलका का खयाल आया। शायद इसलिए कि ज्यो ज्यो दिन चढ रहा था, अलका के आने का समय हो रहा था।

'मेरा खयाल है कि मेरे जिस्म म फिर से कोई भूख जग रही है— मुझे औरत का सपना इस भूख के बिना नही आ सकता ' और कुमार ने सोचा कि वह कुछ दिना के लिए अपना स्टूडियो बन्द करके किसी शहर म चला जाये। दस दिन शहर म रहकर वह अपनी इस भूख को मिटा आये। फिर लौटकर अपने काम मे उसी तरह डूब सकेगा जिस तरह वह पिछले कई महीना से डूबा हुआ था। कुमार की यह जमीन और उस का स्टूडियो कागडा वादी म पपरोला स्टेशन स करीब डेढ मील के फासले पर था।

कुमार अपने कागज और कपडे लत्ते सँभाल रहा था कि अलका ने दरवाजा खटखटाया।

'मैं कुछ दिना के लिए शहर जा रहा हूँ।"

'पठानकोट या अमृतसर ?"

'शायद पठानकोट तक। तुम इतने दिन यही अकेली रहना चाहोगी या अमृतसर जाना चाहोगी—अपने पिताजी के पास ?'

"मैं यही रहूँगी।"

"मुझे शायद ज्यादा दिन लग जायें।'

"सो ठीक है।'

'शहर से कुछ लाना हो तो मुझे बता दो।

"अपने रग और कागज दख लीजिए। कम हो तो लेते आइयगा।"

"अभी पीछे मँगवाये थे—कम से कम छह महीने जरूरत नहीं पड़ेगी।"

"मुझे काफी काम समझा जाइये। पीछे करती रहूँगी।"

"जितनी भी मेहनत करोगी कम है।"

कुमार अलका से बातें भी कर रहा था और सूटकेस म कपड़े भी सँभाल रहा था।

"मैं रख दू कपड़े ठीक से ? नहीं तो सारे सूटकेस मे नहीं आयेंगे।"

"अच्छा, तुम ये कपड़े रखो। तब तक मैं अपनी पैंट ले आऊँ। कल प्रेस करने के लिए दी थी।'

"इस मे कुछ मैले कपड़े भी पड़े हुए है। इन्हें धो डालू ? दो घण्टे में सूख जायेंगे।"

"रहने दो ! मैं शहर से धुलवा लूगा।"

"पर गाडी तो दोपहर को छूटेगी न ? अभी काफी देर है।"

'अच्छा धो डालो । पर तुम खुद क्यो धो रही हो ! अभी हरिया आयेगा। उस से धुलवा लेना।"

अलका ने कोई जवाब न दिया। कुमार पैंट लेने के लिए चल दिया।

धोबी पेशे का आसपास कोई आदमी नहीं था। कुमार ने बैजनाथ को जाती सडक पर चाय की दुकान वाले पहाड़िये को शहर से लोहे की प्रेस ला दी थी। वही समय असमय कुमार के कपड़े धोकर उन पर प्रेस कर दिया करता था। कल जब कुमार वहा अपनी पैंट दी थी तो उसे शहर जाने का खयाल तक न था। अब जब वह पैंट लेने के लिए गया तो पैंट धुल चुकी थी, पर उसी तरह सिलवटो सहित पड़ी हुई थी। कोयले दहकते और प्रेस गरम करते हुए कुछ देर हो गयी। इसलिए कुमार जब पैंट लेकर वापस आया तो अलका ने उस के मैले कपड़े धोकर सूखने फैला दिये थे।

'हरिया नहीं आया ?'

'आया था। घड़ा ले गया है भरने को।"

कुमार का रात के अँधेरे में शहर की आकस्मिक तैयारी जितनी स्वाभाविक लगी थी दिन के उजाले म वह उतनी स्वाभाविक नहीं लग रही थी। हाथ की पैंट अलका को देते हुए उसे खयाल आया कि अलका उस की इस तैयारी के बारे मे कोई सवाल क्यों नहीं पूछ रही थी। और उसने चाहा कि अलका कुछ पूछे। चाहे कुछ ही पूछे ! सिर्फ इतना ही कह दे कि पीछे गाव म इतने दिन अकेले रहते उसे डर लगता है। चाहे वह कुमार के स्टूडियो में पहले भी नहीं रहती थी। उस ने आधा मील के फासले पर एक घर मे ऊपर का चौबारा किराये पर ले रखा था। फिर भी उसे कुमार की उपस्थिति का सहारा था। और कुमार के मन म आया कि अगर अलका अकेली रहने की बात चला दे, तो वह एक दो बार

उस समझाकर अपना शहर जाना स्थगित कर देगा। शहर जाने के लिए उस के दिल म कोई उमग नही थी। किसी तरह की भी जिस्मानी भूख उस म नही जगी हुई थी, और अलका जसे-जसे सूटकेस तैयार करती जा रही थी उसे लग रहा था जसे उस जबरदस्ती शहर भेजा जा रहा हो।

तुम पीछ डरागी नही ? कुमार ने खुद ही कुछ देर बाद पूछा।

डर ? मुझे। मुझे काह का डर है ? अलका ने जवाब दिया और सूटकेस को बन्द करके चाबी कुमार का दे दी। चाबी पकडाते हुए अलका न सौ सौ रुपये के दो नोट भी कुमार को दिय।

"यह क्या ?"

"दो महीना क रुपय आप एक साथ लीजिए। शहर म जरूरत होगी।'

'मुझे क्या जरूरत पडगी ? खच भर के लिए मेरे पास होगे। सूटकेस मे बैक की पासबुक रखते हुए मैंने पासबुक देखी थी। सिफ सौ रुपय है बैंक म।

इतन ही काफी है। जाने का किराया ता है ही। वापसी मे बैंक से सौ रुपय निकलवा लूगा।

'पर वहाँ जरूरत पडेगी। दस दिन भी रह तो बीस रुपय रोज क हिसाब "

'अलका।'

कुमार के माथ पर पसीन की बूदें उभर आयी। उस लगा कि अलका की मोटी मोटी और चुपचाप आँखें पारदर्शिनी हैं। उस न कुमार के मन म रेंगते सारे खयाला को देख लिया था। उस अलका की आखा पर भी गुस्सा आया, पर ज्यादा गुस्सा अपने खयाला पर आया जो केंचुए की तरह उस के मन म रग रहे थ। केंचुए की तरह जो किसी का कुछ नही बिगाडते, पर उनकी सुस्तायी चाल से चिढ आ जाती है। कुमार को खुद ही अपने खयालो से चिढ आने लगी।

किसी भी केंचुए को अगर तिनका छुआ दें ता वह कुछ देर के लिए इस तरह निर्जीव हो जाता है, जसे कभी उस म कम्पन न आया हो, और वह शुरू से ही एक रस्सी का टुकडा हो। कुमार को भी लगा कि उसके मन म डर का जो केंचुआ रेंग रहा था, अलका के छून से रस्सी का टुकडा बन गया था।

'अगर तुम ने यही सोचा है कि मैं शहर इसी लिए जा रहा हूँ तो नही जाता "

कुमार ने मन म छिपे हुए डर को रस्सी के टुकडे की तरह हाथ म लेकर कहा।

"हम न इकरार किया था कि हम कभी व्यक्तिगत बातें नही करेंगे। मैं उस इकरार पर कायम हूँ।" अलका ने कहा। उस ने शहर जान या न जाने की

बात का कोई जवाब न दिया।

कुमार मिनट भर को चुप रहा। पर वह चुप्पी बोलने से भी अधिक पैनी थी। बोलने से चाहे व्यक्तिगत बातें न करने का इकरार टूटता था, पर कुमार को लगा कि इस चुप्पी से तो बोलना आसान था।

"पर तुम ने खुद ही बात छेड़ी थी।"

"मैं ने सिर्फ रुपये दिये थे, बात नहीं छेड़ी थी।"

"पर वह बात तुम्हारे मन में थी। वह तुम भूली नहीं थी।"

"मैं ने कोई बात भुलाने का इकरार नहीं किया था। सिर्फ चुप रहने का इकरार किया था।"

"पर वह बात याद रखने का तुम्हें कोई हक नहीं।"

"अपनी याद पर सब का अपना हक होता है।"

"पर अलका—आखिर तुम उस बात को याद क्यों रखना चाहती हो?"

"इस 'क्यों' के सवाल में मत पड़िये! इस का अन्त कभी न होगा। अच्छा हो, अगर हम अपने उसी पहले इकरार पर कायम रहें, कि हम कभी व्यक्तिगत बातें नहीं करेंगे।"

कुमार ने चुप रहने का जो इकरार अलका से चाह कर लिया था, वही इकरार कुमार को लगा एक ऐसा अँधेरा था जिस में हर चीज डरावनी लगती है। कुमार किसी चीज से डरना नहीं चाहता था। इसलिए उसे लगा कि इस इकरार ने एक अनचाहा अँधेरा भरकर बड़ी मासूम बातों को भी भयानक बना दिया था। सारी बातों को उन की मासूमियत में देखने के लिए कुमार ने सोचा कि वह अलका के साथ चुप न रहकर बातें करेगा। आखिर अलका एक सुलझी हुई लड़की थी।

"यहाँ मेरे पास बैठ जाओ, अलका!"

"जी।"

"सच बताओ, मुझ से डर लगता है?"

"बात उलझाकर मत पूछिये।"

"उलझाकर?"

"आप जानते हैं कि मुझे आपसे डर नहीं लगता। डर वास्तव में किसी को भी किसी से नहीं लगता। डर हमेशा इनसान को अपने से लगता है।"

"तुम्हारा मतलब है, मुझे खुद से डर लगता है?"

"जी।"

"अलका!"

"जी।"

"तुम मुझ पर यह इलजाम किस तरह लगा सकती हो?"

"मैं ने इलजाम नहीं लगाया। सिर्फ एक बात कही है।"

"पर यह गलत है।"

"अगर गलत है, तो आप अचानक शहर किस लिए जा रहे हैं ?"

"शहर जाने के लिए मुझे कई काम हो सकते हैं।"

"आप जानते हैं, कि आप को कोई काम नहीं।"

"चलो मान लिया, कोई काम नहीं। शायद यही काम हो कि मैं अपनी जिस्मानी भूख बुझाने के लिए शहर जा रहा हूँ, पर यह भी तो एक काम है।"

"इस काम के लिए शहर जाने की क्या जरूरत है ?"

"पर यहाँ ..." कुमार के गले में उस की सांस अटक गयी। पर अपने अटके हुए साँस को खींचकर उसने कहा, "यहाँ शहरों जैसा कोई इन्तज़ाम नहीं।'

' मैं हर तरह से उस लड़की से अच्छी हूँ जो बीस रुपये रोज़ लेकर ..."

"अलका !"

'जी।"

"तुम्हें क्या हो गया है, अलका ! तुम एक शरीफ लड़की हो, शरीफ मां-बाप की बेटी !"

"इसमें शराफत का खयाल कहां से आ गया ?"

"रुपया लेकर जिस्म देना शराफत नहीं है।"

"क्यों ?"

"क्योंकि यह शराफ़त नहीं।"

"फिर इस हिसाब से रुपये देकर जिस्म का लेना भी शराफत नहीं।"

कुमार चुप हो गया। अलका फिर बोली, "अगर आप अपने लिए शराफत को जरूरी चीज नहीं समझते, तो मेरे लिए क्यों जरूरी समझते हैं ?"

"मेरी बात और है, अलका !"

"सिर्फ यही, कि मर्दों के लिए एक वह चीज भी शराफत होती है, जो औरत के लिए नहीं होती।'

"यह बात नहीं अलका !"

"फिर ?"

"मैं कभी किसी एक चीज के साथ अपने आप को नहीं जोड़ता इसलिए मेरी कीमतों का असर सिर्फ मुझ पर पड़ेगा। पर कल तुम्हारा विवाह होना है। तुम्हारा वास्ता सिर्फ़ तुम से नहीं होगा, किसी दूसरे से भी होगा। उसकी कीमतें वे नहीं होंगी, जो मेरी और तुम्हारी कीमतें हो सकती हैं।"

'इस का जवाब मैं इस समय सिर्फ इतना ही दूंगी, कि मेरी जैसी लड़की सिर्फ अपनी कीमतों को ही स्वीकार कर सकती है, किसी और की कीमतों को नहीं।"

' यह भी मान लेता हूँ। चाहे मैं जानता हूँ कि यह बात तुम्हारे बस की नही। तुम क्या, किसी के बस की नही ! पर मेरी मुश्किल दूसरी है।"

"मैं आप की मुश्किल को जानती हूँ।"

"नही तुम नही जानती !"

' जरूरत पडने पर आप सिर्फ उस औरत के पास जाना चाहते हैं, जिस औरत का कोई चेहरा न हो और जिस औरत का कोई नाम न हो। क्योंकि चेहरे और नाम से पहचान तक बात आ जाती है, और यह पहचान कभी मन मे कोई सम्बन्ध जोड देती है।'

' हा, अलका !"

' ए फेसलेस वूमन, ए नेमलेस वूमन !"

'हा, अलका !"

"मैं अपने-आप को फेसलेस भी बना सकती हूँ, और नेमलेस भी !"

"पर, अलका ! क्यो ? क्यो ?"

"इस 'क्यों' का जवाब मैं नही दूँगी।"

"क्योंकि इस का कोई जवाब नही !"

इस के कई जवाब हो सकते हैं।'

'मसलन ?"

"मसलन यह कि शायद मुझे रुपया की जरूरत हो।"

' यह जवाब गलत है। तुम मुझे काम सीखने के सौ रुपये देती हो। सौ रुपये महीने कम नही। फिर तुम अपने रहने का, पहनने का, खाने का खर्च भी खुले हाथो करती हो। तुम्हारे पिता अमीर हैं "

'फिर हो सकता है कि यह मेरी जिस्मानी जरूरत हो।'

"यह जवाब भी गलत है।"

' क्यो ?'

"मेरे पास इस का कोई सबूत नही। पर मेरा दिल कहता है कि यह जवाब गलत है। तुम खुद ही बताओ कि क्या यह गलत नही ?"

"हाँ, यह जवाब गलत है।"

"फिर ?"

"मैं ने कहा था कि मैं इस का जवाब नही दूगी। इसलिए चुप हूँ।"

"पर मैं इस का जवाब जानना चाहता हूँ।'

"आप नही समझेंगे। मैं बता भी दू, तो भी आप नही समझेंगे।"

क्यो ?'

' क्योंकि बहुत सी बातो पर हमारे नुक्ते-नज़र अलग हैं। आप ने खुद ही कहा था कि हमारे नुक्ते-नज़र आपस मे कभी नही मिल सकते।"

को अपनी दोना बाँहो मे कसकर उस के होठ से एक लम्बा घूट इस तरह भरा, जैसे वह दा हाठा से उस की सारी जान पी जाना चाहता हा। आग की लपट की तरह कुमार के जिस्म मे कुछ सुलगा, और जिस समय कुमार न अलका क अग प्रत्यग का अपन से लगा लिया, तो उसे लगा कि उस ने अलका को अपन जिस्म से नही,—आग की लपट मे लपेट लिया था। यह अलका को तोड देन की जिद थी।

कुमार जब अलका से अलग हो कर एक तरफ खडा हो गया तो अलका न अपन जिस्म से ढलके हुए कपडों को खीच कर एक सलवटी चादर की तरह अपन पर ओढ लिया, और कुमार से कहा, "मरे रुपय ?"

कुमार ने पैंट की जेब से बीस रुपये निकाले, और अलका ने हाथ बढ़ाकर रुपये ले लिये।

"सिफ बीस रुपये !" कुमार हँस पडा। पर उस की हँसी जाने कैसी थी, वह खुद ही अपनी हँसी से डर कर दीवार की ओर देखने लगा।

"सोने का कलश चढाकर भी कोई ईश्वर को नही खरीद सकता। पर कोई पूजा का एक फूल चढाकर भी ईश्वर को खरीद लेता है।" अलका ने कहा और वह एक एक करके कपडे पहनने लगी।

'क्या मतलब ?"

"कुछ नही।"

"इस तरह बीस रुपये कमाने वाली औरत को क्या कहा जा सकता है ?"

'औरत।"

"अलका !"

'मैं एक वेश्या बनने का दावा भी आसानी से कर सकती हूँ, जिस आसानी से बीवी बनने का।"

"मैं तुम्हे बिलकुल नही समझ सकता, अलका ?"

"पर मैं अपने आप को समझ सकती हूँ।"

कमरे की दोनो बत्तियाँ बुझी हुई थी। खिडकियो पर नीली और काली धारिया वाल मोट परद लटक रहे थे। पर बाहर से सूरज की रोशनी परदो की झिलमिली से छनकर कमरे की दीवारो पर और फश पर बिखर रही थी, और राशनी से भीगे हुए फश पर पैर रखते हुए कुमार को लगा जसे इस गीले फश से उस का पाँव फिसल जायेगा।



पाच दिन गुजर गय। अलका रोज नियमपूर्वक आती और काम करती। उस घटना की छाया भी उस के साथ कमरे में न आती। छठ दिन सुबह ही अलका आयी तो कुमार अपना तौलिया तह करके चमडे के एक बग मे रख रहा था।

"आज फिर शायद जाने की तैयारी है ?"

"वह तैयारी छोटी थी यह तैयारी बडी है। [तुम भी मेरे साथ चलोगी। हरिया नाश्ता तैयार कर रहा है उसे कह दो कि कुछ ज्यादा बना ले।"

"कितन दिन के लिए ?"

"एक ही दिन के लिए।"

कुमार और अलका जब पगडण्डी पर चलत हुए मामने पहाड के बगल म पहुच गये तो एक पहाडी नदी के किनारे खडे होकर कुमार न हाथ का बैग एक पत्थर पर रख दिया।

"नहाओगी तुम ?"

"मैं अपन साथ कोई कपडा नही लायी।

इस बैग म एक नीली चद्दर रखी है।"

नदी का पानी, जो सारी रात डर हुए पत्थरो से बातें करता रहा था, अब सूरज की किरणो म खेल रहा था। अलका न बग से चद्दर निकाल ली और पत्थर की आड म जाकर कपडे उतारने लगी। नीली चद्दर को बदन से लपेट-कर जब उस न पानी म पैर रखा, जगली फूलो की एक टहनी पानी म तैरती हुई अलका के पास आ गयी। अलका न टहनी के आगे का हिस्सा तोडकर अपन बालो म लगा लिया।

कुमार अलका की बायी ओर के पानी मे नहा रहा था। अलका ने एक नजर कुमार को देखा और फिर पानी मे आहिस्ता आहिस्ता चलती हुई कुमार के पास से गुजरी, और काफी दूर जाकर उस की सीध मे ठहर गयी। पानी बहुत गहरा था। खडे रहते पानी कमर से छूता था। अलका घुटनों के बल पानी म बैठ गयी।

अलका ने हाथों में हरे कांच की पांच पांच चूड़ियाँ पहनी हुई थी। पानी में डूबी हुई कलाइयों पर चूड़ियाँ ऐसे लग रही थी जैसे उस ने बाँहों पर हरे पत्ते लपेटे हुए हों। अलका बाँह फैलाकर पानी काटती तो चूड़ियाँ खनक उठतीं।

अलका ने कई बार अपनी ठुड्डी और आधे मुख को पानी में डुबाकर पानी को अपनी आँखों से छुआया। अलका पानी की उतराई की ओर थी, और जो पानी अलका के बदन को छूकर निकलता था वह दूर में कुमार के बदन को छूकर आ रहा था। अलका की आँखें बड़े अदब से इस पानी को छूती रहीं।

अलका की चूड़ियों की खनक चाहे ऊँची नहीं थी पर इस गहरी खामोशी में वह कुमार के कानों को सुनाई दे रही थी। कुमार इस खनक से बचने के लिए कई बार सीध से हटा। एक बार वह बिलकुल ही पानी के बायें किनारे तक चला गया। अलका ने वही सीध ले ली। कुमार किनारा बदलकर पानी के दायें किनारे पर आ गया। अलका ने फिर सीध बदल ली। जितनी देर, और जो भी पानी कुमार के बदन को छूकर आ रहा था, अलका उसे अपने अंग-अंग में भर लेना चाहती थी।

कुमार ने शायद अलका के इस खिलवाड़ को भाप लिया, और इस खिलवाड़ को तोड़ने के लिए वह पानी से बाहर आ गया। अलका भी पानी से बाहर होने लगी, तो कुमार फिर पानी में उतर गया और तेजी से तैरता हुआ अलका तक आ गया।

झपटकर कुमार ने अलका का हाथ पकड़ा और झल्लाकर अलका के बदन से लिपटी हुई चददर खींच ली। चद्दर की तरह ही उस ने अलका को अपनी बाँहों में कस लिया और फिर खौलते हुए होठों से उस ने अलका के होठों को इस तरह पिया जैसे वह अलका की सारी जान के साथ इस पहाड़ी नदी का पानी पी जायेगा।

कुमार ने टूटकर जब अलका को छोड़ा तो अलका के होठ उसी तरह साबुत थे अलका की छाती उसी तरह सांस ले रही थी, और नदी का पानी उसी तरह बह रहा था। कुमार को लगा कि न वह अलका की सांस पी सकता था, और न नदी का पानी। वह किनारे के पत्थरों पर इस तरह जा बैठा जैसे सैकड़ों पत्थरों में एक पत्थर और बढ़ गया हो।

अलका ने किनारे पर आकर कपड़े पहन लिये और नीली चददर को निचोड़कर सूखने के लिए एक बड़े पत्थर पर फैला दिया।

'नाश्ता डाल दूं?" अलका कुमार के पास आकर खड़ी हो गयी, और नाश्ते का डब्बा खोलकर प्लेट पोंछने लगी।

कुमार काफी देर तक अलका के पैरों की ओर देखता रहा और फिर लपककर उस ने अलका के पैरों को मरोड़ा।

"ये पैर इस तरह नही इस तरह होने चाहिए थे।'
'किस तरह ?'
"एडी आगे होनी चाहिए थी, और उँगलियाँ पीछे।
'क्यो ?"
"क्योकि जिन्नी के पाँव उलटे होते है।
'जिन्नी क्या होती है ?'
"भूत प्रेता की जाति की जिन्नी।'
"हर जिन्नी के पैर उलटे होते हैं ?'
"मैं छोटा-सा था, हमारे पडोस म एक बूढा रहता था। वह मुझे जिन्नियो के किस्से सुनाया करता था।"
"उस ने जिन्नी देख रखी थी ?"
"वह कहता था कि उस ने अपनी जवानी म एक जिन्नी पकडी भी थी।
"फिर ?"
वह बताया करता था कि जिन्नी का पकडना बडा मुश्किल होता है। कई-कई रातो श्मशान म जाकर बैठना पडता है। वह पहले बहुत डरती है, अगर आदमी डर जाय तो वह खुद पकडी न जाकर उस आदमी को पकड लेती है।
'फिर उस न जिन्नी कैसे पकडी ?"
'उस ने उसे पाँवो से पहचान लिया था। वह कहता था कि हर जिन्नी का नाक मुह वैसा ही होता है जैसे किसी साधारण औरत का। जिन्नी के मुख की ओर कभी नही देखना चाहिए, क्योकि उस के पैर उलटे होते है, और उसे पैरा से पहचानकर पकड लेना चाहिए।
"पर पकडने का फायदा ?'
'वह बूढा कहा करता था कि अगर एक बार जिन्नी पकड म आ जाये तो सारी उमर कोई फिक्र नही रहती। जब आप का दिल हलवा खाने का हो वह हलवा ला देती है जब आप का दिल नये कपडे पहनने का हो तो वह कपडे ला देती है। वह तरह तरह का खाना ला सकती है। वह हैरान कर देने वाली चीजे आप के कदमो म लाकर रख सकती है।"
"फिर उस बूढे ने जिन्नी छोड क्यो दी ?"
'वह कहता था कि रोज रात को उसे जिन्नी से मेनका का नाच देखने की आदत पड गयी थी। रात को जिन्नी मेनका के कपडे पहनकर और पैरो म घुघरू बाँधकर मेनका का वह नाच दिखाती जो सिर्फ इन्द्र के दरबार म होता था।"
'फिर ?
'आस पडोस म शोर मच गया कि रात को यहाँ घुघरुआ की आवाज आती

है। इस लिए लोगो से तग आकर उस ने जि नी को छोड दिया।"

"आप ने उस बूढे से जिनी पकडने का तरीका पूछा था ?"

'जब मैं छोटा था तब मैं उस बूढे से जिनी पकडने का सारा ढग पूछकर एक बार जिनी पकडने के लिए गया था।"

"फिर ?"

"अमावस की रात थी। उस ने बताया था कि जिनी सिफ अँधेरी रात म ही पकडी जा सकती है।'

'फिर ?

"मुझे बडा दिलेर समझा जाता था। कुछ अपनी दिलेरी से, और कुछ मश हूरी की झेंप म मैं आधी रात का चल निकला। अभी श्मशान तक पहुँचा था। बाहर क पेडों क पास ही मुझे डर लगने लगा। एक घन पड म से कोई जानवर बोला, और मैं उलटे पाँव भागा '

"शायद वह जिनी हो जो पड पर चढकर बोली हो "

"उस बूढे ने मुझे बताया था कि सब से पहले जिनी के परो म बँधे हुए घुघरुओ की आवाज सुनाई देती है।"

"इस का मतलब है कि हर जिनी को नाचने की कला आती है।"

"शायद।"

"पर मुझ तो यह कला नही आती।"

"सो तुम ने यह मान लिया कि तुम जि नी हो ?

"पर सीधे पैरो वाली जिन्नी, और सीधे रास्तो वाली !"

"यह सीधा रास्ता है ?"

"आप इसे उलटा भी कह सकते हैं, क्योंकि अगर कोई तसवीर का उलटी ओर से देखे तो उस वह उलटी ही दिखाई देती है।"

' मैं उलटी ओर खडा हूँ ?

"हम ने कल सोचा था कि हम किसी बात का फसला नही करेंगे, हमारी हर बात का फसला समय करेगा।"

कल की तरह आज भी कुमार न अलका की बात मान ली, और सारी बात समय के फैसले पर छोड दी। उस ने चुपचाप अलका के हाथ से प्लेट पकड ली, और नमकीन पराठे का एक कौर तोडकर शहद की कटोरी मे डुबोया और दायें पैर के अँगूठे से जमीन को खरोचने लगा।

अलका ने थरमस की काफी प्याले म डाली और प्याला कुमार की तरफ बढा दिया।

"मैं सोच ही रहा था कि अगर हम चाय या कॉफी भी ले आते एक बात उस बूढे न ठीक कही थी।'

"क्या ?"

"कि जिन्नियाँ कई तरह के खाने सजाकर जब भी चाह आप के लिए परोस सकती है ।'

"पर आप उस बूढे स एक बात पूछनी भूल गय ।'

'क्या ?"

"आप न जिन्नी पकडने का तरीका पूछ लिया, पर जिन्नी से अपने आप को छुडाने का तरीका नही पूछा ।'

'वही तरीका मैं खोज रहा हूँ । खोज लूगा ।

"आज इस नदी पर यही तरीका ढूढने आय थे ?'

'अगर सच पूछो तो, यही तरीका ढूढने आया था कल रात "

'कल रात कोई तरीका सूझा था ?'

"कल रात सपन म मैं ने यह नदी देखी थी ?"

मैं भी नदी के किनारे बैठी थी या नही ?"

"इसी तरह नीली चद्दर लपेटकर तू इस नदी म नहा रही थी ।"

"और मरे बालो म फूल भी लग हुए थे ?"

'मैं ने फूलो की यह टहनी तोडकर पानी म या ही नही फेंकी थी । तुम्हारे बालो म लगाने के लिए ही मैं ने पानी म रखी थी ।'

'फिर ?"

'सपन जब तक सच नही बनत, य इनसान के पीछे ही रहते हैं "

और आप न पीछा छुडाने क लिए इस सपने को सच कर के देख लिया ?"

हाँ ।

एक रात को मुझे भी सपना आया था ।'

"इस नदी का ।'

"नही ?'

'फिर ?

"मैं ने देखा कि आप के काम करने की मेज पर कागज रखकर उस पर इचो के निशान लगा रही हूँ ।'

फिर ?'

'निशान लगा-लगाकर मैं थक रही पर वह कागज जादू के जोर से जैसे बढता ही गया ।'

'फिर ?"

'फिर मैं न उस कागज से पूछा कि वह मेरे साथ इस तरह क्या कर रहा था ।'

"फिर ?'

"अजीब बात है ! जब मैं कागज से बातें करने लगी तो वह कागज भी मेरे साथ बातें करने लगा।"

'यू डैम !"

"उस कागज ने मुझे बताया कि वह मेरे सपनों का कागज था, और मैं चाहे सारी उमर उस पर इच्छा के निशान लगाती रहूँ, वह कभी खत्म नहीं हो सकता था।"

"यू डैम

"जिनी उफ डविल !"

'चलो अब नाश्ता करके लौट चलें। आज सवेरे से कोई काम नहीं किया।"

"चलो कुछ घण्टे काम कर लें, क्या पता, कल सवेरे फिर आना पड़े।

"यहाँ?"

'यहां नहीं। शायद उस पहाड़ की चोटी पर जाना पड़ेगा।'

"क्यों?"

'क्योंकि सपने हमेशा बढ़ते रहते हैं। चेतन प्रयास के पर चाहे उलटे हों पर सपनों के पैर सीधे होते हैं। आज मैं इस नदी तक आये थे, कल पहाड़ की चोटी पर चढ़ेंगे "

कुमार भौचक्का होकर अलका की ओर देखने लगा। उसे लगा कि यह स्वतन्त्रता के जिस शिखर पर खड़ा था, किसी दिन यह अलका उसे वहाँ से इस तरह खींचेगी कि वह शिखर से फिसलकर मुहब्बत की गहरी खाई में जा पड़ेगा।



'प्रयास के पर चाहे उलटे हों पर सपने के पैर सीधे होते हैं, अलका की यह बात कुमार के कानों में एक काँटे की तरह कई दिन चुभती रही। और फिर एक रात कुमार को सपना आया कि वह एक गद्दी मर्द की तरह अपनी कमर से एक लम्बा और काला रस्सा बाँधकर जंगल में भेड़ें चरा रहा था। भेड़ों को चराते-

चराते उसे बड़ी भूख लगी। पर आसपास के चश्मे के पानी के सिवा कुछ न था। पानी की उस ने दो अंजुलियाँ पी थी कि उसे लगा पानी उस के खाली पेट म चुभने लगा था। वह कलेजे पर हाथ रखकर कँटीले भाड़ो को मुह मारती हुई भेड़ों की तरफ देखने लगा। फिर उस ने आखें मली और देखा कि सुनसान जगल म एक परी उतर आयी थी। खाल की मोटी जूती उस ने पैरा मे पहनी थी जिस से वह बिना आहट के ठुमक-ठुमक चल रही थी। सिर पर उस ने लाल रंग का अंगरखा बाँध रखा था और उस की हरी कमीज की कमर से काले रेशम की एक रस्सी बँधी हुई थी। दोना बाँहें ऊपर उठाकर अपने सिर पर एक हँडिया उठायी हुई थी। जिस से उस के चेहरे का काफी हिस्सा उस की बाँहो म छिपा हुआ था। कुमार एक पेड की ओट म हो गया, ताकि वह परी जब पेड के पास से गुजरे, वह उस तरफ से उस का मुख देख सके। जिस पतली सी पगडण्डी पर वह परी चल कर आ रही थी, वह पगडण्डी इस पेड के पास स गुजरती थी। वहीं कुमार पेड की एक टहनी पर हाथ रखकर खड़ा था। वह परी जब पेड के पास आयी तो उस ने सिर स हडिया उतारकर पेड के तने से टिका दी और सिर का लाल अँगरखा उतार कर तने के पास बिछा दिया। हँडिया म रखे हुए पकवानों की खुशबू कुमार के कलेजे मे इस तरह मँडराने लगी कि वह पेड की ओट से हट कर हँडिया के पास आ गया। उसे इतनी भूख लगी हुई थी कि अगर वह हाडी पेड के तने की बजाय परी के सिर पर भी रखी होती तो वह एक झटके से हँडिया छीन लेता।

न न न " परी ने कहा, और कुमार का हाथ पकड़कर उस ने उसे जमीन पर बिछे हुए अँगरखे पर बिठा दिया। हँडिया का ढक्कन भी परी ने अपने हाथो से उतारा, और फिर भरी हुई हँडिया कुमार के सामने रख दी। कुमार अपनी भूख पर लजा गया, इस से आँख उठाकर व परी के चेहरे की ओर देखने का साहस न कर सका। वह दोना हाथो से हँडिया म से पकवान निकालकर खाने लगा। कुमार ने जब भरपेट खा लिया तो उस ने लजायी सी आखो से परी की ओर देखा। देखा, और देखता रह गया। अलका उस के सामने खड़ी थी।

कुमार जब सोकर उठा तो उस ने हाथ से अपने बदन को छुआ। उस की कमर स कोई रस्सी नहीं बँधी थी। पर उस लगा कि अलका सारी की सारी एक रस्सी बन गयी थी जो रात को सपनो म भी उसके साथ बँधी रहती थी।

आज कुमार ने सोचा कि सपना का मानने की जगह और उन की जिद पूरी करने की जगह वह एकदम बेलिहाज होकर इन सपनो को पूरा करने से इनकार कर देगा। नदी का सपना उस ने पूरा करके देख लिया था कुछ न बना था। सपने अब भी उस के पीछे पड़े हुए थे।

सुबह अलका आयी। उस के आने तक कुमार ने अलमारी में से एक गद्दिन पोशाक निकालकर बाहर रख ली थी। यह पोशाक बहुत पहले कुमार ने एक मेले में खरीदी थी, और उस ने सोचा था कि किसी दिन वह अलका को यह पोशाक पहनाकर एक तसवीर पेंट करेगा। कुमार ने मेज पर नया कैनवस लगा लिया।

"गुसलखाने मे जाकर कपडे बदल लो।"

"अच्छा।"

"यह जूती कुछ बडी लगती है, पर ठीक है।"

"यह कमीज भी खुली है।"

"यह खुली ही होती है। कमर में जब यह काली रस्सी बाँध लोगी तो यह खुली नही लगेगी।"

अलका जब कपडे बदल आयी तो खुले बाल लिये कुमार की कुरसी के सामने घुटने टेककर बैठ गयी, और बोली, "चोटियाँ बना दो, जैसी गद्दिनो की लम्बी, पतली चोटियाँ होती हैं।

कुमार ने नही, पर कुमार के हाथो ने एक मिनट के लिए कहना मानने से इनकार कर दिया। पर फिर कुमार ने चुपचाप अलका की चोटियाँ बना दी।

"अँगरखा मैं खुद बाँध लेती हूँ, पर यह रस्सी मुझ से ठीक नही बँधी।" अलका ने कहा और काले रेशम की रस्सी कुमार के हाथ मे दे दी।

कुमार ने जब अलका के गिर्द बाहें डालकर रस्सी को लपेटा तो उस ने चौंककर अलका के मुह की ओर देखा। सारी की सारी अलका से वह खुशबू आ रही थी जो कुमार को रात मे सपने की हँडिया से आयी थी।

कुमार ने एक कशिश लेकर अलका की कमर से रस्सी बाँध दी, पर उसे लगा कि उसे बडी भूख लगी हुई थी। सुबह का नाश्ता किये अभी आधा घण्टा भी नहीं हुआ था पर भरपेट किया हुआ नाश्ता न जाने कहा चुक गया था।

"काम करने से पहले कुछ खा लें। तुम्हें भूख नही लगी?"

"मैं अभी नाश्ता करके आयी हूँ।"

"नाश्ता मैं ने भी किया था।"

"कॉफी बना दूँ?"

"नहीं कुछ नहीं चाहिए।"

कुमार ने जिद मे आकर कुछ खाने पीने से इनकार कर दिया, और अपने आप को रंगों मे भिगोने लगा।

रंगों ने और रंगों में से उभरती तसवीर ने कुमार की जिद रख ली। ढाई घण्टे बीत गये। भूख कुमार को भुलाये रही। फिर एक अजीब बात हुई। कुमार को ज्यो ही तसवीर में एक हाँडी बनाने का खयाल आया कि भूख कलेजे में मँड-

खाने लगी।

"मुझे कॉफी बना दो, अलका। अगर हरिया कही बाहर दिखता है तो उसे कह दो नही तो खुद बना दो।'

हरिया कुमार का पहाडी नौकर था। काफी-चाय बनाता-बनाता आहिस्ता-आहिस्ता सब कुछ सीख गया था। पर उस का ज्यादा समय पानी भरने मे कटता था। पीने का पानी कुमार जिस चश्मे से मँगवाया करता था, वह चश्मा कुछ दूर था। इसलिए अलका ही वक्त-बेवक्त चाय बनाती।

अलका जब काफी बनाकर लायी तो कुमार ने काफी के प्याले को सूघकर देखा। प्याले म कॉफी की गन्ध आनी थी कि कुमार ने एक लम्बा सास खीचकर अलका के हाथो को तीन-चार बार सूघा। अलका के हाथा से वही गन्ध आ रही थी जो रात म कुमार को सपने की हाँडी से आयी थी। और कुमार को डर लगने लगा कि जिस तरह उस ने सपने म उस हँडिया के पकवान को बेसब्री से खाया था, उसी तरह वह अलका के जिस्म को भी बेसब्री से खाने लगेगा।

पर आज कुमार ने सपनो से बेलिहाज होने की जिद ले रखी थी। कॉफी का एक लम्बा घूट लेकर कुमार ने कहा 'अगर तुम्हे सारी उमर यही कपडे पहनने पडे अलका।"

"तो अलका उफ गड्रिन बन जाऊँगी जिस तरह अलका उफ जिन्नी बनी थी या अलका उफ डैविल बनी थी।"

'अलका उर्फ परी। मैं ने रात सपने म तुम्हे एक परी समझा था।"

"परी का मतलब होता है परो वाली। फिर आप ने झुंझलाकर परी के पख नही तोड दिये?"

कुमार एक मिनट सोच म पड गया। फिर हारी हुई हसी से कहने लगा "तुम मुझे क्या समझती हो, अलका? बहुत बेरहम दिल हूँ मैं।"

"रहम की मुझे कभी जरूरत नही पडी, इसलिए किसी के रहमदिल होने या बेरहम होने से मुझे कुछ फक नही पडता।"

"पर तुम यह तो सोचती हो कि मैं परी के पख तोड देने वाला आदमी हूँ?"

"जरूरत पडे तो उस के पर भी तोड देने वाला आदमी।"

कुमार चुप हो गया। फिर धीरे से बोला, 'यह तुम ने ठीक कहा है, अलका। जिस रास्ते पर मैं जाना न चाहूँ, अगर मेरे पर मेरे कहन म न हो, तो मैं ऐसा आदमी हूँ जो अपने पैर भी तोड ले।'

'मैं जानती हू।"

'रात को सपने मे मैं ने देखा था कि मैं जगल म भेडें चरा रहा हूँ सवेरे उठकर मुझे लगा, मेरी जसे सारी तसवीरें भेडें बन गयी हा मैं तसवीरो को

भेड़ें नही बनने दूगा तुम ने एक दिन कहा था कि सपना के पैर सीधे होते हैं और प्रयास के पैर उलटे। आज मैं तुम से शर्त लगा सकता हूँ, कि प्रयास के पर सीधे होते हैं, और सपनो के उलटे।"

'शत भले ही रख लीजिये। पर मुझे डर है कि कही यह शत उलटी न आ पड़े।"

"कैसे ?"

"यही कि शायद इस का उलटा सीधा देखने मे ही सारी उमर गुजर जाये।"

'मेरे पास उमर इतनी फालतू नही कि इस का उलटा-सीधा देखने म बिता दू। मैं काम करना चाहता हूँ।"

"और काम सपनो के सीधे पैरों से नही हो सकता ?—सीधे परो से, सीधे हाथो से।"

"जो हाथ जिस्म के खिलवाड मे उलझ जायें, वे काम नही कर सकते। मैं जिस्म के अंधेरे मे खो जाना नही चाहता।"

'मेरे खयाल मे जि दगी का रास्ता जिस्म की रोशनी मे मिलता है।"

'रोशनी मन की होती है, अलका तन की नही।"

"जिस के तन मे मन रोशन हो, वह जिस्म अँधेरा नही हो सकता।'

देखने को अलका की बात भारी पड रही थी, इसलिए कुमार खीझ उठा। अलका से उस ने यह बात इसलिए नही चलायी थी कि वह अपना नुक्ता नजर अलका को समझा सके, या अलका का समझ सके। पर बात खुद ही यह मोड ले गयी थी। इसलिए कुमार ने बात का रुख बदल दिया। उस के मन मे खीझ थी, और वह चाहता था कि अलका भी खीझ उठे। कहने लगा

'जिस्म अधेरा हो या रोशन पर तुम आज बीस रुपये नही कमा सकोगी।'

'न सही।'

"ये रहे उस दिन के नदी वाले पैसे।

'अच्छा।"

"शायद कभी न कमा सको।'

"न सही।'

"फिर क्या करोगी ?'

'बेरोजगार लोग क्या करते हैं ? कुछ नही करते।'

कुमार का खयाल था कि उस ने अलका को बडी कटीली बात कही थी, इसलिए अलका जरूर झुझला उठेगी। अगर उस की आँखो म आँसू नही भी उतरेंगे, तो उस की आवाज मे आँसू जरूर उतर आयेंगे। पर कुमार ने देखा कि अलका बड़े आराम से अपने बाजू के खुले कफो को मिला रही थी और बाहर

बरामदे मे पानी का घडा लेकर लौटे हुए हरिया को आवाज देकर कह रही थी कि काफी के खाली प्याला को उठाकर ले जाये।

कुमार को अपनी कही हुई बात पर पछतावा हुआ, और दिल की कडवाहट को हटाने के लिए बोला, "इधर देखो, रोशनी की ओर।"

"क्यो ?'

तुम्हारी आखें भर आयी है।"

"वह किस लिए ?"

'मेरी बात रुलाने वाली नही थी क्या ?"

'होगी, पर मैं रो नही सकती।"

"क्यो ?"

क्योकि जिस दिन मैं इस राह पर चली थी, आंखो के सारे आसू पीकर चली थी।"

'अलका !"

अलका ने कोई जवाब न दिया और पहाडी कपडे उतारकर उस ने अपने कपडे पहन लिये। अलका जब चली गयी तो कुमार को लगा कि बेगानगी का यह रास्ता जो अलका के सूखे आसुओ से भीगा हुआ था, बहुत फिसलन भरा रास्ता था। और किसी दिन किसी दिन इस रास्ते से कुमार का पैर जरूर फिसल जायेगा, और वह अपनत्व की गहरी खाइया म आ पडेगा।



अगले दिन सुबह अलका आयी तो कुमार रोज की तरह मेज पर काम नही कर रहा था। चारपाई पर लेटे हुए कुमार अपना सिर चारपाई के पाये पर रखा हुआ था। एक हाथ स वह पाये का सहला रहा था जैस वह काफी देर स पाय के साथ अपने दुख सुख की बातें करता हो।

"तबीयत ठीक नही है क्या ?

"ठीक है।"

' रात का देर तक काम करते रहे होग ?"

"नही।"

'कुछ पढते रहे क्या ?'

'नही, यो ही नीद उचट गयी थी।"

राते चाहे अधेरी हो चाहे उजली, कुमार रात को पहाडी पगडण्डिया पर घूमता था। वह अकसर अकेला घूमता। कभी कभार वह अलका के चौबारे के सामने से गुजरते हुए अलका को बुला लेता। पर पिछले कई दिना से उस ने अलका को नही बुलाया था।

' तुम कल शाम को क्या करती रही हो ?"

"कल ? जो रोज करती हूँ।"

"रोज शाम को क्या करती हो ?"

"कुछ भी कभी औरतो के साथ चश्मे से पानी भरने भी चली जाती हूँ।"

"तुम खुद पानी भरने जाती हो ? वह बनिये का लडका पानी भरा करता था ?"

"अब भी भरता है। यो भी कभी न कभी औरतो का साथ मुझे अच्छा लगता है। वे पानी भरते हुए ढेरो गीत गाती है।"

"तुम भी उन के साथ गाती हो ? '

"कई बार।"

'और क्या करती हो शाम को ?'

"कई बार मैं उन के साथ मटर तोडने चली जाती हूँ।"

"और जब मटरो का मौसम न हो ?"

"मोगरे तोडने चली जाती हूँ, मिर्चें तोडने चली जाती हूँ, पालक की पत्तियाँ तोडने चली जाती हूँ। और कुछ नही तो उन के साथ धान फटकने बैठ जाती हूँ "

"और ?'

'और कई बार उन से मैं गलीचे की बुनाई सीखती हूँ।"

' वह किस लिए ?"

"गलीचे म जब फूल बनते हैं तो मुझे अच्छे लगते है।'

"और ?'

"कई बार नाथी और रामो मुझ से पढने के लिए आ जाती हैं।'

' वे क्या पढती हैं ?'

"उन के खाविन्द फौज मे गये हुए हैं। उन का दिल चाहता है कि वे अपने खाविन्दो को खुद खत लिखें।"

"तुम कल शाम को क्या करती रही हो ?"

"कल ? कल सालिया के बूढ़े बाप के घुटनों पर तेल मलती रही हूँ। उस के घुटनों पर बड़ी सूजन थी। उन की गाय बीमार थी, सालिया और उस की घर वाली उस की दवा-दारू में लगे हुए थे।"

"तुम ने इन सब के साथ सम्बन्ध जोड़ लिये हैं कितनी आसानी से तुम रिश्ते जोड़ लेती हो तुम झट किसी को बहन कह लेती हो, किसी को अम्माँ, किसी को बापू ! परसों मैं चम्बे के पास से गुजर रहा था। मेरे पैरों की आवाज सुनकर चम्बे की अन्धी माँ मुझ से तुम्हारी बात पूछने लगी। उसे रोष था कि तुम तीन दिन से उस के पास नहीं गयी हो। उस की बेटी उस से ठिठोली कर रही थी कि तीन दिन से अम्माँ की लाठी खोयी हुई थी पर अलका ?"

"जी।"

"तुम्हारा और मेरा क्या रिश्ता है !"

"बीस रुपयों का रिश्ता ?"

कुमार ने एक उच्छ्वास लिया, और सिरहाने के नीचे हाथ डालकर बीस रुपये निकाले।

"ये लो अपने बीस रुपये।"

"पर आप ने कहा था कि अब मैं ये रुपये कभी न कमा सकूँगी।"

"कहा था, पर"

"मुझे रोजगार छूटने का कोई शिकवा नहीं।"

"आगे का मुझे पता नहीं, पर ये तुम्हारे पिछले हिसाब के रुपये हैं।"

"पिछले ?"

"हाँ।"

"कब के ?"

"रात के।"

"आज रात के ? इस गुजर चुकी रात के ?"

"हाँ।"

"वह कैसे ?"

"मेरा इकरार था कि मुझे जब भी [illegible] पड़ेगी, मैं बीस रुपयों से उस जरूरत की क़ीमत दूँगा।"

"हाँ, पर रात को मैं यहाँ कब [illegible]।"

"तुम रात को यहाँ थीं, [illegible] थी।"

"सपने में ?"

"हाँ, सपने में।"

अलका हँस पड़ी।

'यह हँसने की बात नही, अलका ! जिस इकरार को कोई दिन म पूरा कर ले रात को खुद ही उस इकरार के सामने झूठा पड जाये, उसे क्या कहा जाये !'

'उसे यह कहा जाये कि वह अपने आप मे गलत इकरार न किया करे।"

"मुझे गलत या ठीक की बहस मे नही पडना। पर जो इकरार मैं ने अपने आप से किया हुआ है, वह मैं जरूर पूरा करूँगा। अगर मेरे सपने मेरा इकरार तोडेंग तो मैं उस की कीमत दूँगा।"

"फिर तो मेरा इतजार पक्का हो जायेगा।"

'तुम्हारा मतलब है कि मुझे ऐसे सपने रोज आया करेंगे ? यू डेविल "

मेरा यह नाम पुराना पड गया है, आज कोई नया नाम रखना चाहिए था।

गुस्से मे कुमार के हाथ काँपने लगे। चारपाई के पाये को उस ने दोनो हाथों मे इस तरह कसा कि अगर पाये की जगह उस के हाथो मे अलका का गला होता, तो वह सचमुच घुट गया होता।

'किसी चीज का कोई बदल नही होता " अलका ने हँसकर कहा, और पाये के पास बठती हुई बोली, "अगर मेरा गला दबाने का दिल है तो दबा दीजिये। लकडी के पाये से अपने हाथ क्यो छीलते हो ?"

कुमार ने सचमुच ही चारपाई से उठकर दोनो हाथ अलका के गले पर कस दिये। हाथो के छूने की देर थी कि कुमार को लगा कि जसे उस के हाथ गुस्से मे नही, अलका के अग-अग को छूने की तडप म काप रहे थे।

कुमार ने हाथ इस तरह झटककर अलका की गरदन से दूर हटा लिये जैसे वे भूले-भटके आग की लपट से छू गये हो।

माई गाड " कुमार ने अपने माथे से घबराहट की बूदे पोछीं।

'आखिर ईश्वर को याद करने का भी तो कोई समय चाहिए !" अलका हँसी।

'तुम्हारा बस चले तो मुझे वान गॉग बनाकर छोडो।"

'वान गाग ?"

'एक बार वह किसी लडकी से मिलने गया था "

'फिर ?"

'उसे देखकर लडकी के बाप ने लडकी को दूसरे मे कमरे भेज दिया।"

'फिर ?"

'रात का वक्त था। मेज पर मोमबत्ती जल रही थी। वॉन गॉग ने मोमबत्ती की लौ पर अपना हाथ रख दिया।"

"क्या ?"

'उस न लडकी के बाप को कहा कि वह उतनी देर तक मोमबत्ती की लौ पर हाथ रखे रहेगा जितनी देर तक वह लडकी उस के सामने खडी रहेगी। तुम इस दीवानगी को समझ सकती हो ?

"हाँ।"

"मैं नही समझता।'

"उस लडकी का बाप भी नही समझ सका होगा।"

'नही, वह भी नही समझ सका था। कमरे म जब जलते हुए मास की बू फल गयी तो लडकी के बाप ने हाथ मारकर मोमबत्ती बुझा दी और उस दीवाने को कमरे से निकाल दिया।'

"अपनी दीवानगी की कीमत खुद ही चुकानी पडती है।'

"पर मैं यह कीमत चुकाने के लिए तैयार नही हूँ। यह दीवानगी मुझे कतई मजूर नही।"

"यह दीवानगी हर किसी के हिस्से नही आती। वान गाग और अलका जस लोग कभी कभी ही पैदा होते हैं।'

अलका ने जब वान गाग से अपनी तुलना की तो कुमार को हँसी आ गयी।

"अगर तुम वॉन गॉग के काल म पैदा हुई होती तो बेचारे को इतने दुखो म से न गुजरना पडता।"

'शायद मैं इस जन्म मे उस लडकी का हिसाब ही चुकता कर रही होऊँ, जिस ने जलते हुए मास की बू तो सूघ ली थी, पर साथ के कमरे से बाहर निकलकर नही आयी थी।"

"यू आर क्रेजी।"

"सिफ इतना खयाल रखना कि क्रेज' छूत की बीमारी होती है।'

'यह छून की बीमारी तुम्हें और वान गाग को ही हो सकती है। मुझे नही हो सकती"

कुमार ने लापरवाही से अलका का हाथ पकडा। हाथ को पहले अपन माथे से छुआया, फिर अपनी आँखो से, फिर अपने होठो से और फिर अपनी गरदन से। और फिर कहने लगा 'मैं तुम्हारे हाथो को चाहे एक बार छुऊँ, और चाहे हजार बार, यह छूत की बीमारी नही हो सकती।

'यह बीमारी होनी हो तो बिना छुए भी हो जाती है ' अलका न भी लापरवाही से जवाब दिया।

हवा बहुत तेज चल रही थी। अलका की पीठ खिडकी की तरफ थी। अलका न अपन बालो को चाहे कई बार अपन कानो के पीछे किया था, पर माथ की छोटी छोटी लटें नही टिक्ती थी। कुमार न आगे झुककर अलका के माथे पर बिखरे हुए बालो को मुटठी म भरा, और फिर उस के होठो की साँस म स एक

गहरी सांस भरकर बोला, "कोई जम मुझ पर असर नहीं कर सकता !"

"जम इतने सासो म नही होत जितन खयालो मे होते हैं।" अलका न कहा, और साथ के कमरे मे जाती हुई बोली, "आओ काम करें।"

कुमार के पर आदत की तरह साथ के कमरे म चले गये। उस के हाथा न एक आदत की तरह मज की बत्ती जलायी, पर उस लगा कि वह अभी इस कमरे म नहीं आया था, वह अभी अपन सोन के कमरे म ही खडा था।

"मरा खयाल है कि मुझे बीस रुपय और खर्चने पड़ेंगे " कुमार न कहा, और अलका का हाथ पकडकर उसे फिर पहले कमरे म ले आया।

कुमार ने कमरे का दरवाजा भिड़का दिया और खिडकी के परदे को ठीक करते हुए बोला, "यह सिफ जिस्म की मुहताजी है, अलका! और कुछ नहीं। अगर तुम्हारी जगह इस समय मरे पास कोई और औरत होती, तो भी इसी तरह होता।'

कुमार की बात बडी अस्वाभाविक थी। अत्यन्त अमानवीय। अलका की जगह अगर कोई और औरत होती तो वह इस बात का सह न पाती। अलका न सिफ सहन ही नहीं किया, उस ने इस बात को समझा भी, और चुपचाप अपने कपडे उतारने लगी।

"समझी ?" कुमार न पूछा।

'समझ गयी हूँ मैं, आप नही समझे।'

"मैं नही समझा ? मै क्या नही समझा ?'

"अपनी बात को।"

"मैं अपनी बात को नहीं समझा ?'

"आप यह भी नहीं समझे कि आप ने यह बात क्यो कही है, आप को यह कहने की जरूरत क्यों पडी ! अगर मेरी जगह कोई और औरत होती तो आप को यह कहने का खयाल न आता।'

"क्योंकि कोई भी ऐसे समय ऐसी बात न कहता।"

"इसलिए कि लोगो के मन का रिश्ता कोई नहीं होता। सिफ घडी-दो घडी के लिए वे रिश्ते का भ्रम डालना चाहते है। यह भ्रम चुप रहने से भी पड सकता है। इसलिए लोग चुप रहते हैं पर जब किसी को रिश्ते से डर लगता हो, तो खामोशी इस डर को बढा देती है इसलिए उसे बोलना पडता है, डर को तोडना पडता है।

"पर बीस रुपय का रिश्ता कोई ऐसा रिश्ता नही हो सकता जिस से किसी को डर लगे बीस रुपये दिये, रिश्ता बन गया, न दिये टूट गया।

"जैसी आप की मरजी हो, सोच लीजिये। पर कई रिश्ते ऐसे भी होते है जो न लफ्जो की पकड मे आते हैं और न रुपयो की पकड मे।"

कुमार ने एक हाथ से अलका को अपनी तरफ खींचा, पर अलका की बात सुनकर उस ने दूसरे हाथ से अलका को परे हटा दिया। उस के मन मे आया कि जो रिश्ता लफ्जों की पकड मे नही आ सकता, और जो रिश्ता रुपयो की पकड मे नही आ सकता उस रिश्ते को बाहो की पकड म भी नही लाना चाहिए। रिश्ता दिखाई नही देता था, पर जिस्म दिखता था। रिश्ता जाने कितनी दूर था, पर जिस्म बहुत नजदीक था

'रिश्ते को तुम खोजती रहो, मुझे सिर्फ तुम्हारा जिस्म चाहिए। कुमार ने कहा, और अलका के हाथ को इस तरह कसकर पकडा जैसे अब अलका ने उस को अस्वीकार कर देना हो।

कुमार की कोहनी अलका की पसलियो म चुभ रही थी। अलका ने कहा कुछ न था पर कुमार को लग रहा था कि उसे सास लेना मुश्किल हो रहा है। मुश्किल से सास लेते हुए अलका के होठो को कुमार ने अपने होठो म इस तरह कसा, जैसे वह अलका की साँस तोड देना चाहता हो। अलका का जो अस्तित्व कुमार की आवश्यकता बना हुआ था, उसी अस्तित्व से वह दुखा हुआ था। कुमार को अपनी नाडियो म उबलता हुआ खून आग की तरह गरम लग रहा था और आज वह जैसे जैसे अलका के कोमल बदन को अपने लोहे की तरह जलते हुए शरीर से लगा रहा था, वह सोच रहा था कि यह कोमल-सी लडकी इस लोहे से टूटती क्यो नही।

कुमार जल-जलकर हार गया, और फिर रोशनदान से आती हुई सूरज की एक किरण म उस ने देखा कि अलका वैसी की वैसी रेशम के गुच्छे की तरह उस की बाहो मे इकट्ठी हुई पडी थी।

कुमार ने जब कपडे पहनकर कमरे की अलमारी खोली तो अलमारी म से बीस रुपये निकालकर अलका को देते हुए उस ने कोई ऐसी बात कहनी चाही जो अलका का दुखा सके। पर उसे कोई बात न सूझी। कुमार के होठो पर बात कोई न आयी, पर एक ऐसी मुसकराहट उभर आयी जो देखनेवाले का अपमान कर रही थी।

कुमार के हाथो से रुपये लेते हुए अलका के होठो पर भी एक मुसकराहट आयी पर ऐसी मुसकराहट, जो सारे अपमान को पीकर एक मान से भर गयी हो।

"चालीस रुपय रोज। बीस रात के सपने के और बीस दिन के सपने की पूर्ति के।" अलका ने कहा।

"तुम्हारा खयाल है कि तुम रोज रात को मेरे पास एक सपना बेच सकोगी? मुझे आज के बाद तुम्हारा कोई सपना नहीं आयगा।'

'तो फिर रोज रात को जागते रहना" अलका ने कहा, और चारपाई

से उठकर कपडे पहनने लगी।

दोपहर तक अलका जिस तरह चुपचाप काम करती रही, दोपहर के बाद उसी तरह चुपचाप उठकर घर चली गयी।

कुमार ने रोटी खायी, कुछ घण्टे और काम किया, और दिन ढलते ही वह सामने के पहाड पर घूमने चला गया।

रात गहरी हो गयी थी जब कुमार लौटा। हरिया ने रोज की तरह रोटी बनाकर चूल्हे की धीमी आग मे गरम रखी हुई थी। कुमार ने रोटी खायी, और जब वह अपनी चारपाई पर सोने लगा तो उसे आनेवाली नींद से डर-सा लगने लगा। वह चारपाई से लपककर उठ बैठा, और उसे लगा कि अगर वह सो गया तो वह नींद से भीगी हुई पगडण्डी से फिसलकर सपने के गहरे कुएँ मे जा पड़ेगा।



अपनी जवानी के भरपूर साल कुमार ने आसानी से काट लिये थे। दौलत उसे इस तरह लगती थी जैसे अपने हुनर के एवज मे अपनी रोटी-कपडे का जिम्मा उस ने एक बार उसे सौंप दिया हो, और फिर बार-बार उसे कुछ कहने से सुखरू हो गया हो। दौलत ने खुद ही जैसे कुमार के लिए पहाड की इस वादी मे एक घर बना दिया था, नही तो उस ने इतना भी उसे नही कहना था। शोहरत उसे हमेशा इस तरह लगती थी जैसे एक बूढी माँ अधिक देर अपने बिगडे हुए बेटो के पास रहती है—क्योकि वह दुनियादारी की बडी जरूरत होती है, पर कभी कभी वह अपने अच्छे बेटो के पास आकर अपना दुख सुख रो जाती है। इसलिए वह जब भी आती थी, कुमार उस के पास बैठकर उस की बाते सुन लेता था। और उसे जब भी जाना होता कुमार उस की गठरी उठाकर मोड तक छोड आता था। ये बात अब भी वैसी थी, जैसी कुमार की जवानी के समय। पर कुमार की जवानी को उस के जिस्म की जिस भूख ने कभी नही सताया था, वह कुमार को अब सताने लगी थी। इस भूख का भी कुमार को इतना दुख नही था, अगर उसे

काम करना चाह।"

"मैं भी उन लोगों मे से हूँ। मैं यहाँ रहना चाहती हूँ। किसी के घर म किराये का कमरा लेकर रहना अब मुझे अच्छा नही लगता।"

"पर तुम्हें यहाँ रहना ही कब तक है, अलका! और छह महीने या एक साल। तुम्हारे पिताजी अब तुम्हारा विवाह करना चाहते है।"

"मैं न रहूँगी तो मेरे जैसा कोई और रहेगा। पर अब आप के पास कुछ पैसे आ जायेंगे, अब झुग्गियाँ जरूर डलवा दीजिये।"

"लौटकर आऊँगा तो सोचेंगे।"

"मुझे आप उन का डिजाइन बना दीजिये ।"

"और तुम मेरे आने तक उन्हें बनवा लोगी?"

"हाँ।"

'अकेली कैसे बनवाओगी?"

'चेतू चाचा सारा काम करेगा। सामान खरीदेगा, और मजदूर भी। उस के भी कुछ पैसे बन जायेंगे। आजकल उसे पैसे की बड़ी जरूरत है। उसे इस साल अपनी छोटी बेटी का विवाह करना है। इसलिए वह काम करने के लिए खुशी से तैयार हो जायेगा।"

"पर पैसे तो तब आयेंगे जब मैं वहाँ जाकर जमा लूंगा।"

"मैं अभी अपने पास से खर्च देती हूँ। आप वहां से भेज दीजियेगा, या वापस आकर लौटा देना।"

कुमार जानता था कि अलका अमीर लड़की थी, और उस से बढ़कर मन आयी करनेवाली। वैसे भी इस बात मे उस की किसी दलील को काटा नही जा सकता था। उस ने अलका के कहने पर दो दिनो मे ही झुग्गियों के डिजाइन बना दिये। चेतू चाचा को बुलाकर अलका को सारा काम सौंप दिया, और खुद दिल्ली जाने की तैयारी कर ली।

अच्छी भली सुबह गुजरी, अच्छी भली दोपहरी बीती, पर इस गाँव मे बीतने वाली आखिरी शाम ने जाने क्या किया कि कुमार को लगा जैसे वह उदास है। उदासी शायद कई दिनो से उस की तरफ सरकती आ रही थी, पर वह इस तरह पंजों के बल दुबककर आयी थी कि कुमार को उस के आने की आहट तक न मिली। उस ने तब जाना, जब वह प्रत्यक्ष उस के सामने आ खड़ी हुई।

"तो तुम आ गयी हो!" कुमार ने उदासी के चेहरे की ओर देखा। उस का गेहुँआ रंग शाम की लालिमा म दिप रहा था। उस ने कोई जवाब न दिया सिर्फ थोड़ा सा मुसकरायी और धीमे से कुमार का हाथ पकड़कर उसे बाहर बगीचे मे अमरूदों के एक पेड़ के पास ले गयी।

"बगीचे के इस कोने मे अलका की झिलमिलाती झुग्गी बनेगी "

"हाँ। पर वह इस खुशी में कितने दिन रहेगी ?"

"जितने भी रहे ।"

"और इन दिनों की कीमत मैं सारी उमर दे कर उसे दूंगा !"

"कभी तुम ने उस कीमत को भी देखा है जो उस ने तुम्हें पाने के लिए दी है अब भी दे रही है, और आगे भी न मालूम कब तक देगी ?"

"आह !"

"तुम ने उस के जिस्म का मोल बीस रुपये आंका, उस ने वह भी स्वीकार कर लिया।"

"मैं ने वास्तव में उस का मोल नहीं आंका था। मैं ने अपने और उस में अन्तर बनाये रखने के लिए ये रुपये फेंक दिये थे।"

"मैं जानती हूँ। पर तुम उस के इस साहस की ओर नहीं देखते, जिस ने इस अपमान को भी अपना मान बना लिया ?"

"यह तुम ने ठीक कहा।"

"तुम ने एक तरह से उसे वेश्या तक कहा।"

"मुझे यह नहीं कहना चाहिए था।"

"उस ने इस लफ्ज को भी जमीन से उठाकर उस ऊँची जगह पर रख दिया, जिस जगह पर सिर्फ बीवी का लफ्ज़ ही रखा जाता है।"

"मुझे याद है, उस ने कहा था—जिस आसानी से मैं वेश्या बन सकती हूँ, उसी आसानी से बीवी भी !"

"तुम्हें यह खयाल नहीं आया कि उस जैसी औरत अगर वेश्या भी होगी, तो सिर्फ एक ही मर्द की ?"

"मुझे उस का अपमान करने का कोई हक नहीं था। पर तुम्हें मालूम है, मैं किस बात से डरता था ?"

"तुम मुझ से डरते थे।"

"क्योंकि मैं यह जानता था कि तुम हरेक खुशी को बड़ी जल्दी सूंघ लेती हो।"

"खुशी वस्तुओं में नहीं होती, खुशी मन की अवस्था में होती है। मैं वस्तुओं को सूंघ सकती हूँ, उन के पीछे पड़ सकती हूँ, पर मैं किसी के मन की अवस्था को कुछ नहीं कह सकती।"

"मैं अलका को पाना नहीं चाहता, क्योंकि मैं उस से खो जाने से डरता हूँ।"

"इसी लिए मैं तुम्हारे पास आ गयी हूँ, पर अलका के पास जाने की हिम्मत मुझ में नहीं।"

"यह भी मैं जानता हूँ, कि तुम एक बार जिस के पास आ जाती हो उस के अंग-संग रहती हो। मैं उमर भर तुम्हें लिये लिये फिरूँगा।"

"मैं तुम्हारे कई काम सँवारूँगी।"

"कौन-से काम ?"

'तुम जब तसवीरें बनाओगे, मैं उन की आँखों में काजल लगा दिया करूँगी "

"पर "

"मैं जिन लोगों की दवात में सियाही भरती हूँ, जानते हो, उन की क़लम में से कैसे गीत निकलते हैं ?'

"पर जिन हाथों में कलम पकड़ी हुई हो या ब्रश पकड़ा हुआ हो, तुम ने अभी उन हाथों की किस्मत देखी है ?"

"किस्मत को वस्तुओं के गज़ से नहीं मापना चाहिए।"

"न सही। अवस्था के गज़ से सही। पर यह अवस्था कैसी है। हर साँस के साथ ही मेरे वक्ष में एक दर्द जाग उठता है "

कुमार ने अपना नीचे का होंठ अपने दाँतों में काटा, और आँखें बन्द कर के बायें हाथ से अपनी छाती को दबाया।

'आप की तबीयत ठीक नहीं " अलका ने धीरे से अपना एक हाथ कुमार के कन्धे पर रखा। कुमार ने गरदन घुमाकर देखा, अलका उस के पीछे खड़ी थी। कुमार चुपचाप अलका के चेहरे की ओर देखता रहा। फिर उस ने कन्धे पर रखा हुआ अलका का हाथ धीरे से अपने हाथ में लिया और होंठों पर रख लिया।

कुमार चुपचाप अलका का हाथ पकड़कर धीरे धीरे बगीचे से बाहर आ गया और बाहर की कच्ची सड़क से होता हुआ सामने के पहाड़ की पगडण्डी पर चढ़ने लगा। कहीं-कहीं कोई कँटीली झाड़ी अलका के कपड़ों में उलझ जाती थी। कुमार आगे-आगे चलता टहनियों को हाथ से हटाता, अलका के लिए रास्ता बनाते हुए पहाड़ की पगडण्डी पर चढ़ता गया।

एक जगह एक चौड़ा पत्थर आसन की तरह बिछा हुआ था। कुमार ने अलका को उस पत्थर पर बिठा दिया। खुद भी उस के पास बैठ गया। फिर धीरे से उस ने अलका का सिर अपने सीने में उस जगह से सटा लिया जहाँ उसे साँस लेने में दर्द हो रहा था।

एक ठण्डा मरहम सा कुमार के सीने पर लग गया। वह दायें हाथ से अलका के बालों को सहलाने लगा। अलका के लिए यह इतना नया अनुभव था कि वह उस से इस अनुभव का ताप न सह सकी। उस की आँखों में आँसू उमड़ आये।

कुमार ने अपने पोरों से अलका के आँसू पोंछे और फिर धीरे से उस के होंठों को चूमता हुआ बोला, 'पगली ! तुम तो कहती थी कि मैं जब इस रास्ते पर चली थी तो आँखों के सारे आँसू पीकर चली थी ?

अलका का गला भर आया। वह कुछ बोल न सकी। कुमार ने एक छतराये

पेड़ की तरह अलका को अपने गले से लगा लिया—एक कोमल सी बेल को अपने गले से लगा लिया।

अलका की हिचकियाँ बँध गयी। कुमार ने एक एक हिचक को चूमा, और फिर अलका का माथा चूमकर बोला, "तुम मुझे माफ नही कर सकती ? मैं ने तुम पर बहुत सख्तियाँ की हैं।"

अलका ने अपनी काँपती उंगलियो से कुमार के होंठ चुपा दिये। फिर एक गहरी साँस लेकर वह बोली, "मैं ने सख्तियो की आदत बना ली थी, इसी लिए मैं कभी नही रोयी थी। पर मैं ने इस नरमी की आदत नही बनायी थी"

कुमार की जिन्दगी मे यह शायद पहला अवसर था कि कुमार की आँखे सजला गयी। उस ने भीगी आवाज से कहा, "अगर तुम कहो तो दिल्ली न जाऊँ। मैं काम करने के लिए नही जा रहा मैं तुम से भागकर जा रहा हूँ।"

अलका कुमार के चेहरे की तरफ देखने लगी। चन्द्रमा ने बादल का एक टुकड़ा हाथ से दूर हटाया, और कुमार के चेहरे की तरफ देखने लगा। वह भी शायद अलका की तरह चकित था।

"जिस ने घने जंगल मे चाँदनी का जादू न देखा हो, उसे मेरी हालत का पता नही चल सकता। तुम्हारा जादू इस चाँदनी से भी गहरा है, जादूगरनी।" कुमार ने अलका की गरदन को अपने होंठो से छुआ।

अलका की गरदन को कुमार के होंठो ने भी छुआ, और होंठो से निकलकर गहरी साँस ने भी।

"आप बड़े उदास है।"

"इतना मैं जिन्दगी मे कभी उदास नही हुआ।"

"चाँदनी का यह जादू कैसा है। जादू उदासियाँ देते है ?"

"उन की दी हुई हर चीज के पीछे एक गहरी उदासी होती है। क्योंकि जादू उतर जानेवाली चीज है।"

"मेरा जादू भी उतर जायेगा ?"

"अब मेरे अपने बस म कुछ नही रहा अलका। सब कुछ तुम्हारे बस म हो गया। यह जादू तुम्हारे रहम पर रहेगा।"

"आप इसी लिए उदास हैं ?"

"मैं ने इस जादू को तोड़ने की पूरी कोशिश की थी। मैं ने इसी लिए तुम्हारे जिस्म की बीस रुपये कीमत रखी थी। सोचता था, सारा हिसाब साथ के साथ निपट जायेगा पर जिन औरतो के साथ हिसाब निबटाये जाते है, उन के जादू नही होते।"

"अगर हिसाब निबट जाता, आप खुश होते ?"

"मैं बड़ा स्वतन्त्र होता इसी लिए खुश होता। खुश अब भी हूँ, शायद इतना

खुश पहले कभी नही हुआ। पर इस खुशी मे एक अजीब तरह का दर्द मिला हुआ है। तुम्हे एक बात बताऊँ?"

"क्या?"

"जैसे-जैसे यहा से जाने का समय निकट आता गया, वैसे वैसे मेरे सीने म दद होने लगा। सचमुच का दद, जैसा निमोनिया मे सास लेते समय होता है। पर मैं ने जब तुम्हारा सिर अपने सीने मे लगाया, मेरा दद जाता रहा। यह एक बहुत बडी मुहताजी हो गयी है"

कुमार ने अलका के सिर पर रखा हुआ हाथ उठा लिया और उस से अपनी दोनो आँखें ढँक ली। एक टटती सी आवाज कुमार के मुह से निकली, 'मैं ने आज तक हर स्वाद से अपने आप को मुक्त रखा हुआ था। छुटपन में मा जब गरम पराठे बनाती थी तो मैं जान-बूझकर रात की बासी रोटी खाया करता था कि कही मेरी जीभ को किसी स्वाद की आदत न पड जाये अलका, अलका देख, मैं किस तरह तुम्हारे अधीन हो गया हूँ!"

चुप की चुप बठी हुई अलका को कुमार ने दोनो बाँहो से झकझोरा, "अलका, मुझे बताओ कि कभी मुझे छोड तो नही जाओगी? इस चाँदनी का जादू कभी न उतरेगा? इस मेरे सीने मे जब दद होगा, तुम अपना सिर मेरे सिर पर रख दिया करोगी? अलका अलका, अगर तुम कभी मुझे छोडकर चली गयी"

अलका ने अपनी दोनो आँखें इस तरह भीच ली, जैसे वह अपने सारे के सारे आँसू पी रही हो।—सिफ अपने ही नही, कुमार के आसू भी।

"तुम बोलती क्यो नही?

"इसलिए कि मेरा जादू चल गया है।'

"तुम बहुत खुश हो, अलका?'

'मैं बडी उदास हूँ।'

'क्यो उदास हो?'

"मुझे नही मालूम था कि मेरे जादू का यह असर होगा।"

"तुम जो कुछ चाहती थी, तुम न पा लिया। अगर कुछ गँवाया है, तो मैं ने गँवाया है। तुम ने कुछ नही गँवाया।'

'मैं इसी लिए उदास हूँ कि आप को वह गँवाना पडा, जिसे आप गँवाना नहीं चाहते थ।"

'पर मैं अपनी स्वतन्त्रता को गँवाये बिना तुम्हें नही पा सकता, अलका! मैं तुम्हे पाना चाहता हूँ।"

"मुझे पाने का खयाल छोड दीजिए।"

'यह तुम कह रही हो, अलका!'

"हाँ।"

"पर मैं तुम्हारे बिना रह नही सकता मेरे जिस्म म एक आग जसी भूख जग उठी है।"

"मैं आप की कीमता पर ही आप को अपना जिस्म दे दिया करूँगी।

'पर बीस रुपय देकर तुम्हारे जिस्म को लेना तुम्हारे जिस्म का अपमान है अलका।

मुझे यह कभी अपमान नही लगा, फिर भी कभी नही लगेगा।"

'पर मुझे यह हमेशा लगता रहा है कि मैं तुम्हारा अपमान करता हूँ।

'पर यह अपमान करके आप खुश हाने थे।"

क्योंकि इस तरह मेरी स्वतन्त्रता पास रहती थी।'

'वह अब भी आप के पास रहनी चाहिए।'

'पर मैं दो चीजें नही पा सकता, अलका। मुझे एक चीज खानी पडगी। ही बनाओ, तुम दोना चीजें पा सकती हो?"

हाँ।'

"मुझे भी, और स्वतन्त्रता को भी?"

"मैं ने दोना पायी हैं।"

यह तुम कसे कह सकती हो—अगर कल मैं दिल्ली चला जाऊँ, तो वहाँ मैं दो महीने रहूँगा। क्या तुम सोचती हो कि वहाँ मैं किसी और औरत के पास नही जा सकता?'

'जा सकते हो पर जाओगे नही। जाओगे भी तो मैं आप के साथ होऊँगी। आप अकेने नही जाओगे।

यह कैसे हो सकता है?

'जाकर देख लीजियगा।'

पर मैं यह देखकर क्या करूँगा मैं तुम्हें पाना चाहता हूँ।"

'मुझे आप कभी नही पा सकते।'

कब तक नही पा सकता?'

जब तक आप की मुहब्बत और आप की स्वतन्त्रता मिलकर एक नही हो जाती।'

पर ये दोनो अलग अलग चीजें हैं अलका। य कस मिल सकती हैं? कभी नही मिन सकती।

जिस दिन ये दाना मिल जायेंगी, उसी दिन के बाद आप उदास नही हाग।

पर अलका "

'आओ चलें आप को सुबह बहुत जल्दी उठना है।'

'मुझ सुबह उठन की कोई जल्दी नही।"

"आप को सुबह की गाडी से दिल्ली जाना है।

"मैं दिल्ली जाकर क्या करूँगा।"

"काम करोगे।"

"तुम मेरे साथ चलोगी?"

"मैं यहीं रहकर काम करूँगी।"

"झुगिया डलवाओगी?"

"हां।"

"लौटकर बनवा लेंगे।"

"मैं ने लकड़ी मँगवा ली है। छत के लिए स्लेटें भी कल आ जायेंगी। मिस्त्री और मजदूर कल सुबह आठ बजे आ रहे हैं।"

"उस की कोई बात नहीं। पर क्या तुम चाहती हो कि मैं अकेला जाऊँ?"

"हां, मैं चाहती हूँ कि आप अकेले जायें।"

"तुम मुझे पाना चाहती थी, अलका! अब जब मैं अपना सब कुछ तुम्हारे हवाले कर रहा हूँ तुम कुछ भी नहीं पाना चाहती?"

"इस बात का जवाब मैं फिर दूंगी।"

"कब?"

"जब आप लौट आयेंगे।"

उस रात कुमार को सोते समय एक अजीब खयाल आया कि कल सवेरे जब वह दिल्ली जायेगा, तो यह मीलों की दूरी उसे उदासी की अँधेरी कन्दरा में ले जायेगी।



कुमार दिल्ली चला गया। उस का दोस्त उसे स्टेशन पर लेने आया था। कुमार उसे पाँच साल बाद मिल रहा था। पर कुमार को भी, और उस के दोस्त को भी लगा जसे वे पाँच साल के बाद नहीं, पच्चीस साल के बाद मिल रहे हों, और इन पच्चीस सालों में उन दोनों की जून बदल गयी हो।

"लोग कहते हैं कि उमर के साथ चेहरे का तेज ढल जाता है। जब मैं गाडी के डब्बे का देख रहा था तो सोच रहा था कि अब तुम्हारे बाल सफेद हो गये होंगे। चहरे पर उमर की झुर्रियाँ पड गयी होंगी। अगर ज्यादा नही तो कुछ माटे हो ही गये होंग। और साथ ही पहाडो मे रहते रहते तुम्हें ढग से कपडे पहनने की आदत भी नही रही होगी " केवलकृष्ण चकित होकर वार-वार कुमार के चेहरे की ओर देखत हुए बोलता गया, "पर कमाल है! तुम पहले भी खूबसूरत थ। पर इतने नहीं। मुवक से, बुत की तरह तराशे हुए हो! जाने तुम वहा किस चश्मे का पानी पीते हो! तुम्हारे चेहरे पर शायद इसी को चेहरे पर नूर की आमद कहते हैं "

कुमार चुप रहा। उस ने जरा हसकर केवलकृष्ण की ओर देख भर लिया। केवलकृष्ण कुमार के साथ पढ़ा करता था। कुमार के साथ ही उस ने आर्ट का अध्ययन किया था। पर धीरे धीरे उस का सम्बन्ध सरकारी दफ्तरो से इतना जुड गया कि उस के लिए उस ने कई छोटे छाटे आर्टिस्ट नौकर रख लिये थे। एक फ़र्म के मालिक से बढते बढते वह एक अच्छा ठेकेदार बन गया था। दिल्ली म उस की अपनी कोठी थी, अपनी गाडी थी, और जसे जैसे रुपया बैंक म बढता गया वैसे वैसे उस के शरीर का मास भी बढता गया और जितना उस के शरीर का मास बढता गया उतना ही उस का रग फीका पडता गया। बडे-बडे महग कपडो को भी उस के बदन पर देखकर ऐसा लगता था जसे दिल्ली के दर्जियो को कपडे सीने की जाँच न रह गयी हो पर यह सारी बात कहने की नही थी, इसलिए कुमार ने कुछ न कहा।

केवलकृष्ण ने अपनी कोठी म एक एका त कमरा कुमार के लिए सजा रखा था। कुमार ने कुछ दिन आराम किया, फिर उस ने केवलकृष्ण के साथ बैठकर काम का पूरा ब्योरा समझा। केवलकृष्ण ने उसे बताया कि होटल बनानेवालो की मुख्य बात यह है कि होटल किसी तरह भी विदेशी होटलो की नकल न हो। वे ऐसा भारतीय माहौल उभारना चाहते थे जो आज तक भारत के किसी और होटल मे न था। वे साज सगीत आदि भी एकदम भारतीय रखना चाहते थे। पिछले अनुभव से केवलकृष्ण को विश्वास हो गया था कि कुमार की कल्पना मे एक ऐसा नयापन था जो विदेशो का अनुकरण करनेवाले आर्टिस्टो मे कभी नही आ सकता था।

वास्तविक शब्दो म जिसे पन्द्रह दिन और पन्द्रह रातो का व्यतीत कहते हैं—कुमार ने उसे इस काम मे लगा दिया। काम का नक्शा उभर आया। इस दिमागी मेहनत के बाद अब ज्यादा काम कागजो मेहनत का था। केवलकृष्ण ने कुमार की सहायता के लिए दो नये मेहनती आर्टिस्ट दे दिये।

होटल के सब से बडे कमरे के वातावरण मे दूसरे कमरो से वैशिष्टय आव-

यक था। मालिकों ने सब से पहले उसी कमरे का भीतरी ब्योरा तैयार करने को कहा था। उसे तैयार कर लेने के बाद जैसे काम का बाकी हिस्सा पूरा हो गया।

कुमार ने कमरे के चारों कोनों में चार बुत दिखाये। एक बुत में सारंगी बज रही थी, एक में सितार, एक में शहनाई, और एक में बाँसुरी। कुमार ने बताया कि जिस समय सारंगी का रिकार्ड लगाना होगा, सारंगीवाले बुत में रोशनी जल उठेगी। बाकी तीन कोनों के बुत अँधेरे में रहेंगे। जिस समय सितार का रिकार्ड लगाना होगा, सितार के बुत की रोशनी जल उठेगी, और बाकी के तीन बुत अँधेरे में रहेंगे। इसी तरह सारे बुत क्रम से अपने संगीत के अनुसार रोशन होंगे।

कुमार जब से दिल्ली आया था उस ने अलका को कोई खत नहीं लिखा था, अलका को सोचा तक नहीं। इस में उस के काम ने उसे बहुत सहायता दी थी। बीस इक्कीस दिन के बाद अलका का ही एक छोटा सा खत आया, जिस में उस ने बगीचे की झुग्गियों के विषय में लिखा था और उसी के बारे में कुछ पूछा था। जैसे साधारण सवाल थे, कुमार ने एक खत में वैसा ही जवाब दे दिया। साथ ही केवलकृष्ण से लेकर दो हजार रुपये भी भेज दिये।

एक महीना गुजर गया। कुमार को न अलका की सुधि ने सताया, और न किसी गहरी उदासी ने। तीन चार बार कुमार ने अलका को सपने में जरूर देखा, पर सपने में किसी किस्म की तल्खी नहीं होती थी। अलका चुपचाप कोई तस्वीर बना रही होती या वह बाग को पानी दे रही होती, और या मुंह दूसरी ओर घुमाकर कोई किताब पढ़ रही होती। इन साधारण से सपनों ने न तो कुमार के मन में कोई लहर उठायी, और न जिस्म में। वैसे कुमार थोड़ा हैरान था कि अलका को देखते ही उस के जिस्म में जो आग सुलग उठती थी, किसी सपने में भी उस आग का सेक क्यों नहीं था। यह बात कुमार को अच्छी लग रही थी। उसे लग रहा था कि उस के स्वभाव की स्वतन्त्रता दिनोदिन उस के पास लौट रही थी।

करीब डेढ़ महीना हो चला। कुमार को विश्वास हो गया कि अब जब वह अलका के पास लौटेगा तो यह उस के लिए, और अलका के लिए एक नया अनुभव होगा। उसे लगता था जैसे उस ने अपने जिस्म की भूख को जीत लिया हो। अन्तर के किसी कोने में वह अलका का आभारी था कि उस ने जोर देकर उसे दिल्ली भेज दिया था और कुमार सोच रहा था कि अगर कहीं उस रात अलका भी उस चांदनी के जादू में आ जाती, तो कुमार शायद सारी उमर के लिए एक मानसिक गुलामी सहेज लेता। उसे विश्वास होता जा रहा था कि उस रात उस ने जो कुछ अलका को कहा था वह जंगल में छिटकी हुई चाँदनी के असर में कहा था। वह सिर्फ दिमागी उलझाव था, जो चाँदनी में समन्दर की लहरों की तरह उमड़

आया था।

अपनी इस स्वतन्त्रता को परखने के लिए कुमार को एक ख्याल आया। केवलकृष्ण चाहे उस का पुराना दोस्त था, पर कुमार ने जो अपनी जवानी म ही बुजुर्गी का वश ओढ लिया था, उस कारण केवलकृष्ण न कभी कुमार के साथ उस की व्यक्तिगत जिन्दगी की कोई बात नही पूछी थी फिर भी कुमार का यह बात कठिन न लगी। एक दिन उस न केवलकृष्ण से कहा कि वह इतने दिन लगातार काम करके बहुत थक गया है, एक दिन वह खाली रहकर शराब पीना चाहता है और उस रात उसे एक औरत भी चाहिए।

"अच्छा," केवलकृष्ण ने छोटा सा उत्तर दिया कुमार ने किसी खास रात की बात नही की थी, इस लिए इस बात को वह भी भूल गया।

चार पाँच दिन बीते होंगे। कुमार जब एक रात अपन कमरे म लौटा तो उस के कमरे म एक बीस-बाईस साल की लडकी बैठी हुई थी। कुमार का केवलकृष्ण से कही हुई बात फिर भी याद न आयी। उस ने समझा कि उस लडकी ने गलती स यह कमरा केवलकृष्ण की बीवी का समझ लिया होगा, तभी वह वहा आ बैठी।

वह लडकी कुरसी से उठ खडी हुई। वह हँसी—जैसे पहले से जानती हो। कुमार का उस की हँसी परायी-सी लगी। कुमार के आधे उतारे हुए कोट को उस ने आगे बढकर थाम लिया, और कोट की दूसरी बाजू उतरवाकर कोट को खूटी पर टाग दिया। कुमार हैरान था।

कुमार अभी चकित खडा हुआ था कि उस लडकी ने मेज पर रखी हुई शराब की बोतल को सधे हुए हाथो से खोला और गिलास मे बर्फ डालकर उस ने एक भरा हुआ गिलास कुमार के सामने कर दिया।

कुमार का बात याद आ गयी, पर वह हैरान था कि केवलकृष्ण की पिछली शामे सारी की-सारी उस के साथ बीती थी, उस ने खाना भी उसी के साथ खाया था पर इस लडकी के बारे मे उसे कुछ नही बताया।

शराब का गिलास उस ने पकड लिया। पर कमरे मे खडे हुए उसे यह नही महसूस हो रहा था कि कमरा उस का है, और आज उस के कमरे मे कोई मेहमान आया हुआ है। उसे लग रहा था जसे वह अपने कमरे मे जाते हुए भूल से किसी दूसरे के कमरे म आ गया हो।

'बठिए " उस लडकी ने जब हाथ से कुरसी की तरफ इशारा किया तो कुमार को खयाल आया कि अभी तक वह खडा हुआ है।

कुमार चुपचाप कुरसी पर बैठ गया, और उस ने अपने हाथ म पकडे गिलास मे से एक घूट लेकर उस लडकी के चेहरे की तरफ इस तरह देखा जैसे उसी से पूछ रहा हो बताओ, अब तुम से क्या बात करूँ।

लडकी ने शराब का एक और गिलास भरा, और कुमार की तरफ देखती हुई हाथ ऊँचा उठाकर कहने लगी, "आप की सेहत के लिए।"

कुमार ने मुसकराकर उस लडकी की तरफ देखा। वह खूबसूरत थी। उस के होठ कुछ मोटे थे, पर उस के मुख पर फब रहे थे। उस का जिस्म गठा हुआ था। उस की पीठ का काफी हिस्सा नगा था, और कुमार को खयाल आया कि अगर पीठ का इतना हिस्सा नगा रखना हो तो जिस्म की गठन इस से कुछ कम होनी चाहिए, और साथ ही माथा कुछ और चौडा। और कुमार को खुद ही खयाल आया कि वह लडकी को देखते हुए इस तरह जाच रहा है जसे उसे सामने बिठाकर उस पेंट करना हो।

जाने कुमार से यह कसे पूछा गया, "एक रात के कितने रुपये मेनल न देने तय किये है?' लडकी चुप-सी रह गयी। कुमार ने सोचा नही था कि वह यह बात पूछेगा। पूछने की जरूरत भी नही थी। कुमार को खुद ही अपनी बात अच्छी न लगी।

आप रुपयो की फिक्र न करें। केवल साहब ने मुझे दे दिए हैं। साथ ही ऐसे वक्त ऐसी बात नही करते " लडकी ने कहा, और मेज पर पडी हुई शराब की बोतल लाकर कुमार के गिलास म डालने लगी।

'जब मन का रिश्ता कोई न हो तो लोग रिश्ते का भरम डालना चाहते हैं। यह भरम चुप रहने से ही पड सकता है। इसलिए ऐसे मौका पर लोग चुप रहत हैं ' कुमार को अचानक अलका की कही हुई बात याद हो आयी, और साथ ही अलका भी याद हो आयी।

'यू डैविल!" कुमार के मुह से निकला।

लडकी घबराकर कुरसी मे उठ खडी हुई और कुमार ने चौंककर उस की ओर देखा, "मैं ने तुम्ह नही कहा।"

कुमार हाथ मे पकडे हुए गिलास को एक सांस म पी गया, और गुसलखान म जाकर कपडे बदलने लगा।

कुमार जब कमरे म वापस आया तो वह लडकी कुमार के बिस्तर पर लेटी हुई थी। बिस्तर की चादर उस ने ओढी हुई थी। अपने उतारे हुए कपडे तह करके उस न मेज पर रख दिये थे।

बिस्तर की ओर न जाकर कुमार ने मेज की दराज खोली और सिगरेट निकालकर पीने लगा। कुमार को सिगरेट पीने की आदत नही थी। गाव मे वह कई कई महीने सिगरेट नही पीता था। शहर मे जब कभी वह रग लेने के लिए जाता था तो साथ मे सिगरेट की दो डब्बियाँ भी ले आता। यहाँ दिल्ली आकर उस ने दो डब्बिया खरीदी थी जो पिछला सारा महीना खत्म नही हुई थी। पर आज कुमार ने एक सिगरेट पी दूसरी पी, और फिर दूसरी सिगरेट की आग से

तीसरी सुलगा ली।

"आप बहुत सिगरेट पीते हैं ? सभी आर्टिस्ट बहुत पीते है' उस लडकी ने कहा। कमरे की खामोशी टूट गयी। कुमार ने हाथ के सिगरेट को राखदानी मे रख दिया।

कुमार बिस्तर के पास खडा होकर काफी देर लडकी के चेहरे की ओर देखता रहा। फिर उस ने हाथ से उस पर ओढी हुई चादर की नुक्कर एक ओर हटायी। चादर कधे से हटायी, छाती से हटायी, कमर तक हटा दी। कुमार जाने क्या सोच रहा था। अगर इस वक्त उसे कोई देखता, तो उसे लगता जैसे कुमार एक डाक्टर था, और मरीज को बडे गौर मे देखते हुए उस के मर्ज के बारे मे सोच रहा था।

उस लडकी ने कुमार के खयालो को तोडते हुए पूछा, 'आप दिल्ली नहीं रहते ?'

"मैं ?"

"केवल साहब कहते थे कि आप कही पहाड पर रहते है। वहा आप अकेले रहते हैं ? अगर मैं वहा अकेली रहती होऊँ तो मुझे बडा डर लग।"

'डर ? मुझे क्या डर है यहा !' कुमार को अलका के शब्द याद हो आये।

"यू डैम" कुमार के मुँह से निकला।

लडकी घबराकर चारपाई पर उठ बैठी।

"सारी, तुम्हे नही कहा !" कुमार ने नरमी से कहा और फिर उस से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

"कान्ता।'

'तुम रात को वापस कसे जाओगी ?"

"अगर जल्दी खाली हो गयी, तो टक्सी लेकर चली जाऊँगी, नही तो सुबह चली जाऊँगी।"

कुमार को खयाल आया कि इस लडकी को जल्दी फारिग हो जाना चाहिए। लडकी के साथ बिस्तर पर बठते हुए उस ने बत्ती बुझा दी।

कुमार पल भर बठा रहा। और दूसरे ही पल चौककर उठ खडा हुआ, और खिडकी की तरफ देखते हुए बोला, "बाहर खिडकी के पास कोई खडा हुआ है।'

"उस तरफ बगीचा है। इस वक्त बगीचे म कोई नही हो सकता।'

"अभी कोई उधर से गुजरा है। उस की छाया खिडकी पर पडी थी।

कान्ता बिस्तर से उठ बैठी। अपने ऊपर चादर लपेटकर उस ने एक हाथ से खिडकी का परदा हटाया और बाहर बगीचा देखकर बोली, "आप खुद देख लीजिये। सडक की रोशनी बगीचे मे पड रही है। बगीचे मे किसी की छाया तक नही '

कुमार ने भी काता के पास जाकर खिडकी से बाहर देखा। बाहर कोई नही था।

काता बिस्तर पर लौट आयी। कुमार ने खिडकी का परदा ठीक किया और काता के पास जाकर बिस्तर पर बठ गया।

"आप अब भी खिडकी की तरफ देख रहे है। मान लीजिये, आप को ऐसे ही शक हो गया। यहा कोई नहीं आ सकता।" का ता ने कुमार की बाँहों पर अपना हाथ रखा। कुमार ने खिडकी से ध्यान हटा लिया और दोनो आँखें भीचकर काता पर ओढी हुई चादर को एक तरफ हटाने लगा।

कुमार के हाथ ठिठक गये—"बाहर किसी के चलने की आवाज आ रही है।"

'बगीचे से चलने की आवाज आ ही नही सकती।" कान्ता ने कहा।

'खिडकी की तरफ नही, दरवाजे की तरफ। बाहर लकडी के फश पर कोई चल रहा है।'

का ता आहट लेने लगी। कही कोई आवाज नही थी। वह कुमार के हाथ को झकझोरकर बोली, "अगर आप ने शराब ज्यादा पी होती तो मैं समझती नशे मे हैं। पर आप ने तो जमकर पी भी नही।"

'मैं नशे मे नही, का ता! बाहर सचमुच कोई चल रहा है। पैरो की आवाज साफ सुनाई दे रही थी।'

'अगर कोई बाहर आया भी हो तो क्या है! मैं ने दरवाजे की साकल चढा दी है।"

कुमार ने चपचाप अपना सिर सिरहाने पर रख दिया। कान्ता ने कुमार का हाथ पकडा और उस की बाह को अपनी पीठ के गिर्द लिपटा लिया।

तुम ने काच की इतनी चूडियाँ क्यो पहन रखी है?"

'काच की चूडियाँ?"

'इन के खनकने की इतनी आवाज हो रही है।"

'पर मैं ने तो काच की चूडी नही पहनी हुई।"

कुमार चौंककर पलग पर उठ बैठा। उस ने कमरे की बत्ती जलायी, और काता की दोनो खाली कलाइयो की तरफ देखा।

—"फिर वह चूडियो की आवाज कहा से आयी थी?'

काता ने कोई जवाब न दिया। कुमार का सारा बदन काप रहा था। कांपते होठो से उस ने काता को टक्सी के पसे लेकर चले जाने के लिए कहा। उस की तबीयत ठीक नही थी। सोकर शायद ठीक हो जाय।

काता कुछ न बोली। चादर को अपने बदन से लपेटकर बिस्तर से उठ खडी हुई। उस ने मेज पर पडे हुए अपने कपडे हाथ मे लिये और गुसलखाने का दरवाजा भिडकाकर कपडे पहनने लगी।

कान्ता चली गयी। कमरे का दरवाजा भिड़काकर कुमार अपने पलग पर लेटा तो उसे ख़याल आया—खिड़की पर पड़ती अलका की छाया दरवाज़े पर उस के चलन की आवाज और उस की बाहों में पहनी हुई काच की चूड़ियों की खनक उस ने जो कुछ देखा था, और जो कुछ सुना था, वह और कुछ नहीं था, यह वह रास्ता था जो पागल दिल की एक अँधेरी गुफा की ओर जा रहा था।



सवेरा होते ही कुमार के लिए जब नौकर चाय लेकर आया तो केवलकृष्ण भी उस के साथ था। आते ही उस ने कुमार के माथे को छुआ।

'बुखार देख रहे हो ?"

'मुझे डर था, कहीं बुखार न हो गया हो।'

'क्यों ?"

'शायद तुम ने रात में बहुत पी ली थी। तुम्हें आदत नहीं ज्यादा पीने की। सिर को चक्कर आ रहे होंगे ?'

कुमार ने पलग से उठकर चाय का प्याला बनाया, और वह प्याला केवलकृष्ण को देकर अपने लिए एक गिलास में चाय बनाकर उस ने पूछा, "तुम्हें किस ने कहा है कि मैं ने बहुत पी ली थी ?"

"मैं रात सो नहीं पाया। एक बार उठकर भी आया था तुम्हें देखने के लिए, पर दरवाजा बन्द था, कमरे की बत्ती बुझी हुई थी। सोचा कि सो गये होंगे, इसलिए मैं ने दरवाजा नहीं खटखटाया।"

"पर यह तुम्हें किस ने कहा कि मैं ने बहुत पी ली थी ?"

'आधी रात के करीब कान्ता का टेलीफोन आया था। वह काफी डरी हुई थी "

'और वह कहती थी, कि मैं ने बहुत पी ली थी ?"

"नही, उस ने यह नही कहा था। मैं ने ही सोचा कि शायद तुम ज्यादा पी बैठे थे। इसलिए तुम कान्ता से वसी बातें करते रहे।"

"कसी बातें ?"

'चलो छोडो उस की बात को, पर तुम्हे हुआ क्या था ?'

"वह क्या कहती थी ?'

"कहती थी "

"कहते क्यो नही ?'

"वह मुझ से नाराज थी कि मैं ने उसे एक पागल आदमी के पास क्यो भेजा था।

कुमार हँस पडा। कवलकृष्ण ने मेज पर पडी हुई बोतल को देखा, और बोला, पर बोतल तो उसी तरह पडी हुई है। मुश्किल से दो गिलास लिये होंगे तुम ने।'

"एक मैं ने पिया था, एक कान्ता ने।"

'फिर तुम्हे हुआ क्या था ?'

"जाने क्या हुआ था।'

तुम्हे खिडकी म से जिन भूत दिखाई देते रहे है ?

"जिन भूत तो नही, एक जिनी दिखती रही है।"

'कान्ता कहती थी कि तुम्हें कांच की चूडिया की आवाज आ रही थी।"

"जिनी ने हर रग की चूडिया पहनी हुई थी।"

'सच बताओ, तुम ऐसी बातें कर-करके कान्ता को डरा क्या रहे थे ?"

"उसे नही डरा रहा था, मैं तो खुद डर रहा था।"

'कान्ता से ?

"उस बेचारी से क्या डरता "

"शायद तुम्हें कान्ता पसन्द नही आयी। पर तुम्हें उस को कुछ नही कहना चाहिए था। मुझे सवेरे कह देते, मैं किसी और को बुला देता।"

"इस म कान्ता का कोई कुसूर नही।"

कुमार ने केवलकृष्ण को विश्वास दिलाया कि रात मे जो कुछ हुआ था शराब का एक गिलास पी लेने की वजह से हुआ था, क्योकि उसे शराब पीने की आदत नही थी। उसे चक्कर आ गया था। इसी लिए उसे खिडकी मे किसी की परछाइ दिख रही थी। इस म कान्ता का कोई कुसूर नही था। पर कवल-कृष्ण को इस पर विश्वास न हुआ। उस ने यही सोचा कि कुमार को कान्ता पसन्द नही आयी थी। वह कान्ता को अपने कमरे मे से वापस भेजना चाहता था, इसी लिए बहकी बहकी बातें करता रहा।

"अच्छा, मैं तुम्हारे लिए एक बहुत खूबसूरत लडकी का इन्तजाम कर देता

हूँ। पैसे ज़रा ज्यादा लेती है, पर कोई बात नहीं।" केवलकृष्ण बोला, "आज कहो तो आज, कल कहो तो कल। जब कहो।"

कुमार कुछ देर अपने दोस्त के चेहरे की तरफ देखता रहा। फिर उस ने चाय का एक घूट लेकर पूछा, कितने रुपय लेती है?"

"जितने रुपया म तुम्हारी एक पेंटिंग बिकती है।" केवलकृष्ण ने हसकर कहा।

"क्या मतलब?"

"मेरा मतलब है कि एक साधारण पेंटिंग। या तो तुम्हारी पेंटिंग का हज़ार रुपया भी मिल सकता है, इस से भी ज्यादा मिल सकता है। पर आम पेंटिंग का जैसे दो-अढाई सौ रुपया मिलता है "

"वह दो अढाई सौ एक रात का लेती है?"

"शहर मे दो-अढाई सौ। अगर शहर से बाहर ले जाना हो तो दो के चार देने पडते हैं। पर तुम रुपये की फिक्र मे क्या पड गये?"

नौकर चाय रखकर चला गया था। वह चाय के बरतन उठाने आया तो कुमार ने उसे और गरम चाय लाने के लिए कहा। नौकर चला गया तो केवल-ने कहा

'तुम रुपयो की चिंता न करो, सिर्फ यह बता दो कि कब बुलाऊँ। तुम कभी-कभार शहर मे आते हो वहाँ पहाडो मे तुम्हें क्या मिलता होगा वैसे पहाडिनें होती तो ख़ूबसूरत हैं "

कुमार कुछ न बोला। वह मेज़ के खाने मे से सिगरेट निकालकर पीने लगा।

"किस सोच मे पडे हो?"

"किसी मे नही।"

"तो आज रात उस को बुला दूँ?"

"इतनी क्या जल्दी है, अभी मैं पन्द्रह दिन यही हूँ।"

"दरअसल बात यह है कि मैं अपनी बीवी को कल उस की मा के घर छोड आया हूँ। उस की माँ कुछ बीमार थी। पर वह दो रातें उस के पास रहकर कल लौट आयगी, फिर मुश्किल पडेगी "

'फिर रहने दो इस बात को। कभी फिर सही।"

' फिर किसी को यहाँ बुलाना मुश्किल हो जायेगा। किसी होटल मे तो फिर भी हो सकेगा "

"देख लेंगे "

कुमार ने बात टाल दी। छह दिन बीत गये। सातवें दिन दोपहर को खाना खाते हुए कुमार से केवलकृष्ण ने कहा, "बात बन गयी है। मेरी बीवी अभी

अपनी माँ की तरफ चली है। उस के चाचा की लड़की बम्बई से आयी हुई है। रात का वह वहीं रहेगी। मैं आज रात उसे बुला दूंगा।"

कुमार कुछ न बोला। चुपचाप रोटी खाता रहा। केवलकृष्ण ने ही फिर कहा, 'बहुत खूबसूरत है। का ता कुछ भी नहीं उस के सामने।"

पानी पीते हुए कुमार के सीने में हलका सा दर्द हुआ। पर गिलास को मेज पर रखकर जब कुरसी से उठा तो उस के सीने में तेज दर्द हुआ।

'पानी शायद बहुत ठण्डा था' केवलकृष्ण बोला और उस ने देखा कि कुमार का साँस लेने में कठिनाई पड़ रही थी। उस ने कुमार को उस के कमरे में ले जाकर पलँग पर लिटा दिया।

"फ्रिज के पानी से कभी कभी ऐसा हो जाता है। अभी ठीक हो जायेगा।' केवलकृष्ण ने कहा और गरम पानी में कुछ चम्मच ब्राण्डी डालकर कुमार को पिला दी।

कुछ देर कुमार उसी तरह उखड़ी हुई साँसें लेता रहा। फिर शायद ब्राण्डी का असर हुआ, कुमार को हलकी सी नींद आ गयी।

केवलकृष्ण को किसी जरूरी काम पर जाना था। वह चला गया। वैसे उसे यकीन था कि अब तक कुमार की तबीयत ठीक हो गयी होगी, पर वह दो घण्टों में लौट आया। कुमार की सांस उसी तरह उखड़ी हुई थी। उस का रंग दर्द से पीला पड़ गया था।

"जब हम खाना खा रहे थे, उस वक्त तुम्हें कोई तकलीफ नहीं थी।"

"पानी पीते-पीते हुई थी।'

"कभी पहले भी हुई है इस तरह?"

"एक बार हुई थी।'

"इसी तरह? या ज्यादा?'

"इस से कम थी।"

'तब तुम ने कौन सी दवा ली थी?"

कुमार ने बातें करते-करते आँखें बन्द कर ली। शायद दर्द बढ़ गया था। केवलकृष्ण ने गरम पानी की बोतल तौलिये में लपेटकर कुमार के सीने पर रख दी। कुमार ने एक बार आँखें खोली, बोतल को देखा और एक अजीब सी मुसकराहट उस के होठों पर खिल आयी। शायद उसे वह दिन याद आ गया था जब उस ने अलका का सिर अपने सीने से लगाकर कहा था, 'मेरे इस सीने में जब दर्द होगा, तुम अपना सिर मेरे सीने पर रख दिया करोगी?'

केवलकृष्ण ने कुमार के माथे को छुआ। माथा गर्म था। दर्द के जोर से शायद हलका सा बुखार हो आया था। उस ने डाक्टर को बुलाने के लिए नौकर भेज दिया।

डॉक्टर आया। उस ने कुमार के सीने और पीठ को देखा और एक इंजेक्शन लगाकर बोला, "रात तक फर्क पड जायेगा। खाने के लिए कुछ मत देना। गरम पानी का सेंक दीजियेगा बस। अगर रात तक फर्क नजर न आया तो एक इंजेक्शन और देना होगा। अगर बुखार बढ जाये तो मुझे फौरन इत्तिला कर दीजियेगा।"

डॉक्टर चला गया। केवलकृष्ण हैरान था कि मिनटो म क्या हो गया था। कुमार भी हैरान था। इस दर्द का अहसास उसे पहली बार तब हुआ था, जब अपने गाव मे अलका के साथ उस की आखिरी शाम रह गयी थी। पर तब उस आज जितनी हैरानी नही हुई थी। शायद इसलिए कि उस दिन दर्द आज जितना नही था। कुमार सोच रहा था कि खयालो की गाँठें जिस्म की नाडियो मे कैसे इस तरह उतर सकती है, कि नाडियो मे सूजन आ जाय

"अजीब बात है" केवलकृष्ण ने कुमार पर ओढायी हुई चादर के साथ एक कम्बल भी जोड दिया और बोला, "तुम्हे यह नही लगता कि कोई चीज तुम्हे किसी बात से रोक रही है?"

"लगता है।"

"किस्मत का इस तरह जिद ठानते मैं ने कभी नही देखा।"

"मैं ने भी पहले कभी नही देखा।"

"उस दिन भी अजीब बात हुई थी?"

"हाँ, अजीब बात हुई थी।"

"तुम कान्ता को 'डविल' कहकर बुला रहे थे। मैं ने कभी तुम्हारी जबान से ऐसे लफ्ज नही सुने थे"

"मैं ने उसे कुछ नही कहा था।"

"तुम्हें शायद मालूम नही, तुम शराब के नशे म थे"

"मैं शराब के नशे म नही था।"

"व्हट इट इज समथिंग मेण्टल!"

"शायद।"

"पर आज तुम बिलकुल ठीक थे—मेण्टली अब भी ठीक हो। पर आज फिजीकली कुछ हो गया है—तुम जानते हो कि मैं ने टेलीफोन से बात पक्की कर ली थी, अब फिर टेलीफोन करके आया हूँ, उसे मना करके आया हूँ"

"वह तुम से नाराज नही हुई?"

"बडी नाराज थी, क्योंकि मैं ने सवेरे उसे बडी मुश्किल से मनाया था, उसे आज कही दूसरी जगह जाना था। खैर, कोई बात नही, मै उस की कसर फिर कभी निकाल दूगा, वह मुझ से नाराज नही हो सकती—पर मैं उस की बात नही सोच रहा था, उस का क्या है, तुम नही तो दूसरा सही—पर मैं तुम्हारी

बात सोच रहा हूँ।"

'मेरी बात है?'

कुमार ने करवट बदली। दर्द कुछ थम गया था। पर करवट बदलने से सीने में दर्द की एक लहर सी दौड़ गयी। उस ने एक घुटी हुई साँस खींची, और गरम पानी की एक तरफ खिसकी हुई बोतल को हाथ से ठीक किया।

"थोड़ी चाय पिओगे? चाय का कुछ हरज नहीं।"

"अच्छा।"

केवलकृष्ण ने चाय मँगवायी। कुमार को एक बड़े तकिये का सहारा दिया, और उस के लिए चाय का प्याला बनाने लगा। चाय के घूँट लेते हुए कुमार ने दो-तीन बार आँखें बन्द कीं।

"दर्द ज्यादा है?"

"नहीं।"

'तुम कुछ सोच रहे हो?"

"मैं सोच रहा हूँ कि दुनिया में कोई ऐसी वेश्या भी होती है या नहीं, जो सिर्फ एक ही आदमी की वेश्या हो।"

'एक ही आदमी की वेश्या?"

'जो सिर्फ़ एक ही आदमी को अपना जिस्म दे और एक ही आदमी से उस के पैसे ले।"

"पर वह वेश्या कैसे हुई?"

'यही तो मैं सोच रहा हूँ कि वह वेश्या कैसे हुई!"

केवलकृष्ण ने कुमार के माथे को छुआ। उसे लगा कि बुखार बढ़ गया है।

डॉक्टर रात को एक बार फिर आया। वह जब इंजेक्शन की सुई को और सिरिंज को गरम पानी में साफ कर रहा था तो कुमार ने एक गहरी साँस ली। उसे लग रहा था कि वह अपने ही खयालों की पगडण्डी से फिसलता जा रहा है, और दिनों दिन बेबसी के गहरे पाताल में उतरता जा रहा है।



कुमार ने अलका को अपने वापस आने की खबर नही दी थी। बुखार टूटने के बाद उस ने दिल्ली म सिफ दो दिन आराम किया था, और तीसरी शाम उस ने वापस लौटने की तैयारी कर ली थी। इस लिए जब गाडी स्टेशन पर पहुँची तो चेतू चाचा को स्टेशन पर देखकर वह हैरान रह गया। चेतू चाचा ने आगे बढ कर कुमार के हाथ से सूटकेस ले लिया। उस ने बताया कि वह पिछले तीन दिनो से रोज स्टेशन पर आकर गाडी देख जाया करता था। अलका पिछले तीन दिनो से इसे रोज स्टेशन पर भेजती थी।

कुमार की जमीन पपरोला से डेढ मील दूर थी। वह डेढ मील चढाई का रास्ता था। चेतू चाचा के आने से कुमार को आसानी जरूर हो गयी, क्योकि नही तो सूटकेस को उठाने के लिए उसे पपरोला से कोई आदमी खोजना पडता। पर वह हैरान था कि अलका पिछले तीन दिनो से उसे स्टेशन पर क्यो भेज रही थी।

वैजनाथ को जाती चौडी सडक के दायें हाथ पहाड की सपाट छाती पर कुमार की जमीन थी। बायें हाथ की पगडण्डी उतरने से पहले ही सडक पर से जमीन का बहुत-सा हिस्सा नजर आने लगता था। सीढियो की तरह बिछे हुए धान के खेत, अनारो और अमरूदो के पेड, और जिस हिस्से मे कुमार का स्टूडियो था वह भी। कुमार ने पगडण्डी के सिरे पर खडे होकर देखा फूलो की लम्बी क्यारियों के पार के हिस्से म नयी बनी हुई झुग्गियो के स्लेटो से ढके हुए माथे सन्ध्या की लाली म अपने मुह उठाकर उस की राह देख रहे थे। चेतू चाचा के हाथ म बोझ था, वह थोडा पीछे रह गया था। कुमार ने कुछ देर उस की प्रतीक्षा की, पर फिर उस के पाव बरबस पगडण्डी उतरने लगे। कुमार जब झुग्गियो के पास पहुँचा तो उसे एक झुग्गी के दरवाजे म से आग जलती नजर आयी। दरवाजे की चौखट पर पहुँचकर उस का दिल इतना धडकने लगा कि वह एक मिनट क लिए वही रुक गया।

झुग्गी मे बठी अलका न शायद उस के पैरो की आवाज सुन ली थी। वह चौखट पर आ गयी। इस समय अगर कोई ऊँची पगडण्डी से इस झुग्गी की तरफ

देखता तो उसे लगता कि झुग्गी की चौखट में किसी ने दो बुत गढ़ कर रखे हुए हैं।

झुग्गी के अन्दर बायीं दीवार के साथ एक कच्ची उचान थी। उचान पर ऊन का एक पहाड़ी गलीचा बिछा हुआ था। उचान के सामने एक पेड़ का एक चौड़ा छीलदार कटाव पड़ा हुआ था, जिस पर एक सरसों के तेल का दिया जल रहा था। दीवार के कोने में मिट्टी की अंगीठी में तीन मोटी मोटी लकड़ियाँ जल रही थीं। जलती हुई लकड़ियों की रोशनी अलका की पीठ की तरफ़ थी, इसलिए अलका के मुंह पर से यह नहीं दिख रहा था कि उस के चेहरे पर कितने रंग आये थे और कितने रंग गये थे।

सड़क से उतरकर पगडण्डी पर चलते हुए जैसे कुमार के पैर बरबस चल पड़े थे, कुमार की बांहें भी बरबस आगे बढ़ गयीं, और आगे बढ़कर अलका को अपने साथ लगा लिया।

अलका ने कुमार को जब मिट्टी की उचान पर बैठाया तो कुमार का मुंह आग की रोशनी की तरफ़ था। अलका ने नज़र भरकर देखा, और कुमार के कंधे पर हाथ रखकर पूछा, "बीमार रहे क्या ?'

'तुम्हें किस ने बताया ?" कुमार ने अलका की ओर देखा। पर अलका की पीठ की तरफ़ रोशनी होने से उसे चेहरे पर पड़ते अंधेरे में आँखें दिख सकती थीं, पर आंखों में आया हुआ पानी नहीं दिख सकता था।

'कितने दुबले हो गये हो !' अलका ने धीरे से कहा, और आग के पास ढक-कर रखी हुई चाय पत्थर के प्यालों में डालने लगी।

'सिर्फ दो दिन बीमार रहा था, ज्यादा दिन नहीं।" कुमार ने कहा और अलका के हाथों से चाय का प्याला लेकर पूछा, "पर तुम कैसे जानती थी कि मैं वापस आ रहा हूँ। तुम चेतू चाचा को रोज स्टेशन पर क्यों भेजती रही हो ? तुम ने कल भी उसे भेजा था परसों भी।"

'मेरा कोई कुसूर नहीं, इस चाय का कुसूर है।' अलका ने अपने प्याले से चाय का घूंट भरा और हँसकर बोली, "परसों मैं ने अपने लिए चाय बनायी। केतली से चाय डालकर जब मैं प्याला उठाने लगी तो मैं ने देखा कि मैं ने एक की जगह दो प्यालों में चाय भर दी थी। मुझे लगा कि आप आ रहे हैं मैं ने चेतू चाचा को स्टेशन पर भेज दिया।"

कुमार को लगा कि उस की आंखों में उतरा हुआ पानी उस के चेहरे पर दिखने लगेगा। जैसे भी बना वह हँसकर बोला, 'तुम में और गाँव की उस अल्हड़ छोकरी में कोई फ़र्क नहीं, जिस की परात में आटा गूंधते समय अगर आटा उछल जाये, तो समझ लेती है कि आज कोई पाहुना आयेगा !'

'असल में मैं चार दिनों से डरी हुई थी।'

"क्यों ?"

"मुझे एक सपना आया था। सपने में आप ने मुझे बड़ी आवाज़ दी। आप आवाज़ें देते गये, और मैं सुनती गयी। मैं जहां से भी गुज़रकर आप की तरफ आने लगू, सामने लोहे का एक जंगला आ जाता। शायद मुझे स्टेशन का ख्याल रहा हो। स्टेशन पर जैसे जंगले लगे रहते हैं वैसा ही एक जंगला हर मोड़ पर आ जाता था। आप इस तरह आवाज़ें देते जा रहे थे जैसे आप को मेरी बड़ी ज़रूरत हो। आवाज़ें सुनते सुनते मेरी नींद खुल गयी।"

"अलका !"

"सवेरे उठकर मेरे दिल में आया कि दिल्ली चल दूं, पर मैं जानती थी कि आप नाराज़ होंगे।"

"मुझे सचमुच तुम्हारी बड़ी ज़रूरत थी।" कुमार ने हाथ में पकड़ा हुआ प्याला दिये के पास पेड़ के कटाव पर रख दिया, और अलका को कसकर अपने गले से लगा लिया।

"क्या ज़रूरत पड़ गयी थी मेरी ?"

बड़ी ज़रूरत थी दर्द होने लगा था, बुखार हो गया था, इसलिए "

"बाहर कोई आया है "

"चेतू चाचा होगा "

कुमार उठकर झुग्गी से बाहर आ गया। चेतू चाचा सूटकेस ज़मीन पर रख रहा था। कुमार ने उसे सूटकेस दूसरी तरफ उस के कमरे में ले चलने के लिए कहा, और साथ ही कहा कि वह हरिया को खाना बनाने के लिए कह दे।

कुमार ने झुग्गी में लौटते हुए देखा कि झुग्गी की दीवार पर अलका ने एक बहुत बड़ी तसवीर बनायी हुई थी। काली लकीरों में एक मर्द का चेहरा था, और लाल रंग की लकीरों में एक औरत का। मर्द की पीठ की तरफ एक सूरज था, पर सूरज का ज़्यादा हिस्सा अँधेरे में ढका हुआ था। औरत की पीठ की तरफ एक सूरज था, पर सारे का सारा सूरज रोशनी से भरा हुआ था। मर्द की आखें खुली थीं और सतर्क होकर दुनिया की ओर देख रही थीं। औरत की दोनों आंखों पर मर्द की छाया लिपटी हुई थी। कुमार काफ़ी देर दीवार की तरफ देखता रहा, और आग की रोशनी में अलका के चेहरे की तरफ देखने लगा।

"अभी मेरे पास इतना हुनर नहीं कि बहुत अच्छी बना सकूं।"

हुनर की तरफ कुमार का इतना ध्यान नहीं था। वह ख्याल को देख रहा था। दीवार के जिस हिस्से में मर्द का बुत था उसके पीछे बहुत कम जगह थी, जैसे वह बहुत थोड़ा रास्ता चलकर आया हो। पर अलका ने जिस राह पर से औरत को आते दिखाया था, वह रास्ता बहुत लम्बा था। उस रास्ते पर गहरे लाल रंग बिछे हुए थे, जैसे उस का रास्ता जिज्ञासा और तलाश से सराबोर हो। पर

मद का रास्ता दलीलो से भरा हुआ था। उस के रास्ते पर अलका ने मानसिक उलझाव की गहरी छायाएँ डाली हुई थी।

कुमार ने अलका को बाँहो मे लेकर उस का माथा चूम लिया और बोला, "तुम्हारी इस औरत को प्रणाम करने को जी चाहता है।" अलका ने कुमार के कधे पर सिर रखकर आखें व द कर ली, और शायद कान भी व द कर लिये, क्योकि कुमार के मुह से यह वात सुनने के वाद उसे और कुछ सुनने की जरूरत नही रही थी।

'जानती हो, मैं ने इस जगह का नाम चक्क[1] नम्बर छत्तीस क्यो रखा था?'

'यह नाम आप ने रखा था?"

"पहाडो मे गावो के नाम नम्बरो पर नही होते। शायद और भी कही नही होते, परन्तु हमारे गाँव का नाम था—चक्क नम्बर छत्तीस। साल भर के अरसे म जब मेरे मा बाप मर गये तो हमारी सारी जमीन चाचो ने हथिया ली। मैं तब बम्बई आर्ट स्कूल म पढता था।"

'आप न लौटकर जमीन का कुछ न लिया?"

"एक बार गया था पर जमीन का झगडा निबटाना मेरे बस की बात नही थी। वैसे भी हमेशा के लिए गाव मे नही रह सकता था। मुझे शहरो मे रहना था। कई सालो के वाद मेरे पास कुछ रुपये जमा हो गये, तो मैं ने यहाँ आकर यह जमीन खरीद ली।"

"जैसे चक्क नम्बर छत्तीस की जमीन लौटा ली।'

'तब मुझे ऐसा ही महसूस हुआ था। इसलिए इस का नाम चक्क नम्बर छत्तीस रखा था। पर फिर कभी इस बात का खयाल नही आया। आज तुम्हारी झुग्गी म खडे-खडे मुझे इस तरह महसूस हुआ है, जैसे मैं उस गाँव मे, उसी घर मे खडा हो गया हूँ—इस के साथ कोइ तुलना नही उस की—पर मेरी माँ न कमरे मे इसी तरह एक चारपाइ पर एक फूलकारी बिछायी हुइ थी। कमरे की दीवार पर उस न लक्ष्मी की तसवीर बनायी हुइ थी—आज इस दीवार की ओर देखते हुए मुझ लगा कि जसे मा की बनायी हुइ लक्ष्मी वहा स चलती चलती आज यहा आ गयी हो।'

इस तरह की पिघली-सी बातें करना कुमार की आदत नही थी। अलका इन बाता से भीगी हुइ चौंकती जा रही थी कि अभी अगर कुमार को इस बात का ध्यान आ गया तो वह जल्दी से अपनी पुरानी आदत का लौटाकर अपने मन पर लोहे की परत चढा लेगा। इसलिए अलका ने उस का हाथ पकडा और बोली,

1 पजाब म छाट म छाटे गाँव को चक्क कहत हैं।

"चलिए, खाना खा लें "

'तुम अब यहाँ रहती हो, या गाँव मे जाया करती हो?"

"यही। वह कमरा मैं ने छोड दिया।"

"मुझे दूसरी झुग्गियाँ नही दिखाओगी?'

"खाना खा लीजिये, फिर लौटकर दिखा दूगी।"

"तुम ने यहा बिजली नही लगवायी?"

'झुग्गिया का माहौल न बनता तब।"

"मैं ने स्टूडियो के लिए बडी मुश्किल से बिजली ली थी। पूरा एक साल लग गया था ।"

"वहाँ जरूर चाहिए थी।"

"पर यहा तुम्हे रात को डर नही लगता? चारो ओर उजाड है "

"इन दिनो सिर्फ दो बार डर लगा था। पर वह इस उजाड की वजह से नही लगता था। मुझे दो बार ऐसे सपने आये थे कि मैं बहुत डर गयी थी।'

'क्या?"

"एक मैं ने आप को अभी सुनाया है, जब आप सपने मे मुझे आवाज़ें दे रहे थे—एक इस से सात-आठ दिन पहले आया था।'

"सात आठ दिन पहले।"

"मैं ने सपने मे देखा कि जल्दी जल्दी कही जा रही हूँ। न जाने कहा! गहरी रात थी। मैं रात के अँधेरे म चलती जा रही थी। इतना मालूम था कि सडके किसी शहर की हैं। फिर अँधेरे म मैं न एक खिडकी का खटखटाया। एक दरवाज़े को भी ठकोरा। नीद खुलने पर मुझे यह सपना समझ मे न आया। जाने मैं कहाँ जा रही थी। मैं ने किसी दरवाज़े को क्यो ठकोरा था वह दरवाज़ा बन्द क्यों था मैं समझ न सकी। पर मुझे काफी दर डर लगता रहा।"

अलका से लिपटा हुआ कुमार का हाथ कापने लगा, और उस के मुह से निकला, "यू डैविल!'

अलका ने कुमार के चेहरे की ओर देखा, और बोली, "मेरा खयाल था कि अब तक मुझे डविल कहना भूल चुके होग!

कुमार ने शायद अलका की बात नही सुनी। उस न अलका का हाथ पकड-कर उसे गलीचे पर बठाया। उस के दिल मे आया कि वह अलका को दिल्ली की उस रात की बात सुना दे जिस रात वह कान्ता के साथ वहाँ कमरे म बैठा हुआ था कि खिडकी पर अलका की परछाइ पडी थी और उस के दरवाज़े पर अलका के परो की आवाज आयी थी। पर कुमार न अपन होठ इस तरह भीच लिय, जसे कही उस के मुँह से बात निकल न जाये। उस ने बात बताने की जगह अलका से एक बात पूछी, 'तुम ने उस दिन अपने हाथो मे चूडियाँ भी पहन रखी

थी ?"

अलका समय न पायी, और अपनी दोनो बाँहें बढाकर बोली, "मैं ने उसी दिन चूडियाँ चढायी थीं, शायद एक दिन पहले चढायी थी।"

बात को मन ही मन झेल पाना कठिन था, पर कुमार उसे झेलना चाहता था। उस के अपने होंठो मे समा नही रही थी। उस ने अपने होंठो को अलका के होंठो से इस तरह लगाया जैसे वह होंठो को नही, उस बात को चुपिया रहा हो।

कुमार ने दिल्ली मे रहते सोचा था कि अब उस के जिस्म की भूख उसे कभी नही सतायेगी। उस ने तजरबा करके भी देखा था। का ता उस के बिस्तर पर लेटी रही थी, पर कुमार को उस की भूख ने कुछ नही कहा था। अलका की सास ने कुमार के जिस्म म सोयी हुई आग को मालूम नही किन फूको से जगा दिया। कुमार को लगा कि उस का अग अग जल रहा था। कुमार ने झुग्गी का दरवाजा भिडका दिया। कोने मे जलती लकडियो मे एक और सूखी लकडी रखी, और जिस समय उस ने अलका के जिस्म से कपडे उतारकर अपने आप से लगाया उसे लगा कि यह झुग्गी एक आग का तालाब है और वह उस मे नहा रहा है।

कुमार दिल्ली वाली जो बात अलका से नही कहना चाहता था, अलका के पास से उठकर, कपडे पहनते हुए उसे लगा कि उस ने वह बात अलका को अपने रोम-रोम की जबान से कह दी थी।

कुमार और अलका ने जब कुमार के कमरे मे जाकर खाना खा लिया तो कुमार ने हरिया को एक लालटेन जलाने के लिए कहा, और अलका से बोला, "चलो दूसरी दोनो झुग्गिया भी देख आयें।"

तीनो झुग्गिया एक सीध म नही थी। एक का मुह फूलो की क्यारियो की तरफ था, एक का पहाड की खाई की तरफ, और एक का मकई के खेत की तरफ। तीनो की पीठ से लगा हुआ एक साझा आगन था। हरेक के दरवाजे के सामने एक चौडा बरामदा था, जो स्लेटो की छत से ढका हुआ था। जो एक झुग्गी के सामने से घूमकर, दूसरी झुग्गी के सामने होकर, तीसरी झुग्गी के सामने आता था। इसी बरामदे म से गुजरकर कुमार ने दूसरी झुग्गी का दरवाजा खोला, और हाथ मे पकडी हुई लालटेन की रोशनी मे झुग्गी को देखने लगा।

पहली झुग्गी की तरह इस झुग्गी की खिडकी भी ताड के पत्तो से ढकी हुई थी। लकडी की एक चिटकनी से खिडकी बन्द की हुई थी। इसे खोलने के लिए साँकल की जगह कौडियो की एक डोरी बाँधी हुई थी। बैठने के लिए मिट्टी की एक उचान इस झुग्गी म भी उसी तरह थी, जैसी पहली झुग्गी मे कुमार ने देखी थी। पर दीवार मे ऊचे-नीचे कितने ही आले थे, और हरेक आले मे एक एक

दिया रखा हुआ था।

"अगर ये सारे दिये जला दें !" कुमार ने इतना उमडकर कहा कि आवाज उस की अपनी नही लगती थी। शायद इसी लिए अलका ने कोई जवाब न दिया।

कुमार ने लालटेन की रोशनी दूसरी दीवार पर डाली। सारी दीवार पानी की लहरो से ढँकी हुई थी। चने मे नीला थोथा मिलाकर अलका ने पानी की ये लहरें बनायी थी। कुमार ने ध्यान से देखा, पानी की भरी हुई छाती में अलका ने एक लकीर खीची हुई थी।

"लाग कहते है पानी मे रेखा नही खिचती।"

आप यह कहते हैं ?"

"नही, मैं नही कह सकता, क्योकि मैं इस लकीर पर पाव रखकर खडा हुआ हूँ।'

अलका हँस पडी।

"मुझे नही मालूम, तुम ने यह लकीर क्यो खीची है। पर मैं न इस का अपना ही अथ निकाला है।'

"क्या ?"

"मेरे अपने मन मे एक लकीर लगी हुई है। लकीर की एक तरफ बडा ठण्डा पानी बह रहा है, और एक तरफ बडा गरम।"

"एक आर मुहब्बत, एक ओर नफरत !"

"अलका !"

"जी।"

"मैं यही कहना चाहता था, पर कहा नहीं। तुम ने खुद ही कह दिया जाने मेरे अन्दर यह क्या है ! मैं तुम्हे प्यार भी करता हूँ, और नफरत भी "

'मैं जानती हूँ।"

'मै एक पतली सी लकीर पर खडा हुआ हूँ। मालूम नही, किस समय और किस तरफ मेरा पाव फिसल जाये "

अलका ने कुछ न कहा।

कुमार न लालटनवाला हाथ नीचे किया, और झुग्गी से बाहर आकर दूसरी झुग्गी की तरफ बढा।

"उस म अभी कुछ काम रहता है।" अलका ने कहा।

कुमार पीछे लौटन लगा तो उस ने अलका से कहा कि अगर उस वहाँ झुग्गी मे अकेले डर लगता था तो वह कुमार के कमरे म चली आये।

"मैं यहाँ अपनी झुग्गी म सोऊँगी।" अलका ने पहली झुग्गी का दरवाजा खोला, और दिय म तेल डालकर उस की बत्ती का उकसा दिया।

अपने कमरे मे जाते हुए कुमार सोच रहा था कि इस दुनिया म और कोई औरत नही थी जो उसे इस तरह बाध सकती थी। यह सिफ अलका थी, जिस ने उस को बाहो को, और उस के खयालो को अपने हाथो म कसकर पकडा हुआ था।

इस पकड पर कुमार को प्यार भी आता था, और गुस्सा भी आता था। और वह सोच रहा था कि अलका ने कितनी सच्ची तसवीर बनायी थी। उस के मन के पानियो मे एक रेखा खिची हुई थी, और इस रेखा पर वह दोना पैर रखकर खडा हुआ था और कुमार को लगा, कि खडे खडे अब उस के पैर थक गये थे। उसे इस लकीर पर से जरूर गिर पडना था। पर उसे यह नही पता लग रहा था कि वह हमेशा के लिए मुहब्बत की तरफ गिर पडेगा, या नफरत की तरफ।



कुमार अलका के लिए बारीक रगदार सूत से बुनी एक लाल धोती दिल्ली से लाया था। अलका आज जब नहाकर वही धोती बाध रही थी, तो उसे लगा जैसे एक गीत पहाड की पगडण्डी उतरकर उस की झुग्गी की ओर आ रहा हो। उस ने कान लगाया। गीत पास आ रहा था

"दुक्खा वाला इलडू तू मेरे कन्ने देइ दे
ता होईजा अगाडी मेरे माहणुया!
ओ पखलिया माहणुया!"[1]

अलका समझ गयी कि नाथी आ रही थी। नाथी को इस गीत का ओर छोर

---

1 दुखो की इनिया मुझ द द!
और तू आग चल रहा!
भा मर अजनबी राहा!

पता नही था, बस एक ही पक्ति आती थी, और नाथी जानती थी कि अलका जब बडी रौ मे होती थी तो वह उस से मिन्नत करके इस गीत को सुना करती थी। गीत काहे का, एक ही पक्ति को फिर फिर गाती थी। इसलिए नाथी जब अलका से मिलने के लिए या उस से पढने के लिए आया करती थी तो चौडी सडक से पगडण्डी उतरते ही इस गीत को गाना शुरू कर दती थी।

यह गीत अलका ने जब से सुना था, वह इस गीत से बध गयी थी। जाने इस घाटी मे किस दिलवाली ने इस गीत को रचा होगा! अलका हमेशा सोचा करती थी कि वैसे तो सारे गीत ही अपने सिरो पर अपने दुखो की डलिया उठाकर चलते हैं, पर यह गीत कैसा था! यह दूसरे के दुखो की डलिया को सहारा देता था। और यह गीत सुनते ही हमेशा अलका को यह महसूस होता था कि पहले भी यही इस घाटी म कोई कुमार जसा मद हुआ होगा जो यही बँध नही पाता होगा, और पहले भी इस वादी मे कभी अलका जैसी औरत जरूर हुई हागी, जिस ने उस मद से कहा होगा कि 'तुम्हारे सिर पर उठायी हुई दुखो की डलिया अब मैं उठा लेती हूँ, तुम हलके होकर आगे बढ जाओ।'

नाथी ने कभी इस गीत का नही समझा था पर अलका की आँखे इस गीत को सुनकर भारी हो जाती थी। नाथी की आवाज मे जब लोच बढ जाता था और वह लहराकर कहती थी, 'वे पखलिया माहणुआ, वे मेरिया माहणुआ!' तो अलका की आखें बौराकर उस रिश्ते को ढूढने लगती जिस रिश्ते स कोई एक गीत की एक ही पक्ति म किसी को 'मेरा' भी कह सकता है, और 'पखला' भी! नाथी ने बताया था कि 'पखला' उसे कहते हैं जो हमारा वाकिफ न हो।

नाथी ने झुग्गी म आकर शहद का भरा हुआ कसोरा पड के कटाव पर रख दिया। अलका नाथी से कुमार के लिए शहद मोल लिया करती थी।

नाथी ने नजर भरकर अलका की ओर देखा, और हसकर अपनी छाती पर हाथ रखकर बोली हाय नी अम्मा। एह खदरेना चालू ए?"

अलका हँस पडी।

"नहोई धोई के तिज्जा इतना रूप चढना ए! मरे मन बुरी ममता लग दी ' नाथी न कहा, और उचान पर बठ गयी।

'तुम न यह गीत बीच ही म क्यो छोड दिया?" अलका न हाथ म पकडी हुई कघी आले म रख दी, और नाथी के पास गलीचे पर बठ गयी।

"घडोलू चुकिक करी सत्त वल पई जाद तेरे लक्के विच, दुखाँ दा डलडू कुत्यू गल गॅल लई फिरना!" नाथी हँसन लगी।

अलका जब कभी यह गीत सुनन के लिए बेचन होती नाथी उसे इसी तरह खपाती थी। 'अच्छा अब जब तुम्हारे रसिया का खत आयेगा मैं तुम्ह पढकर नही सुनाऊँगी!' अलका ने नाथी की एक चोटी खाल दी, और हँस पडी।

"भला, बीबी, मैं नरेलू दिंगी ! तू चिट्ठी पढ़ी दियाँ।"

"नरेलू तुम फिर देना। चल आ तुम्हे चाय पिलाऊँ !" अलका ने कहा, और बरामदे के चूल्हे मे आग जलाकर चाय बनाने लगी।

चाय पीकर अलका नाथी को छोडने चली, तो उस ने देखा कि कुमार हाथ म कोई कागज़ पकडे हुए उसकी ओर आ रहा था। अलका ठहर गयी। कुमार ने पास आकर एक तार अलका को पकडा दिया। अलका ने लिफाफा खोला, तार पढा और कागज को मोडकर फिर लिफाफे मे रख दिया।

"पिताजी का तार है न ?"

"हा।"

"कोई खास बात है ?"

"कोई खास बात नही, मुझे बुलाया है।"

"कब जाओगी ?"

"मुझे जाना नही, खत लिख दूगी।"

"नही, अलका, जब वह बुलाते हैं तो जाना ही चाहिए।"

' जिस काम के लिए वह बुलाते है, उस के लिए जाने की ज़रूरत नही।"

कुमार चुप रहा। वह जानता था कि जिस काम के लिए अलका को जाने की जरूरत नही थी, वह कौन-सा काम हो सकता है।

नाथी चली गयी थी। कुमार अलका को लेकर वापस उस की झुग्गी मे आ गया, और उस ने अपने कोट की जेब से एक और तार निकालकर अलका को दे दिया। यह तार भी अलका के पिताजी का ही था पर यह कुमार के नाम था। उस मे लिखा हुआ था कि वह अलका को जरूर भेज दे।

'गाडी दोपहर को जाती है।"

"रोज ही दोपहर का जाती है। जिस तरह आज जायेगी, उसी तरह कल जायेगी, रोज़ जायेगी।'

"जब किसी के पैरो के आगे कोई 'मोड' आ जाय, तो फिर उस का 'कल' कोई नही होता।"

' मेरे लिए कोई मोड नही इसलिए सारे ही 'कल' मेरे अपने है।'

"मैं ने अपने आप छोड कभी किसी चीज़ पर विश्वास नही किया।"

"इसी लिए आप इस 'कल' पर विश्वास नही कर सकते ? मैं जानती हूँ आप नही कर सकते। क्योंकि इस कल का वास्ता आप से भी उतना ही होगा जितना मुझ से, और मैं अब तक आपके लिए कोई दूसरी चीज़ हूँ।

' अलका ! जब तुम यह जानती हो, तो मुझ से यह सब क्यों पूछती हो ?"

'मैं ने पूछा कुछ नही, सिर्फ उस दिन की इतजार कर रही हूँ जब मैं आप के लिए एक बाहर की वस्तु नही रहूँगी।'

"बाहर की वस्तु बाहर की वस्तु होती है।"

"मैं कहती कुछ नहीं, पर जब वह अन्दर की चीज़ बन जायेगी, मुझे बता देना।"

"अच्छा।"

"आप न भी बतायेंगे तो मुझे मालूम हो जायेगा। अच्छा, अब बताइये आप मुझे क्या करने को कहते हैं।"

"अमृतसर जाकर विवाह कर लेने के लिए।"

"एक ही विवाह ?"

"और कितने ?" कुमार हंस पड़ा।

"अगर मेरे एक विवाह से आप को तसल्ली न हुई तो मैं दो विवाह कर लूंगी। अगर दो से भी न हुई तो चार कर लूंगी। जितने आप कहेंगे कर लूंगी।"

कुमार कितनी देर अलका के मुंह की ओर देखता रहा। फिर हँसकर बोला, "अच्छा जाओ, पहले एक तो करके दिखाओ।"

'देखने आओगे ? देखकर आप को अच्छी तरह तसल्ली हो जायेगी।"

"काहे की तसल्ली ?"

"कि आप ने मुझे उस हद से परे भेज दिया था, जिस हद को पार कर कोई वापस नहीं आ सकता।"

"हां।'

अगर फिर भी यह लगा कि मैं उस हद से परे नहीं गयी, तो मुझे एक विवाह और कर लेने को कह आना।

कुग्गी में बने हुए मिट्टी के उथान पर बैठे हुए कुमार को लगा कि उस के दिल पर, और उस के जिस्म पर अलका का टोना फिर असर कर रहा था। वह गलीचे से उठकर कुग्गी से बाहर आ गया। उसे लगा कि यह घड़ी उस की सब से कठिन घड़ी थी। अलका जब एक बार चली जायेगी, वह हमेशा के लिए उस के लिए बगानी हो जायेगी।

'एक तो उस का मुख मुझ पर टोना करता है, और दूसरे उस की बातें।' डॉक्टर जैसे एक मरीज़ को बताता है कुमार ने अपने-आप को बताया, और फिर उस ने अपने-आप को एक नुसखा लिख दिया कानून जब उसे किसी और के नाम से जोड़ देगा यह टोना खुद टूट जायेगा।'

कुमार ने चौखट के पास आकर अलका से कहा "आज मुझे बैजनाथ जाकर एक फिल्म लानी है लौटते देर हो जायेगी। इसलिए तुम चेतू चाचा को अपने साथ स्टेशन पर ले जाना, या उस से कहना कि तुम्हें अमृतसर छोड़ आये।"

अलका ने अपनी लाल धोती की कन्नी को अपनी मुट्ठी में कसा, और कहा, "अच्छा।"

कुमार फूलों की क्यारियों के पास गुजरकर उस पगडण्डी पर चढ़ रहा था जो आगे जाकर बैजनाथ को जाती सड़क पर पहुँच जाती थी। अलका उस की पीठ की तरफ देखती रही। उसे लगा कि आज सवेरे का गीत एक गीत नहीं था, एक भविष्यवाणी थी। इस आगे चले जा रहे आदमी का सुखी करने के लिए दुखों की डलिया उठाने का समय आ गया था।



कुमार बैजनाथ से वापस आया तो दिन ढल चुका था। पक्की सड़क से अपने चक्क की कच्ची पगडण्डी उतरते हुए वह रुक गया। सामने धान के खेत थे, सब्जियों और फूलों की क्यारियाँ थीं, अनारों के पेड़ थे, और इन पेड़ों से घिरी हुई झुग्गियाँ थीं। कुमार स्लेटों की छतों की ओर देखता रहा, जैसे दूर से ही उन से पूछ रहा हो 'अलका चली गयी है? जाते समय कुछ कहती तो नहीं थी यही कहती होगी कि मैं जान-बूझकर यहाँ से चला गया था अगर न जाता तो क्या करता उस ने जरूर कोई टोना कर देना था सवेरे लाल धोती बाँधकर इस तरह लग रही थी जैसे किसी ने लाल रंग की पोटली में एक टोना बाँधा हुआ हो!

पगडण्डी पर धीरे धीरे चलते हुए कुमार ने जंगली फूलों की एक टहनी को सहलाया और सोचता ही गया, 'आज मैं बहुत सँभला हुआ था अगर मैं इस तरह उस के जादू को झाड़कर चला न गया होता तो जाने क्या हो जाता!

चलते चलते कुमार ने मक्की के एक भुट्टे को उस के सुनहरी गुच्छे से पकड़कर सहलाया और अपने होठों में कहा, 'बस वही समय मुश्किल था! मैं मुश्किल घड़ियाँ गुजार आया हूँ अब कोई डर नहीं '

सामने अनार का पेड़ था। कुमार ने अनार की एक कली तोड़ी, और उस के लाल रंग को दोनों आँखों से घूरते हुए बोला, 'सुबह वह बिलकुल तुम्हारे जैसी लगती थी देखो तो मैं ने किस तरह तुम्हें इन पत्तों से अलग किया है। इसी तरह मैं ने उसे अपने दिल से तोड़ दिया है '

और मेज़ को ध्यान से देखा। मेज़ पर कोई कागज़ नहीं था। कुमार ने बत्ती बुझा दी, और सोचने लगा, 'अलका ने अच्छा ही किया जो जाते वक्त कोई सन्देश नहीं देकर गयी नहीं तो जिस तरह वह अपनी बातों से दूसरों को बोरा देती है, उस ने पत्र लिखकर भी मुझे रुला देना था'

कुमार ने एक हलकी साँस ली, और स्वतन्त्रता के इस क्षण को पूरी तरह महसूस करने के लिए चारपाई से उठकर बाहर अमरूदों के पेड़ों के तले आ बैठा। रात तारों की रोशनी में भीगी हुई थी। कुमार ने दोनों बाँह खोलकर धरती की ओर और आसमान को इस तरह देखा जैसे उस की बाँह एक सहमी के बदन से अलग होकर इतनी स्वतन्त्र हो गयी हों, और इतनी विशाल भी, कि अब वे सारी धरती को और सारे आसमान को अपने में समेट सकती हों।

एक हलकी साँस लेते हुए कुमार के सीने में हलकी सी पीड़ा हुई, पर कुमार के जिस्म ने आज किसी भी पीड़ा को स्वीकार न करने की ठानी हुई थी।

'चल तारों की छाँव में आँख मिचौली खेलें।'

कुमार को लगा कि किसी ने उसे पीठ के पीछे से कहा था। कुमार ने चौंककर पीछे की ओर देखा। वहाँ कोई नहीं था। बायीं ओर जंगली फूलों की एक सघन झाड़ी थी। उसे लगा कि उस झाड़ी की ओट में खड़ा कोई हँस रहा था। कुमार ने झाड़ी की ओर जाने की जगह माथा सिकोड़कर उस झाड़ी की तरफ देखा।

कुमार को लगा कि जिस तरह दिल्ली में एक रात उसे अलका की परछाईं दिखाई दी थी, और उस के कानों में अलका के पैरों की आवाज़ आयी थी, आज भी उस के साथ वैसा ही कुछ होने चला था। उस ने गुस्से में कहा, 'अलका!' इस तरह—जैसे अलका एक छोटी-सी बालिका हो, उसे बार बार चिढ़ाती हो, और वह अलका को रोक रहा हो

"पर यह अलका नहीं, मैं हूँ अब तुम और मैं रोज़ तारों की छाँव में आँख-मिचौली खेला करेंगे।" झाड़ी के पीछे से आवाज़ आयी और कुमार ने आवाज़ पहचान ली। यह उस उदासी की आवाज़ थी, जिस के साथ उस ने एक बार सामने खड़े होकर बातें की थीं।

सो तुम आ गयी हो!" कुमार ने धीरे से कहा और सिर नीचे झुका लिया।

सिर नीचा किये कुमार बाग में घूमता रहा। चलते-चलते उस ने देखा कि वह झुग्गी के दरवाज़े पर खड़ा था। कुमार ने एक गहरी साँस ली और झुग्गी का दरवाज़ा खोलकर अन्दर चला गया।

अन्दर गहरा अँधेरा था। कुमार ने हाथों से लकड़ी के कटाव को सहलाया। उसे मालूम था कि इस के ऊपर एक दीया, और एक माचिस रखी रहती थी।

कुमार ने दीया जलाया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उस ने दीया क्यों जलाया था। दीये की रोशनी में उस ने झुग्गी की दीवारों की तरफ देखा। झुग्गी का चेहरा बड़ा उदास था।

कुमार ने एक गहरी सांस ली और बोला, "तुम मुझ से बेहतर हो। तुम उदास हो, पर तुम अपनी उदासी को छिपाती नहीं हो, पर मैं अपनी उदासी को स्वीकार नहीं करता।" कुमार ने कहा और गलीचे पर इस तरह बैठ गया, जैसे उस ने झुग्गी के साथ और भी बहुत सी बातें करनी हो।

दीवार की तरफ देखते-देखते कुमार की नजर एक आले में पड़ी। आले में एक कागज़ पड़ा हुआ था। कुमार का दिल एकाएक धड़कने लगा। कुमार ने उस कागज़ को उठाया। पर जब उसे खोलकर दीये की रोशनी में पढ़ने लगा तो उस की आंखें पथरा गयी, और कुछ देर तक उस से कोई अक्षर पढ़ते न बना।

कुछ देर बाद कुमार ने पढ़ा अलका ने लिखा था

"इट इज सो सिम्पल दट इट में बी इम्पासिबल टु एक्सप्रेस ! इट इज सो पर्सनल दैट इट इज हार्ड टु कॉम्यूनिकेट ! इट इज सो लोनली दट इट इज डिफिकल्ट टु शेयर ! इट इज सो सेक्रेड दट इट में बी टू फ्रेजाइल टु टाक एबाउट, बट इट हैज़ लेफ्ट वन्ज़ हार्ट, इट में इवेपोरेट !"

कांपते हाथों से कागज़ को लकड़ी के कटाव पर रखकर कुमार के मन में जो कुछ हुआ, उस का एक ही सीने में झेल पाना कठिन था। कुमार ने गलीचे पर लेटकर आंखें बन्द कर ली।

जाने कब कुमार को नींद आ गयी। वह रात भर उस गलीचे पर लेटा रहा। सोते समय ही उस ने अपने नीचे बिछे हुए गलीचे का एक कोना उठाकर अपने पर ओढ़ लिया। जब उस की आंख खुली, खिड़की में से सुबह की हलकी रोशनी अन्दर आ रही थी। खिड़की की ओर देखते हुए उस की नजर कौड़ियों की लड़ी पर गयी, जिसे अलका ने ताड़ के पत्तों से बांधा हुआ था, और कुमार को लगा कि अलका विवाह करवाने के लिए अमृतसर चली गयी थी, पर अपना कलेरा[1] यहां छोड़ गयी थी।

1 शादी के अवसर पर कलाई की चूड़ियों के साथ बंधने वाली कौड़ियों की लड़ा।



अलका जिस लाल धोती को कल छत्तीस चक्क म पहने हुई थी, अमतसर पहुचकर जब वह अपनी कोठी मे आयी तो वही लाल धोती उस ने बांधी हुई थी। रास्त म उस ने कपडे नही बदले थे, बाल भी नही सँवारे थे, पर थोराय थाला ने और सूत की इस लाल धोती ने अलका को जाने कैसा रूप चढा रखा था कि अलका का माथा चूमते हुए अलका के पिता को खयाल आया कि अलका को किसी की नजर न लग जाय। पिताजी ने अलका के लिए जिस आदमी को चुना था, वह आजकल उन्ही के यहा ठहरा हुआ था। इस वक्त भी वह बाहर टॉग की आवाज सुनकर पिताजी के साथ ही बाहर चला आया था। वह अलका की तरफ दखता रह गया। पिताजी ने अलका से उसका परिचय कराया, "कैप्टन जगदीशचन्द्र, मर्चेण्ट नेवी म है। और अलका को अपनी बाहा मे लेकर चाय पीन के लिए कमरे मे ले गये। अलका ने चेतू को अपना कमरा दिखा दिया। वह अलका की चीजें कमरे मे रखने चला गया।

पिताजी ने अलका से जगदीशचन्द्र को बडे साधारण तरीके से परिचित कराया था। और कुछ न कहा था, सिर्फ चाय पीते समय जगदीशचन्द्र की सफरी जिन्दगी के बारे में वे दिलचस्प बातें सुनाते रहे जो शायद उन्होंने पिछले चार-पाच रोज म जगदीशचन्द्र से सुनी थी। और उन्ही बातो से अलका ने अपने पिता जी की इच्छा का अन्दाजा लगा लिया था।

जगदीशचन्द्र बडे शौक के साथ अलका से उस की पेण्टिंग और पहाडी जिन्दगी के बारे म पूछता रहा। अलका सलीके से जवाब देती गयी। समुद्र के सफर के बारे म उस से पूछती रही। पर वह सारा समय उस आनेवाले वक्त के बारे म सोचती रही जब उस का इस से ज्यादा बडी बातो से वास्ता पडना था।

सन्ध्या समय पिताजी किसी काम से बाहर चले गये। अलका ने समझ लिया कि वह जान-बूझकर उसे जगदीशचन्द्र के पास अकेली छोड गये थे। वह अपने कमरे की खिडकी म इस तरह खडी हो गयी जसे जिन्दगी की इस नयी माग को, और उस के बराबर तुलनेवाली अपनी हिम्मत को जाचकर देख रही हो। उसे

ठहरे हुए कुछ ही समय हुआ था कि कमरे के दरवाजे मे से जगदीशचन्द्र ने आवाज देकर उस से पूछा कि क्या वह कमरे में आ सकता था ।

"आइये !" अलका ने खिडकी से हटकर एक कुरसी की ओर हाथ से सकेत किया ।

'अभी तक सफर की थकान होगी ' जगदीशचन्द्र ने कमरे म आकर कुरसी पर बैठते हुए बडी आत्मीयता से देखा ।

"आप तो खूब लम्बा सफर करनेवालो मे हैं, सफर की थकान की बात इतना क्यो सोचते हैं !" अलका हँस पडी, और सामने कुरसी पर बैठ गयी ।

'हम लोगो की वह आदत बन जाती है। वास्तव म मैं वहा आना चाहता था।"

'कहा ?"

'वही तुम्हारे चक्क नम्बर छत्तीस म ।"

'आ जाते ।"

"पर पिताजी तुम्हे यहाँ बुलाना चाहते थे वह खूब सुन्दर जगह होगी ? '

'हाँ ।'

इतने दिनो बाद शहर म आकर अजीब सा लगता होगा ।"

'बहुत अजीब !"

'मेरा खयाल है कि तुम्हे समन्दर किनारे की जिन्दगी भी अच्छी लगेगी ।'

अलका ने एक नजर मे जगदीशचन्द्र के चेहरे की ओर देखा और हँस पडी । अलका के हँसने स जगदीशचन्द्र को खयाल आया कि अलका स पूछे बिना उस न उस की जिन्दगी को खुद ही समन्दर के किनारे से जोड दिया था । यह उस न बडी जल्दी की थी ।

वास्तव म " जगदीशचन्द्र न कुरसी से उठकर अलका की पीठ की तरफ खडे होकर उस की कुरसी पर हाथ रखा, और वह जसे जो कुछ महसूस कर रहा था उसे वैसे ही कह दिया, 'मैं ने यह बिलकुल नही सोचा था कि मेरा इतनी खूबसूरत लडकी से वास्ता पडेगा ।"

"आप ने क्या सोचा था ?"

मैं ने कुछ भी नही सोचा था। मा काफी अरस म शादी के लिए जोर दे रही है । इस बार छुट्टियो म उस न मुझे मना लिया था कि मैं शादी कर लूगा । उस ने कई जगह देख रखी थीं ।'

'फिर कई स्थानो मे से आप न इस जगह को क्यो चुना ?

आप के पिताजी का शायद किसी न मेरी ओर स बताया था । उन्होन मुझ से मिलना चाहा, और मैं चला आया । बस मैं यहाँ भी माँ के जोर देने पर आया था । वह कहती थी कि अगर यहाँ बात हो जाय तो किसी और जगह की बात

सोचने की जरूरत नही।'

"वह मुझे जानती है?"

'तुम्हे नही, पिताजी को जानती है।"

पर यह मा का फैसला है, आप का नही।"

जगदीशचन्द्र ने कुरसी पर रखा हुआ हाथ अलका के कन्धे पर रख दिया। उस के हाथ म उस के मन की बात धडक रही थी, पर वह सोच रहा था कि वह इस बात को कसे कह!

'सो आप मुझ से विवाह करने के लिए तैयार हैं।" अलका ने खुद ही कहा।

'अगर सिफ मेरी मरजी से हो सकता हो तो आज ही हो जाये, अभी "

'पर अब सन्ध्या समय कैसे होगा!" अलका हँसने लगी। जगदीशचन्द्र को उस की हँसी बडी अच्छी लगी। उस के मजाकिया स्वभाव के बराबर उतरने के लिए वह भी हँस दिया, और बोला, "विवाह करनेवाली अदालतें रात को भी खुली रहनी चाहिए!' और फिर जगदीशचन्द्र ने अलका के कन्धे पर रखे हुए हाथ को जरा दबाकर कहा, "पर यह मेरी मरजी की बात है। मुझे अब तक तुम ने अपनी मरजी नही बतायी।"

"मेरी मरजी का तो आप ने पहले ही फसला कर दिया था कि मुझे समन्दर के किनारे की जिन्दगी अच्छी लगेगी!" अलका हँस दी।

जगदीशचन्द्र ने झुककर अलका के होठो को छूना चाहा, पर अलका ने मुह हटा लिया और बोली, "अभी नही!"

जगदीशचन्द्र ने अलका के कन्धे पर रखा हुआ हाथ इस तरह उठा लिया, जसे वह अपने सब्र का सबूत दे रहा हो।

"अब जब पिताजी आयेंगे, उन्हे तुम खुद बताओगी, या मैं बता दू?" जगदीशचन्द्र न अलका से पूछा।

"जैसी आप की मरजी।"

'मेरी छुट्टी बहुत कम रह गयी है। तुम जो कुछ खरीदना चाहो, मुझे जल्दी बता देना।'

"मुझे कोई चीज नही खरीदनी। पर अदालतवाले एक महीने का अरसा मांगते है।'

मेरी माँ अदालती शादी से खुश न होगी। अगर हम दूसरी तरह से शादी करते तो कोई हरज है?"

"कई देशो म आप एकवर्षीय विवाह भी कर सकते हैं और द्विवर्षीय भी और जरूरत पडे तो एक मासिक भी पर हमारे देश म इस तरह का विवाह नहीं होता। इसलिए रस्मी विवाह म अदालती विवाह अच्छा है।

'अच्छा!'

"जी।"

"तुम मुझ से उमर भर के लिए विवाह नही करना चाहती हो ?"

"कह नही सकती। गुजर जाये तो सारी उमर बीत जाये, न गुज़रे तो एक महीना भी न गुज़रे, एक दिन भी न बीते।"

जगदीशचन्द्र पहले हैरान हुआ। फिर उस ने हँसकर अलका की ओर देखा और बोला, "देखने मे यह बिलकुल पता नही चलता कि तुम इतनी 'एडवेंचरस' होगी।"

"मैं बिलकुल 'एडवेंचरस' नही हूँ।"

"मैं ने सोचा था कि अगर कभी किसी से इस तरह की शर्त करनी होगी, तो मुझे ही... हम नवीवालो की जिन्दगी बडी अजीब होती है। नित नये लोगो से वास्ता पडता है। इसलिए सारी उमर का बन्धन कई बार हमे अच्छा नही लगता... पर लगता है कि तुम मुझ से भी कही 'एडवेंचरस' हो।"

"मैं बिलकुल 'एडवेंचरस' नही हूँ। बात बस इतनी है कि जिन्दगी बडी अजीब होती है। सिर्फ नेवीवालो की ही नही, सभी की अजीब होती है।"

"तुम्हारा खयाल है कि शायद तुम कभी किसी और को प्यार करने लगोगी ?"

"शायद नही, अब भी करती हूँ।"

जगदीशचन्द्र अलका के चेहरे की ओर देखने लगा। वह अब तक खडा हुआ था। वह हैरान हुआ कुरसी पर बैठ गया। फिर कुछ देर बाद उस ने अलका से पूछा, "फिर तुम उस से विवाह क्यो नही कर लेती हो, अलका ?"

"वह मुझ से विवाह नही करना चाहते।"

जगदीशचन्द्र कुछ देर चुप रहा। फिर हँस पडा, "पर अब जब कि तुम कुआरी हो, वह तुम से विवाह नही करना चाहता, और फिर जब तुम्हारा विवाह हो जायेगा तो क्या वह चाहेगा कि तुम तलाक लेकर उस से विवाह कर लो ?"

"शायद।"

जगदीशचन्द्र के मन मे कसक सी उठी और उस ने आगे बढकर अलका का हाथ पकड लिया और बोला, "मैं तुम्हे इतनी दूर ले जाऊँगा कि तुम्ह कभी उस की खैर खबर भी न मिले।"

"मैं जहा भी रहूँ, मुझे उस का पता रहेगा।"

जगदीशचन्द्र ने अलका का हाथ छोड दिया और बोला, "मेरा खयाल है, तुम्ह विवाह नही करना चाहिए।"

"मेरा भी यही खयाल है कि मुझे विवाह नही करना चाहिए।"

"पर मैं हैरान हू कि तुम विवाह करना मान कसे गयी।"

"मैं ने उसे वचन दिया है कि म विवाह कर लूगी।"

"इस का मतलब है, उस ने जबरदस्ती तुम से वचन लिया है।"

"हां।"

"उस का खयाल है कि एक बार तुम्हारा विवाह हो जायगा, और वह हमेशा के लिए तुम से जुदा हो जायेगा।"

'हां।'

मेरा खयाल है कि उस ने ठीक सोचा है।"

जगदीशचन्द्र ने प्यार से अलका का हाथ पकड़ लिया और बोला, "उस से चाहे तुम्हारा कितना भी ताल्लुक रहा हो मुझे उस की परवा नहीं। ज्यादा से ज्यादा यह होगा कि उस का तुम से जिस्मानी ताल्लुक होगा। यह कोई खास बात नहीं। इस तरह मेरी जिन्दगी में भी कई लड़कियां आयी हैं। सब की जिन्दगी में आती हैं। विवाह से पहले की बातों को नहीं कुरेदना चाहिए। मुझे सिर्फ यह बता दो कि मुझ से विवाह हो जाने पर मुझ से चोरी उसे मिलोगी?"

'बिलकुल नहीं।"

"उसे खत लिखोगी?'

"बिलकुल नहीं।"

जगदीशचन्द्र ने कुरसी से उठकर अलका की पीठ पर अपना हाथ रखा और बड़े प्यार से बोला, 'दैन इट इज नथिंग।"

'पर एक बात है।"

"क्या?'

"अगर कभी मुझे यह मालूम हो गया कि उस ने अपना खयाल बदल दिया है, और उसे मेरी जरूरत है तो मैं आप से तलाक लेकर उस के पास चली जाऊंगी।"

"चलो, यह शर्त मंजूर है!" जगदीशचन्द्र हँसा। उस ने अलका के घने बालों में से छोटी लट को अपनी उँगली पर लपेटा और बोला, 'मैं खुश हूँ कि तुम ने इतनी दिलेरी से बातें की हैं। तुम जैसी लड़की कभी झूठ नहीं बोल सकती।"

'मैं कभी झूठ नहीं बोल सकती।'

जगदीशचन्द्र ने झुककर अलका के होंठों को छूना चाहा, पर अलका ने इनकार में सिर हिला दिया 'अभी नहीं, विवाह के बाद।'

"सुबह अदालत में लिखकर दे दूं?'

"दे दीजिये।'

"पूरा एक महीना इंतजार करना होगा।"

'आप की छुट्टी का क्या होगा?'

'मैं और छुट्टी ले लूंगा।"

जगदीशचन्द्र जब अलका के कमरे से जाने लगा तो अलका ने जल्दी से दरवाजे की देहरी पर जाकर उस से पूछा, "एक आखिरी खत लिखने की इजाज़त है?

सिर्फ़ यह लिखना है कि आज से एक महीने के बाद मेरा विवाह हो जायगा।"

'हाँ।' जगदीशचन्द्र ने हँसते हुए कहा, और अलका के कमरे से वह चला गया।

अलका रात को जब कुमार के नाम खत लिखने लगी, तो उसे यह समझ नहीं आ रहा था कि वह यह खत किसे लिखने लगी है। हाथ में कलम पकड़कर जब उस ने कागज़ की तरफ देखा तो उसे लगा जैसे वह खाइयों के पत्थरों को खत लिखने लगी हो।



"घेतू चाचा शहर जो गया तो शहर दाई होई रया!' हरिया ने उठते बैठते कई बार कहा। कुमार ने कई बार हरिया को झिड़की देकर कहना चाहा कि उस ने घेतू चाचा की रट क्यों लगा रखी है, आखिर वह मुद्दत में शहर गया है, चार दिन वहाँ की रौनक देखेगा और खुद लौट आयगा। पर कुमार को लगा कि रोज जब गाड़ी का समय होता था तो वह खुद घूमते घूमते शहर की बड़ी सड़क पर चला जाता था। वह पिछले कई दिनों में बैजनाथ की ओर नहीं गया था। हमेशा पपरोला की उतराई उतर जाता था जैसे वह आधी बाट चलकर स्टेशन से आते हुए घेतू चाचा को लेने जा रहा हो। इसलिए उस ने हरिया को कुछ न कहा।

'मैं घेतू चाचा की बाट इस तरह क्या देख रहा हूँ जैसे कोई कासिद का इंतजार कर रहा हो?" कुमार ने हरिया को कुछ कहने की जगह अपने आप को कोसा। वह स्वयं रुआँसा-सा हो गया। फिर उस ने खुद ही अपने आपको ढाढस बँधाया, 'मैं घेतू की बाट इस लिए देख रहा हूँ कि वह आकर मुझे अलका की पूरी खबर बताये कि उस ने वहाँ जाकर कोई ज़िद नहीं ठानी और अपने पिताजी का कहना मानकर अपने विवाह की बात पक्की कर ली।"

एक दिन नाथी हरिया को खोजती खोजती कुमार के बरामदे से बाहर निकली। कुमार घास पर बैठा था। नाथी को उस ने पहले भी दो बार हरिया के

पास आकर शहर की खबर पूछत देखा था। पर वह हमेशा ट्रंरिया से पूछकर लौट जाया करती थी। आज वह कुमार के पास आकर खडी हो गयी—"बाबूजी।"

'हा, नाथी।"

"मेरी जान तां सूला टंगोई गयी।"

क्या हुआ, नाथी ?"

चेतू चाचा घरे जो भुल्ली गया।'

उस ने जाना कहाँ है नाथी। आज कल म ही आ जायेगा। तुम्हारी माँ को उस पर भरोसा नही, जो इतनी उतावली हो गयी है ?"

'खड्डा दे पार तित्तर्ने बोलद ता अम्मा डरी-डरी जादी।'

कुमार हँसने लगा। कुमार जानता था कि नाथी का खाविन्द कई सालो से उस छोड़कर परदेश गया हुआ है। नाथी जवान जहान थी पर वह हँस-खेलकर दिन बिता रही थी। और अब जब चेतू चाचा दो चार दिना के लिए परदेश गया था तो उस की बूढी औरत इस तरह घिराग गयी थी कि वह पल पल बाद नाथी को उस की खबर पूछने के लिए भेजती थी। कुमार ने हँसकर नाथी से कहा, "अगर अम्मो की तरह तुम भी अपना दिल छोड बठो तो क्या होगा।"

"मैं तो बाबूजी, अपना दिल खड्डा दिया पत्थरां साही करी लिया।"

"फिर तुम अम्मा को समझाती क्यो नही हो ?"

"उसा दिया हड्डियाँ दा चूरा होई जादा। मिजो क्या पता, उस जो थी कने भेजि दिन्दी।"

"उसे किस बात का डर लगता है ?"

"रब दीयाँ रब जाने, उठठी-बइ मिंजो गालियाँ दिन्दी ए।"

'पर इसम तुम्हारा क्या कुसूर है ?"

"मैं चाच जो टेशने उप्पर छड्डि आयी। अम्मा उठठी-बई गलादी ए ओ दगेबाज शहरे जो ग्या शहरे दा होई रया।"

नाथी लौटने को हुई तो कुमार ने एक गहरी सास ली, 'एक ओर चेतू की औरत है, जो यह सोचती है कि चेतू शहर जाकर शहर का ही क्या हो रहा है। दूसरी तरफ मैं हूँ जो यह सोच रहा हू कि अलका शहर गयी है, ईश्वर करे वह शहर को हो रहे।'

'जलो आये शहरा दा रहणाँ।' नाथी ने जाते-जाते कहा।

"तुम्हे शहरो पर बहुत गुस्सा आ रहा है।' कुमार फिर हँसने लगा।

"तिझो पता नी, बाबूजी, ए हासा कुत्थू ते आऊन्दा ए ?' नाथी जाती-जाती ठिठक गयी और कुमार की आर दखने लगी।

"आज तुम्हे क्या हुआ है नाथी! तुम्हे मेरी हँसी पर भी गुस्सा आ रहा है।"

"अलका बीबी जो बहों करी शहर भेजि दित्ता ! मेरा मन बुरा हुंदा ए, बाबूजी ! मेरियाँ अक्खाँ उस जो तोपदियाँ फिरदीयाँ !"

कुमार ने चौंककर नाथी के चेहरे की ओर देखा। उस ने सोचा कि अलका ने नाथी को कुछ न बताया होगा, पर यह अल्हड़-सी नाथी खुद ही उस की हम-राज बन गयी थी। उस के मन ने खुद ही जान लिया था कि अलका कुमार के कहने पर शहर चली गयी है।

'एह पड़ोसू तां मेरे सिर दा वैरीए, बाबूजी ! पानिएँ जो जान्दी आं तां मैं सारे रस्ते बीबी ए जो तोपदीयाँ !" नाथी ने कहा, और उदास मुंह लिये चली गयी।

कुमार की आँखें झुक गयीं। नाथी की बात उस के मन को कचोटने लगी। उसे लगा कि वह भी नाथी की तरह अपने सिर पर अपना भार उठाकर चल रहा है। यह भार किसी दिन उस के सिर का वैरी हो जायगा। वह इसे उठाये-उठाये फिरेगा। और अलका को जगह-जगह ढूंढ़ता फिरेगा।

"बाबूजी, बाबूजी !' हरिया पगडण्डी के दूसरे सिरे से दौड़ता आ रहा था—"चेतू चाचा आयी गया ! हत्थ नी बड़ा भारा टरंक लयी आऊंदा !" हरिया ने कुमार के पास आकर बताया। वह हाँफ रहा था।

कुमार को मालूम था कि चेतू खाली हाथ गया था। टरंक की बात सुनकर उसे लगा, जैसे अलका भी चेतू के साथ आयी हो।

कुमार का दिल सिहर उठा और वह सिहरन उस के बदन में से होती हुई उस के पाँव में उतर गयी। पगडण्डी पर चढ़कर अलका को देखने के लिए उस के पैर आगे बढ़े। पर फिर वह अपने पाँव को जकड़कर ठिठक गया—जैसे उस ने खुद ही एक जंजीर अपने पाँवों में बांध ली हो।

"मुझे यही डर था !" कुमार को लगा, जैसे उसे अलका पर गुस्सा आ रहा था। पर गुस्से से देखने की बजाय वह उत्सुकता से पगडण्डी की ओर देखने लगा। देखता भी जा रहा था और सोचता भी जा रहा था, 'उस ने जरूर मन की की होगी अगर मैं अब उसे आते ही यह कह दूं कि वह उलटे पाँव लौट जाय तो फिर यह मुझे चैन से जीने क्यों नहीं देती ?'

'पैरी पाऊंदा बाबूजी !' चेतू चाचा ने दस गज दूर से ही कहा, और सिर-कन्धों पर रखी हुई चीजें वहीं उतारकर कुमार के पास आ गया।

कुमार ने एक बार चेतू की तरफ देखा, एक बार खाली पगडण्डी की ओर और धीरे से बोला, "राजी तो है, चेतू ?'

"बड़ा राजी बाबूजी !' चेतू ने लपककर कुमार के पाँवों को छुआ।

"बड़े दिन लगा दिये ! शहर में बड़ा दिल लग गया था ?" कुमार को लगा कि चेतू से बातें करते-करते वह अब भी खाली पगडण्डी की ओर देख रहा है।

"शहरे दीया गलाँ, बाबूजी, बडा सुख पाया ओयू ! खाने जो बहुत कुछ, देखने जो बहुत कुछ, आयू बडे-बडे मकान " चेतू चाचा बोलता जा रहा था।

"अच्छा, अच्छा, अब जल्दी से घर जाओ। तुम्हारी औरत को तुम्हारा विराग हो रहा है।' कुमार ने चेतू को बीच मे ही टोककर कहा। उस ने चेतू की बात को इस लिए नही टोका था कि वह जल्दी से घर चला जाये, वह सोच रहा था कि चेतू से शहर की बातें कितनी देर तक खत्म नही होंगी। बात को टोक देने से शायद वह रुक जायेगा, और अलका की बात करेगा।

"क्या गलादी थी ?" चेतू ने अपने पाव से जूती निकालकर उस मे से मिट्टी झाडते हुए पूछा।

'कौन ?"

"नाथी दी अम्माँ !"

'वह नाथी को गालिया देती है कि उस ने तुम्हे शहर क्या भेजा ! वह तुम्हें स्टेशन से लौटा क्यो न लायी !"

"उस दा बस होए, बाबूजी, ताँ मिजो गोडें कन्ने बन्नी छड्डु !" चेतू ने कहा और हँसने लगा। उस की हँसी मे इतना रोष नही था जितनी इस बात की खुशी थी कि उस के पास ऐसी औरत थी जो उसे आख की ओट नही रखती थी।

कुमार ने गठरियो और बक्से की तरफ देखा और चेतू से बोला, "तुम शहर से बडी चीज खरीदकर लाये हो ?'

"क्या गलाऊँ बाबूजी ! अलका बीबिए मिजो बडीया बखसीसाँ दित्तिया !"

अलका का नाम सुनकर कुमार को लगा कि यह नाम सुनने के लिए उस के कान बडे प्यासे थे।

"वह राजी थी ? ' कुमार की जबान ने अपने वश से बाहर होकर यह बात पूछ ली।

तुसा वास्ते इक कागद दित्ता !' चेतू ने कहा और वह बक्से को खोलने लगा।

अगर इस तरह उस की खबर को तरसना था तो तुम ने उसे भेजा ही क्यों था ? कुमार ने अपने आप को उलाहना दी।

"बाबूजी दिक्खा कितनिया वगा ! ' चेतू ने बक्से को खोलकर कॉच के बहुत से गजरे दिखाये और फिर एक रेशमी चादर दिखाते हुए बोला "ऐ मिजो बडे बाबूजी ने दित्ती ओ, पिताजी ने।'

बक्से म एक गर्म कोट पडा था। चेतू ने बडे चाव मे उस कोट को निकाला, और उस के रेशमी अस्तर को अपनी हथेली स बार बार सहलाते हुए कहा, ' इक ओयू साहब आया मिजो एक कोट " चेतू की बात उस के मुह म ही रह गयी। उस लगा कि कुमार ने माथे पर तेवर डालकर उस की तरफ देखा था। उस ने

सोचा कि बाबूजी उससे नाराज हो गए शायद यह सोचकर कि उस ने यह चीज खुद माँगकर ली हो।

"मैं कुछ नहीं माँगता था, बाबूजी, साहब ने मुझे आप ही दिया!" चेतू ने कुछ सहमकर कहा, और जल्दी से कमर के नाड़े में से एक लिफाफा निकाल कर कुमार को दिया।

कुमार ने लिफाफा ले लिया और अपने कमरे में जाकर दरवाजा भिड़का लिया।

"आप ने मेरे कई नाम रखे थे। अपने नए नए नाम रखने की मुझे आदत हो गयी है। आज इस महीने की आठ तारीख है। अगले महीने की इसी तारीख को मैं अपना एक और नाम रखूँगी—मिसेज जगदीशचन्द्र। यह खबर सब को बता देना। खाइयों के पत्थरों को भी बता देना!" यह खत पढ़कर कुमार को पहली बार जिन्दगी में यह महसूस हुआ कि उस में सीने को चीरकर उस का रोना निकल जायेगा।



जगदीशचन्द्र अपने गाँव चाहल अपनी माँ के पास चला गया था। पूरे बीस दिन वहाँ रहकर, फिर कुछ चीजें खरीदने के लिए अमृतसर आ गया था। रात को उस अलका के पिताजी अपने पास ले आये थे। अलका उसे पूरे सत्कार से मिली थी। उस के साथ कोठी के बगीचे में भी बैठी रही। जगदीशचन्द्र को सिर्फ यह महसूस हुआ था कि अलका पहले से कुछ दुबली हो गयी है।

आधी रात होगी। सोते सोते जगदीशचन्द्र को लगा, जैसे वह किसी पहाड़ की पगडण्डी पर खड़ा होकर सामने के ऊँचे पहाड़ों पर पड़ी हुई बर्फ को देख रहा हो। पास के किसी मोड़ पर से उसे किसी पहाड़िन के गाने की आवाज सुनाई दी। पहाड़ी स्वर कितनी देर उस के कानों में गूँजते रहे। फिर स्वरों के साथ-साथ गीत भी सुनाई देने लगा

'दुखावाला डलड़ू तू मेरे कन्ने देई दे !
ता होई जा अगाडी मेरे माहणुआ !
ओ पखलिया माहणुआ !'

आवाज़ दिल में उतरती जा रही थी। जगदीशचन्द्र अजीब हालत मे था। उस को कितनी ही देर मालूम न हुआ कि वह पहाड पर नही, शहर के एक कमरे म सोया हुआ है।

एक बार गीत के बोल थिरक गये, जैसे गानेवाले की आवाज़ आंसुओं से भर आयी हो। जगदीशचन्द्र चौंककर चारपाई से उठ बैठा। आवाज़ बाहर के बगीचे मे से आ रही थी। बगीचे म रात का अँधेरा गहरा नहीं था। वह कितनी देर खिडकी म से देखता रहा। पर जिस तरफ आवाज की सीध थी, उस तरफ एक पेड का गहरा साया था। पेड के साये की तरफ देखते हुए जब उस की आँखें अँधेरे से कुछ हिल गयी तो उस ने अलका की पीठ पहचान ली।

'अलका!' जगदीशचन्द्र ने बाहर बगीचे मे जाकर कहा, और पेड से पीठ टेककर खडी हुई अलका के पास जा खडा हुआ।

अलका चुप हो रही।

'तुम बहुत उदास हो!"

अलका ने सिर झुका लिया।

"मुझे लगता है जैसे इस सारी उदासी का कारण मैं हूँ।'

'नही, आप नहीं।'

"पर मेरे कारण तुम्हारी मजबूरी और बढ जायेगी!'

"इस से अधिक अब क्या बढेगी "

'पर अलका "

"जी।"

"कैसा विवाह है यह?'

'मैं खुद नही जानती।'

'मैं कई बार बैठे-बैठे सोचने लगता हूँ बाज़ार भी जाता हूँ, चीज़ें भी खरीदता हूँ पर दिल मे खुशी नही दिखती "

अलका को अपने आप पर कभी तरस नहीं आया था, जगदीशचन्द्र की हालत पर उसे तरस आ गया। उस ने आगे बढकर जगदीशचन्द्र का हाथ पकड लिया, 'आप क्यो विचारो म पडते हैं, इनकार कर दीजिये इस विवाह से!"

"मैं ने एक दिन यह भी सोचा था, और उस रात तुम्हें खत भी लिखा था, पर दूसरे दिन मैं खुद ही विचारो म डूब गया। लिफाफे मे डाला हुआ खत फाड डाला।

'आज यही समझ लीजिये कि मुझे वह खत मिल गया है।'

"तुम्हारे पिताजी क्या कहेंगे ? सोचेंगे, यह कैसा आदमी है ! सिर्फ दस दिन बाकी है।"

"पिताजी से मैं खुद सब कुछ कह लूंगी।"

"पर अलका वह कैसा आदमी है जो तुम्हें प्यार नही कर सका ! तुम उसे भूल नही सकती ? मैं सोचता हूँ कि उसे तुम कुछ समय म भूल जाओगी।"

अलका ने पहली बातो का कोई जवाब नही दिया। आखिरी बात के जवाब म बोली, "शायद यह समय उमर जितना लम्बा हो जाये ! आप इस समय की कीमत चुकाते रहियेगा।"

"मुझे उदास रहने की जरा भी आदत नही, पर मैं कई दिना से उदास हूँ।'

"मैं इसी लिए कहती हूँ कि आप यह कीमत क्या दे।"

'मैं भी यही सोचता हूँ कि मैं क्या कर रहा हूँ तुम ने मुझे पहले दिन ही सब कुछ बता दिया था। पर उस दिन जाने मुझे क्या हुआ था।"

"मैं उस दिन सोच रही थी कि आप न जाने यह विवाह क्या करना चाहते है !"

'तुम मुझ बहुत खूबसरत लगी थी पर अब सोचता हूँ कि मैं तुम्हारी अकेली खूबसूरती का क्या करूँगा !" जगदीशचन्द्र की भटकती आँखो ने अँधेरे मे अलका के चेहरे को टटोला।

"आप ठीक सोचते हैं।"

"मेरा खयाल है कि मैं बाकी छुट्टियाँ कैंसिल करवाकर वापस नौकरी पर चला जाऊँ। पर मेरे जाने के बाद क्या सोचोगी ?"

"क्यो ! एक अच्छा आदमी, और क्या ! आप यो ही परेशान हो रहे है। आज आप की रात की नीद भी खराब हो गयी है।'

अलका जगदीश को साथ लेकर कोठी म लौट आयी, और जगदीश को उस के कमरे तक छोडकर खुद अपने कमरे म चली आयी।

अलका जिन दिनो यहा होती थी, सुबह की चाय खुद बनाया करती थी। उस दिन भी जब सुबह हुई, अलका ने चाय बनायी। एक प्याला अपने पिताजी के कमरे म रख आयी, और एक प्याला जगदीश के कमरे मे। जगदीश के कमरे से जब वह लौट रही थी तो आवाज देकर जगदीश न उसे अपने पास बुलाया।

अलका पलग के पास जाकर खडी हो गयी। जगदीश ने पलग से उठकर एक सिगरेट सुलगायी, और पलग के पाये पर बैठते हुए बोला, मुझ रात का बिलकुल नीद नही आयी।"

आप इतना क्या सोचते है ? वापस जाकर एक-दो दिन मे ठीक हो जायेगा।

"तुम ने उस दिन तलाक की बात की थी।"

"अच्छा हुआ उस की जरूरत न पडी।"

'तलाक विवाह के बाद होता है। पर मुझे आज ऐसे लगता है, जैसे तलाक विवाह से पहले हो गया हो ।"

अलका ने मन की पीडा को जीकर देखा हुआ था। वह जगदीश के मुह से इतनी भावुक बात सुनकर सहम गयी कि इस राह चलते आदमी को यह पीडा न छू जाये।

मैं कभी ऐसी भावुक बातें नही करता पर तुम ठीक कहती हो। वापस काम पर लौट जाऊँगा तो एक दिन मे ठीक हो जाऊँगा।"

अलका जाने लगी तो जगदीश ने उसे फिर रोक लिया, कहा, "तुम मेरे मन की हालत समझती हो ?"

'हा।'

'मैं जब तुम्हारी तरफ देखता हूँ, तुम्हारे चेहरे के पीछे मुझे एक और चेहरा भी दिखाई देता है, जिस से तुम प्यार करती हो—मुझे उस का चेहरा भी दीखता है शायद मैं जब भी तुम्हारी तरफ देखूगा मुझे इसी तरह दिखाई देगा इस लिए हम विवाह नही करना चाहिए। क्यों, करना चाहिए ?"

'नही करना चाहिए।"

"मेरा यहा दिल घबराता है। मैं अभी तयार होकर चला जाऊँगा।"

'अच्छा।"

मैं पिताजी से कुछ नही कहूँगा – तुम खुद सब कुछ कह देना।

'अच्छा।"

अलका अपने कमरे म लौटी, तो उस की चाय ठण्डी हो चुकी थी। उस ने गरम चाय का एक प्याला और बनाया। खिडकी म खडी जब वह चाय पी रही थी उस ने जगदीशचन्द्र को कोठी के दरवाजे से बाहर जाते हुए देखा। वह कितनी ही देर जगदीश की पीठ की तरफ देखती रही। वह ओझल हो गया तो अलका उस की पीठ के खयाल म ही डूबी रही। उसे लगा, जसे वह इस पीठ स माफी माग रही हो।



कुमार के कमरे में लटका हुआ कैलेण्डर कई दिनों से कुमार की ओर देख रहा था, और कुमार उस की ओर। कैलेण्डर की ओर देखते देखते कुमार कभी यह सोचता कि आनेवाली आठ तारीख इतनी जल्दी क्यों आ रही थी! उस का दिल चाहता था कि यह तारीख कहीं रास्ते में ही अटक जाये और कभी वह सोचता कि आनेवाली आठ तारीख इतनी देर से क्यों आ रही, और उस का दिल चाहता कि तारीख जल्दी से आकर गुजर जाये। कैलेण्डर उस की तरफ देखता रहता था, और देखते देखते उस का दिल चाहता कि वह इस कमरे में से उठकर वहां चला जाय जहाँ से कुमार को कभी किसी तारीख का पता न चले।

आठ शब्द याद आते ही कुमार को जाने क्या हो जाता। एक दिन हरिया ने आकर जब आठ आने मांगे तो कुमार काफी देर उस के चेहरे की तरफ देखता रहा।

अट्ठ वजी गए बाबूजी? एक दिन सुबह लकड़ियों का गट्ठा ले जाते हुए पहाड़िया ने कुमार से पूछा, तो कुमार का पांव ठिठककर पत्थर से जा टकराया।

कुमार कई दिनों से एक तसवीर बना रहा था। तसवीर में एक चन्द्रमा अपने पूरे जलाल में था। नीचे एक पानी का तालाब था। उस में चाँद की परछाईं भी चन्द्रमा की ही तरह भरपूर जलाल में थी। तालाब के किनारे पर कुछ लम्बे पेड़ थे और पानी में उन के काले साये तैर रहे थे। यह तसवीर करीब आठ फुट लम्बी थी। कुमार ने जब तसवीर खत्म की, तो कमरे की सब से बड़ी दीवार पर लटकाकर उसे दूर से देखने लगा। उसे महसूस हुआ कि तसवीर पर बड़े आकार में 'आठ' का अंक लिखा हुआ था। आसमान के चन्द्रमा का गोल दायरा, और पानी में उस की परछाईं का गोल दायरा मिलकर 'आठ' का अंक बन गया था। कुमार ने कई बार अपनी चेतना पर दबाव डालकर देखना चाहा कि तसवीर में एक चन्द्रमा था और एक उस की परछाईं। पर उस की आँखें इस विचार के प्रतिकूल जब तसवीर की ओर देखती थीं, तो उन्हें आठ का अंक दिखाई देता था। तसवीर की ओर देखते देखते कुमार ने देखा कि तसवीर के पेड़ भी आठ ही थे।

चार तालाब के किनारे पर उगे हुए पेड थे, और चार उन मे पानी मे तैरते साये। कुमार ने घबराकर वह तसवीर दीवार से उतार ली।

कुमार ने नया कैनवास लेकर एक और तसवीर बनानी शुरू कर दी। इस तसवीर मे एक अँधेरे का आलम था। एक मुसाफिर इस अँधेरे म रास्त पर चल रहा था। क्षितिज की केवल हलकी-सी रेखा उस मुसाफिर को दिखाइ दे रही थी। मुसाफिर का सारा शरीर अँधेरे म लिपटा हुआ था। पर उस के पर रोशनी मे भीग हुए थे। कुमार न इस मुसाफिर के पैरो को उजले रगो म बनाया। जितने कदम वह मुसाफिर चल चुका था, कुमार ने उन पैरो क निशान भी उजले बनाये। तसवीर को खत्म करके कुमार ने जब उसे कमरे की दीवार पर लगाया तो उसकी तरफ देखते देखत कुमार को लगा कि तसवीर का मुसाफिर चल नही रहा था। अपने पैरो पर खडा का खडा रह गया था। कुमार न उन उजले कदमो की ओर देखा, जो कदम वह मुसाफिर चलकर आया था। कदम पूरे सात थे। आठवें कदम पर वह मुसाफिर चलन से रुक गया था। कुमार न कांपत हाथो से उस तसवीर को दीवार से उतार लिया, और नया कनवस लेकर एक और तसवीर बनाने लगा।

इस नयी तसवीर म कुमार ने खास ध्यान रखा कि किसी तरह भी पेडो और कदमो की तरह कोई एसी चीज नही बनायेगा जिसे गिना जा सके। इस तसवीर म उस ने एक लडकी इस तरह की बनायी, जिस का सम्बन्ध एक अलग दुनिया, और अलग किस्म की जिन्दगी से था। लडकी के इस तरफ उस न सगमरमर की जाली की एक बहुत ऊँची आड बना दी। जाली की यह आड एक दुनिया को, और एक जिन्दगी को अलग-अलग कर रही थी।

कुमार ने ऐसी तसल्ली से इस तसवीर को बनाकर जब दीवार पर टाँगा, और खुद दरवाजे की चौखट पर खडा होकर दूर से इस तसवीर को देखने लगा, तो उस की आखें चकित रह गयी। सगमरमर की जाली के सारे सूराख एक-दूसरे से मिलकर इस तरह के आकार मे ढल गये थे जैसे पूरे के पूरे कनवस पर सकडो 'आठ' लिखे हुए हो। आठो की लम्बी कतार थी, कतार के नीचे एक और कतार! उस के नीचे एक और कतार, उस के नीचे एक और कतार!
कुमार ने सिर झुकाकर दीवार की ओर से मुह फेर लिया, जैसे उस ने अपने-आप स मुह फेर लिया हो।

हरिया कई बार बैठे-बैठे अपने देश का एक गीत गाया करता था, 'बारां वजि गये हो, राजे दीयां घडीयां बारां बजि गये हो!' कुमार ने यह गीत कई बार सुना था। इसे सिर्फ हरिया ही नही गाया करता था, मछरिन भी गाया करते थे। कोई कोई तो इसे बासुरी पर बजाया करता था। कुमार ने कभी इस गीत की तरफ ध्यान नही दिया था। आज हरिया स यह गीत सुनकर उसे लगा

कि इस गीत की पृष्ठभूमि म कोई दर्द भरी कहानी थी। इस घाटी म कभी इस तरह के बारह बजे होंगे कि सारी घाटी काप उठी होगी। इस घटना को जान कितन वष हो चुके होंगे। शायद एक सदी गुज़र चुकी हो। पर बारह बजे घटित हुई कहानी आज भी इस घाटी के लोगो का याद थी। जसे वे आज भी जब घडी की तरफ देखते है, उन्हें बारह बजने से भय आने लगता है।

"हरिया !"

'हां, बाबूजी।"

"यह तुम क्या गा रहे हो—बारां वजि गये ?"

"ए साडे देसे दा गोन ए !"

"बारह बजे क्या हुआ था ?"

"बारह बजे मोहने ने फाँसिये चढना सी !"

"यह मोहना कौन था ?"

"फुल्ला लद्दीआं बाडिया विच राजे दा माली सी।"

"राजे ने उसे फासी का हुक्म क्यो द दिया ?"

"एक राजे दी रानी कीयां हार दिन्दा सी।"

"और क्या करता था ?"

"पजरगी मुरली बजान्दा सी।"

"फिर राजे ने उसे फासी लगा दिया ?"

"नही, बाबूजी! इस दे धरमें दे भार नाल तकता टुटी गया !"

"ओ !"

कुमार जब हरिया से यह कहानी सुनकर दूर के पेडों की तरफ देखते हुए नीचे गया तो वह सोच रहा था, 'मोहने ने किसी रानी के रूप की पूजा की होगी, रानी के शृगार के लिए उस ने फूलो के हार पिरोय होंगे, राजा को उन फलो मे से मुहब्बत की खुशबू आयी होगी, और राजा ने फासी का हुक्म सुना दिया। मुहब्बत करना मोहने का कुसूर था, यही कुसूर उस का धम बन गया, और धम के भार से फासी का तख्ता टूट गया मैं इस से बिलकुल उलटा खेल खल रहा हूँ मैं ने मुहब्बत को धम नही बनाया, शायद इसी लिए मेरे भार से कुछ नही बनता। मेर सारे दिन, सारी रातें इस तरह हो गयी हैं, जैसे मैं फासी के तख्ते पर खडा होऊँ !'

घडी की सुई ने जसे धीरे धीर सरकते हुए वही बारह बजा दिय थे, जब मोहने न फासी लगना था। उसी तरह समय की सुई धीरे धीरे सारे दिन गुजर गयी, और आखिर आठ तारीख आ पहुँची।

कुमार को याद आया कि कई वष पहले जब वह बम्बई पढता था तो वह एक बार समुद्र मे नहाने के लिए गया था। उस दिन उस ने पहली दफा

समुद्र मे पाँव रखा था। वह कितनी ही हल्की-हल्की लहरो के थपेडे अपनी पीठ पर महसूस करता रहा। कभी उसके पर उखड जाते थे, कभी समन्दर का सलोना पानी उसकी नाक और मुह मे चला जाता था। वह कितनी ही देर छोटी छोटी लहरो म खडा रहा था। नहाते नहाते वह पानी म और आगे बढ गया था, और फिर अचानक एक बहुत बडी लहर उस पर चढ आयी थी। वह बौखला उठा था। उसे लगा था कि यह लहर उसे बहाकर ले जायगी। एक और आदमी उस से कुछ फासले पर नहा रहा था। उस ने पास आकर कुमार का हाथ पकडकर उसे ऊपर उछाल लिया था, और लहर परा के नीचे से गुजर गयी थी। उस ने कुमार को बताया था कि इस तरह की ऊँची लहरो के आने पर या तो अपने पर उठाकर लहर पर सवार हो जाना चाहिए, और या नाक मुह बन्द रखकर लहर को अपने सिर पर से गुजर जाने देना चाहिए। और कुमार ने सोचा कि अगर वह आठ तारीख की इस ऊँची लहर पर सवार होकर पार नही हो सकता तो उसे अपनी नाक मुह बन्द कर लेना चाहिए और इस लहर को अपने सिर के ऊपर से गुजर जाने देना चाहिए।

कुमार अपने चक्क की पगडण्डी पर चलता बडी सडक पार आ गया। इस सडक पर से अक्सर सैलानियो की मोटरें गुजरती थी। कई बार कुछ सैलानी अपनी मोटरें सडक पर छोडकर कुमार का स्टूडियो देखने के लिए चक्क की पगडण्डी उतर आते थे। मन्दिरो के झरना की तरह इस घाटी म कुमार का स्टूडियो भी दर्शनीय समझा जाता था। कई बार कुछ लोग कुमार से शहर का कोई काम भी पूछ लेते थे।—आज कुमार को सडक पर आकर किसी सैलानी की शहर की ओर जाती मोटर तो दिखाई न दी,पर फौजियों की एक जीप जरूर मिल गयी। फौजियो ने बताया कि उन्हें पठानकोट तक जाना है। कुमार उन की जीप म बैठकर पठानकोट की तरफ चल दिया। जीप पालमपुर पहुँची तो कुमार ने पठानकोट जाने का इरादा छोड दिया। वह पालमपुर ही उतर गया।

'जैसा पठानकोट वैसा पालमपुर।' कुमार ने मन मे कहा, और उस गली की तरफ चल दिया। वहाँ पहुँचकर कुमार ने सोचा था कि वह नाक मुह बन्द कर किसी औरत के जिस्म म इस तरह खो जायेगा कि आठ तारीख की ऊँची लहर उस के सिर के ऊपर से गुजर जायेगी। कुमार को विश्वास था कि वह पानियो मे अडिग खडा रह जायेगा, और वह आसानी से किनारे की रेत पर लौट आयेगा।

पालमपुर के बाजार म बैठनेवाली औरतो को ज्यादा आमदनी की उम्मीद नही हुआ करती थी। इस रास्ते से होकर गुजरने वाले फौजी उन का एक मात्र सहारा थे। बडे अफसर उस तरफ कम ही आते थे, क्योंकि उन्हें पठानकोट म यहा से अधिक सहूलियतें मिल जाती थी। इसलिए आम किस्म के ग्राहकों की

अभ्यस्त ये औरतें जब कभी ऐसे आदमी को देखती जिस से उन्हें ज्यादा आमदनी की उम्मीद होती तो वे खास तौर से उस का स्वागत करती। कुमार का स्वागत भी इस तरह हुआ, जैसे एक मुद्दत के बाद किसी वाकिफ़ के घर मे आया हो।

चन्द्रावती की आयु को अन्हड कहा जा सकता था, पर उस की कोई भी अदा अल्हड नही थी। कुमार ने शराब पीने से इनकार कर दिया, तो चन्द्रा ने मुसकराकर कुमार के सामने से गिलास हटा लिया। काच के एक प्याले म उस ने फलो का रस डालकर कुमार के पास रख दिया, और उस के पैरो से बूट उतारकर उस की जुराबें उतारने लगी।

चन्द्रा की ठण्डी-ठण्डी उँगलिया जब कुमार के कसे हुए बदन से छुईं, तो कुमार को लगा जैसे नीद आ रही हो।

चन्द्रा ने सेमल की रुई से भरा हुआ एक तकिया पलग पर रख दिया। कुमार ने तकिये पर सिर रखकर चन्द्रा से पूछा *"अगर आज उस का विवाह होना हो तो वह कैसे कपडे पहनगी।'* उसने चन्द्रा को वैसे ही कपडे पहन लेने के लिए कहा, और चादी के वे सारे गहने भी पहनने को कहा, जिन्ह विवाह के दिन पहना जाता है।

चन्द्रा चुप रही। साथ ही कोठरी मे जाकर उस ने अपना बक्सा खोला। चन्द्रा ने हरी छीट की चूडीदार सलवार पहनी। दरियाई किनारी वाला कुरता पहना, पाव मे पायलें और नाक मे चादी की एक छोटी-सी नथ पहनकर जब वह कुमार के पास आयी तो कुमार सो चुका था।

पायल की खनक से कुमार ने अपनी अलसायी आँखें खोली और देखा कि चन्द्रा उस के पायताने इस तरह सिमटकर बैठ गयी थी जैसे वह अभी-अभी डोली मे से निकलकर लायी गयी हो।

कुमार ने हाथ पकडकर चन्द्रा को पायताने से उठाया। पर चन्द्रा को अपनी बाहो मे लेते हुए उसे महसूस हुआ जैसे वह कपडो की बनी एक गुडिया से खेल रहा हो।

चन्द्रा ने नाक मे पहनी हुई नथ को अपनी उँगलियो से थाम लिया। नथ का मोती शायद उसे भारी लग रहा था। कुमार ने चन्द्रा की ओर देखा। उसे लगा, चन्द्रा विवाह का यह स्वाँग भरते भरते ऊब गयी थी।

'यह स्वाग किस लिए?' कुमार को खयाल आया और उस न अपने आप को घूरकर देखा, 'मैं ने चन्दा को अलवा का स्वाँग भरने के लिए क्या कहा था? मैं यह क्या कर रहा हूँ?'

'आज ही नही, तुम हमेशा ही इस तरह करते हो।' कुमार को लगा, जैसे बाहर से किसी ने कुछ न कहा हो, पर उस के अन्दर बैठकर उस मे कोई यह रहा

था, 'तुमने अपने-आप को कभी भी उस तरह स्वीकार नही किया, जैसे तुम्हे करना चाहिए था। तुमने अलका को भी कभी उस तरह कबूल नही किया, जैसे तुम्हें करना चाहिए था। तुम अलका मे हमेशा एक वेश्या का भ्रम खाते रहे, और आज एक वेश्या में अलका का भ्रम खाना चाहते हो तुम यह क्या नही समझते कि वह यहा भी बैठी हुई है, तुम उस के पास बठे हुए हो, और तुम यहाँ भी खडे हो, वह तुम्हारे पास खडी है

' पानी मे कभी रेखा नही खिचती। रेखा का भ्रम होता है, पर रेखा नही! तुम अब तक पानी को तोडकर देख रह हो '

पानी टूट नही सकता था पानी का बाँध टूट गया। दिल के पानियो मे जाने कैसा वेग आया। इसी पानी के जोर म से एक बिजली पैदा हुई। मुहब्बत और नफरत की तारा ने मिलकर इस बिजली का जगा दिया, और इस की रोशनी मे कुमार को लगा कि अलका उसके पास थी। अलका उस के अन्दर भी थी, और अलका उस के बाहर भी थी। कुमार ने चन्द्रा की मूठ रुपयो से भर दी। ये रुपये चन्द्रा से आज के स्वाग के लिए माफी माग रहे थे।

कुमार गली मे से होता हुआ बडे बाजार मे आ पहुँचा और पपरोला का जा रही बस म बैठ गया।

बस के पपरोला पहुँचते पहुँचते अँधेरा गहरा हो गया था। डेढ मील अभी और बाकी था। पर कुमार जल्दी जल्दी पाव उठाता हुआ अपने चक्क की तरफ इस तरह बढा जसे वहा उस का कोई इन्तजार कर रहा हो।

चक्क की कच्ची पगडण्डी से उतरकर कुमार सीधा झुग्गिया की तरफ चला गया। जिस झुग्गी मे अलका ने दीयो के बहुत स आले बनाय हुए थे, कुमार ने उस झुग्गी म जाकर सब दीये जला दिये। झुग्गी की दीवार झिलमिला उठी। कच्ची उचान पर ऊन का गलीचा बिछा हुआ था। कुमार जब उस गलीचे पर बठा तो उसे लगा जसे आज के विवाह की पहली रात हो। अलका कही नही गयी थी, अलका उसके पास थी। अलका उसके अन्दर थी। और फिर कुमार ने उस दीवार की ओर देखा, जिस दीवार पर अलका ने पानी की लहरें बनाकर पानी मे एक रेखा खीची हुई थी। कुमार के दिल म आया कि वह अभी रग और ब्रुश लेकर पानी मे खिची हुई रेखा को मिटा दे !



अलका ने कोठी के बगीचे में एक ऊँची जगह पर पत्थर की एक शिला रखी थी। इस शिला पर वह शाम को चाय के प्याले रखकर अपने पिताजी को आवाज देकर बुला लेती थी। पिताजी रोज नियमपूर्वक शाम के छह बजे चाय पीते थे, और फिर सैर करने के लिए चले जाते थे। अलका उन के आने तक बगीचे में ही बैठी रहती थी।

आज पिताजी को गये कुछ ही देर हुई थी। जगदीशचन्द्र कोठी के बाहरी दरवाजे में से अलका के पास आ गया। अलका चाय के खाली प्याले उठा रही थी।

"आप !"

"मैं कितनी देर से उस तरफ मोड़ पर खड़ा हुआ था। पिताजी के चले जाने पर अन्दर आने की सोच रहा था।"

'पिताजी ने आपको आने से कभी नहीं रोका।'

"पर मैं तुम्हें अकेले में मिलना चाहता था।'

"बैठिए।"

"बैठने का अधिकार मैं ने खो दिया है, पर आज मैं वही अधिकार लेने आया हूँ।'

"आप अभी तक वापस नहीं गये ? आज पन्द्रह तारीख हो गयी है

'वापस जाना चाहा था जा नहीं सका अलका !"

"जी !"

'मैं उस दिन जब रात के अँधेरे में यहाँ से चला गया था'

'मैं ने आप को जाते हुए देखा था।

"तुम ने उस दिन क्या सोचा होगा ?'

अलका ने हँसकर कहा, "जहाँ तक आप की पीठ दिखाई देती रही, मैं आप की पीठ की तरफ देखती रही और उस से माफी मांगती रही।

"माफी तो उसे माँगनी चाहिए, जो पीठ करके चला जाये !"

"आप किसी की तरफ पीठ करके जाने वाले नहीं थे, जाने के लिए मैंने आप को मजबूर किया था, इस लिए मैं आप की पीठ से माफी माँगती रही "

जगदीश ने एक गहरी साँस ली, और अलका की तरफ देखते हुए बोला, "न कोई तुम्हारी तरह सोच सकता है न कोई तुम्हारी तरह बोल सकता है। अब तुम समझी हो कि मैं जाकर भी क्या नहीं जा सका। लगता था, दुनिया में हुस्न भी बहुत मिल जायगा, जवानी भी मिल जायगी, पर यह जो मैंने तुम में देखा है, यह मुझे कभी नहीं मिलेगा।"

अलका कुछ नहीं बोली। उस ने सिर झुका लिया।

"यह जो आठ तारीख गुज़र गयी है, अलका, वह मुझे लौटा दो।"

"तारीख तो लौट सकती है, पर "

"अब मेरे मन में कोई 'पर' नहीं रहा, और न तुम्हारे मन में रहेगा।"

"क्या ?"

"क्योंकि उस का कारण नहीं रहा।"

"कारण उसी तरह है जैसे पहले था।"

"नहीं, अलका, अब वह कारण नहीं रहा। तुम्हें एक अपनी चोरी बताऊँ?"

"क्या?"

"मैं तुम से भी पूछ सकता था पर पूछा नहीं था। खुद ही सोचता रहा कि आखिर वह कौन सा आदमी था, जिसे तुम इतना प्यार करती थी।"

"आप पूछते मैं बता देती।"

"मैं खुद ही सोचता रहा। जो सोचा था, ठीक निकला।"

"उन का नाम कुमार है।"

"मुझे पता है।"

"पर यह पता लगने मात्र से कारण कैसे मिल गया?"

"मैं वहाँ गया था, वार्ड नम्बर छत्तीस में उसे देखने के लिए।"

"फिर?

"जब मैं ने उसे देखा वह होश में नहीं था, इस लिए मुझे यह मालूम नहीं कि वह कैसा आदमी था। अच्छा ही होगा। पर "

"वह बीमार है?"

"मेरा खयाल है कि अब तक जिन्दा नहीं होगा। डाक्टरों ने बताया था कि मुश्किल से दो रातें और गुज़रेंगी। यह कल सुबह की बात है।

अलका पत्थर की तरह पत्थर की शिला पर बैठ गयी।

"अलका तुम यह मत सोचना कि मैं उस की मौत से खुश हो रहा हूँ

बल्कि डॉक्टर ने जो दवा लिखकर दी थी वह वहां कहीं से न मिल सकी। मैं आते हुए पठानकोट से वह दवा भिजवाकर आया हूँ मैं ने यह बिलकुल नहीं चाहा था कि वह जिन्दा न रहे "

"उन्हें क्या तकलीफ थी? सीने में दर्द था?" अलका शिला से इस तरह उठ खड़ी हुई, जैसे अभी कुमार के पास चल देगी और उसे बचा लेगी।

"हां, सीने में दर्द था। चेतू ने बताया था कि बाबूजी को यह दर्द पहले भी हो जाया करता था पर इस बार बुखार भी हो गया था, और यही बुखार दिन-ब-दिन बढ़ता गया था। वह शायद एक रात सर्दी में बैठकर झुग्गी की दीवार पर कोई तसवीर बनाता रहा। झुग्गी की एक दीवार में दीया के लिए बहुत-से आले बने हुए हैं। वह सारी रात दीये जलाकर एक तसवीर बनाता रहा, तभी उस के सीने को ठण्ड ने जकड़ लिया

"चेतू ने मुझे "

"चेतू का इस में कोई कसूर नहीं, अलका! वह यहां आकर तुम्हें खबर देना चाहता था, पर कुमार ने आने नहीं दिया।"

"मुझे आप बता देते "

"यह मेरे जाने से पहले की बात है, अलका! मुझे सिर्फ चेतू ने और उस की बेटी ने बतायी थी।"

"पर "

"मेरा खयाल है कि उस की दिमागी हालत ठीक नहीं थी। मुझ से ज्यादा तुम्हें पता होगा वह शायद शुरू से ही कुछ इसी तरह था "

"किस तरह?"

"चेतू कहता था कि बाबूजी को यह मालूम नहीं कि तुम अमृतसर चली आयी हो।"

"क्या?"

"वह समझता था कि तुम अभी तक अपनी झुग्गी में रहती हो तुम वहां एक झुग्गी में रहती थीं न? मैं ने वे झुग्गियां भी देखी थीं "

अलका जगदीश की ओर देखने लगी।

"मैं ठीक कह रहा हूँ, अलका! अगर वह जिन्दा भी रहता, या अब भी किसी तरह बच जाय तो मैं जो कुछ उस के बारे में सुन आया हूँ, उस से मुझे बिलकुल यह डर नहीं रहा कि वह कभी हमारी जिन्दगी में कोई दखल दे सकता है।"

"वह बच जायेंगे?"

"बचने की बात मैं ने यों ही कही है, अलका! मुझे डॉक्टर ने खुद ही बताया था कि यह बच नहीं सकता पर तुम यह मत सोचना कि मैं उस की मौत से

खुश हूँ   मैं अब भी चाहता हूँ कि वह बच जाये   पर जिस आदमी की दिमाग़ी हालत ठीक न हो, वह बचकर क्या करेगा ! वैसे वह आर्टिस्ट बहुत अच्छा है, मैं ने उस की तसवीरें देखी हैं।"

"दिमागी हालत ?"

"उसे शायद किसी जिन्न प्रेत की कसर थी। यह मेरा खयाल नहीं, अलका ! मैं किसी जिन्न प्रेत को नहीं मानता। चेतू चाचा ऐसा सोचता था उस ने बताया था कि बाबूजी बैठे-बैठे किसी से बातें करते रहते थे, और कई बार अपने पलग की ओर हाथ करके चेतू को पूछते थे, कि उसे पलग पर बैठी हुई जिन्नी दिखती थी या नहीं क्या नाम है चेतू की बेटी का, नाथी ? वह भी यही कहती थी कि बाबूजी को परी का कोई वहम पड गया था। वे उस से पूछते थे कि जिन्नी के पैर उलटे होते या सीधे ? और या नींद मे कहते थे कि पानी म रेखा नहीं खिचती, रेखा का भरम होता है यह सब शायद बुखार की वजह से होगा।"

अलका ने मुह घुमा लिया। एक हाथ से उस ने पत्थर की शिला को कसकर पकडा हुआ था। आँसुओ की जितनी भी बूदें अलका की आँखों से टपककर पत्थर की शिला पर गिरी, शिला को लगा कि वह इन बूदो से पिघल जायेगी।

'अलका !" जगदीश ने पास होकर अलका के कन्धे पर हाथ रखा।

'जी !'

'मैं जानता था, तुम्हे दु ख होगा। आखिर तुम ने कभी उसे इतना प्यार किया था। पर यह तुम्हारे और मेरे बस की बात नहीं। जाने उस की किस्मत कैसी थी ! वह तुम जैसी लडकी से प्यार न कर सका। पता नहीं उस के मन में क्या था। पर अब शायद यह बात ही खत्म हो गयी।"

अलका से बोला न गया। उस ने इनकार मे सिर हिला दिया, जैसे वह कह रही हो, 'यह बात अभी खत्म नहीं हुई, यह बात कभी खत्म नहीं होगी !"

'अलका !'

'जी !'

'मैं तुम्हारे दुख को समझता हूँ अलका ! इसलिए मैं विवाह म धूमधाम नहीं करूँगा। कल या परसो हम पन्द्रह मिनटो मे यह रस्म कर लेंगे, फिर मैं तुम्हें सीधा '

"मेरा विवाह हो चुका है, जगदीश !'

'अलका !"

"काफी देर हुई, मेरा कुमार से विवाह हुआ था। पर वह सोचते थे कि पानी मे रेखा खिच सकती है। अब उन्हे मालूम हो गया है कि पानी मे रेखा नहीं

पिचती। इसलिए मैं रात की गाड़ी से उन के पास चली जाऊँगी—अपने घर चली जाऊँगी ”

“पर अलका, वह तो ”

‘वह ज़रूर ज़िन्दा होंगे।”

“तुम यह भी देख लो, ख़ुद जाकर देख लो। पर अगर तुम्हारे जाने तक कुमार ज़िन्दा न हुआ ”

“फिर भी मैं वहाँ अपने घर रहूँगी, एक विधवा औरत की तरह रहूँगी।”





यात्री

औरत दुनिया की सब स बडी स्मगलर है। मद कुछ भी कर, सिफ गाँजे और अफीम जसी चीजें ही स्मगल कर सकता है। ज्यादा स ज्यादा सोना स्मगल कर सकता है, या सरकारी भेद जैसी कोई चीज, बस इस से ज्यादा कुछ नही। पर औरत इनसान के समूचे अस्तित्व का स्मगल कर सकती है। जब तक स्मगलिग का माल छिपा सकती है, कोख म छिपाय रखती है जब नही छिपा सकती, बता देती है, दिखा देती है —और वह भी किसी शर्मिन्दगी के साथ नही बडे मान के साथ—स्मगलिग क कसब का हक कहकर। हक कहकर भी नही एहसान कहकर। इनसान पर इनसान के वश को चलाये रखन का एहसान कहकर।

मरी माँ न मरे बाप पर यही एहसान करन क लिए भगवान् स एक बेटा माँगा था—पहल हकीमा की दवाओ से माँगती थी फिर फकीरा की जडी बूटियो से, फिर अडोसन-पडोसन के बताय हुए जादू-टोने से, फिर करामाती कहे जात पीरो फकीरो की कृपा से, और फिर शिवजी के इस मन्दिर म आकर शिव-लिग से—और आखिर माँग-माँगकर उस ने भगवान को इतना तग कर दिया कि भगवान का उसे बेटा दना ही पडा।

सोचता हूँ, भगवान पूरा बनिया है। मा ने भगवान् से भी एक सौदा कर

लिया था—तू मुझे एक बेटा दे दे मैं उसे तेरे इसी मन्दिर में चढ़ा जाऊँगी, तेरी सेवा में अर्पित कर जाऊँगी

अजीब सौदा है—माँ ने भगवान पर भी एहसान कर दिया, देख तेरी सेवा के लिए मैं क्या दे रही हूँ। लोग मुट्ठी भर मक्की का आटा देते हैं, या गुड़, चावल और नारियल चढ़ा देते है या ज्यादा से ज्यादा किसी चबूतरे और बावड़ी पर संगमरमर मढ़ जाते हैं या कलश पर सोने का पतरा, पर मैं ने जीता-जागता एक बच्चा तेरी मूर्ति के आगे रखा है और उधर मेरी माँ ने मेरे बाप पर भी एहसान कर दिया—कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ी, पर आखिर मैं ने तेरे कुल का नाम रख लिया तेरा वंश खत्म होने नहीं दिया, और चाहे तेरे इस बेटे का तेरे खेतों में जाकर हल नहीं जोतना है, बुढ़ापे में तेरी लाठी भी नहीं पकड़नी है, पर तू कभी कभी उसे आँखों से देखकर कलेजा ठण्डा कर सकता है—दुनियादार बेटों को सिर्फ देखा जाता है पर साधु बेटे के तो दर्शन किये जाते हैं।

मां अक्सर यहां दर्शन करने आती है बाप सिर्फ संक्रान्तिवाले दिन या किसी पर्व पर। शायद इसलिए कि बहुत मुसीबतें मां ने झेली थी और उसी का महत्त्व जानने के लिए उसे एक प्रत्यक्ष सबूत की जरूरत पड़ती है और मैं बीस बरसों का प्रत्यक्ष सबूत हूँ।

मुझे याद नहीं—चालीसा नहाने के बाद जब मेरी माँ मुझे एक गेरुए कपड़े में लपेटकर इस मन्दिर में चढ़ाने आयी थी, तो शिवमूर्ति के ठण्डे पैरों पर पड़ा मैं रोया था या नहीं। (सुना है, माँ ने अपनी मानता के मुताबिक मुझे पैदा होते ही गेरुए कपड़े में लपेट दिया था।)

मन्दिर के मुख्य सन्त किरपासागरजी ने मेरे माथे को मूर्ति के पैरों से छुआकर, मुझे फिर माँ की झोली में डाल दिया था—"यह बालक आज से शिव का पुत्र है, पार्वती इस की माँ, और तू इस की धाय। एक बरस के लिए तुझे दूध पिलाने की सेवा सौंपते हैं। इस की पहली वर्षगांठ पर यह बालक हमें लौटा देना।"

सो एक बरस के लिए मैं उधार सौंपा गया था। पता नहीं, इस एक बरस में मैं ने मां को माँ कहकर पुकारा था या नहीं शायद नहीं—क्योंकि मेरे होंठ इस शब्द से परिचित नहीं लगते।

अनुमान लगाता हूँ कि अपनी पहली वर्षगांठ को जब गेरुआ चोले में घुटनों घुटना चलते मैं ने मन्दिर की मूर्ति के पैरों में पड़े हुए फूलों के पास पहुँचकर किसी फूल को उठाकर खाने के लिए मुंह में डाला होगा, और मेरे गले ने फूल के स्वाद को कबूल न किया होगा—तो मैं जरूर रोया होऊँगा। (मन्दिर का बूढ़ा सेवादार साइं भगतराम बताता है कि फूलों की पत्तियां मेरे तालू से चिपक गयी थी, और मेरी सांस रुक गयी थी। उस ने मेरे मुंह में उँगली डालकर वे पत्तियां

कई बार रात के अंधेरे में मैं अपनी कोठरी से निकलकर मंदिर के उस हिस्से में चला जाता हूँ, जहां शिव और पार्वती की आदमकद मूर्तियां हैं। वह दोनों मुझे बड़े स्थिर और आराधना में लीन एक बूढ़े किसान और एक प्रौढ़ औरत की तरह खड़े लगते हैं—भगवान् से एक बेटे की मुराद मांगते हुए। बिलकुल उसी तरह जिस तरह मेरी मां और मेरा बाप किसी दिन इसी तरह ऐसे ही खड़े होकर भगवान से प्रार्थना करते रहे होंगे।

मैं दोनों मूर्तियों के सामने खड़ा हो जाता हूँ, जैसे हँस रहा होता हूँ— तुम्हें एक बेटे की *बहुत कामना है? अच्छा, मैं अपने आप का दान देता हूँ*

मूर्तियां दो भिखारियों की तरह लगती हैं और अपना आप—भिक्षा की वस्तु।

नहीं मैं भिक्षा की वस्तु भी नहीं सिर्फ भिक्षा का एक पात्र हूँ। वस्तु में एक रंग एक स्वाद एक महक शामिल होती है और सबसे ज्यादा एक सन्तुष्टि शामिल होती है मुझ में वह कुछ भी नहीं। मैं सिर्फ एक पात्र हूँ—वस्तु को ढोनेवाला। वस्तु एक तसल्ली है—जो मां नाम की एक औरत को मिली है, और बाप नाम

से एक मद को मिली है, या शिव-पार्वती को मिली है, जिन की मूर्तियोंवाले इस मन्दिर की शोभा बढ गयी है—कि इस मन्दिर से बेटों का मुराद मिलती है।

मेरा ख्याल है—महन्त किरपासागरजी सचमुच दूरन्देश है। उन्होंने मेरे जन्म के समय ही मेरे मन की उस अवस्था का अनुमान लगा लिया था, जो कुछ सोच और समझ आने पर मेरे अन्दर पैदा हो जानी थी। इसलिए उन्होंने एक संक्रान्ति वाले दिन मेरा नाम रखा था—किरपापात्र।

किरपापात्र या भिक्षापात्र एक ही बात है। एक तरह से हम सब भिक्षा पर ही पलते है—सिर्फ मैं नहीं साइं भगतराम भी, गोविन्द साधु भी, महन्त किरपा सागर भी। हाथ फलाकर कोई भी किसी से कुछ नहीं मांगता, सब पैरों के ज़ोर से मांगते हैं—कभी अपने पैरों के ज़ोर से, और कभी उन से बहुत नाज़ुक शिव पार्वती के पैरों के ज़ोर से—भक्तजन जो कुछ देते हैं, शिव-पार्वती के पैरों पर रख देते हैं, कई महन्तजी के पैरों पर भी रख देते हैं, कोई गोविन्द साधु के पैरों पर भी रख देते हैं, और कोई-कोई साइं भगतराम के पैरों पर भी—मेरे पर भी इन पैरों मे शामिल हो रहे है—हम मन जैसे हाथों का काम पैरों से ले रहे हैं

पर भिक्षापात्र होने का ख्याल सिर्फ मुझे आता है। पता नहीं क्यों? शिव पार्वती तो खैर बोल नहीं सकते, महन्तजी के मुँह से भी एसी बात मैं ने कभी नहीं सुनी। गोविन्द साधु गूंगा है उस के कुछ बोलने का सवाल ही नहीं उठता, पर उस के मुँह से भी नहीं लगता कि वह किसी चीज़ को भीख समझता हो—बल्कि बादामों की ठण्डाई अगर कभी उस के हिस्से नहीं आती तो वह घूरकर सब की तरफ देखता है। साइं भगतराम तो बिलकुल अलबेला है वह बाजरे की सूखी रोटी भी उसी स्वाद से चबा जाता है जिस तरह गिरी की पंजीरी। सिर्फ मेरे गले में कुछ अटका हुआ है—और हर ग्रास के साथ चुभ-सा जाता है।

डेरे के नाम पर सिर्फ चार कोठरियां हैं—एक महन्तजी की, एक मेरी, एक गोविन्द साधु और साइं भगतराम की, और एक आने जानेवाले साधुओं के लिए। इन कोठरियों की झाड़-बुहार साइं भगतराम के ज़िम्मे है। मन्दिर इन कोठरियों से बिलकुल अलग है—एक पथरीली पगडण्डी को लांघकर पहाड़ के एक वक्ष में बना हुआ। एक छोटी सी पानी की नहर मन्दिर के पैरों में बहती है। इस नहर के साथ चौंतरे की और पथरीली पगडण्डी की सफाई भी अकसर साइं भगतराम ही करता है। (वैसे यह गोविन्द साधु के ज़िम्मे है) मन्दिर के फर्श को धोना और पोंछना मेरे ज़िम्मे है—मुझ से पहले महन्तजी के अपने ज़िम्मे था—और लगता है, इस काम से हम सब भिक्षा के शब्द को अपने से झाड़ देते हैं। सब से मेरा मतलब है—सारे, सिवा मेरे।

मन्दिर पत्थरों या ईंटों से बनाया हुआ नहीं, एक बड़ी चट्टान को बीच में से खोदकर बनाया हुआ है। चट्टान का ऊपर का हिस्सा छत की तरह है, नीचे

का हिस्सा फर्श की तरह । इस के अन्दर मूर्तियाँ भी कही बाहर से लाकर रखी हुई नही, बीच के पथरीले हिस्से को ही तराशकर बनायी हुई है। और बाहर मे जो नदी गुजरती है, वह पहाड के पिछले हिस्से में से ऐसे आती है कि उस का कुछ पानी चट्टान के ऊपर के हिस्से से टपककर बूद-बूदकर मूर्तियो के शरीर पर गिरता रहता है। मूर्तियाँ रोज धुली हुई होती हैं—लगातार पडते पानी से सीलन की एक पतली-सी परत उन पर जम जाती है, जिसे रोज एक मोटे कपडे से मलकर उतारना होता है। और लगता है—भिक्षा का शब्द भी बूद-बूद गिरते पानी की तरह दिन-रात मेरे जिस्म पर पडता रहता है। मैं किसी भी खयाल के मोटे कपडे से मलकर उसे उतारूँ, वह तब भी एक सीलन की पतली परत की तरह मेरे ऊपर जमा रहता है। रोज जम जाता है।

महन्त किरपासागरजी से निजी तौर पर मुझे कोई शिकवा नही—उन्होंने अपने लिए आये चढावे मे से हिस्सा निकालकर मुझे पाला है, पढाया है—सिर्फ शिकवा है तो उन के सागर होने से, और अपने पात्र होने से।

शिकवा भी नही, नफरत है।

और यही नफरत उस मा नाम की औरत से है जिस ने इस पात्र को अस्तित्व दिया है। यह नफरत इस हद तक है कि वह जब भी मन्दिर के दर्शन को लिए आती है, मैं किसी बहाने मन्दिर से बाहर चला जाता हूँ। कभी वह मेरी कोठरी की दहलीज रोक ले, और अपने पल्लू मे बँधी हुई अखरोट की गिरिया जबरन मेरे मुह मे डाल दे तो उस की पीठ मुडते ही मै मुह मे से वे गिरियाँ थूक देता हूँ।

बाप नाम के मर्द को जब देखता हूँ—वह अपने वश की रखवाली करता हुआ एक प्रेत-सा लगता है।

किरपासागरजी के गाल मुझे दो लाल पके हुए फोडो की तरह लगते है, जिन पर एकदम पुल्टिस बाधने का खयाल आता है

मा—धीरे-धीरे चलती हुई जब एकदम सामने आ जाती है—वह मुझे पजो के बल चलती हुई बिलकुल एक बिल्ली लगती है जो अभी एक चूहे की गरदन दबोच लेगी

बाप—दुबला पतला सा और सिर को कधो के ऊपर एक बोझ सा डालकर चलता हुआ मुझे खेतो मे गाडे हुए 'डरने' की तरह लगता है और मैं चिडिया कौओं की तरह उस से डर जाता हूँ

एक साधारण आख मे शायद यह सब कुछ नही दीख सकता, पर मुझे पता है मेरी आखो मे नफरत की डोरिया पडी हैं

गोविन्द साधु जब बूटी रगडकर पीता है, उसकी आँखो म भी लाल डोरियाँ पड जाती हैं और वह लाल डोरियोवाली आँखों से जब मुझे देखता है—म उसे

बीस बरस का एक जवान आदमी नहीं, जवान औरत नज़र आता हूँ

तीन चार साल हो गये, गोविन्द ने एक दिन अपनी तारों जैसी लटकती टाँगों पर बादाम रोगन की मालिश करते हुए ज़बरदस्ती मेरी बाँह पकड़ ली थी, और वह मेरी पीठ पर और दो टाँगों पर बादाम रोगन की मालिश करने लगा था। मुझे बिल्ली कुत्ता या कोई भी जानवर अच्छा नहीं लगता, उस के लम्बे लम्बे हाथ मुझे कुत्ते के पाँवों की तरह लगे थे, मैंने जब छूटने के लिए ज़ोर लगाया था तो उस ने अपनी पूरी ताकत से मुझे एक चौड़े पत्थर पर गिराकर । मैं बड़े ज़ोर से चिल्लाया था—इतने ज़ोर से कि अन्त में किरपासागरजी यह आवाज़ सुनकर वहाँ पहुँच गये थे। उन्होंने पास ही पड़े हुए बूटी रगड़नेवाले डण्डे से गोविन्द साधु को ऐसे पीटा डाला था जैसे वह गोविन्द साधु को भी बूटी की तरह ही रगड़ देंगे। उस दिन के बाद गोविन्द साधु ने मुझ से कुछ नहीं कहा, बल्कि मैं दोपहर के समय जिस पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ता हूँ, वह वहाँ से घूमकर दूर जा बैठता है। पर यह मैं अब भी देख पाता हूँ—वह जिस दिन बूटी रगड़कर पी ले, और उस की आँखों में लाल डोरियाँ पड़ जायें वह उन की कोरों में से मुझे आते जाते ऐसे देखता है—जैसे मैं उस को बीस बरस की जवान औरत दिखता होऊँ

पर उस से मुझे नफरत नहीं। वह खुजली के मारे हुए कुत्ते की तरह लगता है। कुत्ते से कोई रास्ता काटकर निकल सकता है तो उसे एक ग्लानि-सी हो सकती है, पर उस के खून में नफरत नहीं खौलती।

इस तरह साईं भगतराम एक खस्सी (बधिया) जैसा लगता है, जिस से किसी गाय को कोई खतरा नहीं। इसलिए उस से भी कोई नफरत नहीं होती।

नफरत के पात्र सिर्फ वे हैं जिन्होंने अपनी झोलियाँ में दान-पुण्य भरा हुआ है—और या भिक्षापात्र—मैं स्वयं।



नफरत नफरत नफरत चिड़ियों का एक झुण्ड अभी चहकता गुज़रा है। शायद उधर की दीवार के पास साईं भगतराम ने दाल-चावल सूखने के लिए डाल

रखे थे, चिड़ियों ने उसे चुग्गा समझ लिया था, और माइ ने या गोविन्द साधु ने अपना घुंघरूवाला डण्डा खटका दिया था ... कुछ आवाज़-सी आयी थी, और फिर चिड़ियों का झुण्ड मेरे ऊपर से चहकता हुआ गुज़र गया। सब चिड़ियाँ जैसे चहक रही थीं—नफ़रत ... नफ़रत ... नफ़रत ...

यह शब्द बहुत बड़ा है—चिड़ियों की चोंच में पूरा नहीं आ रहा था, पर वे इसी शब्द को बार-बार दोहरा रही थीं—जितना भी उन की चोंच में पकड़ा जा रहा था ...

डेरे में बरसों से मूलनाथ का डण्डा फिर खड़क रहा है। वह बरस में एक-आध फेरा ज़रूर लगाता है। फिर उन दिनों में गांजे भांग का दौर चलता है। बहुत छोटा था जब वह मुझे गोदी में बिठाकर—नहीं, बिठाकर नहीं, छाती में दबाकर कहता था, 'तुझे नाथ जोगियों के नाम आते हैं? जो तू बिना भूले सारे नाम सुना दे तो मैं तुझे इलायची और मिश्री दूंगा ...' इलायची और मिश्री के लिए नहीं, पर उस की छाती में से छूटने के लिए मैं जल्दी से जोगियों के नाम दोहरा देता था—'आदिनाथ, मछन्दरनाथ, उदयनाथ, सन्तोषनाथ, कंथड़नाथ, सत्यनाथ, अचम्भेनाथ, चौरंगीनाथ और गोरखनाथ।' वह झोले में से इलायची मिश्री निकालते-निकालते, तो मैं उस की बाँहों से छिटककर परे जा खड़ा हो जाता था, और जोर से कहता था—'और मेरा नाम मूलनाथ।' मुझे पता था, उस का नाम [illegible] है, पर उस के [illegible] रहने के कारण मैं ने उस का नाम [illegible] रख दिया था—मूलनाथ। 'हट तेरे की,' कहता हुआ वह इलायची और मिश्री को फिर झोले में डाल लेता था, और मुझे अपनी बाँहों में दबाने के लिए उठ खड़ा होता था। इतने में मैं दौड़ जाता था।

बोतल के मुँह पर उड़कर जो लाल पदार्थ जम जायेगा—वही मकरध्वज होगा

और शील बाबा ने यह नुस्खा लिखाते हुए मेरे कान को मरोड़कर कहा था—"अनाड़ी हकीम की तरह कुछ कच्चा पक्का किसी को न खिला देना। पारा कच्चा रह गया, तो खानेवाले की हड्डियाँ गल जायेंगी"

ज़बान रोक ली थी, नहीं तो ज़बान से निकलने लगा था—मूगल बाबा! भिक्षा भी कच्चे पारे की तरह होती है खानेवालों की हड्डियाँ गल जाती हैं।

पारे को शिव धातु कहते हैं, भिक्षा का पता नहीं क्या कहते हैं भिक्षा को माँ धातु कहना चाहता हूँ।

यह मेरी माँ आज भी आयी थी। दबे पाँव चलती हुई वह मेरी कोठरी तक आ गयी थी। यह जब दुबककर आती है, मुझे हमेशा एक बिल्ली का खयाल आता है। कल सारा दिन यही खयाल आता रहा था—सारा दिन हमारे डेरे में एक बिल्ली को पकड़ने की भागदौड़ होती रही थी। एक कोठरी में दूध की कटोरी उस दहलीज के पास रख दी गयी थी, कि बिल्ली ने जब कटोरी को मुँह मारा था बाहर ताक के पीछे खड़े साईं भगतराम ने तुरंत दरवाज़ा भिड़का दिया था। बिल्ली कोठरी में बन्द हो गयी थी। पर जब दूसरी कोठरी में से बीच के दरवाज़े को खोलकर, बिल्ली को पकड़ने का यत्न किया गया तो वह उछलकर खिड़की के ताक से ऐसे जा लगी कि खिड़की की पतली-सी कुण्डी टूट गयी, और बिल्ली उस खिड़की में से बाहर कूद गयी। लेकिन आखिर डेरे के तीन साधु उस के पीछे पड़े हुए थे, शाम तक उन्होंने बिल्ली को पकड़ ही लिया—और आज उस बिल्ली को मारकर उस की एक हड्डी को सिफने के पानी में पीसा जा रहा है। गोविन्द साधु को पिछले दिनों से एक फोड़ा हो गया है। शील बाबा कहते हैं कि यह भगन्दर है, और उस के ऊपर लगाने के लिए बिल्ली की हड्डी का लेप तैयार करना है।

कल सारी रात मैं सपने में एक बिल्ली पकड़ता रहा था—हालाँकि दिन में बिल्ली पकड़ने के लिए मैं ने किसी का साथ नहीं दिया था—पर सपने में मैं ऊँचे ऊँचे पत्थरों पर से गुज़रता एक बिल्ली के पीछे-पीछे दौड़ता रहा—और अजीब बात थी कि मेरे आगे-आगे दौड़नेवाली चीज़ कभी एकदम बिल्ली बन जाती थी, कभी मेरी माँ

मुझे पता नहीं भगन्दर फोड़ा क्या होता है, उस से कैसे पीप बहता है, और उस में कैसे टीसें उठती हैं—पर मेरी हड्डियों में एक दर्द है, एक-एक हड्डी में, एक एक जोड़ में, एक-एक खयाल में

और बड़ा ही भयानक खयाल आया है—मन के इस फोड़े पर लेप करने के लिए अगर माँ की पसली को पीसकर

मनु ने इक्कीस नरक माने हैं, ब्रह्मवैवर्त में छियासी नरक-कुण्ड लिखे हुए हैं—

और मेरा यकीन है, उन म से एक नरक-कुण्ड जरूर मेरे मन की हालत जैसा होता होगा।



गोविन्द साधु को शीन बाबा की दवा से शायद सचमुच आराम हो गया है—आज उस का घुघरूवाला डण्डा फिर उस की पत्थर की कुंडी म छनक रहा है। वह भांग घोट रहा है और उस का गूगापन भी घुघरूवाले डण्डे की तरह छनक रहा है। "दे रगड़ा मस्त कलन्दर, द रगड़ा" यह बोल उसे साईं भगतराम ने सिखाये थे—जो उस के गले म से छनकर यन जाते हैं—'गै-गे-ग'

पता नही, यह घुटती हुई भांग की ठण्डी-सी गन्ध है या कुछ और—अचानक मुझे ठण्ड सी लगने लगी है। पर ऐसा कई बार लगता है, बैठे बठे लगने लगता है—कई बार धूप में बैठे हुए भी, और कई बार रजाई मे सोते हुए भी

बहुत छोटा था, स्कूल पढने के लिए जाता था, तो एक दिन मेरा सहपाठी रलिया स्कूल से लौटते वक्त मुझे अपने घर ले गया—आदर की चीज थी, इसलिए रलिये की माँ ने मेरे बैठने के लिए मूढ़ा डालकर, मूढ़े पर खेस बिछा दी थी। और मैं सारे घर मे एक अलग सी चीज की तरह उस मूढ़ पर बठ गया था।

रलिया के लिए उस ने मूढ़ा नही बिछाया था, बल्कि उस ने उसे झिडककर उस की बाह अपनी तरफ खींची थी—"यह मुह पर तू ने सियाही कहाँ से लगा ली ?" और अपने दुपट्टे के पल्लू से उस ने रलिये का मुँह रगडकर पोछा था। सूखे पल्लू से सियाही नही छूटी थी, इसलिए उस ने कन्नी को थोडा-सा थूक लगाकर उस कन्नी को रलिये के मुँह पर रगड़ा था।

रलिया उस से बाँह छुडाकर और हाथ मे पकडे हुए बस्त को जल्दी से कही रखकर, मेरे साथ जाने के लिए आतुर था, पर उस की मा ने फिर डाँट दिया, "जाता कहाँ है भूखा पेट लेकर, बैठ जा सीधा होकर, निकम्मी औलाद !" और फिर उसी पल बड दुलार से कहने लगी—'किसी को घर लाकर कोई भूखा थोड़े

ही भेजा जाता है ? बेअक्ल, अभी मैं गरम-गरम रोटी पका देती हूँ, तू भी खा और अपने दोस्त को भी खिला..." और उस ने छलिये को समझाते हुए उस का माथा चूम लिया था।

एक औरत नहीं, जैसे एक फिरकी माथा घूम रही थी।

चूल्हे में अधजली लकड़ियों का धुआं सारे घर में घूम रहा था। छलिया ने जब अपना बस्ता फेंका था तो उस में से एक किताब उधर गिर गयी थी। छलिया का छोटा भाई खटोले पर सोता हुआ अचानक रोने लगा था, उस के मुंह पर बैठी मक्खियों ने शायद बहुत ज़ोर से भिन भिन की थी। छलिये की मां ने जल्दी एक हाथ से चूल्हे को हवा की और दूसरे हाथ से छलिये के बस्ते से गिरी किताब को उठाकर पहले माथे से लगाया और फिर बस्ते में रखा, और एक हाथ से खटोले पर रो रहे बच्चे के मुंह पर से मक्खियों को उड़ाया... लग रहा था कि शिव के तीन नेत्रों की तरह छलिया की मां के तीन हाथ थे...

बड़ा मैला घसमैला-सा घर था—पर लकड़ियों की तिड़ तिड़ में से, मक्खियों की भिन भिन में से, छलिया की फटती झिड़कियों में से, और छलिया के मुंह को चूमती उस की मां के थूक में घुल मिलकर एक सेंक-सा उठकर मेरी तरफ़ आने लगा था—एक गरमाई-सा...

मैं फिर कभी छलिया के घर नहीं गया, पर कभी-कभी अचानक बैठे-बैठे या सोते हुए मुझे ठण्ड-सी लगती है, और पता नहीं क्यों मुझे बचपन की वह बात याद आ जाती है...



कल शिवरात्रि को मां ने व्रत रखा था, पूजा के लिए महन्त किरपासागरजी को बुलाया था। सुना है कि उन की यह ताकीद थी कि पूजा के समय मैं भी उन के साथ जाऊं।

मुहूर्त टालने के लिए मैं मन्दिर के पिछवाड़े जंगल में इस तरह छिप गया था कि अगर वे मुझे ढूंढते तो पूजा का मुहूर्त गुज़र जाता।

पता लगा कि यह पूजा के वक्त रोये जा रही थी

आज साईं भगतराम ने उस के बारे में कहे शब्दों में एक बात बतायी, "इस लड़के की रगों में ख़ून की जगह पानी भरा हुआ है।"

सुनकर हँसी-सी आ गयी है। मेरा ख़याल है, उस ने ठीक कहा है। पद्मपुराण में एक कथा आती है कि मार्कण्डेय ऋषि जब तप कर रहा था तो आस-पास खाने के लिए पत्तों के सिवा कुछ न था। सो वह बरसों तक पत्ते खाता रहा, और उसके शरीर में ख़ून की जगह पत्तों का रस भर गया। ऋषि ने जब अहंकार से भरकर यह बात महादेव को बतायी तो महादेव ने उस का अहंकार तोड़ने के लिए दिखाया कि उन के शरीर में ख़ून की जगह भस्म भरी हुई है। भला अगर उस ऋषि की नाड़ियों में ख़ून की जगह पत्तों का हरा रस हो सकता है, और महादेव की नाड़ियों में भस्म, तो मेरी नसों में ठण्डा पानी क्यों नहीं हो सकता? आख़िर मैं ने अपने जन्म से लेकर अब तक मन्दिरवासी नदी का पानी पिया है

आज फिर मुझे हँसी-सी आ रही है। हँसी पता नहीं क्या होती है, पर जो कुछ आयी थी शायद हँसी ही थी।

मैं शिवजी की मूर्ति के पास खड़ा था। यह प्रार्थना का समय था। मन्दिर की दहलीज़ों में से गुज़रते हर किसी का हाथ लोहे के घण्टे को एक बार ज़रूर छू लेता था, और घण्टे की आवाज़ प्रार्थना के बोलों से टकरा रही थी—आवाज़ बहुत भारी थी, इसलिए वह साबुत थी, सिर्फ़ बोल टूट रहे थे

जै जै जै जै जै त्रिपुरारी
कर त्रिशूल साहत छवि भारी
शारद नारद शीश नवाय
नमो नमो ज नमो शिवाय

और मैंने देखा—सामने मेरी माँ मूर्तियों के आगे दोनों हाथ जोड़े खड़ी थी। पत्थर की छत से छनकर बूँद-बूँद पानी मूर्तियों पर भी गिरता रहता है और दर्शकों पर भी। उस के सिर के पल्ले पर भी पड़ रहा था—और वह बिलकुल भीगी हुई बिल्ली की तरह लग रही थी—पर हँसी इस बात पर नहीं आयी थी—इस बात पर आयी थी कि आज उस ने अपने बालों को मेहँदी से रंगा था। मेहँदी का ख़याल मुझे बड़ी देर बाद आया, यह याद करके कि कुछ दिन हुए उस ने मेरे सामने माथे की कनपटियों को दबाते हुए साईं भगतराम से सिर दर्द का इलाज पूछा था, और साईं ने उसे मेहँदी पीसकर सिर पर लगाने के लिए कहा था। पर अचानक जब उस के बाल लाल से देखे—तो मुझे लगा वह आज काली और सफ़ेद बिल्ली की जगह अचानक भूरी बिल्ली बन गयी थी—और वह बिल्ली की तरह म्याऊँ-म्याऊँ करती लग रही थी

कीन्ही दया तहाँ करी सहाई
नीलकण्ठ तव नाम कहाई
प्रगट उदधि मथन मे ज्वाला
जरे सुरासुर भये बेहाला

जिस्म मे एक कँपकँपी सी आ गयी—याद आया कि बहुत छोटा था, अभी अलग काठरी म सोने लायक नही था। चार बरस का होऊँगा, मह`त किरपासागर-जी की कोठरी मे बिछे उन के आसन के पास ही एक चटाई पर सोता था, और अचानक एक रात आँख खुल गयी थी—सामने जो कुछ दिखा था उसे देखकर घिघियाकर रा पडा था। वह तो आदमकद कोई चीज थी, पर उस वक्त वह सारी कोठरी म फली हुई लगती थी—एक बहुत बडा और काला सियाह मुह था, जिस पर दोनो आखें सफेद और लाल रग म जलती दिख रही थी। सिर पर कुछ हरे हरे पख झूल रहे थे।

मह`त किरपासागरजी ने मुझे उठाकर अपनी गोद मे ले लिया था, पर मैं रोये जा रहा था, और काँपे जा रहा था।

"तू उसे हाथ लगाकर देख, यह तुझे कुछ नही कहेगा,"—महन्तजी ने एक बार मुझ अपनी गोद से हटाकर उस की तरफ करना चाहा था, मेरा डर उतारना चाहा था, पर उस की तरफ देखते ही मेरी फिर चीख निकल पडी थी।

सवेरे दिन के उजाले मे, बाहर पेडो की खुली जगह पर, मह`तजी ने मुझे बिठाकर, और उसे भी सामने बिठाकर समझाया था, "यह बडा अच्छा आदमी है, दीवाना साधु, हरिया बाबा।"

बहुत देर बाद मुझे समझ आयी कि साधुआ का एक समुदाय दीवाना साधु कहलाता है, और इस समुदाय के सारे साधु मुह पर काला रग मलकर, सिर पर मोर के पख खोस लेते हैं।

पर उस रात की भयानकता बडी देर तक मेरी याद मे अटकी रही थी—एक बहुत काला सा मेरी आखो के आगे फैला हुआ और उस मे मोर का एक रग बिरगा पख हिलाता हुआ

आज की इस घटना से पता नही उस का क्या सम्ब`ध था—मा के मेहँदी-रँगे बालो को देखकर मुझे मोर का पख याद आ गया। [लगा, मरे सामन एक बहुत बडा खालीपन है—और उसी काले खालीपन मे मेहँदी रग का एक गुच्छा लटक रहा है—मोर के पख की तरह।

उस के होठ बराबर फडक रहे थे

स्वामी एक है आस तुम्हारी
आय हरो मम सकट भारी

शकर ही सकट के नाशन
सकट नाशन विघ्न विनाशन

माँ की आँखो के आगे पतली पतली झुर्रियो का एक जाल-सा फैला हुआ है। आँखें उस जाल म फँसी हुई लग रही हैं, नही तो कई बार ऐसा लगता है, अगर व जाल म फँसी हुई न हो, तो उस के मुह से उडकर सीधी मेरे मुह पर आकर बैठ जायें

पर काले और फैले हुए खालीपन म ये आँखें मुझे कभी कभी ही दिखती है, नही तो काला और फैला हुआ यह खालीपन बडा अडोल होता है। सिफ आज यह लग रहा है कि उस खालीपन म मेहँदी रँगे बालो का गुच्छा लटक रहा है—मोर के पख की तरह



भुलावा एक बार हो सकता है, दो बार हो सकता, पर यह,जो रोज आये दिन लगता है—यह शायद भुलावा नही होगा

प्रभात का समय था। पूजा के समय मन्दिर में खडा था, मूर्तियो के बिलकुल पास था, इसलिए मूर्तियो के चरणो म चढाय हुए फूल मेर पैरो तक भी पहुँचे हुए थे और फिर सुन्दरा ने फूलो की एक झोली इस तरह पलटी कि मेरे पैर उन के नीचे ढक-से गये। और फिर जब सुन्दरा ने जमीन तक माथा झुकाकर मूर्तियो को प्रणाम किया तो लगा कि उस का एक हाथ मेरे पैरो को छू रहा था।

जरा सा चौंककर मैं ने आँखें नीची कर ली—अपने पैरो की तरफ, पर पैरो के ऊपर और पैरो के गिर्द फूलो का इतना ढेर था कि न अपना पैर दिखता था, न उस का हाथ।

यह भुलावा भी हो सकता था, इस लिए इस बात की तरफ फिर कभी ध्यान नही दिया। पर यह जिस दिन की बात है, उस के तीन चार दिन बाद सक्रान्ति थी। रोज़ मन्दिर मे न इतने भक्त आते है, न इतने फूल चढ़ते हैं, पर सक्रान्ति-

वाले दिन, पूर्णिमावाले दिन, अमावसवाले दिन, या और किसी ऐसे दिन, छोटे-से मंदिर का सारा चबूतरा फूलों से भर जाता है। उस दिन, सक्रांतिवाले दिन फिर ऐसा लगा था—सुंदरा ने फूलों की एक झोली मूर्तियों के चरणों में पलटी थी, और फिर मूर्तियों के चरणों में सिर झुकाती हुई, फूलों के ढेर में से राह गुजार कर, लगा, मेरे एक पैर पर अपने हाथ की हथेली रख दी हो।

मन का जोर सा लगाकर, दूसरी बार की घटना को भी एक भुलावा कह लिया था। पर पूर्णिमावाले दिन फिर ऐसे ही हुआ था, अमावसवाले दिन फिर इसी तरह, और इस से अगली सक्रान्तिवाले दिन कल फिर

उस ने और कभी कुछ नहीं कहा। पर बहुत दिनों की एक बात है—तब मैं ने इस बात को भी एक संयोग ही समझा था—पर यह शायद संयोग नहीं था

वह अपने खेतों की मेड पर चलती गाँव की तरफ लौट रही थी। शाम का अँधेरा इतना गहन हो गया था कि एक बार देखकर भी जो कोई अपने ध्यान में हो जाये, तो यह नहीं पता लगता था कि किसी ने देखा या पहचाना था या नहीं। मैं अपने ध्यान में नदी की तरफ जा रहा था। नदी बिलकुल उस के खेतों के सामने पड़ती है—और फिर लगा वह भी नदी की तरफ लौट पड़ी थी।

कुछ आगे जाकर मैं ने पीछे एक बार देखा था—वहाँ तक, जहाँ तक लगा कि वह नदी के किनारे जाकर खड़ी हो गयी। एक आवाज-सी सुनाई दी, जैसे वह नदी की तरह एक लम्बी आवाज में गा रही थी

पीछे मुड़कर जरूर देखा था, पर इस तरह नहीं कि उस को यह दिख जाये कि मैं उस की आवाज सुनकर खड़ा हो गया था। एक पेड़ के तने के पास होकर जरा थम सा गया था। देख सकता था—वह गा रही थी, पर बिलकुल अपने ध्यान में। नदी के किनारे, पानी में हाथ लटकाकर कुछ धो रही थी—शायद खेतों से जो साग सब्जी तोड़कर लायी थी, उसे धो रही थी। अँधेरे में बहुत कुछ नहीं दिख रहा था। पर यह दिख रहा था कि वह बड़ी बेखबर थी, न उस तरफ देख रही थी जिस तरफ मैं गया था, न किसी और तरफ। सिर्फ जो कुछ गा रही थी, वह बड़ा अजीब था। उस की पंक्तियाँ पूरन भक्त के किस्से में से थी, जिन में उस के नाम जैसा नाम आता है

मैं भुल्ली हाँ, तुसी न होर कोई
लाइयो जोगिया नाल प्रीत लोको!
जंगल गये न बोहड़े सुंदरा नूं
जोगी नहीं जे किसे दे मीत लोको![1]

---

1 भूल से भूल हुई तुम कोई यह भूल मत करना, तुम कोई जोगियों से प्रीत मत करना। मुझ सुंदरा के पास वह फिर लौटकर न आया वह ऐसा जंगलों में चला गया कि फिर वहीं खो गया। जोगी किसी के दोस्त नहीं होते।

पेड के तने के पास मैं कुछ देर खडा रहा था।

ये पक्तियाँ, न जाने क्यो, ठण्डे पानी के छीटो की तरह लगी थी। मैं ने अपने कधे पर रखी हुई खद्दर की गेरुई चादर जरा कसकर दोनो कधो पर लपेट ली थी

पर देखा था, वह फिर बेध्यान नदी के किनारे से लौट पडी थी—सीधी गाव को जाती हुई पगडण्डी पर। और लगा था—उस की आवाज सयोग से मेरे कानो म पड गयी थी, उस ने जान बूझकर मेरे कानो मे नही डाली थी।

वैसे एक बात उस दिन रह-रहकर मेरी याद मे अडती रही थी—बहुत साल हुए, जब मैं छोटा था, गाव की औरतें जब कन्या जिमाती थी, मुझे मन्दिर मे से जबरन पकडकर ले जाती थी, 'यह हमारा बीर लगूरिया' कहती थी, और मुझे छोटी छोटी लडकियो की पगत मे बिठा देती थी।

और एक बार की बात है—इसी सुन्दरा की माँ ने कन्याएँ जिमायी थी। उस दिन सुन्दरा ने सिर पर गोटेवाली लाल चुनरी ओढ रखी थी। उस के हाथ भी लाल थे। वह हम सब को अपनी हथेलिया दिखा रही थी—'देखा बल्लाजी, मैं ने मेहँदी लगायी है!" और सुन्दरा की मौसी ने सब लडकियो के पैर धोकर उन को जब मौली बाधी और एक पगत मे बिठाया, तो मुझे सुन्दरा के पास बिठाती हुई जोर से सुन्दरा की माँ से कहने लगी, "आ बहन! जरा एक बार इधर देख। य दोनो जने सुन्दरा और पूरन की जोडी लगते ह। यह छोटा-सा साधु सचमुच किसी राजा का बेटा लगता है "

छोटी छोटी थालिया म पूरी, हलवा और छोले देती हुई सारी औरतें हँस पडी थी। उस वक्त मुझे बिलकुल पता नही लगा था कि वे क्यो हँसी थी। सुन्दरा को भी पता नही लगा था पर फिर जब मैं ने कुछ बरसो बाद 'पूरन भक्त' का किस्सा पढा तो फिर एक बार दशहरे के मेले मे जब सुन्दरा ससुराल से आयी हुई थी और अपनी मौसी की बेटी को मेला दिखाती, अचानक मेरे सामने आ गयी थी, तो हँसकर उस ने अपनी मौसी की बेटी को कहा था, "ले देख ले, मेरा पूरन मेरा जोगी '

पर यह बहुत दिनो की बात थी। सिर्फ उस दिन रह रहकर मेरी यादो मे उलझ रही थी, जिस दिन नदी के किनारे मैं ने उसे बेखबर गाते सुना था—नदी की तरह लम्बी आवाज मे वह कह रही थी, 'मैं भली हूँ, तुम मे से कोई और जोगिया से प्रीत न लगाना "

लेकिन फिर इस बात को भी एक अजीब सी सयोग समझ लिया था।

' पर यह जो रोज, आये दिन फूलो के ढेर म छिपा हाथ मेरे पैर को छू जाता है

गहरे अर्थों मे लेते हैं, मैं इसे उस तरह कभी भी नहीं ले सका। यह सिर्फ़ एक नियम की तरह लेना चाहता था—सवेरे उठने के नियम की तरह, या कीकर की दातुन करने के नियम की तरह। पर मुझे इस नित्य नियम मे डालना, लगता है उन्हें मंजूर नहीं। या शायद उन्होंने इस के असली रूप में देख लिया है—यानी 'सेवा' से बहुत छोटे रूप मे। और इस छोटे रूप में उन्हें यह मंजूर नहीं हो सकता।

अब कोई तीन दिनों से साईं भगतराम लपसी में पोस्त के डोडे भी पीसकर डाल देता है, ताकि उन्हें जल्दी नींद आ जाये, और दाढ़ों की पीड़ा से उन्हें कुछ देर के लिए चैन मिल जाये। इस लिए वह रात को जब बहुत जल्दी ऊँघने लगते हैं मैं साईं भगतराम को उस की 'सेवा' से उठाकर खुद उस की जगह ले लेता हूँ। ऊँघते हुए वह यह नहीं पहचान सकते कि उन के पांव को मेरे हाथ दबाते हैं या साईं भगतराम के। पर हैरानी मुझे उन पर नहीं, अपने आप पर हो रही है—कि यह मेरा नियम 'सेवा' की हलकी-सी छुअन से भी इतनी दूर है कि उन के पैरों को दबाने के बाद, मैं जितनी देर अपने हाथों को अच्छी तरह मल मलकर न धो लूं, सो नहीं सकता।

समझ नहीं सकता, पर नफरत जैसी कोई चीज है जो मेरे मुँह में एक दाढ़ की तरह उगी हुई है।

लगता है जो कुछ खाता हूँ इसी दाढ़ से चबाता हूँ। चाहे कई बार यह भी लगता है कि इस दाढ़ मे बड़ी पीड़ा हो रही है। यह मेरे मुँह मे हिल रही है पर निकलती नहीं।

और कभी यह सोचता हूँ कि कहीं किसी दिन कोई चिमटी सी मिल जाये, तो उस के साथ खींचकर इस दाढ़ को हमेशा के लिए अपने मुंह से निकाल दूं।

पर फिर कुछ नहीं होता। पीड़ा भी नहीं होती। बल्कि फिर हर चीज को दाढ़ से चबाने में स्वाद आता है।

हरेक चीज को हरेक खयाल को जैसे आज सुबह जब महन्त किरपा सागरजी पूजा के श्लोक पढ़ रहे थे, और श्लोकों के सारे शब्द उन के मुँह में दाढ़ों की तरह अटके हुए थे, तो अचानक मुझे खयाल आया था वह था कि जो वे मुंह खोल दें तो मैं हाथ मे एक चिमटी ले लूं और श्लोकों के सारे शब्द खींचकर उन के मुंह से बाहर निकाल दूं

यह किसी के लिए भी एक भयानक खयाल है। पर एक पुजारी के लिए, चाहे उस की उमर बीस बरस क्या न हो, अति भयानक है

पर मैं सारा दिन इस खयाल का स्वाद लेता रहा हूँ—जैसे यह एक गिरी का टुकड़ा था जो अपनी दाढ़ से चबाता रहा हूँ

गिरी में से एक सफेद दूध-सा घूंट रह रहकर मेरे अन्दर उतरता रहा था

आज मेरी दाढ़ मे बिलकुल कोई पीड़ा नहीं हो रही।



हे ईश्वर !

ईश्वर पता नही क्या चीज है, यह शब्द एक आदत की तरह मुँह से निकल गया है।

आदत की तरह नही, दुखी हुई सास की तरह ।

शील बाबा ने एक दिन मकरध्वज का नुसखा लिखवाते हुए कहा था, 'अनाडी हकीम की तरह कुछ अधकचरा करके किसी को न खिला देना। पारा कच्चा रह गया तो खानेवाले की हड्डिया गल जायेंगी " और आज मैं ने कच्चा पारा खा लिया है।

रोज नफरत की एक मिरी-सी खाता था । आज कच्चा पारा खा लिया है।

शायद हर जिन्दगी एक मकरध्वज होती है। ईश्वर जब भी किसी इनसान को पदा करता है, जिन्दगी नाम की चीज मकरध्वज की तरह उसे खिला देता है। और इनसान हँसता है, खेलता है, जवान होता है, और उस की जवानी धरती पर ठुमक-ठुमककर चलती है धमक के चलती है

और लगता है—ईश्वर न जब मुझे जन्म दिया था और जब जिन्दगी नाम की चीज उस ने मुझे मकरध्वज की तरह खिलायी थी, उस दिन एक अनाडी हकीम की तरह मकरध्वज बनाते हुए उस से पारा कच्चा रह गया था

यह कच्चा पारा शायद मैं न आज नहीं खाया, अपन जन्म के समय ही खा लिया था, सिफ आज उस के असर का देख रहा हूँ—क्याकि आज लग रहा है कि मेरी हड्डिया गलनी शुरू हो गयी हैं

आज प्रात काल—सुबह की पहली किरण के साथ—महन्त किरपासागरजा को लगा कि उन की उमर के दिन पूरे हो गय है। उन्हाने साइ भगतराम के कन्धे का सहारा लिया, चारपाई पर से उठे, और जस-तस मन्दिर म पहुँच गय।

मुझे बुलाया। एक नारियल मेरी झाली म डाला। और फिर जरी की एक पगडी शिव-पावती के चरणा स छुआकर मेर सिर पर बाँध दी। अपनी सारी पदवी मुझे सौंप दी।

फिर मेरे आगे—अपनी पदवी के परों के आगे—खुद भी सिर झुकाया, साद भगतराम और गोविन्द साधु को भी सिर झुकाने के लिए कहा, और फिर उस के बाद जो कोई भी माथा टेकने के लिए आया, उसे भी।

'सोचा था, बहुत बड़ा समागम करूँगा। पर अब वक्त नहीं " उन को सिर्फ एक छोटी-सी यह हसरत आयी थी वैसे वह बड़े सुर्खरू लग रहे थे।

पापता' नाम की कोई चीज न कभी मुझे अपने आप में लगी थी, न उस वक्त लग रही थी। बल्कि अपने आप उस वक्त

याद आ रहा था कि मंगल नाम का एक साधु कुछ बरस हुए, इस डेरे में आकर रहा था। वह जहाँ भी बैठता था, पास से गुजरते हुए कीड़े को हाथ से मारता रहता था। दिन में न जाने कितने कीड़े मारता था। उस का कहना था, मैं इस तरह कीड़ों को इन की जून में छुड़ा रहा हूँ

उस वक्त जरी तिल्लेवाली पगड़ी सिर पर बाँधकर—मुझे अपना आप बिलकुल उस कीड़े की तरह लग रहा था, जिसे उस की जून से छुड़ाने के लिए किसी मंगल साधु की जरूरत थी।

पर कहा कुछ नहीं, कहने का कुछ हक भी नहीं था।

शाम तक महन्त किरपासागरजी को और भी यकीन हो गया कि उन की आयु के दिन पूरे हो गये थे और वह शायद आखिरी दिन था। सब को अपनी कोठरी से बाहर भेज दिया गया। आज उन की हालत को देखते हुए मन्दिर में आये कितने ही श्रद्धालु मन्दिर से वापस नहीं गये थे। उन्होंने सब को वापस जाने का हुक्म दिया और फिर मुझे अकेले कोठरी में बुलाया। परों के पास ही बैठ गया। उन्होंने पैरों के पास से उठाकर अपनी बाँह के पास बिठाया, अपनी आँखों के सामने।

पिछले कई दिनों से मुँह की सूजन की वजह से उन्हें बोलने में मुश्किल होती थी, पर उन के आधे से उच्चारण को समझने की आदत पड़ गयी थी। इस लिए उन्होंने जो कुछ कहा, समझने में कठिनाई नहीं हुई।

समझने के लिए तो शायद इतनी कठिनाई हुई है कि सारी उम्र भी कुछ समझ में नहीं आयेगा, पर सुनने में मुश्किल नहीं हुई।

'सिर की पदवी, सिर का भार, जिस तरह उतारकर तुझे दिया है, उसी तरह मन का एक भेद, मन का भार भी उतारकर तुझे देना है '

सुबह जिस तरह तिल्ले की और जरी की पगड़ी सिर पर रख ली थी मैं ने, और मुँह से कुछ नहीं कहा था, उसी तरह जो कुछ उन्होंने बताया, छाती पर रख लिया मैं ने, और मुँह से बिलकुल कुछ नहीं कहा।

सिर्फ यह लगता है—सिर शायद साबुत रहेगा, पर छाती साबुत नहीं रहेगी।

"आज जो भी पदवी तुझे मिली है, यह तेरा हक था, यह सिर्फ तुझे मिल

सकती थी

"जिस तरह जो कुछ भी किसी वाप के पास होता है, वेटे को मिल जाता है। अमीर वाप से अमीरी, फकीर वाप स फकीरी

'मुझे सव कुछ मिला, जवान नही मिली। इस जवान से तुझे वेटा नही कह सका इस वक्त सिफ भगवान् हाजिर है, और कोई नही, और भगवान् की हाजिरी म मैं तुझे एक बार वेटा कहकर मेरा अपना वेटा "

य सारे शब्द ज्यो ज्यो उन क मुह से निकलते गय—मैं अपनी छाती पर रखता गया। देखन का, जानने का और सोचन का वक्त नही था, सिफ इ ह पकड पकडकर छाती पर रखता गया।

"तेरी मा एक पुण्यात्मा है उसे कभी दोष नही देना भगवान ने ख द उसे सपने म दशन दिये इस सयोग का हुक्म दिया उस न सिफ हुक्म माना और म ने सिफ उसे अगीकार किया फिर कभी नजर भरकर उस की तरफ नही देखा उस की साध पूरी हो गयी उस के मन म सिफ एक वेटे की साध थी तेरी मेरी भी ज म ज म की तष्णा मिट गयी तेरा ज म एक पुण्यात्मा का ज म "

कोठरी का दरवाजा खडका। दूर-दूर के म दिरो के साधुओ तक महन्तजी की वीमारी की खवर कई दिनो से पहुँची हुई थी पर आज सुवह म दिर के वारिस की नियुक्ति की वात भी शायद पहुँच गयी थी, और उन्होंने अन्त नजदीक जान कर आज जल्दी से उन की खवर लेनी चाही थी। उन आये हुओ को कोठरी म बठाकर, मैं कोठरी से वाहर आ गया।

रोज सोने से पहले, कितनी देर तक मैं आसपास की पहाडी पगडण्डियो पर घूमता हूँ। आज भी वही पगडण्डियाँ हैं, पैरो की जानी-पहचानी हुई, पर परा को कई वार पत्थरो की ठोकर लगी है।

पैर कापते जा रहे हैं—टाँगो के वीच की हडिडयाँ जसे गलकर खोखली हुई जा रही है कोई कच्चा पारा खा ले तो शायद ऐसे ही होता होगा



अगर जन्म बदलना एक चोला बदलना है, तो मैं रोज दो चोले बदलता हूँ।

चार पहर एक चोला पहनता हूँ—डेरे के स्वामी होने का। और चार पहर दूसरा चोला—एक बड़े बदशक्ल कीड़े का।

'कीड़ा' शब्द जितना हीन है, 'स्वामी' शब्द उतना ही महान्। यह मेरे अस्तित्व के दो सिरे हैं—हीनता और महानता।

जब सोता हूँ—देखता हूँ कि एक काले और बदशक्ल कीड़े की तरह मैं एक बिल में से निकल रहा हूँ और मुझे जमीन पर रेंगते हुए देखकर मगल साधु अपने उपले सरीखे हाथ को मेरे ऊपर फैलाकर हँस रहा होता है, 'आ, मैं तुझे इस जून से छुड़ाऊँ...।'

जागता हूँ—पैरों के पास कई माथे झुके हुए होते हैं और मैं एक पदवी के आसन पर बैठकर जमीन से ऊपर उठ रहा होता हूँ।

दोनों सिरों के बीच एक गुफा है, बड़ी सँकरी और अँधेरी। मन्दिर की एक दीवार में से निकलती गुफा की तरह। और कई बार मैं उन दोनों सिरों से बचने के लिए उस गुफा में घुस जाता हूँ।

यह मेरे काने और अँधेरे खयालों की गुफा है। मसलन कभी यह कल्पना कर के देखता हूँ कि मेरी माँ ने महन्त किरपासागरजी से एक बेटे का दान कैसे माँगा होगा... महन्त किरपासागरजी ने उस के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखकर, फिर वह हाथ धीरे धीरे उस के अंगों पर किस तरह फेरा होगा... शायद अपनी कोठरी में जाकर, या शायद मन्दिर के पास लगे पेड़ों के घने झुण्ड में... फिर सफ़ेद और गेरुए कपड़े किस तरह कुछ देर के लिए एक दूसरे में गुँथ गये होंगे...

'तेरी माँ एक पुण्यात्मा...' महन्तजी के कहे हुए ये शब्द गुफा के अँधेरे में बड़ी ज़ोर से हँसते हैं और फिर यह हँसी एक जीते-जागते बच्चे की शक्ल में बिलखकर रो पड़ती है...

मैं गुफा से बाहर भी आ जाऊँ, तो यह बच्चा उसी गुफा में पड़ा घिघियाकर

रोता रहता है।

महंतजी के स्वर्गवास की खबर सुनकर, गांव की कोई औरत या मर्द ही होगा जो उन के आखिरी दर्शन करने न आया हो। मां भी आयी थी। गांव की सभी औरतों ने बारी बारी महंतजी के चरणों पर माथा टेका था, और उन की तरह मां ने भी टेका था, पर वह जब महंतजी की लाश के परे के पास झुकी थी—मुझे उस के मुंह पर दिख रहा था कि उस एक क्षण में उस के मुंह की हड्डियां निकल आयी थीं। मेरा खयाल है, उस वक्त वह जरूर सोच रही होगी कि महंतजी के स्वर्गवास से अगर वह पूरी नहीं तो आधी विधवा हो गयी थी

उस के 'आधी विधवा' होने के खयाल से एक हमदर्दी-सी हो आयी थी। असल में हुई नहीं थी, सिर्फ मैंने सोचा था कि होनी चाहिए थी। और फिर मैं यह सोचने लगा था—आज यह हमदर्दी मुझे अपने प्रति भी होनी चाहिए, क्योंकि अपने बाप की मृत्यु से मैं सही अर्थों में अनाथ हुआ हूं। पर यह हमदर्दी मुझे अपने प्रति भी न हुई।

चिता को आग दी थी—चेला होने के नाते भी देनी थी, बेटा होने के नाते भी।

एक बदन में दो नाते शामिल हैं, सिर्फ मैं शामिल नहीं। न उस वक्त, चिता को आग देते वक्त, शामिल था न अब।

आज एक अजीब घटना घटी है, किसी शहर से कोई बड़ी अमीर सी दीखती औरत आयी थी। उस के साथ दो दासियां थीं जिन्होंने मंदिर में चढ़ाने के लिए फल और मिठाई उठा रखी थी। वह मंदिर की इस ख्याति को सुनकर आयी थी कि इस मंदिर में मानता करने से सूखी हुई कोख भी हरी हो जाती है

उसके हाथ प्रार्थना में जुड़े हुए थे, "कृष्ण खावें लड्डू पेड़ा, शिवजी पीवें भंग, बैल की सवारी करें पार्वतीजी के संग, मेरे भोलानाथजी, मेरे काज सम्पूर्ण कर ..."

एक अजीब खयाल आया था—कहते हैं, इतिहास अपने आप को दोहराता है। और आज शायद इतिहास ने अपने आप को दोहराना चाहा था

लगा—अभी उस की प्रार्थना के जवाब में उस को कह दूंगा कि इस स्थान से हासिल किया हुआ बच्चा इसी स्थान पर चढ़ाना होता है। और फिर जब वह हां कर देगी, उस का हाथ पकड़कर उस को अपनी कोठरी में

एक ग्लानि-सी हुई। लगा—इस औरत का हाथ पकड़कर जब अपनी कोठरी में ले जा रहा होऊंगा, तब वह मैं नहीं होऊंगा, वह मेरे रूप में एक बार फिर महंत किरपासागरजी मेरी मां का हाथ पकड़कर उसे अपनी कोठरी में

इस लिए उस औरत को कुछ नहीं कहा बल्कि घबराकर आंखें बन्द लीं। उस ने शायद यह समझा था कि मैं उस के लिए प्रार्थना कर रहा था, क्योंकि फिर

जब आँखें खोलीं, वह बडी सन्तुष्ट होकर और प्रणाम करके चली गयी थी

मन की अजीब दशा है—माँ के साथ हमदर्दी करना चाहता हूँ—होती नहीं। फिर यह सोचकर कि इनसान की मौत के बाद तो उस के साथ कुछ हमदर्दी हो जानी चाहिए, महन्त किरपासागरजी के साथ हमदर्दी करना चाहता हूँ, पर कुछ नहीं होता, आखिर म एक 'स्वयं' रह जाता है। सोचता हूँ तीन पात्रो म एक ही सही, पर वह पात्र भी मेरी हमदर्दी का पात्र नहीं बनता

और जस महन्तजी के आखिरी दिनो म उन के मुह की सूजन भी उतर गयी थी, पर उन की हालत बिगडती गयी थी, हकीम न बताया था कि मसूडो म पडा हुआ मवाद उतरकर अन्दर मेदे म पड गया है—लगता है, मेरी नफरत भी माथे से उतरकर मेरे मेद म पड गयी है—किसी को कुछ कहना नहीं चाहता, पर मेरे अन्दर स रत की तरह कुछ गिरता-बिखरता जा रहा है



आड़ू के पेडो पर जब भी फूल लगते है, मेरी आखें अजीब तरह बेचन हो जाती हैं। लगता है, यह सिफ मुझ पर हँसने के लिए खिलते हैं। यह सिफ अब ही नहीं लगता, जब बहुत छोटा था तब भी लगता था कि मैं किसी चटखे हुए पत्थर म से उग आयी घास की तरह हू, और शायद किसी को पता नहीं, पर आड़ू के पेड को यह भेद पता लग गया है—और वह जार-जार से खिलखिलाकर हँस रहा है

'मेरी जड धरती की छाती के भीतर है, तेरी कहा है?' वह कई बार कहता था, और बडे जोर से हँसता था—इतने जोर से, कि उस के कई फूल झडकर मेरे जिस्म पर गिर पडते थे—जसे हँसते हँसते मुह से थूक गिर पडे।

मैं ने उस के नीचे खडा होना छोड दिया, पास खडा होना भी छोड दिया। पर वह दूर खडा भी हँस सकता है, इस लिए जब उस की हँसी की आवाज़ कान मे पडती है, मेरी आखे अजीब तरह बचैन होकर उधर देखने लगती है।

पीपल की जड भी धरती म होती है, और पेडो की भी, पर ये अपने म मस्त

रहते हैं—अपने हरे-पीले बदन म लिपटे हुए। आडुओ के पेड की तरह कोई भी खिलखिलाकर नही हसता।

पता नही, उसे इतनी बार हँसने की क्या जरूरत पडती है—जब कि मुझे पता है कि मैं किसी पत्थर की दरार मे से अपने आप उग आयी घास का एक तिनका हूँ, मेरी कोई शाखाएँ कभी नही निकलेगी, कभी फूल नही लगेंगे, फूलो से कोई फल नही बनेंगे

अगर बन सकते होते महन्त किरपासागरजी ने जब अपनी आखिरी साँसें लेते हुए इशारे से अपने पास बुलाया था, उस शाम जो भेद उन्होने मेरे सामने खोला था, उन की आखो म एक भेद की लौ थी, इस लौ को शायद वात्सल्य कहते हैं, पर मेरे बदन की नाडियो म कोई खून नही पिघला था। एक हुक्म म बँधा मै उन के पास हो गया था, पर उन के बोलते खून के जवाब मे मेरा खून कुछ नही बोला था। उन की आखो म एक धुध-सी आ गयी थी, शायद कोई हसरत सी थी और फिर उन्होने आखें बन्द कर ली थी मैं पत्थर की दरार म से उग आयी घास का एक तिनका-सा हूँ अगर एक बीज की तरह धरती की छाती चीरकर उगा होता, जरूर मेरी किसी टहनी पर खून का फूल खिल पडता

सुन्दरा ने भी यह आजमाकर देख लिया है। आजमाइश का दिन था—उस की नही, मेरी आजमाइश का।

"मेरे लिए क्या हुक्म है?" मन्दिर के साथ के सुनसान जगल म उस ने मुझे पता नही किस तरह ढूँढ लिया था, और मेरे पास आकर यह कहते हुए एक अनुनय से मेरी तरफ देखा था।

'मेरा हुक्म? किस लिए?" कुछ समझ नही पाया था। सिर्फ यह समझ सका था कि मन्दिर मे फूलो की झोली को पलटती हुई वह जब जमीन को हाथ से छूती थी, तो उस की हथेली मेरे पैरों को छू रही सी लगती थी। यह भुलावा नही थी।

"क्या पूरन इस जन्म मे भी सुन्दरा को स्वीकार नही करेगा?" उस की आँखो मे पानी भरा हुआ था, आखो म भी और आवाज म भी, क्योकि उस के शब्द भी गीले-से लग रहे थे।

"मैं पूरन भी नही हूँ और राजा का बटा भी नही," सिर्फ इतना ही कहा था। हैरान था—पत्थर की दरार म से निकले घास के तिनकेवाली बात आडुआ के पेड का पता लग गयी थी पर सुन्दरा को क्यों पता नही लगी थी?

मन्दिर मे पूजा के समय जब वह फूला की झोली को पलटती थी, उस की बाँह फूलो के ढेर मे साँपिन की तरह पडी हुई लगती थी, और वह मेरे पर को जब उँगलियाँ या हथेली छुआती थी, पर मूर्च्छित-सा हुआ लगता था—पर आज

मैं ने उस के डंक को अकारथ कर दिया है। भला घास के तृण को भी कभी किसी साँप का जहर चढ़ता है? मुझे उस की बात का जहर नहीं चढ सकता

"मेरी आत्मा " वह कुछ ऐसी बात कहने लगी थी, मैं परे उस से दूर-सा होकर खड़ा हो गया। आत्मा और पुण्यात्मावाली कहानी जो महंत किरपासागर-जी ने सुनायी थी, वही बहुत थी, इस कहानी को फिर आज सुन्दरा से सुनना नहीं चाहता था।

"मेरे पत्थर के देवता " उस ने वहीं दूर से कहा, और फिर जल्दी से चली गयी।

सुंदरा बावली है, रो पडी थी, पता नहीं, उस ने आड़ुओं के पेड़ों की तरफ़ क्यों नहीं देखा—वह अगर देखती, तो उसे वह भेद मालूम हो जाता कि उस पेड़ के सारे फूल सिर्फ़ मुझ पर हँसने के लिए खिलते थे

पिछले कई सालों म मैं कभी आड़ुओं के पेड़ के नीचे नहीं खड़ा हुआ था, आज बड़ी देर तक खड़ा रहा, लगा आज जरूर खड़ा होना था, और देखना था कि आखिर उस के फूल मुझ पर कितना हँस सकते है



आड़ुओं के गुलाबी फूलों की हँसी, और सुंदरा की काली सियाह आँखों के आँसू अजीब तरह एक-दूसरे मे मिल-जुल गये है। शायद यह हसी बीज की तरह है, जिसे धरती मे बोकर यह आँसू पानी दे रहे है या आँसू गोल बीज का तरह है जिसे धरती मे बीजकर यह हँसी पानी दे रही है

एक अजीब-सी हमदर्दी मेरे मन म उग आयी है—माँ को तो भगवान ने सपने मे दर्शन दिये, भगवान् की तरफ से उसे एक संयोग का हुक्म मिला, महंत किरपासागरजी ने भगवान् का हुक्म मान लिया, और दोनो ने मिलकर कुछ प्राप्त कर लिया। पर वह तीसरा आदमी जो मेरी माँ का पति है पर मेरा बाप नहीं उस बेचारे ने क्या प्राप्त किया सिर्फ एक भुलावा कि मैं उस का

बेटा हूँ, चाहे उस के आगन म नही खेला, चाहे उस के खेतो म उस का हल नहीं चलाया, पर उस के वश का चिराग हूँ

क्या चिराग जैसा शब्द भी इतना काला और अँधियारा हो सकता है

लगता है—मा ने एक अँधेरा चुराया, जब तक अँधेरे को अपनी कोख में छिपा सकती थी, छिपाये रखा। फिर जब छिपाया न गया, उस की एक पोटली बाधकर उस गरीब आदमी के सामन जा रखी—देख! मैं तेरे घर का चिराग ढूँढकर लायी हूँ।

चिराग क्या होता है—मिट्टी की एक कटोरी-सी, थोडा-सा तेल, थोडी-सी रुई। वह तो था ही, सिफ आग नही थी। आग एक सच्चाई होती है पर झूठ भी शायद सच्चाई की तरह बलवान् होता है, और वह भी अपने हाथो की रगड मे से आग की चिनगारी पदा कर सकता है

चिराग जल गया। पर एक फक मैं देख सकता हूँ—इस चिराग की रोशनी मे जो राह नज़र आती है, उस राह पर एक भयानक खामोशी है, और एक भयानक एकाकीपन।

इस चिराग से जिस का भी सम्बाध है, सब उस राह पर चल रहे हैं, पर सब एक-दूसरे से अपनी आँखो को चुराते हुए और अपने अस्तित्व को भी चुराते हुए, सब एक-दूसरे से टूटे हुए, और अपने-अपने एकाकीपन को भोगते हुए

हमदर्दी जसे शब्द को मा के साथ जोडना भी चाहूँ, तो भी नही जुडता। मह त किरपासागरजी के साथ भी नही जुडता। सिफ कुछ जुडता है—तो उस बेचार आदमी के साथ जो दुनिया की नज़र मे मेरा बाप है।

बाप शब्द से खयाल आया है कि अगर मैं इस शब्द को उस बेचारे आदमी पर से उतार दू—(मुझे लगता है, इस शब्द को उस ने एक गठरी की तरह उठाया हुआ है)—और इस शब्द का भार मैं मह त किरपासागरजी के सिर पर रख दू, फिर?

पर अब वह भी नही हो सकता। अगर मह त किरपासागरजी जीवित होते, तो मैं शायद किसी दिन यह कर देता। पर अब यह भार मैं उन की लाश के सिर पर कसे रख दू?

आज सुबह मन्दिर के कार्यों से निवटकर, मर पैर जबरदस्ती उस खेत की तरफ चल पडे थ, जहाँ वह 'बेचारा' आदमी हल चला रहा था। पता नही, उस ने क्या समझा होगा, पर मैं ने उस के हाथ से उस का काम पकड लिया था। सूरज जब तक शिखर पर नही आया था, मैं उस के खेतो मे उस के एक मजदूर की तरह लग रहा था उस के काम का बोझ हलका नही कर रहा था, सोच रहा था, शायद ऐसे ही उस के सिर पर उठाये हुए शब्द का भार कुछ हलका हो जाये

उस का मुझे पता नही, पर मेरा अपना मन कुछ हलका-सा हो गया है—खेत के पास बहते पानी मे जब मैं ने अपने हाथ धोये थे, लग रहा था—बदन से कुछ धोया जा रहा था। कधे की चादर से जब माथे का पसीना पोछा था, लग रहा था—लेस की तरह लगे हुए एक रिश्ते का कुछ हिस्सा मैं ने आज पोछ दिया था

अगर मैं रोज इसी तरह कुछ पोछता रहूँ तो शायद किसी दिन सब कुछ पोछ दिया जायेगा

हे भगवान्

मैं ने यह सोचा ही नही कि अगर मैं रोज उस के खेत मे जाकर उस की गोडाई या जुताई करूँगा, तो गाववाले रोज देखेंगे, और तब लेस की तरह लगा हुआ यह रिश्ता दिनो दिन छूटेगा या और पक्का हो जायेगा ?

नही, मैं कुछ नही पोछ सकता। कुछ भी पोछा नही जा सकता, बल्कि रोज जो हाथो को पसीना आयेगा, उस पसीने से भी उस रिश्ते की बू आयेगी

अजीब हालत है ! कोई रिश्ता नही, पर उस रिश्ते की बू सब ओर फली हुई है।

रिश्ता होता, फिर मर गया होता, यह बू समझ म आ सकती थी। बिलकुल उस तरह, जिस तरह एक लाश मे से बू उठती है। पर जा है ही नही, उस की बू किस तरह ?

ईश्वर भी कही दिखता नही पर उस की खुशबू हर तरफ फैली हुई है

क्या यह रिश्ता भी ईश्वर की तरह है ? लगता है, अगर बू और खुशबू के फ़र्क को छोड दिया जाये तो यह रिश्ता भी ईश्वर की तरह है

या यह कह सकता हूँ कि यह मरे हुए ईश्वर की तरह है।

मरे हुए ईश्वर ने, लगता है, उस के साथ एक मरा हुआ मज़ाक किया है। उस का नाम दीनानाथ है यह मजाक नही तो और क्या है ? शायद उस से बढकर और कोई दीन नही, पर फिर भी वह दीना का नाथ है

शायद वह स्वय ही दीन है, और स्वय ही नाथ है



रिश्ता भी क्या चीज है ? जहां कुछ भी नहीं, वहां नजर आता है, जहां नजर नहीं आता, वहां है।

शुरू से पता था—मां से एक रिश्ता है, पर बीस बरस बड़े गौर से देखता रहा हूं, कभी नजर नहीं आया।

महन्त किरपासागरजी ने अपने आखिरी वक्त जो कुछ बताया था, सुन लिया पर ग्रहण कुछ भी नहीं हुआ। वहां भी गौर से देखता हूं, पर कुछ दिखाई नहीं देता।

सवेरे सुन्दरा आयी थी—उस ने ब्याह का जोड़ा पहन रखा था। मुंह अच्छी तरह नहीं दीख रहा था। सिर्फ आंखें दिखती थीं, और एक बड़ी-सी नथ दिखती थी। उस वक्त मन्दिर के चबूतरे पर बहुत-से फूल नहीं थे, पर उस ने फूलों की झोली जब पलटी थी, सारा चबूतरा फूलों से भर गया था। और उस ने उसी तरह फर्श पर झुककर, फूलों के ढेर में से बांह गुजारकर

आज सिर्फ मेरा पैर ही नहीं, मेरा सिर भी मूर्च्छित हो गया लगता था, फिर उठकर जब वह खड़ी हुई तो नजर भरकर देखा—नथ की गोल तार पर पानी की बूंदें अटकी हुई हैं। जैसे नथ की आंखों में आंसू आ गये हों

लगा—मेरी आंखों में से कुछ रिस पड़ा था। जैसे किसी टहनी से कुछ तोड़ो तो पानी रिस आता है

पर टहनी कौन है ? क्या मैं टहनी हूं ?

और क्या इस टहनी से जो कुछ टूट गया है, वह रिश्ता था ?

सुन्दरा के साथ मैं ने कभी यह शब्द नहीं जोड़ा, पर क्या जो दिखता नहीं था, वह था ?

'आखिरी प्रणाम' आवाज कानों तक पहुंची थी। होंठ हिलते नहीं दिखे थे, सिर्फ नथ हिलती-सी दिखी थी। जैसे यह बात उस नथ ने कही हो

सुन्दरा नहीं जानती, पर यह भी एक रिश्ता है

वही रिश्ता जो हवन-कुण्ड के साथ होता है

मैं कुण्ड हूँ, पाराशर स्मृति के अनुसार पति के जीते जी जो स्त्री किसी और से सन्तान लेती है, उस सन्तान का नाम कुण्ड होता है

किसी कुण्ड मे जो कुछ पडे वह दग्ध हो जाता है

मुझे प्यार करके सुन्दरा अपना हवन करना चाहती थी। वह नही जानती, पर मैं ने उसे हवन की सामग्री होने से बचाया है



माँ औरत के रूप मे होती है, पृथ्वी के रूप मे भी। विष्णुपुराण मे कथा आती है कि विष्णु ने जब वराह का रूप धारण किया, तो पृथ्वी ने उस के साथ भोग करके नरक नामक पुत्र पैदा किया।

सो यह कहानी सिर्फ मेरी नही, आदि-युगादि की है।

और आदि-युगादि से यह नरक पैदा होते रहे हैं।

भोग करनेवालो का क्या है, उन का खेल उन को नही भुगतना पडता, यह सिर्फ नरको को भुगतना पडता है। यह सिर्फ मुझे भुगतना है

आज सुबह माँ जब मन्दिर म आयी थी, सोच रहा था, उस को प्रणाम करूँ। बिलकुल इस तरह जिस तरह कोई पृथ्वी को प्रणाम करता है।

पृथ्वी ने जब नरक पैदा किया था, तो किसी ने भी पृथ्वी का निरादर नही किया था, सो मुझे भी उस का निरादर करने का क्या हक है?

मेरी माँ साक्षात् पृथ्वी है।

सुलफ़ा बहुत अच्छी चीज़ है। मैं ने आज तक नही पिया था। गोविन्द साधु के हाथो से चिलम पकडकर आज मै ने थोडा सा ही पिया कि आनन्द आ गया। अजीब-अजीब बातें भी सूझ रही हैं

अभी चरपट योगी की कथा याद आयी है कि चरपट योगी का जन्म योगी मछेन्द्रनाथ की दृष्टि से हुआ था—भोग से नही, सिर्फ दृष्टि से।

और क्या पता मेरा जन्म भी महन्त किरपासागरजी की सिर्फ दृष्टि से

हुआ हो

लगता है, महन्त किरपासागरजी भी योगी मछेन्द्रनाथ की तरह सिद्ध पुरुष थे। सो सिद्ध पुरुषो को प्रणाम करना चाहिए

मुझे अफसोस है कि मैं ने महन्त किरपासागरजी का कभी जीते-जी ऐसे प्रणाम नही किया था। चरपट योगी ने मछेन्द्रनाथ को जरूर प्रणाम किया होगा। मुझे चरपट योगी से यह शिक्षा लेनी चाहिए थी

चरपट योगी मेरे बडे भाई की जगह है पता नही, यह खयाल पहले क्या नही आया उस का जन्म भी ऐसे हुआ था, जसे मेरा सो हम भाई भाई है आज मैं बहुत खुश हूँ आज इतिहास के पन्ना म से मुझे मेरा भाई मिल गया है

गोविन्द साधु पता नही कहाँ अलोप हो गया है। अभी नागफनी की याडी के पास बैठा चिलम पी रहा था। कही साईं भगतराम ही दिख पडे तो कहूँ कि चिलम मेरे लिए भी भर ला। चिलम के दो घूट से ही आनन्द आ गया

आनन्द की तृष्णा भी अजीब चीज है यह मैं किस तरह बैठा हुआ हूँ, किस मुद्रा म ? ओह, याद आया—यह भद्रा मुद्रा है। टखना को मोडकर अपने नीचे रखकर बठने की मुद्रा। योगिया का आसन

पता नही, मेरे नीचे क्या बिछा हुआ है मेरा खयाल है भद्रासन होगा बहुत सख्त है भद्रासन होता ही सख्त है, बैल का चमडा इस आसन पर बैठनवाले लागा की भलाई के लिए बैठते हैं, लोगो के कल्याण के लिए मैं किस का कल्याण करूँगा ? क्या आसन पर बठनेवाले अपना कल्याण नही कर सकते ?

एक अजीब बू आ रही है, शायद बल के चमडे की है नही, यह मेरे जिस्म मे से आ रही है हाथो मे से, बाहो मे से, सीने म से मछली की बू की तरह मत्स्यगन्धा वह कौन थी मत्स्योदरी ? वह जो वसु राजा के वीर्य से मछली के पेट मे से जन्मी थी ? उसे भी जरूर अपने जिस्म म से मछली की बू आती होगी मेरी मा भी शायद मछली है मैं मछली के उदर से पदा हुआ हूँ एक दिन महन्त किरपासागरजी समाधि मे लीन थे पता नही, महाभारत मे किसी ने यह कथा क्यो नही लिखी

व्यास ने महाभारत लिखते समय जरूर भाँग पी रखी होगी नही, सुलफा पी रखा होगा कोई साइ भगतराम उस की चिलम भर रहा हागा, और वह लिखता गया होगा आज साइ भगतराम ने कमाल की चिलम भरी है, मैं भी महाभारत लिख सकता हूँ

महाभारत का क्या है, जो मरजी आये लिखते जाओ जहाँ कुछ समझ न आये, वहाँ जो जी चाहे लिख दो 'शुक्र ब्रह्मा का बेटा था, पर शुक्र की माँ नही

थी वह ऐसे ही पैदा हो गया था। ब्रह्मा एक यज्ञ करवा रहा था, वहाँ देवताओं की बहुत सुन्दर पत्नियाँ आयी हुई थीं, तो उन को देखकर ब्रह्मा का वीर्य गिर गया। सूर्य ने उस वीर्य को इकट्ठा कर लिया और अग्नि में उस का हवन किया तो उसी वक्त अग्नि में से तीन सुन्दर बालक निकल आये देवताओं ने एक बालक शिव को दे दिया स्वाहमस्वाह एक अग्नि को दे दिया वह भी स्वाहमस्वाह और एक उस के असली बाप को दे दिया, ब्रह्मा को, यही बालक भृगु था

तो बाप का क्या है, बाप पर कोई दोष नहीं लगता इसलिए बाप का नाम याद रख लेना चाहिए दोष सिर्फ मां पर लगता है, सो माँ का नाम भूल जाना चाहिए बच्चे का क्या है, वह कहीं भी पैदा हो सकता है—मछली से भी पृथ्वी से भी, अग्नि से भी मैं जब महाभारत लिखूंगा, तो लिखूंगा कि मैं सुलफ़े की चिलम में से जन्मा था

खूब वक्त पर खयाल आया है कि बच्चे की पैदाइश के लिए इनसान का वीर्य भी जरूरी नहीं पद्मपुराण में लिखा है कि मंगल विष्णु के पसीने से पैदा हुआ था वामनपुराण में लिखा है कि शिवजी के मुंह में से एक थूक गिरा और उस थूक में से एक बालक जन्मा था

सो मैं अपने जन्म की कथा लिखूंगा कि एक दिन महन्त किरपासागरजी सुलफ़े की चिलम पी रहे थे मुंह में से एक थूक गिरकर चिलम में पड़ गया और मैं सुलफ़े के धुएँ की तरह चिलम में से निकल पड़ा

यह सब सम्भव है अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर की रानी सुमति को और्व ऋषि के वर के अनुसार साठ हज़ार पुत्र पैदा होने थे, ऋषि की वाणी थी, इस लिए सुमति के गर्भ से एक तुम्बा जन्मा, जिस में साठ हज़ार बीज थे। राजा ने साठ हज़ार घी के घड़े भरकर, उन में एक-एक बीज रख दिया—दस महीने बाद हर घड़े में से एक एक बालक निकल आया

यह हरिवंशपुराण की कथा है, इस लिए सच है। सच किसी काल में भी हो सकता है। इस काल में यह भी सच है कि एक दिन महन्त किरपासागरजी सुलफ़े की चिलम पी रहे थे, मुंह में से एक थूक गिरकर चिलम में पड़ गया, और एक बालक, सुलफ़े के धुएँ की तरह चिलम में से निकल पड़ा

यह कैसा ज्ञान है जो मुझे प्राप्त हो रहा है

भुशुण्डि नाम के एक ब्राह्मण को जब लोमश ऋषि ने श्राप दिया था तो उस के श्राप से वह एक कौआ बन गया था, पर कौआ बनते ही उस को एक ज्ञान प्राप्त हो गया था, और फिर वह चिरंजीवी होकर सब ऋषियों को कथा सुनाता रहा

मैं भी शायद उस की तरह कागभुशुण्डि हूँ मुझे भी एक ज्ञान प्राप्त हुआ है मैं भी समय को एक कथा सुना रहा हूँ

आते वक्त कोई और खयाल नहीं आया था। सिर्फ एक खयाल था, यही खयाल जो मैं सुलफ़े की तरह पीता गया था। और एक क्रोध-सा था जो सुलफे के धुएँ की तरह निकल रहा था

अब आती बार खयाल आ रहे हैं, यह भी कि सुलफे का जो नशा मेरे सिर का चढा हुआ था—एक दम्भ का नशा था। शायद दम्भ को भी सुलफ़े की तरह पिया जा सकता है.

और यह खयाल भी आ रहा है—बत्तीस शुभ लक्षण सिफ औरत के ही नही होते, मद के भी होते हैं। और उन बत्तीस मे से एक लक्षण उदारता भी होता है, क्षमा भी। मैं ने उस के शुभ लक्षणो की गिनती करके उस को सुना दी, पर यह गिनती मैं अपने लिए भी तो कर सकता था

क्या उदारता और क्षमावाला लक्षण मुझ मे नही होना चाहिए?

उम्र के बरसो की तोडी हुई एक औरत, बडी दीन-सी होकर, और हारकर, चारपाई के बान से लगी हुई थी, और मैं परे एक आसन पर चावल के मांड की तरह अकडकर बैठ गया था।

चलो, बैठ भी गया था, तो चुप ही रहता

उस ने मुझे हाथ से छूना चाहा था—बढकर, पता नही परो को कि सिर को, पर उस का हाथ बीच मे ही लटका रह गया था

कुछ झुर्रियाँ थी, जो हवा म लटक रही थी

मास के वलो मे पता नही जि दगी का क्या कुछ लिपटा होता है

परे आसन पर बैठे हुए, मुह पर शायद निदयता जसी कोई चीज थी, लगा—उस ने देख ली थी, और उस की आखो म पानी भर आया था।

शायद वह सोचती थी कि आखो के पानी से वह मेरे मुह पर से इस निदयता को धो सकती थी

पर यह मेरे मुह पर जो कुछ भी उसे दिखा था, धूल की तरह उडकर पडा हुआ नही, मास के राम की तरह उगा हुआ है।

वही बात हुई जो मैं ने सोची थी। मेरी खामोशी तोडने क लिए उस न कहा, "मेरे लिए कोई वचन।"

'वचन' मैं सोचकर गया था। इस लिए कह दिया, 'निष्कपटता।"

लगा, उस के मुह की सब झुर्रियाँ मेरी ओर देखन लगी थी।

उस वक्त कोठरी म वह अकेली थी। मैं था, पर मेरा मतलब है, उस का पति, उस का दीनानाथ—उस वक्त बाहर ओसारे म था, अ दर उस के पास कोठरी मे नहीं था।

"मैं जानू या मेरा परमात्मा। मैं निष्कपट हूँ' उस की बहुत धीमी-सी आवाज



सुना—माँ बहुत बीमार है। कुछ दिनों से मन्दिर में देखी नहीं थी। कुछ ऐसा ही खयाल आया था, पर जिस बात को 'खबर लेना' कहते हैं, उस बात का खयाल नहीं आया।

आज उस ने अपनी किसी पड़ोसिन को भेजा था—"एक बार मुंह दिखा जा। यह मेरे बत्तीस दांतों में से निकली मिन्नत है।"

उस वक्त मैं मन्दिर में खड़ा था, शिव और पार्वती की मूर्ति के पास और लगा, यह शब्द सुनकर मैं भी पत्थर की तरह हो गया था—पैरों को उठाकर चलने की जगह यही पत्थर की तरह हो जाना आसान लगा था।

यह सुबह की बात है। दोपहर के समय वह पड़ोसिन फिर आयी थी, "मरने को पड़ी है, कहती है—'एक बार मुंह दिखा जा। तुझे मेरे दूध की बत्तीस धारों की सौगन्ध...'"

बत्तीस दांत... बत्तीस धारें... लगा, उस के पास बत्तीस की गिनती बहुत सारी थी, और अचानक खयाल आया कि स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में औरत के बत्तीस शुभ लक्षण माने गये हैं...

इकत्तीस के बारे में कुछ नहीं कह सकता, पर एक के बारे में जरूर कह सकता हूँ। बत्तीस में से एक लक्षण निष्कपटता भी है।

सोचा, जाना है, इस लिए जाऊँगा। दूध की बत्तीस धारा का कर्ज़ा लौटाने नहीं, और न ही बत्तीस दांतों में से निकली मिन्नत को सुनकर, सिर्फ एक मन्दिर का साधु होने के नाते, जिसे गांव में से आये किसी मर्द या औरत के बुलावे पर जरूर जाना होता है।

सिर्फ यह खयाल जरूर आया कि उस ने अपने आखिरी वक्त या मुश्किल की घड़ी में, जो मेरे मुंह से कोई साधु-वचन सुनना चाहा, तो मैं यह कह सकूंगा, 'भली औरत! तुझ में औरत के बत्तीस शुभ लक्षणों में से शायद इकत्तीस ही होंगे, पर मैं बत्तीसवें की बात करता हूँ—निष्कपटता की। जिस मर्द के नाम के नीचे तू ने सारी जिन्दगी गुज़ारी है, अगर आखिरी वक्त तू उस के साथ निष्कपटता

वरत ले

आते वक्त कोई और खयाल नही आया था। सिफ एक खयाल था, यही खयाल जो मैं सुलफ़े की तरह पीता गया था। और एक क्रोध-सा था जो सुलफे के धुएँ की तरह निकल रहा था

अब आती बार खयाल आ रहे हैं, यह भी कि सुलफे का जो नशा मेरे सिर को चढ़ा हुआ था—एक दम्भ का नशा था। शायद दम्भ को भी सुलफ़े की तरह पिया जा सकता है-

और यह खयाल भी आ रहा है—बत्तीस शुभ लक्षण सिफ औरत के ही नहा होते, मद के भी होते हैं। और उन बत्तीस म से एक लक्षण उदारता भी होता है, क्षमा भी। मैं ने उस के शुभ लक्षणो की गिनती करके उस को सुना दी, पर यह गिनती मैं अपने लिए भी तो कर सकता था

क्या उदारता और क्षमावाला लक्षण मुझ म नही होना चाहिए?

उम्र के बरसो की तोडी हुई एक औरत, बडी दीन-सी होकर, और हारकर, चारपाई के बान से लगी हुई थी, और मैं परे एक आसन पर चावल के माड की तरह अकडकर बैठ गया था।

चलो, बठ भी गया था, तो चुप हो रहता

उस ने मुझे हाथ से छूना चाहा था—बढकर, पता नही पैरो को कि सिर को, पर उस का हाथ बीच मे ही लटका रह गया था

कुछ झुर्रियाँ थी, जो हवा म लटक रही थी

मास के बलो म पता नही जिन्दगी का क्या कुछ लिपटा होता है

परे आसन पर बैठे हुए, मुह पर शायद निदयता जसी कोई चीज थी, लगा—उस ने देख ली थी, और उस की आखो म पानी भर आया था।

शायद वह सोचती थी कि आखो के पानी से वह मेर मुह पर से इस निदयता को धो सकती थी

पर यह मेरे मुह पर जो कुछ भी उसे दिखा था, धूल की तरह उडकर पडा हुआ नही, मास के रोम की तरह उगा हुआ है।

वही बात हुई जो मैं ने सोची थी। मेरी खामोशी तोडने के लिए उस ने कहा, "मेरे लिए कोई वचन।"

'वचन' मैं सोचकर गया था। इस लिए कह दिया, 'निष्कपटता।"

लगा, उस के मुह की सब झुर्रियाँ मेरी ओर देखने लगी थी।

उस वक्त कोठरी मे वह अकेली थी। मैं था, पर मेरा मतलब है उस का पति, उस का दीनानाथ—उस वक्त बाहर ओसारे म था, अन्दर उस के पास कोठरी म नही था।

"मैं जानूँ या मेरा परमात्मा। मैं निष्कपट हूँ" उस की बहुत धीमी-सी आवाज

आयी थी।

सुनकर हँसी सी आ गयी थी।

उस की आंखो म कुछ फैल गया था। शायद खौफ जसी कोई चीज थी। वह एकटक मेरी तरफ देख रही थी, और उस की आंखो मे वह खौफ शीशे की तरह चमक पडा था। और फिर लगा था—वह शीशे की तरह चटख गया था शायद पिघल गया था

उस की आंखो से कुछ पानी पिघले हुए शीशे की तरह वह रहा था।

उस ने खाट की बाँहो पर छाती का भार डालकर अपनी बाँह को लट काया—मेरे आसन का एक कोना हथेली से छू लिया। आसन का कोना भी, उस के साथ लगा मेरा घुटना भी।

घुटना जल-सा उठा, एक क्रोध से। हथेली को घुटने से झटक सकता था, पर गुस्से की बडी गरम लकीर, घुटन से लेकर जबान तक फल गयी थी, इस लिए जबान तिलमिला गयी। कह दिया, "मह त किरपासागरजी ने आखिरी वक्त यह 'निष्कपटता' मुझे बता दी थी।"

बहुत साल हुए, एक बार गोवि द साधु ने एक साप मारा था। उस का डण्डा जब साप की कमर मे धँसा हुआ था, और साँप के सिरवाला हिस्सा व नीचे धड वाला हिस्सा दो अलग-अलग हिस्सो म तडप रहे थे—मैं उस के पास खडा, उस को देखता, एक ग्लानि से भर गया था। उस दिन मुझे साप पर नही, गोवि द साधु पर बडा गुस्सा आया था। साप तडप रहा था, गोवि द साधु तमाशा देख रहा था।

लगा, मेरी बात सुनकर, वह भी साप की तरह तडप उठी थी, मेरी बात लकडी के एक डण्डे की तरह उस की पीठ म धँस गयी थी, और जिस के बोझ के नीचे वह गुच्छा हुई अजीब तरह टूट रही थी। अपने आप से भी नफरत हुई। अपने आप से भी, उस बात से भी, और उस बात की चोट से तडपती उस की जान से भी।

एक मरते हुए इनसान को मैं कैसी शाि त दे रहा था? मुझ पता था, मैं एक बदला ले रहा था, पर यह कसी घडी थी बदला लेने की?

और सब से अधिक नफरत अपने आप से हुई, अपने अस्तित्व से। जसे मेरा अस्तित्व नफरत का एक टुकडा हो

हिल सा गया था।

फिर यह खयाल भी आया—जो मैं नफरत का एक टुकडा था तो मास के इस टुकडे को ज म देनेवाली माँ? वह एक बच्चे की मा नही, एक नफरत की माँ थी।

और मैं फिर अडोल-सा हो गया।

कोठरी मे एक खामोशी छा गयी थी।

यह खामोशी शायद बहुत भारी थी, पत्थर की शिला की तरह। इस को न मैं हटा सकता था, न वह।

पर मेरा खयाल गलत निकला, उस ने खामोशी की शिला तोडी और कहा, "मुझे पता था, एक दिन मुझे अग्निकुण्ड म नहाना होगा "

मैं ने कुछ हैरान होकर उस के मुह की तरफ देखा।

अचानक उस ने अपनी मिन्नत सी करती हथेली मेरे घुटने पर से हटा ली। और बडी शान्त होकर अपनी खटिया पर आराम से लेट गयी।

अब उस की आवाज भी शान्त और अडोल थी। उस ने सहज भाव से कहा, "कई बार लगता था कि सीता की तरह मुझे भी अग्नि परीक्षा देनी पडेगी '

लगा—यह बोल महन्त किरपासागरजी के उन बोलो के साथ मिलते थे—'तेरी माँ एक पुण्यात्मा है उसे कभी दोष न देना स्वय भगवान् ने सपने म उसे दशन दिये '

पर यह बोल शायद जान-बूझकर मिलाये गये थे। मुझे कभी भी भगवान् के इन दर्शनावाली बात पर विश्वास नही हुआ था। और लगा अब माँ भी अगले वाक्य मे इन दशनोवाली बात को दोहरा देगी

इनसान अपने किये को अपने हाथ मे न पकड सके, तो वडी सीधी-सी बात है कि वह भगवान् के हाथ म पकडा दे

पर उस ने कुछ नही कहा।

इस लिए मुझे, खुद, कहना पडा, "भगवान् ने सपने मे दशन दिये, सिफ यही कहने के लिए ?"

वह सचमुच हँस दी—"नही, मेरे लाल! मेरे ऐसे करम कहाँ थे कि भगवान मुझे सपने म दशन देते और कुछ कहते।"

लगा—दशनवाली बात महन्त किरपासागरजी ने मेरे मन को बहकाने के लिए बनायी थी।

और लगा—एक झूठ था, जो इस कोठरी मे पडी हुई खटिया पर से रेंगता रेंगता, एक मर हुए इनसान की समाधि तक पहुँच गया था।

पर मैं झूठ और सच को नितारना क्यो चाहता था? अपने पर एक खीझ-सी आयी। और लगा अगर यह लोग किसी झूठ पर कुछ खाड-सी लपेटकर मुझे खिलाना चाहते है, तो म इसे खा क्यो नही लेता? आखिर भगवान् के नाम को खांड की तरह पीसने के लिए इन बेचारो ने कितना कुछ किया है

'अग्नि-परीक्षा, कभी किसी पति की आज्ञा थी, आज पुत्र की आज्ञा है "

लगा—वह अपने आप से बातें कर रही थी।

फिर एक गुस्सा सा आ गया—झूठ को खिलाना भी जरूर है, पर दूसरे से

यह भी कहलवाना है कि यह बहुत मीठा है !

उस ने मेरे गुस्से को नहीं आना, कहती गयी,"मेरे ऐसे कम नहीं थे जो भगवान् मुझे दर्शन देते। मैं ने सिर्फ उस की आज्ञा मानी थी, जिस को मैं ने सारी उम्र भगवान् समझा। दर्शन उसे हुए थे, मैं ने सिर्फ उस की आज्ञा मानी।"

दरवाजे के पास खटका-सा हुआ। लगा, अब वह बिलकुल चुप हो जायेगी, क्योंकि अब उस का पति अन्दर कोठरी में आ गया था।

"हकीम से तेरे लिए एक और पुड़िया लाया हूँ" उस ने कोठरी में आते हुए कहा। और कहा, "हकीम ने कहा है कि आज का दिन कष्ट का है, अगर आज का दिन कुशलता से गुज़र गया तो"

'हाँ, आज का दिन ही कष्ट का था" लगा, वह हँस दी थी, और फिर उस ने अपनी चारपाई पर से, हाथ में दवा की पुड़िया लेकर, खड़े हुए, अपने पति के पैरों की तरफ अपना हाथ बढ़ाकर कहा, "मैं तेरे, अपने भगवान के, हाथों में इस दुनिया से चली जाऊँ, मुझे इस से ज्यादा कुछ नहीं चाहिए एक इस बेटे का मुँह देखने के लिए जान अटकी हुई थी, वह भी देख लिया अब मुझे शान्ति मिल गयी है" और हाथ के इशारे से उस ने पुड़िया खाने से इनकार कर दिया।

शाम का अँधेरा उतर आया था। और फिर लगा, जैसे वह सो गयी थी। मैं उठकर बाहर आ गया।

बाहर ओसारे में वह लालटेन की चिमनी पोंछ रहा था। उस ने एक बार मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मुझे प्यार-सा किया। लगा, हाथ कुछ झिझक-सा रहा था।

झिझक को समझ सकता था, पर हाथ की मेहरबानी को समझ नहीं सकता था। कुछ हैरान होकर उस की तरफ देखा। लगा, वह कुछ कहना चाहता था, पर फिर वह कोठरी की तरफ देखकर, चुपचाप लालटेन की चिमनी पोंछने लगा।

एक सन्देह-सा हुआ—जैसे वह सब कुछ जानता था। और मुझ से कहना चाहता था—मैं ने क्षमा कर दिया है, मैं, एक आम दुनियादार इनसान होकर, और तू उसे क्षमा नहीं कर सकता ?

मैं ने एक बार अपने वेश की तरफ देखा—सिर से पाँव तक मैं ने गेरुआ, भगवान के नामवाला, वेश पहना हुआ था। और लगा उस के सफ़ेद कपड़े मेरे वेश को एक उलाहना-सा दे रहे थे

एक बार फिर पलटकर देखा—वह ओसारे में खड़ा एक सफ़ेद कपड़े के टुकड़े से अब भी लालटेन की चिमनी पोंछ रहा था। चिमनी पता नहीं कब की धुआँयी हुई पड़ी थी, या कोई काला सा धब्बा चिमनी पर से उतर नहीं रहा था



यह कैसा अँधेरा है, कहीं खत्म ही नहीं होता

कोख का अँधेरा हर कोई झेलता है। पर उस का एक गिना चुना समय होता है। और वह जैसे-तैसे गुज़र जाता है। पर मेरा यह अँधेरा गुज़रता क्या नहीं? क्या समय मुझे अँधेरे की कोख में डालकर फिर निकालना भूल गया है? और मुझे, अँधेरे की कोख में पड़े हुए ही बरस पर बरस गुज़रते जा रहे हैं?

साई भगतराम एक दिन एक मूर्ख पण्डित की कथा सुना रहा था कि एक गाँव की स्त्रियाँ जब एक पण्डित से तिथि-त्योहार पूछने जातीं और मूर्ख पण्डित से जन्त्री न पढ़ी जाती, तो वह बहुत कच्चा पड़ जाता। आखिर उस ने सोच-सोचकर एक उपाय ढूंढा। मिट्टी की एक कुलिया रख ली, और पड़वा का दिन पूछ-पुछाकर, उस ने अपनी बकरी की एक मेंगनी उस कुलिया में डाल दी। दूसरे दिन एक और मेंगनी डाल दी, तीसरे दिन एक और। इस तरह रोज़ एक मेंगनी वह याद से उस कुलिया में डाल देता। जब कोई स्त्री तिथि पूछने आती, वह कुलिया की मेंगनी गिनता और उस के मुताबिक उस दिन की तिथि बता देता। कुलिया में एक मेंगनी होती तो पड़वा होती, दो होतीं तो दूज, तीन होतीं तो तीज... सो काम चलता गया। पर एक दिन पण्डितजी की कुलिया कहीं आँगन में पड़ी रह गयी, और आँगन में खड़ी बकरी ने जब मेंगनी की तो कुलिया मुँह तक भर गयी। अगले दिन एक स्त्री तिथि पूछने आयी, पण्डित ने कुलिया देखी तो मेंगनियों की गिनती ही न हो... स्त्री ने स्वयं ही कहा, 'होगी तो आज नौमी है।' पण्डितजी ने भी उस समय टालने के लिए कह दिया, 'है तो नौमी, पर अपार नौमी है।'

मन की हालत रुआँसी-सी है। पर यह हास्यास्पद बात याद आ गयी है। लगता है, समय भी एक मूर्ख पण्डित है। मेरी सारी अँधेरे दिनों की गिनती करता हुआ अपनी कुलिया को रात आँगन में ही रख गया था—और अब मेरी नौमी को अपार नौमी कहकर अपनी मूर्खता छिपा रहा है।

अपार अँधेरा।

और लगता है—कोख मे से निकलकर मैं सीधा मन्दिर की गुफ़ा मे आ गया हूँ और गुफा पता नही कितने सौ मील लम्बी है !

हर सवाल अँधेरे की उपज होता है—सिर्फ यह बात अलग है कि सवाल छोटा हो तो वह एक बालक की तरह घुटुएँ घुटुएँ चलता है, और रोता है, पर अगर बडा हो तो वह काली दीवारो को हाथो से टटोलता और उन से सिर पटकता है

कोख के अँधेरे मे मैं ने सिर्फ हाथ-पैर ही मारे होगे, मैं ने तो घुटुएँ चलना भी गुफा के अँधेरे म सीखा था, और अब मेरे माथे की जवानी गुफा की दीवारो से सिर मार रही है

अँधेरा उसी तरह है—सिर्फ सवाल बडे हो गये है—मेरे अगो की तरह



आज गले म पहना हुआ ढीला सा चोला भी मेरे अगो मे फँसता-सा लग रहा था।

अगो की गोलाइयो म जसे कुछ नोकें निकल आयी हो

कई बरस हुए, जब एक स्कूल म पढता था, एक दिन मेरा एक सहपाठी लडका हँसी-खेल मे मुझे एक लारी म बिठाकर पठानकोट ले गया था।

पठानकोट के खुले बाजारो म नही, सँकरी गलियो में। और वहा उन गलियो म औरतें ही औरतें थी—छोटी छोटी चाँदी की मुरकिया पहने स्कूल में पढती लडकिया जसी भी, और होंठो पर दन्दासा मलकर बैठी हुई बडी-बडी स्त्रियाँ भी, और दहलीजो म बैठकर हुक्का पीती बडी बूढ़ियाँ भी।

कही कोई मद नही था। जसे छोटी स्त्रियो को बडी स्त्रियो ने आप ही जन्म दिया हो।

हम दोनो लडके, स्कूल म पढ़ती उम्र के वहाँ खोये-खोये से लगते थे—या गुल्ली डण्डा खेलते अपनी खोयी हुई गुल्ली को ढूढ़ते-ढूढ़ते, वहाँ, उन गलियो म

पहुँच गये लगते थे।

बूढी स्त्रिया हुक्के की गुडगुड की तरह मुझे हँसती लगी थी। अभी यह खर थी कि मेरे साथी ने लारी मे चढने से पहले मेरे गेरुए चोले को गले मे से उतरवा कर अपनी एक कमीज और एक सफेद पायजामा मुझे पहना दिया था। उस का बन्दोवस्त वह पहले ही करके आया था। सुबह घर से आते समय दोनो कपडे अपने बस्ते मे डाल लाया था।

वह उन औरतो का कुछ वाकिफ भी लगता था। एक-दो को उस न "मा, राम सत" भी कही थी।

वे औरते और उन के हुक्के जसे मिलकर गुडगुड करने लगे थे।

मैं कमीज की बाह से शायद घडी-घडी माथे का पसीना पोछ रहा था, उस ने एक घर के मुहारो मे से गुजरते हुए, मेरी बाह को झटककर पकड लिया था, "ऐसे घबरायेगा तो तेरी वह लडकी भी तेरा मजाक उडायगी।"

"मेरी कौन ?"

अजीब शब्द था, शायद कही लग गया था, मेरी टागें कापने लगी थी। और फिर एक कोठरी सी मे पहुँचकर मैं हैरान परेशान एक लकडी के तख्तपोश पर बैठ गया था।

थोडी देर मे दो लडकिया आयी—एक ने सिर पर लाल चुनरी ओढ रखी थी, और एक ने गहरे काशनी रग की। लाल चुनरीवाली लडकी को मेरे दोस्त ने बाह से पकडकर अपने पास बिठा लिया। और काशनी चुनरीवाली ने आप ही मेरी बाह पकडी और फिर मेरे पास तख्तपोश पर बठ गयी।

फिर जसे मैं ने गाजे का एक लम्बा-सा घूट पी लिया हो—और मेरी साँस मेरे गले म अड गयी हो

वह काशनी चुनरीवाली लडकी मेरी बाह पकडकर मुझे पता नही कौन-सी और कोठरी म ले गयी थी। मैं वहा एक तख्तपोश पर निढाल सा पड गया था। शायद अँधेरा बहुत था—या उस ने अपनी चुनरी सारी कोठरी मे तान दी थी—मेरी आखो के आगे काशनी रग फैल गया था

रग काशनी भी था और गीला भी था

मेरा बदन उस रग म पता नही डूब रहा था कि तर रहा था, पर मेरे बदन की सारी हड्डिया कसी हुई थी, और मुझे लग रहा था जसे मेरी सारी हड्डिया उस रग मे घुस रही हो

कुछ पलो के लिए मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं अपनी हड्डियो के जोर से उस रग को ताड सकता था

पर रग गीला था। मेरी हड्डिया उस रग म फिसल रही थी

और फिर मुझे लगा कि मै रग की किसी गहरी खाई मे गिर पडा था। ऐस

ज़ोर से गिरा था कि शायद मेरे सारे अग टूट गये थे

अपना आप मास के एक ढेर की तरह लग रहा था।

फिर मास के ढेर म से मुझे एक अजीब-सी बू आयी।

बू से मेरे सिर को एक चक्कर-सा आया। एक चेतनता-सी भी हुई, कि मैं ने सारा ज़ोर लगाकर, जहाँ प गिरा हुआ था, वहाँ से उठना चाहा

उठने के लिए मैं ने हाथ मारे—मेरे हाथो को बडा कुछ छुआ—मास के अजीब अजीब टुकडे बहुत छोटे हाठो जसे भी, और बहुत पतने उँगलिया जसे भी।

और बडे गोल टुकडे, जिन्ह हाथ लगान पर मेरे हाथ काप गये थे।

काशनी रग अब पानी की तरह पतला नही था, गाढा होकर जम रहा था।

और फिर वह रग जब बहुत जम गया, हँसने लगा।

मैं ने जल्दी जल्दी अपने कपडे गले मे पहन लिय—शायद उस की हँसी से घबरा गया था।

यह सिफ बाहर रोशनी मे आकर देखा था कि मैं ने पायजामा उलटा पहन लिया था।

इस बात को बहुत साल हो गये हैं जब भी सोचा, अच्छी नही लगी।

कई बार यह भी सोचना चाहा कि यह मैं नही था, मेरे दोस्त का सिफ कमीज़ पायजामा था, जो लारी म बैठकर वहाँ गया था, पर वह कमीज़ पाय जामा गले से उतारकर भी सारे कुछ का दोप गले से नही उतार सका था।

फिर यह भी सोचना चाहा था कि इस म इतना दोप नही था। दोप सिफ सस्कारो म था। तो भी इस को दोहराने का कभी खयाल नही आया था।

यह खयाल सिफ आज आया था। आज गले मे पहना हुआ ढीला चोला भी अगो से अटकता लग रहा था। अगो की गोलाइयो म जस कुछ नोकें निकल आयी हो।

और मुझे लगा—आज मेरी हड्डियाँ किसी बौराये हुए बैल क सीगो की तरह तनी हुई हैं, जो किसी के पहलू म धँसना चाहती थी

गाव से बहुत दूर जाकर, गेरुए चोले को उतार दिया। कपडे की एक पोटली सी बाँधकर साथ ले गया था—धारीदार पायजामा, लकीरोवाली कमीज़ और सिर पर लपेटने के लिए एक लम्बा-सा अँगोछा

भेप बदल गया। लारी मे बैठकर सोचा कि वह मै नही था, वह एक भेप लारी मे बठा हुआ था

पर वहा पहुँचकर, किसी सँकरी गली की तग कोठरी म बठकर, जब किसी लाल या काशनी रग मे डूबना चाहा, उस के किनारे पर ही पैर अड गये।

अगो का सारा तनाव जसे अगो से निकलकर परो म आ गया था। पर जम-

कर खडे हो गये।

पैरो को देखना चाहा, दिखे नही। वह काल्पनिक फूलो के ढेर मे छिपे हुए थे।

"तू यह फूल क्यो लायी है ?" शायद मै ने बहुत गुस्से से कहा था।

कोठरी मे से एक सहमी सी आवाज आयी थी—"फूल कहा है ? यहा कोई फूल नही। मैं कोई फूल नही लायी हूँ।"

पर वहा फूलो का एक ढेर लगा हुआ था—इतना बडा कि मेरे दोनो पर उस म ढके हुए थे। मैं न अपने परो को देख सकता था, न हिला सकता था।

किसी ने उस कोठरी म मेरी सहायता भी करनी चाही थी, मेरी बाह पकड-कर मुझे वहा से हिलाना चाहा था, शायद बैठाना चाहा था, शायद कही ले जाना चाहा था

पर दोनो परो के ऊपर कोई हथेलिया भी छू रही थी

और पैर उन हथेलियो की छुअन से शायद मूर्च्छित हो गय थे

मूर्च्छित पैरो को शायद आग नही बढा सकता था, पर पीछे घसीट सकता था।

घसीट-घसाटकर फिर अपने डेरे म लौट आया हूँ।

अगो की गोलाइयो से सभी नोके झड गयी है और मेरा गरुआ चोला सहम-कर मेरे गले से लगा हुआ है।

सारा बदन सूखा है—किसी रग मे नही डूबा। और शायद इसी सूखेपन को पवित्रता कहते है

पर पर सीले है। शायद बहुत देर गीले फूलो के ढर म पडे रहे थे, इस-लिए।

या शायद पैरो की आखो मे आसू आ गये है

सुन्दरा सुन्दरा जादूगरनी! आज तू न यह मेरे साथ क्या किया है?

यह 'क्या' मेरी देह से बाहर है, पर फिर भी मरी देह के अन्दर है

स्कदपुराण म क्या कथा आती है कि सूरज की एक पुनी छाया क गभ से पैदा हुई। क्या सूरज के भोग के समय भी छाया का अस्तित्व कायम रहा था? जरूर रहा होगा, नही तो उस का नाम छाया कसे होता।

तो सूरज के सम्मुख हाकर भी छाया का अस्तित्व सम्भव है? मैं ने सुन्दरा को त्यागा था, पर उस का अस्तित्व इस त्याग के सामने भी खडा है

कुछ रिश्ते कसे होते है, जो हर हाल म रहते हैं। स्वीकृति मे से जन्मते, क़ायम रहते, ठीक था। पर यह अस्वीकृति मे से भी जन्म ले लेते है, और सिर्फ जन्म नही लेत, इनसान की उम्र के साथ भी जीत है, और उम्र के बाद भी जीते है

ब्रह्मववत पुराण की एक कथा याद आयी है—विष्णु को शखचूड की स्त्री तुलसी का सत भग करना था, इसलिए एक दिन उस ने शखचूड का रूप धारण किया और तुलसी के साथ भोग किया। तुलसी को जब इस छल का पता लगा, उस ने विष्णु को शाप दिया कि वह पत्थर हो जायेगा। विष्णु ने भी उसे शाप दिया कि उस के सिर के बाल तुलसी का पौधा बन जायेंगे। और उस का शरीर गण्डका नदी बन जायेगा। गण्डका नदी म से अब तक जो पत्थर मिलते हैं, वे विष्णु का रूप हैं—शालग्राम। वह रिश्ता अब तक कायम है। यहा तक कि लोग कार्तिक की अमावस को तुलसी की पूजा करते, तुलसी के पौधे का और शालग्राम का विवाह रचाते हैं

यह कसे शाप थे जिन्होने वर का रूप धारण कर लिया ? सुदरा का त्याग पता नही वर था, कि शाप ! पर जो कुछ भी था, वह कायम है। मेरी देह से बाहर है, पर फिर भी मेरी देह के अदर है

शायद वरदान और शाप भी सूरज और छाया की तरह एक ही समय, एक ही जगह, इकटठे रह सकते हैं

पृथ्वी का नाम, जिस राजा पृथु के नाम से पडा, उस का जम उसके मरे हुए पिता वेणु की दायी जाघ मे से हुआ था—वेणु धार्मिक राजा नही था, इस लिए ऋषियो ने कुश के तिनको से मार मारकर उसे मार दिया, पर राज-काज के लिए आखिर किसी की जरूरत थी, इस लिए मरे हुए वेणु की एक जाघ को मलना शुरू किया। पर उस जाघ म से जिस बालक ने जम लिया वह बहुत भयानक शक्ल का था, उस को राज्य नही सौंपा जा सकता था। इस लिए ऋषियो ने फिर मरे हुए राजा की दायी जाघ को मलना शुरू किया। इस दायी जांघ म से एक प्रकाश से चमकता बालक ने जम लिया, वही बालक पथु था

इनसान की एक जाघ म यदि भयानकता वास करती है तो दूसरी जाघ मे अनत सौदय। ख न के एक ही चक्कर मे वर भी, शाप भी

सुदरा कही नही, पर है



मंदिर के पासवाले जंगल के पिछवाडेवाली खड्ड आज धुंध से नाका-नाक भरी हुई है। धुंध इतनी गाढी और जमी हुई लगती है, लगता है—अगर मैं उस पर पैर रखकर चलूं, तो अडोल खड्ड के परली तरफ पहुंच सकता हूं।

पेडो की काली नीली और हरी परछाइयां खड्ड की धुंध पर बडी स्थिरता से लेटी हुई है। सिर्फ किसी किसी वक्त हिलती और करवट लेती सी लगती है।

पिछले दिनो एक यात्री यहां आया था। पता नही, कौन था? सिर्फ एक रात का बसेरा करके, आगे कुल्लू की पहाडियों की तरफ़ चला गया। कहता था फिर वापसी पर आऊंगा। अभी आया नही, पर आयेगा क्योंकि भार हलका करने के लिए किताबों का एक गट्ठर अमानत छोड गया है।

सिर्फ यही नही, अपनी याद भी छोड गया है, आज बार बार उस की याद आ रही है।

जिस दिन आया था, उस दिन दूर-पास कही धुंध नही थी, पर जब मैं ने उसे पूछा कि वह किस शहर से आया था, तो उस ने हंसकर कहा था, "धुंध-वाले शहर से।"

पूछा था कि वह शहर कहां है तो हंस पडा था—'हर शहर धुंधवाला शहर है" और उस ने जरा ठहरकर कहा था, 'हमारी दुनिया मे वह कौन-सा शहर है, जो धुंधवाला शहर नही।'

मैं ने चारों तरफ देखा था और दूर धौलाधार की पहाडियो की तरफ भी। वह मेरे प्रश्न को समझकर हंस पडा था, और उस ने कहा था, 'पत्थर हर जगह दिखते हैं पर इस धुंध मे इनसान को इनसान का मुंह नही दिखता।

मैं ने एक बार उस की तरफ देखा था, फिर अपनी तरफ जैसे पूछ रहा होऊं, क्या तुझे मेरा मुंह नही दिखता?

वह कुछ देर चुप रहा था, फिर धीरे से उस ने कहा था, 'जो मैं यह कहूं कि मुझे तेरा मुंह नही दिखता, सिर्फ तेरा जोगिया वेश दिखता है, फिर?"

मुझे यह लालच नही था कि मेरा मुंह उसे दिखे, और इस मुंह के पीछे मैं'

हूँ वह भी उस का नजर आऊ, इस लिए मैं ने भी हँसकर कह दिया, "चलो, मुह की पहचान न सही, जोगिये वेश की ही सही, क्या यह पहचान के लिए काफ़ी नही है?"

'जिस हिसाब स दुनिया चल रही है, उस हिसाब से काफी है," उस ने कहा था और बरामद क एक कोन म कम्बल बिछाकर चुपचाप लेट गया था।

शाम का हलका-सा अँधेरा था, देख सकता था कि अभी वह सोया नही था। उस क हाथ के पास एक दीया और एक पानी का कटोरा रखकर, एक बार ग़ौर से उस के मुह की तरफ देखा था। मुह के बारे म कुछ और नही सोच रहा था, सिर्फ यह कि आज तक के देखे हुए चेहरो म वह कुछ अलग-सा लग रहा था, और उसे कुछ घडिया के लिए मैं अपने ध्यान म रखना चाहता था—जसे कोई विलक्षण फूल तोडकर कुछ घडियो के लिए उसे अपने सिरहाने के पास रख ल।

पीठ मोडन लगा था, जिस वक्त उस ने कहा था, "जोगिये वेशवाली बात का गुस्सा मत करना, दोस्त!"

' हँसी आ गयी थी, इस लिए जवाब दिया था, "जोगिये वेश को तो गुस्सा शोभा नही देता" पर साथ ही ध्यान आया था कि वह ऋषियो की जबान ही होती थी, जो बात-बात म क्रोधित हो उठती थी और शाप दे देती थी।

इस लिए एक गहरी साँस लेकर यह भी कह दिया, "क्रोध करेगा तो जोगिया वेश क्रोध करेगा, मैं क्या करूँगा?"

वह कधो पर तानी हुई गरम चादर को, हाथ से परे करके, कम्बल पर बठ गया, और कहन लगा 'यह बात तू ने बढिया कही है। खुश होत हैं तो वेश ही खुश होते हैं, क्रोध करत है तो वेश ही क्रोध करत हैं, इनसान हैं ही कहाँ? अगर कही हैं भी तो मुझे तो धुंध म दिखत नही "

फिर वह खिलखिलाकर हँस पडा और कहने लगा, "सारी दुनिया कपडो म बँटी हुई है, वेशो म—फटे हुए चीथडावाले कामकाजी मजदूर, अधमल कपडोवाले छोटे छोटे दुकानदार, चमकते कपडोवाले बडे-बडे दुनियादार ' और मेरा हाथ पकडकर मुझे भी अपने कम्बल पर बिठाते हुए कहने लगा, 'और कमख्वाब पहननेवाले राजा और मत्री इस लोक के रक्षक और गेरुए वस्त्रोवाले परलोक के रक्षक।'

मेरे कधे पर उस ने जोर से एक हाथ मारा और फिर कहा, 'और तो और, धरती के टुकडे भी वेशो स ही पहचाने जाते है—अपने-अपने झण्डो से। और उन धरती के टुकडो की रखवाली भी इनसान नही करते, वर्दियाँ करती है अगर इनसान कही होते, तो लडाइयो की क्या जरूरत थी भला कही सचमुच का इनसान सचमुच के इनसान को मार सकता है? यह सब वर्दियो और वेशो की लडाई है, झण्डो की लडाई ' उसे एक साँस सी चढ़ गयी थी। जसे साँस बहुत

बडी थी और छाती बहुत छोटी थी। और लग रहा था—कपड़ों का वश तो क्या उस की रूह को उस के बदन का वश भी तग लग रहा था

'तू कोई भगवान् को पहुँचा हुआ इनसान लगता है' मै ने उस की पीठ पर थपकी-सी मारी थी, और उस के कन्धों से उतरी हुई चादर उस के कन्धों पर ओढ़ा दी थी।

वह हँसा नही, बल्कि कुछ उदासीन सा हो गया और कहने लगा, 'भगवान के पास तो किसी फुरसत के वक्त पहुँच लेंगे। पहले अपने आप के पास पहुँच ले इस धुन्ध में भगवान तो क्या दिखना है अभी किसी को अपना मुह भी नही दिखता'

कुछ कहने के लिए मचल-सा गया था। मैं नही, शायद मेरा गेरुआ वेश मचल गया था। पर अपने वेश का मैं ने स्वय ही चुप-सा करवाया और वहा से उठ बैठा।

सुबह मक्की की रोटी और गुड की डली मैं ने जब उस को जाते हुए उस के पल्ले से बाँध दी, उस ने अपनी गठरी-पोटली को जरा हाथ से तोला, और फिर कुछ किताबो का भार उस से हलका करके, गठरी और पोटली उठा ली।

'यह मेरी अमानत। फिर जब इस राह से गुजरूँगा, ले लूगा' उस ने कहा था।

"पर जो सीने मे डाला हुआ है और मस्तक मे भी, वह भी तो बहुत भारी है," मुझे हँसी-सी आ गयी थी।

'उस ज्ञान के लिए ही तो इस शरीर की जरूरत है नही तो यह शरीर क्यो सँभाले फिरना था।" वह हँस पडा था।

बहुत-से यात्री जाते है जाते हैं। पर जो भी आते है मन्दिर की नदी मे से पानी के चुल्लू भरते, जैसे नदी को कुछ रीता ही करते हैं। पर वह जब हँसा था, मुझे लगा—उस की झरने जैसी हँसी नदी के पानी मे मिलकर, नदी को और भर गयी थी।

कहा कुछ नही, सिर्फ जाते समय यह पूछा, "इन पुस्तको को बाँचने का हक वर्जित तो नही?"

उस के, जाते हुए के, पाँव पल भर को ठहर गये थे। उस ने गौर से मेरे मुह की तरफ देखा था—जैसे किसी धुन्ध की तह मे से मेरे मुह को ढूढ रहा हो। 'ज्ञान का धारण करना, शिवजी की तरह गगा को धारण करने के बराबर है,' उस ने कहा और मुसकरा दिया।

पुराणो मे गगा के बारे मे जो प्रसग आते हैं, उन की जगह, जो तेरा यह कथन प्रसग बनकर आता तो बहुत अच्छा था।' अनायास ही मेरे मुह से निकला।

"पुराणो म क्या प्रसग आते है ?" उस ने पूछा ।

"कई आते है," मैं न जवाब दिया, "जिन म से एक यह है कि यह वामन अवतार के परो का जल है । जब वामन का पर ब्रह्मलोक तक पहुँचा, तब ब्रह्मा ने उस का पर धोकर उस को कमण्डल ने डाल लिया, और भगीरथ की प्रायना पर ब्रह्मलोक से छोड दिया । शिवजी न उस जल को जटाओ म सँभाल लिया, और फिर जटा खोलकर उस जल को पृथ्वी पर छोडा तो वही जल 'गगा' कहलाया ।"

"और ?" उस ने फिर पूछा ।

"और वाल्मीकीय रामायण मे आता है कि हिमालय पवत के घर मेनका के उदर से गगा और उमा दो बहनें पैदा हुई । एक बार शिव ने अपना वीय गगा म डाल दिया । गगा उसे धारण न कर सकी, और गभ को फेंककर ब्रह्मा के कमण्डल मे जा रही । फिर भगीरथ की प्रायना पर कमण्डल से निकलकर पृथ्वी पर आयी "

"काफी दिलचस्प कहानियाँ है।" वह जोर से हँसा, और कहने लगा, 'शायद इन कहानियो मे ही गगा को नान का चिह्न कहा गया है "

"गगा को कि शिवजी के वीय को, जिसे गगा धारण न कर सकी ? किसी ज्ञान को गभ म धारण कर सकना ही तो मुश्किल था "

मैं न जब कहा तो हम दोनो इस तरह हसे, जसे हम दोनो स्पष्टता और अस्पष्टता के बीच म खडे खडे खोये हुए लग रहे थे ।

यह बात अलग है कि दूसरे पल वह चला गया, और उस के जाने के बाद भी मैं कितनी ही देर तक वहाँ खडा रहा।

उस दिन धुध नही थी, पर आज मन्दिर के पासवाले जगल के पिछवाडे खड्ड मे धुध भरी हुई है

वसे जिस धुध की बात उस ने की थी, वह उस दिन भी थी, आज भी है, और शायद हमेशा होगी

सिफ यह कह सकता हूँ कि आज धुध दोहरी है

पर यह दोहरी धुध पता नही कसी है—गाढी, सफेद, और बफ की तरह जमी हुई—कि पेडो की काली, नीली और हरी परछाइयो की तरह । किसी के यहाँ होने की परछाई भी इस पर अडोल पडी लगती है

यह पता नही मेरे वजूद की परछाई है कि उस यात्री के रूप मे किसी ज्ञान के वजूद की परछाई



आज लगता है—उस यात्री को मैं ने बहुत नज़दीक से देखा है। उसे भी और अपने आप को भी।

उस की अमानत किताबों में से एक किताब मैं ने पढ़ी किताब का हर पन्ना जैसे शीशे का एक टुकड़ा था। प्रत्यक्ष अपनी सूरत भी नज़र आती रही, और अपनी कल्पना में पड़ी हुई उस यात्री की सूरत भी।

आम शीशे में और किसी रचना के शीशे में शायद यही अन्तर होता है

किताबवाली कहानी का पात्र जापान का कोई स्कूल मास्टर है एक दिन अगस्त के महीने में वह अलोप हो जाता है सब को यही पता है कि वह समुद्र के किनारे छुट्टियां मनाने गया है। उस शहर से समुद्र का किनारा सिर्फ आधे दिन के सफ़र के फ़ासले पर है। और फिर उस की कोई खबर नहीं मिलती। अखबार के द्वारा भी उस की पड़ताल होती है, और पुलिस द्वारा भी, पर कोई सुराग नहीं मिलता।

लोगों का सब से पहला ख़याल जिस बात पर जाता है, उस बात का सिरा सिर्फ औरत से जुड़ता है। पर उस की बीवी लोगों को यकीन दिलाती है कि लोगों की कल्पना की औरत कहीं कोई नहीं। इस लिए वह सिरा उस कल्पना से भी खुल जाता है, और सिर्फ हवा में लटकता रह जाता है।

इतना सा सब को पता है कि वह जब समुद्र के सफ़र के लिए घर से निकला था उस के हाथ में एक खाली बोतल थी, और एक छोटा सा जाल। कीड़ों की नयी किस्म ढूंढने में उस आदमी की दिलचस्पी थी। इस लिए एक खाली बोतल और एक छोटा-सा जाल ही उस के हथियार हो सकते थे।

और फिर जब गुमशुदा आदमी को खोये हुए सात बरस गुज़र जाते हैं तो सिविल कोड के सेक्शन तीस के मुताबिक उसे मृत कह दिया जाता है।

पर मौत के जाने पहचाने अर्थों से अलग भी मौत के अर्थ होते हैं वह समुद्र के पास एक गाँव में पहुँचकर जब गांव की खत्म होती सीमा से आगे बढ़ता है—धरती उसे सफ़ेद-सी और बिलकुल सूखी सी नज़र आती है। वह वीरानगी फिर

रेतीली जमीन बन जाती है। पर रेत म समुद्र की गध मिली होती है, इस लिए वह माथे का पसीना पोछकर चलता जाता है। फिर एक बहुत ही अकेला सा गाव उसे दिखता है—आलुओ की कुछ खेती हुई भी दिखती है, पर सफेद रेत का प्रसार फिर भी खत्म नही होता लगता। और एक अजीब बात यह कि रेत की सडक कदम-बकदम ऊँची होती जाती है—हालाकि समुद्र की तरफ जाती सडक कदम-बकदम नीची होती जानी चाहिए थी। वह एक बार जेब मे डाला हुआ नक्शा खोलकर देखता है, राह जाती हुई एक लडकी को कुछ पूछता है, पर जवाब नही मिलता। किसी किसी जगह सीपियो के ढेर और मछलियां पकडने के जाल दिखते हैं, वह उन से भी एक तसल्ली सी ढूढता है, और चलता जाता है। और फिर एक और अजीब बात कि सडक के आसपास बने घर सडक से ऊँचे होने चाहिए थे, पर वह दोनो तरफ सडक स नीचे हैं—रेत के अम्बारो म डूबे हुए। और फिर अचानक आती एक उतराई के बाद उसे झागो झाग समुद्र दिखाई देने लगता है। यहां रेतो के डब्बो पर ही उसे गरमामूली कीडे ढूढने थे।

रेत का हिलता प्रसार उसे बडा दिलचस्प लगता है—सरकता, रेंगता, जसे कोई जीती जागती और बेचन रूह हो।

रेत उस के पैरो के नीचे भी हिलती है, और उस के पर चौककर रेत के कानून की ओर देखते हैं

कुछ बूढ आदमी कुछ घबराये हुए से उसे सरकारी आदमी समझते है, पर वह विश्वास दिलाता है, कि वह एक साधारण स्कूल मास्टर है। रात बिताने के लिए वह कोई जगह पूछता है तो एक जना उसे मदद का विश्वास दिलाता है। शाम ढल जाती है। उसे कीडो की कोई खास किस्म नही मिलती, और वह थककर अपनी तलाश कल पर छोड देता है।

रात बिताने के नाम पर उसे सडक पर उतरती एक गहरी खाई म बना हुआ एक घर मिलता है। रस्सी की मदद स वह घर की छत पर उतरता है। घर का रास्ता दिखाने आया हुआ बूढा लौट जाता है। वह घर की छत पर ढेर सारी गिरती रेत को देखकर परेशान होता है, पर यह तजरबा सिर्फ एक रात का सोचकर वह धीरज बाध लेता है।

रस्सी का घर की छत तक लटकाते समय बूढे न आवाज दी थी—"नानी, किवाड खोलो!" पर यह यात्री घर की दहलीज पर जिस औरत को देखता है, उसकी जवानी अभी ढली नही होती। हाथ म लालटेन पकडे वह उस का स्वागत करती है।

"इस कोठरी म एक ही लालटन है, अगर तू अंधेरे म बैठ सके, तो मैं पिछवाडे बैठकर तेरे लिए कुछ रांध लू," औरत कहती है।

"मैं कुछ खाने स पहले नहाना चाहता हूँ," वह जवाब देता है।

औरत हैरान-सी होती है, फिर कहती है, 'जो तू परसों तक इंतज़ार कर सके, नहाने का इंतज़ाम हो जायेगा।"

'पर मैं ने यहाँ सिर्फ एक रात रहना है ' वह जवाब देता है, और हैरान होता है कि औरत ने उस की बात सुनी-अनसुनी कर दी है।

खाने के लिए उस मछली का सूप मिलता है, पर औरत जब उस की थाली पर कागज़ की छतरी तानती है, वह हैरान होता है तो वह बताती है कि यहा रेत इस तरह उडती है कि अभी सूप का प्याला छतरी के बिना रेत के कणों से भर जायगा। और वह बताती है कि हवा का रुख जो इस ओर हो तो सारी रात उस छत पर से रेत उतरनी पडती है नहीं तो दूसरे दिन तक सारी कोठरी रेत में दब ही सकती है।

उस का बदन थोडी देर में चिपचिपा हो जाता है और उडती रेत, उस के गले में नाक में और आँखों में एक तह की तरह जमने लगती है।

दूसरे दिन सवेरे-सवेरे बाहर दूर से बहुत ऊँचाई से आवाज़ आती है और रस्सी से एक आदमी के लिए नहीं, दो आदमियों के लिए कुछ खाने का सामान नीचे उतार दिया जाता है। अजीब से शक उस की आँखों के आगे रेत के कणों की तरह घूमते हैं, पर उस की समझ में कुछ नहीं पडता। औरत लगातार एक फावडे से दरवाज़े के सामने से रेत को हटाने में लगी हुई है।

'मैं ज़रा हाथ बटाऊँ?' वह औरत से पूछता है।

पर औरत जवाब देती है 'पहले दिन ही तुझे इतनी तकलीफ दूँ? नहीं पहले दिन नहीं—" वह परेशान होता है, फिर भी उस के हाथ से फावडा पकड कर उस की मदद करना चाहता है। औरत कहती है 'अच्छा, जो तुझे आज ही काम पर लगना है तो तेरे हिस्से का फावडा उन्होंने भेज दिया है, वह ले ले।"

'वह कौन ?" अजीब परेशानी है। वह वहाँ से उलटे पाँव ही चला जाना चाहता है पर बाहर की सडक तक पहुँचने के लिए रेत की चढाई किसी तरह भी पार नहीं की जा सकती

वह रेत का कैदी होकर रह जाता है

गाँव के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए सारी रात रेत को बुहारने का काम ज़रूरी है और इस काम के मज़दूर सिर्फ रेत बुहारते है। और उस के बदले गाँव के मुखिया उन्हें सूखी मछली, कुछ आटा और कुछ पानी रस्सियों से उतारकर, उन तक पहुँचा देते है

'इस का मतलब है कि तुम कुछ लोग सिर्फ रेत बुहारने के लिए जीते हो ?' वह परेशान होकर पूछता है।

'हाँ, सिर्फ रेत बुहारने के लिए। यह गाँव तभी बना रह सकता है। जो हम यह काम छोड दें तो दस दिनों में सारा गाँव रेत के नीचे दब जायगा—" औरत

बताती है, और उस का दार्शनिक मन सोचता है कि रेत के इस कानून के आगे शायद कुछ भी नही हो सकता। बडी बडी बादशाहतें भी वक्त की रेत म दब जाती ह—पर अस्तित्व क्या है ? शायद पानी के अथाह सागर मे पानी को बुहार-बुहारकर एक निश्चल स्थान बनाने का यत्न

उस की निराशा उस के गले मे अटक जाती है, वह रेत की दीवार पर चढ कर रेत की इस कब्र म से निकल जाना चाहता है पर

इस 'पर' का जवाब कही नही

"उन्होंने मुझे, यहां, तेरे पास, रेत का कैदी क्यो बनाया?" वह हारकर कुछ दिनों बाद उस औरत से पूछता है।

"इस लिए कि मैं अकेली थी, यहा मुझे रेत भी खा जाती, और अकेलापन भी," औरत बताती है।

"पर उन्होंने मुझे कोई कुत्ता या बिल्लो समझ लिया था कि जो भी औरत मेरे सामने आ जायेगी " वह गुस्से मे खौल जाता है।

पर गुस्सा भी आखिर रेत की तरह नाडियो म जम जाता है। जब समय गुजरने लगता है तो उस के जिस्म की निराश भूख उसी औरत के जिस्म म से हडबडाकर कुछ मागती है

कोई चीज मजबूर करती नही लगती, सिर्फ रेत ,औरत पर आया हुआ उस का गुस्सा आखिर रेत के कणा की तरह रेत म मिल जाता है

वह रेत की कब्र मे है, पर फिर भी रेत बुहारता है

फिर और कुछ नही, सिर्फ सासो का चलते रहना ही जरूरी लगने लगता है

और जिन्दगी के अर्थ बन जाते है, माजुन की, पसीने की, और रेत की गन्ध म भीगे हुए बदन, और उन म सासो को चलाये रखने का निरन्तर यत्न

जिन्दगी की हकीकत को मैं ने इतने नग्न रूप मे कभी नही देखा था। किताब खत्म हो जाती है, कहानी फिर भी चलती जाती है

इस दुनिया म कौन है जो इस कहानी का पात्र नही ?

हम सब रेत बुहार रहे है। यह बात अलग है कि कोई हल-फावडा लेकर इस रेत को उठाता है, कोई तराजू लेकर, और कोई कलम-दवात लेकर मरे जैसे कुछ लोग पूजा-पाठ के फावडे से रेत बुहारते हैं पर साधन बदलने से कुछ नही बदलता, रेत रेत है

सपनो के नाम पर हम—सारे जो कुछ सोचते हैं, हर आज के बाद, उस को बात हर कल पर डालकर, चलते चले जाते हैं

और यत्न के नाम पर जो कुछ करते हैं

(इस कहानी का पात्र फिर याद आ गया है—गले के कपड़े उतारकर और उन की रस्सी बट बटकर, उ। न सहारे कहीं से निकलन और छूटने का उस का यत्न) उन यत्नों के पदचिह्न भी उड़ती रेत से बहुत जल्दी मिट जाते हैं .

और वसीयत के नाम पर हम जो कुछ चीखते हैं पुने गले में उड उड़कर पड़ती रेत आखिर उन चीखों को भी हमारे गले में बन्द कर देती है

कुछ नहीं बनता। कभी भी नहीं बनता। सूखती घास जैसे कुछ बीज धारण कर लेती है, इनसान भी अपनी हड्डियों की मूठ, किसी और मांस में लपेटी हड्डियों की मूठ के साथ जोड़-जोड़कर अपने अस्तित्व के बीज इस धरती पर छोड़ जाता है



मैं महन्त किरपासागरजी के अस्तित्व का बीज हूँ, चाहे घूरे पर पड़ा हुआ—पर हर बीज को मिट्टी की मेहरबानी जरूर स्वीकारनी होती है, फलना भी जरूर होता है, फूलना भी

अपने बदन में से उगती माया का मैं कुछ नहीं कर सकता

इ हूँ जो नफरत के कड़वे फल लग जायें, तो भी मैं कुछ नहीं कर सकता

यह बीज की बेबसी है।

अपनी सूरत के बारे में चर्चा होती मैं ने सुनी है (मेरी सूरत का किसी भी तरह महन्त किरपासागरजी की सूरत से मिलाकर नहीं)। शिवजी के वर्ण के साथ मिलाकर, दूध और केसर के रंग से मिलाकर, या दूध और मधु के रंग से मिलाकर

रंगों को भी शायद शौक होता है भुलावा डालने का। जो सिर्फ किसी रंग की उपमा में किसी को विरह लिखना हो, तो मेरा खयाल है वह सब से पहले सर्प-फली की उपमा में कोई विरह लिखेगा। उस के जितना सुन्दर रंग किसी फल का नहीं होता। उस के रंग में जैसे आग जलती होती है। पर इसी सर्प फली

का दूसरा नाम मौत फली है। इस को बस होठो से छुआने की देर होती है

आम मिट्टी म से उगने वाली जडी-बूटियो का जहर होठो को चढती है, पर इनसान के मन म से उगनेवाली जडी-बूटियो का जहर आंखो को भी चढता है, माथे को भी चढता है, सासो को भी चढता है, खयालो को भी चढता है, और सपना को भी चढता है

कभी-कभी नदी की आवाज म से अचानक महन्त किरपासागरजी की आवाज उभर आती है—कसूर मेरे काना का है, आवाज का नही—पर फिर भी ऐसे लगता है जसे वह आवाज मेरे कानो से मजाक सा करती हो

वसे सोचना चाहता हूँ कि मरे कान उस आवाज से मजाक करत हैं। पर पता है, यह सच नही। शायद कभी हो जाये पर अभी नही। अभी तक यही सच है कि यह आवाज

यह सब कुछ शायद इसलिए कि उन की आवाज म कुछ खास तरह का 'कुछ' था—नदी के पानी की तरह, हलका सा होते भी बडा भारी, और अपने जोर से बहता। कोई पत्थर, ककड, पत्ता या हाथा का मल उस म फेंक भी दे, तो उस से बेपरवाह उसे बहाकर ले जाता, या परो मे फेंककर उस के ऊपर गुजर जाता।

पानी के बहाव की शायद सिफ आखें होती हैं, कान नही होते। उन की आवाज भी एक सीध मे चली जाती थी इर्द गिद की बातो को सुनकर कभी खडी नही होती लगती थी। साधु डेरे भी, घर गृहस्थी की तरह, झगडो बगडो और निन्दा चुगली से बसते है—चाहे इन की दीवारो पर भी लगते हैं। पर महन्त किरपासागरजी की आवाज के बारे मे म यह जरूर कह सकता हूँ कि वह नदी के वेग की तरह, इस सब कुछ को बहाकर ल जाती और उन्हे आख भरकर देखती भी नही थी।

यह आवाज दो तरह की थी—एक भारी और वगवती, और दूसरी बहुत सूक्ष्म, उदास और पवन की तरह पवन म मिलती तथा अपने अस्तित्व का सबूत भी चुराती।

पहली तरह की आवाज एक खास तरह के प्रभाव को लेकर चलती थी, पर दूसरी तरह की बिलकुल बेपरवाह होकर।

कोई जब भी बात करता है, सिफ पहली तरह की आवाज की ही बात करता है। शायद वह प्रत्यक्ष थी इस लिए। और शायद लोगा की अपनी हस्ती उस के प्रभाव के नीचे झुक जाती थी, इस लिए। पर मेरे लिए इस तरह नही। सोचता हूँ—बाहर दिखते बोझ को कोई हाथ स अपने ऊपर स उतार सकता है, पर वह जो दूसरी क़िस्म का कुछ होता है, जो सांसो म मिलकर छाती म उतर

जाता है, उस का क्या करे !

मंदिर के साथवाले जंगल मे, यह दूसरी तरह की आवाज मैं ने कई बार सुनी थी। वह अकेले, रात-प्रभात, कभी उस जंगल में खो गये लगते थे—आवाज को भी शायद, जंगल की 'शा शा' में मिलाकर, खो देना चाहते थे—एक ही बोल होता था जो बार-बार होठों से झडता था—"मुद्दतें गुजर गयी बेयार ओ मददगार हुए।"

यह बोल उन के होठों से पीले पत्ते की तरह झडता था, फिर होठों पर हरे पत्ते की तरह उगता था, और फिर होठों से पीले पत्ते की तरह झडता था

पंजों के बल चलकर मैं ने कई बार इस आवाज का पीछा किया था। अपने कानों की इस चोरी से मुझे कोई उलाहना नहीं। सिर्फ कई बार ऐसे होता था कि मेरे कान बहुत दर्द करने लगते थे और लगता था कि एक नफरत मेरे कानों में पीप की तरह भर जाती थी

पता नहीं, यह असली अर्थों में नफरत थी या नहीं। यदि थी तो इस से बचने के लिए मैं बड़ी आसानी से यह कर सकता था कि कभी वह आवाज न सुनता। एक बेपरवाही की रुई कानों में दे सकता था। पर मैं तो उस आवाज का पीछा करता था, वह मुझे बुलाती नहीं थी, पर फिर भी पंजों के बल चलकर मैं उस के पीछे जाता था। उस के बिना कानों को जैसे एक बेचैनी सी होती थी।

आज आवाज कोई नहीं, पर उस की कल्पना अभी भी बाकी है। वही उस मरी हुई आवाज को फिर से जीवित कर देती है। और फिर वह सिर्फ मेरे कानों तक सीमित नहीं रहती, कई बार मेरे होठों तक भी आ जाती है। होठ उस के भार के तले हिलने लग पड़ते है, और हिलते हिलते खुद एक आवाज-सी बन जाते हैं—मुद्दतें गुजर गयी बेयार ओ मददगार हुए

किसी साइं फकीर ने कहा है

कुन फिकुन जदों कीतो ई
कीतिया नी जोरावरिया
जुज़ अपनी तो जुदा कीतो ई
तेरिया कीतिया मत्थे धरिया[1]

उस साइं-फकीर ने भी शायद यही एकाकीपन भोगा था, जो महंत किरपासागरजी ने बेयार मददगार होते हुए भुगता था

कुन फिकुन—मैं एक से अनेक होऊँ—

पता नहीं किस अपार शक्ति को यह खयाल आया ? सब छोटे छोटे टुकड़ो

---

1 तुम ने जब कहा कि मैं एक से अनेक हो जाऊं तब तुम ने हम से जबरदस्ती की। तुम ने हमें अपने से अलग कर दिया और तुम्हारा किया हमें स्वीकार करना पड़ा।

म वँट गये थे—एकाकीपन के टुकडो मे।

महन्त किरपासागरजी का अस्तित्व भी एकाकीपन का एक टुकडा था—और उस टुकडे ने शायद बिलकुल मिट जाने को खौफ म से एक और टुकडे को जन्म देना चाहा था—मुझे।

किसी के वजूद पर लादी गयी किसी की मरजी

मुख उन से नही, उन की इसी मरजी से नफरत है

अपना आप नाजायज लगता है, शायद इस लिए यह नफरत जायज लगती है



आज वह आया था—वही दीनानाथ। कपडे साधारण थे, घर के धुले हुए थे, साफ-सुथरे, पर उस के सिमटे हुए अगो से लगकर कुछ सिकुडे-से लग रहे थे, उस के मुह की तरह दीन-से लग रह थ, और उस के मुख से निकली बात की तरह झिझकते से, और गुच्छा से होते

उस के गले मे कोई अगोछा सा था और उस अगोछे की कन्नी वह अपने हाथ से ऐसे मरोड रहा था, जसे अभी भी एक कपडे के टुकडे से लालटेन की चिमनी पोछ रहा हो

पता नही उस दिन उस को चिमनी पाछते हुए देखकर उस का किस तरह का मुह ध्यान मे अड गया था। लगा, वह कई बरसो से एक चिमनी को पाछ रहा है

वह वडे एकान्त के समय आया था। यह शायद सयोग नही था, वह वक्त को देखकर आया था। मैं उस वक्त अकेला मन्दिर के पिछवाडे के जगल म पग-डण्डियो पर घूम रहा था। रोज शाम को सन्ध्या के समय इस तरह घूमता हूँ। एक नियम की तरह। लगता है, उस को इस नियम का पता था

य चत के दिन वडे अजीव होत हैं—पेडो की पत्तियाँ पल-पल मे रग बन्दलती

हैं, थोडी सी हवा से भी काप-काप सी जाती हैं, और फिर लगता है जसे वे घबराकर पेडो के परो पर गिर रही हो

उन की यह दीनता देखकर मन मे कुछ होता है

वह भी जब आया मेरे पास, मेरे मन को कुछ हुआ

मेरा खयाल है, उस ने भी एक बार चुपचाप पेडो की तरफ देखा था—पेड जो हर घडी नगे और दीन-से हो रहे थे, फिर उस ने, आखो को झुकाकर, पेडो की होनी कबूल कर ली थी

"मैं तुम से एक बात करने आया हूँ " उस ने कहा । पर इतना वह मुझे कहता नही लग रहा था, जितना अपने आप को। जसे कोई पेड अपने को पतझड के आने की खबर बता रहा हो।

"यह तेरी मा है " उस ने कहा, और फिर चुप हो गया।

पता नही यह बतानेवाली क्या बात थी। मुझे पता थी और उस को भी मालूम था कि मुझे पता है।

"जाने उस के कितने दिन रहते हैं, पता नही दो घडियाँ ही हो, पर उस की जान अटकी हुई है तू ने उस राजकुमारी की कहानी सुनी है जिस की जान तोते मे थी? वह मारने से नही मरती थी, पर जब किसी ने तोते की गरदन मरोड दी, उस की भी गरदन टूट गयी वह भी अभी मरने लायक नही थी, पर उस की जान उस मे नही, तुझ म है—तेरी एक नजर मे। तू नजर मोडता है, उस की जान लटक जाती है तू उसे एक बार माँ समझकर देख वह मरी हुई भी जी पडेगी " यह सब कुछ उस ने अटक-अटककर भी कहा और एक साँस म भी।

मुझे ऐसा लगा था कि जसे वह मुझ पर तरस खाकर मुझे गुफा के अँधेरे मे से निकालने आया हो, पर उसे यह पता न हो कि अगर उस ने दो कदम आगे रखे, तो उसे भी हमेशा के लिए गुफा के अँधेरे म गुम हो जाना होगा।

मुझे जिन्दगी मे अगर किसी पर पहली बार तरस आया तो उस पर—दिल मे आया कि उस के होठो पर हथेली रखकर उसे आगे कुछ कहने से चुप कर दू

हवा तेज नही थी, पर पेडो की पत्तिया झडी जा रही थी। मैं हवा का हाथ से रोक नही सकता था।

"वह बडी नेक औरत है " शब्द उस के मुह मे थे, मेरे कान बौरा-से गये। वही घडी सामने आ गयी, जब महन्त किरपासागर न आखिरी श्वासो के समय कहा था, "वह एक पुण्यात्मा है "

लगा—यह दोनो मद, मुझे—एक तीसरे इनसान को—यह बताने के बजाय, एक दूसरे को बताते, फिर?

तो क्या फिर भी दोनो के मुह से यह बात निकलती? सोचा—महन्त

किरपासागरजी जीवित नही, पर उन की कही हुई बात बाकी है, जो मैं यह इस भोले इनसान को सुना दू ? लगा—यह जो स्वय ही गुफा के अँधेरे मे भटकने के लिए आया है ता मैं क्या कर सकता हूँ

इस लिए जवाब दिया, "मुझे पता है, मह त किरपासागरजी ने भी यही बात कही थी।"

बहुत दिन हुए महाभारत की एक कथा पढी थी कि एक मुनि ने यज्ञ कराया, राजा की ओर से इक्कीस बैल दक्षिणा मे मिले, पर मुनि ने वे बल दूसरे ऋषियों को दान कर दिये, और राजा से और बैल मागे। राजा ने गुस्से म आकर मरी हुई गउएँ दे दी। मुनि ने भी गुस्से म आकर राजा के नाश के लिए और यज्ञ आरम्भ किया। वह ज्यो-ज्यो गउओ का मास काटकर हवन करता गया, त्यो-त्यो राजा का राज्य नष्ट होता गया

लगा—मैं ने जो बात कही थी, वह भी एक मरी हुई गाय का मास काट कर हवन मे डालनेवाली बात थी, और उस के साथ अभी, इस सामने खडे इन सान के मन का स्वग नष्ट हो जायेगा

मा उस वक्त मरी हुई गाय की तरह लग रही थी

पर कोई भी स्वग शायद भुलावे के परदे मे नही होता, सच की नग्नता म होता है। लगा, मैं कुछ भी कहूँ, उस के मन के स्वग को नष्ट नही कर सकता था। क्योकि मेरी बात के जवाब मे उस ने स्वय ही कह दिया था, "उन्होंने जरूर कहा होगा क्योकि यह सच है।"

एक बार यकीन नही आया कि मैं सचमुच उस के स्वग को नष्ट नही कर सकता। इस लिए फिर कुछ ठहरकर, कुछ और स्पष्ट सा कहा, "उन्होंने यह भी बताया था कि उस पुण्यात्मा को भगवान ने स्वय सपने मे दशन दिये और हुक्म दिया "

लगा, मै ने उस के स्वग को अगर अभी नष्ट नही किया था, तो भी एक सेंध जरूर लगा दी थी। और म ने कहा, "भगवान् ऐसा हुक्म देने के लिए सिर्फ किसी पुण्यात्मा को ही चुन सकता है "

खयाल था—वह काँपकर पूछेगा—क्या हुक्म ? कसा हुक्म ? पर उस ने कुछ नही पूछा। सिफ यह लगा कि वह कुछ कापा सा जरूर था। फिर वह कुछ देर सामने पेडो की तरफ देखता रहा, जिन की टहनियाँ पल-पल झडते पत्तो से नगी-सी हो रही थी।

'हाँ, उस पुण्यात्मा को ही मै ने यह हुक्म देने के लिए चुना था। यह मेरा हुक्म था उस ने हमेशा मुझे भगवान् समझा है " उस ने कहा।

लगा—यह कहते हुए न उस का मुह दीन-सा हो रहा था, और न उस की आवाज हीन सी थी।

याद आया—पाँच छह दिन पहले, जब उस के घर गया था, उस ने भी कुछ ऐसा ही कहा था, "मेरे ऐसे करम कभी नहीं हुए कि भगवान मुझ सपने म दशन देते, और कुछ कहते, मैं न सिफ उस का हुक्म माना जिसे म ने सारी उम्र भगवान् समझा। दशन उसे हुए थे, म न सिफ हुक्म माना "

लगा—एक साँस थी जो मेरे सीने की हड्डियों म अटक गयी थी

"वह ऐसी नेक औरत है कि म अगर उसे सीधा सादा हुक्म देता, वह रोती और मेरे पैरो पर गिर पड़ती कि मैं इस हुक्म को वापस ले लू। मैं उस का भगवान् था, पर जो भगवान सामने दिखता हो, उस को यह भी तो कहा जा सकता है कि हुक्म को वापस ले ले इस लिए म ने अपना हुक्म उस को उस भगवान् के मुह से सुनवाया, जो दिखता नहो। कहा कि मुझे सपन म भगवान के दशन हुए हैं और उन्होने हुक्म दिया है कि तेरा सजोग "

लगा—एक अनन्त पीड़ा उस आदमी की छाती म उठी थी। उस ने पेड़ के एक तन से पीठ लगा ली, और पल भर के लिए अपनी आँखें, आँखो की पलको के नीचे ढाँप ली।

फिर उस की आँखो की पलकें धीरे से हिली, उस के होठो की तरह। और उस ने कहा, "मुझे शिव की मूर्ति के आगे चढ़ाकर जब महन्त किरपासागरजी ने कहा था कि यह बालक आज से शिवजी का पुत्र है, उन्होंने सच कहा था। क्या हुआ जो तन उन का था, तेरी माँ न जब उन के तन से पुत्र माँगा था, तो उन्होने अपने तन म शिव का मन डालकर उसे पुत्र दिया था "

और लगा—अब उस के मुह पर आया हुआ अनन्त दद उस का बल बन गया था। उस न पेड के तन से लगी हुई पीठ पेड से हटा ली, और एक पेड की तरह तनकर खड़ा हो गया। और फिर पेड पर नये सिरे से लगे पत्तो की तरह मुस्करा दिया, "वह मन मेरा था। मैं आप शिव हूँ। मैं न शिव की तरह जहर का प्याला पिया है "

उस ने सचमुच जहर का प्याला पिया है, यह सामने दिख रहा था। मैं ने आँखें नीची कर ली।

"तू सोचता होगा कि तू मेरा पुत्र नही। पर मैं ऐसे नही सोचता। हिसाब सिफ़ लोक का नही होता, परलोक का भी होता है। असली सयोग तन का नही होता, मन का होता है। तन साथ नही देता था, इस लिए तन की जगह मैं ने मन को वरत लिया। उस का तन, मेरा मन, और तू इस सयोग म से पदा हुआ। मैं किस तरह कहूँ कि तू मेरा पुत्र नही "

लगा—मेरा माथा झुक गया था। वह कह रहा था, "म ने तेरी माँ पर कोई एहसान नही किया था। वह बेचारी अब भी समझती है कि मैं उसे भगवान् का रूप होकर मिला हूँ। पर यह मेरा पाप है कि मैं ने उसे कभी कुछ और नहीं

बताया। पता नही, उस को आखो मे भगवान् का रूप होकर रहने का लालच है " वह कहता-कहता हँस सा दिया और फिर कहने लगा, "तू उस का बेटा है, इस लिए तुझे अपना बेटा समझकर बताता हूँ कि मैं ने अपनी जवानी मे उस के साथ द्रोह किया था। वह अभी डाली मे से निकली थी कि मैं उसे छोडकर परदेश चला गया था। धन कमाने के लिए। कमाया भी बडा, उजाडा भी बडा। पर धन से ज्यादा म ने अपने आप को उजाडा। ऐसी बीमारी लगी कि जिस के इलाज के वक्त सयानो ने मुझे बताया कि अब मेरा वश कभी नही चलेगा। बीमारी का खाया हुआ जब घर लौटा, उस नेकबख्त के माथे लगने लायक नही था। मन फटकारे देता था। पर म ने उसे बताया कुछ नही। बरस बीत गये। रोज देखता था कि वह एक पुत्र के मुह को तरसती थी। कितनी देर देखता ? उस का कुछ तो कर्जा चुकाना था जसे-तसे उसे तेरा मुह दिखाना था "

लगा—उस के पाँव धरती से ऊँचे हो गय थे। इतने ऊँचे कि मेरे माथे तक पहुँच गये थे

और शायद उस के पाव चल रहे थे, मुझे लगा, मेरा माथा भी उस के परो के साथ-साथ चल रहा था

एक बहुत ही लम्बी राह थी, कुछ नही दिख रहा था। शायद शाम का अँधेरा बहुत गाढा हो गया था, कि शायद मैं मन्दिर की गुफा म चल रहा था

और फिर एक उजाला सा हुआ। देखा—उस के हाथ म एक लालटेन थी। शायद उस ने लालटेन अभी जलायी थी

और देखा—लालटेन की चिमनी पर एक भी दाग नही था। उस ने चिमनी के शीशो को पोछ-पोछकर उस के सारे दाग उतार दिये थे

और लालटेन की रोशनी मे देखा—मेरे सामने मेरी ओर बिटर बिटर देखता मेरी माँ का मुहु था

मन्दिर के पिछवाडेवाले जगल मे से चलता हुआ पता नही किस तरह मैं वहाँ उस के घर पहुँच गया था

मेरी बाँहे उस के गले की ओर बढ़ी—जैसे कोई बहुत अँधियारी गुफा म से निकलने के लिए गुफा का द्वार ढूढता है

उस की सासें मेरे माथ को छू रही थी कहो से बहुत ठण्डी और ताजी हवा का झोका आया है, और मेरी सांसो म मिल गया है

शायद अब सामने, एक कदम की दूरी पर, कैलास पवत है



सारे के सारे आसमान न जसे धरती को अपने हाथो धोया हो

बादल मेरे पाँवो के नीचे कुछ रेशम सा बिछा रहे हैं

अचानक पेडा की टहनिया ने मेरे गिर्द कुछ लपेट-सा दिया है

अभी माथे पर एक ठण्डी फुहार सी पडी है, कुछ उडते पक्षी सिर के ऊपर

से गुज़रे हैं, शायद उन्होंने अपने पखो से कुछ कुहरा झाडा है

एक सरसराहट-सी भी शायद उन के पखो से झडकर मेरे सीने म पड गयी

है

सूरज की कुछ किरणें शायद सोयी हुई बफ को जगाने के लिए आयी हैं।

नदियो का पानी ऐसे ठुमककर चल रहा है जसे उस ने पैरो मे चाँदी की

खडाऊँ पहनी हुई हो

लगता है—कलास पवत की सारी सुदरता, सारी ऊँचाई, और सारा

एकाकीपन मेरा है

एक बडे निमल पानी का सोना मेरी माँ के मुह जैसा है, जिस मे मेरी परछाई

ऊँघ रही है

कमल फूलो के तालाब को देखकर अनायास ही महत किरपासागरजी का

खयाल आ गया है

अभी किसी टहनी से एक फूल गिरा था, और अडोल एक हथेली की तरह

मेरे पर को छू गया था। एक पल लगा, पैर जैसे मूर्च्छित सा हो गया था

दूर वह गुफा दिख रही है जिस के अँधेरे म मैं कई बरस चला हूँ। मेरा

खयाल है काई उस अँधेरे म अब भी लालटेन लेकर खडा है

मेरा खयाल है शिव और पावती पत्थर नही हुए सिफ वहाँ, मदिर की छत

के नीचे, एक जगह खडे, हाथ के इशारे से बता रहे हैं कि यह गुफा कलास पवत

पर पहुँचती है

लगता है—कलास पवत की सारी सुदरता सारी ऊँचाई ओर सारा

एकाकीपन मेरा है



आखिरी पंक्तियाँ

शॉपिनहावर की जेब में पड़े हुए सोने के सिक्के की तरह, हम भी कई लोग—छोटे छोटे शॉपिनहावर—सोने की डली जैसा किसी न किसी सोच का सिक्का जेब में डाले घूमते हैं शॉपिनहावर बरसों उस घड़ी का इन्तजार करता रहा—जिस घड़ी वह सोने का सिक्का दान कर सकता। वह घड़ी उस की जिन्दगी में नहीं आयी। सिक्का उस की जेब में ही पड़ा रहा। और जिन्दगी की आखिरी सांस तक उसे अपनी जेब का बोझ ढोना पड़ा। शायद हमारी भी, कइयों की, यही तकदीर है

कहते हैं शॉपिनहावर जिस होटल में दो वक्त रोटी खाता था, रोटी की मेज पर, रोज सोने का एक सिक्का रखकर रोटी खाना शुरू करता और आखिर मेज से उठने लगता तो वह सोने का सिक्का फिर जेब में डाल लेता। बरसों बाद एक बैरे ने उस से यह भेद पूछने की जुरत की। उस ने सोचा था कि यह कोई शॉपिनहावर की खानदानी रस्म होगी। पर शॉपिनहावर ने उसे अपनी एक अजीब हसरत बतायी—"मैं ने आज तक कभी दान नहीं किया, पर यह सोने का सिक्का मैं रोज इस आस से जेब में से निकालता हूँ कि मैं उस पहली घड़ी यह सिक्का दान करूंगा जिस दिन मैं किसी अंग्रेज को घोड़ा, औरतों और कुत्तों के सिवा किसी चीज के बारे में बात करते सुनूंगा "

शॉपिनहावर होने का कोई दावा नहीं—यह सिर्फ आस-पास दूर-दूर तक फैले हुए डिन' की बात है। मैरिसिटी' के सीमित अर्थों, और सिकुड़े हुए घेरों की बात है। और उस दृष्टिकोण की बात जो बहुसंख्यकों की आदतों में शुमार हो तो स्वीकृत माना जाता है, पर जो गिने चुने लोगों का चिंतन हो तो अस्वीकृत।

('डमोक्रेसी' सिर्फ उन्नत और विचारशील लोगों का मुआफ़िक आती है, पर मानसिक और आर्थिक तौर पर पिछड़े हुए लोगों का यह नसीब नहीं हो सकती। मूल्य बहुसंख्यक के मूर्ख फ़ैसले वक्त की लगाम संभालते हैं— की विशाल सीमाएँ उन के पैरों के नीचे कुच य थी

एक रेवड की तरह हाके जाते हैं, आफरेसर हो तो एक लाठी की शक्ल मे हांकते हैं। हालतें दोनो ही भयानक हैं।)

नीत्शे ने सीमित अर्थोवाले इनसान से, विशाल अर्थोवाले इनसान को अलग करने के लिए 'सुपरमैन' शब्द गढा था, म ने ऐसा कोई शब्द नही गढा, पर मरे सब से पहले नॉवेल के डॉक्टर देव को कुछ ऐसे ही अर्थों मे लिया गया था। हमेशा साचती रही हूँ, क्या यथार्थवाद के अर्थ इतने सिकुड गये है? क्या बहुसख्यक का जाना पहचाना जो कुछ है, सिर्फ वही यथार्थ है? और क्या अल्पसख्यक कहे जानेवाले लागो का अमल यथार्थ नही?

पर सच की तलाश जिस की प्यास हो, और सिर्फ 'सर्वाइवल' जिस की तसल्ली न हो, यकीनन वह मारलिटी के जाने-पहचाने अर्थों से टूट जायेगा। 'डाक्टर देव' की ममता पर, 'एक सवाल' की रेखा पर, 'ब द दरवाजा' की करमी पर 'एक थी अनीता' की अनीता पर, 'धरती, सागर, सीपियाँ' की चेतना पर, 'चक नम्बर छत्तीस' की अलका पर, और 'एरियल' की एकता पर, इस जुरत का दोष है। ये दोषी है क्योंकि सिर्फ सर्वाइवल इन्हे कबूल नही था।

अँधेरे मे भोग जाते झूठ के बजाय इन्होंने उजाले मे सच को भोगना चाहा—चाहे इम्मरिल कहलवाने की कीमत दी। अँधेरे की मॉरेलिटी स उजाले की इम्मॉरेलिटी इन का चुनाव था।

'सुपर' जैसा कोई शब्द मैं इन पात्रा के साथ जाडना नही चाहती—इन का वजूद, और उस का इजहार सिर्फ एक लेखक के तौर पर जेब म डाले हुए सोचो के सिक्का को खचने का यत्न है—इस आस से कि अगर बहुत नहो, तो शायद कुछ लोग घाडो, औरतो और कुत्ता के सिवा किसी और चीज की बात भी सुनना चाहेगे (पश्चिमी स्तर के मुकाबले म जो पूर्वी स्तर के अनुसार कहना चाहे तो औरत, पैसा और परलोक कहा जा सकता है।)

मैं न अपने नावेलो मे जिस औरत की बात कही है, वह सिर्फ 'सेक्स चिह्न' के अर्थों से टूटकर चलती है, इस लिए वह अलग है। और इस लिए चाहे वह 'एरियल' की एकता (एक औरत) के मुँह स हा या 'जलावतन' के मलिक (एक मर्द) के मुह से—वह इनसान की बात है। एकता का दु खा त है कि उस के साबुत अस्तित्व के लिए इनसान को सिर्फ टुकडा मे कबूलनेवाले समाज की व्यवस्था म, कोई जगह नही। और मलिक का दु खा त है कि उस की उम्र से बडे उस के मानसिक स्तर के वास्त, कुछ लकीरा मे लिपटे हुए समाज के ढाचे मे, उस की कोई पूर्ति नही।

सचाई का जिज्ञासु मर्द भी हा सकता है और औरत भी। सिर्फ सच की

परिभाषा अपने-अपने मानसिक विकास के अनुसार होती है

इस नये नावेल का नायक एक मर्द है—कोई बीस बरसों की उम्र का, जवानी की पहली सीढ़ी पर खड़े होकर अपने वजूद को एक बेबसी से देखता, अपने माहौल को घूरता, और उस का कारण बने लोगों से क्रुद्ध। अपने क्रोध को वह आग की तरह जलाता है और उस के अंगारों से खेलता, अपने हाथ पर भी छाले डलवाता है और अगर बस चले तो उस की चिनगारी उन की झोली में भी फेंकता है जिन का अस्तित्व उस के अस्तित्व से सम्बंधित है। यह सचाई को उसी एक कोण से देखने का प्रतिक्रम है, जिस कोण से देखने की आदत उसे उस के जन्म से मिली है—और जिस कोण से यह अकसर देखी जाती है।

'क्रोध' इनसान को एक कोण पर नहीं खड़ा होने देती। यह नायक 'क्रोध' का चिह्न है, इस लिए जब वक्त आता है, वह किसी और कोण पर खड़ा होकर सचाई को देखने से इनकार नहीं करता। न उस को समझने से इनकार करता है।

जिन्दगी अपने जाने-पहचाने अर्थों में जिस दायरे का नाम है उस को एक नज़्म में मैं ने कुछ इस तरह कहा था

छे[1] कदम पूरे ते इक अधा
जेल दी इक कोठड़ी
कि बन्दा बैठ उठ सके
ते निसल वी हो लवे,
'रब' दी इक बही रोटी
'सबर' दा बकल सलूणा

---

1 छह क़दम पूरे और एक आधा
जल की एक कोठरी
कि आदमी बैठ-उठ सके
और निवस भी हो ले
प्रभु की एक बासी रोटी
सब्र का सलोना बक्कल
वह चाहे तो इसे ही
दोनों वक्त खा ले
और जल के अहाते के पास
पानी का एक जोहड़
कि आदमी हाथ-मुंह धोये
(उस के मच्छर निथारकर)
और घूंट भर पी भी ले।

चाहवे तां रजपुज के
उह दोवे डग खा लवे
ते जेल दे हाते दी गुठ्ठे
इक छप्पड ज्ञान दा
कि बन्दा हथ-मुह धोवे
(ते कुज मच्छर नतार के)
ओह् बुक-भर के पी लवे।

पर ज्ञान को खडे पानी का जोहड बनाना ज्ञान की हतक है, और उस के वासीपन को चुल्लू भर पीकर एक तृप्ति हासिल करना इनसान की हतक। और कुछ लोग ऐसे होते हैं—जो यह हतक नही कर सकते

इनसान के ऊचे मानसिक स्तर की सम्भावना को अगर एक पक्ति मे कहना हो तो कुछ ऐसे कह सकती हूँ—इनसान हर खाई के ऊपर आप ही एक पुल बन सकता है, आप ही उस पुल पर से गुज़रनेवाला और आप ही अपने से आगे पहुँचनेवाला।

इस नॉवेल के नायक को मैं उस की जन्म-कहानी से लेकर जानती हूँ उस दिन से जिस दिन उस का साधुओं के किसी डेरे म चढाया गया था—यह बहुत बरसो की बात है। अब देखे हुए बरसो गुज़र गय, पर अब भी याद करूँ तो बडे तराशे हुए नक्शोवाला उस का सॉवला चेहरा, उस की उदासी समेत आखो के आगे आ जाता है। उस के बचपन का, उस का बार-बार कुछ सोचता हुआ चेहरा मुझे याद है, पर नही जानती कि उस ने अपनी भरी जवानी म जिन्दगी को कितना हँसकर कबूल किया, कितना रोकर। मेरे नॉवेल के पन्नो मे चलता हुआ वह आखिर मे जिस अवस्था को पहुँचता है, वह मेरी कल्पना है।

रवायती मय्यार, खुले आसमानो की सचाइ नही होते, यह 'फालसरूफ' की एक सिकुडी हुई दानाई होते हैं। 'फालसरूफ' मे कोई चाहे तो चॉद सितारे भी जड सकता है पर चाद-सितारो की लौ नही जड सकता

इस नॉवेल के नायक को मैं ने इसी लिए यात्री कहा है क्योकि सिर को छूती छत को *तोडकर वह चाद सितारो की लौ की यात्रा आरम्भ करता है।* अँधेरे से पदा हुई एक तीखी नफरत मे से उस की यह यात्रा शुरू होती है—यही नफरत उस का हथियार है, जिस के साथ वह सिर के ऊपर तनी हुई छत को तोडने का यत्न करता है

छत को तोडना या मीलो लम्बी एक गुफा का लाघना एक ही अर्थो म है—

सिर्फ़ एक पक्ति मे कहना हो तो कह सकती हूँ कि यह चाद सितारो की लौ के आशिको के लिए, चॉद सितारो की लौ के एक आशिक की कहानी है। अपने से आगे अपने तक पहुँचने की यात्रा।

परिभाषा अपने-अपने मा

इस नय नावेल का न की पहली सीढ़ी पर खड़े को घूरता, और उस क तरह जलाता है और उ है और अगर बस चले जिन का अस्तित्व उस के से देखने का प्रतिक्रम है, है—और जिस कोण से

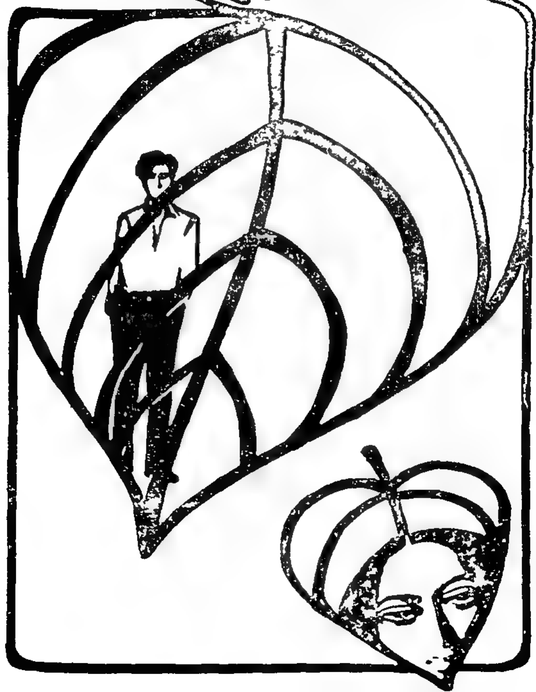
'ग्रोथ' इनसान का का चिह्न है, इस लिए सचाई को देखने से इन है।

जिन्दगी अपने ज नज़्म म मैं ने कुछ इस

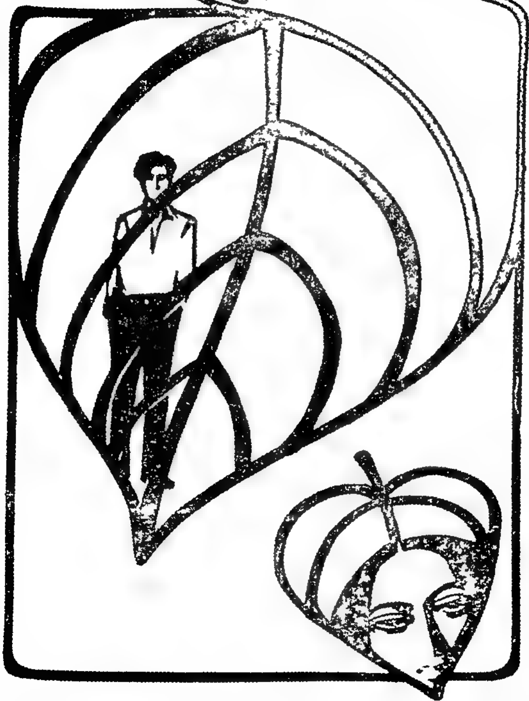
---

1 छह क़दम पूरे और एक
जल की एक कोठरी
कि आदमी बैठ-उठ सके
और निवृत्त भी हो ले
प्रभु की एक बासी रोटी
सब का सलोना वक्कल
वह चाहे तो इसे ही
दोनों वक्त खा ले
और जल के अहाते के पास
पानी का एक जोहड़
कि आदमी हाथ-मुंह धोये
(उस के मच्छर निथारकर)
और घूंट भर पी भी ले।

आक के पत्ते



आक के पत्ते





आक के पत्ते

क्या आप को पता है वेद कसे रचे गये ? ईश्वर ने जो कुछ मनुष्य के कान म कहा था, मनुष्य ने वह सुनकर कण्ठस्थ कर लिया था। इसी लिए वेदो को 'श्रुति' कहते हैं।

वेद शब्द का अथ ही ज्ञान है, बहुत ऊँचा ज्ञान। मैं ने भी जो कुछ जाना है—वह एक भयानक ज्ञान है

वेद चार थे। और कितना अजीब इत्तफाक है कि मैं अपने ज्ञान को भी चार हिस्सो मे बाट सकता हूँ। आप को पता ही होगा कि ऋग्वेद म सिफ देवताओ की महिमा कही गयी है। माता पिता देवता ही तो होते हैं, अपने बच्चे को जब अपने लहू मास मे से जन्म देते हैं, छाती म से दूध देते हैं, थाली की रोटी म से ग्रास दते हैं और उसे पोटा-पोटा करके पालते हैं, वह बच्चे को देवताओ से कम नही लगते। सो, माता-पिता के सरक्षण म मैं अपनी उम्र के बीस बरस जो कुछ सोचता रहा, यह मेरा ऋग्वेद है

और दूसरा यजुर्वेद था—उस मे बलिदान का और यज्ञ-हवन का वणन है। मेरे वेद म भी एक बहुत बडे बलिदान की कथा है। विष्णु पुराण म कथा आती है कि एक ऋषि ने अपने एक शिष्य को यह वेद पढ़ाया था। फिर एक दिन ऋषि न

लात मारी तो उस का भानजा मर गया, जिस के प्रायश्चित्त के लिए उस ने शिष्यों को बुलाया और उन की सलाह पूछी कि अब वह क्या करे। जिस शिष्य को उस ने यह वेद पढाया था, वह कहने लगा कि वह अकेला ही इस वेद के मन्त्रों के सहारे उसे पाप से मुक्त करा सकता है। ऋषि को लगा कि उसे अभिमान हो गया है, इस लिए उस ने आज्ञा दी कि वह उसी समय क करके सारे मन्त्र धरती पर उगल दे। शिष्य ने आज्ञानुसार सारे मन्त्र गले से बाहर उगल दिये, जो बाकी शिष्यों ने तीतर बनकर धरती पर से चुग्गे की तरह चुग लिये।

—यह मेरा वेद ? उर्मि मर गयी है, किसी ने उसे लात मारी थी, और अब मेरे इस वेद के सारे मन्त्र धरती पर बिखरे पड़े हैं। शायद पता नही कब, मैं तीतर बनकर इन को धरती पर से चुग्गे की तरह चुगूंगा, फिर उन मन्त्रों को पढूंगा, और वह ऋषि जिस ने उर्मि को लात मारकर मार दिया है, पाप मुक्त हो जाएगा

तीसरा सामवेद था, चौथा अथर्ववेद। इन के मन्त्र मंगल-कार्य के लिए और हवन के समय पढ़े जाते थे। उर्मि के मंगल-कार्य के लिए मैं ने कितनी खुशियों की कल्पना की थी, उर्मि के जितने लाड, जितने चाव, जितनी हँसी थी, वह सब मेरे सामवेद के मन्त्र थे। और अब उस का हवन मैं सारी उम्र करता रहूँगा, मेरे सीने की आहें और मेरी आखो के आँसू मेरे मन्त्र हैं, जिन को मैं सारी उम्र पढता रहूँगा

यह मेरा उर्मि-वेद

उर्मि अभी थी, अब नही है। उसे मरते हुए देख लेता तो शायद उस मरी हुई का मुह एक अन्त का निश्चय दिला देता। पर ऐसा नही हुआ। उसे मरी हुई किसी ने नही देखा। और तो और, कानून ने भी नही देखा। कानून के कागज़ों में वह जिन्दा है, पर मुझे आँखो के आगे कही नही दिखती कागज़ के अक्षरो में उस की आखें क्या नही झांकती ? ये अक्षर आखो की तरह झपकते क्यों नहीं ? वही कागज़ो पर पत्थर हो गये हैं

सोच रहा हूँ—उर्मि लहर को कहते हैं, पानी की लहर को, पानी की तरंग को। पुराने ग्रन्थ जिन का नाम सागर होता था, उन के हर काण्ड का नाम उर्मि होता था। पानी की लहर पानी में मिल जाती है, उस का वजूद खत्म हो जाता है, पर उस की लाश नही होती। मेरी उर्मि भी शायद पानी की लहर थी, अनन्त सागर में मिल गयी, अब उस का वजूद भी कोई नही रहा, उस की लाश भी कोई नहीं।

देखो ! चार वेदो के चार रंग होते है। ऋग्वेद का रंग सफेद, यजुर्वेद का लाल, सामवेद का पीला, अथर्ववेद का सुरमे की तरह काला। मेरे उर्मि-वेद के भी चार रंग हैं—गोरी अछूती उर्मि की जवानी का रंग बिलकुल सफेद, उस की

मौत का रग खू न की तरह लाल, उस के वियोग का रग निरा पीला, और इस वियोग का कारण बिलकुल काले रग का।

यह उर्मि-वेद किस को सुनाऊँ ? मैं रोज़ इसे खु द पढ़ता हूँ, खु द सुनता हूँ

कहते है—वेदो को सुनने का अधिकार शूद्रो को नही होता। सिर्फ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेदो को सुन सकते है। मुझ—जहा तक दिखाई देता है, सब शूद्र ही शूद्र नज़र आते है। वह जो किसी के दर्द के साथ ददमन्द नही होते, वही तो शूद्र होते है। उर्मि का दद कोई नही जानता। न कोई मजहब, न कोई समाज। इस लिए यह सब धर्मों-कर्मों के वली, और समाज के नियमो वाले शूद्र है। इन्ह मैं यह वेद नही सुना सकता

पर यह सब कुछ क्या मैं अपनी छाती मे रखकर इस दुनिया से चला जाऊँगा ? ज्ञान हमेशा किसी को सौंपकर जाना चाहिए। यह ज्ञान, यह भयानक ज्ञान, मैं किसे सौपू ?

आप, कुछ वह लोग जिन्ह मैं जानता नही, अगर सचमुच अपने दिल के मुताबिक—ब्राह्मण, क्षत्रिय या वश्य हो, तो आप को यह वेद सुनने का अधिकार है

तो सुनिये।



यह, जहाँ मैं खड़ा हूँ, एक चौराहा है।

एक राह एक अन्धे कुएँ की तरफ जाती है, जिस मे उर्मि की लाश पड़ी हुई है

एक राह एक नदी की तरफ जाती है, जिस म उर्मि की लाश बह रही है

एक राह धरती के एक गढे की तरफ जाती है जिस म उर्मि की लाश दबी हुई है

एक राह एक चिता की तरफ जाती है, जिस की आग म उर्मि की लाश जल रही है

और मैं जैसे चारो राहो पर चल रहा हूँ।

चारो तरफ बेहद बू है, पर दुनिया के काम-काज उसी तरह चल रहे हैं, किसी को यह बू नही आती।

मैं, हारकर, इस देश के कानून के पास गया था, सुना था कि वह बू का निशान भी सूघ लेता है। पर मुझे देखकर उस ने जल्दी से नोटो की एक पोटली नाक के आगे रख ली, और मुंह से हँसकर कहने लगा—'कहां? बू तो कहीं से भी नहा आ रही।'

उर्मि एक खुशबू थी, पर उसे किसी ने बू बना दिया है।

दोनो गाँव पास पास है—एक उर्मि के पीहर का, एक उर्मि के ससुराल का। और दोनो गावो को जसे दाँती लग गयी है, वे मुह से कुछ भी नही बोलते।

नही, यह दाँती नही, यह मिर्गी है, क्योकि दोनो गावो के मुह से झाग निकल रहा है।

कहते हैं, जिसे मिर्गी आती हो, उसे एक नसवार देनी चाहिए। यह नसवार आक के दूध मे चावलो को भिगोकर और पीसकर बनायी जाती है। सच भी आक की तरह कड़ुआ होता है। उर्मि की बातें सफेद चावलो की कनी सरीखी थी। उन्हें अगर सच के आक के दूध मे भिगो लू और उस की नसवार बनाकर इन दोनो गावो की नाक मे सुंघा दू, तो इन की मिर्गी जरूर छूट जायेगी

यह सच है कि एक गाव ने उर्मि को जबदस्ती डोली मे डालकर दूसरे गाव मे धकेल दिया था। और अब एक गाव ने उर्मि की एक बाह पकडी और दूसरे गाँव ने दूसरी बाह पकडी, और उसे घसीट घसीटकर मार डाला।

इन दोनो गाँवो को उर्मि की कोई चिन्ता नही। ठीक है, मिर्गी के रोगी को चिन्ता नही करनी चाहिए

उर्मि का कही नाम निशान नही, जसे उर्मि कभी थी ही नहीं। मै उर्मि की बात करूँ तो उस के लगे-लिपटे मुझे ऐसे देखते हैं जैसे मैं जिन्न भूतो की बात कर रहा हूँ। और जैसे उर्मि को सिर्फ मैंने ही कभी देखा हो, और किसी ने कभी आँखो से देखा ही न हो।

सब गवाहियाँ खत्म हो गयी है, सिर्फ एक गवाही यहाँ गाँव के स्कूल के कागजो मे पडी हुई है, जहा उर्मि को दाखिल करते वक्त लिखा गया था—उर्मि, उम्र छ साल, पिता का नाम हरिश्चन्द्र।

जसे, जो हुआ और जो बीता, अब भी आँखो के आगे चित्रित है। एक दिन पूछता हू, 'पिताजी! राजा हरिश्चन्द्र सूर्य वश का अट्ठाईसवा राजा था न?"

'हाँ," पिताजी कह देते हैं, और खटिया की अदवायन कसने लगते है।

"आप ने अपना नाम राजा हरिश्चन्द्र के नाम पर रखा था न?" फिर कहता हूँ।

पिताजी उत्तर नही देते।

मेरी जीभ को एक बल सा पड जाता है, पर फिर भी कहता हूँ, "राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी था। आप चाहे फिर कभी सच न बोलना, पर एक बार सच बता दो—उर्मि कहाँ है ?"

पिताजी खटिया की अदवायन को इतने जोर से खीचते है कि अदवायन टूट जाती है

माँ मूढ़े पर एक गठरी की तरह बैठी हुई है। गाँव का हकीम उस की रीढ की हडडी पर रोज लेप करता है, और कहता है कि उसे कभी ढीली खाट पर न सुलाना। इसी लिए पिताजी रोज उस की खाट कसते हैं

पिताजी खटिया की अदवायन को गाँठ लगाने लगते है, तो मूढ़े पर पडी हुई गठरी धीरे से रोने लगती है, "हाय री बेटी, कौन टूटी को जोडे "

गठरी ही कहूँगा मा होती तो जोर-जोर से विलाप न करती

सोचता हूँ—उर्मि अगर एक सुदर सजीली लडकी न होती, किसी खाट की खुरदरी अदवायन होती, तो उस की उम्र को गाँठ लग जाती

फिर कमरे का आला मरी तरफ देखता है और मैं कमर के आले की तरफ। उस की भी छाती म किसी ने ऐसे बुटका भरा है, जसी मेरी छाती म। वहाँ—आले मे—एक तसवीर थी, मेरी और उर्मि की। एक बार पिताजी, हम दोनो की उँगली पकडकर, एक मेले पर ले गये थे।

उर्मि तब कोई सात बरस की थी, और मैं पाँच बरस का। और वहाँ मेले म हम दोनो बहन भाई की तस्वीर उतरवायी थी। पर आज वह तसवीर वहाँ पर नही रही।

मैं और यह आला, दोनो मिलकर पूछते हैं, "पिताजी, वह तसवीर कहाँ चली गयी ?"

"तुझे क्या करना है उस का ?" पिताजी गस्से म अदवायन को इस तरह खीचते हैं, मुझे लगता है कि अदवायन फिर टूट जायेगी।

कहता हूँ, "उस की एक ही तो निशानी थी !"

पिताजी खीझकर बोलते हैं, "निशानी अड सिर से मारनी है ?"

मैं ढीठो की तरह कहता हूँ, "आप को नही जरूरत थी तो न रखते, मुझे दे देते, मैं शहर वाले कमरे म लगा लेता।"

"डूब जाये तेरा शहर " पिताजी का सारा बदन खुरदरी अदवायन की तरह कस जाता है। और शायद उन के अपने बदन का छिलतरें उन के हाथो म चुभ जाती है, वह हाथो को मलते से मेरी तरफ देखते हैं।

जानता हूँ—मैं शहर म कमरा लेकर जब कालिज मे पढने लगा था, तो उर्मि ने अपने पीहरियो और ससुरालियो के आगे हाथ जोडे थे कि उस का आदमी

अगर कुछ बरसो के लिए के निया कमाने चला गया है, तो वह गाव मे पडी क्या करेगी, उसे शहर जाकर आगे पढ लेने दें। और वह शहर आकर आगे पढ़ने के लिए कॉलिज मे दाखिल हो गयी थी। हम बहन भाई दोनो शहर मे कमरा लेकर रहते थे।

निशानी से याद आता है कि उर्मि अगर जिन्दा होती—सिर्फ तीन चार महीने और जिन्दा रहती—तो उस का बच्चा भी एक निशानी होता

पिताजी खटिया पर खेस बिछाकर, गठरी सी बनी मा को मूढे पर से उठा कर खटिया पर लिटा देते हैं और फिर हाथ धोकर तीनो थालियो म रोटी परोस देते है।

रसोई के तख्ते पर कांसे की चार थालियां हमेशा पास-पास रखी होती हैं। मा हमेशा इन्हे माज-मीजकर चमकाती थी। ये कँगूरे वाली थालियाँ बिल्कुल नये नमूने की थी, एक बार एक मेले मे से खरीदी थी। और मा हमेशा इन्हे तख्ते पर चमकाकर रखती हुई कहती थी, 'यह थाली मेरी उर्मि की, यह उर्मि के भाई की, यह मेरी और यह तुम्हारे बापू की '

उस दिन पिताजी ने जब तख्ते पर से तीन थालियां उतारी, तो मेरे मुह से अचानक निकल गया, "वह थाली उर्मि की "

पिताजी ने क्रोधी आखो से देखा, पता नहीं मुझे, कि थाली को

मैं ने रोटी का एक ग्रास तोडा, पास की कटोरी में डुबोया, और मुह मे डाल लिया। दाल जली हुई थी। पर हम तीनो—चुपचाप जली हुई दाल से ही रोटी खाने लगे।



यह चौराहा पता नही कैसा चौराहा है, मैं जहां जाता हूँ, यह मेरे साथ जाता है, मेरे पैरों से लिपटा जाता है, और हर जगह उस मे से वही चार राहें निकलती हैं

एक, जो एक अन्धे कुएँ की तरफ़ जाती है और जिस में उर्मि की लाश पड़ी

हुई है।

दूसरी, जो एक नदी की तरफ जाती है, और जिस मे उर्मि की लाश वह रही है।

तीसरी, जो धरती के एक गढे की तरफ जाती है, जिस म उर्मि की लाश दबी हुई है।

और चौथी, जो एक चिता की तरफ जाती है, जिस की आग म उर्मि की लाश जल रही है।

गाव से शहर आ गया, और वह चौराहा भी मरे साथ आ गया

एक और राह भी थी, जहा उर्मि चला करती थी नही, शायद कोई राह नही थी, उर्मि ने खुद ही काँटे चुन-चुनकर वह राह बनायी थी, और मुश्किल स दस क़दम चली होगी कि उस के परो के लहू मे उस की राह डूब गयी

मेरे कमरे म अभी भी उर्मि की चारपाई उसी तरह सामने दीवार के पास बिछी हुई है। दोनो चारपाइया के बीच उसी तरह छोटी सी मेज पडी हुई है, और मेज पर वही बिजली का लैम्प रखा हुआ है, जिस के शेड पर उर्मि ने एक दिन लाल रग का एक फूल बनाया था।

फूल बनाते हुए उस ने कहा था, "भइया रे! अभी इसे हाथ न लगाना, गीला रग है, इसे सूख लेने देना।"

। यह पिछले बरस की बात थी। पर इस का रग अब तक भी नही सूखा! मैं ने उँगली से उस फूल को छुआ, तो पपोट से उस का रग लग गया।

शायद मेरी आखो से कुछ पानी उस पर गिर गया था

अब तक तो जहाँ उर्मि का खून गिरा होगा, वह भी सूख गया होगा

सोचता हूँ—पूरे दो महीने होने को है इस बात को

शायद कुल्हाडी से उसे काटा था कुल्हाडी वाले हाथ मे उस का खून जरूर लग गया होगा

फिर वह खून उस के हाथो पर सूख गया होगा उस न हाथ धो लिये होगे, पर कुछ तो रोमो मे गुजरकर उस की हथेलियो म रह गया होगा वह हमेशा वहाँ हथेलिया मे रहेगा हथेलियो म सूख जायेगा पर कभी शायद उस की आखो मे आसू भी आते होग—कभी आधी रात को—और हथेलियो म जमा हुआ खून फिर गीला हो जाता होगा

शायद रग गीला हो जाता है, खून गीला नही होता

कमरे का बन्द दरवाजा खोलकर वह—एक प्रेत सा—अन्दर आ गया है

वही, जिसे उर्मि ने प्यार किया था।

सिर के बाल जटाओ से बने हुए—वह एक लोई ओढे मेरे कमरे म गाढे अँधेर की तरह खडा हो गया

अँधेरा नहीं टूटता, सिर्फ चुप टूटती है। वह पूछता है, "कब आया गाँव से ?"

"आज।"

'कुछ पता लगा ?"

मैं इनकार में सिर हिला देता हूँ।

वह अँधेरे का एक ढेर सा, पहले उर्मि की खाली चारपाई को देखता रहता है, फिर चारपाई पर बैठ जाता है।

उर्मि की चारपाई पर से एक आवाज आती है, "लोग कहते हैं, इश्क और मुश्क छुपाए नहीं छुपते यह आधा सच है, आधा झूठ इश्क नहीं छुपा, पर मुश्क छुप गयी "

मुझे क्या कहना था कुछ नहीं कहा।

उर्मि की चारपाई से ही आवाज आती है, "भइया रे ! गौतमी शिला सच-मुच होती है, यह पानी में नहीं डूबती। रामचन्द्रजी जब लंका गये थे, तो गौतमी शिला पर बैठकर गये थे। मेरा प्यार भी गौतमी शिला है, यह मुझे पार लगा देगा "

मैं चौंक जाता हूँ—यह उर्मि की आवाज कहाँ से आयी ?

फिर एक गहरा रहस्य पा जाता हूँ—उर्मि ने जाने कैसे इस आदमी को प्यार किया कि मरकर भी उस का वजूद इस के वजूद में समाया हुआ है। इस के यहाँ, इस चारपाई पर बैठने के साथ ही, वह भी जैसे इस चारपाई पर आ बैठी है। वह इसी तरह पिछले बरस इस चारपाई पर बैठकर मेरे साथ बातें करती थी

वह फिर कहता है, "जो कुछ सुना है वह तो यही है कि उसे कुल्हाड़ी से काटकर नदी में बहा दिया "

सोचता हूँ—उर्मि ने शायद आखिरी वक्त गौतमी शिला वाली बात सोची होगी, और उसे पता नहीं कैसा गुस्सा आया होगा इस कलियुग पर, जहाँ गौतमी शिला भी पानी में डूब जाती है

"तू बोलता नहीं ?" वह पूछता है।

मैं ने उर्मि को कहा था कि यह रामचन्द्र का द्वापर युग नहीं, कलियुग में गौतमी शिला भी डूब जाती है।

"तुझे पता था कि उस का सगा बाप उसे अपने हाथों मार देगा ?" वह पूछता है।

कहता हूँ "नहीं, यह नहीं पता था।"

'अब रात को उसे नींद कैसे आती है ?" वह फिर पूछता है।

'यह तो मैं भी जितने दिन गाँव रहा—सोचता रहा था। रात को उठकर बाप की चारपाई की तरफ भी देखता रहा था। सारा घर खोज मारा था—

शायद कही कोई सुराग मिले, खोज सकता तो उस की नीद को भी खोज कर देखता, पर "

"माँ भी कुछ नही कहती, जिस की ममता कुतरी गयी थी ?" वह फिर पूछता है ।

जो देखा था कह दिया, "वह मास की गठरी-सी चारपाइ पर पडी रहती है । न किसी की तरफ देखती है, न किसी को कुछ कहती है ।"

"उसे अन्दर ही अन्दर जरूर पता होगा "

"पता नही ।"

"मैं थानेदार से मिला था "

"वह तो हम इकट्ठे ही मिले थे '

"मैं फिर अकेला जाकर मिला था ।"

"फिर ?"

"वही बात कहता था—तू कानूनी तौर पर उस का कुछ नही लगता, तेरी तरफ से तो तफ्तीश की अरजी भी मजूर नही हो सकती । कुत्ते ने उधर से माल खाया हुआ है "

सोचता हूँ—क्या कुत्ते सिर्फ माल खाने वाले ही होते हैं ? और खिलाने वाले ?

मा के हाथों मे सोने के माटे माटे कडे हमेशा पडे रहते थे । इस बार गाँव गया तो उस के हाथो मे कुछ नही था । जान गया—वह अब जरूर थानेदार की बीवी के हाथो म हागे

सोने के कडे उर्मि के हाथो म भी थे, पर पिछली बार जब वह छुट्टियो म गाव गयी तो उतारकर ससुरालियो के घर रख आयी थी । शहर आयी तो कहने लगी, पराया धन लेकर गौतमी शिला पर नही बैठते '

मैं हँस पडा था, कहा था, यह गौतम तुझे इतना ही अच्छा लगा था, तो तू ने तब पराया धन क्या हाथा म पहना था ?'

जिस दिन से उर्मि ने मेरे सामने अपने दिल की बात कही थी उस दिन से मैं ने ही हँसकर उस आदमी का नाम गौतम रख दिया था । वह हमारे गाँव का था, मेरा जाना पहचाना, पर तब मैं बहुत छोटा था, मुझे उर्मि के मन की पहचान नही थी । उर्मि हँसी भी और रोई भी, 'तब छोटी थी, भइया । अन्दर जाकर मा से विनती की थी, पर जब बाप और चाचा का क्रोध देखा, सोचा—मन को मार लूगी । चलो—सगे बाप चाचा की बात रह जाय । पर मुझे क्या पता था कि यह मन नही मारा जायेगा '

गौतम शहर म पढता था, फिर पढकर शहर मे ही रह गया था, गाँव नही लौटा था । उर्मि जब सब की मिन्नत-मोहताजी करके शहर म पढ़ने आ गयी थी,

मुझे नहीं पता था कि वह सिफ गौतम के लिए शहर आयी थी।

फिर मैं कभी हँसकर कहता था, 'उर्मिये ! अगर तेरा कुछ लगता फिर तो तुझे अपने साथ ही केन्या ले जाता ?'

'राह म समुद्र आता है न ?' उर्मि हँस पडती।

'हा।' मैं कहता।

'बस, फिर समुद्र म डूबकर मर जाती।' उर्मि कहती।

उर्मि की यह बात एक बार गौतम ने भी सुन ली, कहने लगा, 'तू समुद्र मे भी खो नही पाती, मैं सारा समुद्र मथकर तुझे ढूढ लेता '

अब अचानक मेरे मुह से निकला—"गौतम !"

गौतम के कधो पर ओढी हुई लोई रोगटो की तरह खडी हो गयी। उस ने मेरी तरफ ऐसे देखा जैसे मैं उर्मि को ढूढने का रास्ता बताने लगा था। कहने लगा, "क्या पता उन्होने मारा न हो, कही छुपा दिया हो, या तेरे और मेरे से चोरी से उसे किसी ने केन्या भेज दिया हो "

शायद लम्बे दुखो के समय आशाएँ भी परछाइयो की तरह लम्बी हो जाती है। गौतम एक घडी यह भी भूल गया कि उर्मि के पास उस का छ-सात महीने का बच्चा था, और इस हालत म उसे वह किसी और के पास कसे भेज सकते थे ! मैंने उसे यह याद दिलाया तो वह जैसे लोई की अपनी बुक्कल मे ही डूब गया हो।

'मैं सोच रहा था " मेरे गले मे आवाज कुछ अड गयी, "हम ने तो कहा था—हम उसे समुद्र मथकर ढूढ लेंगे, पर "

कहा गौतम न था, पर यह उलाहना, उस अकेले को नही था, यह सब से बडा मेरा उलाहना मेरे साथ था।

उर्मि का गौतम के घर मैं ने अपने हाथो भेजा था सोचा था, मेरा वास्ता मेरी बहन की खुशी से है, जरूरत पडी तो बाप के गुस्से से निबट लेंगे

वह वक्त ही न आया, और सारी कहानी निबट गयी

मेरा बाप मेरी रगो को पहचानता था, पर मुझ से ही उस की रगें न पहचानी गयी।

गौतम जब उस दिन—डूबते सूरज के साथ डूबता सा—मेरे पास आया था, 'तेरी बहन को पता नही वह कहाँ ले गये हैं,' तो 'वह' लफ्ज के साथ मैं अपने बाप को नही जोड सका था।

'वह कौन ?' मैं ने अपने होशो हवास थामकर पूछा था।

'तेरा बापू—उस का बापू उस के साथ कोई और भी एक आदमी था मैं घर पर नही था, अभी काफी दिन बाकी था, जिस वक्त व दो जने दो भाडियो पर आये ' उस के हवास टूट रहे थे।

यह गौतम को उस की एक पडोसिन ने बताया था, जो उस वक्त उर्मि के

पास बैठी हुई थी। उस ने ख़ुद उर्मि के मुह से सुना था कि उस का बापू आया है फिर उस ने उर्मि को बापू के साथ जाते देखा था दूसरी घोडी वाला अन्दर नही आया था, गली के बाहर खडा रहा था। वह पता नही कौन था?

मैं ने फिर भी बात की थाह नही पायी थी। कहा था, 'तो क्या हुआ, अगर बापू ख़ुद ही आया था तो काहे का खतरा?'

'पता नही क्या होने वाला है' गौतम को धीरज नही बँधा। कहने लगा, 'शहर मे आकर वह तुझे न मिला, मेरी भी गर मौजूदगी मे ले गया वह भी घोडी पर हम सब जब गाव जाते है—गाडी पर जाते है वह खास तौर से घोडी पर क्यो आया फिर साथ एक और आदमी

मुझे भी घबराहट हुई थी। हम दोनो रात की गाडी से गाव चले गये थे। पर सुबह जब मैं घर पहुँचा, तो बापू सो रहा था और उर्मि कही नही थी

पूछ पूछकर हार गया, पर बापू ने एक ही बात पकड रखी थी, मुझे कुछ पता नही।'

उस दिन माँ वहा नही थी। साथ के गाव मे अपने भाई की खबर लेने गयी हुई थी

आगन म घोडी बँधी हुई थी। मैं बहुत देर तक घोडी के पास जाकर खडा रहा। देख सकता था—वह एक लम्बी राह तय करके हाफ रही थी

फिर एक मिन्नत सी की थी, बापू! कल से उर्मि नही है'

'मुझे क्या पूछने आया है? बापू ने तमककर कहा था, आगे जब भाग गयी थी, तब मझे पूछने आया था? अब है नही तो किसी और के साथ भाग गयी होगी, मुझे क्या पता'

छाती म से हूक उठी थी—अगर सामने बाप न होता, उस की जगह कोई और होता

फिर म ने और गौतम न जैसे सारा गाव छान मारा। गाव के गढे, टिब्बे, कुएँ, झाडियाँ पास मे बहती नदी का रेतीला मैदान, उस के पार का उजाड

हमारे गाव के बाहर रहने वाले छोटी कौम के लोगो म खुसर पुसर हो रही थी—रात को नदी के किनारे कोई घोडिया पर आये थे नदी के पार से चीखे सुनाई दे रही थी अन्धे कुएँ के पास घोडिया देर तक खडी रही पार टीला में रात भर आग जलती रही थी

हवाओ म गाँठ नही लगती। उन के किनारे हर जगह खुले रहते है। सुना कि केन्या से बहुत सा रुपया उस के गाव उस के बाप को आया है। उन के घर देगें पकी हैं और थाने मे बोतले खुली हैं

दोनो गावो को मिरगी पड गयी है। बोलते कुछ नही, पर दोनो के हाथ-पर अकडे हुए है, मुह से झाग बह रही है।

आक की नसवार कड़ुए आक जैसा सच यह आक का पौधा किस धरती पर बोऊँ धरती ही तो नही है धरती तो सारी उन्होने अपने नाम करा ली, जिन के हाथ मे रस्मो-रिवाज की लाठी थी

सामने उर्मि की चारपाई पर, वह एक अँधेरे का ढेर-सा पड़ा हुआ था। कभी आँखें खोलकर अचानक ऐसे देखता था—जैसे दो तने अँधेरे म जलते हो



चौथे दिन खबर सुनी—गौतम को यूनिवर्सिटी से शोध प्रबन्ध लिखने के लिए वज़ीफ़ा मिल गया है।

जब स उर्मि नही रही थी, मेरे पर गौतम के घर की गली देखकर ही जसे जिस्म से अलग हो जाते थे। इस लिए कभी फिर उस गली म से नही गुजरा था। गौतम ख़ुद ही अँधेरे की तरह फलता मेरे कमरे म आ जाता था। पर खबर सुनी तो सोचा—उस का और मेरा दु ख कोई बाँटा हुआ थोडे ही है, इस लिए मैं पैरो को घसीटता सा उस के घर चला गया।

आज भी काँप काँप जाता हूँ—जसे गौतम को देखा था।

वह जमीन पर अडान आल्थी-पाल्थी मारकर पूरी आँखें खोले बठा हुआ था। कमरे का पर्दा खोलकर मैं उस के पास जाकर खडा हो गया, तब भी उस ने मेरी तरफ नही देखा। मैं ने आवाज दी, कन्धे हिलाये। पर उस न न मेरी तरफ़ देखा, न आँखें झपकायी। वह जसे सुन—पत्थर—बैठा हुआ था।

घुटनो के बल जमीन पर उस के पास बैठकर मैं न उस की बाँह खीची। उस का हाथ अपने हाथ म लेकर ज़ोर से भीचा।

बडी देर बाद उस के होठ फड़के, 'कुछ नही दिखता, कुछ भी नज़र नही आता, वह पता नही कहाँ है "

"कौन ?" मै ने चौंककर पूछा।

' उर्मि, और कौन '

वह अभी भी सामने दीवार की तरफ देखे जा रहा था। जैसे उर्मि को उस दीवार म से निकलकर आ जाना हो।

'एक दीवार ही तो है, जिस के पार हम कुछ नही देख सकते यह न जाने कैसी दीवार हमारी आखो के आगे उठ आयी है" मेरे मुह से निकला, और मै वहा ही, उस के पास घुटना के बल बठ गया।

उस ने एक गहरी साँस भरकर आखें बन्द की, और फिर खोली। इस बार उस ने मेरी तरफ देखा।

मेरे माथ म से एक कँपकँपी उठकर मेरे परो तक चली गयी। उस की आँखो म खून जैसी लाल धारिया पडी हुई थी।

"तेरी आखो को क्या हो गया ?" मैं ने घबराकर उस की पलको को छुआ।

"यह यह कुछ नही, जो वह कही दिख पडे " वह मुस्करा सा पडा।

मुझे लगा—जो वह रो पडता, तो उस के रोने को झेलना आसान था, पर इस मुस्कराहट को झेलना बहुत मुश्किल था।

"कही जीती होती तो दिख न पडती।" मैं ने टूटकर कहा।

वह जल्दी से बोला, "पर इस का भी क्या सबूत है कि वह जीती नही है "

'सबूत तो कोई नही," मैंने कहा, पर साथ ही फिर कहा, 'जो कही होती तो, चाहे जिस हाल म होती, कोई खबर जरूर देती। आखिर किसी तरह कोई खत या सन्देशा कुछ तो आता "

"वह शायद कही बडी मजबूर हो क्या पता उसे किसी कोठरी मे बन्द कर रखा हो क्या पता किसी और देश म भेज दिया हो "

उस की टूटी हुई आस को अगर कही गाँठ पड रही थी, तो मैं क्या कह सकता था ?

वह नजर आयेगी, जरूर आयेगी चाहे जहा भी हो " उसने फिर धीमे से कहा।

"पता नही कब—अगर किस्मत हुई तो " मेरे मन को उस की तरह आस नही बँध रही थी।

"मिले चाहे जब, पर आज या कल नजर जरूर आयेगी।"

उस ने कुछ इतने विश्वास से कहा कि मैं ने उस के कन्धे को झटका सा देकर जल्दी से पूछा

"कुछ पता लगा है ?"

"पता कहाँ से लगना है " उस ने ना म सिर हिलाया, तो मुझे उस की सारी बातें ऐसी अटपटी सी लगी, लगा—उस की सोच का तवाजन नही रहा

"हाय राम " मेरे मुह से निकला, और मुझे लगा जसे उर्मि आज दूसरी वार मर रही थी।

वडी सँभली हुई आवाज म मैं न पूछा, "अच्छा वता, यह सुरमा कसे वनाया है ?"

वह जल्दी से पूछने लगा, "तू लगाएगा ?"

"हाँ।" मैं ने सिर हिलाकर कहा।

वह सलाई लेन के लिए उठन लगा ता मैं न पकडकर विठा लिया और पूछा, "पहले मुझे इस का नुस्खा वता।"

"तू एस ही फिर वनायेगा! वडी मुश्किल स वनता है, इसे ही लगा ले।' वह अपनी धुन म कहे जा रहा था।

"अच्छा, यही लगा लूगा, पर पहले वता दे कि यह कसे वनाया जाता है " मैं न उस से सभलकर, जितना सभलकर कहा जा सकता था, कहा।

"यह यह आक की जड को, भेड के खून म पीसकर, काजल-सा वनाया जाता है "

उस न ज्योही कहा, मरे आँसू निकल आये।

कहना चाहता था—आक की जड! आक तो उर्मि की मौत का सच है, जो हम न चवा लिया है। सच से वडा आक कोई नही होता

पर मरा कुछ भी कहा उसे सुनाई नही दे रहा था। यही कहा कि मैं अभी आता हूँ, और वाजार जाकर नीद की एक गोली और एक गिलास चाय ले आया।

किसी तरह उसे गोली खिलायी, चाय पिलायी और वाहर आकर सडको पर ऐसे चलने लगा जसे मरघट म चल रहा होऊँ



कॉलिज मे दो दिन की छुट्टियाँ थी। गाँव जाने का कोई खयाल नही था—यूँ ही दिन ढले स्टेशन चला गया।

गया था।

"आज दूसरी रात है, कल तीसरी रात हो जायेगी। तीन रातों के अन्दर-अन्दर वह मुझे जरूर नजर आ जानी है।" उस ने कहा तो मैं ने माथा पकड़ लिया। मुंह से मुश्किल से निकला—"गौतम!"

वह बोली नहीं।

मैं ही काफी देर बाद कह सका, "तू शायद कल रात भी नहीं सोया। देख तेरी आंखें कैसी हो गयी है। तू भगवान् का वास्ता है, सोने की कोशिश कर!"

"सो जाऊँगा, तो वह दिखाई कैसे देगी?" वह हँस सा दिया, और कहने लगा, "वह जहां भी, जिस हाल में है, मुझे आज या कल जरूर दिखाई देगी। अगर उस के पैरों में रस्सियां भी बँधी होंगी, तो भी मुझे यह तो पता लग ही जायेगा कि वह कहां है"

मैं सिर्फ यही सोच सका कि या तो मैं उसे डाक्टर के पास ले जाऊँ, या किसी डाक्टर को ही जाकर इस के पास बुला लाऊँ। उठने लगा, तो उस ने कहा, "अगर तू चाहे तो तू भी उसे देख सकता है।"

"किस तरह?" मैं ने उठते-उठते पूछा।

मैं ने एक सुरमा बनाया है, बड़ी मुश्किल से, देख—उस कटोरी में अभी भी कितना सारा पड़ा हुआ है। तू भी मेरी तरह इसे आंखों में लगा ले, और यहाँ बैठ जा" उस ने मेरे उठते हुए हाथ को पकड़ लिया।

जिधर उस ने इशारा किया था, मैं ने उधर देखा, एक कटोरी पड़ी हुई थी। मैं ने हाथों में ली। उस में कुछ-कुछ लाल सा गीला रंग था।

'सुरमा? यह लाल सुरमा? पर सुरमा लगाने से वह किस तरह दिखाई देगी?' मैं पूछ रहा था कि मैं ने कटोरी को सूंघकर देखा। कटोरी में से एक बू आयी

'इस आंखों में लगा लो, तो दुनिया भर में तुम जहां भी देखना चाहो, दिखाई दे जाता है सो उर्मि जहाँ भी होगी—चाहे समुद्र के पार ही हो—वह जरूर दिखाई देगी" वह कह रहा था कि मैं ने घबराकर उस का हाथ झंझोड़कर पूछा, 'गौतम, तुझे क्या हो गया है? सच बता, यह क्या बला तूने आंखों में लगा ली है?"

'यह सुरमा है"

"पर सुरमा काला होता है, लाल नहीं होता।"

'यह साधारण बाजार वाला सुरमा नहीं।'

'तुझे किस ने दिया है?"

'किसी ने नहीं, मैं ने खुद बनाया है। इस का नुस्खा मुझे एक साधु ने दिया है।'

"हाय राम " मेरे मुह से निकला, और मुझे लगा जैसे उर्मि आज दूसरी बार मर रही थी।

वडी सँभली हुई आवाज म मैं ने पूछा, "अच्छा वता, यह सुरमा कस वनाया है ?"

वह जल्दी से पूछने लगा, "तू लगाएगा ?"

"हा।" मैं ने सिर हिलाकर कहा।

वह सलाई लेने के लिए उठन लगा तो मैं ने पकडकर बिठा लिया और पूछा, "पहले मुझे इस का नुस्खा वता।"

"तू ऐसे ही फिर वनायेगा ! वडी मुश्किल से वनता है, इसे ही लगा ले।' वह अपनी धुन मे कहे जा रहा था।

"अच्छा, यही लगा लूगा, पर पहले वता दे कि यह कसे वनाया जाता है " म ने उस से सभलकर, जितना सभलकर कहा जा सकता था, कहा।

"यह यह आक की जड को, भेड के ख़ून मे पीसकर, काजल-सा वनाया जाता है "

उस न ज्योही कहा, मेरे आसू निकल आये।

कहना चाहता था—आक की जड ! आक तो उर्मि की मौत का सच है, जो हम ने चवा *लिया* है। *सच से वडा आक कोई नही होता*

पर मेरा कुछ भी कहा उसे सुनाई नही दे रहा था। यही कहा कि मैं अभी आता हूँ, और वाज़ार जाकर नीद की एक गोली और एक गिलास चाय ले आया।

किसी तरह उसे गोली खिलायी, चाय पिलायी और बाहर आकर सडका पर ऐसे चलने लगा जसे मरघट मे चल रहा होऊँ



कॉलेज मे दो दिन की छुट्टियाँ थी। गाँव जाने का कोई खयाल नही था—यूँ ही दिन ढले स्टेशन चला गया।

पिछले दिनो से कई बार जबरन मेरे पैर स्टेशन की तरफ चले जाते थे—आखो के आगे अपनी ही किसी तमन्ना का कल्पित झावला आ खडा होता था—कि उर्मि गाडी के एक डिब्बे मे से उतर रही है

कितनी ही देर तक स्टेशन के प्लेटफार्म पर खडा रहा—उर्मि की हमउम्र लडकिया अगर पीठ की ओर से कोई उस का झावला सा डालती—तो उन का मुह देखने के लिए मेरी छाती मे जो उतावलापन होता—वह एक पल उर्मि के जिन्दा होने का ऐसा भ्रम उत्पन्न कर देता—मैं एक पल उस की मौत को भूल जाता

यही कापता सा भ्रम बनाये रखने के लिए मैं कई बार स्टेशन पर जाता था। उस दिन भी ऐसे ही गया था, पर जरा भी पता नही कि क्यो मै गाव जाने वाली गाडी पर चढ गया। रात ठडी थी, पास म एक कम्बल तक नही था, पर एक कोने मे—अपनी हड्डियो को अपनी ही हड्डियो म लपेटकर बैठा रहा।

पता नही किस वक्त नीद आ गयी। शायद खयालो मे ही कही गहरा उतर गया था, लगा—अपनी चारपाई पर बहुत गम रजाई म पडा हुआ था। सब कुछ वैसे ही था जैसे होता था। उर्मि मेरी रजाई को एक तरफ से मोडती बिजली का लैम्प बुझा रही थी

सो गया था। पता नही कितनी देर। अचानक कितनी ही आवाजो का एक शोर मचा, और उस शोर मे मैं जाग पडा।

सुबह होने वाली थी। गाडी किसी स्टेशन पर खडी थी, और लोग गाडी म से उतर और चढ रहे थे।

मेरे ऊपर सचमुच एक रजाई थी, यह कहाँ से आ गयी ?

सपने का खयाल आया—उर्मि ने मेरी चारपाई के पास आकर मुझे रजाई दी थी

पर सपने वाली रजाई—यहाँ गाडी म सचमुच मेरे पास किस तरह आ गयी ?

गाडी के डिब्बे म उर्मि कही भी नही थी

सच और झूठ जसे पानी म पानी की तरह मिले हुए थे, अगल नहा होते थे

मेरे बिल्कुल पास, मेरे सामने बैठा एक बूढा आदमी, बडे भले से मुह से मेरी तरफ देखकर कहने लगा, "तुझे किस जगह जाना है, बेटा ? तरा स्टेशन तो नही गुजर गया ?"

मन म कुछ छिल-सा गया। कहने को हुआ 'उर्मि कौन से स्टेशन पर उतर गयी ?'—उतरना तो मुझे यही था—पर मुह बन्द कर लिया। खडी गाडी म स बाहर की तरफ देखा—स्टेशन का नाम पढा, और कहा, "अगले स्टेशन पर

उतरूँगा।"

अचानक खयाल आया कि यह रज़ाई जरूर इसी आदमी ने मुझे ओढायी होगी। मैं ने हैरान उस की ओर देखा, "रज़ाई "

"क्या हुआ बेटा ! तेरे पास भारी कपडा नही था, मेरे ऊपर तो इतना मोटा खेस भी है "

क्या यही बूढा आदमी मेरे सपने मे उर्मि बन गया था ?

जो जहा भी किसी का कुछ सँवारता है, क्या वह हर जगह उर्मि है ?

अगला स्टेशन आ गया। मैं ने रजाई वापस की तो हाथ से धीमे से उस आदमी की बाह छुई

यही—एक पल का भुलावा कि मैं ने हाथ से उर्मि की बाह छुई थी

सारे होश, सारे हवास ठीक हैं। हकीकत और भुलावो के बीच अभी मै एक लकीर खीच सकता हूँ

घर—मा उसी तरह मास और कपडो की गठरी-सी बनी खटिया पर पडी हुई थी।

पिताजी ने चूल्हे पर चाय चढायी, पर मुझे लगा—उन्होने मेरी ओर एसे देखा जसे मै पराया डगर उन के खेत मे आ घुसा होऊँ

देखा—उन के हाथ की एक उँगली पर पट्टी बँधी हुई थी। पूछा, "उँगली म क्या हो गया ?"

"कुछ नही," पहले उन की आवाज कुछ कस सी गयी। फिर कहने लगे, 'तेरी मा खटिया पर पड गयी है, चूल्हे म भी मुझे ही हाथ जलाने पडते है "

उन्होन जब मेरे लिए गिलास म चाय डाली तो गिलास उन के हाथ से पकडत हुए, अचानक मेरे मुह से निकला, 'अनामिका।"

"क्या ?" उन्होने घूरकर पूछा।

"यही आप की उँगली, यह चीची के साथ की उँगली है न, पुराणा म इस उँगली का नाम नही लेते, इसी लिए इसे अनामिका कहते हैं "

'तू पुराण कहाँ से घाट आया है ?"

"कॉलेज की लाइब्रेरी मे पढे थे "

जब आया था—तो मन म ऐसा कुछ नही था कि मुह से कुछ कहा-सुनी करूँगा। पर सामने एक उँगली पर पट्टी बँधी दखकर, एक खयाल आया, तो मुझ से मुह रोका न गया।

पूछा 'आप को पता है, इस उँगली को अनामिका क्यो कहते हैं ?"

उन्होंने जवाब नही दिया।

पिछले दिनो से कई बार जबरन मेरे पर स्टेशन की तरफ चले जाते थे—आखो के आगे अपनी ही किसी तमन्ना का कल्पित झावला आ खडा होता था—कि उर्मि गाडी के एक डिब्बे म से उतर रही है

कितनी ही देर तक स्टेशन के प्लेटफाम पर खडा रहा—उर्मि की हमउम्र लडकिया अगर पीठ की ओर से कोई उस का झांवला-सा डालती—तो उन का मुह देखने के लिए मरी छाती मे जो उतावलापन होता—वह एक पल उर्मि के जिन्दा होने का ऐसा भ्रम उत्पन्न कर देता—म एक पल उस की मौत को भूल जाता

यही कापता सा भ्रम बनाये रखने के लिए मैं कई बार स्टेशन पर जाता था। उस दिन भी ऐसे ही गया था, पर जरा भी पता नही कि क्यो मैं गाव जाने वाली गाडी पर चढ गया। रात ठडी थी, पास मे एक कम्बल तक नही था, पर एक कोने मे—अपनी हड्डियो को अपनी ही हड्डियो म लपेटकर बठा रहा।

पता नही किस वक्त नीद आ गयी। शायद खयालो मे ही कही गहरा उतर गया था, लगा—अपनी चारपाई पर बहुत गम रजाई मे पडा हुआ था। सब कुछ वस ही था जैसे होता था। उर्मि मेरी रजाई को एक तरफ से मोडती बिजली का लम्प बुझा रही थी

सो गया था। पता नही कितनी देर। अचानक कितनी ही आवाजो का एक शोर मचा, और उस शोर स म जाग पडा।

सुबह होने वाली थी। गाडी किसी स्टेशन पर खडी थी, और लोग गाडी म से उतर और चढ रहे थे।

मेरे ऊपर सचमुच एक रजाई थी, यह कहाँ से आ गयी ?

सपने का खयाल आया—उर्मि ने मेरी चारपाई के पास आकर मुझे रजाई दी थी

पर सपने वाली रजाई—यहा गाडी म सचमुच मेरे पास किस तरह आ गयी ?

गाडी के डिब्बे म उर्मि कही भी नही थी

सच और झूठ जसे पानी म पानी की तरह मिले हुए थे, अलग नही होते थे

मेरे बिल्कुल पास, मेरे सामने बठा एक बूढा आदमी, वडे भले से मुह से मेरी तरफ दखकर कहन लगा, "तुझे किस जगह जाना है, बेटा ? तेरा स्टेशन तो नही गुजर गया ?"

मन म कुछ छिल-सा गया। कहने को हुआ 'उर्मि कौन से स्टेशन पर उतर गयी ?—उतरना तो मुझे वही था'—पर मुह बन्द कर लिया। खडी गाडी म से बाहर की तरफ देखा—स्टेशन का नाम पढ़ा, और कहा, "अगले स्टेशन पर

उतरूँगा ।"

अचानक खयाल आया कि यह रजाई जरूर इसी आदमी ने मुझे ओढायी होगी। मैं ने हैरान उस की ओर देखा, "रजाई "

"क्या हुआ बेटा ! तेरे पास भारी कपडा नही था, मेरे ऊपर तो इतना मोटा खेस भी है "

क्या यही बूढा आदमी मेरे सपने म उर्मि बन गया था ?

जो जहाँ भी किसी का कुछ सँवारता है, क्या वह हर जगह उर्मि है ?

अगला स्टेशन आ गया । मैं ने रजाई वापस की तो हाथ से धीमे से उस आदमी की बाह छुई

यही—एक पल का भुलावा कि मैं ने हाथ से उर्मि की बाह छुई थी

सारे होश, सारे हवास ठीक है। हकीकत और भुलावो के बीच अभी मै एक लकीर खीच सकता हूँ

घर—माँ उसी तरह मास और कपडो की गठरी-सी बनी खटिया पर पडी हुई थी ।

पिताजी ने चूल्हे पर चाय चढायी, पर मुझे लगा—उन्होने मेरी ओर ऐसे देखा जस मैं पराया डगर उन के खेत मे आ घुसा होऊँ

देखा—उन के हाथ की एक उँगली पर पट्टी बँधी हुई थी । पूछा, 'उँगली म क्या हो गया ?"

'कुछ नही," पहले उन की आवाज कुछ कस सी गयी। फिर कहने लगे, 'तेरी माँ खटिया पर पड गयी है, चूल्हे मे भी मुझे ही हाथ जलाने पडते है "

उन्होने जब मेरे लिए गिलास मे चाय डाली तो गिलास उन के हाथ से पकडते हुए, अचानक मेरे मुह से निकला, 'अनामिका ।"

"क्या ?" उन्होने घरकर पूछा ।

"यही आप की उँगली, यह चीची के साथ की उँगली है न, पुराणो मे इस उँगली का नाम नही लेते, इसी लिए इसे अनामिका कहते हैं "

"तू पुराण कहाँ से घोट आया है ?"

'कॉलेज की लाइब्रेरी म पढे थे "

जब आया था—तो मन म ऐसा कुछ नही था कि मुह से कुछ कहा-सुनी करूँगा । पर सामने एक उँगली पर पट्टी बँधी देखकर, एक खयाल आया, तो मुझ से मुह रोका न गया ।

पूछा, "आप को पता है इस उँगली को अनामिका क्या कहते है ?"

उन्होने जवाब नही दिया ।

मैं ने ही फिर कहा, "इस उँगली से शिव ने ब्रह्मा का सिर काटा था। इसी लिए इसे आज तक अपवित्र मानते हैं "

उन के हाथ में पकड़े चाय के पतीले में से काफ़ी-सी चाय छनककर चूल्हे में गिर गयी।

रोने जैसी हँसी आयी। अपना चाय का गिलास मैं ने उन के आगे रखकर कहा, "आप यह चाय पी लो, मैं अपने लिए और बना लूंगा।"

दोपहर में, मां घर पर अकेली थी, जिस वक्त मेरा ध्यान आंगन के एक कोने में लगी हुई तुलसी की तरफ़ गया। पत्ते काफ़ी मुरझाये हुए थे। माँ तो इसे रोज पानी दिया करती थी, कभी चूकती नहीं थी, फिर तुलसी को क्या हो गया?

मुंह से निकल गया, "माँ, तुलसी को अब पानी नहीं देती हो?"

मां हर वक्त ऊँघती-सी पड़ी रहती थी—न पता लगता था, सो रही है, न पता लगता था, जाग रही है। मेरी आवाज सुनकर चौंक-सी गयी, और कहने लगी, "मेरी तो मति को ही आग लग गयी है सूख गयी तुलसी!"

"मैं पानी दे दूं!—अभी जड़ से हरी है।" मैं ने कहा, और लोटे से तुलसी को पानी देने लगा।

पानी देते हुए तुलसी की कथा याद आयी, सुनाई तो कभी माँ ने ही थी, कहा, "माँ! तुलसी तो शंखचूड़ को ब्याही थी न?"

"हां।" माँ ने हुंकारा भरा।

"फिर जब इस की पूजा करते हैं, इस का ब्याह विष्णु के साथ क्यों रचाते हैं? इसे विष्णु-वल्लभा कहते हैं, विष्णु की प्यारी "

"वह तो " मां कुछ कहते-कहते रुक गयी।

मैं ने ही कहा, "मुझे थोड़ी-सी कहानी याद है, तुलसी जब शंखचूड़ को ब्याही गयी, तो एक बार शंखचूड़ घर पर नहीं था, और विष्णु तुलसी के पास चला गया। वह विष्णु को बड़ी अच्छी लगी थी है न? फिर दोनों को शाप लग गया। तुलसी गंडका नदी बन गयी, और विष्णु शालग्राम पत्थर होकर उस नदी में रहने लगे। तुलसी का पौधा तुलसी के बालों में से उगा था न?"

माँ ऐसे ही सिर हिला रही थी, जैसे तुलसी की कहानी को सुनती और ही सोचों में पड़ गयी हो।

मैं कहता गया, "पर मां! साथ ही तो दोनों को शाप लगा कि उन्होंने बुरा काम किया था, और साथ ही अब उन की पूजा करते हैं, और तुलसी तथा शालग्राम का ब्याह रचते हैं "

"देवताओं की बातें और, मनुष्यों की और " मा ऐसे कह रही थी, जैसे झूर रही हो

मैं मा के पास उस की चारपाई पर जा बठा। बोला, "पर मनुष्य अगर कभी देवताओं को नाराज़ कर ले, तो इस मे क्या हज होता है ?"

मा अपने पल्लू से आखो को पोछने लगी। धीरे से उसके मुह से निकला, "लिखा हुआ कान मिटाये "

"पर मा !" आज मेरी हिम्मत पड गयी, कहा "लोग मरे हुओं की पूजा करते हैं, क्या पता किसी दिन हमारी उर्मि की पूजा भी करेंग "

मा फूट पडी, "अरे मेरे कलेजे म कचोट होती है, चुप हो जा !"

और वह घुटनो पर सिर रखकर जैसे बिल्कुल खो गयी हो



मैं फिर शहर पहुँच गया। पर पहुँचना कहा था—जहा से चला था वही पहुँच गया।

उर्मि की बात भी जहा से चली थी, फिर स वही पहुँच गयी है मेरे पैरो के नीचे वही चौराहा है—जिस म से वही चार रास्ते फटते है

गौतम का हाल देखने के लिए गया। उस का यह हाल देखना भी मेरी किस्मत मे था।

वह कमरे के बीचोबीच आग जलाकर एक कागज़ को आग के अगारा पर सुखा रहा था। कागज़ पर कई लकीरे खीची हुई थी। लकीरो के खाना म ह्‌ अक्षर चौबीस बार लिखा हुआ था। किसी अक्षर को मात्रा, किसी को बिन्दी और बिलकुल बीच मे 'उर्मि' लिखा हुआ था।

गाँव गया तो सोचा था कि गौतम के भाई का जाकर उस का हाल बता आऊँ। न उस की माँ ज़िन्दा थी, न बाप। एक भाई था, वह भी सगा नही था। पर फिर भी कहने गया था कि गौतम बीमार है, कोई उस के पास जाकर रहे तो

ठीक है। पर उस के भाई ने बात को टाल-सा दिया था। उस ने कहा था कि वह किसी दिन जाकर उसे गाव ले आयेगा।

गौतम उसी तरह कमरे मे अकेला था। मैं ने कुछ नही कहा। चुप होकर उस के पास, आग के पास, बठ गया।

उस ने खुद ही मेरी तरफ देखा और हुलसित-सा कहने लगा, "यह बडा बढिया मन्त्र बताते हैं। कहते हैं—इस से कोई सौ योजन दूर हो, तो भी झट से आ जाता है।"

"अच्छा !" म ने दबी आवाज मे कहा।

"यह लिखना मुश्किल नही था " उस ने फिर कहा, पर मेरी तरफ़ देखा नही। शायद वह कागज को आग पर सुखाते हुए इस ध्यान मे था कि कागज कही आग के ज्यादा निकट न आ जाये।

मै ने ही बात को चलाये रखने के लिए पूछा, "यह कसे लिखा जाता है ?"

उस ने ध्यान कागज की तरफ रखा और जवाब दिया, "काले धतूरे के पत्तो को पीसकर उसके पानी मे गोरोचन मिलाते हैं।"

"गोरोचन क्या होता है ?" मैं ने पूछा।

वह मुसकरा पडा। कहने लगा, "मुझे भी तेरी तरह पता नही था। फिर पता लगा कि यह गाय या बैल के पित्ते म से निकली हुई पीली-सी चीज होती है।"

"अच्छा !"

"बस, फिर कागज पर स्याही की जगह इस से यह अक्षर लिख दिये जाते हैं। जो कोई खो गया हो, बीच म उस का नाम लिखा जाता है—यह देख, बीच म उर्मि लिखा हुआ है।"

मेरा सिर झुक-सा गया। आँखें उठाकर उस की तरफ देखा न गया।

कमरे म कुछ टहनिया बिखरी पडी थी। यूँ ही एक टहनी को हाथा म पकड कर, म ने उँगलिया का आरे-सा लगा लिया।

वह कहने लगा, "हाँ सच, यह अक्षर जिस कलम से लिखे जाते हैं, वह कलम सफेद कनेर की टहनी से बनायी जाती है "

यह गौतम—जिस ने यूनिवर्सिटी से वजीफा लिया—शोध करने के लिए आँखें भर-भर आयी

अब वह काम पर नही जाता था जहाँ पढाता था। मै दूसरे दिन वहाँ जाकर उस की बीमारी की दरखास्त देकर उस के लिए छुट्टियाँ ले आया।

शहर मे अस्पताल बहुत बडा था, मैं गया—पर घटा यही लगा—जस म बीमार और जख्मी लागो के एक जगल म घिर गया होऊँ। कई घटे एक लाइन मे खडा रहा—पर आग कही पहुँचने की जगह, जहाँ खडा था, अस्पताल के वक्त

के खत्म होने तक देखा, कि मैं वहीं खडा हुआ था।

उस के अगले दिन—बहुत जल्दी, लाइनें लगने से पहले ही अस्पताल के दरवाज़े पर जा खडा हुआ। अब मेरे आगे कोई नहीं था, पर पीछे धीरे धीरे एक क़तार बनने लगी। यह डॉक्टर के दरवाजे के आगे खडी होने वाली कतार नहीं थी, यह सिर्फ उस मुंशी की मेज के आगे खडी होने वाली कतार थी, जहाँ से अस्पताल का कार्ड बनवाना था।

अस्पताल के खुलने का वक्त नौ बजे था, पर साढे नौ बजने वाले थे, मुंशी कही दिखता नही था। मेरे लिए खडा होना बहुत मुश्किल नहीं था क्योंकि मैं बीमार नहीं था, मुझे तो गौतम के लिए एक कार्ड बनवाना था। पर मेरे पीछे लगी कतार में सब बीमार खुद आकर खडे हुए थे। उन के लिए परों के बल खडा होना बडा मुश्किल था। कई वहीं अपने नम्बर के मुताबिक जमीन पर बैठ गये थे, और कइयों के मुह से निकलती हाय हाय की भी जैसे कतार लग गयी थी

पीछे मुह करके हाय-हाय की कतार को देख रहा था कि अचानक मेरे मुह पर—मिट्टी धूल का एक बगूला-सा पडा। मुह पलटकर देखा—मुंशी आ गया था, और अपनी मेज झाड रहा था

खैर, कार्ड बन गया, और मैं कार्ड हाथ मे पकडकर, डॉक्टर के कमरे का नम्बर पूछकर, उस कमरे के बाहर जा खडा हुआ। कमरे के आगे स्टूल पर बठे चपरासी की मिन्नत की कि मुझे डॉक्टर साहब के सिर्फ दो मिनट लेने हैं, मरीज को साथ नहीं लाया, सिर्फ उस की हालत अकेले डॉक्टर को बतानी है। सिर्फ दो मिनट और मैं कमरे की चिक उठाकर जब अन्दर जाने लगा, तो चपरासी ने रोक दिया, "वक्त हो गया है, पर अभी डॉक्टर साहब नहीं आये।"

मैं इन्तजार करता रहा—चाहे मुझ से आगे किसी और की बारी नहीं थी, पर ऐसे जैसे मैं सब से पिछली बारी वाली जगह पर खडा होऊं। पूरा एक घंटा बीत गया। फिर अन्दर टेलीफोन की घंटी बजी, चपरासी अन्दर जाकर टेलीफोन सुन आया, तो बाहर आकर मुझ से कहने लगा, आज डॉक्टर साहब ने छुट्टी ले ली है, अब नहीं आयेंगे। कल आना।"

सवाल कहीं कोई किया ही नहीं जा सकता पता नहीं सारे सवालों के जवाब कहाँ चले गये है

कॉलेज से ली हुई छुट्टी मेरी आज भी बेकार गयी। प्राइवेट डाक्टर के लायक पैसे कहीं से भी आ नहीं सकते थे

एक या दो दिन की फीस के लायक हो जाते, पर उसे तो रोज के सोलह रुपये लेने थे—मन के मरीज के साथ पैंतालीस मिनट बातें करने के सोलह रुपये

कॉलेज का वक्त गुजर गया था। दोपहर में खाली था—मैं गौतम की तरफ

चला गया।

कितनी अजीब वेतुकी बात है कि जाकर देखा—गौतम की भी उसी उँगली पर पट्टी बँधी हुई थी, जिस को अनामिका कहते हैं।

"यह तेरी उँगली को क्या हुआ?"

"कुछ नही, मैं ने इस में से थोड़ा-सा ख़ून निकाला था।"

'तुझे पता है इस उँगली को अनामिका कहते है?"

"हा, पता है, इसी लिए इस म से ख़ून निकाला था। यह देखो " उस ने कमीज का बटन खोलकर अपनी छाती से अटकाया हुआ एक काग़ज़ निकाला—जिस पर एक चौरस खाना खिचा हुआ था और बीच मे ख़ून से लिखा हुआ था—'ॐ का द ही नम उमि माकरपय ॐ क्ली '

और गौतम ने हुलसकर कहा "यह मत्र अनामिका उँगली के ख़ून से लिखकर छाती के पास रख छोडें, तो इस पर जिस का नाम लिखें, वह रात को जरूर आता है "

मेरे होंठ कापकर रह गये, बोला नही गया। आँखो मे आये आसू शायद मुह पर दिख पडे थ। गौतम ने हैरान होकर पूछा, "तू रोता क्या है?"

मुझे रुलाई आ गयी। मैं ने उसे बाँहा मे लेकर कहा, "एक आखो से ओझल होकर मर गयी, दूसरा आखो के सामने मर रहा है। मै कहाँ जाऊँ "



कॉलेज से आया तो बन्द दरवाजे म एक पर्चा अटका हुआ था, मेरे मिलिटरी वाले चाचा का। लिखा था, "सुबह मैं और भाई दोनो आय थे, पर दरवाजा बन्द था, तू कॉलेज जा चुका था। वापिस आकर कमरे मे ही रहना, हम दोपहर म फिर आयेंग।"

कमरे म रहना था, इस लिए बठा रहा। पर गिनती के घटा म लाखा दलीलें कसे आती हैं, यह मुझे इस वक्त पता लगा।

—चाचाजी भी और पिताजी भी दोनो अचानक शहर क्या आये ? चाचा छुट्टी आया होगा, या पिताजी ने कोई मुसीबत पडने पर खास तौर पर बुलाया होगा ? क्या पता, पुलिस ने कोई सोई हुई बात जगा ली हो ? क्या पता शहर किसी बडे अफसर से मिलने आये हों ? क्या पता, सारी ही खबरें गलत हों, और उर्मि जिन्दा हो, और अब बच्चे के होने का वक्त आ गया हो

निराशा की आदत डाल ली हो, तो आशा का जरा-सा भी झोंका झेलना मुश्किल हो जाता है उर्मि के जिन्दा रहने की कल्पना ने मेरे रोम रोम से बिजली छुआ दी मैं जसे वहीं बठा था और मेरे पैर सारे शहर में दौड रहे थे उर्मि को ढूंढ रहे थे

शायद उसे अस्पताल ले गये हों यह वक्त गाँव में तो नहीं काटा जा सकता था पर इतने दिन उर्मि को रखा कहाँ ?

परछाइयों में लकीरें भरने लगी। और अचानक—अचानक एक रंग-सा भर गया—हाँ, चाचाजी को मिलिटरी अस्पताल में सारी सुविधाएँ मिल सकती हैं—इस लिए चाचाजी को बुलाया होगा यह वक्त और कैसे गुजारा जा सकता था

और कमरे में बैठे हुए भी मेरे पैर जैसे गौतम को ढूंढने के लिए दौड पड़े

कमरे का दरवाजा हिला, मेरी आखें जसे दरवाजे पर ही जमी हुई थी। देखा—सामने चाचाजी थे।

"क्या हाल है बरखुर्दार !" चाचाजी यह कहते हुए कमरे में आ गये और उन्होंने मेरे सिर पर प्यार किया।

मैं अभी भी उन के पीछे खाली दरवाजे को देख रहा था—पर वह अकेले थे।

पूछा, "पिताजी ?"

"वह अभी अस्पताल में हैं मैं अभी घंटे भर में अस्पताल जाऊँगा"

चाचाजी कह रहे थे कि लगा मेरा दिल मेरी छाती में सँभल नहीं रहा था जो सोचा था क्या वह ठीक था ? उर्मि सचमुच जिन्दा थी ?

मुंह से निकला, "मिलिटरी अस्पताल ?"

"हाँ, भई," चाचाजी चारपाई पर बैठते हुए कहने लगे, "वहीं कुछ सुनवाई हो सकती थी, दूसरे अस्पतालों में हमें कौन पूछता है"

आखों में शायद पानी आ गया था, मुझे चाचाजी का मुँह न दिख सका। कमरा भी नहीं दिख रहा था। सब कुछ जसे पानी में डूब गया हो।

और आखों के पानी में से उर्मि का मुँह तर आया देखे जा रहा था आँखें नहीं झपका रहा था कि उस का मुंह फिर कहीं लोप न हो जाये

आँखा का पानी शायद मुंह पर ढलक पडा था। चाचाजी ने मुझे बाँह से पकडकर चारपाई पर पास बिठाते हुए कहा, "फिकर न कर, भाई ठीक हो जायेगा।"

"क्या ?" मेरे होश को जैसे ठोकर लग गयी हो।

"वैसे तो भाई के होशो हवास ठीक हैं—बस कानो पर ही पर्दे-से आ गये हैं, सुन कुछ नही पडता "

उर्मि का मुँह मेरी आँखो के आगे, रत के महल की तरह झर गया मैं उसे भौचक्का-सा सामने देख रहा था।

"तू जब पिछली वार गाव गया था, भाई को कोई तकलीफ लगती थी ?" चाचाजी ने पूछा।

"नही।"

"बात कुछ ऊँची सुनता था ?"

"नही।"

"तेरी माँ भी यही कहती थी बस, एक दिन सोकर उठा तो कान से कुछ सुनाई ही न दिया। न कोई चोट लगी, न कान मे कोई फोडा फुसी " चाचाजी ने गले का कोट उतारकर पाये के पास रख दिया, और चारपाई पर जरा आराम से बठते हुए कहने लगे, "यह तो मैं यूँ ही आ गया। वसे वह ठीक था, उठकर उस ने मुझे गले से लगाया, पर उसे कान से कुछ भी नही सुनाई पडता। मैं उस के कानो से मुह लगाकर ओर-ओर से भी बोला, पर उस ने हाथ हिला दिया कि कुछ सुनाई नही देता। पता नही मुकद्दर का ही कोई खेल है "

"मैं जब गया था तब ठीक थे।" मैं ने बताया।

"तेरी माँ भी यही कहती थी। बस जिस दिन तू आया, उस के दूसर दिन ही यह हो गया।"

'फिर ?"

"कानो के पर्दे दिखाने थे, कही फट तो नही गये। सो मुश्किल से मनाकर शहर लाया हूँ। घर कुछ दारू-दरमत किया था, पहले कड आ तेल गरम करके कानो मे डाला था, फिर रात ब्राडी की दो चार बूँदें गम करके डाली, पर अन्दर कोई फुसी वुसी नही दिखती, न उसे पीडा होती है। सो डॉक्टर देख रहा है। चार बजे जायेंगे तब शायद कुछ पता लगे "

सो उर्मि न थी, न होगी

'आप रोटी खायेंग ? नीचे बाजार से ले आऊँ ?' म ने चाचाजी से पूछा।

'ना भई, रोटी तो मैं आता हुआ राह मे खा आया हूँ। जाते हुए चाय का घूट जरूर पीऊँगा। पर अभी नही।" चाचाजी ने कहा, और फिर जरा सा रुक कर कहने लगे, "पडी भर तेरे साथ भी बातें करनी थी।"

"कहिये।"

"सच सच बतायेगा न ?"

"आप को यह भी पूछने की जरूरत पड गयी ?" एक वडी ही कड ई सी हँसी आयी।

"हमारी लडकी कहाँ है ? कुछ भी हो, आखिर अपनी वेटी है "

"किसी की वहन है, किसी की वेटी है, पर शायद किसी की भी कुछ नही थी " मुह मे आई हुई कडआहट मुँह से निकल गयी। पर लगा, मुये कुछ नही कहना चाहिए था।

"सुना है—वहाँ अगलो के घर राजी नही थी " चाचाजी ने फिर मुझे कुरेदा।

"आप आये तो ये ब्याह के वक्त। आप को पता ही है कि उस का बाँधकर ब्याह किया गया था। मैं तो तब छोटा था आप को शायद पता होगा " मैं ने जवाब दिया।

'हाँ हाँ " चाचाजी ने कुछ सोचकर कहा, "कानो म भनक तो पडी थी कि उस की मर्जी किसी और जगह है, पर हम ने तो अपनी तरफ से उस का ही भला चाहा था, वडा खाता-पीता घर ढूढा था "

मैं ने कुछ नही कहा। चाचाजी ही कहने लगे, "अ दर बिठाकर भाभी ने मुझे बताया था, भई जहाँ उस की मरजी है उस का घर ठिकाना कोई नही। माँ-बाप उस के सिर पर नही, घर सौतेला भाई है, उसे कौडी भी देने वाला नही। आँखो से देखते हुए लडकी को वहाँ धक्का कसे दे देते "

कहने को वहुत कुछ था, पर क्या कहता।

चाचाजी चारपाई पर आराम से पडे होते हुए भी, फिर उठकर बैठ गय। कहने लगे, "यहाँ तेरे पास आकर शहर मे फिर पढ़ने लगी थी ?"

सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

"सुना है, वह जना भी यही शहर मे था ?"

मैं ने फिर सिर हिलाकर 'हाँ' कह दिया।

"पर अगर वह मद का बच्चा था तो सीधी तरह उस की वाँह पकडता। मेरे और तेरे बाप के सामने आकर बात करता। चलो हम, जहाँ लडकी का मन नहीं मानता था, वह रिश्ता तुडवा देते। पर वह चोरो की तरह क्यो ले गया ?" और चाचाजी एक ही साँस मे फिर कहने लग, "ले भी गया था, तो बाप का बच्चा होता, उस की लाज रखता—उस ने आगे कही "

"चाचाजी," मैं चीख सा पडा। फिर सँभलकर कहा, 'यह सब कुछ आप कहाँ से सुनकर आये हैं ?"

चाचाजी कितनी ही देर तक मेरे मुँह की तरफ देखते रहे, फिर कहने लगे,

"भाई भी यही कहता है और सारा गांव भी "

मन बड़ा बोझिल सा हो गया था। मैं इतना ही कह सका "उर्मि ऐसी नहीं थी, नहीं वह आदमी "

चाचाजी सोच में डूबे रहे, फिर कहने लगे, "किसी का मुँह नहीं पकडा जाता, तेरी चाची ने तो कुछ और भी सुना है लोग मुँह पर कुछ नहीं कहते, पर पीठ पीछे कई बातें करते हैं " और फिर अचानक मेरे कांधे पर हाथ रखकर कहने लगे, "तू भी तो अब नादान नहीं तू बता ! तू क्या सोचता है ?"

मैंने अभी कुछ नहीं कहा था कि चाचाजी पूछने लगे, "तू तो शहर में था, तू ने कभी उसे देखा, तुझे वहाँ भी वह उदास-उदास लगती थी ?"

'नहीं चाचाजी ! वहां वह बहुत खुश थी "

'फिर यह तो ठीक नहीं लगता कि उस ने अपने को खुद ही खत्म कर लिया हो '

बिल्कुल नहीं।'

"फिर तेरा क्या खयाल है कि किसी ने जबरदस्ती उस को "

"उस के साथ जो कुछ भी हुआ है जरूर किसी ने जबरन किया है "

"शायद उन लगतों ने तैश में आकर "

"यह मुझे कुछ पता नहीं।"

"लोग तो " चाचाजी ने जैसे अपनी जीभ काट ली, "नहीं, नहीं, मैं यह नहीं मान सकता "

पता था चाचाजी ने क्या सुना था और क्या कहने लगे थे। पर फिर भी पूछा, "क्या ?'

'मेरा भाई ऐसी बात नहीं कर सकता," और आवाज पर जोर-सा देकर वह कहने लगे, "उस का मन कहीं लगा हुआ था, यह बात तो समझ आती है, पर हमारी लडकी ऐसी नहीं थी कि एक को छोडकर दूसरे के पास, और दूसरे को छोडकर तीसरे के पास "

"नहीं चाचाजी ! उस के घर तो बच्चा "

'हैं ? क्या कहा ?"

"बस दो-तीन महीने रहते थे वह आदमी तो उसे ढूंढता पागल हुआ फिरता है "

चाचाजी कितनी देर तक माथे को पकडकर बैठे रहे

चाचाजी, चार बजने वाले हैं।" मैं ने हाथ की घडी की तरफ देखा।

"अच्छा, चल फिर चलें। तू मेरे साथ चलेगा न ?"

"चलूंगा। "

'दस मिनट ठहर जा, मेरा जी ठिकाने नहीं आ रहा है।" वह फिर चार-

पाई पर अधलेट-स हो गय ।

आप न कहा था चाय का घूट "

' नहीं, इस वक्त नहीं " कहते हुए वह फिर चारपाई पर स उठ बठे, और मुझे कधे स पकडकर कहने लग, ' यह जरूर कन्या वाले होंगे, उन क पास पैसा भी बहुत है, पैसे के जोर से सब कुछ हो सकता है, वह पुलिस की आंखो म भी मिट्टी भाक सकत हैं '

मैंन चारपाइ क पाय पर स उठाकर उन का कोट पकडाया, तो कोट को गले म डालत हुए वह कहन लग, ' मर भाई का खून सफद नहीं हो सकता नहीं, नहीं '

मैं और चाचाजी जब अस्पताल पहुंच, डाक्टर न अपनी रिपोर्ट लिखकर रखी हुई थी, और पिताजी एक बेंच पर बठ ऊंघ रहे थ ।

मैं पास जाकर खडा हुआ तो वह जाग पडे । पूछन लगा, "डॉक्टर न क्या कहा है ?" कि लगा—उन्ह बिलकुल ही कुछ सुनाई नहीं दे रहा हो । उन्होंने अपन कान के पास हाथ लाकर हिलाया, इशार से बताया, "कुछ नहीं सुनता ।"

मैं और चाचाजी डाक्टर क पास कान की रिपोट समझते रह, "कानो की सब नाडियाँ और पर्दे ठीक हैं । कही कोइ जख्म या खराश नहीं । जिस्मानी नुक्स कही नहीं "

शायद अब और कुछ पूछन या समझन लायक नहीं था



दूसर दिन बडे सवेरे अभी साया पडा था, कमरे का दरवाजा खटका । उठकर दरवाजा खाला, बाहर गौतम खडा था ।

वह कमरे की दहलीज लांघ आया, पर बठा नहीं । उसी तरह खडे-खडे कहन लगा, "भोजपत्र चाहिए, छोटा-सा टुकडा, कहां मिलेगा ?"

इस के सिवाय कुछ नहीं कहा जा सकता था, "कहीं ढूँढूँगा। तू यहाँ चारपाई पर बैठ, मैं नीचे बाजार से दो प्याले चाय ले आऊँ ।"

"नहीं, वक्त बडा थोडा है " वह उसी तरह खडा रहा।

"कहा जाना है इतनी जल्दी ?"

"जाना नहीं, पर तुझे पता है आज क्या तारीख हो गयी है ?"

"आज—बाइस जनवरी।"

"उर्मि बाइस अक्तूबर को गयी थी "

मन मे आया—गौतम को यह तारीख ठीक याद थी, शायद उस के अन्दर का तवाज़न बहुत नहीं बिगडा था, और शायद अब वह ठीक हो रहा था

वह कहने लगा, "तब उर्मि को सातवा महीना लगा था, इस का मतलब है कि अब पूरे दिन हो गये होंगे। बस, आज या कल हमारा बच्चा "

मुझ से आगे नहीं सुना गया। वह उसी तरह खडा हुआ था, मैं ही निढाल चारपाई पर बैठ गया।

उस ने इधर चारपाई के पास आकर मुझे एक कागज दिखाया जिस पर दो बडे खाने और नीचे दो छोटे खाने बने हुए थे। ऊपर के खाने मे 'क्लीं' लफ्ज लिखा हुआ था, निचले म पाँच 'ह्रीं', तीन 'क क्रे क्रों' और छोटे खाने मे एक एक 'ल्.' '

"इस बीच की खाली जगह पर गर्भवती का नाम लिखकर रख लें, तो बच्चे को कोई खतरा नहीं रहता।" गौतम कह रहा था, मैं रो रहा था, और इस बच्चे की माँ कहीं रोने लायक भी नहीं रही थी

"पर यह साधारण कागज पर नहीं लिखा जाता यह भोजपत्र पर चन्दन से लिखते हैं "

वह कह रहा था, धरती-अम्बर सुन रहे थे, पर चुप थे

उस के मन को और तरफ लगाने के लिए मैं बोला, "तुझे डाक्टरेट करना है, सबजेक्ट कौन सा लेना है ?"

"चल उठ, कहीं पता करें, भोजपत्र कहाँ मिलेगा।"

हम दोनों जैसे बहरे हो गये थे, उसे मेरी बात सुनाई नहीं देती थी, मुझे उसकी बात।

नहीं—हमारे कानों को कुछ नहीं हुआ था सारी दुनिया बहरी हो गयी थी, जिसे हमारी आवाज सुनाई नहीं देती थी

गौतम अपने ही खयाल म खडा हुआ था। मैं ने कहा कुछ नहीं, पास से गुजरकर सीढ़ियाँ उतर गया। नीचे बाजार मे चाय की दुकान नजदीक ही थी, मैं उबले हुए अण्डे, थोडे-से बिस्कुट और चाय लेकर आ गया।

उर्मि वाली चारपाई अभी भी मेरे कमरे म उसी तरह उसी जगह बिछी

हुई है। मैं ने हाथ उधर करके गौतम को बैठने के लिए कहा, तो वह बैठ गया। उस के पास पडी हुई छोटी सी मेज पर मैं ने चाय रखी और अण्डे छीलने लगा।

गौतम ने एतराज नही किया, चाय ले ली। आधी पी थी कि उसे कुछ याद आ गया। उस ने चाय का गिलास मेज पर रखकर जेब म हाथ डाला, और एक कागज निकालकर कहने लगा, "यह मेरे पास एक और मन्त्र है, इस से जो भी उर्मि को दु ख देगा, उस का नाश हो जायेगा। पर यह नही यह मै नही लिखता "

"क्यो ?" मैं ने ऐसे ही पूछ लिया।

वह कहने लगा, "यह कोए और उल्लू के ख न से लिखा जाता है—मरघट म से मनुष्य की खोपडी लाकर, उस खोपडी पर। मुझ से मनुष्य की खोपडी को हाथ नही लगाया जायेगा "

गौतम का मुह सामने था। अचानक मेरे अपने बाप का मुह भी सामने आ गया—जिस ने किसी गर पराये की नही, अपनी ही बेटी की हड्डियो को और खोपडी को हाथ से उठाया, बहाया या दबाया होगा

"यह सब जतर मतर छोड दे गौतम। हम दोनो पागल हो जायेंगे। इन से कुछ नही होने का "मै ने गौतम के घुटनो के पास बैठकर एक ही वास्ता डाला।

"तुझे नही पता " गौतम ने एक भरोसे से कहा, "तू साइ बाबा के पास जाकर देख, वहाँ लोगो की भीड लगी रहती है। इन्ही मन्त्रो से कइयो के कारज सिद्ध हुए है।"

गौतम को बचाने की मुझे जसे राह मिल गयी। मै ने जल्दी से कहा, "अच्छा, तू मुझे साई बाबा के पास ले जायेगा ?"

"तू चलेगा ? वह रेलवे लाइन के पार वाली झोपडियो मे रहता है। हमेशा यहाँ नही रहता, पता नही कब चला जाये " गौतम ने हाथ म पकडा हुआ बिस्कुट का टुकडा फिर प्लेट मे रख दिया—जैसे हमारे जाने मे देर हो रही हो।

शनिवार था, कालेज सिर्फ एक ही पीरियड के लिए जाना था, मैं ने कालेज का खयाल छोड दिया, कहा, "अच्छा, अभी चलते है।" सोचा—साइ बाबा की मिन्नत करूगा—बाबाजी, हम मरे हुओं को न मारो

पर मैं और गौतम रेलवे लाइन को पार करके, कच्ची राह की मिट्टी छान कर, साइ बाबा वाली झोपडी मे पहुचे तो वहाँ औरतो और मर्दों का इतना झुरमुट पडा हुआ था जसे जिन्दगी की सारी आशाएँ वहाँ मिट्टी म रेंग रही हो।

हम भीड के आखिरी सिरे पर थे, पर साइ बाबा की आवाज वहाँ भी ऊँची ऊँची कानो मे पड रही थी ' सदाशिव सदानदकरुणामृतसागरम तन्त्रविद्या क्षणसिद्धि कथ्यसव मम प्रभो '

साइ बाबा का मुह उम्र से पका हुआ और एक अच्छा हठीला मुह था। आखें एक ही नजर से चारो तरफ की भीड को परख लेने वाली। मै ने देखा—साई बाबा की नजर मेरे मुह पर चील की तरह झपटकर गुजर गयी। मैं एक नया चेहरा था, शायद मेरे मुह पर दीनता और विश्वास की मुहर नही थी देखा—वह नजर दूसरी बार यपटी, तो साइ बाबा की आवाज और ऊँची तथा सख्त हा गयी, 'शाति और पुष्टिकम मे सत्ताईस दाने की माला पिरोयी जाती है वशीकरण म पद्रह दान की, उच्चाटन मे सत्ताईस दाने की, विदवेषण म इक्त्तीस दाने की, और आकपण म सत्तावन दाने की पृथक्-पृथक प्रकार के डोरे मे माला पिरोयी जाती है "

लोगो के इतने दीन मुँह म न कभी नही देखे थे। यह दुनिया ही जसे मै पहली बार देख रहा था, कमजार बीमार, बूढे, झुर्रियो वाले हाथ प्राथना म जुडे हुए थे। औरतें फटी हुई धोतियो से अपनी आखे पोछ रही थी। सब के वतमान और भविष्य जस उन की फटी हुई थोली म मे नीचे गिर गये हो

साइ बाबा कह रहा था, "वशीकरण मत्र सत्ताईस दिन म, मारक इकसठ दिन मे, मोहन इक्त्तीस दिन मे, आकपण और उच्चाटन इकतालीस दिन म, और विग्वेपण मत्र इक्यावन दिन मे अपना फल देंगे "

एक अधेड से दिखत आदमी ने साइ बाबा के एक पर को कसकर पकड रखा था। साइ बाबा ने उधर नजर की और कहा, "ॐ ह्री क्ली—महालक्ष्म्य नम—वटवृक्ष के नीचे एकाग्र मन से महालक्ष्मी यक्षिणी का जाप करें, दस हजार सख्या म, तो लक्ष्मी स्थिर हो।"

एक चादी का गोखरू सा उस आदमी ने साइ बाबा के आसन की कन्नी उठाकर रख दिया, और दानो हाथ जोडकर परे हो गया।

साइ बाबा का पैर खाली हुआ तो एक मरियल सी औरत न उस के पास एक रुपया रखकर जल्दी से वह पैर पकड लिया। उस न साइ बाबा को कुछ बताया, पर मैं दूर था, सुनाई नही दिया। सिफ साइ बाबा की आवाज सुनाई दी—श्वेत आक की जड पुष्य नक्षत्र म उखाडकर दाहिनी भुजा म बाधन से अभागी स्त्री भी स्वामी स सौभाग्य को प्राप्त हाती है

दु खो का अन्त नही था, किसी की नौकरी छूट गयी थी, किसी का जवान बेटा बरस भर से चारपाई पर पडा था, किसी की कोख बाँझ थी, किसी का भविष्य बाझ था

साइ बाबा क जतर-मतर और चाहे कुछ न हो, पर जि दगी के छोटे-मोटे बहलावे जरूर थ। पर लाग, राज के पता नही कितने लोग, बहलावा म डूबे हो रहे थे

और दखा—साइ बाबा के बताय मत्र कुछ तो मासूम-स लगते थे, पर कई

बहुत भयानक भी थे—जिन में कहीं चिता की राख थी, कहीं मनुष्य की खोपड़ी, कहीं मनुष्य की हड्डी में से गड़ी हुई सलाई या उल्लू, ऊँट और काने मुर्गे के खून की बात जैसे आम-सी थी। एक बार मैंने बाबा से सुना कि उसने किसी को श्मशान में जाकर किसी मुर्दे की छाती पर बैठकर एक मंत्र पढ़ने का आदेश दिया। दो घंटे के बाद जब साईं बाबा के इर्द गिर्द की भीड़ छँट गयी, मैंने साईं बाबा के बिल्कुल कान के पास आकर कहा, 'बाबाजी, किसी ने पुलिस के बड़े अफ़सर के पास शिकायत की है कि आप के कहने पर लोग रात मरघट में जाकर मनुष्यों की खोपड़ियाँ चुरा लाते हैं। पुलिस आप के पीछे लगी हुई है। परसों एक आदमी एक मुर्दे की छाती पर बैठा पकड़ा गया है।"

साईं बाबा की लाल-लाल आँखें मेरे ऊपर बड़े ज़ोर से झपटीं, पर मैं सिर नीचा करके और दोनों हाथ जोड़कर साईं बाबा के सामने बैठ गया।

साईं बाबा चुप हो गये। इतने चुप कि गौतम के बोलने पर भी न बोले।

मैं इतना जान गया कि अगर मिन्नत मोहताजी से साईं बाबा को कहूँगा कि लोगों को झूठे बहकावे मत दो, तो वह मेरी बात नहीं सुनने के।

पुलिस को कुछ कहने का सवाल ही नहीं था, किसी को कह सुनकर ले भी आता, तो उस साईं बाबा के पास से भी कुछ ले-देकर अपनी राह चला जाना था। ऐसे ही तीर-तुक्का-सा लगाया, चल गया तो भी, न चला तो भी।

चुप लम्बी हो गयी, तो मैंने गौतम का हाथ पकड़कर उठाया, "साईं बाबा की समाधि लग गयी है। चलो चलें। फिर कल आ जायेंगे।"

दूसरे दिन इतवार था, मुझे छुट्टी थी। इस लिए गौतम दूसरे दिन मुझे फिर खींचकर वहाँ ले गया। पर दूसरे दिन साईं बाबा सचमुच वहाँ नहीं था।



वह केयों वाला, उर्मि का नहीं, उर्मि के गहनों का सगा मुझे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता एक दिन मेरे कालेज आ गया। मेरे कमरे का शायद उसे पता नहीं था, या मिला

नही था।

उस ने मेरे नाम की चिट लिखकर मुझे बाहर न बुलाया होता, तो मैं उस को पहचान नही सकता था। पहले सिर्फ एक बार देखा था, वह भी सेहरे से ढँके मुह को, अब बिलकुल भी पहचान नही रह गयी थी। उस ने नाम-पता बताया, तो मैं पहचान सका।

हैरान था, अब उस मेरी क्या जरूरत पड गयी थी, पर जब उसे साथ लेकर मैं अपने कमरे मे आया, तो पता लगा कि उसे मेरी जरूरत क्यो पडी थी।

कमरे मे, मेरी एक आदत थी, गौतम जब आता, मैं उसे हमेशा उर्मि की चारपाई पर बिठाया करता था, और खुद उस के सामने हमेशा अपनी चारपाई पर बैठा करता था। पर आज मैं जल्दी से उर्मि की चारपाई पर बैठ गया, और अपनी चारपाई की तरफ हाथ करके उसे बैठने के लिए कहा। लगा अगर वह उर्मि की चारपाई पर बैठ गया तो उर्मि की रूह को, जहा भी वह होगी, दुख होगा।

सोच रहा था—अब उर्मि की बात वह क्या करेगा, कैसे करेगा, शायद मुझ से उस के खो जाने का या मरने का कोई भेद पूछेगा

वह कुछ देर चुप रहा। फिर कहने लगा, "वह जब यहाँ पढने के लिए आयी थी, उस के हाथो मे सोने के कडे थे?"

मैं ने जवाब दिया, "हाँ, पर वह छुट्टियो मे एक बार गाव गयी थी, वहाँ वापिस दे आयी थी।"

"नही,' उस ने धमकी-सी देकर कहा,"वह जिस आदमी के पास चली गयी थी, वह कडे उसी आदमी ने अपने पास रख लिये हैं। तू उस आदमी के पास जाकर वह कडे ला दे, नही तो " वह कुछ आगे कहता हुआ रुक गया।

मेरी हड्डियो मे कुछ जल-सा उठा, "नही, उस आदमी ने तुम्हारे घर के किसी गहने को या कपडे को हाथ नही लगाया।"

उस ने फिर जोर से कहा, "उसे जब वह भगाकर ले गया था, कडे उस के हाथो म पडे थे।"

"वह भगाकर नही ले गया था " कह रहा था कि मुह का फिकरा बीच म छोड दिया। लगा—उसे कुछ भी कहने की जरूरत नही थी।

उर्मि ने हाथो के कडे मेरे सामने उतारे थे, और इसी आदमी के छोटे भाई को गाँव से बुलाकर मेरे सामने सोप दिये थे। पर यह बात कहने से पहले मुझ एक अजीब खयाल आया

मैं ने जल्दी से कहा, "फिर शायद मरते वक्त उस के हाथो म ही पडे रहे हो "

'नही, उस के हाथो म नही थे " वह बात के जवाब म बोल गया।

सो—आज उर्मि की मौत मैं ने कानो से सुन ली। अभी तक कानो से कुछ नही सुन सका था। अपने बाप के मुह से भी नही, पर इस आदमी के मुह से आसानी से ही सुन लिया।

सो—दूसरी घोडी वाला इस का बाप था। उसी ने मरी हुई की बाँहे टटोली होगी

आग की एक लपट मेरे मुह मे जली, कहा, "अगर तुम्हे इतना पता है, तो यह भी पता होगा कि उसे काटकर नदी मे बहाया था कि जमीन मे दबाया था?"

"यू—शटअप " उस ने कहा, और चारपाई पर से उठ बैठा।

मैं भी चारपाई पर से उठकर खडा हो गया, और कहा, "फिर वह कडे जो किसी ने चोरी से रख लिये हैं, तो तुम्हारे अपने भाई ने रख लिये है। मेरी बहन ने वह कडे मेरे सामने तुम्हारे भाई को दिये थे।"

वह जाता-जाता खडा होकर कुहरी आँखो से मेरी तरफ देखने लगा और कहने लगा, "पर पहले तू ने कहा था कि शायद मरते वक्त उस के हाथो मे रहे हो "

"अब तुम्हे पता लग गया होगा कि मैं ने क्यो कहा था " मैं अभी कह ही रहा था कि वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गया।



उर्मि की चारपाई पर मैं पता नही कितनी देर तक औधा पडा रहा।

मैं जसे खुद अपने गले से लगकर रो रहा था।

मेरे कमरे की दीवारें—मुझे हाथो म पकडकर दबोच रही थी। इस कमरे से दौडकर, कही बाहर—सारी धरती और सारे अम्बर के गले से लगकर रोना चाहता था

अपना मन अपनी ही छाती म नही सँभाला जा रहा था। अचानक मास की गठरी बनी हुई माँ याद आयी, तो मुझे पहली बार उस पर बडा तरस आया।

अपनी छाती का सारा उबाल वह कसे अपने होंठो से पी गयी

मैं गौतम के घर की तरफ चल पडा,चल नही पडा, उठकर दौड-सा पडा

वह घर पर नही था। पता नही कहाँ था। वह साइ बाबा के पास जा करता था, पर अब तो वह भी वहाँ नही था। गौतम कहा चला गया ?

उस की गली के मोड पर एक तन्दूर है, शायद वहाँ हो ?—यही सोचता हुआ मै वहाँ गया। मुझे देखकर वह तन्दूर वाला मेरे कुछ पूछने से पहले ही कहने लगा, 'बाबूजी ! तुम्हारे दोस्त बाबूजी को पता नही क्या हो गया है, परसो वह गली के पिछवाडे वाले कीकर के नीचे जाकर बठे रहते है।"

"कीकर के नीचे ? इतनी ठड म ?" कहता हुआ म गली के पिछवाडे कीकर की ओर गौतम को ढूढने चला गया।

गौतम लोई ओढकर सचमुच कीकर के नीचे बैठा हुआ था। उस की आखें बन्द थी, इस लिए उस ने मुझे पास आते नही देखा।

मै चुपचाप उस के पास जा खडा हुआ। हाय राम रे ! आँखें बन्द करके वह यह क्या पढ रहा था

'बिसमिल्ला अर रहमान उर रहीम
सात चक्कर की बावडी, गल मोतियन का हार
लका सी कोट समुद्र सी खाई
जहाँ फिरे मुहम्मदा बीर की दुहाई
कौन बीर आगे चले, सुलेमान बीर चले
दुरानी बीर चले, नादरशाह बीर चले
मुट्ठी चले नही तो हजरत सुलेमान की सात दुहाई "

मैं ने गौतम को झझोडकर हिलाया। मुह से निकला, 'तू किस तरफ चल पडा गौतम ? एक तो उर्मि पता नही किस तरफ चली गयी, तू "

"यह मुट्ठी पीर की चौकी है," गौतम को शायद मेरे विघ्न डालने पर गुस्सा आया कहने लगा, "तू मुझे तीस दिन कुछ न कह, मुझे कीकर के नीचे बठकर हजार बार यह चौकी पढनी है।'

मुझे रोना आया और साथ ही गुस्सा। कहा, 'यह दस लाख बार पढ़ने पर भी कुछ नही बनेगा। गौतम, होश म आ। आ, हम सच का श्राक एक बार फिर चबा ले "

गौतम को मेरी बात सुनकर भी नही सुनाई दे रही थी। कहने लगा, "साई बाबा पता नहीं कहाँ लोप हो गया है, मेरे वे मत्र अधूरे ही रह गये। यह एक मुसलमान फकीर ने मुझे मत्र दिया है '

उस दिन मैं ने गौतम को कुछ नही बताया, आज बताया, 'तेरे साइ बाबा के

कान म मैं ने पुलिस का नाम लिया तो वह रातोरात भाग गया। मैं तेरे इस मुट्ठी पीर को भी भगा दूगा "

"साइ बाबा को तू ने उस दिन कान मे यही कहा था ?" गौतम हैरान और परेशान मेरे मुह की तरफ देखने लगा।

"दु खो स मति मारी जाती है गौतम। लोगो को अगर जि दगी म राह मिलती हो, तो वह इस तरह क्यो भटकें ! वह तो बेचारे लोग दुनिया का न कुछ जानत न बूझते, पर तू "

"हम भी तो कोई और राह नही मिलती " गौतम न निराशा से कहा।

"वह जीती होती तो कोई राह होती " मैं ने कहा, और गौतम का हाथ पकडकर, उसे कीकर के नीचे से उठाकर, उस के कमरे म ले आया।

सोने के कडो वाली सारी बात सुनायी, तो गौतम का बहुत दिनो का रुका हुआ रोना निकल पडा। उस की बाहो ने इस तरह तडपकर पास पडी हुई चार-पाई पर हाथ डाला जस उर्मि के बदन पर लगी हुई कुल्हाडी की सारी पीडा उसे हो रही हो

गौतम जितना रो सकता था, मैं सोच रहा था, रो ले। बहुत दिनो से उस ने जतरो मतरो के सहारे जो रोना रोका हुआ था, उस के अ दर से पीप की तरह निकल जाये। इस लिए म चुपचाप उस के पास बठा रहा।

गौतम, मन के इस आवेग म, चारपाई की पाटी से सिर हटाकर उठा। उस ने दीवार की अलमारी को खोलकर अलमारी के कुछ कपडो को ऐसे बाहो म भीच लिया, जसे उन कपडों के गले लगकर रो रहा हा

उर्मि के कपडो वाली यह अलमारी शायद उस ने आज पहली बार खोली थी

गुलाबी रग के ऊन के एक छोट से स्वेटर की बाँह, जसे अलमारी के खाने म से बाहर की तरफ अपने को फला रही थी

मेरे माथे मे जोर स पीडा होने लगी। साथ ही कुछ याद आया—पर मुह से कुछ बोला नही गया—वही बात, इसी वक्त गौतम को याद आयी।

कहने लगा, "एक दिन उर्मि जब यह स्वेटर बुन रही थी, तुझे याद है ?"

'हाँ, याद है।"

"उस दिन हम बहुत हँसे थे "

"हाँ।"

"उर्मि भी बहुत हँसी थी '—उस ने कहा, "बृहस्पति की औरत तारा को जब चन्द्रमा भगाकर ले गया तो इस बात पर बहुत बडी लडाई छिडी क्या पता अब भी कोई लडाई छिड पडे "

मुझे उस दिन की हँसी अक्षर अक्षर याद थी, कहा, उस न्नि मैं न कहा था

कि उस लडाई म चन्द्रमा की तरफ शिव था, और वृहस्पति की तरफ इन्द्र। अब जो गौतम और कन्या वाले के बीच लडाई छिडी तो गौतम की तरफ मैं होऊँगा, और कन्या वाले की सहायता के लिए हमारा बाप होगा

"उर्मि हँसती रही, और यह स्वेटर बुनती रही। कह रही थी, 'अगर लडाई मे जीतकर वह मुझे तारा की तरह वापिस छीनकर ले गये, तो भी गौतम का बेटा तो गौतम को दे जायेंगे, जैसे चन्द्रमा का पुत्र चन्द्रमा दे गये थे "

गौतम ने स्वेटर को मुट्ठी म भीच लिया, और बिलख पडा, "उन्होने तो हमारे साथ धोखे की लडाई लडी, लडना था तो सीधे हाथो लडते "

और फिर कपडो को सारी चारपाई पर बिखेरकर गौतम ने मेरी बाँह झँझोडी, "एक बार उसे पूछ तो सही, उस ने बाप होकर यह क्या किया "

"किसे पूछू गौतम !" मैं ने बाप की हालत उसे उस दिन पहली बार बताई, "जब उसे मेरी आवाज सुनाई देती थी, उस ने तब कुछ न बताया, अब तो उसे कुछ सुनाई ही नही देता "



चाचाजी का खत आया, उन की छुट्टी खत्म होने वाली थी, इस लिए मुझे एक दिन के लिए गाँव बुलाया था।

रात की गाडी से चला गया। दूसरे दिन इतवार था, छुट्टी लेने की जरूरत नही थी। पता नही किस लिए बुलाया था ? गाव म हमारी कोई खेती-बारी वाली जमीन नही थी, जो मुझ सौपनी थी। पिताजी शुरू से स्कूलमास्टर थे, और चाचा जी फौज म भरती हो गये थे। सारी उम्र की कमाई स उन्होने मिलकर आम के बगीचे खरीदे थे, जो ठेके पर दिये हुए थे। रोटी का गुजारा चल रहा था

घर पहुँचा तो चाचाजी वहाँ नही थ, एकदम सुन्न समाधि सरीखी हालत थी। माँ थी, बाप भी वही था, पर मिट्टी की मूर्तियो की तरह। माँ पहले ही कम

बोलती थी, अब बिलकुल गूगा की तरह बठी हुई थी। पता लगा, पिताजी को कोई फर्क नही पडा । उन्ह, चाहे कोई खूब जोर से दरवाजा खटखटाता रहे, तो भी सुनाई नही देता था ।

चाचाजी का घर बहुत पास नही था। पर दूर भी नही था। गाडी का वक्त भी पता था उन्ह। जरा सा खडा ही हुआ था कि वह आ गय। मां उठकर चूल्हे के पास आ बैठी थी, पर उस स बार-बार उठा नही जा रहा था। वह इशारे से कोई बतन या लकडी मांगती तो पिताजी पकडा देते।

एक अजीब बात देखो—मां न दूध गरम करन के लिए छोटी पतीली मांगी तो पिताजी न उठकर लोटे स हाथ धोय, फिर पतीली पकडा दी। फिर उस ने चाय का पानी रखन के लिए एक और पतीली मागी, तो पिताजी ने फिर लोटे के पानी से हाथ धोय और एक पतीली पकडा दी। फिर उस न इशारे से एक लकडी मांगी, तो पिताजी ने फिर पानी स हाथ धाय और उस को लकडी पकडा दी। फिर उस ने चाय के लिए गिलास मांग, तो पिताजी न पानी से हाथ धोय और गिलास परछत्ती से उतारकर उस के आगे रख दिये

मैं घबराकर चाचाजी की तरफ देखन लगा।

"मैं न तुम्हे इसी लिए बुलाया है। इधर भाई को रोज पता नही क्या होता जा रहा है, उधर मेरी छुट्टी खत्म हो रही है, इस का हम क्या करें ?" चाचाजी ने मूढे पर बैठते हुए कहा, तो मैं धीरे से बोला, "बाहर जाकर बात करते हैं, इन के सामने "

"पर यहा और बाहर मे कोई अन्तर नही, भाई तो कुछ सुनता ही नही।" चाचाजी ने कहा तो मुझे सचमुच चक्कर-सा आ गया। पिताजी के सामने कुछ भी कहना कितना मुश्किल होता था, और अब अब चाहे कुछ भी कहे जाओ

चाचाजी कह रहे थे, 'मेरे देखते देखत भाई का हाथ धोने का खब्त हो गया है यह बीमारी पता नही क्या बला है अन्दर-बाहर जाते भी हाथ धोकर जाता है "

मां की तरफ देखा तो वह माथे पर हाथ मारकर कर्मों को रो रही थी।

"अगर तू कहे तो " चाचाजी । चाय को फूक मारकर गिलास म से एक घूट भरा और कहा, 'तेरी चाची को इन के पास छोड जाऊं ? वसे तो पास ही है, दिन म एक आध फेरा लगा जाती है, पर दिन रात पास रहने की बात और होती है।"

"पर यह मुझ से क्या पूछते हो चाचाजी ? यह तो चाची की मेहरबानी है जो वह " कह रहा था कि चाचाजी न बात काटकर कहा, "वसे तो जा मैं कहूंगा वह करेगी, पर भाभी को कोई एतराज नही, जो तू मान जाये और मेरे पीछे पांच-सात दिन यहा रहकर जो तेरी चाची कहती है वह करवा द ",

"वह क्या ?"

"अभी आ रही है, तुझे खुद ही बता देगी। है तो औरतों का वहम ही, पर वहम का इंसान क्या करे " चाचाजी कह रहे थे कि चाची आ गयी। उस ने मुझे प्यार किया, और माँ को चूल्हे के पास से उठाती हुई कहने लगी, "उठ भाभी ! तू चाय का घूट भर, मैं इन्हें पराठे बना देती हूँ।"

पिताजी ने फिर हाथ धोये, चाय का गिलास पकड़ा और उधर मूढ़े पर बैठ गये।

चाचाजी कहने लगे, "ले, बता लड़के को, जो कुछ करवाना है "

चाची पहले चुप कर गयी, फिर कहने लगी, "मेरी भी छाती कलपती है, तब ही कह रही हूँ "

"वह तो ठीक है, पर बता दे न जो तुझे खयाल आता है " चाचाजी ने कहा, तो चाची ने तवे का परांठा उतारकर मेरे आगे करते हुए कहा,' ऐसे ही मन बुरा है, वहम आता है "

मैं ने पराठे वाली थाली पिताजी की तरफ कर दी तो चाची ने कहा, "यह ऊपर का उतारकर उन्हें देने लगी थी, मैं ने सोचा, तू रात का भूखा होगा, तुझे पहले दे दूं।"

"कोई बात नहीं,अगला सही," मैं ने कहा और पूछा,"अच्छा, बता चाची।"

' देखना, वह तो जीती कहीं दीखती नहीं " चाची ने कहा, "जीती होती तो कोई खर-खबर मिलती "

बड़ा अजीब लग रहा था—पिताजी सामने बैठे थे, पर किसी बात से उन का कोई सम्बन्ध नहीं रहा था

' मैं यह कहती हूँ," चाची ने कुछ हिचकियाँ लेकर कहा, "उस का न कोई क्रिया न कर्म क्या खबर, घर को यही श्राप लग गया है देखते देखते तेरी माँ खटिया से लग गयी, अब अचानक भाईजी के कानों पर पर्दे पड़ गये वह पत्थर से बैठे रहते हैं '

लगा, चाची इस घर में आकर रहने से डरती थी और शायद घर में से भूत प्रेत निकलवाने के लिए कुछ कह रही थी। सो पूछा, ' फिर बता चाची, क्या करें ?"

चाची ने जल्दी से कहा, "मुझे तो बड़ा भरोसा है, भई, जहाँ शिवपुराण की कथा हो जाये, वहाँ से सारे पाप छूट जाते हैं। इस का बड़ा महातम होता है।"

"पर बेटे, यह उस के इतने ढकोसले बताती है, करेगा कौन ?' पास से चाचाजी ने कहा, तो चाची ने जल्दी में 'ऊँकार शिवाय नमः' कहके चाचाजी को घूरा, "यह मुह से कैसा लफ्ज निकाला है ?"

मुझे भी कुछ शिवपुराण के बारे में पता था, सुनने-सुनाने से, खास तौर पर

उस के इस माहात्म्य के बारे में कि इस पुराण को सुनने से ब्रह्म-हत्या का दोष भी उतर जाता है, इस लिए चाची के मन की बात समझ गया ।

सो लोग चाहे मुह से कुछ नही कह रहे थे, पर अन्दर से कही उर्मि की हत्या वाली बात जानते थे ।

मैं ने चाची से सिर्फ इतना ही कहा,"पर चाची ! उस का माहात्म्य तब होता है, जब कोई उसे एकाग्र मन से सुन ।"

'और ऐसे थोडे ही ' चाची ने कहा, तो मैं ने पिताजी की तरफ इशारा किये बिना ही कहा, "पर वह तो अब सुन नही सकते ।"

चाचाजी को इस बात का पता भी था, परन्तु उन्हे यह खयाल ही नही आया था । जल्दी से कहने लगे, "लो फिर तो बात ही खत्म हो गयी ।"

चाची ने माँ की तरफ देखकर हैरान सी होकर कहा,"भाभी ! यह तो खयाल ही नही आया। फिर अब ?"

माँ ने हवा में हाथ-सा मार दिया, जैसे उस का अब कुछ बनता बिगडता न हो।

"अच्छा फिर " चाची का हाथ चकले पर रुक गया, कुछ सोचती सोचती कहने लगी, ' फिर इतना-सा तो करो कि कागज पर पाँच अक्षर लिख दो, बस यही 'नम शिवाय'—नही, नही, 'ओम् नम शिवाय' और लिखकर भाईजी को दे दो । वह इस का जाप करते रहा करें । यह तो कोई बडी बात नही ।"

"हा, यह तो मुश्किल बात नही, जो भाई मान जाये तो ।" चाचाजी ने जल्दी से कहा । उन्हे काम बडा आसान होता-सा लगा ।

"चलो पूछो तो भाईजी से, मान जायेंगे ! ' चाची ने कहा तो चाचाजी ने जेब मे हाथ डाला । कागज कोई नहीं था, पर पेंसिल थी । उन्होंने वही जमीन पर ही यह लिखकर पूछा कि वह इस मन्त्र को पढेंगे कि नही ?

पिताजी ने फिर हाथ धोये, और पास आकर जमीन पर लिखे अक्षरो को पढ़कर धीरे से सिर हिलाया । उन मे कोई उत्साह नही आया, पर उन्होंने मना भी नही किया ।

मैं ने चाची की तरफ देखा, उस का मन कुछ हल्का हो गया-सा लग रहा था। कहने लगी, "बस, एक बात और। मिट्टी से अपने हाथो शिव की मूर्ति बनाकर यहाँ कही पर घर म रख छोड ।"

मेरा निगोडा मन

सुना हुआ था कि शिव की मूर्ति नदी की मिट्टी से बनानी चाहिए, मैं ने एक कागज ढूढकर उसपर पेंसिल से लिखा, ' आओ चलें ! नदी पर जाकर मिट्टी ले आयें, नदी की पवित्र मिट्टी से ही शिव की मूर्ति बन सकती है," और कागज पिताजी के आगे रख दिया ।

पिताजी सुन नहीं सकते थे, पर बोल सकते थे। पर यह काग़ज़ पढ़कर वह बोले नहीं—सिर्फ़ उन का सिर 'नहीं नहीं' में कांपने लगा

चाचाजी एकटक मेरी तरफ़ देखते रहे, पर मैं फिर किसी के मुंह की ओर न देख सका।

उस वक्त नहीं, पर जब वापिस शहर आ गया, अपने कमरे में रात को सोने लगा तो एक खयाल आया—जैसे आज पिताजी का सिर कांप रहा था शायद ब्रह्मा का पांचवां सिर भी एक दिन इसी तरह कांपा था ब्रह्मा के चार सिर सत्यवादी थे, पर पांचवां मिथ्यावादी था

बन्द हुई मुट्ठियों में मेरे हाथों के नाखून मेरी हथेलियों में चुभ गये—"एक दिन शिव ने माथे पर तेवर डाले, कहते हैं उस की भौंह में से भैरव निकला—और उस ने ब्रह्मा का पांचवां सिर काटकर ज़मीन पर फेंक दिया शायद वही धरती पर गिरा हुआ ब्रह्मा का पांचवां सिर धरती के मनुष्य को नसीब हुआ है"

मेरे अपने नाखूनों से हथेलियां बिंध गयीं—आज शिव के तेवर किसी के पास नहीं मैं अपना माथा सिर्फ़ अपने हाथों में छुपा सकता हूं शिव का माथा, और शिव के तेवर अगर किसी दिन मुझे मुझे नसीब हो जायें



गौतम काम पर जाने लगा है। सवेरे पहले नौकरी की तरफ़ जाता है, फिर रिसर्च के लिए यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में।

मैं कोशिश करता हूं—गौतम से कम मिलूं। मुझे लगता है—मुझे देखकर उस का ज़ख्म खुल जाता है।

हम जब मिलते हैं, हमारे दरम्यान उर्मि होती है। जब ज़िन्दा थी, तब भी हुआ करती थी, अब ज़िन्दा नहीं रही, तो भी है

कभी जब बड़े होश में होता हूँ, सोचता हूँ—दुनिया भर की किताबें अब उर्मि की जगह ले लें। अब जब गौतम आये, या मैं गौतम के पास जाऊँ, तो हमारे

दरम्यान इतनी किताबें हों कि यहाँ सुई रखने जितनी जगह भी खाली न हो

नहीं—उर्मि की जगह कोई नहीं ले सकता। सिर्फ यह कि वह किताबों में समा जाय दुनिया में जितना भी इल्म है, उस के अक्षर अक्षर में समा जाय

मैं बहुत दिनों से गौतम के पास नहीं गया था, एक दिन गहरी शाम वह खुद ही आ गया।

उस दिन वह मन से बहुत सँभला हुआ लग रहा था। कुछ वक्त—यही बातें करता रहा कि यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी में किताबें बहुत कम हैं, किसी किताब के हवाले से वह दूसरी ढूंढने लगता है तो मिलती नहीं।

यह पता था कि वह रिसर्च कर रहा है, पर मुझे रिसर्च के मज़मून का पता नहीं था। इस लिए पूछा, 'तू ने कौन सा मज़मून लिया है?"

वह हँस-सा पड़ा, "भारत में बलि की प्रथा।" उस की हँसी में एक कसक थी। मुझे यही खयाल आया कि इस मज़मून में—हर वक्त एक खून उस की आंखों के आगे फैला रहेगा—इस लिए कहा "कोई और मज़मून ले लेता जिस से " उस ने बात काट दी, "जिस से उस का खयाल भूल जाता, तू यही कहने लगा था न?"

मैं ने कुछ नहीं कहा। उसी ने कहा, "रिसर्च के लिए बिल्कुल जी नहीं करता था। कोई भी किताब पकड़ता था, उस का हर सफा एक सा लगता था पर इस मज़मून में मेरा मन रम गया है "

"पर " मैं ने कुछ झिझककर कहा, "इस के साथ तू फिर जन्तरों मन्तरों की दुनिया में न फिसल जाये "

' नहीं, बल्कि उल्टा लगता है। इस दुनिया का वजूद ही खौफ में से बना था, चाहे वह आग का या पानी का खौफ था और चाहे भूख का या वैरी का रिसर्च का मतलब ही है कि उस के कारण तक पहुँचना "

उस ने ऐसे कहा तो मुझे उस की तरफ से कुछ ढाढस-सा बँधा।

फिर कुछ देर वह वैदिक काल की बातें सुनाता रहा कि पूजा और बलि का वर्णन उस काल में भी मिलता है, खासकर चौथे वेद में

और अचानक वह उर्मि की चारपाई पर जहाँ बैठा था, झुककर चारपाई के सिरहाने को छूकर कहने लगा 'तू वहम न समझना। पर आज मैं कबीलों के देवी देवताओं के बारे में पढ़ रहा था, तो उस में आया कि वे लोग एक मनुष्य की एक रूह नहीं मानते। उन का खयाल है कि एक मनुष्य में तीन रूहें होती हैं। और मनुष्य जब मर जाये एक रूह आसमान को चली जाती है, एक यहां ही धरती पर जंगलों में भटकती रहती है, और तीसरी "

मैं चुप उस की तरफ देखता रहा। कुछ देर बाद उस ने कहा "उस की तीसरी रूह वहीं उस के घर में रहती है कहीं नहीं जाती "

वह अपने खयालों में से जब ख़ुद ही कितनी देर तक न लौटा, तो मैं ने धीरे से कहा, "पर गौतम, यह सब कुछ सिम्बोलिक नहीं ? ज़िन्दा मनुष्य में उस की रूह के ये तीन पक्ष नहीं होते ?—एक बड़ा ख़ूबसूरत दैविक पक्ष, एक भ्रम और भुलावों के जंगल में भटकता, और तीसरा ज़िन्दगी की हक़ीक़त में हँसता और रोता "

"हाँ "उस ने धीरे से कहा, और साथ ही कहा, "इसी तरह मरने के बाद यह हमारी चाह होती है कि जाने वाले का कुछ हमारे पास रह जाय, इस लिए इस लिए "

और गौतम उठकर जाते हुए कहने लगा, "पर तू इस चारपाई को यहाँ इसी तरह रहने देना। मेरे कमरे में भी उस की चारपाई और अलमारी उसी तरह, उसी जगह पड़ी हुई है। कुछ तस्कीन-सी होती है वहम नहीं अच्छा, वहम ही सही "

गौतम चला गया। पर सारी रात मेरे मन में खलबली-सी रही। दूसरे दिन कॉलेज के समय के बाद मैं कमरे में लौटने के बजाय लाइब्रेरी में चला गया। गौतम अभी वहाँ नहीं आया था। मैं अकेला कुछ किताबें देखने लगा—जैसे इतिहास और मिथ्स में से गौतम का ढूंढ-सा रहा होऊँ

वैदिक काल, प्राग्वैदिक काल, प्रीसाइंटिफिक एज

माइथालोजी—लैंग्वेज ऑफ़ द प्रिमिटिव

अग्नि, वायु सूर्य—प्राकृतिक तत्त्व—यही समय-समय पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव हो गये जन्म, विकास और विनाश के चिह्न—सत, रज, तम—त्रिगुण

सृष्टि की शक्तियों के नियम ढूंढने के लिए और उन के साथ जुड़ी धरती के भेद को पाने के लिए मनुष्य ने सब से पहले जो दो देवताओं की कल्पना की थी, वह असुर-वरुण थे—वरुण लफ़्ज़ की जड़—वर, व्री, यानी रोकना—थामना—जल-थल को थामना

और असुर शब्द पर मेरा ध्यान अटक गया। असु के अर्थ प्राण, तो असुर के अर्थ प्राणदाता। ऋग्वेद में असुर शब्द देवताओं के लिए था पर बाद में उल्टे अर्थों में दैत्यों के लिए कैसे हो गया ? यह अर्थ क्यों और किस तरह उलट जाते हैं ?

और एक भयानक खयाल से मैं काँप गया—क्या रिश्तों की बनावट में कभी 'पिता' शब्द के अर्थ भी उलट जायेंगे ?

लगा—आज गौतम के सामने नहीं हो सकूंगा। मैं लाइब्रेरी में से जल्दी से बाहर आ गया।

वहाँ से बाहर आ गया, पर अपने आप में से शायद कभी भी बाहर नहीं आ सकूंगा

मेरे अपने मन की मिट्टी से मेरे पैर सने हुए हैं

'मन' की बात करते हुए खयाल आया —मन के अस्तित्व और उन की सारी फिलासफी जब नही होती थी, शायद तब मनुष्य बहुत सुखी होता था मन की फिलासफी हमे कल्पना ने दी

पीछे से किसी ने कन्धे पर हाथ रखा। देखा, गौतम खडा था।

"वापिस जा रहा है ?"

"लाइब्रेरी मे गया था, तू वहाँ नही था, इस लिए "

"मुझे कुछ देर हो गयी, आ चलें।"

"नही, कमरे मे जाऊँगा "

उस ने कुछ नही कहा, मेरे साथ कमरे की तरफ चल पडा। राह मे चुप रहा था, कमरे म पहुँचकर कहा, "तेरा हज होगा, तू चला जाता।"

"रात बहुत देर तक पढता रहा था, सिर म कुछ दद था—ठहरकर चला जाऊँगा "

उस ने हाथ के कागज पेंसिल को चारपाई की पाटी पर रख दिया, और उर्मि के तकिय का सहारा लेकर कहने लगा, "तू सडक के किनारे कितनी देर से खम्भे की तरह खडा हुआ था। मैं ने तुझे दूर से देखा था, फिर सडक पार की तेरे पास आया, तू वही का वही खडा था "

"सोच रहा था " मुझे खुद ही हँसी सी आ गयी, पर बताया, "मन की कल्पना, कहते ह आस्ट्रिक कल्पना है। हिन्दू फलसफे न यह उन स ली थी "

गौतम मुस्करा-सा दिया

मैं अपनी रौ मे था, कहे गया, "उन के स्वभाव की एक विशेषता तब भी थी, अब भी है वह बडे इमजिनेटिव थे पर पसिव, एग्रेसिव बिल्कुल नही तेरी और मरी तरह जैसे हम कुछ नही कर सकते, सिफ सोचे जा रहे है, सोचे जा रहे हैं " और मैं ने उसी साँस म यह भी कहा, "इस लिए उन की कल्पना झट वहम और भ्रम की तरह फिसल जाती थी, जसे तू उन जतरा म तरो की तरफ पड गया था "

"फिर तो तुझे और मुझे अब तक पहाडा और जगलो म मील के पत्थर होना चाहिए था जब वह पहले पहल यहा आये थे, हाथो म सिफ तीर कमान लेकर आये थे, पर हमेशा उसी तरह रहे आय लोग वेद रचते रहे, पर वह तीर-कमान लिये उसी तरह जगलो मे बठे रहे " गौतम ने तकिय को पीठ की तरफ से निकालकर, सामने पैरो पर रख लिया।

'पचतन्त्र, कहते हैं, आस्ट्रिक विचारो के सहारे बना था " मैं ने कहा, पर साथ ही कहा, "अब मन की फिलासफी अगर हमारे विचारो मे आ ही चुकी है, तो इस का क्या हो सकता है, यह रहेगी चाहे कही से आयी हो, पर रहगी "

फिर पूछा, "तेरा थीसिस शुरू हो गया है कि नहीं ?"

"कल रात शुरू कर दिया। इस लिए रात को बहुत जागता रहा था," गौतम ने चारपाई की पाटी पर रखे हुए कागज उठाये, और कहने लगा, "रफ़ नोट जो पहले लिखे, वह मेरे पास हैं। तुझे सुनाऊँ—मैं ने कैसे शुरू किया है ?"

मुझे लगा—जब जैसे गौतम सँभल गया हो, पर मैं परों से उखड़ रहा होऊँ। मैं ने उस की तरफ ध्यान देकर कहा, "सुना।"

गौतम ने कुछ कागज सिलसिलेवार लगाये, और पढ़ने लगा कि फिर अचानक कागजों से सिर उठाकर कहने लगा, "बीच में एक खयाल आ गया है, तेरी आस्ट्रिक कल्पना से नागाओं में हम मंगोल फीचर्ज मिलते हैं, जैसे, कोल, भील और मुण्डा लोगों में आस्ट्रेलियन पर नग्रायड फीचर अब हम कहीं नहीं मिलते, हालाँकि अजन्ता की मूर्तियों में सिर्फ उन्हींके नक्श-नक्श सँभाले हुए हैं। और तुझे पता है कि हिन्दू फलसफे में पितरों के श्राद्धों की जितनी मान्यता है, वह उन की कल्पना से आयी थी। खास-खास पेड़ों और जानवरों की मान्यता भी उन की देन थी। स्वर्ग को राह में एक पुल है जो मुश्किल से लाँघना पड़ता है, यह खयाल भी उन्होंने दिया था "

'पता नहीं, कहाँ से क्या-क्या आया " मुझे अपने-आप पर हँसी आ गयी, और खयाल आया, "पर सब कुछ मिलाकर आखिर बना क्या ?'

"अच्छा तू थीसिस सुना, कैसे शुरू किया है ?' मैं ने सँभलकर कहा।

गौतम ने फिर कागजों की तरफ ध्यान दिया, "इस दिखती जिन्दगी के पीछे कौन-सी अदृश्य शक्तियाँ हैं ? मनुष्य की इस सोच में से जो इतिहास शुरू होता है उस के दो आदि रूप मिलते हैं—एक पूजा और एक हवन। आर्यों से पहले के समय में पूजा जरूर थी, पर यज्ञ-हवन नहीं था।'

"अच्छा ? " अचानक मेरे मुँह से निकला।

गौतम कह रहा था, 'पु का अर्थ पुष्प है, फूल। पूजा का भाव है पुष्प-कर्म। यह द्रविड़ कल्पना थी। अनार्य कल्पना। वह सिर्फ अदृश्य शक्तियों के आगे फूल-पत्र चढ़ाकर सन्तुष्ट हो जाते थे।"

'फिर ?" मेरे मुँह से निकला।

'फिर आर्य आये—ईरान की तरफ से या दक्षिणी रूस की तरफ से। वह अन्न को उगाना नहीं जानते थे, भेड़ों के मांस पर गुजारा करते थे। कुदरती ताकतों को सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने अग्नि को एक ऐसा दूत माना जिस के द्वारा वह अदृश्य शक्तियों से अपना सम्बन्ध जोड़ सकते थे। इस लिए जब आग जलाते, जो कुछ खाने के लिए पास होता, पहले उस का एक हिस्सा निकालकर अग्नि में डाल देते।"

"सो भेड़ बकरी या जो भी पशु-पक्षी मारते "

"हाँ, इसी रीति का नाम यज्ञ था। द्रविड़ों ने पूजा शुरू की आर्यों ने हवन। उस का नाम पुण्य-कर्म था। इस का नाम पशु कर्म रखा गया। उन की खुराक में ज्यों ज्यों दूध, मक्खन और अनाज शामिल हुए, उन का हिस्सा भी मांस के साथ-साथ, अग्नि में डालने की रीति बनी "

"सो यहाँ से बलि की प्रथा चली "

"हाँ " गौतम ने परों पर पड़े तकिये को हाथ में भींच-सा लिया, कहने लगा, "मनुष्य को कभी आसमानी ताकतों का खौफ लगता रहा कभी धरती की मुसीबतों का—भूख का, दुश्मन का, समाज का और भेड़ा, मुर्गों, घोड़ों की बलि देकर—अपने अज़ीज़ लोगों की भी वह सोचता रहा कि उस की ज़िन्दगी की मुसीबतें टल जायेंगी यह ख्याल शायद कभी भी खत्म नहीं होगा गौतम का माथा, उस के हाथ में भिंचे तकिये की सलवटों की तरह, सिकुड़ गया, "बलि की यह रस्म अब भी चली आती है—अभी उन्होंने उर्मि की बलि दी है "

इस से आगे कुछ कहने लायक और कुछ सोचने लायक नहीं रहा था

मैं चुप था, गौतम चुप था



गौतम के सिर में दर्द था, पर कुछ देर बाद ही उस का जिस्म तपने लगा। उठकर जाने लगा, तो बोला "लाइब्रेरी नहीं जाया जायगा " मैं ने ही उसे रोक लिया था, "अगर लाइब्रेरी नहीं जाना है तो वहां कमरे में अकेला क्या करेगा, रात यहीं रह जा। बुखार शायद बढ़ न जाये "

पहले कभी वह रात को मेरे कमरे में नहीं रहा था। पहली बार रहा। पर आधी रात तक इतना बेचैन था, मुझे लगता रहा कि उर्मि की चारपाई पर शायद वह सुबह तक जागता रहेगा, सो नहीं सकेगा

उस का जिस्म गर्म था तेज़ बुखार नहीं था, पर दो तीन बार चाय पीने के अलावा उस ने कुछ भी नहीं खाया था। कमरे के साथ लगता एक छोटा-सा

और कहने लगा, "इतने दिनो से मुझे एक बार भी उर्मि का सपना नही आया था। आज रात पहली बार उस का सपना आया।'

"वह कुछ बोली ? उस ने कुछ मुह से कहा ?" मै ने सोचा था, सपने की बात नही पूछूगा, पर वह जब सपने को सुनाने लगा, तो मैं ने यह पूछा। लगा —क्या पता, सपने म उस के अपने साथ जो बीती थी, वह बताया हो

सपने म बड़ा कुछ मिला हुआ है, मैं ने इसे कई तरह, कई शक्लो म देखा—पहले एक मन्दिर म देखा उजाड जगल म एक मन्दिर था पर मन्दिर म बहुत-से लोग थे, वह एक देवी की पूजा कर रहे थे " गौतम ने हथेली से माथे का पसीना पोछा, और मेरी तरफ देखकर कहने लगा, "पत्थर की वह मूर्ति, उर्मि की मूर्ति थी। सिर्फ उस मूर्ति म एक अजीब बात थी कि उस की कोख मे कितने ही फूल और पत्र उगे हुए थे "

"फूल-पत्र लोगो के चढ़ाये हुए होंगे " मैं कह रहा था कि गौतम ने ज़ोर से कहा, "मूर्ति के पास पडे हुए नही, उस के शरीर म से उगे हुए "

गौतम कितनी देर तक कुछ सोचता रहा, फिर कहने लगा, "मेरा खयाल है —मैं ने पिछले दिनो जो मोहनजोदडो के खँडहरो म से निकली मूर्ति के बारे म पढ़ा था, शायद उसी से यह सपना आया है। खँडहरो म से जो शाही मोहरें निकली, यह तसवीर मोहरो पर खुदी हुई मिली

"द्रविडो ने पूजा के लिए जो सब से पहली देवी कल्पित की थी, वह धरती थी। इस लिए देवी की कोख म से निकलते फूल-पत्र वह मूर्ति म बनाया करते थे "

'हाँ, सपना उसी से आया होगा।" मैं ने सिर्फ इतना ही कहा। वैसे मन म आया कि गौतम के अचेतन मन मे शायद अपने बच्चे का खयाल भी होगा, और शायद वही बच्चा मूर्ति के शरीर म से उगते फूल-पत्रो का चिह्न होगा, पर गौतम से यह नही कहा गया।

गौतम कहने लगा, 'मन्दिर म बहुत भीड थी। मैं भीड मे से लाघकर जल्दी से मूर्ति के पास जाना चाहता था, पर लोग मुझे लाँघने नही दे रहे थे। फिर उन्होंने मूर्ति के आगे आग जला दी, और उस के गिर्द खडे होकर कोई मन्त्र पढने लगे। मै आग के पास से गुज़रकर आखिर मूर्ति के पास पहुँच ही गया। पर इतनी देर म किसी ने आग के पास जिन्दा लडकी को लाकर खडा कर दिया। और मुझे पता नही किस ने धीरे से बताया कि आज के दिन पूनम की रात, इस देवी के मन्दिर मे बलि दी जाती है "

'तू आजकल बलि का इतिहास पढ रहा है न, इसी लिए ऐसा सपना आया है।" मैं ने कहा।

गौतम ने भी सिर हिलाकर 'हाँ' कहा, पर साथ ही कहा, "जब मैं ने आग के

बरामदा था, जिसे तख्तों से ढँककर, जब उर्मि थी, मैं ने एक छोटी सी रसोई बनायी थी। बिजली का स्टोव और वह बतन आज भी वहाँ उसी तरह पड़े थे, पर उर्मि के जाने के बाद, मैं ने कभी उन्हें इस्तेमाल नहीं किया था। शाम को गौतम के कहने पर मैं ने कुछ चीनी, दूध और चाय की पत्ती लाकर वहाँ चाय बनायी थी पर आधी रात एक खटके से मैं जागा, तो देखा—गौतम उस वक्त भी वहाँ जाकर फिर चाय बना रहा था।

मैं ने नींद में ही पूछा था, "गौतम, तू सोया नहीं? तुझे बुखार बहुत तो नहीं?" उस ने तसल्ली दी थी, "नहीं, अब बुखार नहीं है, तू सो जा" मैं शायद ज्यादा नींद में था, फिर मुझे कुछ पता नहीं, गौतम कितनी देर तक जागता रहा।

सुबह जब मैं जागा, तो मैं ने उठकर गौतम के जिस्म को हाथ लगाया। जिस्म जोर से तप रहा था। पर वह नींद में था, मैं ने उसे जगाया नहीं। कुछ देर बाद लगा, जैसे वह नींद में कुछ बोल रहा हो। मैं ने उस की चारपाई के पास आकर उसे हिलाया जिस्म को टटोला—तो वह पसीने से भीगा हुआ था

अचानक, उस ने सोये हुए ही, अपने जिस्म से छूती मेरी बाँह कसकर पकड़ ली, और सारा ज़ोर लगाकर अपनी तरफ खींची। उस के इसी अपने ज़ोर से उस की नींद खुल गयी, और वह मेरी तरफ ऐसे देखने लगा, जैसे मुझे पहचानता न हो

"गौतम तेरा बुखार उतर गया, देख तुझे कितना पसीना आया हुआ है," मैं उसे तसल्ली सी देने लगा, तो उस के मुँह से निकला—"मैं यहाँ किनारे पर कैसे आ गया?"

"किनारे पर? कौन से किनारे पर?" मैं हैरान उसे पूछ रहा था।

गौतम बोला नहीं। मेरी तरफ देखता रहा। फिर उस ने तकिये से सिर उठाकर, सारे कमरे की तरफ देखा। और फिर उठकर चारपाई की पाटी पर बैठ गया।

मुझे लगा, उस के जिस्म में एक कँपकँपी-सी आयी। मैं ने उस की उतारी हुई रजाई फिर उस के, बैठे हुए के कंधों पर पास कर दी।

"रात बड़े ही अजीब से सपने आते रहे" गौतम ने बहुत देर बाद लौटे होश से कहा।

"शायद बुखार था, इसी लिए" मैं ने कहा।

"शायद" उस ने इतना कहा और चुप हो गया।

मैं ने सोचा था, मैं सपनों की बात नहीं पूछूँगा, उसे फिर दोबारा उन की याद न दिलाऊँगा, पर मैं उस के पास से उठने लगा, तो उस ने इशारे से बैठे रहने के लिए कहा।

और कहने लगा, "इतने दिनो से मुझे एक बार भी उर्मि का सपना नही आया था। आज रात पहली बार उस का सपना आया।'

"वह कुछ बोली? उस ने कुछ मुह से कहा?" म न सोचा था, सपने की बात नही पूछूगा, पर वह जब सपने को सुनाने लगा, तो मैं ने यह पूछा। लगा—क्या पता, सपने मे उस के अपने साथ जो बीती थी, वह बताया हो

'सपने म बडा कुछ मिला हुआ है, म ने इसे कई तरह, कई शक्लो म देखा—पहले एक मदिर म देखा उजाड जगल म एक मदिर था पर मदिर म बहुत-से लोग थे, वह एक देवी की पूजा कर रहे थे ' गौतम ने हथेली से माथ का पसीना पोछा, और मेरी तरफ देखकर कहने लगा, "पत्थर की वह मूर्ति, उर्मि की मूर्ति थी। सिफ उस मूर्ति म एक अजीब बात थी कि उस की कोख म कितने ही फूल और पत्र उगे हुए थे "

"फूल-पत्र लोगो के चढाये हुए होगे " मैं कह रहा था कि गौतम ने जोर से कहा, "मूर्ति के पास पडे हुए नही, उस के शरीर म से उगे हुए "

गौतम कितनी देर तक कुछ सोचता रहा, फिर कहने लगा, "मेरा खयाल है—मैं ने पिछले दिनो जो मोहनजादडो के खँडहरो म से निकली मूर्ति के बारे मे पढ़ा था, शायद उसी से यह सपना आया है। खँडहरा मे से जो शाही मोहरें निकली, यह तसवीर मोहरा पर खुदी हुई मिली

"द्रविडो ने पूजा के लिए जा सब से पहली देवी कल्पित की थी, वह धरती थी। इस लिए देवी की कोख मे से निकलते फूल-पत्र वह मूर्ति म बनाया करते थे "

'हाँ, सपना उसी से आया होगा।" मैं ने सिफ इतना ही कहा। वसे मन मे आया कि गौतम के अचेतन मन म शायद अपने बच्चे का खयाल भी होगा, और शायद वही बच्चा मूर्ति के शरीर म से उगते फूल-पत्रो का चिह्न होगा, पर गौतम स यह नही कहा गया।

गौतम कहने लगा, "मदिर मे बहुत भीड थी। मैं भीड मे से लाघकर जल्दी से मूर्ति के पास जाना चाहता था, पर लोग मुझे लाघने नही दे रहे थे। फिर उन्होंने मूर्ति के आगे आग जला दी, और उस के गिर्द खडे होकर कोई मन्त्र पढ़ने लगे। मै आग के पास से गुजरकर आखिर मूर्ति के पास पहुँच ही गया। पर इतनी देर मे किसी ने आग के पास जिदा लडकी को लाकर खडा कर दिया। और मुझे पता नही किस ने धीरे से बताया कि आज के दिन पूनम की रात, इस देवी के मदिर मे बलि दी जाती है "

तू आजकल बलि का इतिहास पढ रहा है न, इसी लिए ऐसा सपना आया है।" मैं ने कहा।

गौतम ने भी सिर हिलाकर 'हाँ' कहा, पर साथ ही कहा, 'जब मैं ने आग के

पास खडी उस लडकी की तरफ़ देखा तो मेरी चीख निकल गयी—वह उर्मि थी। उर्मि पत्थर की देवी भी थी, और उर्मि उस के आगे दी जाने वाली बलि भी थी "

गौतम बडी देर तक चुप रहा जैसे वह इस कमरे मे से चलता हुआ फिर रात वाले मन्दिर मे चला गया हो

"मेरी अपनी चीख से मेरी नीद खुल गयी थी " फिर गौतम ने बताया, "मैं कितनी देर तक उठकर बाहर बरामदे मे खडा रहा, मन्दिर वाले सपने को सोचता रहा। फिर जब सोने की कोशिश करूँ तो आखो के आगे वही मन्दिर आ जाये। नीद नही आ रही थी। फिर पता नही किस वक्त नीद आ गयी। अभी —सवेरे ही फिर एक सपना आया कि उर्मि एक दरिया के किनारे खडी हुई थी, मैं भी उस के पास था। वह दरिया मे से चुल्लू म पानी भर-भरकर पैर धो रही थी, और हँस रही थी। मुझे याद है। वह कभी-कभी मौज म गाया करती थी —'प्रीत तो मेरी सोने का गडवा, प्रीत तो मेरी गगाजल पानी '"

मुझे याद है—कभी कभी उर्मि को जब पहले ब्याह का खयाल आ जाता था, वह कुम्हला सी जाती थी। पर फिर हुलसकर गाने लगती थी—'प्रीत तो मेरी सोने का गडवा '

गौतम कहने लगा, "वही उस की हँसी, वही उस की आवाज कि अचानक कोई पीछे से आया। उस ने उर्मि को दरिया मे धक्का दे दिया। पता नही, कौन था। आधा मनुष्य, आधा बल सा। मैं ने उर्मि को पकडने के लिए, उस के पीछे दरिया म छलाग मार दी "

मुझ याद आया—मैं ने जब गौतम को जगाया था, उस ने पहली बात कही थी, 'मैं यहा किनारे पर किस तरह आ गया?' उस वक्त शायद उसे यही सपना आ रहा था

'कहा करता था न कि तुझे समुद्र को मथकर ढूढ लूगा " गौतम ने निराश होकर कहा, "शायद यही खयाल मन मे था, सपने मे उसे दरिया म ढूढता रहा —तू ने जब मुझे जगाया था, मुझे कितनी दर तक गले के कपडे इस तरह गीले लगते रहे जैसे दरिया का पानी अभी भी " और गौतम की आखें भर आयी—यह आखो म आने वाला पानी—शायद उसी नदी का पानी है जिस म उर्मि की लाश तर रही है



अन्तिका

आग, हवा, सूय, शरीर, आत्मा—ये सब अथ 'क' के हैं और इन से वचित हो जाना, इन से रहित हो जाना 'अक' (अर्थात आक) है ।

मैं और गौतम इस आक को चबाते आक के पत्तों की तरह हो गये हैं—सच सरीखे कडुए

आक का पौधा बोने के लिए धरती तो मिली नहीं, हम ने छाती म ही इसे बो लिया



भाभी मोरनी

"अरी निगोडी अब यह पूनिया कसे कातेगी ?" उस ने अपने रुई सरीखे सफेद बालो को जब रीठो से धाया, तो पूनी जितने छोटे छोटे बालो को निचोडती हुई वह दलीलो म पड गयी ।

वह जसे दलीलो के धागे अटेरन पर अटेर रही थी — रिजक का कल कौन

मोडे चिडिया के चेचले जब उडने लायक हुए तो पता नही किस पेड पर जा बैठे '

उस ने सचमुच तीनो लडको के लिए छाती मे घोसला बनाया था। उन के सौ काम होते थे, खटिया पर कमर सीधी करन की भो फुरसत नही मिलती थी, पर तब भी वह कभो नही थकी थी। और अब वडका ब्याहा बराये नौकरी पर, और छोटके दोनो शहरो म पढने चले गये थे, तो खाली वठी जिन्दो को लगता कि उस के जोड जोड मे अकडाव आ गया है।

'काली रुई तो निवट गयी अब सफेद कैस कातूगी ?' उस जो खयाल जवानी म भी नही आय थ—अब बुढाप मे घुटनो की पोर के समान उठ खडे हुए और उसे अपने स्याह् काले बाला का ध्यान आया, जो मचमुच मोरा की पल की तरह उस की पीठ पर पडे रहते थे

'रे साऊ ! तू ने किस घडी मरा नाम मोरनी रख छोडा था मोरनियो के नसीवो म पैलें कहा—मोरनियाँ तो पैरो को देख-देखकर झुरा करती है ' और उस की नजर अपने परो पर से फिलसकर—पैरो की बिवाइयो म गिर पडी।

'साऊ' उस के रिश्ते का देवर था। अभी निरा छोकरा था जब उस ने सफेद सिरहाने पर हरे काशनी धागो से मोर काढती हुई भाभी को दखा था, और उसे भाभी मोरनी कहकर पुकारा था। थुडे[1] घर से आयी और थुडे घर ब्याही जिन्दो के हाथ मे पकडी हुई सूई साऊ की आवाज सुनकर धागो की ऐसी पल डालने लगी, वह सिरहाना खत्म करके जब छब्बीस की मलमल का दुपट्टा काढने लगी, तो उस पर तरह्-तरह के फूल बनान की जगह्—मोर काढने लगी। उस के इसी सिर के पल्लू के कारण सारे गाँव म उस का नाम भाभी मोरनी पड गया था।

दखते-दखते साऊ का ब्याह हुआ, उस के घर ऊपर-तले के तीन बेटे जन्मे, और भाभी मोरनी उन को चूम चूम चाट-चाट खिलाती रही। उस की अपनी जून निष्फल जा रही थी, गाँव की कोई वडी बूढी दुखियाती, तो वह साऊ के बेटे को घुटना पर बिठाकर दही शक्कर खिलाती हुई हसकर कहती—"ना बेबे, कोई दुख नही। औरत को यही दुख होता है न कि बुढापे म जब घुटनो म पानी पड जायगा तब अरी तब त्रिफला ही खाना होता है न " और वह साऊ के बेटा के मुह चूमती हुई कहती—'यह देख, मेर हरड-बहडे-आँवल, जरा सी मोह की फक्की भी न देंगे ?'

'अरी उस के यहाँ देर होती है अधेर नही।' दूसरी दिल रखन को कह दिया करती थी। पर जब भाभी मोरनी के आँगन म पर्लें डालन वाला उस का घर-

---

1 तग हाथ वाल

वाला मर गया, तो जिस के घर सुना था—अधेर नही होता, उस के घर भी अधेर मच गया।

'मोरनी तो पैरो को देख-देखकर झूरती है, पर जब औरत को झूरना पडता है, वह माथे के लेखे को देख-देख झूरती है ' वह जब अब कुछ सहने योग्य हुई थी तो उठती-बठती के मुँह से यही निकलता।

गम जब उतरता है, तो औरत की छाती म उतरता है, और मद के हाथो मे। साऊ हाड तोडकर अपने खेतो को भी गोडता-बीजता और भाभी मोरनी के खेतो को भी। जो कमी खुदा ने कर दी थी, उसे वह इसान की जात भर नही सकता था, पर और कोई कमी उस ने भाभी मोरनी का न आने दी थी।

'बच्चो के हीले चूल्हे म आग तो जलायेगी, नही तो बासी तिबासी खाकर पड रहेगी,' साऊ मन म सोचता, और बच्चो को किसी न किसी बहाने उस के घर भेज देता था। बस भी एक दीवार का उलाघन ही था—बच्चे कई बार दीवार के इस पार सोते और उस पार जागते। सोते हुओ को उन की मां उठाकर ले जाती या भाभी मोरनी कन्धे से लगाकर छोड आती।

और फिर अचानक साऊ की औरत, अपने नैहर अपने बाप के मरने पर गयी, जसे अपने के मरने पर गयी हो, एक ही रात म उस के कलेजे म पीर उठी किसी हौल सरीखी, जिस ने दूसरा दिन भी न देखने दिया।

'उस की चिता उसे बुलाती थी' कहते हैं बिलखते उस के नहरिये-ससुरालिये उसे रो बैठे नो साऊ को अगली फिकर लगी—उस के बच्चो का क्या बनेगा? उस ने भाभी मोरनी का दर खटखटाया—'यह तेरे हरड-बहेडे रुल जायेगे, इन्हे सँभाल ल।

उस वक्त भाभी मोरनी ने अँसुआई आखो से बच्चो को तो कलेजे से लगा था, पर कहा था—'साऊ, तेरे बहुत एहसान ह मुझ पर, मेरा रोम रोम बिंधा पडा है तेरे एहसानो से, पर जग का मुँह कौन थामेगा?'—और फिर साऊ का मुह ऐसे रिसिया गया था जसे आग मे तपी ईंट पर किसी न पानी का छींटा मार दिया हो। जग आँखो की ओट था, साऊ आखो के सम्मुख, भाभी मोरनी अपने परो की तरफ देखती और झूरती कहने लगी—'अच्छा रे देवरा! मरी पत तेरे हाथ है, मैं तेरे बेटो की सेवा से मुकिर नही होती।'

फिर जो दीवार का उलांघन था, वह तो वसे ही रहा, पर दो घर, समेत दीवारो के जसे एक हो गये थे। भाभी मोरनी न बच्चा को मां का होका न लगने दिया।—गर्मी हो चाहे सर्दा, उस की भूख-प्यास भी, बच्चा की भूख-प्यास म मिल गयी थी। (वसे कोई डेढ बरस पीछे जो दीवार दोना घरो को बाँटती थी, उस के मही से लेवडे उतर गये, तो उस ने दोबारा उसे लीपने-पोतने का जतन नही किया था। फिर एक जगह खोखल-सा हुआ, तो बच्चा ने उस म से लांघ-लाघकर

धीरे धीरे उस को नीचे जमीन से लगा दिया। और जैसे वह दीवार, ख ुद ही अपनी आखो म हकीर होकर ढेला ढेला गिर गयी।)

धीरे धारे लडके उस के कन्धो से ऊँचे हो गये, और फिर धीरे धीरे यह हो गया कि भाभी मोरनी ख ुद मुश्किल से लडका के कन्धो तक पहुँचती। साऊ न जोग तो किसी से नही लिया था, पर गाव वाले कहते थे—कि वह पिछले जन्म का जोगी जरूर था। उस की करनी सच्चे साधुओ जैसी थी।

'अरी निगोडी ! अब यह पूनिया कैसे कातेगी ?' जो सोचें भाभी मारनी को बीस वरस नही आयी थी, पता नही उस के पास फुरसत नही थी इन सोचा के लिए, अब तीना लडके जब शहर चले गये, ता उसे उठते-बठत ये सोचें आने लगी।

छाती उस नीड-सरीखी हो गयी थी जिस मे से पखेरू उड गये हो।

छाती के खोहड की ओर देखती वह दलीलो मे पडी हुई थी कि बाहरला दरवाजा खटका।

'शायद शहर से बडका आया हो ' उठकर, बाहरले दरवाजे तक पहुँची। उस ने कितनी ही सोचे मथ डाली—हठीले, बहुतेरा कहा था कि बेटो की तरह माथे पर सेहरा बाँधकर ब्याह कर, और डोला घर लेकर आ वहाँ पता नही क्या किया, क्या न किया, बस खत लिख छोडा कि ब्याह हो गया है

ऐसे ही रात भर के लिए लाया था—ईसाइन-सी लगती थी वह भी चलो उस की मरजी फिर बहुतेरा कहा कि वह पूरे दिनो पर होगी तो घर छोड जाना। वहा शहरो म, कौन रखाई कर सके है वही बात हुई—कच्चे हाडो उस ने पता नही क्या खाया और क्या पिया कि लडका छोडकर जाप म ही मर गयी और वह आज मरी, कल दूसरा दिन बिगडल से दो महीने भी सब्र न हुआ तीजे मास ही और ब्याह करने को फिर रहा है '

पर कुडा खोला तो शहर स आया बडका नही था, साऊ ही दिन छिपे घर लौट आया था।

"तरा जी तो राजी है ना साऊ !" भाभी मोरनी सहम-सी गयी।

"बस तो राजी है, यू ही एक सलाह लेनी थी तुम स " अन्दर आत हुए साऊ न कहा, तो भाभी मारनी न, उस की खटिया की पाटी पर बैठत हुए पूछा, "क्या भला ? लडके का कोई खत आया है ?"

"पुरान समय म परिया की जान तातो म हुआ करती थी—तरी भी आधी जान बडके म, और बाकी आधी जान छुटको म पडी है " साऊ सोचा म डूबा सा भी लग रहा था और रौ म भी।

'काह को ! उन के लिए ता मैं जीते जी मर गयी—निगोडे कभी शकल दिखाने भी नहीं आत " भाभी मारनी न जब उलाहना-सा दिया।

"तू खुश नही कि जैसे-तैसे उन से निबटी है—उन के पीछे तू ने अपना आपा गला लिया ।"

"और अब खाली बैठी मैं ने अपना अचार डालना है ?"

"अच्छा, फिर खाली न बैठ । लडके का खत आया है कि उस न और ब्याह करना है, पर उस की नवोढा उस के बच्चे को रखने मे राजी नही "

"हाय, मैं मर जाऊँ—कोई बेटा से भी मुह फेरता है "

'और वह लिखता है कि अगर तुम कहो तो मै बच्चे को तुम्हारे पास छोड जाऊँ "

भाभी मोरनी का मन कुछ भर आया । कहने लगी, "साऊ ! तेरी कोई उम्र थी, जब तेरी औरत मरी थी, पर तू ने न सोचा कि घर को फिर बसता कर लू । अब देख लडके स चार दिन नही काटे गय "

"मेरी बात और थी भाभी," साऊ ने अनायास ही एक हौका सा भरा ।

"क्या, तेरी बात कसे और थी ? तू तो अपने बेटो से भी सात गुना सवाया था "

साऊ अपने मे खोया सामने दीवार की ओर देखता रहा ।

"है रे " भाभी मोरनी के सफेद बादलो सरीखे बालो म से जसे बिजली कौंध गयी ।

"और ऐसे ही तो नही जवानी जर ली " साऊ के मुँह पर एक उजियाला-सा फिर गया ।

"जो बीत गयी, अच्छो बीत गयी, अब बुढाप मे " वह हडबडाई-सी बोली ।

"और मैं कब कहता हूँ, अच्छी नही कटी—तू ने एक बोल मारा था—'देवरा ! मेरी पत तेरे हाथ है'—मैं नें अपना वचन निभा दिया " साऊ की छाती आज पता नही बादल की तरह फट पडी थी ।

भाभी मोरनी कितनी दर तक धरती की तरफ देखती रही, फिर धरती की तरह अडोल हो गयी—"अच्छा साऊ ! जो बात सारी उम्र नही सोची अब काहे को सोचनी है "

साऊ कितनी देर तक तालू से अपनी जीभ मलता रहा, फिर कहने लगा, "अच्छा, बता फिर लडके का क्या करें ?

भाभी मोरनी बोली—"लडके का क्या करना है घर ले आओ, वह यहाँ खटोले पर पडा होगा तो घर फिर बसता लगेगा

साऊ ने उठकर काड पर दो अक्षर लिखे, और खाली सा होकर रोज की तरह अपने कोने मे बठकर दारू का घूट पीने लग पडा ।

भाभी मोरनी ने रोज की तरह चूल्हे पर दाल रखी । और फिर फारिग सी

होकर खडी खडी को पता नही क्या हुआ, छाती म एक लपट सी उठी, और उस न मिट्टी की अगीठी मे चार छिपटिया डाली और तेल की कढाही चढायी, और फिर प्याज के छोट छोट पकौडे तलके दारू पीते हुए साऊ के पास रख आयी

पाचवे दिन वडका शहर से आया और रात की रात रहकर वह चार महीने के बिलूगडे से को भाभी मोरनी की थाली मे डालकर चला गया, तो भाभी मोरनी ने सफद जीरे की फक्की मारकर बच्चे को छाती से लगा लिया।

गाँव की यह दतकथा अब भी सुनाई मे आती है कि साऊ का वह पोता पूरा एक बरस भाभी मोरनी का दूध चूधता रहा।



आज

फ्लाइट लेफ्टिनेंट अनवर हुसैन के सामने एक सड-मॉडल पडा था, ढाका यूनीवर्सिटी का सड-माडल

यूनिवर्सिटी के होस्टल विग मे एक कमरे की खिडकी खुली, नजमा ने खिडकी से बाहर दखा

अनवर चौक गया—सामने उस का विग कमाडर फिरोजखान खडा था, और उस एक मिशन सौप रहा था, "यह ढाका यूनिवर्सिटी का सड-मॉडल है"

अनवर न सड माडल की तरफ दखा—सड माडल म न तो कमरो के नम्बर होते हैं न कमरा की खिडकियाँ—पर वहाँ कहीं, पता नहीं कौन सा, नजमा का एक कमरा था

विग कमाडर फिरोजखान कह रहा था, 'ठीक साढे सात बजे ढाका यूनिवर्सिटी के स्टूडेंट्स की मीटिंग होगी, यह मीटिंग तेरा टारगेट है"

'यस सर!' अनवर का स्वर उस की आदत के अनुसार था।

"एअर क्राफ्ट इज लोडिड विद रॉकेट्स एण्ड आल द ग ज "[1]

" "

"जहाज तीस हजार फुट की ऊँचाई पर रखना, टु सेव यूअर फ्यूएल -

"येस सर !"

' टारगेट से कुछ दूर पहुँचकर—ड्रौप टाप लेवल '[3]

" "

"इस लेवल से मजम म हवाई जहाज की आवाज नही पहुँचेगी।

"यस सर !"

"टारगेट से बीस सेकिंड पहले—पुल अप ! चार हजार फुट की ऊँचाई पर। पुट द एयर क्राफ्ट इन डाइव एण्ड फायर यूअर ग ज, ओवर द मीटिंग प्लेस।[4] अगर जरूरत पडे तो दूसरी-तीसरी बार औ पर फिनिश यूअर राउडज। इतने मे जो लोग बचे होंगे इन इमारता की तरफ दौडेंगे।"[5] विग कमाडर ने सैंड-माडल की तरफ इशारा किया, और कहा, 'नाउ सिलेक्ट यूअर राकटस एण्ड अटैक दीज बिल्डिंग्स।"[6]

"यस सर !"

"एअर क्राफ्ट इज लोडिड एण्ड फ्यूएल्ड, प्लन यूअर मिशन '[7] और विंग कमाडर न 'आल द बेस्ट'[8] कहत हुए यह भी कहा, 'आई वाट मक्सीमम रिजल्टस।"[9] अनवर न सिर नीचा कर लिया। पास ही ग्रुप कैप्टन अहमदखान खडा था। उसे लगा जस अनवर के मुह पर एक जर्दी फिर गयी थी। वह अनवर के पास होकर हँस सा दिया "वेरी सिंपल मिशन, नो एनीमी अपोजीशन, ना ग ज, ना मिसाइल्ज, नो इटरसप्टज [10]

एक दिन नजमा ने भी कहा था, 'तुम मेरा बगाल नही देखोगे ! तुम ने असोर के सिवा कुछ भी नही देखा। कभी छुट्टिया लेकर ढाका आना, मेरी यूनिवर्सिटी बहुत खूबसूरत है '

और आज वह ढाका यूनिवर्सिटी जा रहा था ब्रीफिंग खत्म हो रही थी, विंग कमाडर न ताकीद की, अटैक फ्राम एनी साइड, एवायड ईस्टन डायरेक्शन।'[11]

---

1 हवाई जहाज म राकट और गनें रख दी गयी हैं। 2 इधन बचाने के लिए 3 पड जितनी ऊचाई 4 हवाई जहाज का सहसा नीचे ले जाना और सभा स्थल पर बमबारी कर देना। 5 अपने राउड खत्म करना। 6 अपने राकट चुन लो और उन इमारता पर हमला कर दो। 7 जहाज म हथियार और इधन रख लिये गये हैं अपन लक्ष्य पर दृष्टि रखो। 8 विजयी होओ। 9 मैं अधिकतम सफलता चाहता हू। 10 सीधा सादा लक्ष्य न दुश्मन का मुकाबला न शत्रु की गन, न मिसाइल न कोई और अवरोधक। 11 किसी भी तरफ से हमला करो पूव दिशा से नही।

ज़ाहिर था—विंग कमांडर की सूझ बारीक थी। सुबह का सूरज अगर सामने की तरफ से आंखों पर पड़ेगा तो उस की चमक से आँखें चुंधिया जायेंगी इस लिए मशरिक की तरफ मुंह करके अटैक नहीं करना था

अनवर की छाती दहल गयी—सूरज सिर्फ एक तरफ से उगता है—पर नजमा—मशरिक मगरिब, शमाल, जनूब—चारों तरफ से क्या उदित हो रही है चारों तरफ से आंखों के आगे एक चकाचौंध अनवर ने आज के मिशन के लिए हवाई जहाज की सीट सँभाली, और अपने गिर्द स्ट्रैप्स कसते हुए एक आह सरीखी सांस ली "नजमा! तुम ने किसी वक्त मुझे कहा था—'ढाका यूनिवर्सिटी आना, बोलो आओगे न!'—और मैं ने कहा था—'अच्छा, ज़रूर आऊँगा!'—पर मैं ने अल्ला की कसम, ऐसे नहीं कहा था '

उस ने इंजन स्टार्ट किया—जेनरेटर की बत्ती अभी भी लाल सुर्ख थी, जिस का मतलब था जेनरेटर चार्ज नहीं कर रहा। अनवर को तसकीन सी हुई—जहाज खराब था, इस लिए आज के मिशन से उसे छुटकारा मिल जायेगा

राहत भरी सांस मुश्किल से दो पल आयी, इलेक्ट्रीशन ने फ्यूज़ बदल दिया, जेनरेटर ठीक हो गया। अनवर ने टक्सी आउट किया, जहाज़ का रनवे की ओर ले गया। टेक ऑफ से पहले सारे चेक्स किये, फिर उस ने जहाज़ को रनवे पर लाइन अप कर लिया।

छाती में से एक हूक निकली, "या खुदाया, इस का इंजन फेल हो जाये।"

और जहाज़ को रोल करते हुए उस ने पांचों पीरों को मनाया। पर जहाज़ स्पीड पकड़ रहा था। टेक ऑफ स्पीड पर उस ने कंट्रोल स्टिक को पीछे खींचा, जहाज ऊपर की ओर हो रहा था

अनवर के सारे अंग जैसे एक दूसरे से जुदा हो गये। दिल दिमाग एक तरफ होकर बैठ गये, और हाथ अपनी आदत के अनुसार जहाँ जहाँ भी पड़ने थे, पड़ते रहे। मुंह से आवाज़ भी उसी तरह निकलती रही जिस तरह ऐसे वक्त हमेशा निकलती थी—'ब्रेक्स व्हील्ज़ अप सेफ्टी स्पीड थ्राटल बक' दिल भी जहाज़ की तरह, फासले को चीर रहा था—पर जहाज आने वाली घड़ी के फासले को, और दिल बीती हुई घड़ी के फासले को

जहाज तीस हजार फुट की ऊँचाई पर उड रहा था, और अनवर की विचार-धारा धरती से कई हजार फुट नीचे पाताल म उतरी हुई थी शायद वहाँ जहाँ कभी आदम और हव्वा छोटी छोटी मछलियाँ बनकर तरा करते थे

उस दिन उस न नजमा को जेट का प्रिंसीपल समझाया था—न्यूटन का थर्ड लॉ आफ माशन । हवाई जहाज म फ्युएल जलता है गैसें जेट एग्जास्ट म से पिछली तरफ जाती है, और वही जहाज को आगे धकेलती है न्यूटन का थर्ड लॉ ऑफ मोशन

नजमा की स्याह काली आंखो म पता नही क्या था अनवर को लगा था, अगर वह एक बार इन आंखो म डूब गया तो फिर इन पलको मे से वह कभी बाहर न आ सकेगा । फिर कितन दिन कितने दिन वह जब भी अपन पैर पीछे खीचता था, वह एक कदम जसे और आगे हो जाता था यह पता नही न्यूटन का फोर्थ लॉ ऑफ मोशन था

न्यूटन ने सिफ तीन लॉ बनाय थे यह चौथा और अनवर को घबराकर याद आया कि अभी उस न कण्ट्रोल टॉवर को मसज देना है । मसेज दिया, "जसोर टावर पीस टाइम रिपोर्टिंग ऑपरेशन नामल "

और अनवर को लगा—जसे उस ने आज सब स बडा झूठ बोला हो । नामल कुछ भी तो नही उस की नाडियो म आग की लकीरें फल रही हैं, और वह कह रहा है—सब नामल

नजमा न उसे दूसरे दिन, छोटे भाई की सालगिरह पर दावत दी थी । वसे भी इन दिनो म बगाली बहुत खुश थे । इलेक्शनो मे जीते हुए थे नजमा ने कमल के फूलो का गीत गाया था

और उस से अगली मुलाकात जस उस न हठात् नजमा से माग ली हो—पर वह मुलाकात सुखद नही थी—हवा मे शिद्दत की गम थी—और नजमा तमाम वक्त उसे हुकूमत का एक अग समझकर शिकवे करती रही थी अपनी तहजीब के मान म मदमस्त पर दिल फरेब

नजमा के लम्बे स्याह बालो की तरह आसमान म बादल घिर आये थे, अनवर के खयाल भी वह छुट्टियां गुजारकर जान लगी तो फोन करके उस न खुद अनवर को बुलाया था । खुश भी थी, खीझी हुई भी, कह उठती थी, 'अनवर तुम्हारी पोस्टिंग उन्होने तुम्हारे देश से इतनी दूर, मेरे देश म क्यो कर दी ? मजहब एक होने से क्या होता है, तुम बगाल का दद कभी नही समझ सकते '

बगाल का दद पजाब के अनवर ने अपने होठो को अपने दातो से काटा—इन्सान का एक निजी दद भी तो होता है ये सरकारें जब इन्सान को हुक्म देती हैं



एक खाली जगह

मोहरसिंह जब अचानक घोड़ी पर से गिरकर मर गया, तो आसपास के गांव में जितने दोस्त थे, उन के घर बलते घी के दीये कांप गये। हरनाम कौर उस की ब्याहता, नामो वे सरदारा! मेरिया थानेदारा विलाप करती-करती जब थक गयी तो नसवार की एक चुटकी लेकर पिछली कोठरी में जा पड़ी।

केहरा उस का बड़ा बेटा, जब निया पर बैठा, उस की आंखों के पपोटे सूज रहे थे। लोगों के लिए वह सारी रात रोता रहा था, पर यह सिर्फ उसे पता था कि वह मृतक पिता के सिरहाने से जब पिस्तौल और सिलाजीत की डिबिया उठाकर पिछली एक कोठरी में गया था तो सारी रात फावड़े से कोठरी के एक कोने में गड्ढा खोदकर बाप के सारे गँडासे छुरे और गोलियां पिस्तौल छिपाता रहा था। जानता था कि पुलिस कभी इस घर की राह नहीं करती थी, पर यह भी समझता था कि पुलिस को जिस मुंह का मुलाहजा था, वह मुंह न रहा तो पुलिस का लिहाज भी नहीं रहना था।

मलकी ने इस आंगन में कभी पांव नहीं रखा। उस के लिए मोहरसिंह ने नया कोठा छतवा दिया था, पर आखिर उस की सरदारी भी मोहरसिंह के लिए सदका थी, मर हुए सरदार का मुंह देखने के लिए खोयी हुई बछड़ी की तरह उस के आंगन में आ गयी। फौजा, मोहरसिंह के यारों में नम्बर एक था। मोहरसिंह खुद भी उसे 'दरजा अव्वल' कहा करता था। मोहरसिंह का संस्कार हो गया, और जब लोग घरों को लौटे, मलकी भी खामोशी से उठकर अपने घर को चली, तो फौजा उस के पीछे-पीछे हो चला। वह घर का कुंडा खोलने लगी तो फौजे ने पास होकर कहा, 'मलकीअत कौरे! दिल न थोड़ा करना, बस, यही कहने के लिए तेरे पीछे आया हूं।"

मनकी एक बार ठिठक सी गयी। एक मोहरसिंह था, जो उसे 'मलकीअत कौर' कहा करता था। उस के यारो दोस्तो मे से किसी की मजाल नही होती कि जो उस की परछाइ भी छू सके। कभी वास्ता पडता तो हर कोई उसे भाभी कहता था, पर कभी उस का नाम नही लेता था। आज फौजे न मोहरसिंह के मरते ही उस का नाम लेकर बुलाया तो वह एक पल चौकी, फिर सँभल गयी। कहने लगी, "अब उम्र ढल गयी देवर। मुझे काहे का फिक्र है। वह खुद सयाना था, जीते जी यह कुआ और खेत मेरे नाम करवा गया, मुझे सारी उम्र के लिए काफी है। अकेली जान का क्या होना है।"

"फिर भी मै ने कहा, कभी भाभी, तू डाल जाये बस यही कहने आया था।" फौजासिंह ने शायद सचमुच और कुछ नही कहना था, यही कहकर पीछे लौट गया।

मलकी न अन्दर से दरवाजे का कुडा लगा लिया, दीया जलाया और फिर निहत्थी सी होकर खटिया पर बैठती का रोना आ गया।

'अकेली जान का क्या होता है,' मलकी की अपनी आवाज ही उस के कानो मे खडी हो गयी, और जो रोना उसे सवेरे मोहरसिंह की लाश देखकर नही आया था, वह अकेली बैठी को आ गया, 'सरदारा! तेरे जीते-जी भी तो अकेली थी, एक जगह ऐसी अकेली थी, तुझे भी नही दिखता था'

मलकी ने गहरी सांस ली और सोचने लगी—मोहरसिंह जब सात नियामते लिये उस के पास बैठा होता था, तब भी उस के सामने ऐसी ही खाली जगह होती थी, जो कभी भरती नही थी इस खाली जगह पर वह आप ही कभी एक बच्चे को गोदी मे डालकर बैठ जाती थी बच्चे को दूध पिलाती थी कन्धे पर लगाकर उस रोते हुए को बहलाती थी और फिर सोए हुए बच्चे का मुह चूम चूमकर बावरी हो जाती थी

जब वह बरस गिनती तो वही गोदी का बच्चा उस की आँखो के आगे बडा हो जाता वह नया ढीला कुर्ता सिलाती और आटे की परात भरकर गूथती

बरसो की गिनती भूल जाती तो बच्चा छोटा हो जाता, बरसो की गिनती याद करती तो बच्चा बडा हो जाता और वह अपने सामने पडी खाली जगह को आँखें मूद मूदकर भरती रहती

एक दिन सो रही थी, तो उस ने सपने मे अपने बेटे की सुन्नतें करवाइ। जागी तो मोहरसिंह की आवाज कान मे पडी, 'मलकीअत कौरे! उठ चाय का घूट बना, मै ने जल्दी जाना है'

'मलकीअत कौर' रोती हुई मलकी को हँसी सी आ गयी, बैठी-बैठी कहने लगी 'मलकीअत कौर तो तेरे साथ ही मर गयी सरदारा! अब बता इस मलकी का क्या करूँ?'

'सरदार जब जीता था, कभी रौ म होता था, तो उसे कहती थी—बेलिया सरदारा ! यह तू ने मेरे साथ क्या किया ? मुझे बसी बसाई को उजाडना था तो दो बरस पहले उजाड लेता, तब क्या उजाडा जब बरस का बेटा झोली मे डालकर बठी थी '

और 'बेली सरदार' कहा करता था, सयोगा की बात होती है मलकीअत कौर ! मैं ने सैंकडो औरतें तेरी जसी, और तुम मे भी सवाई उठायी और बेची, पर धम की सौगध, दिल किसी पर नही आया था। तेरा सौदा तो किसी और के लिए किया था, पर ज्यो ही आख उठाकर तुझे देखा, मेरे जी को जजाल पड गया '

और मलकी जी ही जी मे काप जाती, 'यह सरदार, जो मुझे बदूको के जोर से उठा लाया, जो औरो की तरह मुझे भी कही आग बेच देता मरा पता नही क्या हाल होता यहा मुझे गम हवा नही लगने देता मुह से एक बात निकालू तो छत्तीस निआमतें हाजिर करता है म शिकलीगरा की फकीरनी-सी औरत यह मुझे राज करवाता है।' और फिर मलकी की सारी दलीलें डूब जाती, जिस्म पर पडे सोने के गहने भी कच्चे रग की तरह खुर जात, और वह मन के गहरे दरिया म पडी हुई उस किनारे को ढूढती जिस किनारे पर उस की कोख मे जन्मा उस का बेटा था

बेली सरदार ने एक बार उस के लिए कोशिश की। पर कुछ नही बना। शिकलीगरो को जब मलकी का पता लगा था वह सरदार के गाव आये थे, और सरदार न उन के साथ एक सौदा करना चाहा था कि अगर वह मलकी का बेटा उसे दे दें तो वह पूरे पाच हजार उन की झोली म डाल देगा। पर शिकलीगरो ने सरदार का बदले की धमकी दी थी और सौदा थूक दिया था।

'सरदार माहरसिह स बदला ? सरदार जोर-जोर से हँसा था और फिर हवा मे उस की पिस्तौल की गोलियाँ हँसी थी

और फिर पता लगा कि शिकलीगरो का वह टोला हदें सरहदे लाँघकर पाकिस्तान चला गया था

'अठारह बरस हो गये ' मलकी ने उँगलियो पर बरस गिने और फिर उन म अपने बेटे की उम्र का वह बरस भी जोडा, जब उस न बेटे को आखिरी बार देखा था, और फिर उन्नीस बरस के बेट का मुह याद करती सामने पडी हुई खाली जगह की तरफ देखने लगी

मोहरसिह का अभी मुश्किल से क्रिया कम ही हुआ था जब लोगा ने सुना कि मलकी अपन कुएँ-खेत छोडकर पाकिस्तान चली गयी थी



कजली

पठानकोट बीस मील पीछे छूट गया था, और आगे सडक का दूसरा सिरा अभी पचास मील दूर था कि गाडी की फैनबेल्ट टूट गयी। गाडी न एक कदम आगे हो सकती थी न पीछे। एक ही चारा था कि पठानकोट की तरफ जाती किसी लॉरी कार म बठकर इमरोज पठानकोट जाये, और वहां से नयी फनबेल्ट खरीदकर, फिर इस तरफ आती किसी लारी कार मे वैठकर आ जाये।

वसे सुवह का वक्त था, सारा दिन सामने पडा था। साझ के अँधियारे का खौफ अभी बडी दूर था। इसलिए दो घटे या इस से ज्यादा इतजार करना मुझे मुश्किल नही था। सडक छोटी थी। गाडी को पहाडी दीवार की तरफ़ लगाकर, मै खाई की ओर वैठ गयी थी कि अगली या पिछली तरफ से आने वाली कारा लारिया का यहा से सँभलकर गाडी के पास से गुजर जाने का इशारा दे सकू।

एक लारी बिल्कुल नजदीक आयी तो झटका-सा खाकर खडी हो गयी। उस का पहिया पक्चर हो गया था। लॉरी म कई सवारिया थी। लॉरी का ड्राइवर और कडक्टर पहिया वदलने लगे, तो सवारिया उतरकर सडक पर खडी हो गयी। ड्राइवर किसी रौ म था, अपनी सवारियो से कहने लगा, ' यही मोड मुड कर मरखनी की बावडी है। सब पानी-बानी पिओ, या झोपडी वाले चाचा की दुकान से चाय पी लो—पहिया चढाकर तुम्हे आवाज द लूगा।"

सवारिया उस के कहे पर अगले मोड की तरफ चल पडी तो कडक्टर ने लारी क पहियो के साथ बडे-बडे पत्थर रखत हुए ड्राइवर को चुटकी भरी, ' बचना! तुझे चाहे और सब कुछ भूल जाये, पर मरखनी नही भूलेगी न तुझे, न तेरी लॉरी को। देख ल, ससुरी वही पहुँचकर पक्चर हुई है "

सो लगा मरखनी कोई औरत थी। सीग मारने वाली गाय या भस का तो सुना हुआ था कि मरखनी कहत हैं, पर औरत

ड्राइवर तमककर कह रहा था, "साले! नाम न ले यह जक नही लगेगा मुझ से '

उस का कडक्टर उस की रगें पहचानता-सा लगा था, उस ने फिर हुज्जत की, 'अरे ! जीती थी तो तुझे हमेशा सींग मारती थी, अब मरी हुई भी मारती है ?"

पहिये के नट कसते हुए ड्राइवर ने हाथ म पकडा हुआ बोलपाना कडक्टर के कान म फसा दिया, और हँस पडा, ' आ तो बच्चू, पहले तेरे नट कस लू "

नया पहिया चढ गया, तो कडक्टर दौडकर सामने मोड के पास गया। बावडी शायद एक तरफ पास ही थी, उस की आवाज सुनाई दी "आओ भई आओ वहाँ कौन सी मरखनी बठी है जो तुम हिलते नही " इधर ड्राइवर फिर अपनी सीट पर बठकर हान दे रहा था, कडक्टर और भी कुछ कह रहा था, पर वह हान की आवाज म डूब गया, सुनाई नही दिया।

सवारियाँ लौट आयी, लॉरी चली गयी, तो मेरे पर अनायास ही उस मोड की तरफ बढ गये, जिस के एक तरफ कोई बावडी थी। चाय गाडी म रखे थमस म थी, पानी की भी जरूरत नही थी। पर फिर भी बावडी जसे बुला रही थी

देखा, पहाडी बावडियो सरीखी एक बावडी थी। एक तरफ जरा-सा ऊपर सलेटी की छत वाली दो लकडी की कोठरियाँ थीं। एक म आग जल रही थी दहलीज के पास बठा एक बूढ़ा आदमी अभी अभी खाली हुए चाय के गिलास धो रहा था।

पास जाकर पूछा, "यही मरखनी की बावली है ?

उस ने गिलासो से सिर उठाकर मेरी तरफ देखा तो लगा—मेरे सवाल से वह गुस्सा हो गया था। म ने फिर हलीमी से पूछा, ' यहा अभी एक लारी खराब हुई थी, तो उस के ड्राइवर ने बताया था कि यहाँ मोड पर "

' वह कुत्ते के बीज मरघट म भी पडी हुई का चैन नही लेने देते "

बूढे के हाथ से काच का गिलास छिटकते हुए बचा। देखा—चूल्हे के पास टीन के छोटे-छोटे डिब्बे पड़े हुए थे। एक रुपया दीवार के पास पडे स्टूल पर रखकर कहा, ' बाबा ! चाय का गिलास और कुछ खाने को मिल जायेगा ?"

उस ने एक डिब्बा खोलकर कुछ बिस्कुट निकाले, और चाय का पानी चूल्हे पर चढाकर कहने लगा, "बिटिया ! यह कजली की बावडी है सारा जग जानता है। इस का पानी तो अब दुश्मन भी आँखो से लगाते हैं पर कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हे खुदा की मार होनी है—इनसान की जून म आकर भी इनसान नही बनते

' कजली कौन थी बाबा ?'

' कजली मेरी बेटी थी, बेटी जसी ये राह जाते जब बुरी नजरो से देखते, तो फिर वह उन की पसलिया न तोडती, तो क्या करती ?—इसी लिए ये कुत्ते के बीज उसे मरखनी कहते थे।"

' कब मर गयी ?"

"थी तो जीने लायक, पर मर गयी मौत भी नही आयी थी, पर मर गयी " और उस ने काँच के गिलास उल्ट रखकर कहा, अगर बिटिया, तू ने कही वह देखी होती '

बाबा के मन म, लगा, खाई जसी कोई हसरत थी। मुझ राही को वह कह रहा था—'जा तू न कही वह देखी होती '

मैं ने भी उसी हसरत से पूछा, "कैसी थी ?"

चूल्हे पर से खोलती चाय शीशे के गिलास म डालकर उस ने कापते हाथ स जब गिलास मेरे आगे रखा—लगा उस के शीशे सरीखे मन म भी कुछ उबल खोल रहा था

कह रहा था, "अँगूठा चूसती को चोली म डाला था। आधी से कोठा ढह गया। ऊपर से इतने पेड टूटे कि कोठा भी कही ढूढे मिलता नही था। बाप मर गया, माँ मर गयी, पर मिटटी के ढेर म से यह निकल आयी। होनी कि बेटी को तब कुछ न हुआ।"

"फिर ?"

"ऐसी पक्की हड्डी थी। फिर जवान हुई तो कई ववेंडर उठ खडे हुए "

"यहा इसी बावडी पर तुम्हारा घर था बाबा ?"

"काहे को अपने भरे गाँव मे था। अपने खेत थे अपने खलिहान "

'फिर ?'

"कोई पिछले जन्म का लेन-देन था। गाव के नम्बरदार का बेटा भरती हुआ तो हाथ म बन्दूक थामकर कह गया—'यह कजली किसी और जगह ब्याही तो उस जने को बन्दूक की एक ही गोली से बींध दूगा।' "

"फिर ?"

'उस से भी सवाया, पता नही किस निगोडी मा न जन्मा था, एक कोई और घोडे पर चढा, हमारे गाव मे से गुजरा, और कजली के माथे पर तकदीर लिखी गयी।'

"फिर बाबा ?"

"चिडियो और गुटारो की तरह उडती लडकी को पिंजरे म डाल गया '

'लौटकर आया कि ना ?'

"उस की होनी उस बुलाती थी, आता कस ना ? ढलते दिन की तरह गया था, उगते दिन की तरह लौट आया।'

'फिर ?"

'मैं नम्बरदारा स डरता इस को कोई हामी ना भरूँ पर यह तो नदियो के वहाव थे मैं कसे थाम सकता था उस के हाथ म भी बन्दूक थी, कहता— भुगत लूगा नम्बरदार के लडके को ' लडकी उस से भी सवा रत्ती बढ़कर कहे – 'मुझे

सिखा ब दूक चलाना ' और उन दिनो सचमुच नम्बरदारा का लडका छुट्टी आ गया।"

"फिर ?"

चाय पीनी भूल गयी थी, तो भी लगा—गम चाय से होठ जल गये थे

'उस की आयी थी उस की काहे को, सब की आयी थी दोनो न ब दूकें तानली। नम्बरदार का लडका ब दूक की गोली से मर गया, और हम सब का कर्मों ने मार दिया "

"वह पकडा गया ?"

"सारा गाव गवाह था, उस बावरे ने कहा जाना था पुलिस पकडकर ले गयी तो फिर उस की सूरत नही देखी। लडकी ने कई अरजिया दी पर अगला न यही बात पकड ली कि वह अरजी देने वाली कौन होती है—न मा, न बहन न घर की कोई नार "

सामने दूर पार तक पत्थर ही पत्थर दिखते थे। लगता—कजली को सारी दुनिया ही पत्थरो की दिखती होगी।

"बिटिया ! चार फेरे लिये होत, चलो वह चाहे जेल मे ही था, तिमाहे-छमाहे उस का मुह तो देखती "

'उसे कितनी सज़ा हुई, बाबा ?"

"सारी उम्र की।"

"सारी उम्र की ?"

"तीन बरस बीत गये—जग ताने देवे कि भला वह उस की क्या लगती थी ? कानून ता कागजा के होते ह न बिटिया ! "

कागजो पर लिखे अक्षरो मे, और पत्थर पर खिची लकीर मे—क्या और कहा फर्क होता है ? सोच रही थी— यह कभी पकड मे नही आता

बाबा कह रहा था—"उसे किसी पर गुस्सा नही था—सिर्फ पुलिस वालो पर गुस्सा था, कि उस मलाखो के पीछे पडे हुए का, कभी बरस छमाही देखन क्या नही देत, थाने जाती तो वहा उस की बेइज्जती करत कि रोती के हाथ भीग जाते फिर—एक दो रिश्त आये तो जली भारी कहने लगी—चाचा, किसी से मरा ब्याह ब्याह कर दे—इज्जत वाली हो कर देख लू "

'फिर उस ने ब्याह किया ?'

'ना ही करती उस बेलगाम घोडी को लगाम कहा पडनी थी उधर फेर दिये, उधर सोग मनाकर बठ गयो म ने उस जन को समझाया कि सब्र स काम ल—पर वह निगोडा जला भुना चौथ दिन ही गाली-गलौज दने लगा। हाथो स मेहँदी भी नही उतरी थी, लडकी को मारन-पीटन लगा। उस न भी मारत हुए का हाथ न रोका। बदन पर नील पड गये तो थान जाकर रपट लिखवा आयी।

कहने लगी—'अव तो कानून वोलेगा, तव तो उस दाती लग गयी थी। तव उसे मेरे ज़ख्म नही दिखते थे, अब ता मेरे नील दिखेंगे अव तो इज्जत वाली हूँ "

मै ने हैरान-सा होकर पूछा—' फिर वावा ?"

"वह पकडा गया। छ महीने की सजा सुनायी गयी। कहा गया या ता दो सौ रुपये दण्ड भरे या जेल जाये। घर ता तगडा नही था, रुपया कहाँ से भरता ? पर इस लडकी की वाते—न हम से वूझी गयी, न भगवान से। ख़ुद ही उसे सजा दिलवायी, ख़ुद ही जाकर उस का दण्ड भर आयी। दो सौ रुपया सरकार के माथे मारकर उसे छुडा दिया। पर ख़ुद, ख़ुदा की वन्दी फिर उस के साथ न लगी। न उस के घर गयी, न उसे अपने घर आने दिया वस अन्दर घुसकर बैठ गयी—जैसे कब्र मे पडी हो "

म सोच रही थी—पहाडी राह—पेचीदे मोड वाले, शायद इन्सानी मन की रीस मे वनी है वावडी को तरह मन भर आया

वह कह रहा था—' फिर दो वरस वाद वह, जिस की सूरत भी भूल गये थ, जेल तोडकर वह हमारे घर म आ खडा हुआ "

"वह ?"

' आधी रात को। मै तो पूस की रात की तरह कापने लगा पर कजली उसे ललककर मिली। जैसे कब्र मे से उठ वैठी "

"पर पुलिस उस के पीछ होगी ? '

"कजली को भी पता था कि पुलिस उस के पीछे होगी, पर उ ही कपडो खड परो वह उस के साथ हो ली। वह घडी भर भी वहा नही ठहर सकते थ। पहला छापा, पता था, वही पडना था "

"फिर ? '

"वह जगह पता नही सौ कोस दूर होगी। पता नही वह यहाँ कसे पहुँचे। मुझे फिर छ महीने उन की कोई खबर नही मिली। कहते है, वह छ महीने यहाँ घर बनाकर रही। गुज़ार के लिए—यह चाय की दूकान चलाती। किसी को अपने मर्द के माथे न लगने देती। दिखन को सव को अकेली दिखाई देती थी। तभी तो विटिया ! यह हराम के उसे मरखनी कहते थे। अकेली देखकर पगला जाते होग वस वही रातो के अँधेरे म चार दिन उस न जा जीना था, जो लिया—फिर पुलिस को सू लग गयी। कहते हैं, जब पुलिस न घेरा डाल लिया तो कजली ने ख़ुद बन्दूक चलाकर पहले अपने मर्द को मार दिया, फिर एक गोली अपन छाती मे मार ली और पुलिस लाशे लेकर चल पडी "

उस न छोटी अँसुआई आँखो स चौगिर्द के पेडो को, पौधो को एसे देखा जैसे पत्ते-पत्ते म से कजली की और उस के मर्द की रूह दिखती हो मरे हुए बुत ता पुलिस ले गयी थी

ग्रावडो के पानी से आँखें धोती हुई, मैं न देखा— मेरे हाथ कॉप रहे थे



लाल मिर्च

"डाक्टरो के इन्जेक्शनो को छोडो यार, जिस घर के कुत्ते न काटा है, उस घर की लाल मिर्चें अपने ज़ख्म पर लगा लो।" एक दोस्त ने कहा।

"जिस घर के कुत्ते ने काटा है अगर उस घर की कोई सुन्दर लडकी तुम्हार ज़ख्म पर पट्टी बांध दे । लडकियाँ भी तो लाल मिर्च होती है," दूसरा दोस्त बोला।

कालेज के सभी दोस्त लडके हँस पडे। और वह, जिसे कुत्ते ने काटा था हँसकर कहने लगा, "यार, नुस्खा तो अच्छा है पर तुम ने आजमाया हुआ है न ?"

गोपाल ने उम्र की सीढी के अठारहवें डंडे पर पाव रखा हुआ था, और गोपाल को लगा कि इस डंडे पर जवानी के अहसास का एक कुत्ता दुबककर बैठा हुआ था, और आज उस ने अचानक पागलो की तरह उस की टाग में से मास नोच लिया था।—उस दिन से गोपाल का मन अपने ज़ख्म पर लगाने के लिए लाल मिर्च जैसी लडकी ढूढने लग गया था।

लडकियाँ तो गोपाल के कालेज में भी थी, पडोस के घरों में भी, उस शहर की गलियो में भी, और अन्य सब शहरो में भी। 'पर जिस लडकी को मैं ढूँढ रहा हूँ,' गोपाल सोचता, 'वह कहाँ है ?'

और फिर गोपाल लडकियो को ऐसे देखता जैसे थाली में दाल को बीना जाता है। छोटे कद की, मोटी बैठी हुई नाक वाली, लम्बी गोल और जब ऐसी लडकियाँ को वह दाल में के पत्थरो की तरह बीन लेता, उसे सभी पुरानी उपमाऍं याद आ जाती—लचकती हुई टहनी जैसी लडकी, चन्दन जैसी लडकी, देवदार के वृक्ष

जैसी लडकी, चाँद की फाँक जसी लडकी और फिर गोपाल सोचता—कोई नही, इन म से कोई भी नही, उसे तो केवल लाल मिच जसी लडकी चाहिए।

बस ता कॉलिज के सभी लडको म पुस्तका और कार्सों की बजाय लडकिया की बातें लम्बी हो गयी थी पर गोपाल की हर बात का अपन घर जान क लिए जस 'लडकी' शब्द के दरवाजे म स जरूर गुजरना पडता था।

कभी रेडियो पर नूरजहाँ की आवाज आती, "तुम्हार मुख पर काल रग का तिल है, ए सियालकोट क लडके !" तो गोपाल अपन लाल होठा पर एक मोटे तिल को अंगुली से टटोलन लग जाता और फिर जैसे नूरजहाँ को सम्बोधित करके कहता "जालिम, हर बार कहती है 'सियालकोट के लडके', 'सियालकाट के लडके', कभी इस की जगह लायलपुर के लडके भी तो कहा कर।" नूरजहाँ ने ता गोपाल की बात कभी न सुनी पर कालज के लडको ने जरूर गाना शुरू कर दिया, "ऐ लायलपुर के लडके ।" पर इस से ता गोपाल की जबान और भी सूख जाती थी। उस ओर प्यास लगती थी—कभी नूरजहाँ, कभी एक लडकी यह बात कहे !

भुने हुए चने बेचन वाला कहता, 'बम्बई का बाबू मेरा चना ले गया," तो गोपाल हँसता, ' 'चना ले गया' तो ऐसे कहता है जसे इस की लडकी निकालकर ले गया है।"

ऐनको वाली लडकियाँ गोपाल को लडकियाँ नही लगती थी। "जब भी आखो को देखना हो, पहले काच की दीवार पार करनी पडती है।" गोपाल कहता और उन लडकियो को लडकिया की सूची म से निकाल देता।

किसी लडकी ने ऊँची धोती बाँधी हुई होती, पाव मे जुराबें पहनी होती, हाथो म छतरी होती, तो गोपाल हँसकर मुह फिरा लेता, "यह लडकी थोडी है यह तो मास्टरनी है, मास्टरनी। जो विद्यार्थी गणित म कमजोर हो, वह मास्टरनी से शादी कर ले '

किसी लडकी ने गहरे रगो के कपडे पहने होते या बाँह म चूडियाँ ही बहुत ज्यादा पहनी होती, तो गोपाल कहता, "यह तो रगो का विज्ञापन है। लडकी तो बीच मे से मिलती ही नही, बस पूरी की पूरी चूडियो की दूकान है।"

किसी की बरात जा रही होती, गोपाल उदास हो जाता, ' च च च बेचारे का दिवाला निकल गया " और गोपाल कहता, ' जब मनुष्य प्रेमी बनने से पहले पति बन जाता है तो समझो अब बेचार के पास पूजी बिलकुल नही रही, और उस ने घबराकर दीवालिया होने की अर्जी दे दी है।"

'शायद वह किसी प्रेमिका से ही शादी करने जा रहा हो।" गोपाल का कोई दोस्त कहता।

' नही यार जुल्फ को सर करन म उम्र लगती है। गालिब की डोमनी

और लोर्का की जिप्सी, इन के दरवाज पर कभी वरात नही जाती।" और गोपाल कई वर्ष तक इस जुल्फ की वातें करता रहा जिस के सर करने मे उस का उम्र लगानी थी।

और गोपाल ने टटोल टटोलकर देखा—कानी रात जसे वाल, पर उसे किसी रात न नीद न दी। सघन जगल जसे वाल, पर वह किसी जगल मे खो न सका। समुद्र की लहरो जसे वाल, पर वह किसी लहर म गोता न लगा सका। और गोपाल ने उम्र के जो साल एक जुल्फ को सर करने मे लगान थे, वे जुल्फ को ढूढने मे ही खोते रह। और फिर गोपाल अपन सालो के खो जाने से घवरा गया।

'तुम भी अव हमारी तरह दीवालियापन की अर्जी दे दो यार।" कॉलेज के पुराने साथियो म से कोई जव गोपाल को मिलता मजाक करता।

उम्र के अठारहवें वप म जवानी के पागल कुत्ते ने गोपाल की टाँग को काटा था और उस जख्म पर लगाने के लिए गोपाल एक लाल मिच जसी लडकी ढूढ रहा था, पर अव उम्र के वत्तीसव वप मे उस जख्म का जहर उस के सारे शरीर म फलन लग गया था।

अव गापाल सोचने लग गया था, वह न गालिव है, न लोर्का। वह गोपाल है, या एक ईश्वरदास, या एक शेरसिंह, या एक अल्लारक्खा। और उस ने सिर झुकाकर दीवालिया होने की अर्जी दे दी।

"क्यो यार, आज डोमनी के घर म वरात आयेगी या जिप्सी के घर म ?"

"सुनाओ, भाभी कसी है ?"

"और कुछ नही तो हम तुम्हारी लाल मिच के देवर तो बन ही जायेगे।"

"वेशक सोने की अँगूठी की जगह हीरे की अँगूठी ही देनी पडे, भाभी का घूघट जरूर उठायगे।"

गापाल अपने दोस्तो के मजाक को अपने हाथ पर विवाह के लाल धागे की तरह वाधे जा रहा था और हँसता हुआ कह देता था, "मास्टरनी है, मास्टरनी। ऐनक भी लगाती है तुम्हारी भाभी।"

मा न जब रिश्ता किया था, गोपाल से कहा था कि अगर वह चाहे तो किसी वहाने वह लडकी दिखा देगी। पर गोपाल ने स्वय ही इकार कर दिया था—"जव दीवालिया होन की अर्जी ही देनी है तो "

डोली दरवाजे पर आ गयी।

"सुदर है वहू घर का सिंगार है।" उसे रुपये देते समय गोपाल की ताई कह रही थी। और गोपाल कह रहा था—'जव लोग दरवाजे के सामने कोई भैस लाकर वाधते है, तव भी यही वात कहते हैं— भस तो घर का सिंगार होती है।' और जब लोग डोली लेकर आते हैं तव भी यही वात कहते है—'वहू तो घर का

सिंगार होती है।' और फिर बस म और वहू म जो फक होता है, वह कहाँ गया ?"—और फिर गोपाल खुद ही हँस देता—"यह भी वही फ़र्क है जो एक प्रेमी और दूल्हे मे होता है।"

गोपाल की पत्नी न ही इतनी सुदर थी, न ही इतनी कुरूप। आम लड किया जैसी लडकी, देखने म बस ठीक ही लगती। और गोपाल को न कोई चाव था, न कोई शिकायत। वह भाँति-भाँति के कपडे पहनती, पर गोपाल उसे कभी 'रगो का विज्ञापन' न कहता। और वह सोहाग की चूडियाँ और दहेज के कड सब कुछ एकसाथ पहन लेती, गोपाल उसे कभी 'जेवरा की दुकान' न कहता।

आजकल गोपाल को जवानी के शुरू के दिना म पढा हुआ एक अग्रेजी उप यास याद आया करता था जिस म अपने सपनो की लडकी ढूढने के लिए कोई उम्र लगा देता है, पर उसे ढूढ नही पाता, और फिर मरत समय अपने बेटे को अपनी सारी रूपरेखा और सारी लगन देकर कह जाता है कि वह इस किस्म की आखा वाली, इस किस्म के नक्शा वाली और इस किस्म के बाला वाली लडकी को जरूर ढूढे। और फिर सारी उम्र की खोज के बाद उस का बेटा मरत समय यही बात अपने बेट का लिखकर दे जाता है।

'जुल्फ को सर करने मे गालिब ने सिफ एक ही उम्र का अदाजा लगाया था, पर' गोपाल सोचता, 'जीवन की हार गालिब के अदाजे से बहुत बडी है।' और आजकल गोपाल सोच रहा था, उस के घर एक पुत्र जम लेगा, हूबहू उस की मुखाकृति, हूबहू उस का दिल, हूबहू उस के सपने और फिर जब उस का पुत्र जवान होगा, वह एक लाल मिच जसी लडकी जरूर ढूढेगा। और फिर वह सारा ससार अपने पुत्र की आखा मे देखेगा।

"आज मैं बफ वाला पानी नही पिऊँगी,' एक दिन गोपाल की पत्नी ने शिक जबी का गिलास अपनी सास का लौटाते हुए कहा। और मा जब उस के लिए चाय बनाने के लिए रसोई म गयी तो गोपाल ने अपनी पत्नी से हल्का-सा मजाक किया, "मैं सारा महीना सपने इकट्ठे करता [redacted] और तुम महीने के बाद मेरे सारे सपने तोड देती हो।"

शायद वह इन्ही शब्दो का असर था कि अगले महीने गोपाल की पत्नी के दिन लग गये और गोपाल की बाँहो मे जसे अभी उस का बेटा खेलने लग गया।

"खट्टी या नमकीन चीज तो इस न कभी मागी ही नही, हमेशा इस का मन मीठी चीजो के पीछे भटकता है। जरूर बेटा होगा। तुम्हारे जम के समय मुझ भी गुड की खीर अच्छी लगती थी।' मा जब कहती, गोपाल को लगता, अब तो उस का बेटा तोतली बातें भी करने लग गया है।

यह नौ महीने गोपाल को पिछले नौ वर्षों के समान प्रतीत हुए। और फिर घर मे घी, गुड और अजवायन इकट्ठी होने लगी।

कमरे का दरवाजा वन्द किया हुआ था। गोपाल ने वाहर वरामदे म वठकर कागज़, कलम और पुस्तक अपने सामने इस तरह रखी हुई थी जैसे देखनेवाले को लगे, उसे सिर उठाने की फुरसत नही थी। पर गोपाल पुस्तक का कभी कोई पृष्ठ उलटता, कभी कोई। और फिर जो पक्तियाँ सामने आ जाती उन को कागज पर लिखने लग जाता। दरवाजे के पास वह जमा वठा था और उस के कान अन्दर की आवाज सुनन के लिए सतक थे।

"ज़रा हिम्मत कर बेटी। वेटा का इसी तरह ज म होता है। बस मिनट-भर के लिए दातो तले ज़ुबान दबा " रह-रहकर दाई की आवाज आ रही थी। और गोपाल प्रतीक्षा कर रहा था, अभी अभी वह कहेगी 'लाख-लाख वधाइया गोपाल को मा। यह लो वेटा ।'

एक वार दाई वाहर आयी थी। कहने लगी, 'वेटा गोपाल, ज़रा जाकर थोडा सा शहद तो ला दे। देखकर लाना, नया शहद हो।"

गोपाल वहा से जाना नही चाहता था। 'क्या पता बाद म जल्दी ही कुछ हो जाये मैं उस की पहली आवाज सुनूगा,' और वह दाई से कहने लगा, "शहद की याद अब तुम्हे आयी है। यह सारा काम पडा हुआ है मेरे सामने। कल मुझे यह सारा काम दफ्तर म देना है।'

'तुम मर्दों को तो अपन काम की ही पडी रहती है। आखिर बूढी उम्र है, कई बातें भूल जाती हूँ।" दाई यह कह रही थी कि गोपाल की माँ ने सारी मुश्किल दूर कर दी। कहने लगी, "हमारे यहाँ कभी किसी न शहद-वहद नही दिया। हम तो अँगुली पर थोडा-सा गुड लगाकर मुह मे डाल दत है।"

"अच्छा गुड ही सही।" और दाइ अन्दर चली गयी थी।

गोपाल के कान फिर दरवाज़े की ओर लगे हुए थे पर दाई का 'मिनट भर' पता नही कितना लम्बा था। वह अभी तक कह रही थी, 'मिनट भर के लिए दातो तले ज़ुबान दबा ज़रा अपनी तरफ से जार लगा न नीचे को।'

और फिर अचानक बच्चे के रोने की आवाज आयी। गोपाल का सास जसे किसी ने हाथ म पकड लिया हो। वह न नीचे को आ रहा था, न ऊपर जा रहा था। और अभी तक दाई की आवाज नही आयी थी। उस बच्चे की आवाज की अपेक्षा दाई की आवाज की अधिक प्रतीक्षा थी।

और फिर दाई की आवाज आयी, लडकी।"

गोपाल की कुर्सी काँप गयी। उस की माँ शायद पानी या तौलिया लने वाहर आयी हुई थी। गोपाल के होठ कापे, "माँ, लडकी!'

'नही वेटा, नही तू भी पागल है। जब तक 'औल' नही गिरती, दाइया यही कहती हैं। अगर वह कह दें कि वेटा हुआ है तो मा की खुशी के कारण औल ऊपर चढ जाय।' और माँ जल्दी जल्दी अन्दर चली गयी।

वाले आदमी को होती है। और प्रदर्शनी के कई चित्रों की खामोश तारीफ करती मेरी आखें सुमेश नन्दा के दो चित्रों के सामने जमकर रह गयी थीं। एक चित्र के नीचे लिखा हुआ था, 'ढाई पत्ती-डेढ़ पत्ती' और दूसरे चित्र के नीचे लिखा हुआ था, 'एक लडकी एक जाम'।

पहला चित्र चाय के बाग़ मे चाय की पत्तियां चुनती हुई पहाडी लडकियो का था और इस चित्र का भाव चित्रकार ने ऐसे समझाया था

चाय के सारे पौधे की अन्तिम कोपल डेढ पत्ती होती है, एक पूरी बडी पत्ती और एक उस के साथ जुडी हुई छोटी-सी बच्चा पत्ती। उस डेढ पत्ती की चमक ही अलग होती है। उस अन्तिम कोपल से नीचे ढाई पत्तियाँ उगती है, बडी नम। और फिर उस से नीचे मोटी पत्तियो की कई शाखें। ढाई पत्ती और डेढ़ पत्ती अलग तोडकर रख लेते हैं। इन पत्तियो से जो चाय बनती है, वह बडी महँगी बिकती है। बाकी हम लोग जो चाय खरीदते है, वह नीचे की सस्ती, मोटी पत्तियो की चाय होती है। एक साबुत पौधे से सिर्फ चार छोटी पत्तियाँ झरती है, सारे बाग में से आखिर कितनी पत्तियाँ झरेंगी? वह चाय बडी महंगी बिकती है, साठ रुपये पौंड से भी महँगी।

सुमेश नन्दा के इस चित्र मे जो सबसे पहली लडकी थी, उस का मुह आधे से भी थोडा दिखाई पडता था। हमारे सामने ज्यादा उस की पीठ थी, फिर भी उस के सौन्दर्य की कैसी छवि दिखती थी! लगता था, सारी पहाडी लडकियाँ जैसे चाय का एक पौधा हो, बिखरा फला एक पौधा, और यह लडकी, इस पार खडी हुई लडकी, सारे पौधे का अन्तिम कोपल हो, डेढ पत्ती की छोटी, हरी चमकदार कोपल! पर मैं ने अपनी बात अपने पास ही रखी और चित्रकार को कुछ नही कहा।

दूसरा चित्र, जिस के नीचे लिखा था, 'एक लडकी एक जाम', एक पहाडी लडकी का अनोखा सौन्दर्य था, जैसे लोग कहते है, "यह चित्र तो मुह से बोलता है!" वाकई ऐसा मुह से बोलनेवाला चित्र मैं ने कभी नही देखा था। उस के सम्बन्ध मे चित्रकार ने कुछ नही कहा था। मै ने ही कहा, "ऐसा जाम पीने के लिए तो एक उम्र भी थोडी है!"

चित्रकार ने चौंककर मेरी ओर देखा। कोई साठ साल की उम्र होगी उन की। जाने कौन सी जवानी पिघलकर चित्रकार की आंखो में आ गयी। बोले, "इस चित्र की यह व्याख्या मैं ने और किसी से नही सुनी। यह बिलकुल वही बात है, जो मैं ने कहनी चाही थी। और तो और, मेरे मित्रो ने भी इस का यह अर्थ नही लगाया था। मेरे साथ कइयो ने मज़ाक किये, 'एक लडकी एक जाम' और जाम नित नया होता है!"

जाने उस चित्र में कौन-सा बुलावा था! हफ्ते भर वह प्रदर्शनी लगी रही,

वाले आदमी को होती है। और प्रदर्शनी के कई चित्रो की खामोश तारीफ करती मेरी आखे सुमेश नन्दा के दो चित्रो के सामने जमकर रह गयी थी। एक चित्र के नीचे लिखा हुआ था, 'ढाई पत्ती-डेढ पत्ती' और दूसरे चित्र के नीचे लिखा हुआ था, 'एक लडकी एक जाम।

पहला चित्र चाय के बाग मे चाय की पत्तिया चुनती हुई पहाडी लडकियो का था और इस चित्र का भाव चित्रकार ने ऐसे समझाया था

चाय के सारे पौधे की अन्तिम कोपल डेढ पत्ती होती है, एक पूरी बडी पत्ती और एक उस के साथ जुडी हुई छोटी-सी बच्चा पत्ती। उस डेढ पत्ती की चमक ही अलग होती है। उस अन्तिम कोपल से नीचे ढाई पत्तिया उगती है, बडी नम। और फिर उस से नीचे मोटी पत्तियो की कई शाखें। ढाई पत्ती और डेढ पत्ती अलग तोडकर रख लेते है। इन पत्तियो से जो चाय बनती है, वह बडी महँगी बिकती है। बाकी हम लोग जो चाय खरीदते है, वह नीचे की सस्ती, मोटी पत्तियो की चाय होती है। एक साबुत पौधे से सिर्फ चार छोटी पत्तियाँ झरती है, सारे बाग मे से आखिर कितनी पत्तियाँ झरेगी? वह चाय बडी महगी बिकती है, साठ रुपये पौंड से भी महँगी।

सुमेश नन्दा के इस चित्र मे जो सबसे पहली लडकी थी, उस का मुह आधे से भी थोडा दिखाई पडता था। हमारे सामने ज्यादा उस की पीठ थी, फिर भी उस के सौन्दर्य की कैसी छवि दिखती थी! लगता था, सारी पहाडी लडकियाँ जैसे चाय का एक पौधा हो बिखरा फैला एक पौधा, और यह लडकी, इस पार खडी हुई लडकी, सारे पौधे का अन्तिम कोपल हो, डेढ पत्ती की छोटी, हरी चमकदार कोपल! पर मै ने अपनी बात अपने पास ही रखी और चित्रकार को कुछ नही कहा।

दूसरा चित्र, जिस के नीचे लिखा था 'एक लडकी एक जाम' एक पहाडी लडकी का अनोखा सौन्दर्य था, जैसे लोग कहते है, यह चित्र तो मुह से बोलता है!' वाकई ऐसा मुह से बोलनेवाला चित्र मैं ने कभी नही देखा था। उस के सम्बन्ध मे चित्रकार ने कुछ नही कहा था। मै ने ही कहा, ' ऐसा जाम पीने के लिए तो एक उम्र भी थोडी है!"

चित्रकार ने चौककर मेरी ओर देखा। कोई साठ साल की उम्र होगी उन की। जाने कौन सी जवानी पिघलकर चित्रकार की आखो मे आ गयी। बोले, "इस चित्र की यह व्याख्या मै ने और किसी से नही सुनी। यह बिलकुल वही बात है, जो मैं ने कहनी चाही थी। और तो और, मेरे मित्रो ने भी इस का यह अर्थ नही लगाया था। मेरे साथ कइयो ने मजाक किये, एक लडकी एक जाम' और जाम नित नया होता है!"

जाने उस चित्र मे कौन-सा बुलावा था! हफ्ते भर वह प्रदर्शनी लगी रही,

और मैं उस हफ्ते में तीन चार प्रदर्शनी देखने गयी थी—असल में सारे चित्र नहीं, एक चित्र, 'एक लडकी एक जाम'। किसी कला ममन होने के जोर से नहीं, सिर्फ मन में कुछ उठते हुए के जोर से मैं ने सुमेश नन्दा की उस कृति के सम्बन्ध में एक सादी-सी बात कही थी। और उस सादी-सी बात ने चित्रकार का सारा मन खोलकर उस के होंठों पर ला दिया था।

"कागडा कलम को जाचता-परखता मैं कुछ दिन कांगड़े के एक गाव में रहा था। पालमपुर चाय के बाग अधिक दूरी पर नहीं थे। यह चित्र, 'ढाई-पत्ती डेढ पत्ती', मैं ने वहीं बनाया था। यह लडकी, जो इस ओर खडी हुई है, ध्यान से देखना, वही लडकी है, जिसे दूसरे चित्र में मैं ने लिखा है, 'एक लडकी एक जाम'।"

"यह तो मैं ने आप के कहने से पहले नहीं पहचाना था। पर पहले दिन ही यह चित्र देखकर मुझे लगा था, जैसे सारी लडकियाँ चाय का एक पौधा हों और यह लडकी उस पौधे की सबसे ऊपर की कोंपल हो, छोटी, हरी और चमकदार।"

सुमेश नन्दा की बूढी आँखों में फिर एक जवान चमक आयी और उन्होंने कहा, 'अब तो मैं और विश्वास से भर गया हूँ। तुम ने यह बात अपने अधिकार से मुख से निकलवा ली है। तुम ने मेरे दोनों चित्रों के जैसे अर्थ दिये हैं मेरी कहानी सुनने का तुम्हारा अधिकार हो जाता है। पहले किसी ने मुझ से यह बात नहीं सुनी।

"मैं ने इस लडकी को टूणी कहकर बुलाया था। इस का नाम पूछने का भी कष्ट मैंने नहीं किया था। इसी ने, इस चाय की पत्तियाँ चुन रही ने, 'ढाई पत्ती-डेढ पत्ती, वाली बात मुझे सुनायी थी और मैं ने उसे कहा, 'तू लडकियों के सारे पौधे की ऊपर की पत्ती है, बडी महँगी! जाने यह कौन पियेगा!'

'बरसात के दिन थे। एक नाला ऐसे बहा कि साथ लगते गाँवों को जोडने वाली सडक उस में डूब गयी। गाँवों का आवागमन बन्द हो गया। कोई तीन दिन के बाद सडक का जिस्म दिखाई दिया। इस तरफ से मैं जा रहा था, उस पार से वह टूणी आ रही थी। मैं ने कहा, 'आखिर पानी रुक ही गया। एक बार तो ऐसे लगा था, इस पानी का बहाव सूखेगा ही नहीं!'

"पता है कि टूणी ने क्या कहा? कहने लगी, बाबू, यह भी कोई आदमी के आँसू हैं जो कभी न सूखें!' मैं टूणी के मुँह की ओर देखता रह गया। उस का मुँह सुन्दर था, पर ऐसी बात भी कह सकता था, मैं यह नहीं सोच सकता था। कुछ ऐसी बात मैं ने पहले एक बँगला उपन्यास में पढी थी, पर टूणी ने तो कभी बँगला उपन्यास नहीं पढा था। जाने, सारे देशों के दुखों की एक ही भाषा होती है!

"मैं उस के घर पर गया। उस का बाप था, माँ थी, दो भाई थे और एक

भाभी। मैं उस के घर का भीतर-बाहर टटोलता रहा। वह कौन-सा दुख था उस के मन म, जहाँ से उस की यह बात उगी थी? और मैं ने उस के दुख का बीज ढूढ लिया। उस के बापू के सर पर काफी कर्जा था। उस ओर लडकिया की कीमत पडती है—तीन चार सौ से लेकर हजार तक। और कर्जा देनेवाले ने टूणी को पन्द्रह सौ रुपय के बदले उस के बापू से माग लिया था। और टूणी कहती थी 'वह आदमी आदमी नही एक देव दानव है! मुझे सपने म भी उस से भय आता है!'

"एक दिन मैं ने टूणी को अलग जिठलाकर पूछा अगर मैं तेरे भय की रस्सी खोल दूं?'

" वह कैसे, बाबू?

" मैं पन्द्रह सौ रुपय भर देता हूं। तू अपने बापू से कह, वह सगाई तोड द।

कोई और लडकी होती जान मेरे पैरों को हाथ लगाती। पर उस टूणी ने सीधा मेरे दिल म हाथ डाल दिया। कहने लगी और बाबू, तू मेरे साथ ब्याह करेगा?'

"कभी मैं ने कहा था, टूणी! तू चाय के पौधे की सब से कीमती पत्ती है, वह चाय कौन पियेगा?' और आज टूणी ने अपने प्राणों की पत्ती से मेरे लिए वह चाय बना दी थी। पर न मैं ने यह बात पहले सोची थी, न मैं ने कही थी। मैं ने उसे समझाना चाहा कि मेरा यह मतलब नही था। पर उस के कपडो पर तो जसे किसी ने चिनगारी फेंक दी हो।

'कहने लगी, 'अरे बाबू मैं कोई भीख मागनेवाली हूँ?'

'मेरी जिन्दगी कोई अच्छी नही थी। कितनी लडकियाँ आयी थीं और फिर अपनी राह चल दी थीं। मैं जिन्दगी की एक छोटी-मोटी सडक पर ही उन के साथ चल सका था, कोई लम्बा रास्ता मैं ने कभी नही पकडा। और अब मेरा यह विश्वास ही खो गया था कि मैं कभी भी किसी के साथ जिन्दगी का सारा सफर चल सकूगा।

'मेरी जिन्दगी म बडी तपिश है। तू पी नही सकेगी, यह मुह जल जायेगा!' और मैं ने लाड से टूणी का दिल रखने के लिए उस के होठो को अपनी अँगुली लगा दी।

'फूक फूककर पी लूगी, बाबू यह जसी बात म ने सुनी और वह-जसा टूणी का मुह म ने देखा। मुझे लगा, यही टूणी है, यही टूणी, जिस के साथ मैं जिन्दगी का सारा रास्ता चल सकता हूँ।

'अपन और उस के फसले को मैं न चादी के रुपये की भाति फिर ठनकाकर देखा। मै ने कहा, 'तुझे पता नही, पहले कितनी लडकिया मेरी जिन्दगी म आ चुकी हैं। हर लडकी को म ने शराब के एक जाम की तरह पिया, और फिर एक जाम

के बाद मैं ने दूसरा जाम भर लिया।'

"टूणी हंस दी। कहने लगी, 'क्या बाबू, तेरी प्यास नहीं मिटती?'

'मैं ने अभी कुछ नहीं कहा था कि टूणी फिर बोली, 'अच्छा, एक वादा कर ले बाबू! जब तक मेरे दिल का प्याला खत्म न हो जाये, तू उतनी देर किसी दूसरे प्याले को मुंह न लगायेगा।'

"मुझे लगा, मैं ने आज तक जितने भी जाम पिये थे, व जिस्मों के जाम थे, बिलकुल जिस्मों के जाम! उन में दिल का जाम कोई नहीं था। अगर होता तो शायद जब तक उस प्याले की शराब खत्म न हो जाती, मैं दूसरे प्याले को मुंह न लगा सकता। और शायद दिल के प्याले में से शराब कभी खत्म नहीं होती।

"मैं ने अपने फैसले का रुपया ठनकाकर देख लिया। टूणी का फैसला तो था ही खरा। टूणी के मां बाप ने हम दोनों का फैसला मान लिया। और मैं रुपया का प्रबन्ध करने के लिए शहर में आ गया।"

सुमेश नन्दा ने जब अपनी यह कहानी आरम्भ की थी, उस समय आठ बजने वाले थे। आठ बजे प्रदर्शनी खत्म हो जाती थी, इस लिए कमरे में से चित्र देखने वाले लोग लौट गये थे, और नया कोई आने वाला नहीं था। कहानी भंग नहीं हुई थी। पर कहानी को यहां तक पहुंचाकर चित्रकार ने स्वयं ही अपनी खामोशी से उस कहानी को खड़ा कर लिया।

मैं चित्रकार को देखती रही, खड़ी हुई कहानी को देखती रही। चित्रकार जैसे एक समाधि में डूब गया था।

चपरासी प्रदर्शनी के कमरे का दरवाजा बन्द करने के लिए बाहर दहलीज़ के पास आ गया था। मैं ने हाथ के इशारे से उसे खामोश रहने के लिए कहा और इंतजार करने लगी, शायद यह खड़ी हुई कहानी कोई कदम उठा ले।

चित्रकार की बन्द आंखों से आंसू टपकने लगे शायद। उस पानी ने कहानी को बहाव में डाल दिया।

'मैं जब रुपये लेकर वापस गया, किस्मत ने मेरा जाम मेरे हाथों में से छीन लिया था।"

"क्या बाप ने टूणी का जबरदस्ती ब्याह कर दिया था?" मैं ने कांपकर पूछा।

"इस से भी भयंकर बात! टूणी जिसे देव दानव कहती थी, उस बूढ़े साहूकार ने अपना सौदा टूटने की खबर सुन ली थी और उस ने धोखे से किसी के हाथों टूणी को ज़हर पिला दिया था।

"टूणी की चिता में थोड़ी सी सेक बाकी थी थोड़ी सी आग। मैं ने उस आग को साक्षी बनाया और चिता के गिर्द घूमकर जैसे फेरे ले लिये।"

शायद तीस-पैंतीस की उम्र में चित्रकार ने व फेरे लिये होंगे। अगले तीस

बरस उस ने कैसे उन फेरो की लाज रखी होगी, यह उस के साठवे बासठवे बरस से भी पता चलता था, कोई पूछने की बात नही थी। मुझे लगा, सारी बीसवी सदी उस प्रणाम कर रही है।

धीरे धीरे चित्रकार के होठ फडके, "टूणी ने कहा था 'एक वादा कर ले, बाबू! जब तक मेरे दिल का प्याला खत्म न हो जाये, तू उतनी देर किसी दूसरे प्याले को मुह न लगायेगा।' वह सामने खडी हुई टूणी गवाह है, मै ने किसी दूसरे प्याले को मुह नही लगाया।"

सामने टूणी का चित्र था। टूणी एक लडकी, एक जाम! मौत ने चित्रकार के हाथो से वह जामा छीन लिया, पर कोई मौत उस की कल्पना मे से वह जाम न छीन सकी और चित्रकार की सारी उम्र पीते हुए बीत गयी, उस जाम की शराब खत्म न हुई।

लगभग एक बरस हो चला है, मैं ने सुमेश नन्दा के मुह से यह कहानी अपने कानो से सुनी थी, और फिर अगले हफ्ते अपने हाथो से लिखी थी, पर तब उन्होने मुझे छपाने की आज्ञा नही दी थी। तब मै ने कहानी मे उन का एक कल्पित नाम लिखा था। उन्होंने कहा था, 'जब तक मेरी उम्र का अंतिम दिन नही आता, मेरा कोई दावा नही बनता। इस जाम को पीते हुए मुझे उम्र का अंतिम दिन भी खत्म कर लेने दो, फिर इस कहानी को छापना अभी नही। और तब, बेशक मेरा नाम भी बदलकर न लिखना।'

और अब, पिछले हफ्ते, आपने पत्रो मे पढा होगा, प्रसिद्ध चित्रकार सुमेश नन्दा की मृत्यु हो गयी। चित्रकार की कला के सम्बन्ध मे पत्रो के कई कालम भरे हुए थे और एक-दो पत्रो मे यह भी लिखा हुआ था, 'जिस कमरे मे चित्रकार ने अंतिम सास ली, उस कमरे मे उन की बनायी हुई एक ही तस्वीर लगी हुई थी, 'एक लडकी एक जाम'।

उम्र छोटी थी, जाम बडा था—आज चित्रकार का दावा सत्य हो गया है। इस कहानी मे आज मै ने कुछ नही बदला सिर्फ उन का असली नाम लिख दिया है उन्ही के कहने के अनुसार।



उधड़ी हुई कहानियाँ

मैं और केतकी अभी एक दूसरी की वाकिफ नही हुई थी कि मेरी मुस्कराहट ने उस की मुस्कराहट से दोस्ती गाठ ली। मेरे घर के सामने नीम के और कीकर के पेडो मे घिरा हुआ एक बाध है। बांध के दूसरी ओर सरसो और चनों के खेत हैं। इन खेतो की बायी बगल म किसी सरकारी कालेज का एक बडा बगीचा है। इस बगीचे की एक नुक्कड पर केतकी की झोपडी है। बगीचे को सीचने के लिए पानी की छोटी छोटी खाइया जगह जगह बहती हैं। पानी की एक खाई केतकी की झोपडी के आगे से भी गुजरती है। इसी खाई के किनारे बठी हुई केतकी को मैं रोज देखा करती थी। कभी वह कोई हंडिया या परात साफ कर रही होती और कभी वह सिर्फ पानी की अँजुलियाँ भर-भरकर चाँदी के गजरो से लदी हुई अपनी बाहे धो रही होती। चाँदी के गजरो की तरह ही उस के बदन पर ढलती आयु ने मास की मोटी मोटी सिलवटें डाल दी थी। पर वह अपने गहरे सावले रग म भी इतनी सुन्दर लगती थी कि मास की मोटी मोटी सिलवटें मुझे उस की उमर की सिंगार सी लगती थी। शायद इसी लिए कि उस के होठो की मुस्कराहट म एक अजीब-सी भरपूरगी थी, एक अजीब तरह की सतुष्टि, जो जमाने म सब के चेहरो से खो गयी है। मै रोज उसे देखती थी और सोचती थी कि उस न जाने कसे यह भरपूरता अपने मोटे और सावले होठ मे सभालकर रख ली थी। मैं उसे देखती थी और मुस्करा देती थी। वह मुझे देखती और मुस्करा देती। और इस तरह मुझे उस का चेहरा बगीचे के सकडो फूलो म से एक फूल जसा ही लगने लगा था। मुझे बहुत से फूलो के नाम नही आते, पर उस का नाम मुझे मालूम हो गया था—'मास का फूल'।

एक बार मैं पूरे तीन दिन उस के ... न जा सकी ... जब गयी तो उस की आखे मुझ से इस तरह ... दिनो ... सालो से बिछुडी हुई हो।

'क्या हुआ बिटिया ! इतन...

"सर्दी बहुत थी अम्माँ ! बस बिस्तर म बैठी रही।"

"सचमुच बहुत जाडा पडता है तुम्हारे देश म।"

"तुम्हारा कौन-सा गाव है अम्मा ?"

"अब तो यहा झोपडी डाल ली, यही मेरा गाव है।

"यह तो ठीक है, फिर भी अपना गाव अपना गाव होता है।"

"अब तो उस धरती से नाता टूट गया बिटिया ! अब तो यही कार्तिक मेरे गाव की धरती है और यही मेरे गाव का आकाश है।"

"यही कार्तिक," कहते हुए उस ने झुग्गी के पास बैठे हुए अपने मर्द की तरफ देखा। आयु के कुबडेपन से झुका हुआ एक आदमी जमीन पर तीले और रस्सियाँ बिछाकर एक चटाई बुन रहा था। दूर पडे हुए कुछ गमलो म लगे हुए फूलो को सर्दी से बचाने के लिए शायद चटाइयो की आड देनी थी।

केतकी ने बहुत छोटे वाक्य मे बहुत बडी बात कह दी थी। शायद बहुत बडी सच्चाइयो को अधिक विस्तार की जरूरत नही होती। मैं एक हैरानी से उस आदमी की तरफ देखने लगी जो एक औरत के लिए धरती भी बन सकता था और आकाश भी।

'क्या देखती हो बिटिया ! यह तो मेरी बिरग चिट्ठी' है।"

"बैरग चिट्ठी!"

जब चिट्ठी पर टिकट नही लगाते तो वह बिरग हो जाती है।"

'हा अम्माँ ! जब चिट्ठी पर टिकट नही लगी होती तो वह बरग हो जाती है।"

"फिर उस को लेने वाला दुगुना दाम देता है।'

"हा अम्मा ! उस को लेने के लिए दुगुने पसे देने पडते हैं।"

"बस, यही समझ लो कि इस को लेने के लिए मै ने दुगुने दाम दिये ह। एक तो तन का दाम दिया और एक मन का।"

मै केतकी के चेहरे की तरफ देखने लगी। केतकी का सादा और साँवला चेहरा जिन्दगी की किसी बडी फिलासफी से सुलग उठा था।

इस रिश्ते की चिट्ठी जब लिखते हैं तो गाँव के बडे-बूढे इस के ऊपर अपनी मोहर लगाते है।'

"तो तुम्हारी इस चिट्ठी के ऊपर गाव वालो ने अपनी मोहर नही लगायी थी ?'

'नही लगायी तो क्या हुआ ! मेरी चिट्ठी थी, मै ने ले ली। यह कार्तिक की चिट्ठी तो सिर्फ केतकी के नाम लिखी गयी थी।"

"तुम्हारा नाम केतकी है ? कितना प्यारा नाम है ! तुम बडी बहादुर औरत हो अम्माँ।"

"म शेरो के कबीले म से हूँ।"

"वह कौन सा कबीला है अम्मां ?"

"यही जो जगल म शेर होते हैं, वे सब हमारे भाई-बधु हैं। अब भी जब जगल म कोई शेर मर जाय तो हम लोग तरह दिन उस का मातम मानत है। हमारे कबीले म मद लोग अपना सिर मुडा लेते है, और मिट्टी की हँडिया फोड कर मरने वाले के नाम पर दाल-चावल बांटत है।"

"सच अम्मां ?"

"मैं चकमक टोला की हूँ। जिस के परो मे कपिलधारा बहती है।"

"यह कपिलधारा क्या है अम्मां !"

"तुम ने गगा का नाम सुना है ?"

"गगा नदी ?"

"गगा बहुत पवित्र नदी है, जानती हो न ?"

"जानती हूँ।"

"पर कपिलधारा उस से भी पवित्र नदी है। कहत हैं कि गगा मइया एक साल म एक बार काली गाय का रूप धारण कर कपिलधारा म स्नान करने के लिए जाती है।"

"वह चकमक टोला किस जगह है अम्मां ?"

"करजिया के पास।"

"और यह करजिया ?"

"तुम ने नमदा का नाम सुना है ?"

"हा, सुना है।"

"नमदा और सोन नदी भी नजदीक पडती हैं ?"

"य नदियां भी बहुत पवित्र है ?"

"उतनी नही, जितनी कपिलधारा। यह तो एक बार जब धरती की खेतियां सूख गयी थी, और लोग बेचारे उजड गये थे, तो उन का दु ख देखकर ब्रह्माजी रो पडे थे। ब्रह्माजी के दो आसू धरती पर गिर पडे। बस जहां उन के आसू गिरे वहां ये नमदा नदी और सोन नदी बहने लगीं। अब इन से खेतो को पानी मिलता है।"

"और कपिलधारा से ?"

इस से तो मनुष्य की आत्मा को पानी मिलता है। म ने कपिलधारा के जल मे इशनान किया और कातिक को अपना पति मान लिया।'

'तब तुम्हारी उमर क्या होगी अम्मां ?"

"सोलह बरस की होगी।'

'पर तुम्हारे मां-बाप ने कातिक को तुम्हारा पति क्यो न माना ?"

बात यह थी कि कातिक की पहले एक शादी हुई थी। इस की औरत मरी

सखी थी। वडी भली औरत थी। उस के घर चु दरू मु दरू दो वेटे हुए। दोनों ही वेट एक ही दिन जनमे थे। हमारे गाव का 'गुनिया' कहने लगा कि यह औरत अच्छी नही है। इस ने एक ही दिन अपने पति का सग भी किया था और अपने प्रेमी का भी। इसी लिए एक की जगह दो वेटे जनम हैं।"

"उस बेचारी पर इतना बडा दोप लगा दिया ?"

"पर गुनिया की वात को कौन टालेगा! गाव का मुखिया कहने लगा कि रोपी को प्रायश्चित्त करना होगा। उस का नाम रोपी था। वह बेचारी रो-रोकर आधी रह गयी।"

"फिर ?"

"फिर ऐसा हुआ कि रोपी का एक वेटा मर गया। गाव का गुनिया कहने लगा कि जो वेटा मर गया, वह पाप का वेटा था इसी लिए मर गया।"

"फिर ?"

"रोपी ने एक दिन दूसर वेट को पालने मे डाल दिया और थोडी दूर जाकर महुए के फूल डलियाने लगी। पास की झाडी से भागता हुआ एक हिरन आया। हिरन के पीछे शिकारी कुत्ता लगा हुआ था। शिकारी कुत्ता जब पालन के पास आया तो उस ने हिरन का पीछा छोड दिया और पालने मे पडे हुए बच्चे को खा लिया।"

"बेचारी रोपी!"

"अब गाँव का गुनिया कहन लगा कि जो पाप का वेटा था उस की आत्मा हिरन की जून म चली गयी। तभी तो हिरन भागता हुआ उस दूसरे बेटे को भी खाने के लिए पालने के पास आ गया।"

"पर वच्चे को हिरन ने तो कुछ नही कहा था। उस को तो शिकारी कुत्ते ने मार दिया था।"

"गुनिये की वात को कोई नही समझ सकता बिटिया! वह कहने लगा कि पहले तो पाप की आत्मा हिरन मे थी, फिर जल्दी से उस कुत्ते मे चली गयी। गुनिया लोग वात की बात म मरवा डालते है। बसाई का नन्दा जब शिकार करन गया था तो उस का तीर किसी हिरन को नही लगा था। गुनिया ने कह दिया कि जरूर उस के पीछे उस की औरत किसी गर मरद के साथ सायी होगी, तभी तो उस का तीर निशान पर नही लगा। नन्दा ने घर आकर अपनी औरत को तीर से मार दिया।"

"अरे!'

'गुनिया ने कार्तिक से कहा कि वह अपनी औरत को जान से मार डाले। नही मारेगा तो पाप की आत्मा उस के पेट स फिर जनम लेगी और उस का मुख दखकर गाँव की खेतियाँ सूख जायेगी।'

"फिर ?"

"कातिक अपनी औरत को मारने के लिए सहमत न हुआ। इस से गुनिया भी नाराज़ हो गया और गांव के लोग भी।"

"गांव के लोग नाराज़ हो जाते हैं तो क्या करते हैं ?"

"लोग गुनिया से बहुत डरते हैं। सोचते हैं कि अगर गुनिया जादू कर देगा तो सारे गांव के पशु मर जायेंगे। इस लिए उन्होंने कातिक का हुक्का पानी बन्द कर दिया।"

"पर वे यह नहीं सोचते थे कि अगर कोई इस तरह अपनी औरत को मार देगा तो वह ख़ुद ज़िन्दा कैसे बचेगा ?"

"क्यों, उस को क्या होगा ?"

"उस को पुलिस नहीं पकड़ेगी ?"

"पुलिस नहीं पकड़ सकती। पुलिस तो तब पकड़ती है जब गांववाले गवाही देते हैं। पर जब गांववाले किसी को मारना ठीक समझते है तो पुलिस को पता नहीं लगने देते।"

"फिर क्या हुआ ?'

' बेचारी रोपी ने तंग आकर महुए के पेड़ से रस्सी बांध ली और अपने गले में डालकर मर गयी।"

"बेचारी बेगुनाह रोपी !"

"गांववालों ने तो समझा कि बात खत्म हो गयी। पर मुझे मालूम था कि बात खत्म नहीं हुई, क्योंकि कातिक ने अपने मन में ठान लिया था कि वह गुनिया को जान से मार डालेगा। यह तो मुझे मालूम था कि गुनिया जब मर जायेगा तो मरकर राक्षस बनेगा।"

"वह तो जीते जी भी राक्षस था !"

"जानती हो राक्षस क्या होता है ?"

"क्या होता है ?"

"जो आदमी दुनिया में किसी का प्रेम नहीं करता, वह मरकर अपने गांव के दरख्तों पर रहता है। उस की रूह काली हो जाती है और रात को उस की छाती से आग निकलती है। वह रात को गांव की जवान लड़कियों को डराता है।"

' फिर ?"

"मुझे उस के मरने का तो गम नहीं था। पर मैं जानती थी कि कातिक ने अगर उस को मार दिया तो गांववाले कातिक को उसी दिन तीरों से मार देंगे।"

"फिर ?"

"मैंने कातिक को कपिलधारा में खड़े होकर वचन दिया कि मैं उस की औरत बनूंगी। हम दोनों इस देश से भाग जायेंगे। मैं जानती थी कि कातिक उस देश

मे रहेगा तो किसी दिन गुनिया को जरूर मार देगा। अगर वह गुनिया को मार देगा तो गांववाले इस को मार देंगे।"

"तो कार्तिक को बचाने के लिए तुम ने अपना देश छोड दिया ?"

"जानती हूँ, वह धरती नरक होती है जहा महुआ नही उगता। पर क्या करती ? अगर वह देश न छोडती तो कार्तिक जि दा न बचता और जो कार्तिक मर जाता तो वह धरती मेरे लिए नरक बन जाती। देश-देश इस के साथ घूमती रही। फिर हमारी रोपी भी हमारे पास लौट आयी।"

"रोपी कसे लौट आयी ?"

"हम ने अपनी बिटिया का नाम रोपी रख दिया था। यह भी मैं ने कपिलधारा मे खडे होकर अपन मन से वचन लिया था कि मेरे पेट स जब कभी कोई बेटी होगी, मैं उस का नाम रोपी रखूगी। मैं जानती थी कि रोपी का कोई कसूर नही था। जब मै ने बिटिया का नाम रोपी रखा तो मेरा कार्तिक बहुत खुश हुआ।"

"अब तो रोपी बहुत बडी होगी ?"

"अरी बिटिया! अब ता रोपी के बेटे भी जवान होने लगे। बडा बेटा आठ वरस का है और छोटा छ बरस का। मेरी रोपी यहाँ के बडे माली स ब्याही है। हम ने दोनो बच्चो के नाम चु दरू-मु दरू रखे है।"

"वही नाम जो रोपी के बच्चो के थे ?"

"हा, वही नाम रखे है। मैं जानती हूँ, उन मे से कोई भी पाप का बच्चा नही था।"

मैं कितनी देर केलकी के चेहरे की तरफ देखती रही। कार्तिक की वह कहानी जो किसी गुनिये ने अपने निदय हाथो से उधेड दी थी, केलकी अपने मन के सुच्चे रेशमी धागे से उस उधडी हुई कहानी को फिर से सी रही थी। यह एक कहानी की बात है। और मुझे भी मालूम नही, आप को भी मालूम नही कि दुनिया के ये 'गुनिये' दुनिया की कितनी कहानियो को रोज उधेडते है।

कोई नहीं जानता





कोई नही जानता

सब जानते हैं—बदायू जिले के मानिकपुर गाव के ठाकुर पथ्वीसिह जब ससुराल की रिश्तेदारी मे एक विवाह म शरीक होन के लिए लाव लश्कर के साथ चले तो रास्ते के गावो के लोग कोसो का चक्कर लगाकर उन की चढत देखने क लिए आये थे।

सब से आगे दुशालो से सजे हुए गुमटी वाले रथ मे ठाकुर पथ्वीसिह खुद बठे हुए थे और तकिये से उन्होन नही, उन की बदूक ने सहारा लगाया हुआ था। उस के पीछे चादी के मब्बे वाला रब्बा था पालकी जसा जिस म सिर पर सोने का शीशफूल, कमर म सोने की तगडी और परो म सोने के बिछुए पहने उन की ठकुराइन बैठी हुई थी।

ठाकुर और ठकुराइन की उम्र यू तो अब ढलती राह पर थी पर धन मान की दृष्टि से दोनो चढती राह पर थे। ठाकुर पथ्वीसिह वस तो मानिकपुर के ठाकुर ही कहलाते थ लेकिन पूर पांच गाव उन की ताल्लुकदारी म थ। ठकुराइन क दहेज म भी दो गाव मिले थे—हरफूरी और सहसपुर सो मिलाकर पूर सात गाव उन के हुकुम मे बँधे हुए थे।

ससुराल की रिश्तेदारी मे यह ब्याह उसी हरफूरी गाव म था जो ठकुराइन

के दहेज का गाव था। यह मानिकपुर से काफी दूर पडता था, इस लिए बरसो बीत जाते थे, वहा जाना नही होता था। और आज का समय, सिर्फ विवाह पूरा करने का समय नहीं था—ठाकुर और ठकुराइन के लिए अपनी रिआया को अपना धन मान दिखाने का अवसर भी था।

और फिर अब तो बेटे जवान हो गये थे, रिआया के अगले मालिक। उन की अक्ल और जवानी भी सोने की मुहरो के समान थी। उन का दबदबा रिआया पर पडना ज़रूरी था। बडा लडका मलखानसिंह पिता के गुणो पर नही गया था (नीची आख रखने वाला और धीमे स्वभाव का होने के कारण उस की शोहरत साधू मलखानसिंह के नाम से चली थी), पर छोटा बेटा चन्दनसिंह पिता से भी सवाया निकलता आ रहा था। वह बन्दूक लेकर शिकार के लिए क्या चढता था, नदियो के किनारे पर लगे पेडा झेलो की छाती पर मानो शेर की गरज चढती थी। लोग अभी से उस कुवर साहब कहने लगे थे।

इस समय भी मलखानसिंह ठकुराइन मा की रक्षा के लिए पालकी म बठा हुआ था, पर छोटे बेटे चन्दनसिंह न हाथ मे बन्दूक ले रखी थी और अपने लिए फिरक जुतवाई थी। रथ गोल छत का होता है, रब्बा चौरस छत का, पर फिरक खुली छत की होती है। चन्दनसिंह को अपनी बन्दूक के सिर पर छत नही चाहिए थी इस लिए फिरक मे बैठे हुए चन्दनसिंह की छवि, रथ और रब्बे से अलग थी। दुशालो वाला रथ, और चाँदी के झब्बा वाला रब्बा भले ही लोगो की आँखो को चौंधियाते हो पर उन का आखो म भय की सलाई डालने वाली सिर्फ चन्दनसिंह की फिरक थी। पीछे पीछे बलगाडिया थी—सन्दूको से भरी हुई, और सब से पीछ हसा मोती दो घोडे थे, जो मलखान और चन्दन ने दूध घी से पाले हुए थे। इस समय वे साईसो के हाथ मे थे।

नौकरो साइसो और रथवानो के लिए भी यह अवसर अकडकर चलने का था। उन की सिन्दूरी पगडियो म लगा हुआ अबरक सचमुच तारो की तरह चमक उठा था। जब एक गाव के पास स उनका लाव-लश्कर गुजरा तो उस दिन गाव मे हफ्तावारी पैंठ लगी होन के कारण बाजार म छाप छल्ले, काच की चूडियाँ और खुशबूदार साबुन की बटिटया खरीदन वाली युवतिया, पठ को छोडकर, इस तडक-भडक को देखने के लिए आकर इकटठी हो गयी।

धूप की चमक बस भी ज्यादा थी। पर खुली फिरक म बठे हुए चन्दन के गोरे माथ पर माना सूरज ही चढा हुआ था। युवतिया के पल्ला क छोर स ढके हुए आधे आधे मुह जब चदन की ओर देख देख उँगलिया को दाँता क तले दबा रहे थे।



पर कोई नही जानता—हरफूरी गाव के एक रख म लडकियो के साथ मिल कर पेंगें मूलती बेनू ने जब इस लाव-लश्कर को गुजरते देखा, तो चन्दनसिंह को देखकर उस की जीभ जसे दातो के बीच कटकर रह गयी। बेनू ने जसे किसी परी कथा के राजकुमार को देख लिया हो

एक घडी के लिए उसे लगा मानो उस की पेंग आसमान पर जा चढ़ी हो और दूसरी घडी उसे लगा, मानो वह धरती मे गाड दी गयी हो

बेनू के झूले को भोटा दे रही उस की सहेली लौंगवती बेनू के मुह को ओर ताकती रह गयी। लश्कर उस ने भी देखा था और इतना सुना भी हुआ था कि मानिकपुर के ठाकुर, जो ब्याह म आन वाल है, उन के भी रिश्तेदारो म है, ठकुराइन की आर से, पर जो मलखान और च दन उस ने छोटेपन म देखे थे, उ ह अब वह पहचान न सकती थी।

और बेनू के मुह पर जब पीलापन फल गया लौंगवनी ने चुपके से उस के चूँटी भरी, और मूले को झोटे देते हुए गान लगी

घिर आई सावन की बदरिया
रेशम की डोरी बाध दे सावरिया

पर च दन की फिरक आगे निकल गयी थी, उस न अभी बेनू को दखा नही था, न रेशम की डोरी बाधन के लिए उस के हाथा म गुलगुली मची थी। और बेनू, जिस न झूले के मोटे रस्स को हाथा म पक्ड रखा था, हथलिया को मलत हुए अपन हाथो को ऐसे देखन लगी जसे कई फाँसे एक बार म ही उस क हाथा मे चुभ गयी हो

के कान म कुछ कहा था। हवेली मे तो जस सारा गाव जुटा हुआ था—सारे बरन कुतिया जैस—और ठाकुर पृथ्वीसिंह इस समय रेशमच दा की चौखट पर नही जा सकते थे। पर सयानी आखा ने ताड लिया था कि आज नही तो कल कल नही तो परसो, ठाकुर पृथ्वीसिंह रेशमच दा की चौखट पर जरूर चढेग।



पर कोई नही जानता—लोगवती ने ठकुराइन के साथ रिश्तेदारी का जोड तोड तो लगा ही लिया था, वेनू की खातिर उस न रिश्ते म भाई लगन वाले च दनसिंह से भी बोल-चाल गाठ ली थी, और आते जाते च दनसिंह की आखा म वेनू की चमक डलवा दी थी। पर च दनसिंह जब वेनू से बात करने क लिए उत्सुक हुआ था, तब लोगवती न वेनू का पीछे खीच लिया था। लोगवती ब्याही हुई थी, वेनू से ढाई बरस बडी भी थी पर य छोटे से ढाई बरस उसे वेनू स कही ज्यादा अनुभवी बना गय थे। उस न च दनसिंह के चचल हो रहे मन को देख लिया था, पर वह नहीं चाहती थी कि छुरी एक बार म ही पार हो जाये। च दन साधारण घर का हो, तो और बात थी, पर वह कुवर च दनसिंह था। साधारण जवानी एक ही राह पर पर रखती है, पर अमीरजादा की जवानी एक ही पर को सात राहा पर रखती है। और वसे भी लोगवती सोचती थी—किसी घाव की इतनी पीडा नही होती जितनी गडे हुए काटे की।

और फिर जब एक दिन दोपहर क समय बरात खाना खान बठी थी, औरतें गा रही थी—'अब तो बठ गयी ज्यानार जनकपुरी के आगन'—तो च दनसिंह न लोगवती का पल्ला खीचकर उसे कनात की ओट म करके पूछा था, 'वह कहाँ है?' और लोगवती न होठा की हँसी को दबाकर पूछा था, 'वह कौन?'

पर सवालो का लम्बा खेल खेलन का समय नही था च दनसिंह की पोर म गडा हुआ काँटा उस के सारे हाथ का तडपा रहा था। उस न तडपते हुए हाथ स लोगवती का हाथ मरोडा—'रिश्त की बहन नही, धम की बहन बना लूंगा तुझ,

ब्याहने आओगे ?"

चन्दनसिंह ताव म आकर कह उठा, "वह अहीरन-चमारन हो तब भी आऊँगा "

और लौगवती ने हामी भरी, "अच्छा, फिर जरा कुछ धूप-ढले गाँव के बाहर वाली आम की बगीची मे आ जाना तालाब वाली बगीची म।" और लौगवती ने अपने जी के डर को अपने दातो के बीच दबाकर कहा, "पर एक बात का ध्यान रखना, तुम हुए गाँव के जागीरदार उसे मालगुज़ारी मत समझ बठना। "

चन्दनसिंह हँस दिया, "सुना था, लोग चन्दन को रगडकर माथे पर लगाते हैं, पर तुम तो मुझे ही रगडकर मेरे माथे पर लगा रही हो। अच्छा, वचन पूरा करोगी न ?"

लौगवती भी नरम पड गयी। कहने लगी, "करूँगी तुम्ह धम का भाई जो कह चुकी हूँ "

और कोई नही जानता—उस दोपहर को जब बरात का खाना हो गया और दोपहर काटने के लिए जनवासे की चारपाइयो पर खेस और दुतहिया बिछ गयी, तो सूने रास्ते पर होती हुई, लौगवती बेनू का हाथ पकडे उस आमो की बगीची मे ले गयी।

बेनू आम की टहनी की भाति काप रही थी, पर बौर से भी भरी हुई थी। पास ही एक तालाब था, उस के किनारे खडे होकर अपनी किस्मत की तरह कापती हुई अपनी परछाइ का देखन लगी

लौगवती का मुह दूसरी ओर था, बाहर गाँव की ओर से आती हुई पगडडी की ओर। उस का खयाल था—चन्दनसिंह अभी देर से आयेगा, व दोना बताये हुए समय से बहुत पहले आ गयी थी—ताकि आग पीछे जात हुए कोई ताड न ले

और फिर बेनू की पानी म कापती हुई परछाइ म से ही जैसे एक और परछाइ निकल आयी—चन्दनसिंह जो इन से भी पहले आमो की बगीची म आकर बठ गया था, इन दोनो को आते देखकर कोई पल भर के लिए एक तने के पीछे खडा हो गया था, कि कौन जाने दोना के पीछे भी कोई आता हो, पर जब दोना अकेली तालाब के पास आकर खडी हो गयी तो थोडी दर प्रतीक्षा करने के बाद चन्दनसिंह भी दबे पाव उन के पास आकर खडा हो गया। लौगवती का ध्यान परली ओर से आने वाले रास्ते की ओर था, इस लिए उस न पीठ के पीछ खडे हुए चन्दनसिंह को देखा ही नही था, और बेनू का ध्यान तालाब क पानी म कांपती हुई अपनी परछाइ की ओर था

परछाइयाँ जब दो हो गयी, बेनू समझी जसे तालाब के पानी म सपन तर

उसे बुला दे।"

लोगवती ने फिर चन्दनसिंह के मन को टटोलते हुए कहा—"कुवर साहब ! तुम सात गाँवा के मालिक, जाकर दही-बूरा खाओ ! तुम से यह गँचनी और बेझड की रोटी नहीं खायी जायेगी"

चन्दनसिंह का शरीर उस समय कनात की दीवार की तरह कांप गया। अपना पैर उस ने कनात के डंडे के समान धरती म गडाते हुए कहा, "गँचनी की रोटी क्या होती है—गेहूँ और चने की—और बेझड जौ और मटर की ?—सौगंध खाता हूँ, आज से दही-बूरा मुह से नही लगाऊँगा अब आगे तुम्हारी मर्जी, चाहे भूखा मार दो चाहे"

लोगवती सिफ वतमान का ही नही सोच रही थी, वह दूर की बातें पक्की कर रही थी। बोली, "तुम लोगो के खेल न्यारे होते हैं, कुवर साहब ! बडे ठाकुर साहब को, हाथ लगाने से मैली होने वाली ठकुराइन मिली, पर तब भी सुना है उन की रखलो का अन्त नही है, और अब सुना है—उन्होने रेशमचन्दा को अपने मानिकपुर आने की साई दी है"

यह बात लोगवती की जगह किसी और के मुह से निकली होती तो, चन्दनसिंह को लगा, वह शायद बन्दूक तान लेता, पर इस समय जैसे उस की अपनी बन्दूक का मुह उस की अपनी छाती की ओर था, और हाथा म उस का मुह मोडने की शक्ति नही थी। सिर नीचा किये कहन लगा, "महुआ नदी यहा स कितनी दूर बहती है ?"

लोगवती ने अभी जवाब नही दिया था कि चन्दन कहन लगा, 'उस का जल गगा जसा पवित्र है चलो वहाँ ले जाकर उस के जल की सौगन्ध खिला लो"

लोगवती ने फिर बात का रुख मोडा, "सुना है, कुवर साहब ! तुम मगर मच्छ का शिकार भी कर सकत हो, और दस फुट के मगर का शिकार तो सुना हुआ था, पर तुम ने सत्रह फुट के महारी मगरमच्छ का शिकार किया है और उस की खाल तुम्हारी मानिकपुर वाली हवेली की दीवार पर टँगी हुई है"

चन्दनसिंह लोगवती की लम्बी बातो से थक चुका था। कहन लगा, "पर आज तो मगरमच्छ का शिकार तुम कर रही हो, मेरी खाल उतारकर किस दीवार पर टँगोगी ?"

लोगवती सिर के पल्ले का दाँता के बीच लेकर हँस पडी। कहने लगी, "वह जो तुम्हारी लगती है, जब उस की डोली चलेगी, उसे दहेज म दूगी"

चन्दनसिंह गम्भीर हो गया। कहने लगा, "पर उस की डोली तो मेरे घर आयेगी"

लोगवती का भी उस घडी लगा—शायद अनहोनी होनी हो जाये—और मन का सशय मिटाने के लिए पूछने लगी, "ठाकुर होकर खत्रियो के दरवाजे

ब्याहने आओगे ?"

चन्दनसिंह ताव मे आकर कह उठा, "वह अहीरन-चमारन हो तव भी आऊँगा ।"

और लोंगवती ने हामी भरी, "अच्छा, फिर जरा कुछ धूप-ढले गाँव के वाहर वाली आम की बगीची म आ जाना तालाव वाली बगीची म।" और लोंगवती ने अपने जी के डर को अपने दातो के बीच दबाकर कहा "पर एक बात का ध्यान रखना, तुम हुए गाव के जागीरदार उसे मालगुजारी मत समझ बठना ।"

चन्दनसिंह हँस दिया, "सुना था, लोग चन्दन को रगडकर माथे पर लगाते हैं, पर तुम तो मुझे ही रगडकर मेरे माथे पर लगा रही हो। अच्छा, वचन पूरा करोगी न ?"

लोंगवती भी नरम पड गयी । कहने लगी, "करूँगी, तुम्ह धम का भाई जो कह चुकी हूँ ।"

और कोई नही जानता—उस दोपहर को जब बरात का खाना हो गया और दोपहर काटने के लिए जनवासे की चारपाइयो पर खेस और दुतहियाँ बिछ गयी, तो सूने रास्ते पर होती हुई, लोंगवती वेनू का हाथ पकडे उस आमो की बगीची मे ले गयी।

वेनू आम की टहनी की भाति काप रही थी, पर बौर से भी भरी हुई थी। पास ही एक तालाब था, उस के किनारे खडे होकर अपनी किस्मत की तरह कापती हुई अपनी परछाइ को देखन लगी

लोंगवती का मुह दूसरी ओर था, वाहर गाव की आर से आती हुई पगडडी की ओर। उस का खयाल था—चन्दनसिंह अभी देर से आयगा वे दोनो वताये हुए समय से वहुत पहले आ गयी थी—ताकि आगे-पीछे जाते हुए कोई ताड न ले

और फिर वेनू की पानी म कापती हुई परछाइ म से ही जसे एक और परछाइ निकल आयी—चन्दनसिंह, जो इन से भी पहले आमो की बगीची म आकर बठ गया था, इन दोनो को आते देखकर कोई पल भर के लिए एक तने के पीछ खडा हो गया था, कि कौन जाने दोनो के पीछे भी कोई आता हो, पर जब दोनो अकेली तालाव के पास आकर खडी हो गयी तो थोडी देर प्रतीक्षा करने के बाद चन्दनसिंह भी दबे पाँव उन के पास आकर खडा हो गया। लोंगवती का ध्यान परली ओर से आने वाले रास्ते की ओर था, इस लिए उस ने पीठ के पीछ खडे हुए चन्दनसिंह को देखा ही नही था, और वेनू का ध्यान तालाब के पानी म कॉपती हुई अपनी परछाई की ओर था

परछाइयाँ जब दो हो गयी, बेनू समझी जसे तालाब के पानी म सपन तर

रहे हो एक पल के लिए उस ने आँखें मींच ली जैसे इस सच पर उस विश्वास न बँध रहे हों

चन्दनसिंह से भी बोला नहीं गया, मानो चुप ने टोना कर दिया हो। अब लोगवती का ध्यान उधर गया—और चुप का टोना तोड़ने के लिए उस ने चन्दन सिंह से पूछा, "क्या वीर! कैसी लगी मेरी सहेली?"

चन्दनसिंह मुश्किल से कह सका, "तपे हुए सोने की मूरत जैसी।"

लोगवती मन में खिली थी, पर मुँह से बोली, "फिर वही जागीरदारों वाली बात की न? इसे सोने चाँदी की मालगुजारी ही समझ लिया न?"

चन्दनसिंह ने आज तक अपनी बन्दूक का जोर आजमाया था, पर दिल का जोर नहीं आजमाया था। आज पहली बार उसे अपने दिल के जोर का पता लगा—उस के मुँह से निकला "मूरत चाहे सोने की हो, और चाहे मालगुजारी में मिले उसे तो पूजा ही जाता है"

"वाह वा ठाकुर" लोगवती हँस पड़ी "बातें तो ज्ञान की करते हो। मैं समझी थी सिर्फ बन्दूक चलाना ही जानते हो।"

वेनू अभी तक मुँह से नहीं बोली थी पर लोगवती से बातें करते हुए चन्दन सिंह की आवाज उसे लगा उस के सारे शरीर में से गुजरकर लोगवती तक जा रही थी

लोगवती ने वेनू को छेड़ा "यह कुँवर साहब दही बूरा छोड़कर तेरी गँचनी की रोटी खाने आये हैं। बावली! इन से बात तो कर जो भूखे को निवाला मिले"

और वेनू का सिर और नीचा हो गया। वह आँख उठाकर चन्दनसिंह की ओर देख भी न सकी, नीचे तालाब के पानी में उस की परछाईं देखती रही

चन्दनसिंह ने जो सिल्क का कुरता पहना हुआ था, वह जब हवा में हिलता तो पानी में जैसे वेनू से आ लगता हो और वेनू सारी की सारी काँप जाती हो

फिर चन्दनसिंह ने सचमुच ही अनहोनी को छू लिया। काले डोरे में पिरोया हुआ सोने का तावीज अपने गले से धीरे से उतारकर अपनी हथेली पर रख लिया और हथेली वेनू के आगे करके कहने लगा यह लो मेरी अमानत, सँभालकर रखना, जल्दी ही लेने आऊँगा।'

वेनू ने हाथ आगे बढ़ाया, पर उस का हाथ मानो पानी के तालाब में से निकला हो ठंडा और काँपता हुआ

चन्दनसिंह के जी में एक बार आया—वेनू का हथेली पर झुका हुआ हाथ हथेली में दबा ले पर आज लगता था, ईश्वर ने उसे जोर भी दिया था और सब्र भी। वह सिर्फ वेनू की काँपती हुई उँगलियों की ओर देखता रह गया

लोगवती ने समय की ओर ध्यान दिलाया तो वेनू ने विदा माँगते हुए तावीज

को अपने माथे से लगाया, और अनायास ही उस का सिर चन्दनसिंह के परों की आग झुक गया। लौंगवती वेनू की नाक म पडे हुए बुलाक का देखकर हँस पड़ी। चन्दनसिंह से कहने लगी, 'नाक का बुलाक परो का बिछुआ मांगता है ठाकुर!'

"क्या ?" बात चन्दनसिंह की समझ मे नहीं आयी। लौंगवती न बताया "बुलाक तो कुआरी लडकियां पहनती है बिछुआ ब्याहता। अब समझे ठाकुर ?"

वेनू शर्म से ऐसी पानी पानी हो गयी जैसे खुद ही पानी का तालाब हो और खुद ही तालाब म भीगी हो

आज लौंगवती आते समय वेनू की सहेली थी, जाते समय वह मा जैसी ममता से भर गयी। तालाब म दोनो की परछाइयां को देखकर कहने लगी, "दोनो कितने प्यारे लग रहे हो, नील सरोवर की मुर्गाबियां जैसे"

दो दिन अभी गाव म और ठहराव था। चन्दनसिंह न और वेनू न एक दूसरे को दूर से कई बार देखा पर मन और तडप उठा प्यास और भडक गयी।

और जिस दिन ठाकुर पृथ्वीसिंह का लाव-लश्कर लौटने की तयारी करने लगा, चन्दनसिंह ने लौंगवती को खोजकर उस से मिन्नत की, "उस सखचील को एक बार तो दिखला दो।

लौंगवती हँसते हँसते दुहरी हो गयी, 'अच्छा! अब उस का नाम सखचील रख दिया है ?"

चन्दनसिंह का मन मोह म बँधा हुआ था। कहने लगा, "अब सफर पर जाना है न और सखचील का देखना शगुन होता है"

'अच्छा, अपने ही शगुन मनाते हो?' लौंगवती को छेडछाड सूझ रही थी। पूछने लगी, "पहले यह बताओ, वह सखचील है या नील सरोवर की मुर्गाबी ?" और फिर साथ ही कहने लगी, "चलो, कुछ भी हो, पर किसी दिन बन्दूक चला कर उसे मार न डालना, बड़े शिकारी साहब!"

—और जाते-जाते चन्दनसिंह का हाथ मरोड गयी, घूमने फिरने के बहाने उधर चमारो के कुएँ की तरफ आ जाओ, मैं तुम्हारी सफेद पंखोंवाली सखचील को लेकर अभी आती हूँ।'

और कोई नहीं जानता—जब चमारो के कुएँ के पास चन्दनसिंह से वेनू मिली, वह वेनू का हाथ पकडकर सारे समय गुमसुम सा खडा रहा न वह आज की बातें उस से कर सका, न कल की।

रहे हो   एक पल के लिए उस ने आँखें मीच ली जसे इस सच पर उसे विश्वास न बँध रहे हो

चन्दनसिंह स भी बोला नही गया, मानो चुप ने टाना कर दिया हो। जब लौंगवती का ध्यान उधर गया—और चुप का टाना तोडने के लिए उस न चन्दन सिंह स पूछा, 'क्या वीर ! कसी लगी मेरी सहेली ?"

चन्दनसिंह मुश्किल से कह सका "तपे हुए साने की मूरत जसी।"

लौंगवती मन म खिली थी, पर मुह स बोली, 'फिर वही जागीरदारो वाली बात की न ? इस साल चादी की मालगुजारी ही समझ लिया न ?"

चन्दनसिंह न आज तक अपनी बन्दूक का जोर आजमाया था, पर दिल का जोर नही आजमाया था। आज पहली बार उसे अपन दिल के ज़ोर का पता लगा—उस के मुह स निकला "मूरत चाहे सोने की हो, और चाह मालगुजारी मे मिले, उसे तो पूजा ही जाता है   '

'वाह वा ठाकुर, लौंगवती हँस पडी, 'बातें तो ज्ञान की करत हो। मैं समझी थी, सिर्फ बन्दूक चलाना ही जानते हो।"

बेनू अभी तक मुह से नही बोली थी, पर लौंगवती स बाते करते हुए चन्दन सिंह की आवाज़ उस लगा उस के सारे शरीर म स गुजरकर लौंगवती तक जा रही थी

लौंगवती न बेनू को छेडा ' यह कुवर साहब दही बूरा छोडकर तेरी गैचनी की रोटी खान आय है। बावली ! इन से बात तो कर जो भूखे को निवाला मिले   "

और बेनू का सिर और नीचा हो गया। वह आँख उठाकर चन्दनसिंह की ओर देख भी न सकी, नीचे तालाब के पानी म उस की परछाइ देखती रही

चन्दनसिंह न जो सिल्क का कुरता पहना हुआ था, वह जब हवा म हिलता तो पानी म जसे बेनू से आ लगता हो और बनू सारी की सारी काप जाती हो

फिर चन्दनसिंह न सचमुच ही अनहोनी को छू लिया। काले डोरे म पिरोया हुआ सोन का तावीज अपन गले स धीरे स उतारकर अपनी हथेली पर रख लिया और हथेली बेन के आग करके कहन लगा, यह लो मेरी अमानत, सँभालकर रखना, जल्दी ही लेन आऊगा।"

बेनू न हाथ आगे बढाया, पर उस का हाथ मानो पानी क तालाब म से निकला हो ठडा और कापता हुआ

चन्दनसिंह क जी मे एक बार आया—बेनू का हथेली पर झुका हुआ हाथ हथेली म दबा ले   पर आज लगता था ईश्वर ने उसे ज़ोर भी दिया था और सब्र भी। वह सिर्फ बेनू की कापती हुई उँगलियो की ओर देखता रह गया

लौंगवती ने समय की ओर ध्यान दिलाया तो बेनू ने विदा माँगते हुए तावीज

का अपने माथे से लगाया, और अनायास ही उस का सिर चन्दनसिंह के पैरों की ओर झुक गया। लौंगवती वेनू की नाक में पड़े हुए बुलाक को देखकर हँस पड़ी। चन्दनसिंह से कहने लगी, 'नाक का बुलाक पैरों का बिछुआ मांगता है ठाकुर!'

'क्या?' बात चन्दनसिंह की समझ में नहीं आयी। लौंगवती ने बताया, "बुलाक तो कुआरी लड़कियां पहनती हैं, बिछुआ ब्याहता। अब समझे ठाकुर?"

वेनू शर्म से ऐसी पानी पानी हो गयी जैसे खुद ही पानी का तालाब हो, और खुद ही तालाब में भीगी हो।

आज लौंगवती जाते समय वेनू की मडली की जाते समय वह माँ जैसी ममता से भर गयी। तालाब में दानों की परछाइयां देखकर कहने लगी 'दोनों कितने प्यारे लग रहे हो, नील सरोवर की मुर्गाबियां जैसे..."

दो दिन अभी गांव में और ठहराव था। चन्दनसिंह ने और वेनू ने एक दूसरे को दूर से कई बार देखा पर मन और तड़प उठा प्यास और भड़क गयी।

और जिस दिन ठाकुर वचीरसिंह का लाव-लश्कर लौटने की तैयारी करने लगा, चन्दनसिंह ने लौंगवती को खोजकर उस से मिन्नत की, 'उस सखचील का एक बार तो दिखला दो।'

लौंगवती हँसते हँसते दुहरी हो गयी, 'अच्छा! अब उस का नाम सखचील रख दिया है?'

चन्दनसिंह का मन मोह में बँधा हुआ था। कहने लगा, 'अब सफर पर जाना है न! और सखचील का देखना शगुन होता है..."

'अच्छा, अपने ही शगुन मनाते हो!' लौंगवती को छेड़छाड़ सूझ रही थी। पूछने लगी "पहले यह बताओ वह सखचील है या नील सरोवर की मुर्गाबी? और फिर साथ ही कहने लगी, चलो, कुछ भी हो, पर किसी दिन बन्दूक चला कर उसे मार न डालना, बड़े शिकारी साहब!'

—और जाते-जाते चन्दनसिंह का हाथ मरोड़ गयी, 'घूमने फिरने के बहाने उधर चमारों के कुएँ की तरफ आ जाओ, मैं तुम्हारी सफेद पंखों वाली सखचील को लेकर अभी आती हूँ।"

और कोई नहीं जानता—जब चमारों के कुएँ के पास चन्दनसिंह से वेनू मिली, वह वेनू का हाथ पकड़कर सारे समय गुमसुम सा खड़ा रहा, न वह आज की बातें उस से कर सका, न कल की।



सब जानते है—जिस दिन रेशमचन्दा के नाच की अन्तिम रात थी, उस दिन उस के तीर-तरकश ठाकुर पृथ्वीसिंह की ओर से मुह मोडकर छोटे ठाकुर मलखानसिंह के दिल को निशाना बनाते रहे।

मलखानसिंह को सगीत का शौक शुरू से था—और शुरू म एक और भी शौक था—कुश्ती का जिस से उस ने अपना शरीर कमाया था। सगीत के बढते शौक के साथ उस का दूसरा शौक धीरे धीरे मन्द पड गया था, पर भरपूर जवानी के कसे हुए बदन मे जोर और जुरत रची हुई दिखाई देती थी।

और रेशमचन्दा सारी खोज-खबर निकालकर, उस अन्तिम रात को अपनी तमाम अदाएँ मलखान पर न्योछावर करती रही

यहा तक कि बडे ठाकुर के सामने कुहनिया तक वह काच की चूडियाँ छन काती, फिर एक अदा से इस तरह बाह छुडाती थी जसे सामने से किसी ने कस कर पकड ली हो, और फिर मलखानसिंह की तरफ हाथ से इशारा करते हुए गाती रही थी

लो मरा ते दगलिया दावदार।
जी मोरी छोड दो कलइया

दशक नतकी की अदा पर कुर्बान भी होते रहे थे, और ऐस सीधे इशारा पर हँसते भी रहे थे।

मलखानसिंह तो तन मन से साधु स्वभाव का था। भले ही शिष्टाचार के नाते राज महफिल मे आ बठता था, पर न वह यह सब कुछ देखता था, न उम कुछ छू पाता था।

हाँ बडे ठाकुर न जरूर अपने मन की चीस को पी लिया, और चाहे इसे 'रडी का नखरा' कहकर—बात को हँसी म गँवा दिया था, पर मन म एक चोट-सी खा ली थी।

ठाकुर पृथ्वीसिंह मानिकपुर लौटे, तो मन म रेशमचन्दा के लिए एक कसक लेकर। वसे वह जानते थे, साई दी हुई है, सो जल्दी ही किसी दिन रेशमचन्दा

का डेरा यहाँ आ उतरेगा। पर ठाकुर पृथ्वीसिंह का इतने से ही संतोष नहीं हो रहा था। उन के मन म आता था—एक गाव उस के नाम कर दू, और फिर वह कभी किसी और के दरवाजे पर न जाये। यह बात अभी उ होने सात पर्दो मे रखी हुई थी, सिर्फ अपने विश्वासपात्रों के कानो म डाली थी, लेकिन फिर भी यह बात बाहर निकल गयी थी, ऐसा लगता था। विश्वासपात्रा न ही बताया था कि एक कुएँ पर बठे हुए लोगो ने उन्ह गुजरते हुए ताना दिया था। ठाकुर पथ्वीसिंह ने जवानी के जमाने म कभी ठकुराइन की ओर से भय नही खाया था, पर अब जब बेटे जवान हो गये थे और ठकुराइन दो मद बेटो की मा हो गयी थी, वह ठकुराइन से कुछ भय खाने लगे थे।

हसा, मोती य तो घोडो के नाम थे, पर मलखानसिंह और चन्दनसिंह की भाइया की जोडी का भी लोग हसा मोती की जोडी कहते थे। लोग पथ्वीसिंह से भय खाने के कारण उन्ह सलाम करते थे पर मलखान-चन्दन का लोग प्यार से छोटे ठाकुर भी कहते थे, कुवर साहब भी, और हसा-मोती भी। और ठाकुर पृथ्वीसिंह को हवा के इस बदलते हुए रुख का कुछ भान था पूरी दो पीढिया से ठाकुर पथ्वीसिंह की और यादवो के चौधरी भूपसिंह की लगती आयी थी। दोनो की गढियो के बीच एक नदी पडती थी, जिस पर जिस का जोर चलता, बाध बना लेता, और पानी का मुह मोडकर दूसरे के खेतो को बर्बाद कर देता। पर पिछले कई वर्षो से ठाकुर पृथ्वीसिंह का हाथ ऊपर रहा था, इस लिए चौधरी भूपसिंह की ओर से कुछ चुप्पी प्रतीत होती थी। पर देखने म जो अमन चैन था ठाकुर पथ्वीसिंह को यह भी मालूम था कि किसी भी दिन वह लावे की तरह फूट सकता था।

यू तो ठाकुर पृथ्वीसिंह का यह भय उस समय से बहुत छा गया था जब से अंग्रेज कलक्टर के जोर पर एक थानेदार ने खुले आम गाव मे कहा था, 'मैं ठाकुर पथ्वीसिंह को सलाम करने क्या जाऊँ। साले को गरज होगी तो खुद आयेगा।"

और एक दिन चासठ फेर वाली पगडी वाले ठाकुर पथ्वीसिंह ने अपने कारिन्दो को भेजकर थानेदार को गढी मे खाने का निमन्त्रण देकर बुलवाया था, और आसन पर बिठाकर अपने सेवको से कहा था, "दारोगा जी की खिदमत करो।" और सेवको ने थानदार को रस्सियो स बाधकर उस के आगे घास डाल दी थी खाने के लिए और उस समय तक उस की रस्सिया नही खोली थी जब तक उस ने मुह नीचा करके डलिया मे पडी हुई घास म से दो तिनके मुह म उठाकर नही चबाये थे। और बात जब अंग्रेज कलक्टर तक पहुँची थी, उस ने ठाकर पृथ्वीसिंह से वैर पालने के बजाय थानेदार की वहाँ से बदली करवा दी थी।

और उस के बाद पीठ के पीछे बुरा भला कहने वाले चौधरी भूपसिंह के एक आदमी को पकड़कर जब ठाकुर पृथ्वीसिंह के आगे हाजिर किया गया तो उस के दोनों हाथ पीठ के पीछे बँधवाकर और कड़ी वाली पसरी उस की चोटी में बँधवाकर, ठाकुर पृथ्वीसिंह ने उसे चौधरी भूपसिंह की तरफ रवाना कर दिया, तब भी चौधरी भूपसिंह की तरफ से कोई मिनका तक नहीं था।

पर इतने दबदबे के बावजूद अब ठाकुर साहब को हवा का रुख वैसा नहीं मालूम होता था जैसा पहले था। बहुत करके इस लिए कि मलखानसिंह तो यूँ भी साधु स्वभाव का था, और छोटा लड़का चन्दनसिंह भले ही बन्दूक लेकर जंगलों में फिरने का शौकीन था, पर बड़े ठाकुर के कदमों पर चलने वाला वह भी दिखाई न देता था।

और फिर यह चिन्ता एक दिन ठाकुर पृथ्वीसिंह का लहू खौला गयी।

वह शाम के खाने-पीने के बाद पान का बीड़ा लेकर अपने मुँह लगे साथियों के साथ ताश खेलने के लिए बैठे थे कि उन के निजी सेवक ने आकर धीरे से कुछ कहा।

ठाकुर ने साथियों को विदा कर दिया, और अकेले में सेवक से फिर पूछा, "क्या कहा है? रेशमचन्दा का आदमी उस का खास सन्देशा लेकर आया है?"

"जी हाँ! हुकम हो तो हाजिर करूँ।"

ठाकुर पृथ्वीसिंह ने कुछ सोच में पड़कर पूछा, "कोई रुक्का लाया है?"

"जी नहीं, जबानी अर्ज करना चाहता है।"

ठाकुर साहब ने फिर ताकीद से पूछा, "तुम उसे पहचानते हो? उसी का आदमी है, कोई और तो नहीं?"

सेवक ने बताया, "जी हाँ, वही तबलची है, जिसे आप ने हरफरी की हवेली में नाच के वक्त देखा था।"

"अच्छा अन्दर ले आओ, पर सामने के दरवाजे से नहीं। मलखान और चन्दन बाहर की बैठक में हैं?"

"जी, सरकार।"

"तबेले वाले रास्ते से लाओ।"

रेशमचन्दा का तबलची जब सेवक के साथ अन्दर ठाकुर पृथ्वीसिंह के हुजूर में आया, ठाकुर साहब को प्रणाम करके, हाथ बाँधकर खड़ा हो गया।

खामोशी लम्बी हुई तो ठाकुर साहब ने ही पूछा, "हाँ भई, क्या पैगाम है?"

उस ने हाथ बाँधे हुए ही कहा, "हुजूर! जान बख्शी हो तो अर्ज करूँ?"

ठाकुर पृथ्वीसिंह ने कहा कुछ नहीं, सिर्फ आँख उठाकर उस की ओर देखा, पर निगाह ऐसी थी कि सामने खड़े हुए आदमी का सिर से पैर तक पसीना आ गया।

उस ने कुछ हकलाते हुए कहा "सरकार ! छोटे मुह बडी बात है जान-बख्शी हो तो "

ठाकुर साहब ने बमरी से कहा, 'हाँ हाँ, जान बख्शी जल्दी बोलो !'

उस ने कापते हुए, जेब म से एक सौ एक रुपये निकाले और झुककर ठाकुर के पैरा के आगे धरती पर रखकर कहा, ' बेगम साहिबा ने कहा है कि बन्दी खिदमत म हाजिर नही हो सकेगी । '

ठाकुर साहब ने समझ लिया कि ये वही साई के एक सौ एक रुपये ह जो रेशमचन्दा न लौटाये है ।

ठाकुर साहब के मन म बात खटक गयी पर पक्के तौर पर जानने के लिए पूछा, क्यो, क्या बेगम की तबीयत नासाज़ है ?"

जी नही ' और आगे कुछ कहने से पहले वह डर का मारा पीछे को हो गया ।

"फिर ? ये रुपये कम हैं ? ठाकुर जानते थे कि यह बात नही थी, पर उस के मुह से सच बात कहलवा लेने के लिए उन्होन इस तरह कहा ।

'जी नही " उस ने फिर कहा, और फिर साहस बटोरकर जल्दी से कह दिया 'चौधरी भूपसिंह न बेगम को एक गाँव देकर हमेशा के लिए खिदमत म रख लिया ह इस लिए मजबूरी है

यह शायद पृथ्वीसिंह के जीवन म पहला दिन था जब इस तरह अपनी आज्ञा का पालन न होना उन्होने देखा, साई म दिये हुए रुपये इस तरह लौटते देख और ऐसा पैगाम, जो सख्त गुस्ताखी के समान था, अपने कानो से सुना ।

और इसपर भी—सामने खडे हुए आदमी की जान बख्श दी ।

वह आदमी चला गया पर ठाकुर पृथ्वीसिंह का सुख चैन भी उस के साथ चला गया ।

ठाकुर पृथ्वीसिंह को अब रेशमचन्दा की परवाह नही रही थी, परवाह थी इस बात की कि चौधरी भूपसिंह ने उन्हे नीचा दिखाने के लिए यह किया था और रेशमचन्दा से साई के रुपये लौटवाकर इलाके म उन की तौफीक की तौहीन की थी

उस रात मखमल का बिछौना ठाकुर साहब को शूलो की सेज की भाति चुभता रहा

और सवेरे तडके, रात को पानी म भीगे हुए बादामो की गिरी छीलकर जब रोज़ की तरह उन्होने कलेवा किया उन की एक दाढ म पीडा होने लगी ।

शराब म भिगोकर रुई का फाहा जब उन्होने दाढ पर रखा, तो छाती म एक चीस-सी उठ खडी हुई कि—जवानी अब दगा देने लगी थी

यह पीडा ठकुराइन के साथ नही बाटी जा सकती थी, और बेटो की ओर से

भी ठाकुर पृथ्वीसिंह का किसी तरह की हिमायत की उम्मीद नहीं थी। सो, उन्होंने अपने कारिन्दा से ही बात चलायी और चौमासे की नदी पर बाँध बनवाकर पानी का मुँह चौधरी भूपसिंह के गाँव की ओर करके रातों रात उस के खेत बर्बाद करवा डाले



पर कोई नहीं जानता—हरफूरी गाँव के एक पेड़ में पेंगें झूलती बेनू के मन पर क्या बीत रही थी, जिस समय उस की सहेलियों ने मल्हार छेड़ा था

छैलाला फूलो रे—छैलाला फूलो रे
लाल फुलन के रंग में तू रँग ले चुनरिया
तू रँग ले उमरिया
तेरा कान्ह कन्हैया सा दूल्हो रे
छैलाला फूलो रे
पत्तियन चिलार की तू झुमका बनाय ले
सयाँ रिझाय ले
तिन्दुआ के पेड़ झूला झूला रे
छैलाला फूलो रे

सेमल के पेड़ आग के रंग के फूलों से लदे हुए थे—दर्शक के मन में भी आग सी लगाते। उसे ही गाँव वाले छैलाला कहते थे, जो पानी में भी आग लगाता हुआ प्रतीत होता था।

बेनू ने चन्दनसिंह का तावीज भले ही अपनी कुरती में छिपा रखा था, पर उसे हाथ से टटोलती तो काँप उठती—मानो उस का कुँआरा शरीर चन्दनसिंह से छू जाता हो

लौंगवती आजकल ससुराल थी। चौमासे में आने वाली थी, पर जब तक नहीं आती बेनू के पास अपने मन की बातें करने के लिए वही गूँगा तावीज था

जो चन्दनसिंह उस के पास अमानत के तौर पर रख गया था।

और तो और, उडती हवा भी कोई खबर नही लाती थी

उस दिन वेनू ने भी, और बाकी लडकियो ने भी, सचमुच चिलार की पत्तियो के गुच्छे तोडे जिन के हरे नरम रग मे बीजो के गाढे रग नगो की-सी झलक मारते थे, और धागो से वे गुच्छे बाँधकर उन्होने कानो मे पिरो लिये। सब ने झुमके पहन लिये। पर कुआरे सपने मे जो मैया होता है वह आखो के सामने तो नही होता। सो, कौन रिझाये और किसे रिझाये! वेनू के मन मे उदासी की घनी घटा छा गयी।

चन्दनसिंह से उसे कोई शिकायत नही थी, पर वह आखो के सामने दिखाई नही देता था, यही उस का दोष था। वेनू का मन उलाहने से भर गया, और चन्दन का मिलन उसे छलावे जैसा लगने लगा यू ही सा, एक ऋतु का मेला

उस रात अँधेरे की चादर मे वेनू ने हुक उठी "तू तो है सयाँ चौमासे का पानी, मैं तो भर-वहती नदिया रे" और आँचल मे मुह ढककर वेनू बहुत रोयी। लगा—उसे सचमुच, हमेशा के लिए, भर-वहने वाली नदी का शाप लग गया था।



सब जानते हैं—चौधरी भूपसिंह के पाच भाई थे—छत्तूसिंह, चूडामन, शिशुपालसिंह, अनकसिंह और करनसिंह। और जब से ठाकुर पृथ्वीसिंह ने नदी पर बाध लगाकर उन के खेतो को बर्बाद करवाया था, वे तब से सापो के डक की तरह किसी ताक मे फिरते थे।

एक दिन उन्होने सुना—ठाकुर पृथ्वीसिंह गढी मे अकेले है, मलखानसिंह अपने सगीत के गुरु के साथ किसी सगीत-सभा मे गया हुआ है और चन्दनसिंह जगल मे शिकार खेलने। उन्हे मलखानसिंह का डर नही था, सिर्फ चन्दनसिंह से डर था। मलखानसिंह यू तो हाथ-पाँव का इतना तगडा था कि कई आदमियो से

एक साथ निपट सकता था, पर चन्दनसिंह के निशाने की मार न बचना आसमान म थेगली लगाने के समान था। और इस लिए आज व चन्दनसिंह की अनुपस्थिति म कौड़ियाले साँपो की तरह चलत हुए ठाकुर पृथ्वीसिंह की गढ़ी के पास आकर बठ गय

उधर चन्दनसिंह यूँ तो दूर जगल म निकल गया था, और पसिया जाति के छोटे छोटे लडके उस के पीछे मारे हुए शिकार को उठान के लिए दौड रह थ, पर उस कोई कायदे का शिकार नही मिला था।

आखिर म उस न एक पाडे के गोली मारी, जिस का मास उस के किसी काम का नही था, पर गाँव स भागते हुए आन वाल लडको को खुश करन के लिए उस न पाडे का शिकार किया।

पाडे का खुश्क मास सिर्फ पसिया जाति के लोग खाते हैं।

लडको न लहू के निशान खोजकर पाडे को ढूँढ लिया, पर दौडकर पीछे लौट आये, 'कुवर साहब ! पाडा नही मरा, सिर्फ घुटल है।"

चन्दनसिंह न उन के साथ जाकर पाडे को दूसरी गोली मारी। वह घायल होकर एक जगह गिरा तडप रहा था, पर अभी तक मरा नही था। चन्दनसिंह उसे लडको के हवाले कर खुद वापस लौटन लगा।

लडको मे स एक न आवाज़ दी, "ठाकुर ! झील के किनारे चलो, नील सरोवर की मुर्गाबियाँ आयी हुई हैं "

चन्दनसिंह जोर से हँस पडा, "नही, नही, नील सरोवर की मुर्गाबियाँ नही मारते,' और हँसता हुआ घोडे पर सवार हुआ और एडी मारकर वापस लौट गया।

इधर गढी का जो दरवाज़ा साथ लग हुए अस्तबल म भी खुलता था, जहाँ हसा मोती बँधे रहते थे, चौधरियो न उधर का रुख किया। उन्ह मालूम था कि आज हसा को मलखान ले गया है, और मोती को चन्दन, पर यह मालूम नही था कि सगीत सभा म गुरु के अचानक पीडा हो उठने के कारण, सभा भग कर दी गयी थी, और मलखान सगीत-सभा से लौट आया था।

वे पाचो जब हाथो मे भाले लेकर गढी के तबेले म स गुजरने लगे, उन्हे सामने मलखान खडा हुआ दिखाई दिया। यह यू तो अचानक ही हुआ था, लेकिन उन्होन मलखान को सँभलने का मौका नही दिया, पाँचो उस पर टूट पडे

और सब जानते हैं कि—जब अचानक चन्दनसिंह शिकार से जल्दी लौट आया और तबेले म घोडा बाधने गया, वहाँ लहू की धारें बह रही थी। मलखानसिंह एक घायल देव के समान तबेले की दीवारो से टकराता पाँचो से लोहा ले रहा था, लेकिन उस का साँस टूट रहा था। चन्दनसिंह की बन्दूक की गोली जिस समय पाचो मे से एक की पीठ म धँसी तो चीखें मारते हुए पाँचो बाहर की ओर

दौड़े। पर च`दन के हाथ मे बन्दूक थी, वे उस की मार से बहुत दूर नही जा सकते थे। और मिनट म ही यह घटना घट गयी कि पाँचो की लाशें दूर-पास की मिट्टी के ढेरो की भाँति गिर पड़ी।

गाँव म अभी बात फल भी नही पायी थी कि च`दनसिंह न मलखान को चारपाई पर डलवाकर, साथ म माता-पिता का लिया, और चारपाई सीधी थाने मे रखवाकर, मलखान को पास क शहर के हस्पताल म भेजने की ताकीद करके ख़ुद घोड़ को एड लगाकर हवा हो गया।

पुलिस के कागज़ा म जब तक कारवाई दज हुई, च`दनसिंह खादर पार करके ढाक के जगल म पहुँच चुका था।



पर कोई नही जानता—जगल की आग की तरह जब यह खबर वेनू तक पहुँची, वह दीवारों के गले लगकर कितनी रोयी।

कुआरी बेटी का रुदन माता पिता के अ`तर को चीर गया, पर दूसरे कानो को खबर न हुई।

सिर्फ कुछ दिन बाद लौगवती हाथ मलत हुए आयी, और वेनू को, जो प्याज़ के छिलके जैसी हो गयी थी, छाती से लगाकर रोने लगी।

वेनू का एक ही विलाप था, "यह तावीज़ उस की अमानत थी, उस न मेरी खातिर अपने गले म से उतार दिया। अगर यह उस के गले मे होता तो उस पर यह सकट न आता "

लौंगवती वेनू के लिए च`दनसिंह का भेजा हुआ स`देशा लायी थी, खत-पत्तर नही था, सिफ मुह ज़बानी, जो कोई न जाने कौन, भरी दुपहरी म उस का दरवाज़ा खटकाकर कह गया था कि ज़रूरत पड़ी तो च`दनसिंह ने पाच आदमी मारे हैं, पर नील सरोवर की मुर्गाबी नही मारी

लौंगवती ने जब यह बताया, वेनू का कलेजा मुह को आ गया, एक पछतावा-



पर कोई नहीं जानता कि—आग के धुएँ से बचने के लिए ता बेनू का पिता जब बेनू के लिए रातोरात रिश्ता खोजने चला तो बेनू की छाती से कसी लपट निकली थी

ईश्वर दूर था, पर ईश्वर के सहारे जसी अतरग सहेली पास थी। बेनू उस के सामने बिलखने लगी—"एक पल हाथ से निकल गया तो सारी उमर रोती रह जाऊगी। हाय मेरी किस्मत ! मेरे माता पिता से कहो जल्दी न करें चार दिन सब्र करें "

लौंगवती का जी भी अन्दर ही अन्दर रोता था, पर बेनू की माँ या पिता से कुछ कहती तो क्या कहती। फिर भी उस ने घर के भीतर जाकर, बेनू की मा क पास बैठकर, माँ की ममता वाली नरम जगह पर हाथ रखा। कहा, मौसी ! मैं ता हूँ अनजान, क्या कहूँ। तुम खुद सयानी हो, तुम खुद समझ ला। बेनू का मन का आदमी न मिला ता सारी उमर गीले उपले की तरह सुलगगी फिर धुआ तो तुम्हारी आँखा को भी लगगा "

माँ ने मुह खोलकर बेनू से कुछ पूछा नही था, पर जब स मानिकपुर वाला की खबर आयी थी, लडकी को दीवारो स लग लगकर रोते देखकर 'जले कर्मो' का अन्दाजा लगा चुकी थी।

आज लौंगवती ने मुह खोला तो वह भी मन की भड़ास निकालने लगी, "पहले मुझे यह बता, सयानी कि उस के मन म यह आग कसे लगी किस ने लगायी ?"

लौंगवती ने, जितना उस के जिगरा था, पूरा लगाकर कहा, "मौसी ! यह मैं तुम्हे बताऊँ ? यह तो वेद कतब लिखने वालो को भी पता नही लगा कि मन की आग कसे लगती है। बस ब्याह म आये हुए चन्दनसिह को देखकर बेनू ने उसे मन म अपने मन का मद मान लिया।"

माँ के मन म कई शकाएँ उठी, पर सब कुछ जानने के लिए उस ने ठडे जी से पूछा, पर कहाँ हम, और कहा वह राजाओ जसे ठाकुर लडकी ने कसे सोच लिया

कि वह आसमान मे थेगली लगा लेगी ?"

स्वाभाविक रूप से लोगवती के मुह से निकला, "मौसी ! जब दिल आते हैं ता राजाओ की बेटिया फकीरो के घर जा बसती है, और राजाओ के बेटे कम्मिया-कमीनो की बेटिया ब्याहकर ले आते हैं।"

मां का बात कुछ भेदभरी लगी। पूछन लगी, "तो च दनसिह न हामी भर ली थी ? वह कहाँ छिपकर लडकी से मिला था ?"

लौगवती सँभल गयी। कहन लगी,"नही, कही नही, मौसी ! वह ता दूर का दशन था '

मा कुछ ठडी हुई। कहन लगी, "फिर तुम लडकियो, झूठमूठ हवा म क्या पत्थर मारती हो ? दूसर घर का न कुछ पता न खबर, और इस ने जो तेरी कुछ लगती है, घर बठे ही उस के लिए जयमाला पिरो ली ? "

'नही, मौसी ! यह बात तो नही," लौगवती ने कुछ दबते हुए कहा, "यह तो उस के मुह से भी दिखता था।' पर फिर बात बदलत हुए कहने लगी, "दिल का भी दिल से राह होती है। अगर इस के मन म कोई सेंक हैं ता वह उसे भी लगना ही था जब उसेपता चलता, ख द ही उस का दिल आ जाता। पावती ने भी तो तप करके शिवजी को पाया था "

मां एकाएक गरम हो उठी, "वह बडी पावती बनती है, पहले शिवजी तो ढूढ ले। उसे शिवजी कहते शम नही आती जिस के माथे पर पाच ख न लग हुए है ?"

लौंगवती कच्ची-सी पडकर कहने लगी, "वह तो न जाने उस न किस हाल म किये। पर मौसी ! यह बताओ, अगर पहले यह रिश्ता हो गया होता, और फिर ऐसा बानक बनता, तो हम क्या कर लेते ?"

यहाँ लौगवती न हम' कहकर बेनू के दुख सुख से अपनी साझेदारी भी उतनी ही जोड ली जितनी मां की थी। पर वह मां की समझ से परे थी। वह गुस्से से ऐंठती हुई बोली, ' तब की बात आर थी, लडकी। तब तो उस की किस्मत को ईश्वर भी नही बदल सकता था—"

लौंगवती जल्दी स बाल उठी "कौन जान अब भी ईश्वर बदलना नहीं चाहता अगर तुम मान जाओ "

मा ने खीझकर कहा, 'क्या मान जाऊँ कि अपन हाथ से फासी का रस्सा उस के गले म डाल दू ? वह जा इतन ख न करके भागा फिर रहा है, उस ढढू जाकर—'भई फासी चढन से पहले मेरी बेटी से ब्याह कर जा '

लौंगवती मा क मन को भी समझ रही थी, पर साहस करके बोली ' नहीं, मौसी ! एसे न कहो ! उस का शायद कोई कुसूर नही है वह शायद कचहरी स छूट ही जाये," और फिर नम्र होकर कहने लगी, ' मैं यह तो नही कहती कि अभी जाकर उस से रिश्ता कर दो, मैं तो सिफ यह कह रही हूँ कि जब तक उस का पता

नही लगता, उतनी देर जल्दी न करो इसे कही ब्याहने की "

मा कुछ धीमी पडी । कहने लगी, "चल, मैं तो चाहे मान भी लू कि लडकी कुआरी बैठी रहे, पर उस का बप्पा मानेगा ?"

लाजवती को कुछ आशा बँधी । कहने लगी, "मौसी ! अगर तुम मान जाओ, तो शायद तुम्हारे कहने से "

वेनू की मा कानो को हाथ लगाते हुए बोली, "तुम्हे उस के स्वभाव की खबर नही । अगर मैं ने मुह से कुछ कहा तो वह हम मा-बेटी दोनो को काटकर पिछली कोठरी मे गाड देगा "

और किस्मत की लकीर को जहा टूटना था, टूट गयी ।

तीसरे दिन, सूरज डूब रहा था जब वेनू का पिता अलीगढ के एक अच्छे व्यापारी घराने मे वेनू का रिश्ता जोडकर आ गया ।

आते ही उस ने जब वेनू की मा को यह खबर सुनायी, 'मैं तो घेर की रस्म भी कर आया हूँ, अब पाचवे दिन भेंट की रस्म के लिए जाना है," तो वेन के मन म ऐसी घेर पडी कि शगुन की घेर भी लज्जित सी उस के मुह की ओर देखने लगी

मा भेंट के लिए गहने और रुपये थाल मे जोडती रही, पर कोई नही जानता वेनू किस तरह भीतर बाहर से रीती होती जा रही थी

भेंट की रस्म मर्दो को अदा करनी थी, जाकर कर आये । पर जिस समय एक सप्ताह बाद अलीगढ से व्यापारियो की औरतें वेनू की गोद भरने के लिए आयी, वेनू सूनी सी, लुटी हुई सी, किस्मत के इस ठटठे को अपने पल्ले मे डलवाती रही

उन्ही दिनो बाहो पर नाम गोदने वाला उस गाव से गुजरा था, जिस से औरतो को कई भूले-बिसरे गाने भी याद आ गये थे । वेनू की हथेली पर शगुन की महँदी लगायी गयी, और औरतो ने सुहाग गाकर गीत छेड दिया, जिस म कृष्ण की प्रेमिका अपने अग अग पर उस का नाम गोदवाती है

लीला गोदवाय लेओ प्यारी
गली मे आय गये ललिहारी
ठोडी पै ठाकुर लिखो
कन्धे पै कान्हा लिखो

और ज्यो ज्यो गीत बढता गया—अपने कृष्ण का नित नया नाम रखने वाली गोपिका अपने अग अग पर उस का नाम गोदवाती रही—वेनू को लगता रहा—उस के अग अग पर चन्दन का नाम गोदा जा रहा है

एक पल मँगनी, दूसरे पल ब्याह की रस्मो म से गुजरती हुई वेनू बावली

आखो से हरएक के मुह की ओर ऐसे देखती रही, मानो होनी के मुह के सिवाय किसी को पहचानती न हो

गाव का जनवासा एक बार फिर सजा, औरतो ने फिर बढ़ार गायी, जन वासे म पानी के घडे भरकर खेत दने गयी, लडकी के घरका दरवाजा फूलो से महक उठा, कुछ इस तरह जस गाव के ठाकुर जगीसिह की लडकी के ब्याह के अवसर पर हुआ था

और वेनू कई बार भूल भूल गयी कि अब जगीसिह की लडकी का ब्याह नही था, उस का अपना ब्याह था

और भुलावा पडता रहा—कि अभी अभी ब्याह क लिए आया हुआ चन्दनसिह उस दीवार की आट के पीछे से भी दिखाई दिया और इस दीवार की ओर के पीछे स भी

पर वेनू के घर के आँगन मे जब मँडवा सजा और अलीगढ का व्यापारी कहलाने वाला कोई आदमी उसी के घर की ड्योढी को लाँघ अन्दर कोठरी म आकर छ द कहने लगा, और वेनू को औरता ने पकड-थामकर उस क सामने उस का कँगना खोलने के लिए बिठा दिया तो वनू क मन की गाँठें कस गयी

" हाय री किस्मत आगो वाली गाँठें खुलवा रही है पर जिन गाँठो को तू न अपने हाथो से डाला है, उन्हे कौन खोलेगा ? " वनू लौंगवती की छाती स लगकर भी रोई और किस्मत की छाती से लगकर भी

और वेनू के मरे-जीते हाथ रस्मो म से गुजरत रहे

सिफ डोली के दिन उस ने लौंगवती की बाह पकडी और घर के पिछले दरवाजे से निकलकर आमो के उस बाग की ओर चल दी जहा तालाब के पानी म उस की समझ से, उस की और चन्दनसिह की परछाइयाँ अभी भी तर रही थी

' वेनू ! यह किस्मत का लिखा था, भूल जा । ' रास्ते म लौंगवती ने रह रहकर कहा । पर लगता था, वेनू क काना म कोई आवाज नही पड रही थी ।

वह अपन ध्यान म मग्न तालाब के किनारे पर जाकर खडी हो गयी और पानी म कापती हुई अपनी परछाइ को देखकर लौंगवती से कहने लगी, 'तू जानती है न, जिन्नो और भूतो की पहचान क्या होती है ? उन की परछाइ नही होती । यह देख, मेरी परछाइ यहा रह गयी है और मैं जिन भूत बनकर आज डोली म जाऊँगी "

लौंगवती का जी किया कि छाती पकडकर रोय, पर वेनू को थामत हुए वह अपने आप को भी थामती रही ।

और तालाब के किनारे स लौटत हुए एक जगह पर वेनू खडे पत्थरो की ठोकर खाकर एस गिरी कि उस के परा की उँगलियाँ छिल गयी । और घडी

पहर बाद जब उसे ससुराल के गहने पहनाये जाने लगे तो उस के पैरो की उँगलियो म विछुआ न पहनाया जा सका।

उस समय डोली म वठत हुए वेनू ने—कोई नही जानता—लोगवती के कान म कुछ कहा

सिफ लोगवती कितनी देर तक अपने कानो को मलती रही—जिन मे वेनू के शब्द चुभ रहे थे—'तून उस से कहा था न कि मेर नाक का बुलाक पैरो का बिछुआ मागता है कभी वह तुझे जीता मिले तो उस से कहियो—वेनू न पैरो मे किसी और का बिछुआ नही पहना था '



सब जानते हैं—एक शाम को बडे शहर के अस्पताल मे, हाथ म पिस्तौल लिये चन्दनसिंह आया, और सीधे भाई की चारपाई के पास जाकर, उस का मुह देखकर और उस के पर चूमकर, उसी तरह पिस्तौल ताने हुए खिडकी से छलाँग मारकर अलोप हो गया

थानो म खबर फल गयी, शहर की नाकेबन्दी हो गयी, ठाकुर पृथ्वीसिंह की कोठी का पहरा कडा हो गया, पर चन्दनसिंह का कोई सुराग न मिला।

और बाद मे सबको मालूम हुआ कि उस रात पुलिस से छुपते हुए चन्दनसिंह ने जिस घर मे पनाह ली थी, वह एक बूढी विधवा गगा का घर था, जिस की पन्द्रह बरस की जवान लडकी त्रिबेनी के आगे पिस्तौल तानकर चन्दनसिंह ने एक धमकी-सी दी थी कि अगर उस की मा ने आवाज़ निकाली तो वह गोली चला देगा। और उसी तरह पिस्तौल तान हुए उस ने गगा से माँगकर रोटी खायी थी, और उस रात जितन पसे उस की जेब म थे, वे सारे के सारे उस ने गगा के आगे ढेरी करके उसे अपनी शहर वाली कोठी पर अपने माता पिता के पास सन्देशा देकर भेजा था कि उन का बेटा एक बार उन मे मिलना चाहता है।

गगा उस के लिए उस की माँ का जवाबी सन्देशा ले आयी कि अभी कोठी के

चारो तरफ पहरा है, वह भूलकर भी वहाँ न आये। और चन्दनसिंह दो रात और गगा के घर रहकर जाते समय हाथ म पहना हुआ सोने का कडा उसे देकर कही अलोप हो गया। और जाते समय गगा को प्रणाम करते हुए उस से कह गया, "गगा माँ! किसी दिन मेरा यह खत मेरी ठकुराइन माँ को पहुचा आना"— और गगा उस के लिए ममता से भर गयी। और चार दिन का अन्तर डालकर वह ठकुराइन को खत दे आयी।

पर पुलिस ने ताड रखा था—दो बार गगा को कोठी मे जाते देखकर उन्होंने पूछताछ के लिए गगा को जाकर धमकाया था। सुराग़ मिल गया था, पर चन्दनसिंह नही मिला।

खत भी नही मिला था, पर पूछताछ के लिए ठाकुर पृथ्वीसिंह पर सख्ती होने लगी थी। पुलिस की चढ आयी थी।

और सब जानते हैं—जब से मलखानसिंह ने एक पल के लिए ही सही, अस्पताल मे चन्दनसिंह का मुह देखा था, उस के घाव भरने लगे थे।



पर कोई नही जानता—बेनू ने जिस दूर बहती कुआरी नदी का सिर्फ़ नाम सुना था उसे कभी देखा नही था, वह एक रात बेनू के सपने मे आ गयी

बेनू जिस से ब्याही गयी थी, वह अच्छे पसे वाला व्यापारी था। ताला का व्यापार करता था, पर तन का भी बेढगा था, मन का भी और जिस के स्पश से बेनू को अपना तन मन भ्रष्ट होता लगता था

और एक रात सूजे हुए पपोटो को लेकर सोयी हुई बेनू के सपने म आकर कुआरी नदी ने कहा, 'तू मेरी तरह कुआरी है, सदा कुआरी। जसे मैं किसी के अग से लगने पर भी कुआरी रहती हूँ, तू भी इसी तरह पवित्र रहेगी।'

और उस रात से बेनू के मन मे कुछ स्थिरता आ गयी थी, साथ ही मन म धीरज बँधा था *'यह तन की नही, मन की तपस्या है। अगर मेरी तपस्या म बल होगा—वह जिन्दा रहेगा* '



सब जानते हैं—डाकू के बीला लम्बे जगल म कितने ही गिरोह थे जो आस-पास के गांवो के गाय-बैल खोलकर ले जाते थे, और फिरौती लेकर लौटा देते थे। लेकिन पुलिस कभी उस जगल मे जाने का साहस नही कर सकी थी। पास ही कैलादवी का मन्दिर पडता था जहाँ वे डाकू पूजा करने आते थे, लेकिन पुलिस के हाथ नहीं पडते थे। अनुमान होता था कि चन्दनसिंह भी शायद उसी जगल म होगा, पर खबर नही मिलती थी।

ठाकुर पृथ्वीसिंह पर सख्ती बढ गयी, तो उन के वकील न सलाह दी कि जसे-तैसे चन्दन को हाज़िर किया जाय, और फिर रहम की अपील करके उस की सज़ा कम से कम करवायी जाय।

पुलिस ने चन्दन के लिए पांच हज़ार का इनाम भी रखा था, और पकड-पकडाई म उसके मारे जाने का खतरा भी बढ गया था।

उधर ग़रीबनी गगा पर भी पुलिस की सख्ती बढ गयी थी, और एक और भय बढता जा रहा था कि गगा की जवान लडकी त्रिवेनी की इज्जत खतरे म थी। कुछ पुलिस वालो की उसपर बुरी नज़र थी, जिस के कारण गगा दो बार ठाकुर पृथ्वीसिंह के पाँव पकडकर रायी थी।

मलखानसिंह अस्पताल से घर आ गया था, पर चुपचाप चारपाई पर पडा रहता था। कभी बोलता तो कहता, "हसा मोती की जोडी टूट जायेगी? बताओ, हसा मोती की जोडी टूट जायगी?"

और मलखान की आखो के आगे जीवन का वह एक दिन फल जाता, जब चन्दन को चढती जवानी के समय, मलखान की तरह अखाडे म जाकर कुश्ती सीखने का शौक हुआ था

चुन्नी गिर मलखान का उस्ताद था। नौसिखुए चन्दन का दिल रखने के लिए वह मलखान को इशारा कर देता और मलखान कुश्ती के दाव पच सीख रहे चन्दन से उस घडी अचानक हार जाता जब चन्दन का बाज़ी हाथ से जाती हुई मालूम होती।

और जीत की खुशी से चन्दन का दिल बढ जाता

यह कैसा समय था, मलखान सोचता कि—वह जानकर कुश्तियाँ हारता रहा और चन्दन को जिताता रहा—

पर अब—अब जब जिन्दगी ने दोनों को दाव पर लगा दिया तो चन्दन सचमुच बाज़ी ले गया।

वह मलखान को हार से बचाने के लिए, कैसे जिगरे से हार खा गया

मलखान ज़िन्दा है, मलखान को यही बात अजीब लगती कि उस के ज़िन्दा रहते हुए चन्दन के पीछे लगी हुई मौत शहरों में भी घूम रही है, जंगलों में भी और वह कुछ नहीं कर सकता

यह कैसा समय है, मलखान का दिल डुबकी खाता, 'जब ज़िन्दगी हार रही है, और मौत जीत रही है'

ज़मींदारी की प्रथा समाप्त कर दी गयी थी।

पहले ठाकुर पृथ्वीसिंह ने दो गाँव बेचकर कुछ रुपया इकट्ठा किया था, जो अब तक कुछ गुज़ारे में खर्च हो गया था, कुछ पुलिस की नज़र हो गया था। अब सरकार ने जागीरदारी की समाप्ति के समय कुछ बॉण्ड दिये थे पर वे पन्द्रह-पन्द्रह बरस की मियाद के थे। उन में से कुछ उन्होंने तीस-पैंतीस रुपये सैकड़ा के हिसाब बेचकर फिर कुछ रुपया हाथ में किया, और चन्दनसिंह को हाज़िर करके वह रुपया मुकदमे में लगाने के लिए रख लिया।

पर चन्दनसिंह की कोई खबर नहीं मिल रही थी

मलखानसिंह के कई घाव भर गये थे, पर यही एक नहीं भर रहा था। उसे बहुत बड़ा गम था कि जिस दिन वह होनी हुई थी उस दिन चन्दन क्यों आ गया था। उसे ही बचाने के लिए चन्दन ने गोली चलायी, नहीं तो चन्दन को काहे का खतरा था और चन्दन का इस तरह जंगलों में मारे मारे फिरना उसे बिलकुल अपना दोष लगता था।

ठकुराइन की रो-रोकर आँखें रह गयी थीं। फिर रातों को आँख नहीं लगती थी। नींद न आने के कारण आँखों के पपोटे हर समय सूजे रहते। दिन काटे नहीं कटते थे, पर रातें और भी भयानक थीं। उसे पल-पल पर खटके सुनाई देते, कभी इस दरवाज़े से, कभी उस दरवाज़े। लगता उस ने अभी चन्दन के पैरों की आहट सुनी है कभी खिड़की के शीशे पर उसे चन्दन का हाथ दिखाई देता। वह उठती—दरवाज़े खोलती, तरस उठती—चन्दन कहीं दिखाई दे जाये, साथ ही डरती, चन्दन कहीं इधर न आ निकले

घर के चारों तरफ़ पुलिस का पहरा था, पर माँ के खयालों में से जन्मा एक साया घर के दरवाज़े और खिड़कियाँ खटखटाता रहता



कोई नही जानता—चन्दनसिंह जब ढाक के जगल म छिपा था, वह असल में गाय बलो के चोरो के रख म जा घुसा था।

दूध-रोटी से उस का स्वागत हुआ था, और देखन म वह गिरोह के मुखिया का ऐसा महमान लगता था जिस के सान के लिए गदला था और ओढन के लिए रेशमी चादर। पर चन्दन न जल्द ही जान लिया था कि उस के सो जान पर भी मुखिया की बन्दूक तनी रहती है।

शिकार की जो बन्दूक वह साथ लाया था, उस न मुखिया का विश्वास जीतन के लिए उस के हवाले कर दी थी, पर मन म वह उस घडी की प्रतीक्षा मे था जब वह मुखिया का भरोसा जीत ले, और मित्र की निशानी के तौर पर उस से एक पिस्तौल माग ले।

अब उसे बन्दूक नही छोटी-सी पिस्तौल चाहिए थी

सरबन मुखिया को चन्दनसिंह ने, जो जसे हुआ था सब बता दिया था, और मुखिया का मन ललचा गया था कि ऐसा निशानेबाज अगर सारी उम्र उस के गिराह म रहे तो उस के गिरोह की ताकत कई गुना बढ सकती थी। और मुखिया जानता था—यह जागीरदार है, चाहे इस समय होनी के हाथो झकझोरा हुआ था, पर सारी उमर के लिए गिरोह म रहन वाला नही था। वह घर से भी मजबूत था, और किसी भी दिन सोने चादी के बल पर उस के लिए कानून का खरीदा जा सकता था। और चाहे उस के हाथ से पाच कतल हुए थे, वे कतल करने की खातिर नही हुए थे। हमला तो दूसरी गढी वाला न किया था और इस न सिफ अपन बचाव के लिए गोलिया चलायी थी और अगर कही गवाहियाँ सचमुच सीधी पड गयी, तो यह सीधी तरह से कानून स बच सकता था।

तो मुखिया सोचता था—किसी न किसी तरह इस के हाथ से किसी पुलिस वाले का या किसी और का खून करवाकर इसे हमशा के लिए दागी करा दे

सो, जिस दिन चन्दनसिंह ने मुखिया स एक पिस्तौल की बात की वह खुशी

से मान गया ।

यह वही सरवन मुखिया का पिस्तौल था, जिसे लेकर एक दिन चन्दनसिंह शहर के अस्पताल मे अपने भाई को देख आया था ।

पर अभी तक चन्दनसिंह ने मुखिया की किसी कारगुजारिया म उस का साथ नही दिया था । सरवन मुखिया चुप था, पर मौके की ताक म था ।

बहुत समय हुआ जब ढाक के जगल की परली ओर एक उडिया बाबा आया था जिस ने लोगो के खेत और फसलें बचाने के लिए गगा पर बाँध बँधवाया था, और तब से लोग उसे पूजते थे ।

फिर उडिया बाबा के देहान्त की खबर भी सुनी गयी थी और लोगो ने उन के नाम पर कृष्ण की पूजा आरम्भ कर दी थी । पर इन्ही दिनो खबर मिली कि उडिया बाबा का एक चेला हरिहर बाबा आया है जिस के दर्शनो के लिए लोग गाँवो से टोलियो मे आ रहे हैं

गायें भसें चुराने का भी यह कीमती अवसर था । मुखिया ने लोग इस के लिए तैयार किये, और एक काम चन्दनसिंह के जिम्मे भी कर दिया ऐसे ही हँसी मजाक म—और चन्दनसिंह को किसी तरह दागी करने के लिए । कहा, 'भई चन्दन यार ! हरिहर बाबा कीतनिये का नाम सुना है ? बस, उस का छैना मजीरा उठा ला, जगल म कुछ मौज मेला ही रहेगा "

मुखिया चन्दनसिंह के हाथ से कोई बडा कारनामा करवाने से पहले, यह छोटा-सा कुछ करवा कर, उसे जागीरदारी के आसन से उतारकर अपने साथ मिला लेना चाहता था

पर चन्दनसिंह ने उस की नीयत को बूझ लिया था । कहा कुछ नही, हामी-सी भी भर दी, पर सारी रात सो न सका

जो खून उस के माथे पर लगा हुआ था, चन्दन सिंह उस के कारण लज्जित नही था, बल्कि कही मन मे उसे अपने बहादुर माथे पर वह तिलक के समान लगता था, लेकिन यह काम—जो सरवन मुखिया कह रहा था, उसे चोर-उचक्कों का काम लगता था । उस का मन घिनिया गया

मन मे किसी जगह यह भी था कि उसे एक दिन, ईश्वर का तो पता नही, पर वेनू को सारा हिसाब देना है । इसी लिए उस ने आते ही मुखिया से एक आदमी मागकर, लौगवती के ससुराल के गाव भेजकर वेनू का नाम नही लिया था, पर वेनू के लिए सन्देशा भिजवाया था— चन्दनसिंह ने पाच कतल किये हैं, जरूरत पडने पर । पर नील सरोवर की मुर्गाबी नही मारी '

चन्दनसिंह को सोते उठते अगर ठकुराइन मा की ममता का ध्यान आता था, तो वेनू का प्यार भी जागकर, उस का मन वेध जाता था

और अब—हरिहर बाबा के छन मजीरो की चोरी ?—चन्दन का खाया-पिया मुह को आने लगा

एक विचार यह भी आन लगा—भला अगर मै वहां स न भागता, उसी तरह हाथ मे बन्दूक लिये थाने म बैठ जाता, तो मुकदमा ही चलता, और क्या होता, दिन के उजाले की तरह प्रत्यक्ष था कि हमला तो हमारी मढ़ी पर हुआ था, मैं कौन सा दुश्मनो को उन के घर मारने गया था

पर गर्मी मे जो हो गया, हो गया। वह दूर की दृष्टि नही थी, पर चन्दनसिह अब उस घडी को लौटा नही सकता था

और उस का मन एक और चिन्ता से डूबने लगा, 'मैं निर्दोष हूँ, पर आखिर तो नील सरोवर की मुर्गाबी गोली स बिंध गयी अब तक बेनू न जाने किस के घर बस गयी होगी '

और उस रात चन्दनसिह के माथे मे एक टीस उठी—जीने के लिए जिस रास्ते पर चल पडा था, उसी रास्ते के कारण बेनू बिछुड गयी और चन्दनसिह को जीन का यह रास्ता अकारथ प्रतीत होने लगा। मन मे आया—जगलो म भटककर मरने से अच्छा है जेल म जाकर ही मर जाऊँ, अँधेरे के एक कोन म बैठकर—यह तो उजाला भी चोरी का है



और सब जानते है—जिस पुलिस वाले की त्रिवेनी पर बुरी नजर थी, वह मौका ताककर एक दिन उस समय गगा के घर आ गया था जब गगा घर म नही थी

और पुलिस वाले के लिए दरवाजा खोलन के पछताव के कारण त्रिवेनी की चीख निकल गयी थी

हाथापाई म त्रिवेनी के कपडे लीर-लीर हो गये थे, और दरवाजे के कुड म त्रिवेनी की चीखे अडी हुई थी, तब दरवाज पर बाहर से लात पडी थी, और दरवाज़े के टूटे हुए तख्त का परे हटाकर चन्दनसिह वहा आ पहुँचा था

अब हाथापाई त्रिवेनी की नहीं थी, चन्दन और पुलिस वाले की थी एक क्षण के लिए चन्दनसिंह को पछतावा आया कि आते समय वह सरवन मुखिया की पिस्तौल क्यों छोड़ आया, वह यूं तो अपने आप को पुलिस के हवाले करने के लिए आया था, पर रास्ते के लिए हाथ में हथियार तो ले ही आता। पर दूसरे ही क्षण चन्दनसिंह को यह बात गनीमत मालूम हुई कि इस समय उस के हाथ में पिस्तौल नहीं थी, नहीं तो एक खून और उस के सिर मढ़ जाता

एक पुलिस वाले को धर दबाने के लिए चन्दनसिंह बहुत तगड़ा था—बस भी पुलिस वाले के साथ दोष मढ़ती हुई एक नंगी गवाही सामने खड़ी थी, जिस का डर उसे अन्दर से भी काट रहा था। चन्दनसिंह की टाँग को चारपाई के पाये से करारी चोट लगी, पर उस ने जल्दी ही उस पुलिस वाले को बाँध-जूड़कर कोने में डाल दिया था।

तब तक गंगा आ गयी, जो वस्त्रहीन त्रिवेनी के मुंह से, जो हुआ था, सुनकर सिर पकड़कर बैठ गयी।

"जाओ, गंगा माँ ! उठो ! थाने में खबर कर दो !" चन्दनसिंह ने गंगा को धीरज दिया।

'नहीं बेटा ! यह मैं नहीं करूँगी तुम ने मेरी बेटी की इज्जत बचायी है, तुम्हें किस तरह थाने में दे दूं ?" गंगा रोने लगी।

"और यह जो मुरदार आँखें फाड़े बैठा हुआ है, इस का क्या करना है ?" चन्दनसिंह ने बँधे हुए सिपाही की ओर हाथ से इशारा किया।

"इसे किसी कुएँ में फेंक दो, और तुम बचकर निकल जाओ !" गंगा बिलखने लगी।

"नहीं, गंगा माँ !" आज चन्दनसिंह के सामने उस का मार्ग निश्चित हो गया था। कहने लगा, "मैं आज भाग जाने के लिए नहीं आया हूँ। जो किया है उसे भुगतूंगा, इसी लिए आया हूं। सीधा थाने जा रहा था, लेकिन रास्ते में तुम से यह कहने चला आया कि जाकर मेरे माता पिता को खबर दे दो "

और चन्दनसिंह ने चारपाई के पाये के पास थूककर कहा, "इस कुत्ते की जून को मैं ने इसी लिए जान से नहीं मारा भई, इस के गन्दे खून से क्यों अपने हाथ लथेड़ूं, जो इस के सगे हैं वही इस से निबटेंगे।"

गंगा ने अपने ऊपर और ठाकुर-ठकुराइन पर की जा रही पुलिस की सख्ती की दास्तान सुनायी, पर अभी तक उस का मन यह नहीं मानता था कि चन्दनसिंह थाने में हाजिर हो।

'मेरे बूढ़े माँ-बाप कब तक ये सख्तियाँ सहेंगे? मैं एक बार हाजिर हो जाऊँ तो वे तो बच जायेंगे " चन्दनसिंह ने फिर गंगा को समझाया, और कहा, "जाने को तो मैं अपने आप ही थाने चला जाऊँ, तुम से इस लिए कह रहा हूँ क्योंकि

सरकार ने मुझे पकड़वाने के लिए पाच हज़ार रुपये देने का ऐलान किया है, व क्यो फ़िज़ूल म जायें, वे तुम्हे मिल जायें तो मुझे तसल्ली होगी

"हाय राम !" गगा के मुह से निकला, और उस न काना पर हाथ रख लिये। कहने लगी, "यह तो सुनने से भी मुझे पाप लगता है, बेटा ! तुम्हे बचकर उस रुपये की रोटी खाऊँगी !

चन्दनसिंह के मन म पिछले दिनो की वह याद उभर आयी—जो उस ने सरवन मुखिया के मुह पर पढ़ ली थी—'साला ! कितने दिन हमारे हाथ नही मिलता ! बहुत हठ करेगा तो थाने मे देकर पाच हज़ार तो कमा ही लेगे

और चन्दनसिंह का मन गगा के लिए पिघल गया। गगा के हाथ बँधे हुए थे, "पुलिस को खबर हुई तो बात शहर म फैल जायेगी, मेरी कुआरी लडकी को कचहरी जाना पडेगा गवाही के लिए और फिर फिर मेरी लडकी को कौन ब्याहेगा ? वह तो घर घर बदनाम हो जायेगी '

चन्दनसिंह कितनी ही देर तक सिर थामे बैठा रहा। यह सच था कि पुलिस वाले का दोष साबित करने के लिए त्रिवेनी की गवाही जरूरी थी और

आखिर माथे पर लिखी हुई तकदीर की तरह चन्दनसिंह ने सिर उठाकर गगा की ओर देखा और कहा, 'गगा मा ! तुम्हारे साथ कौल करता हूँ, मैं जब जेल से छूटकर आऊँगा, आकर तुम्हारी लडकी से ब्याह करूँगा "

और सब जानते है—उस दिन चन्दनसिंह ने थाने जाकर आत्म-समपण कर दिया



पर कोई नही जानता—यह खबर जब गाँवो शहरा म फल गयी, और अफ-वाह फैल गयी कि अव्वल तो चन्दनसिंह को फासी लगेगी या फिर उमर कद होगी, तब वेनू के दिल पर क्या गुज़री

लौंगवती का ब्याह बहुत छोटी आयु म हुआ था। वह कई-कई महीन

मायके रहती, कई कई महीने ससुराल मे, पर वह वरसा अपने मद से अलग रही थी। वह शहर के कालिज म पढता रहा। जव ब्याह हुआ, वह छोटी आयु का था, पर अब वह वकालत पास करके मध्यप्रदेश के दतिया जिले म वकालत करने लगा था और लोगवती अव वनू से काई दो सौ मील की दूरी पर थी।

काफी अर्से स वह जव भी अपने पीहर के गाव गयी थी उस का लोगवती से मिलना नही हुआ था। लोगवती वहा नही होती थी। एक वार वस काई आधे दिन के लिए मुलाकात हुई थी—वेनू अभी गाँव के वाहर पैर रखन वाली ही थी कि लोगवती आ गयी। अव वेनू को केवल एक ही लालसा थी—किसी तरह लोगवती मिले, और वह लोगवती के वकील पति से चन्दनसिंह के वचाव के लिए कोइ जतन करन के लिए कहे।

वेनू को मालूम था—ठाकुर पथ्वीसिंह उस के वचाव के लिए धन दौलत भी पानी की तरह वहा देंगे, और वडे लोगो की सिफारिशे भी पहुँचायेंगे। पर कितन ही जतन क्यो न हो, वे उस क मन को हमेशा कम लगते थे

और एक दूसरी वात वेनू के मन मे यह आयी—एक वार वाते करत हुए लोगवती ने स्वाभाविक रूप से कहा था कि दतिया ज़िले म एक नदी वहती है जिस के पानी म नहाकर जो मुराद माँगो वह पूरी होती है। चाहे उस समय वेनू ने टूटे हुए मन से कहा था, 'मुझे क्या, अब मुझे किस की मुराद मागनी है, इस जनम मे तो अव मुराद कोई नही रही ' लेकिन आज वेनू को लगा—'अव च दन मुझे नही मिल सकता, न सही, पर इस दुनिया मे वह जीता तो रहे ' और वेनू को लगा, यह सव से बडी मुराद थी जो वह किसी ईश्वर से माँग सकती थी

पर लोगवती तक पहुँचने का रास्ता नही दिखाई दता था। वेनू का पति वडा वेढव आदमी था वेनू जानती थी। इस लिए वेनू को चारो ओर अँधेरा दिखाई देने लगा

फिर जसे अँधेरे म विजली चमक जाती है, वनू को खयाल आया—उस का हमल जो पिछले वरस छठे महीने गिर गया था, अगर उस की वात चलाकर, स तान की म नत मनान के लिए, वह अपने पति को मनाये ता क्या मालूम वह मान ही जाय, और उसे लोगवती के पास कुछ दिनो के लिए भेज दे

वेनू का विचार सही उतरा। उस के आदमी न अपन एक वूढे नौकर को उस के साथ भेजना मान लिया पर साथ ही यह भी कहा, "रास्ता अच्छा नही है, दिन दहाडे लारियाँ लूटी जाती हैं सोन का छाप छल्ला भी पहनकर मत जाना "

वेनू के मन म चीख जसा विचार आया—जा लूटा जा सकता था, वह ता जग न लूट लिया, अव वाकी क्या रह गया है

और कोई नहीं जानता—यह चीख वेनू की अपनी छाती म से उठी, और फिर उस क अपने कानो म से होकर उस की अपनी छाती म ही समा गयी .



सब जानत हैं—पहली पेशी म जब सिपाही की करतूत सामने आयी तो सरकारी वकील ने त्रिवेनी को गवाह के कठघर म खड़ा करक जो निलज्जतापूण सवाल पूछे, उन्ह सुनकर हथकडी-लगे चन्दनसिह की आँखो म खून उतर आया, और ऐसी गरज के साथ उस ने सरकारी वकील को मुहतोड जवाब दिया कि उस की धमक सारी कचहरी मे बैठ गयी।

चन्दनसिह ने क्रोध को उगला भी था, पिया भी था जो कहा था उबलकर कहा था, पर दलील से कहा था, 'वकील साहब! उस कानून की लाठी ने कसे लडकी पर हाथ डाला, पहले बाँह पर या टाँग पर—ये क्या पूछने की बातें हैं? एक बदतमीजी तो उस ने की, दूसरी आप क्या करते हैं?—बस, यह जान लीजिये कि किस नीयत से आया था, सवाल नीयत का होता है कम का नही''

और चन्दनसिह पहली पशी म ही लागा की समझ म मुकदमा जीत गया था। पर जा सरकारी मशीनरी का पुर्जा-पुर्जा जानत है, व समझ गये कि अब चन्दनसिह का छूटना मुश्किल है।

भले ही चन्दनसिह के वकील ने सिपाही की नीयत के बारे मे बताते हुए यह भी कहा था "अच्छे-बुरे हर क्षेत्र मे होते है इस के कारण किसी भी क्षेत्र का अपमान नही हो जाता," लेकिन पुलिस कहाँ कहाँ और कसे-कसे वर निकालगी, उस का कुछ अनुमान सब को हो गया था।

और जब जानते हैं—सात दुशाला मे ढँकी हुई और पालकी के रेशमी आसन पर बैठने वाली ठकुराइन चन्दनसिह की हर पेशी के दिन कचहरी के राडो पर बैठी रहती थी।

चन्दनसिंह की ज़मानत नहीं हुई थी। और ठाकुर पृथ्वीसिंह को सब से बड़ा दुःख इस बात का था कि अंग्रेज़ों के ज़माने में कांग्रेस के जो लीडर उस की गढ़ी में पनाह लिया करते थे, आज उन्हीं के राज में उस के लड़के की ज़मानत भी नहीं हो रही थी

दिन के उजाले जैसा सच यह था कि ठाकुर पृथ्वीसिंह की गढ़ी उखड़ने से चौधरी भूपसिंह की गढ़ी और ताकत पकड़ गयी थी, और गांव के गवाह, जो हंसा-मोती की जोड़ी के टूटने पर हाथ मलते थे, अब चौधरी भूपसिंह का ज़ोर बढ़ते ही आंखें फेर गये थे।

और अब सरकार के दरबार में जो ओहदेदार थे, जो एक लम्बे समय से ठाकुर पृथ्वीसिंह के ऋणी थे, अब चौधरी भूपसिंह का सोना अपने-अपने घरों में डालकर, ठाकुर पृथ्वीसिंह के लिए डूबी हुई रकम के समान हो गये थे

गंगा और त्रिवेनी ठकुराइन के दायें बायें उस की बांहों की तरह बन जाती थीं। गंगा और त्रिवेनी को पुलिस के ज़ोर-धक्के से बचाने के लिए ठकुराइन ने अपनी हवेली में आश्रय दे दिया था। गंगा ठकुराइन की ताबेदारी में थी, रसोई का काम भी अब वह ही सँभालती थी, लेकिन ठकुराइन ने उसे कभी नौकरानी नहीं समझा।

त्रिवेनी—चुप, छाया की तरह, ठकुराइन के साथ रहती, और ठकुराइन बेटे के मोह में पिघली हुई सी त्रिवेनी को उस के नाम का वास्ता भी देती थी—'ऐ मेरे राम! मैं ने तो कोई पाप किया होगा जो मेरे दूध का कोई दोष मेरे बेटे को लग गया, पर इस कुआरी कन्या ने कोई पाप नहीं किया, तुम इस की मांग में सिन्दूर भर दो"

ठकुराइन ने अपने बेटे का वचन पूरा करने के लिए मन में धार लिया था कि चन्दन जब छूटकर घर आयेगा, मैं अपने हाथ से, अपने खानदान की सारी मर्यादा भुलाकर, यह पुण्य कमाऊँगी।

जो कुछ हुआ था उस के लिए ठाकुर के मन में पछतावा नहीं था, पर ठकुराइन के मन में यह अवश्य था कि उस के अकड़बाज़ पति के हाथों कई ग़रीब लाचार सताये गये थे और उस की हर समय की वासना ने ही उन्हें ये दिन दिखाये थे

ठकुराइन कचहरी के बाहर बैठी होती तो कई मनचले पास से गुज़रते हुए त्रिवेनी की ओर उँगली से इशारा करके कह जाते, 'है तो रईसज़ादा न, क्या मालूम जेल में भी रखैल को साथ ले जाये"

ठकुराइन अपनी आंखों में उतरते हुए खून को छिपा लेती, और साथ ही त्रिवेनी को अपने सिर पर ली हुई चादर के पल्ले से ओट में कर लेती।

औरत की मजबूरी का जो सन्ताप पति के कई रखैलें रखने के कारण उस ने

जवानी मे भी नही जाना था, वह इस उम्र मे, नगी सडक पर, त्रिवेनी के मुह की ओर देखकर भुगत रही थी

और सब जानते है—गिनती की कुछ पेशियो के बाद चन्दनसिह को फासी का हुक्म हो गया।



पर कोई नही जानता—शिवरात्रि के दिन मध्यप्रदेश के दतिया जिले की सिंध नदी पर जिस समय आसपास के गावो से हजारो की गिनती मे लोग आकर पव मना रहे थे—उस समय लाल किनारी की सफेद धोती मे लिपटी हुई एक परदेसी औरत सिंध नदी के सनकुएँ मे खडे होकर ईश्वर नाम की शक्ति से क्या मुराद माग रही थी

लोग सिंध नदी का जल इतना पवित्र मानते है कि आसपास के गाव वाले शिवरात्रि को कॉवर भरने आते है। कावर एक बहँगी सी होती है, जिस के मोटे डण्डे से दोनो तरफ दो मटकिया बँधी रहती हैं। ऊपर से इसे लाल कपडे से ढँका और सजाया जाता है, दोनो तरफ फूलो के हार भी लटकाये जाते है। और सिंध नदी मे मटकिया भरने के बाद जब लोग कावर को अपने-अपने गाव ले जाते है तो रास्ते मे सास लेने के लिए इसे धरती पर नही रखते। रास्ता चाहे कितना ही लम्बा हो, साथियो से कधा बदल लेते है, पर कावर को भूमि पर नही रखते। वे सारे समय चलते रहते हैं और शिव की स्तुति गाते रहते है

वेनू ने सिंध नदी मे पैर डालने से पहले जब एक कावर जाते देखी, शिव-स्तुति सुनी—साथ ही मनुष्य जीवन की असारता, उस का मन भर आया कुछ लोग कावर उठाये गा रहे थे

वडे भए तो का भए, जसे पेड खजूर।
पछी को छाया नही, फल लागे अति दूर॥
बोलो कि भाई, बम बोलो

वेनू मानो हजारों विचारों में से गुजर गयी हो—"एक वह पावर भी है, जो किसी को दिखाई नहीं देती मैं ने, बरसों बीत गये, प्यार की नदी से आँखों की मटकियाँ भरी थीं आज तक उन्हें भूमि पर नहीं रखा है इस वहँगी को कन्धे पर उठाये घूम रही हूँ सिर्फ चुप हूँ बोल नहीं सकती "

और वेनू का मन आराधना में बँध गया—"हे शिवशक्ति! क्या मेरी लगन का कोई फल नहीं? क्या मेरे प्यार की नदी तेरी सिंध नदी जैसी नहीं? जिन्दगी अकारथ हो सही खजूर का पेड़ ही सही मेरा हाथ नहीं पहुँचता, न सही मुझे उस की छाया नहीं चाहिए सिर्फ उस पर फल लगा दो! दूर का फल जिसे मैं नहीं तोड़ूँगी मैं नहीं खाऊँगी "

सिंध नदी की कथा सुनाते हुए शिव मन्दिर के पुजारी ने बेनू को बताया, ब्रह्मा के चार मानस पुत्र थे—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—वे यहाँ आये। यहाँ मीलों तक कहीं पानी नहीं था। वे तपस्या करने बैठ गये। यह उन की तपस्या का प्रताप था कि दूर बहने वाली सिंध नदी ने अपनी धारा बदल दी और मीलों का पत्थर काटकर यह मानस-पुत्रों के चरणों में बहने लगी '

और बेनू लाल किनारी की सफ़ेद धोती में लिपटी, सिंध नदी के सनकुएँ में खड़े होकर हाथ फैलाकर, ईश्वर की शक्ति से माँगने लगी, मैं सारी जिन्दगी प्यासी रही हूँ, प्यासी रहूँगी। मैं उस की जिन्दगी के पानी को मुँह से नहीं लगाऊँगी, पर उस की जिन्दगी का पानी उसे लौटा दो। हम भी मानस पुत्र हैं मेरे ईश्वर! दोषों से भरे हुए मोह में क्रोध से, अहंकार में भरे हुए पर हमारे भी दुख सुख हैं हम भी तपस्या करते हैं अपनी समझ से, जैसा भी ढंग हमें आता है जैसी भी समझ तुम ने हम दी है हम भी तुम्हारे मानस पुत्र हैं, बड़े नगण्य ही सही किस्मत की नदी का रुख मोड़ दो, मालिक! मैं और कुछ नहीं माँगती किसी और जन्म में माँगूँगी इस जन्म में बस इतना दे दो वह जीता रहे मैं चाहे सारी उम्र उसे न देख सकूँ "

और बेनू ईश्वर से सौदा भी करती रही, हठ भी, प्रार्थना भी

उस रात लौंगवती के पति शिवचरन ठाकुर ने विस्तार सहित चन्दनसिंह के मुकदमे को सुना, समझा और फाँसी के हुक्म के बाद भी हाई कोर्ट में अपील करने के लिए कागज तैयार करने लगा। उस ने लौंगवती का नाम लेकर, ठाकुर पृथ्वीसिंह के पास खुद ही बिना बुलाये जाना स्वीकार कर लिया था। बेनू ने यह बात पक्की कर ली थी कि वह उस का नाम किसी तरह भी चन्दनसिंह के या उस के घर वालों के सामने नहीं लेगा।

बेनू के आने से पहले, शिवचरन ठाकुर लौंगवती के मुँह से बेनू की किस्मत की कथा सुन चुका था पर बेनू को देखकर, और उस से बात करके वह बेनू के

प्रति मोह, प्यार और श्रद्धा से भर गया ।

कल एक बार शिवचरन ठाकुर ने वेनू के मन की थाह लेने के लिए कहा था, "अब तक शायद चन्दनसिंह को तुम्हारा नाम भी याद न रहा हो वेनू ! यह सब तुम्हारा अपना सोचा और पाला हुआ स्नेह है"

तो वेनू हँस सी पड़ी थी। कहने लगी, "दाऊ ! नेह भी ब्रह्मा का रूप होता है। ब्रह्मा भी तो अपने मन से ही जन्मे थे। ब्रह्मा की कौन मां थी, कौन पिता था ?"

और शिवचरन ठाकुर को वेनू के प्यार की थाह मिल गयी थी। आज दोपहर को जब वेनू नदी से लौटी, कचहरी में शिवरात्रि की छुट्टी होने के कारण शिवचरन ठाकुर घर पर ही था। वेनू ने लौंगवती के साथ एक ही थाली में खाना खाते समय ठाकुर साहब से पूछा, "दाऊ ! मैं तो पढ़ी लिखी नहीं हूँ, तुम ने तो वेद भी पढ़े होंगे, यह बताओ कि ब्रह्मा के ये पुत्र मानस-पुत्र किस तरह हुए ? देवताओं के घर मानस पुत्र कैसे जन्मे ?"

शिवचरन ठाकुर हँस दिया। बोला, "यहां सब यही कहते हैं। कोई इन की जननी का नाम नहीं जानता। शायद वह धरती की औरत हो तुम्हारे जैसी या लौंगवती जैसी" और फिर गम्भीर होकर उस ने कहा, "असल में शब्द मानस पुत्र नहीं मानसिक पुत्र है"

वेनू के हाथ का कौर हाथ में ही रह गया। बोली, "फिर तो बात और भी कठिन हो गयी क्या शारीरिक पुत्र और होते हैं, मानसिक पुत्र और ?"

शिवचरन ठाकुर ने अभी कोई उत्तर नहीं दिया था कि लौंगवती हँसने लगी और बोली, "तुझे मैं बताती हूँ"

लौंगवती के एक ही पुत्र था—सात बरस का, सरन, जिसे शिवचरन ठाकुर गांवों के स्कूलों में नहीं, शहर के किसी अच्छे स्कूल में पढ़ाना चाहता था, इस लिए उस ने उसे मसूरी के एक स्कूल के होस्टल में रखा था। लौंगवती उसी का नाम लेकर कहने लगी, "जैसे सरन मेरा शारीरिक पुत्र है—पर अब जब चन्दनसिंह जेल से छूटकर आयेगा, आकर ब्याह करेगा, अब तू तो उसे मिल नहीं सकती, कोई और ही मिलेगी, फिर उस के घर जो पुत्र जन्म लेगा, वह तेरा मानसिक पुत्र होगा"

लौंगवती की बात पर शिवचरन ठाकुर आँखें नीची किये हँसता रहा, पर वेनू को लगा कि एक पल के लिए जैसे उस के सब दुख दूर हो गये हों, और उस लौंगवती का मुंह चन्दनसिंह के फांसी से बचने का वर देता हुआ प्रतीत हुआ

इस घड़ी उसे शारीरिक पुत्र और मानसिक पुत्र का फर्क नहीं छू सकता था, शायद कभी भी नहीं छू सकता था, पर इस घड़ी तो निश्चित रूप से नहीं

वेनू के वस की बात होती तो वह चन्दनसिंह के जेल से छूटने तक सनकुएँ के

जल म खडी ब्रह्मा के मानस पुत्री की भाँति तप करती रहती। पर वह अपनी मजबूरियाँ जानती थी—उस ने सिर्फ सात दिन प्रार्थना करने का मन स प्रण किया।

शिवचरन ठाकुर उस के पीठ पीछे लौंगवती स कहता, "मानस-पुत्री के तप की कथा तो लोग हमेशा जानेंगे, पर एक मानस पुत्री ने कैसा तप किया, यह बात कोई नही जानेगा शायद चन्दनसिंह को भी कभी पता नही चलेगा "

लौंगवती का मन जैसे डूबता हो—"अगर अपील खारिज हो गयी, चन्दन-सिंह को सचमुच फाँसी लग गयी तो इस मानस-पुत्री का क्या हाल होगा "

वेनू के मन म जिस की लगन लगी हुई थी, लौंगवती न सिर्फ उसी की बातें की थी। घर के और दुख-सुख की बात पूछकर उस के ध्यान का नही बँटाया था। पर सात दिन के बाद जब वेनू के विदा होने की रात आयी तो लौंगवती का मन ऐसा डूबना महसूस हुआ कि उस ने उस से बीती बातें छेड दी

वेनू सवेरे की पूजा करने के लिए जब नदी पर चली जाती थी, उस का नौकर, जो उस के साथ आया था, लौंगवती की रसोई म उस का हाथ बँटाता था और वेनू बीबी के साधु-स्वभाव की छोटी छोटी बातें भी लौंगवती स कभी कभी किया करता था। इस समय लौंगवती न उसी की बात को दुहराया, "वेनू! तेरा नौकर अच्छा आदमी है। बता रहा था कि बाई तो सवेरे के समय नाम लेने योग्य है, पर मालिक का स्वभाव और है तेरी कैसी निभती है?"

वेनू हँसन लगी। बोली, 'तुम तो जानती हो, उन का ताला का व्यापार है। मैं ने और तो कुछ उन से लिया दिया नही, पर एक चीज उन से जरूर ली है, एक ताला और मैं ने उसे अपने विचारो पर लगा लिया है

वेनू हँस रही थी, पर लौंगवती उदासी हो गयी। बस बात एक ही थी।

लौंगवती ने भरे मन स कहा, "ऐसी ब्याही होने से तो तू कुआरी अच्छी थी, विचार तो अपने थे '

वेनू शा त थी, हलकी आवाज मे कहने लगी, "तुमने तो जतन करके देख लिया था, पर लडकी के लिए कुआर कोठा बनाने के वास्ते सिर पर माँ-बाप की छत होनी चाहिए '

लौंगवती दुख से भरी कहने लगी, "और अब मा बाप की छत खुश है? खाली हो गयी है न तुझे बाहर निकालकर "

वेनू के मन का धुआ कुछ थोडा सा निकला, 'अब तो माँ भी जब बुलाती है उस के घर जाने को जी नही करता जब मैं मिन्नतें करती थी तब छत के नीचे रहने न दिया '

और वेनू हिरखकर कहने लगी, "यह लछमन-रेखा सिर्फ सीता के पावो के आगे नही थी हर औरत के परो के आगे होती है। यह जो ब्याह होता है न,

लछमन रेखा के समान होता है, बस एक बार पैर उस रेखा को पार कर ले, उस लकीर सी को, औरत लौटकर पीछे नही आ सकती " और वेनू सोच म डूबती हुई कहन लगी, "सीता का तो कोई राम था, उसे लका से भी लौटा लाया पर साधारण औरत का कोई राम नही होता जा उसे लौटा लाये '

और वेनू चुप हो गयी

इस के आगे वह जगह थी, जहा बेनू ने सच ही कहा था—'विचारा पर भी ताला पड जाता है '

विचार आगे नही जा सकते थे, पीछे मुडे। लौगवती ने पूछा, "गाव म खबर-सी सुनी थी कि तेरे आदमी ने और भी कोई औरत रखी हुई है, कोई कुजातन, यह कहाँ तक ठीक है ?"

"इस मे क्या खास बात है ?" बेनू फिर हस-सी पडी।

"वह साथ ही रहती है ?" लौगवती के दिल म होल उठी।

"अलग है, पर साथ भी रहे तो क्या है "

लौंगवती न क्रोध से होठ काट लिया। कहन लगी, "तो माँ बाप ने तुझे भरी खटिया पर द दिया ?"

पर बेनू शा त थी। कहने लगी, ' तुम जानती हो, वह खटिया मेरी नही है, भरी हुई हो चाहे खाली "

लौंगवती का मन दहल गया। वह समझ नही पा रही थी कि इस मानस-पुत्री को इस ज म मे यह कैसा शाप मिला था

और काई नही जानता—बूढे नौकर के साथ वेनू अपनी अ तरग सखी लौंगवती के घर से अलीगढ आते हुए रेलगाडी के जनाने डिब्बे म जब बठी थी, तब रात को एक स्टेशन पर जब गाडी खडी हुई तो एक आदमी प्लेटफाम पर बायी से दायी तरफ जाते हुए और फिर दायी तरफ स बायी तरफ जाते हुए उस डिब्बे को चोर आँखो से देख रहा था जिसम वेनू बठी हुई थी।

एक बार उस की निगाह कुछ कम चोर नजर थी कि बूढे नौकर न भी उस देख लिया जब वह अपने डिब्बे से उतरकर बेनू से पानी-वानी पूछने के लिए आया था, जसे वह हर स्टेशन पर आता था जिस पर गाडी रुकती थी। बूढे नौकर न खिडकी के शीशे के पास होकर कहा, "बाबू ! यह जनाना है, अगले डिब्बे की तरफ जाओ "

डिब्बे म और औरतें भी थी, बच्चे थे। गाडी के चलने के समय वेनू का नौकर उतरकर अपने मर्दाने डिब्बे मे जा बठा

गाडी चल दी थी, पहले धीमी रफ्तार से चली, फिर जब रफ्तार तेज पकड रही थी, वेनू न पहला कौर तोडा। सीट पर खाने का डिब्बा खालकर और छोटी तश्तरी को धो-पोछकर उस का नौकर उस के लिए रख गया था।

रास्ते के लिए खाना लोगवती ने तयार करके सा
वेनू सिंध नदी का पवित्र जल एक ढक्कन वाले डोल म
थी

और इस समय उसी पानी का घूट भरते हुए वेनू
मैं अलीगढ नही ले जा सकती वहाँ सब कुछ जूठा है,
हो जायेगा

और एक वेनू जसे दूसरी वेनू से सवाल सा कर
उलटा नही हो सकता ? यह सुच्चा जल, जहा जो भी ज
बना देगा ?

पर डोल स छोटे गिलास म पानी उँडेलकर पीते हुए
कहे को गर्दानती नही लगती थी, क्योकि वह पानी को न
थी न रास्ते मे कही फेंक देना चाहती थी, इस लिए
जसे खत्म कर रही थी

जब गाडी तेज़ हो गयी, डिब्बे का दरवाजा खुला
उस समय जब गाडी खडी थी इस डिब्बे का गौर से दे
गया

डिब्बे की सब औरते काप गयी।

आगन्तुक—कोई नही जानता—मध्यप्रदेश का मशहूर
ने सिंध नदी म सात दिन तय करने वाली वेनू का यह
अलीगढ के मशहूर व्यापारी की पत्नी है और किसी
ओर आया है, और एक बूढा नौकर उस की सेवा मे हर
है

उस ने वेनू का नदी म स्नान करते हुए दूर से देखा
के ज़रिये यह भी पता चला लिया था कि नदी मे स्नान
पास गहना पत्ता भी नही है, पर इतने बडे व्यापारी की
हो, यह बात उस ने नही मानी थी।

और वेनू की वापसी पर उस ने निगाह रखी थी।

वेनू को, जब वह नदी म खडी थी, उस ने दूर से देखा
को उस ने नज़दीक से देखकर पहचान लिया था और जब
बूढा नौकर जिस जनाने डिब्बे के फेरे कर रहा था, उस से
वेनू की मौजूदगी का अनुमान लगा लिया था

खरा जिस समय अपने पचफेरे को कधे पर रखे आर
गाडी के इस डिब्बे म आया, डिब्बे म बठी और लेटी हुई
गये

खरा शायद आवश्यकता पडने से पहले दहशत फैलाना नही चाहता था, हलीमी से बोला, "ओहो यह ज़नाना डिब्बा है मैं पानी पीने गया था कि गाडी चल दी अँधेरे मे जो भी डिब्बा सामने आया उसी पर चढ गया "

और खैरा ने अपने होठो पर इस तरह जीभ फेरी जैसे बहुत प्यासा हो, और गाडी के चलने की आवाज सुनकर पानी भी नही पी सका हो

वेनू ने अपने चादी के गिलास को धोया और उस म डोल से पानी उडेलकर उस के आगे करते हुए वोली, "कोई बात नही, भाई साहब ! अगले स्टेशन पर उतर जाइयेगा । यह लीजिये पानी—यह सिंध नदी का पवित्र पानी है "

खैरा ने एक बार फिर वेनू की सोने-चादी से बिलकुल खाली वाहा की ओर देखा और चकित सा होकर उस ने पास आकर पानी का गिलास ले लिया।

वेनू पानी को अलीगढ ले जाने या न ले जान की दुविधा म पडी हुई थी, अब जसे खिल उठी। कहने लगी, "यह पवित्र जल न जाने आप के पीने के लिए ही था, भाई साहव ! कि मैं इतनी दूर से इसे लिये चली आ रही हूँ "

वेनू की सब दुविधा मिट गयी, पर खैरा के मन म सचमुच दुविधा पैदा हो गयी—क्या सचमुच इस सेठानी औरत के पास कोई सोना-पसा नही ?

खरा न पानी पीते हुए एक बार फिर बेनू की बाहो के ऊपर, उस के गले की ओर देखा जहा सोने की पतली-सी जजीर भी नही थी, और फिर अपनी चोर-नजर छुपाने के लिए नीचे सीट की ओर देखने लगा—जहाँ एक पीतल की रकाबी मे दा पूरियाँ और आलू की भाजी पडी हुई थी।

इसी समय सामने की सीट पर से एक जागा हुआ बच्चा भी वेनू के सामने रखी हुई पूरी की ओर हाथ वढा रहा था, सो वेनू ने डिब्बे म से एक पूरी निकाली और उस पर दो आलू रखकर उस को गोल पूनी सी बनाकर बच्चे की ओर हाथ बढाया, और देखा कि पास खडा हुआ आदमी पूरी आलू को बडे गौर से देख रहा है

वह न जाने क्या सोच रहा था, क्या देख रहा था ! बेनू को लगा जैसे इस आदमी को प्यास के साथ साथ भूख भी बहुत लगी हुई थी।

वेनू मन की जिस दशा मे थी, वह एक साधारण औरत के साधारण मन की दशा नही थी, वह मुरादें पूरी करने वाली सिंध नदी मे मल मल नहाकर, सिंध नदी का रूप हो गयी थी, मुरादें पूरी करने वाली

वह तृप्त मन स कहने लगी ' भाई साहब ! य पूरिया जूठी नही हैं, अगर आप का भूख लगी हो, तो आप ही डिब्बे मे से निकालकर खा लीजिय ।"

और कोई नही जानता—न कभी जानगा—कि खरा डाकू के मन म वनू की आवाज एक ठडे फाहे के समान वैठ गयी शायद हर जीव जन्तु के मन म कही काई छिपा हुआ घाव होता है, और खैरा के मन म भी था, और वहाँ वनू

की आवाज नरम और ठडे फाहे की तरह लग गयी या शायद यही निराशा थी कि वेनू के किसी भी अग पर एक तोला सोना नहीं था, और खैरा को आज का दिन व्यर्थ जाने का विश्वास हो गया था, सो वह एक ठडी सांस लेकर और सिकुडकर वेनू वाली सीट की पटटी पर बैठ गया

पर खैरा चकित था कि रात व्यर्थ जाने के गुस्से का उस के मन म कोई बल नही पड रहा था, बल्कि उसे सचमुच भूख-सी लगने लगी थी

उस ने धीरे से हँसकर एक बार वेनू की ओर देखा, फिर एक बार पूरियों के डिब्बे की ओर

वेनू न पूरियो का डिब्बा, और आलू की भाजी का डिब्बा, दोनो उस के आगे रख दिये

खैरा न डिब्बो से हाथ नही लगाया, सिर्फ चादर म से दोनो हाथ निकालकर वेनू के आगे इस तरह पसार दिये जैसे मन्दिर म प्रसाद मांग रहा हो

वेनू ने पानी से दाहिना हाथ धोकर डिब्बे म से पूरियाँ निकाली, ऊपर सूखे आलू रख दिये, चटनी भी और उन्हे खैरा के फैले हुए हाथो पर रख दिया

खैरा न पूरियो खायी, गिलास आगे बढाकर पानी मांगा, और चांदी के गिलास को धोकर वेनू के आगे रख सीट से उठकर खडा हो गया।

इस सारे समय म खैरा न उस भाई बहन वाली वेनू की ओर मुडकर नहीं देखा, न डिब्बे की किसी और औरत की ओर, और डिब्बे के दरवाजे के पास इस तरह जाकर खडा हो गया जसे अगले स्टेशन पर गाडी के रुकने की प्रतीक्षा कर रहा हो

स्टेशन शायद दूर था—गाडी की एकसार आवाज कही से भी नही टूट रही थी। कुछ औरतें फिर ऊँघ गयी थी, कुछ भयभीत सी आँखें खोल उसी तरह बैठी हुई थी और औरतो के इस डिब्बे म एक आदमी दरवाजे को पकडकर बुत बना खडा था।

वेनू भी ऊघ गयी—शायद कुछ मिनटो क लिए ही, पर मिनटों के इस अर्से मे ही वह मन की एक विचित्र अवस्था से गुज़र गयी

सपना आया—वह एक सफेद हसिनी थी।

वहाँ, न जाने कहा, एक मानसरोवर था।

और उस के साथ एक सफेद हस अठखेलियाँ करता हुआ मोती चुग रहा था

और फिर जगल मे गोली चलने की आवाज आयी।

और हस के सफेद पखों मे से लाल लहू बहने लगा।

और एक शिकारी न झपटटा मारकर घायल हस को सरोवर मे फेक दिया, और हसिनी को दोनो हाथो म पकड लिया

हंसिनी ने उस के हाथों से छूटने के लिए इतना जोर लगाया कि उस के कितने ही पंख टूट गये।

और फिर वह हंसिनी शिकारी के हाथों में पकड़ी हुई ही, काली स्याह हो गयी

और शिकारी ने उसे काली कौवी समझकर छोड़ दिया।

और वह काले पंखों वाली हंसिनी जंगल में उड़ने लगी

जंगल बहुत बड़ा था, और हंसिनी के कई पंख टूट चुके थे, और वह बहुत उड़ भी न पाती थी।

वह जंगल में उड़ते हुए एक सरोवर की खोज रही थी।

और फिर सरोवर मिल गया।

उस ने सरोवर के पानी में डुबकी लगायी और उस के काले पंख फिर सफ़ेद हो गये

अचानक गाड़ी की एकसार खड़-खड़ एकदम रुक गयी जिस से बनू की नींद टूट गयी।

औरतें खिड़कियों से बाहर देख रही थीं, कह रही थीं, "स्टेशन तो कोई नहीं है, गाड़ी क्यों खड़ी हो गयी?" इंजन की सीटी बार-बार ज़ोर-ज़ोर से सुनाई दे रही थी। दरवाज़े के पास खड़ा आदमी कह रहा था, "स्टेशन पास ही है, पर सिगनल नहीं हुआ इस लिए गाड़ी रुक गयी है।" और इतना कहकर वह दरवाज़ा खोलकर नीचे उतर गया

गाड़ी फिर एक हिचकोले के साथ चलने लगी और बनू जाने कहाँ दूर सपने के तिलस्मे में खोयी रह गयी। वह सोच रही थी—यह सब उस नदी के पानी का कौतुक है...

पर, तिलस्मे के आस-पास बनू के मन में डर भी आता—वह उस तिलस्म से न छूट पायेगी, नहीं तो मैं जंगल में काली न हंसिनी कब बन गयी

आज बनू को पहली बार—ब्याह के बाद पहली बार—अपना आप हंसों के पंखों के समान उज्ज्वल प्रतीत हुआ

परे खडी हो गयी थी, वे वहाँ उतर गये बाद मे डिब्बे के लोग कह रहे थे कि वे किसी डाकू के साथी थे लोगो को डर था कि आज गाडी म डाका पडेगा उन का मुखिया भी शायद गाडी म था न जाने किस डिब्बे मे और फिर न जाने क्या हुआ सब के सब उतर गये वह भी उतर गया होगा, नही तो सब क्यो उतरते "

वेनू कुछ भी कहने या पूछने की जगह उस के मुह की ओर ताकती रह गयी

वह कह रहा था, "पर सब तरफ कुशल मगल दिखाई देता है, नही तो अब तक स्टेशन पर हल्ला मच गया होता "

गाडी ने चलने की ह्विसिल दी और वह बूढा नौकर मालकिन की ख़ैरियत देखकर अपने डिब्बे म चला गया

गाडी चल पडी। पानी का खाली डोल, जिस म वेनू सिंध नदी का जल भरकर लायी थी, गाडी के हिचकोलो से हिलने लगा। वेनू को लगा—वह खाली हिल रहा डोल जैसे उस से कह रहा हो, 'यह मेरे जल का कौतुक था—वह न जाने कौन था, क्याकि डिब्बे मे चढा था, पर तुम्हारे हाथ से यह जल पीकर वह जसे आया था, वैसे ही चला गया '

और हसिनी वाले सपने ने इस घटना के साथ मिलकर वेनू के होठो पर एक मुस्कराहट ला दी—और रेलगाडी के पूरे सफ़र म यह मुस्कराहट वेनू के होठो पर बनी रही



सब जानते है—चन्दन को जब फासी का हुक्म हो गया, उस के माता पिता और भाई कई दिन और कई रात घर के फ़र्श पर हारे-बुझे से पडे रहे। कभी पानी का एक घूट ऐसे पी लेते जसे कोई मरने वाले के मुह से पानी लगाता हो। रोटी गले से नीचे नही उतरती थी, कौर अन्दर जाने से पहले बाहर को आता था,

मुह का रग धूल जैसा हो गया था

कभी घर का दरवाज़ा खड़कता, कोई पड़ोसी सहानुभूति से मिलने आ जाता, या वकील अपील के बारे में कुछ बात सोचकर आता तो चन्दन के बूढ़े माता पिता और उस का जवान भाई दरवाज़े की ओर इस तरह देखते जैसे उन मरते हुओं के सिरहाने कोई दीया-बत्ती जलाने आया हो।

पर कोई नहीं जानता—जेल की सीखचों वाली कोठरी के शीतल अन्धकार में चन्दन एक तपते हुए अँधेरे की भाँति किस तरह जल रहा था

उस का जागना और सोना जैसे एक सा हो गया था। आँखों के आगे कुछ फैलता और सिमटता था, पता नहीं लगता था कि वह जागृति का हिस्सा था या नींद का

एक जंगल था, हड्डियों से भरा हुआ, और चन्दन उस जंगल की एक एक हड्डी को ग़ौर से देखता हुआ अपनी हड्डियों को ढूँढ़ रहा था

यह शायद एक रात का सपना था—जो रात में से निकलकर दिन के घेरे में आ गया था और चन्दन मौत के पल में से गुज़रे बिना मरने के बाद की अपनी हड्डियाँ चुन रहा था

एक ही समय में—जीवित भी और मरा हुआ भी

इसी जंगल के सपने में एक नदी का सपना भी मिल गया था—चन्दन को अपनी जीभ प्यास से अकड़ी हुई मालूम होती है और वह दूर से दीख पड़ने वाली नदी के पास जब दौड़कर पहुँचता है, नदी लहू की हो जाती है

एक दिन सवेरे के समय वह जागने से पहले सपना देख रहा था और जागने और सोने के फ़र्क को जाने बिना उस ने जब कोठरी में पड़े हुए पानी के सकोरे को मुह से लगाया—उसे नदी के लहू की ऐसी दुर्गन्ध आयी—उस ने चीख मारी और सकोरे के पानी को लुढ़का दिया

और चन्दन ने जैसे अपनी आँखों से अपने प्रेत को देखा। देखा कि कुछ लोग एक औरत के गिर्द बैठकर आग की धूनी लगा रहे हैं और चिमटों से उस औरत को मार रहे हैं धूनी का धुआँ इतना गाढ़ा है कि औरत का मुह नहीं पहचाना जाता फिर धुआँ कुछ कम हो जाता है, और वह देखता है कि वह बेनू है वह दौड़कर बेनू को छुड़ाने लगता है कि एक बहुत बड़ा लोहे का चिमटा उस के मुह पर लगता है और इर्द गिर्द खड़े हुए लोग कहते हैं—'बेनू को भावना का प्रेत चिपट गया है सारी रात उसे चिमटे मारते हैं, लेकिन प्रेत नहीं निकलता '

सब जानते हैं—चन्दन चाहे जेल की सीखचों वाली कोठरी में था, पर जीवित था। पर कोई नहीं जानता—चन्दन ने जीते जी अपनी चिता की हड्डियाँ चुनी थीं पानी की नदी से अपना लहू पिया था, और अपना मुह प्रेत की दया

था जिसे लोग चिमटों से वेनू के शरीर म से निकाल रहे थे

वेनू कभी कभी चन्दन के मुह से यह नाम निकलता और लोहे के सीखचों से टकराकर वहीं पर ही, चन्दन की जेल की कोठरी म, घायल होकर गिर पडता



सब जानते है—वेनू जिस समय सिंध नदी का तप-स्नान करके लौटी और यह खबर वेनू के माता-पिता को भी मिली, तो वेनू की माँ न सिंध नदी के प्रताप म अपना जतन मिलाकर उस प्रताप को बढाने के लिए वेनू को चार दिन के लिए मायके बुला लिया।

"औलाद के बिना औरत की जड धरती में नहीं लगती।" वेनू की माँ न गाव के पाधाजी को बारीक मलमल की धोती और पाँच रुपय चढाकर कोई उपाय पूछा कि जसे तसे वेनू की कोख हरी हो।

माँ के कलेजे को अन्दर से एक भय चीर रहा था—कि अगर इसी तरह और चार बरस बीत गये और वेनू के घर औलाद नहीं हुई तो क्या पता वह व्यापारी का पूत कोई और ब्याह रचा ले। उस की पहली रखल की बात भी किसीस छिपी हुई नहीं थी, चाहे वह कुजात की थी, पर जात वाली भी, अगर पास दाने हो, तो सात सवाई मिल जाती हैं।

सो, पाधा ने वेनू की मा को जहाँ दान पुण्य के और उपाय बताये थे, वहाँ एक यह उपाय भी बताया था कि मगलवार के दिन वेनू का नहला धुलाकर उस के हाथ म एक मूगे की अँगूठी पहना दी जाय।

माँ ने जौहरी का उस के काम के दाम तो दिये ही, साथ म पुण्य के नाम पर उस से मिन्नत भी की कि वह परखकर सच्चा पत्थर दे, ताकि उस के असर म कोई कोर-कसर न रह जाये। और जब लाख के रग का मूगा सोने के तार म लिपटा हुआ घर आ गया तो वेनू की मा न किसी के हाथ वेनू के पास भेजने को

जगह वेनू का ही बुलवा लिया।

माँ वेनू की लापरवाह तबीयत को जानती थी, और उसे भरोसा नही था कि आखो से दूर बैठी वेनू उस विधि के अनुसार मूगे को धारण करेगी जो पाधा ने बतायी थी। इस लिए अपनी आँखो के सामने वह वेनू को अँगूठी पहनाना चाहती थी।

वेनू आयी। मगलवार मे अभी पूरे तीन दिन बाकी थे। मा ने घर के एक चबूतरे को लीप पोतकर स्वच्छ किया, और वेनू के मन मे श्रद्धा जगाने के लिए, जसे पाधा न बताया था, उसे समझाती रही—"मगल किसी स्थान पर अडचन डाल रहा है, पर इस पत्थर मे बल होता है, यह पति की रक्षा भी करता है और इस से जो मुराद माँगो, वह भी देता है"

वेनू चुप सुनती रही। पहले दो दिन तो एक कान से सुनती और दूसरे कान से बाहर निकालती रही, पर फिर शायद सारे आडम्बर का कोई एक पक्ष उस के मन मे घर कर गया, वह मा के उत्साह के साथ अपना उत्साह मिलाकर सोमवार की रात को सोते हुए भी मगलवार की प्रतीक्षा करने लगी।

मगलवार की लौ के साथ ही वेनू जाग उठी। उस ने भरी गागर से सिर से पैर तक स्नान किया, और गीले बालो को निचोडते हुए, कोरी धोती लपेटकर, उस चबूतरे पर एक साधुनी की भाति बैठ गयी।

माँ ने एक कटोरी मे दूध डाला, एक कटोरी मे पानी, दोनो कटोरियाँ वेनू के आगे रखकर रेशमी रूमाल के किनारे म लपेटी हुई मूगे की अगूठी सामने रख दी। पास ही एक कटोरी मे धूप जलाकर रख दी।

वेनू ने जसे मा ने कहा वसे ही पहले मूगे की अगूठी को दूध म धोया, फिर पानी म। और इस तरह सात बार दूध और पानी म धोकर, धूप के धुए से अँगूठी को छुआकर, उसे उँगली मे पहनने से पहले, आखें ब द करके अपनी म नत मागी।

पर कोई नही जानता—वेनू ने क्या माँगा

मा ने कहा था—पति की कुशल-याचना करके अपने लिए पुत्र का दान माँगना'

पर वेनू ने ब द, फडकते हुए होठा से दैवी शक्ति को सम्बोधन किया और कहा, 'जिस पहले दिन से जिस रूप मे माना था केवल वह ही मेरे लिए उसी रूप मे है, चाहे मुह से कहने के लिए अब मेरी जीभ कटी हुई है पर ए मेरे ईश्वर! तुझे मेरी कटी हुई जीभ का वास्ता है, च दन भले ही पराया हो जाय किसी का भी पति बने, पर वह जीता रह" और वेनू ने दूध और पानी स और धूप के धुएं से पवित्र की हुई अगूठी दाहिने हाथ की तीसरी उँगली म पहन ली।

मन के बोल साबुत थे, पर किस्मत के उतार-चढ़ाव के साथ वेनू के हाथ की उँगली काँप रही थी।

न वेनू की माँ ने कुछ जाना, न संसार के और किसी व्यक्ति ने, कि वेनू का चन्दन से क्या रिश्ता था और आज उस ने अपने लिए क्या माँगा था।



सब जानते हैं—ठाकुर पृथ्वीसिंह ने अपने बाकी सरकारी बांड भी रुपये में चार आने के हिसाब से बेच दिये थे और चन्दनसिंह के मुक़दमे की अपील के लिए कुछ पैसा हाथ में कर लिया था।

मलखानसिंह ने सिर्फ़ गेरुए रंग के कपड़े ही पहनना नहीं शुरू कर दिया था, वह तन मन से त्यागी हो गया था। रामपुर वाली कोठी भले ही शहर के बहुत ही निर्जन स्थल में थी पर संगीत के रसिया प्रभात के उजाले के समय उस कोठी के आसपास चक्कर लगाया करते थे। कानों में पड़ी मलखान के तानपूरे की आवाज़ दिमाग़ में झंकार छेड़ देती थी, और इस के साथ ही भजनों के बोल 'करमन की गति न्यारी रे साधो! करमन की गति न्यारी...' मानो आत्मा में रस बरसाते थे।

और इन्हीं दिनों एक घटना हो गयी थी—चौधरी भूपसिंह चन्दनसिंह की फाँसी का हुक्म सुनकर रोज़ ख़ुशी में बेहिसाब शराब पी रहा था। उस ने जिगर की पीड़ा से जो चारपाई पकड़ी तो फिर उस से न उठा।

दतिया के शिवचरन ठाकुर ख़ुद चलकर ठाकुर पृथ्वीसिंह के पास आ गये थे और पहले वकील से मिलकर उन्होंने सिर्फ़ रहम की अपील ही नहीं की थी, मुक़दमे की दोबारा सुनवाई का हुक्म भी ले लिया था।

हादसे की तफ़सील वही थी, पुरानी, लेकिन गाँव के गवाहों के सिर से चौधरी भूपसिंह का भय उतर जाने के कारण सारी बात का रंग ही बदल गया। पहले मुक़दमे में इतना भी साबित नहीं हो सका था कि चौधरी भूपसिंह के भेजे

हुए आदमी ठाकुर पृथ्वीसिंह के कत्ल के लिए खुद उस की गढी म आये थे। बल्कि उलटा दाप लगा था कि ये पाचा तो गढी के बाहर एक पड के नीचे बटे सुस्ता रहे थे कि शिकार से लौटे हुए चन्दनसिंह ने दोनो घरा की पुरानी दुश्मनी निकालने का मौका ताडकर बन्दूक चला दी

और सरकार के दरबार म, जहा पहले ठाकुर पथ्वीसिंह की पहुँच नही हो रही थी, वहा से जब चौधरी भूपसिंह का जादू उतर गया तो व बन्द दरवाजे हाथ लगात ही खुलने लगे

ठाकुर पृथ्वीसिंह के पास आज एक का सन्देशा पहुँचा तो कल दूसरे का 'जी, हम पुराने दिन कभी भूल सकते है ? हम ने तो आप की गढी म अपनी मुसीबत के दिन बिताये है '

और अब जब मुकदमे की सुनवाई फिर शुरू हुई तो गवाहिया बदल गयी थी। पुराने गवाह सरकारी खाफ से कुछ तो गाव ही छोड गये थे, कछ समय बिताने के लिए दूर इलाको मे चले गय थे। पर एक-दो ऐसे भी थे जिन्होंन कचहरी मे साफ कह दिया था कि उन्हे भूपसिंह से जान का खतरा था इस लिए उन्होने झूठी गवाहिया दी थी, और वे लोग जो पहले न सच बोल सकते थे, न झूठ, अब नितर-कर आगे आ गये

फिर गिनती की पेशिया हुइ, और चन्दनसिंह सारे मामले मे निर्दोष साबित हो गया। फासी का हुकम रद्द कर दिया गया। केवल एक दोष उसपर लगता था —कि वह फरार क्या हुआ। इस के लिए उस को तीन बरस की कद की सजा सुनायी गयी।



पर कोई नही जानता—दूर शहर मे जिस समय चन्दनसिंह के मुकदमे की सुनवाई हो रही थी, और जिस समय फाँसी के रस्से की भयानक कल्पना उस के गले से उतर रही थी, उस समय बेनू को घर के बराबर वाले मन्दिर के कलश

पन्ने शखचील बैठी हुई दिखाई दी

और वेनू के मन मे शखचील के सफेद पखो के समान एक विश्वास उत्पन्न हुआ कि जिस तरह एक दिन किसी शक्ति ने ब्रह्मा के मानस-पुत्रो की आवाज़ सुनी थी, उसी तरह उस ने आज के मानस पुत्रो की आवाज़ भी सुन ली है

और वेनू अपने अन्दर स उत्पन्न हुए विश्वास जसी हो गयी—"शिव शक्ति! उस ने कभी मेरा नाम सखचील रखा था। कहता था, 'सफर पर जाओ तो सख चील को देखना शगुन होता है 'दखो, उस का सफर कितना लम्बा हो गया मैं उस की सखचील हूँ। मेरे नाम मे मेरा गुण भर दो उस ने मेरा मुह देख कर राह पकडी थी उसे कुछ नही हो सकता वह बच जायगा मेरा दिल कहता है ।'

और वेनू को लगा—मानस पुत्रो के विश्वास इतन उन की छाती म उत्पन्न नही होते जितन प्रार्थना म जुडे उन के हाथा से।

बरसो हो गय थे—वेनू के लिए एक ऐसा अँधेरा पसरा हुआ था जिस म कुछ भी दिखाई नही देता था

चन्दनसिंह तो दिखता ही नही था, वेनू को अपना आप भी दिखाई नही देता था

रोज़ आने जाने वाला सूरज भी अँधेरे को नही चीर पाता था

वेनू कभी बैठती तो सोचती—यह कसा अँधेरा है? शरीर के मास की तरह शरीर से चिपटा हुआ भीतर की हड्डियो पर लिपा हुआ

मास तो मल मलकर धोया जा सकता है, गहरे साँवल रग भी कभी दप दप चमकते है पर अँधेरा

अँधेरे को धो सकने के लिए कुछ भी नही होता मन की लौ भी अधेरे को नही छू पाती

कभी कभी वेनू को लगता—यह चन्दनसिंह की जेल की कोठरी का अँधरा है, जो सारी दुनिया मे फैल गया है

जसे खटाइ का एक छोटा दूध के भरे हुए पतीले का जून बदल देता है वेनू सोचती—सूरज की सारी रोशनी को अँधेरे का जामन लग गया

पर उस रात को मन की लगी ने, वेनू की आखो क सामने, एक जादू-सा बिछा दिया

चन्दनसिंह कोसो का रास्ता तय करके वेनू के सपने म आया

वही हरफूरी गाव था, जिस की परती भूमि म वेनू भागती हुई जा रही थी , परो का सारा जोर लगाकर राहो को पहचानती थी पर फिर भी बावली सी रास्ता निबेडने म लगी हुई थी और रास्ता खत्म होने म नही आ रहा था

वह जो भी रास्ता तय करती, वही फिर उस के परो के आगे आ जाता

और फिर हँसती हुई बेनू को सूने रास्ते पर एक चरवाहा लडका गाय का दूध दुहता दिखाई दिया

वेन न पूछा कुछ नही, पर चरवाहे के लडके न वायें हाथ मुडने वाली पगडण्डी की ओर हाथ से इशारा किया जो पत्तो से लदे चिलोर के पेड के पास से घमकर न जाने कहा चली जाती थी

और वनू उस पगडण्डी पर मुड गयी

और फिर अचानक सामने वह तालाब वाला आमो का बागीचा आ गया जिसे वह चिरकाल से पहचानती थी

बेनू न आम के पहले दिखाई देने वाले पेड को हाथ लगाते हुए लम्बी साँस ली, आर फिर पल्ले की किनारी से माथे पर बहती हुई पसीने की धार पोछकर तालाव की ओर चल दी

और तालाब के किनारे च दनसिह खडा हुआ था

वही लाज, जो च दनसिह को देखकर वेनू को पहले दिन आयी थी, आज भी आयी—पर च दनसिह ने बाह आगे वढाकर वेनू को अपने क धे से लगा लिया

आज तक वेनू ने उस से वात करके नही देखा था, अब भी न बोला गया

च दनसिह ही बोला, "मैं ने कहा, तुम इ तजार कर रही होगी, पहले तुम से मिल लू "

और च दनसिह ने वेनू का धीरज वँधाने के लिए उस की पीठ पर हाथ फेरा

बेनू ने आँखें उठाकर पहले च दनसिह की ओर देखा फिर तालाव के पानी की ओर, और वहा सचमुच दो परछाइयाँ तर रही थी

और वनू ख ुशी से वावली हो गयी। उस ने आज तक च दनसिह का हाथ नही पकडा था, पर अव वह उस का हाथ पकडकर चलने लगी न जाने कहाँ जान के लिए

पर च दनसिह के पाँव वही के वही थे—वे हिलत नही थे—और वेनू ने घबराकर उस के परो की ओर देखा—परा म लाह की बेडियाँ पडी हुई था

और एक चीख के साथ वेनू की नीद टूट गयी

जाग गयी, तो वेनू की बरसा की सूनी आखा म बडे-बडे आँसू भरे हुए थे

हप और शोक दोनो मिल गये

लगा—च दनसिह क सिर से फाँसी की सजा टल गयी थी, पर लाहे की वेडियाँ अभी भी उस के परो म थी

सोचने लगी वह, जब उस का बस चला, सब से पहले उस से ही मिलने आया पर वे, दो कदम भी मिलकर धरती पर न चल सके सपने म भी नहीं

और उस रात वेनू ने, एक ही छाती म, हर्ष और शोक दोनो सँभाल लिये



सब जानते है—च दनसिंह को जब फांसी की जगह तीन बरस की कद की सजा सुनायी गयी, उस के पिता और भाई की आंखो की बुझती हुई ज्योति दीयो की तरह जलने लगी

मलखानसिंह के मुह पर तो एक सुनहली लौ फिर गयी। उस ने कचहरी के दरवाजे पर ही मस्ती म आकर बांहे तान ली और उस के होंठ कितनी ही देर तक फडकते रहे "अजब तेरी लीला, अजब तेरी माया "

ठकुराइन मा ने ऐसे काले अधकारपूर्ण दिन देखे थे कि आज का उजाला दिन देखते हुए डर रही थी। सामन दिखाई दे रहा चन्दन का मुह कभी सपने जसा लगता कभी सच जसा। अपनी किस्मत पर से जसे उसे विश्वास उठ गया था। उस न पास बठी हुई त्रिवेनी का मुह माथा चूम लिया। उस के मुह स निकला, 'तेरी किस्मत अच्छी है न इसी लिए इसी लिए "

त्रिवेनी से आज अपनी आखो को झपका नहीं जा रहा था। भरी कचहरी म वह च दनसिंह क मुह की ओर एस ताकती रही थी मानो वह कोई अलौकिक मनुष्य हो

पिछल दो बरसा म जो कुछ हुआ-बीता था, त्रिवेनी के मन पर उस दस बरस चढा गया था

आज कचहरी म बठी त्रिवनी को आस बँधी हुई थी कि च दनसिंह छूट जायेगा इस लिए च दनसिंह के छोटे छोटे कितने ही रूप उस के मन म उतारी हुई

अलग-अलग तस्वीरो की भांति दिखाई देने लगे

एक रूप था—एक शाम घर का बाहर का दरवाजा ब द करते हुए मा के हाथ से कुडी छुडवाकर हाथ म पिस्तौल ताने हुए च दनसिंह का जबर्दस्ती उन के घर आ जाना और उस बच्ची सी के आगे पिस्तौल तानकर खडे हो जाना—और डरती हुई माँ के पास स जबदस्ती रोटी मागकर खान लगना

उस समय त्रिवेनी यू तो प द्रह बरस की थी, पर मन से बच्ची ही थी। उसे च दनसिंह का हाथ म पिस्तौल लिय देखकर न रोना आया था, न डर लगा था —शायद इस लिए कि च दनसिंह इतना सु दर था कि त्रिवेनी की सुनी सुनायी चोर-डाकुओ की कहानियो वाल चेहरो से उस का चेहरा नही मिलता था।

और फिर वह रूप था—जिस दिन वह डर से चीख उठी थी, वह सिपाही उस के पहने हुए कपडे फाडकर उतार रहा था और दरवाजे के तख्ते तोडकर च दनसिंह एक देव की भांति आया था—कितना बहादुर ईश्वर के सहारे के समान

और अब एक वह रूप था—जो उस ने देखा नही था पर जिस की अपने मन मे कल्पना करके वह रोज चकित होती थी रानियो जसी ठकुराइन मा जब कहती थी कि वह त्रिवेनी का च दनसिंह से ब्याह कर देगी तो त्रिवेनी कितनी ही देर छिपकर शीशे म देखती रहती थी, और उसे शीश म सिफ अपना मुह ही नही दिखाई देता था—च दनसिंह का भी दिखाई देता था सहरे वाला मुह

आज जब कचहरी से उठत हुए ठकुराइन मा न उस का मुह-सिर चूम लिया, उसे सारी दुनिया कुछ और ही दिखाई देने लगी

और फिर सब जानते है—च दनसिंह की कैद शुरू होने के समय ठाकुर पृथ्वीसिंह ने दरखास्त देकर सिफ पाच दिन के लिए च दनसिंह को मागा उस का ब्याह करने के लिए

न जात, न बिरादरी, न नाच, न नटनिया, न दरवाज पर हलवाई, न कनाते, सिफ अ दरखाने देवताओ की साक्षी करके, एक छोटी सी रस्म पूरी करन के लिए

च दनसिंह पुलिस की ब द गाडी म पाच दिन के लिए मेहमान बनकर घर आया

घर के बडे कमरे म बडी दरी और उस के ऊपर सफेद चादरे बिछी हुई थी थोडे से गोल तकिये थे, और दीवारो पर पुराने विरस की बाप दादा की कुछ तस्वीरें। एक तस्वीर हाथ में ब दूक लिये और घोडे पर चढे हुए च दनसिंह की थी।

डयोढी म खडे होकर ठकुराइन मा ने घर की दहलीज पार कर रहे च दन-

सिंह के माथे पर तिलक लगाया और उस के ऊपर से पानी वारा और फिर गंगा माँ ने आगे होकर चन्दनसिंह का माथा चूमा

कमरे में आते हुए चन्दनसिंह की नज़र दीवार पर लगी हुई अपनी तस्वीर पर पड़ी तो उसे लगा—जैसे वह अपने पिछले जन्म की तस्वीर देख रहा हो

मलखानसिंह के कमरे के कोने में तानपूरा रखा हुआ था। उस ने एक बार चन्दनसिंह को गले से लगाया, फिर तानपूरे पर भजन छेड़ा, "गाओ सखि, गाओ मंगलचार मोर घर आये राम भरतार "

ठाकुर पृथ्वीसिंह आज जीविता में लौट आये थे। पुराने दिनों का गुमान चूर हो चुका था। चन्दनसिंह ने जब अपने पिता के पाँव छुए, उन्होंने उसे गले से लगा लिया। दोनों वकीलों को भी बेटों के समान गले से लगाया, और चन्दनसिंह के साथ जो दो सिपाही आये थे उन्हें भी हाथ जोड़कर नमस्कार करके अन्दर कमरे में बिठाया

बस दो वकील और दो सिपाही, चन्दनसिंह की यही बरात थी

भजन के बाद कमरे में चाय और मिठाई आयी तो उस समय चन्दनसिंह ने शिवचरन ठाकुर से पूछा, "आपको सिर्फ़ आज पहली बार देखा है, मुकदमे के शुरू के दिनों में तो आप नहीं थे "

शिवचरन ठाकुर ने सकोच से कहा, 'मैं यहाँ का वकील नहीं हूँ, दतिया का हूँ "

"बप्पा ने आप को दतिया से बुलाया ?"

'मैं खुद आया था, इस मुकदमे का हाल सुनकर "

चन्दनसिंह कुछ हैरान होकर शिवचरन की ओर देखने लगा।

शिवचरन को लगा—चन्दनसिंह को इस से अधिक बताना चाहिए, सो कहने लगा, "आप के हरकूरी गाँव में मेरी ससुराल है, इस लिए इस मुकदमे में मेरी दिलचस्पी थी '

चन्दनसिंह के मुँह पर से एक परछाईं सी गुज़र गयी

फिर एक चुप सी की छाया में से निकलकर चन्दनसिंह ने पूछा, 'हरकूरी गाँव वालों को मैं बहुत नहीं जानता पर आप के ससुर कौन-से ठाकुर हैं ?"

शिवचरन ठाकुर के लिए अब मुश्किल आ पड़ी थी। ज़रा देर चुप रहा—पर जवाब देना था, दिया, 'ठाकुर रघुबीरसिंह आप की रिश्तेदारी में ही हैं "

शिवचरन जानता था कि जवाब अधूरा था, इस से चन्दनसिंह की तसल्ली नहीं हुई थी, पर वह बात को आगे नहीं बढ़ा सकता था।

चन्दनसिंह ने ही ठहरकर पूछा, "ठाकुर रघुबीरसिंह को मैं नहीं जानता उन्होंने ही आप को मुकदमे के लिए भेजा ?'

"नही उन की लडकी ने मेरी घरवाली ने लौंगवती न " शिवचरन का इतना कहना ही पडा

चन्दनसिंह का सास भीतर गहरा हो चला

शिवचरन को तो कुछ कहना नही था, च दनसिंह भी न बोल सका

ठकुराइन माँ ने पिछले आगन मे चौकी टलवा दी और च दनसिंह के नहान के लिए पानी गम करके रखवा दिया।

रामपुर के लोग आज तक दतकथा सुनात है, चाहे किसी न जाकर आखो से नही देखा, घर की महरिया और नौकरो से ही सब कुछ सुना था, कि किस तरह मानिकपुर वाले ठाकुर पृथ्वीसिंह के कुँवर च दनसिंह का अलौकिक विवाह हुआ

अ दर के आगन म जब च दनसिंह को चौकी पर विठाया गया, उस के दोनो ओर, थाडी दूर पर, दो सिपाही खडे हुए थे और ठकुराइन ने उबटन का शगुन करने के बाद, साबुन की टिकिया और गम पानी उस के नहाने के लिए आगे रख दिया था

च दनसिंह का न घोडी पर चढना था, न दरवाज़े पर बरात जोडनी थी, सा नहा धोकर, मलमल की सफेद धोती और सिल्क का कुरता पहनकर, अ दर की बैठक मे आकर बैठ गया।

ठाकुर पृथ्वीसिंह ने दोनो वकीलो का सगे सम्बन्धियो के समान न्यौता दिया हुआ था, इस लिए व भी ब्याह की रस्म तक वहा रहे।

च दनसिंह ने कमरे के कोने मे गोल तकिये, और दीवार के साथ सहारा लगाकर जैसे थककर आखें ब द कर ली

बडे ठाकुर, ठकुराइन, और मलखान पास वाले छाटे कमरे मे पडित के साथ मँडवा गाड रहे थे, और हवन की सामग्री इकट्ठी कर रहे थे

चन्दनसिंह ने आखे खोलकर परे बैठे हुए शिवचरन की ओर देखा, फिर उस इशारे से अपन पास बुलाया

शिवचरन आकर पास बैठ गया, तब भी च दनसिंह कितनी ही दर तक कुछ न पूछ सका

फिर, मुश्किल से, उस ने पूछा, "लौंगवती अच्छी तरह है?'

शिवचरन न सिर से भी और जबान से भी मुश्किल से हाँ' कहा। वह जानता था—च दनसिंह क्या पूछना चाहता है, पर जो कुछ बतान याग्य था, वह बता नही सकता था

च दनसिंह बहुत देर तक चुप रहा, पर जिस ने बरसो की चुप सहार ली थी, इस समय उसे पलों की चुप सहारना कठिन हो गया।

और वह ?"—च दनसिंह ने जस कटी हुई जीभ स पूछा।

शिवचरन को लगा—बात की तरफ से बिलकुल अनजान बन जाना, न स्वाभाविक था, न सम्भव। धीरे से बोला, "वह भी ठीक है।"

चन्दनसिंह के मन में उलझन-सी पैदा हुई। उस ने कहा, "उस का तो ब्याह हो गया होगा? कब हुआ?"

शिवचरन को लगा—इस बात का पूछना और बताना शायद बहुत जरूरी था। शायद चन्दनसिंह को अपने विवाह के समय मन पर बोझ-सा महसूस हो रहा था। इस लिए शिवचरन ने संक्षेप में पर साफ-साफ कहा, "वह तो तभी तय हो गया था, जब गढी में कत्ल हुए थे"

इस के बाद चन्दनसिंह ने कुछ नहीं पूछा। आँखें बन्द करके गोल तकिये और दीवार का सहारा ले लिया।



सब जानते है—सिपाहियों के पहरे में हवन हुआ, गंगा ने त्रिवेनी का कन्यादान किया, और ठकुराइन ने बहू-बेटे के सिर पर वारफेर करके त्रिवेनी के पावों में बिछुए पहना दिये।

और चन्दनसिंह दरवाजे पर बैठे हुए सिपाहियों के पहरे में चार रातें त्रिवेनी के साथ बिताकर तीन बरस के लिए जेल चला गया।

फिर बरस के अन्दर अन्दर त्रिवेनी के पुत्र का जन्म हुआ, और छ महीने के बाद ठकुराइन अपने पोते की मन्नत चढाने के लिए, ठाकुर पृथ्वीसिंह के साथ गंगा स्नान करने चली गयी

पर कोई नहीं जानता—कि बेनू को भी एक मन्नत चढानी थी। लोगवती और शिवचरन से उसे सब कुछ पता चलता रहता था। ठाकुर और ठकुराइन के तीर्थयात्रा पर जाने का जब उसे पता चला, तो वह रामपुर के बडे डाक्टर से इलाज करवाने के बहाने रामपुर आयी

गंगा रसोई में थी, त्रिवेनी अपने बेटे को बाहर के बगीचे में खिला रही थी,

जहां आजकल ककैना बेतहाशा खिला हुआ था।

वेनू बडी ताव से आयी। सारा घर द्वार, बाग बगीचा, दीवार-चौखट, शिव-चरन की आखा से वह ऐसे देख चुकी थी कि उसे सब कुछ जाना-पहचाना सा लगा।

त्रिवेनी भी पहचानी हुई लगी, जिसे न जान वह च दर्नासिह की आखे बनकर कितनी ही बार दख चुकी थी।

पर त्रिवेनी के लिए वेनू अजनबी थी।

वसे वेनू का चेहरा, उस का पहनावा, उस की बोलचाल, ऐसी ताव वाली थी कि त्रिवेनी ने आदर से हाथ जाडे, और उस अन्दर कमरे म ल गयी।

"ठकुराइन मां तीथ करने गयी हुई है," त्रिवेनी न झिझककर कहा। उसे न ठाकुरो के घर-घरान के बारे म कुछ मालूम था, न दूर पास की रिश्तेदारी के बारे मे। इस ठाकुर घराने की रही-सही अमीरी भी त्रिवेनी की आखो को चाधियान के लिए काफी थी। ठकुराइन मा का इतना रोब था कि त्रिवेनी को अपना आप नगण्य प्रतीत होता था, इस लिए वह बीते समय की बाते उत्साहपूवक कभी नही पूछती थी। ठकुराइन कभी रौ म आकर जा खुद सुनाती थी, वही सुन लेती थी।

वेनू न आंख भरकर बच्चे को देखा तो ममा की एक लहर जैसे उस की छाती को छू गयी। वेनू ने त्रिवेनी की गोद से जिस समय बच्चे को अपनी गोद म लिया, त्रिवेनी खुश हो गयी। उस के मन म आया—कितनी अमीर ठकुराइनें मेरे बेटे को गोद मे लेकर बठती है

त्रिवेनी भले ही चन्दर्नासिह की ब्याहता स्त्री थी, पर चन्दनसिह को उस ने जिस दशा म देखा था, बस, उतनी ही जानती थी और वही उस के लिए बहुत था।

वेनू को बच्चे का प्यार करते देखकर त्रिवेनी गव से बोली, "आपन बीबी! इस के पिता का नही देखा है, यह उन जितना सुन्दर नही है।"

आर वेनू न बच्चे का गले लगाकर एक पल के लिए पलके मद ली।

त्रिवेनी के घर वसे भी कभी काइ मेहमान नही आया था और अब ठकुराइन की अनुपस्थिति म जो आया तो त्रिवेनी को पहली बार घर की मालकिन होने का एहसास हुआ। चाय पानी लाने के लिए उठने लगी तो वेनू न उस का हाथ पकड कर पास बिठा लिया।

त्रिवेनी क्या बात करे उसे कुछ सूझ नही रहा था। दीवार की आर देखते हुए उसे चन्दर्नासिह की वह तस्वीर दिखाई दी जिस मे वह हाथ मे बन्दूक लिय घोडे पर चढा हुआ था, सा त्रिवेनी उसी की ओर इशारा करते हुए वेनू को बताने लगी, "वह देखा बीबी! इस के पिता की तस्वीर!"

और कमरे म वही पल लौट आया जब खुद चन्दर्नासिह को अपनी तस्वीर

देखकर लगा था मानो वह अपनी पूर्वजन्म की तस्वीर देख रहा हो। और अब वेनू को लगा जैसे वह अपने पहले जन्म में देखे हुए चन्दर्नसिंह को देख रही हो।

"सच में वह बहादुर भी बड़े हैं " त्रिवेनी ने गर्व से कहा।

वेनू हँस सी दी। उस ने शिवचरन की जबानी सुन रखा था कि चन्दर्नसिंह ने फरार होने के समय, पीछे लगी पुलिस से बचने के लिए जिस घर में शरण ली थी वह त्रिवेनी का और उस की माँ का घर था। और वह सारी छोटी छोटी बातें भी सुन रखी थी कि कैसे चन्दर्नसिंह ने लड़की के आगे पिस्तौल तानकर माँ को शोर मचाने से रोका था।

पर त्रिवेनी का मान रखने के लिए, वह त्रिवेनी के मुँह से सुनना चाहती थी। कहने लगी, ' गाँव में हम ने बातें तो सुनी थी कि उन्होंने तुम्हें पिस्तौल से किस तरह डराया था "

त्रिवेनी हँसते-हँसते दुहरी हो गयी, कहने लगी, "मैं तो नहीं डरी थी, पर माँ डर गयी थी मैं उसे डरती ? वह पिस्तौल तानकर माँ से रोटी माँगने लगे और वहीं खड़े होकर खाने लगे "

रसोई से गंगा की आवाज़ आयी, "बेटी, बबुआ के लिए दूध ले जा "

"आयी माँ ! ' कहकर त्रिवेनी रसोई की ओर चली गयी।

वेनू बच्चे के पास अकेली कमरे में रह गयी तो उस ने एक बार बच्चे को कसकर कलेजे से लगाया और चूमा, फिर अन्दर की कुरती में रखा हुआ सोने का तावीज़ निकालकर, पहले उसे अपने माथे से लगाया, फिर बच्चे के गले में डाल दिया।

दूध की बोतल लेकर जिस समय त्रिवेनी कमरे में आयी, उस के साथ गंगा भी थी।

गंगा ने हाथ जोड़े और कहा, 'बीबी ! आप का स्वागत है। खाना बिलकुल तयार है। उठिये हाथ धो लीजिये।"

वेनू की आँखों में कुछ पानी-सा आ गया था, उसे छुपाते हुए बोली, "नहीं, मैं ठीक नहीं हूँ, मुझे खाना मना है, एक गिलास पानी दे दीजिये।'

गंगा पानी लेने चली गयी और त्रिवेनी बच्चे को दूध देने के लिए जिस समय वेनू की गोद में से बच्चे को उठाने लगी तो बच्चे के गले में पड़े हुए तावीज़ पर उस की नजर पड़ी। त्रिवेनी के पूछने से पहले ही वेनू ने कहा, यह तावीज़ इस के पिता का है, उस समय अफरा-तफरी में उन के गले से निकलकर गिर गया था। बाद में किसी को मिला, वही देने आयी हूँ।" और वेनू ने हाँफती सी अपनी साँस को ठहराने के लिए सिर झुकाकर फिर एक बार बच्चे को प्यार किया और कहा, "यह इन के कुल का तावीज़ है, बच्चे की रक्षा करेगा '

त्रिवेनी खुश भी थी, हैरान भी। बच्चे को गोद में लेते हुए उस ने पूछा,

"बीबी ! आपने मुझे अपना नाम नहीं बताया, मैं उन्हें क्या बताऊँगी ?"

बेनू की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, कि गमा पानी का गिलास लेकर आ गयी, साथ ही त्रिवेनी से कहने लगी, 'तू लड़के को दूध देकर खुद जायेगी, या मैं तेरे जेठजी का खाना दे आऊँ ?"

"मैं इन के पास बैठी हूँ, तुम जाकर दे आओ। थाली ढँककर ले जाना।" त्रिवेनी ने माँ से कहा, और फिर बेनू से कहने लगी—"मेरे जेठजी निरे साधु हैं, सारे दिन भजन और पाठ करते रहते हैं। पिछवाड़े के बगीचे में उन्होंने अलग कोठरी बनवा ली है—इधर कभी कभार ही आते हैं। बस कभी बबुआ को खिलाने के लिए ले जाते हैं।"

फिर बेनू कुछ देर बाद उठकर जाने लगी तो त्रिवेनी ने हाथ जोड़कर उस के पैरों की ओर नमस्कार करते हुए एक बार फिर पूछा, 'बीबी ! आपने नाम नहीं बताया, सासूजी को क्या बताऊँगी ?"

बेनू ने एक बार हँसकर बात टाली, "तुम्हारी सासूजी सारी रिआया का कहाँ जानती हैं। मेरा नाम तो उन्होंने कभी सुना ही नहीं होगा।"

पर साथ ही बेनू के मन में एक चीस सी उठी, जाते हुए निचले होंठ को दाँतों तले दबाकर बोली, 'मुझे लोग प्यार से सखचील पुकारते थे।"

त्रिवेनी ने शायद 'थे' शब्द की ओर ध्यान नहीं दिया, वह बच्चे के गले में पड़े हुए सोने के तावीज़ की ओर देखने लगी।

सब जानते हैं—पन्द्रह अगस्त के दिन देश की आज़ादी की खुशी में कुछ कैदी रिहा कर दिए जाते हैं।

चन्दनसिंह को पन्द्रह अगस्त के दिन जब जेल से रिहाई मिली, उस की कैद की मियाद एक बरस दो महीने और बाईस दिन बाकी थी।

वह पाँच दिन की मोहलत के बाद जब जेल गया था, ब्याह के शगुन वाले कपड़े पहने हुए था, जो जेल में जमा थे। रिहाई के समय वही कपड़े उसे मिल गये थे, और ठाकुर पृथ्वीसिंह और मलखानसिंह जिस समय उसे लेकर घर आये, तो लगता था मानो चन्दनसिंह का अभी-अभी ब्याह हुआ है, और उस की रेशमी कमीज़ पर गेंदे के फूलों के निशान शगुनों के टेहलों की गवाही दे रहे हैं।

आज मुद्दतों बाद पहला दिन था जब चन्दनसिंह के गिर्द या उस के घर के गिर्द सिपाहियों की वर्दी दिखाई नहीं दे रही थी, और घर आज पहली बार घर मालूम हो रहा था।

सास और माँ ने आगे बढ़कर चन्दनसिंह को गले से लगाया। त्रिवेनी एक बार प्रणाम करने के लिए आगे बढ़ी, फिर लाज से सकुचाकर पीछे के कमरे में चली गयी। कमरे के भीतर नहीं गयी, दरवाज़े की ओट में खड़ी होकर चन्दनसिंह

को देखती रही।

चन्दन ने उसे सँध म से देखते हुए देखा तो धीरे से हँस पडा।

त्रिवेनी यू ता ठाकुर पथ्वीसिह की वहू थी, लेकिन उस अभी तक सब कुछ रग बिरगे सपने की तरह लगता था वेटा भी सपन म जन्मा लगता था

ठकुराइन ने गमा को इशारा किया और वह बराबर के कमरे स चन्दनसिह के बेटे को उठा लायी जो उस समय सो रहा था, और ठकुराइन न अपने हाथो स उठाकर बच्चे को चन्दनसिह की गोद म दे दिया।

चन्दनसिह की निगाह बेटे के मुह पर पडी, पर साथ ही उस के गले म पडे हुए तावीज पर भी पडी, और वह हैरान-सी आखो स अपनी माँ क मुह की ओर देखने लगा

ठकुराइन भी बतान-पूछने को बेचन थी। कहन लगी, "देख न चन्दन! यह तो वही तावीज है जो मैं न अपन हाथो से तुझे पहनाया था।"

चन्दनसिह न तावीज को हाथ म उल्टा सीधा करके देखा, पर कुछ बताने की जगह मा से पूछा, "पहचानो तो सही, वही है?"

"ला, मैं भला पहचानती नही?'

चन्दनसिह ने भी धीरे से कहा, 'वही मालूम होता है "

मा उस समय से हैरान थी जब से यह तावीज मिला था। पूछने लगी, "तुझे याद है या नही—यह कब तेरे गले से गिरा था कहाँ गिरा था?"

चन्दनसिह न 'पता नही' म हाथ हिलाया, पर मुह से कुछ नही कहा।

माँ ही बताने लगी "तुम जानत हो, कस मिला?—मैं तो हरिद्वार गयी हुई थी, इस की मनौती देन क लिए, पीछे घर म कोई औरत आयी थी। न जाने कौन थी! वही आकर लडके के गले म डाल गयी थी साथ ही यह भी कह गयी थी बहू से कि यह तुम्हार कुल का तावीज है, यह बच्चे की रक्षा करेगा "

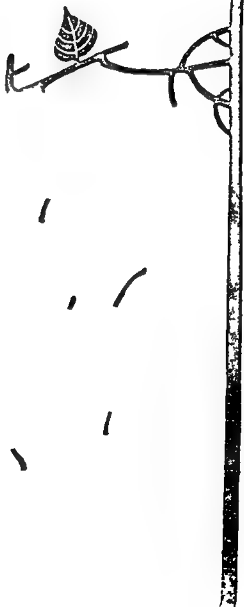
और माँ न खुशी और आश्चय से कहा, 'न जाने कौन थी उसे कहा मिला पर ईश्वर उस का भला करे "

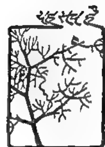
और कोई नही जानता—जब चन्दनसिह ने बच्चे को कसकर अपन कलेजे से लगाया बच्चे के गले मे पडा हुआ तावीज चन्दनसिह के दिल की तरह धडकन लगा

यह गहरी रात की बात है—जब सब सो गये, और त्रिवेनी चन्दनसिह के लिए दूध का गिलास लेकर उस की चारपाई के पास आयी तो चन्दनसिह न त्रिवनी की बाह पकडकर उस का हालचाल पूछते हुए यह भी पूछा—'वेनी! यह तावीज़ देन जो औरत आयी थी, वह कौन थी?"

"वडी ही अच्छी थी, वडी ही सुन्दर ' त्रिवेनी सब कुछ वडे चाव से बताने

यह सचल है





यह सच है

उस के अनुमान से अभी रात थी

पानी के किनारे पर उगी हुई झाडी मे उस ने अपनी सिकोडी हुई टांगो को सीधा किया और परो के बल खडा हुआ तो उसे झाडी के ऊपरी सिर के गुच्छेदार फूल अपनी गरदन को छूते हुए लगे

पर जब वह लम्बे डग भरता झाडी से निकलकर पानी के किनारे पर आया तो पानी म पडने वाली उस की परछाइ उस के दिल को हिला गयी

नियरे, खडे हुए पानी म उस की पूरी आकृति प्रतिबिम्बित थी —लम्बी-पतली टांगें, छाती की हलकी दूधिया परछाइ और दोनो पहलुओ मे लगे हुए अखरोटी रग के पखो का गहरा साया, और माथे के पास सिर पर पहने हुए ताज के समान बडे चमकदार नीले पखो का गहरा रग और लम्बी पतली चोच का अकडाव और आखो के गिर्द लाल सुर्ख घेरे

सो यह रात नही थी, दिन चढने वाला था, तभी तो उस का प्रतिबिम्ब इतना स्पष्ट दिखाई दे रहा था

और दिन चढने के खयाल से एक प्रकार के भय का एक ऐसा कम्पन उस के शरीर से गुजर गया कि खडे हुए जल मे भी उस का साया काप गया।

उस ने जल्दी से चोंच को पानी मे डुबाकर एक लम्बी घूट भरी। उस के सूखे हुए गले का जब पानी की त ावट मिली, उस ने अपनी प्यास की ओर से ध्यान हटाकर, दूर तक एक भयभीत दृष्टि डाली, और फिर जल्दी से लम्बे डग भरता हुआ पानी के किनारे उगी हुई चाडो म जाकर छिप गया।

सरकण्डो की यह झाडी पतली सी थी, जिस को दरखो को रात का अँधेरा तो मिटा देता था, पर दिन की रोशनी उन्ह चौडा सा करती हुई लगती थी, जिस के कारण वह अपने शरीर को छिपाकर भी निश्चि त नही था

और सरकण्डो की यह चाडी ऊँची भी नही थी। वह जब बठ जाता था, तब कही उसे कुछ ढकती थी पर जब वह खडा हाता था, तो बस उस की गरदन तक आती थी। उस ने अपन शरीर को मानो अपने शरीर मे ही समेट लिया, और फिर जल्दी से सरकण्डे के पत्तो को अपनी चाच म लेकर ऊपर खीचने लगा।

शरीर की पूरी शक्ति से जब उस ने पत्तो को ऊपर खीचकर अपने शरीर को ढकने की कोशिश की तो उस के हाँफने के कारण उस की नीद टूट गयी।

बिस्तर की चादर को वह नीद मे न जाने कितनी देर तक खीचता रहा था कि उसे लगा, कि वह चादर पायती की ओर से कुछ फट गयी है।

उस ने पलग के पास ही लगे हुए बिजली के बटन को दबाया और हैरान होकर अपने कमरे को देखा।

वही रोज की तरह सजा हुआ कमरा था, वही लकडी के बारीक काम की पीठ वाला पलग, और वही वह

अजीब सपना आया था कि आज वह तप्त रेखा म पैदा होने वाला पछी बन गया था, जो दिन भर, रोशनी से डरते हुए, पानी के किनारे की झाग्नी म छिप-कर रहता है और सिफ रात के घन अँधेरे म झाडी से बाहर निकलता है।

उस अपना गला उसी तरह सूखता हुआ लगा, जसे अभी अभी नीद म पानी के किनारे खडे हुए अपनी लम्बी चाच स लम्बे घूट भरकर पानी पीते समय लगा था।

पलग के पास ही छोटी मेज पर रखी हुई काच की सुराही म से उस न पानी के कितन ही घूट भरे, और फिर, अभी देखे हुए अपने सपने के बारे म सोचने लगा।

सहज स्वभाववश उस का हाथ अपनी छाती की ओर भी गया और बाँहो की ओर भी—जस अभी उस के सारे पख झड गये हो और वह एक पछी स बदलकर सिफ एक आदमी रह गया हो।

पख नही थ, पर पछी के मन का डर इस समय भी उस के मन म था। और यो तो अभी रात थी, दिन का उजाला नही हुआ था, कमरे को मसनुई रोशनी स भी चौंककर वह कमरे की दीवारो की ओर देखन लगा।

एक दीवार से लगी हुई किताबो की अलमारी थी। उस की भटकनी हुई दृष्टि जब किताबो की ओर गयी, उसे याद नाया कि कल उस ने एक आस्ट्रेलियन आर्टिस्ट की एक किताब पढी थी—'द ड्रीम टाइम बुक' आर उसी किताब म तप्त रेखा म पदा होने वाले उस 'रात के पक्षी' की तस्वीर देखी थी, जो दिन भर पानी के किनारे पर सरकण्डो म छिपकर रहता है, और जब उसे वे सरकण्डे अपने कद से छोटे जान पडते है, वह चोच से उन के पत्तो को खीचता रहता है ताकि वे जल्दी से ऊँचे हो जाय।

उसे अपने सपने पर हँसी सी आ गयी और पलँग से उठकर उस ने अलमारी म से फिर वह किताब निकालकर देखी।

पर उस की हँसी उस के होठो के पास आकर भी पीछे होती हुई उस के गले मे अटक सी गयी, पर सपने म म वह पक्षी क्यो बन गया?

'शायद पिछले जन्म मे मै तप्त रेखा का पक्षी था।

'शायद अगले जन्म म मैं उस पक्षी की जून पाऊँगा।

'शायद इस जन्म म शरीर मनुष्य का, आत्मा उस पक्षी की ।

उस न एक गहरी सास ली, और आदिवासियो की उस कथा के सबध मे सोचने लगा जो 'रात के पक्षी' से सबधित है और जिस म वे कहते है कि वह पक्षी वास्तव मे एक मनुष्य था, जिसे उस के साथियो ने इतना सताया कि उस ने ईश्वर के आगे प्रार्थना कर करके अपन लिए एक पक्षी का रूप माग लिया। उस की प्राथना स्वीकार हो गयी और वह पक्षी बन गया, पर उस की छाती मे जो भय जमा हुआ था, उस के पक्षी बनने के बाद भी उस की छाती मे ही पडा रहा, और वह सदा के लिए दिन की रोशनी मे छिपकर रहने लगा।

'पर आदिवासियो की इस कथा का मुझ से क्या सबध?

'यह कथा मेरी छाती मे क्यो उतर गयी?

'केवल याद मे नही, रात के सपने म भी? '

जिन्दगी के थोडे से वर्षों ने कई सुख उस के दाये-बायें बिछाये थे, और दूर जहा तक उस की दृष्टि जाती थी, उसे सारा रास्ता मखमली रग का दिखाई देता था, पर आज वह चकित था कि वह कौन सा डर था, जो रात के समय उस सरकडो की झाडी मे छिपकर बठने के लिए कहता रहा था?

और रात के समय खडे हुए पानी म भी उस का प्रतिबिंब क्यो कापता रहता था?

उस ने किताब का वह पन्ना पलट दिया, जिस पर 'रात के पक्षी' का चित्र था और अगले पन्नो पर छपी हुई तस्वीरे देखने लगा।

ये तस्वीरे उस ने कल भी प्यासी आखो स देखी थी।

यह उस अण्डे की तस्वीर थी, जिस के टूटन पर उस मे स पहला सूरज

निकला था।

वह पक्षी, जो मनुष्य जाति के लिए अपने सिर पर आग उठाकर लाया था और जिस के सिर के ऊपर वाले पंख सदा के लिए लाल हो गय थे।

वे टूटी हुई चट्टानें, जिन म से मानो अब भी एक तूफान का शार सुनाई द रहा हो।

हाथ म ली हुई किताब को उस ने परे रख दिया—रगा के तूफान का शार सुनाई देन का यह एक भयानक एहसास था।

किताब, जस उस न रखी थी, ब द और चुपपडी रही, पर वडे-वडे अक्षरो म लिखा हुआ किताब का नाम माना उस की आँखो का पकडकर बैठा रहा—ड्रीम टाइम बुक

खाने का समय, काम का समय, सोने का समय, आराम का समय य सब समय लोगो ने गढे हैं, पर यह किस प्रकार का आदमी है—वह सोचन लगा—जिस म सपनो का समय कहकर इस किताब को देखने की बात की है

रात का सपना उसे फिर याद आ गया और किताब की ओर से मुह हटाते हुए उसे लगा, मानो वह स्वय किताब का एक पृष्ठ बनकर किताब म रह गया हो, और अब वह किताब से नही, स्वय अपने से परे हटकर अपने पलग की ओर जा रहा हो।

पलग के पास खडे होकर, वह कितनी ही दर रात वाली पायती की ओर से फटी हुई चादर की ओर देखता रहा।

सोचता रहा—इस चादर मे मैं क्यो अपने शरीर को छिपा लेना चाहता था ?

क्यो ? किस से ?

और अचानक उस का ध्यान ऊँचा होकर छत के उस कोने की ओर गया, जहाँ एक महीन-सा जाला मानो उस कोने मे बैठकर नीचे पलँग की ओर देख रहा हो।

भय का एक काला साया मानो उस कोने से लटक रहा हो।

उसे जाले से नही, अपने आप से एक प्रकार की निराशा हो आयी—कि साधारण-से जाले को, उस के मन न, न जाने क्यो, भय के काले साय के साथ मिलाया है।

ये उस के वे खाली दिन थे जो वडी सरकारी नौकरी वाल किसी परदश मे होने वाली बदली से पहले बिताते हैं।

आजकल वह अकेला था।

उस का सामान, जो उस के साथ परदेश जाने वाला था, उस से भी पहले समुद्री सफर पर जा चुका था।

उस की पत्नी आने वाले तीन वर्षों की दूरी से पहले एक बार अपनी मा के पास कुछ दिन रह लेना चाहती थी इस लिए वह वहा गयी हुई थी।

उस की मिनिस्ट्री के, उस के अपने विभाग के लोग उसे विदाई का जश्न दे चुके थे, और अपनी ओर से उसे अपने पास से विदा कर चुके थे।

और अब वह अपन पास केवल स्वय अकेला रह गया था।

उस की मा यदि जीवित होती ता वह उस क पास जाकर उस ज़िन्दगी की इस सफलता की सूचना दता, पर वह अब जीवित नही थी, और इस लिए यह खबर भी, अब उस की तरह, उस के कमरे मे अकेली थी।

सो, यह अकेलेपन का समय था।

बीते हुए सुखा और आने वाले सुखो के बीच का खाली समय जैसे दो देशो की सीमाओ के बीच एक खाली जगह होती है।

खाली जगह उसे ध्यान आया, 'शायद इसी जगह को उस किताब वाले आस्ट्रेलियन ने ड्रीम टाइम कहा है सपना का समय '

पर पहली रात का ह यह पहला सपना कसा है?

एक प्यास एक भय

और ठहरे हुए पानी मे उस के शरीर की कापती हुई परछाई!

चिन्ता की एक पपडी-सी उस के होठा पर जम गयी। क्या सपना का समय इस जसा भयानक होता है?



उस के साने के कमरे और बाहर के बडे कमरे, जहा लागो से मुलाक़ातें की जाती थी, के बीच एक छोटा सा कमरा था जो किसी ने कभी नही खोला था।

केवल वह ही कभी उसे खोल लिया करता था, पर वह बात बहुत समय पहले की है।

इस बहुत समय' का उस न कुछ अनुमान-सा लगाना चाहा, पर समय को

पगडडी पर इतना घास फूस उगा हुआ था कि उस समय के पद चिह्न नहा मिले।

सिर्फ एक खयाल आया कि यह बन्द कमरा शायद उस के और उस की पत्नी के सोने के कमरे और उस की जिन्दगी की सफलता के चिह्न—उस के मुलाकाती कमरे के बीच बना हुआ एक वह कमरा है, जो अपने सारे अंधेरे को समेटकर सदा चुप रहता है, पर सदा वहीं का वहीं खडा रहता है।

और वह कमरा अपने दोनो पहलुओ की ओर बने हुए दोनो कमरो की रोशनी के बीच दिल के पूरे अँधेरे से मुसकराता है।

उसे लगा—शायद दोनो कमरो की रोशनियाँ, कभी कभी हैरान होकर, उस बीच के अँधेरे को देखती है। शायद उस से कुछ पूछती भी हैं, पर विवश-सी अपनी जगह पर खडी रहती है। वे उस अँधेरे को किसी जगह से भी तोड नही सकती।

उस का अपना हाथ आज मानो उस के शरीर से बाहर होकर, उस अँधेरे की ओर बढा—उस के बन्द दरवाजे की ओर और फिर उस के अन्तर मे गहरा उतरकर उसे उँगलियो से टटोलने लगा।

उस कमरे की एक खिडकी दिन की रोशनी की ओर खुलती थी, पर चिर काल से उस के पल्ले अँधेरे और उजाले के बीच अडकर खडे हुए थे।

उस ने हाथो से टटोल-टटोलकर वह खिडकी ढूढ ली, और उस के भिडे हुए पल्लो को खीचकर खोलने लगा।

शायद शरीर के मास की भाति लकडी को भी एक प्रकार की पीडा हुई, पल्लो मे से एक चिरने की सी आवाज आयी।

उस के हाथ ठिठक गये। लगा, मानो खिडकी की लकडी को जो पीडा हुई, वह भी उस के अपने शरीर मे से गुजरी हो।

आखिर खिडकी के पल्लो ने उस का कहना मान लिया, जगह से परे हो गये।

उन्होने कभी उस जगह पर खडे होने के लिए भी उसी का कहना माना था। आज भी उसी का कहना मानकर परे हो गये और बाहर से आने वाले सवेरे के उजाले मे उसके मुह की ओर देखने लगे।

मानो पूछ रहे हो—आज तुम यहा कैसे आ गये? तुम्हे यह अवकाश कैसे मिल गया?

अवकाश की इस भयानकता का शायद आने वाले को उन पल्लो से भी ज्यादा ज्ञान था, वे आने वाले के चेहरे की उदासी को पिघली हुई आँखो से देखने लगे।

अँधेरे का दिल भी कुछ पिघल सा गया और उस ने जो कुछ भी छिपाकर

उधर न वह अपनी पत्नी का इन्तज़ार था न अपने आप का। इस वक्त तो वह सिर झुकाये अपनी उंगली से कैनवस पर रखे हुए रंग में लकीरें खींचता रहा।

खून की लकीरें मुड़ती, टूटती और कहीं से मोटी-सी होती हुई जब एक अजीब-सा दायरा बन गयीं—तब उसे ध्यान आया कि उस ने अपनी उंगली से उस खून में किसी का नाम लिखा है।

स वि ता

यह नाम उन लकीरों में टूट भी रहा था, जुड़ भी रहा था।

मानो वह हवा में लटकते हुए प्रश्न को उत्तर दे रहा हो।

फूल के होंठों में से निकले हुए बोल ने जब उस के अपने कानों को छुआ, उसे लगा, जैसे वह चुप की आवाज़ उस के कानों में से होती हुई और उस के सारे शरीर के अंग-अंग में से होती हुई उस के पांवों की एड़ियों तक पहुंच गयी हो, और उस के पांव वहीं के वहीं उस फर्श पर जम गये हों। उस के मन में एक अजीब-सा डर पैदा हुआ। ये पांव आज से नहीं, शायद कई बरसों से यहीं गड़े हुए हैं, और वह जब अपने सरकारी पद की कुर्सी पर बैठने के लिए जाता है, उस के पांव वहां उस के साथ नहीं जाते। और जब वह अपनी पत्नी के बिस्तर में सोने के लिए जाता है तो उस के सारे अंग उस के साथ बिस्तर में जाते हैं, पर उस के पांव उस के साथ नहीं जाते।

और उसे लगा—अब जब वह तीन बरस के लिए आज से भी ऊँचे पद को सँभालने के लिए इस देश के बाहर जायेगा, उस के पाँव उस के साथ नही जायेंगे।

एक चुप हा चुके नाम की आवाज न जान किस तरह धीरे धीरे रांग के समान भारी हो गयी थी और उस के पाँवा की एडिया म जाकर इस तरह बठ गयी थी कि उन के पाव जहा कभी खडे हुए थ वही खडे रह गय थे।

और उस लगा कि वह सदा अपन पाँवो क बिना चलता रहा था, और वह सदा अपने पावा क बिना चलता रहगा।

उस ने एक गहरी साँस ली और आदिवासिया की एक प्राचीन कथा की तरह उन दिनो की बात सोचन लगा, जब उस क पाँव हुआ करते थ।

एक जवानी का दश हाता था, जिस म गगा जस मन की कई नदियाँ बहती थी।

जहाँ-जहाँ सपना के बीज गिरते थे, वहाँ-वहाँ बहुत हरे और करामाती पेड उग आते थे।

पेडा पर फूल भी खिलते थ, फल भी आत थे, चाह इर्द गिद के कई लोग उस से धीरे स कहते थे कि य सब वजित फूला और वजित फलो क पड है।

पर लागा का क्या उस के अपने मन न उस से कहा था कि वह वर्जित फूल भी तोडेगा और वर्जित फल भी खायगा।

यह तब की बात है, जब उस के पाँव हाते थ। और एक दिन उस ने दूर से देखा कि मन के एक ऊच टील पर बठकर उर्सिला कुछ कागजा पर एक पन्सिल से तस्वीर बना रही है और वह पाँवो से चलकर नही, उडकर, पीछे से जाकर उर्सिला की पीठ के पीछे खडा हो जाता है।

उर्सिला सारी की सारी उस की परछाइ मे लिपट गयी थी। परछाइ म नही, उस क अस्तित्व म

और उस ने उर्सिला की पीठ पर छाये हुए उस के खुल हुए बालो म हाथो की उँगलियाँ उलझाते हुए पूछा था, 'उर्सिला! तुम रगो से पेंट क्यो नही करती?'

'किसी दिन करूँगी।' कहते हुए वह हँस दी थी।

'पर कब?' उस ने पूछा था तो उर्सिला ने कहा था, 'जब रग खरीदने क लिए पसे हागे इकबाल! तब '

उस न यह बात सुनी थी, पर समझी नही थी। उसे यह बहुत छोटी बात लगी थी—रगा के लिए पस अगर आज नही है तो कल हो जायेंगे।

पर आज और कल म, उस ने नही जाना था कि गरीबी का एक वह लम्बा फासला होता है, जो कई बार एक जन्म म तय नही होता।

उन दिनो उस ने वर्जित फूलो और वर्जित फलो का अर्थ भी नही समझा था। यह उस ने बहुत समय बाद जाना था कि गरीबी के फूल घरो म सजाने के लिए नही होते और गरीबी के फल खान के लिए नही होते।

पर समझ की सीमा मे आकर भी अनक बातें होती ह, जो समय से परे खडी रहती हैं और शायद मनुष्य पर हँसती रहती ह।

उसे लगा —वह उर्सिला के लम्बे और खुल बालो मे हाथो से उलझाव टालता हुआ एक दिन स्वय ही उलझन जसा हो गया था, और शायद सदा के लिए उस के अस्तित्व का एक टुकडा, वहा, उस के बालो म ही उलझकर रह गया था।

और उस के अस्तित्व का जो हिस्सा उस के पास से बहुत दूर आ गया, वह कभी-कभी वे रग और वह कनवस खरीदन लगा, जो उर्सिला का खरीदने थे।

उसे ज्ञात था—अब वह न ये रग उर्सिला तक पहुँचायगा न यह कनवस, और यह सब कुछ सदा एक ब द कमरे क अँधेरे मे पडा रहेगा—जहा रग सूख जायेंग और हर कैनवस पर धूल की तह जम जायेगी। पर तब भी वह खरीदता रहा, रखता रहा, और समझ की सीमा मे आकर भी ये सब बाते उस की समझ स परे खडी रही, और शायद उस पर हँसती रही। इकबाल के माथे पर पडी हुई चि ता की लकीर को दखकर समय व्यग्य स मुस्कराया। और जब इकबाल न घबराकर जेब मे हाथ डाला और अपने लिए एक सिगरेट निकालकर जलायी तो 'समय' भी एक बूढे आदिवासी की भाति हथेली पर तम्बाकू मलकर हुक्के म डालता हुआ इकबाल का एक प्राचीन कथा सुनाने लगा—'एक था अरब नौजवान और एक थी अरब सु दरी '

कहानी साकार इकबाल की आखो के आगे विचरन लगी—ऐसे, जसे किसी को पिछला ज म स्पष्ट दिखाई दे जाय—वह ज म, जब इकबाल एक अरब नौजवान था और उर्सिला अरब सु दरी।

कॉलेज के थियेटर ग्रुप न दुनिया भर के विवाहो की रस्म इकट्ठा की थी और साप्ताहिक थियेटर म उ हे अभिनीत किया था। जब उ ह एक प्राचीन अरब विवाह की रस्म का अभिनय करना था, तब उस के लिए इकबाल और उर्सिला को चुना था।

इकबाल ने अरबी वेशभूषा धारण की थी—मोटे सफेद कपडे का चुन्नटदार किल्ट, जिस को गाठ सामने की ओर बँधी हुई थी—और वह स्टेज पर सजायी हुई रेत की वीरानी मे बासुरी बजाता हुआ मरुस्थल को मन की मुहब्बत सुनाता रहा था

उर्सिला ने सनाई रेगिस्तान का लम्बा चोगा पहना हुआ था, जा उस क एक क धे के ऊपर से होता हुआ दोनो कोनो से सामने की ओर बधा हुआ था, और

जिस म से उस की खुली हुई बायी बाँह हवा म ऐसे फली हुई थी, जसे बाँसुरी के सुरो मे से निकलने वाली आवाज को वह रेत पर गिरने से बचाना चाहती हो। और फिर उर्सिला उस की बाँसुरी की अरबी धुन के साथ अपनी आवाज मिलाने लगी। और फिर जस व दोना मरुस्थलो को चीरकर मिले हो—उर्सिला उस की बाहो मे सिमट गयी थी । उस ने सनाई रेगिस्तान की रस्म क अनुसार उर्सिला के होठ चूम थ और फिर खुशी म झूमता हुआ वह रेतीले स्थलो को पार करता उधर चल दिया था, जिधर बस्ती के लाग रहते थे।

बस्ती के एक घर के बाहर बैठकर उस ने फिर बासुरी के सुर छेड़े थे। बाँसुरी की आवाज घर के बन्द दरवाजो से देर तक टकराती रही थी।

इतने म उस के पीछे धीरे धीर चलते हुए उर्सिला भी आ पहुँची थी और उस से सटकर बठ गयी थी, और उस ने किल्ट के ऊपर ओढी हुई अपनी चादर उतारकर उस से उर्सिला को सिर से पर तक ढक लिया था।

घर का दरवाजा आखिर खुला और घर का बुजुग सामने ड्योढी मे आकर खडा हो गया।

इकबाल न उठकर बुजुग के पाव छुए और नम्रतापूवक कहा, 'मैं आपके पास, ऐ बुजुगवार ! आपकी बेटी का हाथ मागने आया हूँ।'

बुजुग मुस्कराया, 'नोजवान ! मेरी बेटी एक हीरा है बहुत कीमती, तुम इस की कीमत अदा कर सकते हो ?'

इतने म इस अरब आशिक का पिता वहाँ पहुँच गया और उस न आदर-सहित उत्तर दिया, 'मैं अपने बेटे के लिए आप की हीरे जसी बेटी का हाथ माँगता हूँ।'

सुन्दर युवती के पिता ने कहा था, 'दो हजार पाउ दने पडेंगे।'

और अरब आशिक के पिता ने कहा था, 'सब दे सकता हूँ, जो माँगेंगे वह दे सकता हू, पर देखिये, मेरा बेटा रेगिस्तान का फूल है, रेगिस्तान का झरना है, ठडे-मीठे पानी का झरना। और देखिये, मेरा बेटा इस वीराने म खजूर का पेड है।'

सुन्दरी का पिता मुस्कराया था, यह तो मानता हूँ, स्वीकार करता हूँ, और इस लिए पाच सौ पौड छोडता हूँ।'

इतने म सनाई रेगिस्तान का काजी पहुँच गया। उस न आते ही कहा, 'और पाँच सौ पौंड मेरे नाम पर छोडने पडेंगे, खुदा के नाम पर, ऐ खुदा के बन्दे !'

सुन्दर युवती का पिता फिर मुस्कराया और कहने लगा, अच्छी बात है, पाँच सौ पौड इन्सान के नाम पर छाडे थे, अब पाँच सौ खुदा के नाम पर छोडता हूँ '

तभी युवती की माँ भी घर के बाहर आ जाती है, और सामने की आर से

युवती के प्रेमी की मा भी।

एक माँ जब कहती है, 'एक सौ पाँड मेरे दूध के नाम पर छोडे जाये' तब दूसरी मा कहती है, 'हा ! एक सौ पौंड मेरे दूध के नाम पर भी' तो सुदर युवती का पिता हँसकर दोनो औरतो की ओर देखता है और दोनो के नाम पर दो सौ पौंड और छोड देता है।

फिर दोनो के भाई आते है—एक भाई अपने छोटे भाई की दाहिनी बाह बनकर आता है, और दूसरा अपनी बहन का पिता जसा रखवाला बनकर, और दोनो के नाम पर दो सौ पौंड और छोड दिये जाते है।

फिर दो बूढे दादा आते है—एक युवती का दादा, और दूसरा उस के आशिक का दादा। इन मे से पहला कहता है, 'मेरी पोती मेरे घर के दीये की लौ है,' और दूसरा कहता है, मेरा पोता मेरे घर का चिराग है,'—तो दोनो दादाओ के नाम पर एक एक सौ पौंड और छोड दिये जाते है।

फिर कई आवाजे उठती है

'मैं आज के इस आशिक का दोस्त हूँ, उस के भाइयो के समान '

मैं आज की होने वाली दुलहन की सहेली हूँ उस की बहनो के समान '

'म ने लडके को इल्म दिया है '

'मैं ने लडकी को हुनर सिखाया है '

और घर के दरवाजे की चौखट पर खडा हुआ सुन्दर युवती का पिता आज की मागो पर झूमते हुए कहता है, आप सब के नाम पर मैं सब कुछ छोडता हूँ, केवल एक सौ पौंड लूगा '

उसी समय धान कूटने की आवाज आती है। कारीगरो, मजदूरो के गाने की आवाजें आती है।

लडकी का पिता पूछता है 'ये कसी आवाजें हैं ? कितनी प्यारी लग रही है।'

लडके का पिता उत्तर देता है, घरो के आगनो मे हाडियाँ पक सके, इस लिए इस बस्ती के मजदूर धान कूट रहे है। देखिये, हवा म कैसी अच्छी महक है।'

तो लडके का पिता उत्तर देता है, फिर एक सौ पौंड मैं ससार के सारे मजदूरो के नाम पर छोडता हूँ—घरो म और खेतो म काम करने वाले श्रमिको के नाम पर।

और फिर विवाह की दावत सज जाती है।

कालज के दिनो म खेला हुआ यह नाटक इकबाल का एम याद आया, माना

पिछला जन्म याद आया हो।

नाटक खेलते हुए भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि यह केवल नाटक है, और आज जब उस का एक एक दृश्य याद आया तो पूरे का पूरा अपनी आपबीती की भाँति लगने लगा।

जगबीती किस स्थान पर आकर आपबीती बन गयी, इकबाल उस स्थान को अपनी छाती में खोजने लगा।

'शायद प्राचीन कथा में जो शिष्टाचार था—सगे-सम्बन्धियों और मित्रों को हासिल करने के लिए धन सम्पदा का त्याग'—इकबाल सोचने लगा, 'शायद यही वह स्थान था, जहाँ उस के और उर्मिला के बीच दुनिया द्वारा डाली हुई दूरियाँ मिट गयी थीं।'

सिनाई मरुस्थलों की यह प्राचीन रस्म जब कई वर्ष हुए, इकबाल को झकझोर गयी थी। आज भी वह उस की आँखों के सामने ऐसे चमक गयी कि उस का मन चौंधिया गया। 'इस रस्म का विस्तार किस प्रकार संसार को अपनी बाँहों में समेट लेता है—केवल सगे-सम्बन्धियों और मित्रों को ही नहीं, बेगाना-पराया को भी। केवल आदर और मोह की जगह को नहीं, बेगानों की मुहब्बत की जगह को भी।' और रस्म का अंतिम भाग—अन्तिम सौ पौंड को संसार के नाम पर छोड़ना—इकबाल की दृष्टि में इस रस्म को एक बहुत ऊँची रस्म बना गया।

पर रस्म उस की आँखों में जितनी ऊँची हुई, उतना वह स्वयं छोटा हो गया।

लगा—वह बाँसुरी उस की नहीं थी, जो मरुस्थलों में गूंज उठी थी, उस के बोल तो सारे के सारे मिट्टी में मिल गये

बाँसुरी तो उस दिन उस ने उधार ली थी, वह सोचने लगा—'क्या उर्मिला की मुहब्बत करने वाला अपने सीने में छुपा मन भी उस ने उधार लिया था?



बाहर के बरामदे म अचानक एक खटका हुआ—और इकबाल ऐसे चौक गया, जसे कोई कानून किसी कानून से बाहर की जगह मे अचानक दाखिल हो गया है।

किसी जगह पर पुलिस के छापा मारने के समान।

इकबाल के हाथ खाली थे, पर उस ऐसा लगा, जसे अचानक हाथो म से कुछ छिटक गया हो। चोरी से खीची जा रही शराब के समान, या जाली नोटो की गड्डी के समान।

उस के होश ने सँभलना चाहा और फिर उसे भी सँभालना चाहा, कहा, 'अखबार वाले ने बरामदे म रोज की तरह सिर्फ अखबार फेंका है '

पर वह खटका, जो बाहर के बरामदे म हुआ था, बाहर की बैठक की ब द कुडी को खोलकर जसे अ दर चलकर आ गया था, इस चिरकाल से ब द रहन वाले कमरे म और अब जसे इकबाल अकेला इस कमरे म नही था, वह खटका भी कमरे म खडा हुआ था।

इकबाल भी चुप था, और उस की तरह वह खटका भी, पर चुप हो जान से अस्तित्व नही मिटता दोनो का अपना-अपना अस्तित्व था। इकबाल का एक छुपी हरकत की तरह और खटके का छुपी हरकत को भाँपकर देखन वाले की तरह।

आज घर म इकबाल की पत्नी नही थी, न कोई नौकर, पर उन लोगों न मानो घर से परे जाकर भी इकबाल को अपन अस्तित्व की याद दिलाना जरूरी समझा था—चाहे एक छोटे से खटके की सूरत म ही।

इकबाल न एक गहरी सास ली और अपन आप को नग्न अकेलेपन का विश्वास देता हुआ ब द कमरे के टूटे हुए जादू को फिर जगान की चेष्टा करन लगा।

पर उस के मन की सारी एकाग्रता भूमि पर गिर गयी थी, मानो चोरी से खीची जा रही शराब गिर गयी हो, बाद जब अन्दर ढुका न उस की महक रह गयी हो, जिस न गिलास म डाला जा सकता था, और न जिस का घूट लगाए जा

मकता था

इकबाल को एक बडी कड़वी सी हँसी आयी और खाली कनवस की ओर देखकर कहन लगा, 'देखो उसिला ! तुम्हारी सारी यादें जाली नोटों की तरह हो गयी, अब मैं अकेले बठकर चाहे कितन ही नोट छाप लू, य मेरी दुनिया म नही चल सकते '

इकबाल परेशान सा कमरे के बाहर आ गया, और दानो ओर के कमरा की ओर इस प्रकार देखन लगा, माना अभी वह घर म चोरी करके घर से बाहर निकलन का रास्ता खोज रहा हो

एक बडी तेज सी नफरत की ग ध इकबाल के सिर को चढ गयी और सिर का एसे चक्कर आया कि उस का हाथ पास की दीवार का सहारा लता हुआ काप सा गया

क्या नफरत की भी ग ध होती है ? उस विचार आया—और वह साथ ही सोचन लगा—यह नफरत घर की दीवारो स उठ रही है या उस के अपने शरीर म से ?

हर जगह की अपनी विशेष गध हाती है—सोने के कमरे की अजीब गम सी गध, और बठक की कुछ ठडी और ऊपरी सी, और हर शरीर की अपनी अपनी—इतनी कि किसी शरीर के मास को अपने शरीर स सूघने को जी करता है, और किसी को

पर आज मानो सारी दुनिया की गध एक जैसी हो गयी हो—इकबाल को लगा—इस घर की घर की हर चीज की, और घर म खडे हुए उस के अपने शरीर की

इकबाल न ज़ोर की एक सास लेकर हवा को सूघा, और फिर ज़ोर से हँसते हुए सोचन लगा—नही यह दुनिया की गध नही है, न इस घर की, यह घर म मरे हुए एक कमरे की गध है

और साथ ही इकबाल को एक भयानक खयाल आया—और तीन दिन के बाद, जब देश से बाहर जाते समय वह इस घर को छोड देगा, क्या यह मरा हुआ कमरा—समुद्र पार, वहाँ के नये घर म रहने के लिए उस के साथ चला जायेगा ?

इस समय इकबाल जहा खडा था, वहा से दायें हाथ की बठक के शीशे वाले दरवाज़े म से बाहर के बरामदे का कुछ हिस्सा दीख रहा था, वहीं, जहाँ आज सवेरे का अखबार पडा हुआ था और दूर से औंधे से पडे हुए अखबार की ओर देखते हुए इकबाल को लगा—मानो आज के अखबार का पहला शीपक हो कि आज एक जीवित व्यक्ति एक मृत कमरे म से बरामद हुआ है

फिर न जाने किस समय इकबाल के सामने किसी ने अखबार रखा—और इक़बाल न देखा—एक खबर के गिर्द पेंसिल से कीरमकाटे सी लकीरें खिंची हुई थी

इकबाल न चोंककर कई वर्ष परे बैठी हुई उर्सिला की ओर देखा, और पूछा, 'इस खबर के गिर्द तुम न पेंसिल से लकीरें क्यों खींची है ?'

उर्सिला का चेहरा बहुत उदास था, बोली, 'खबर के गिर्द नहीं, बेकारी के गिर्द, मजबूरी के गिर्द '

'किस की मजबूरी ?' उस न पूछा।

और उर्सिला ने कहा, 'जिसे एक रोटी चुराने के जुर्म मे आज एक महीने की क़ैद हुई है।'

'तुम उसे जानती थी ?'

और उत्तर मे उर्सिला मुस्करा दी, 'पहले नही जानती थी, पर अब जानती हूँ। कल रात मैं ने उस के भूखे बच्चो को देखा था, और बच्चो की माँ को उस समय, जब उसे जेल ले जा चुके थे ' और उर्सिला ने कहा, 'अखबारो म हमेशा अधूरा सच होता है देख लो, चोरी की बात ये सब को बता रहे है, मजबूरी की बात किसी को नही बतायेंग '

उर्सिला उसी प्रकार वर्षों की दूरी पर खडी रही, केवल यह बात इधर आकर इकबाल के पास खडी हो गयी।

इकबाल ने घबराकर गुसलखाने का पानी खोला और कई बार अपनी आँखो को धोया। न जाने आँखा से बीते दिना को धोने के लिए, या आज के दिनो को धो मिटाकर बीते दिनो को अच्छी तरह देखने के लिए।

अचानक उस की आँखो मे एक स्पष्टता सी आयी—रेगिस्तान के रेतो को चीरती हुई, और उस के बचपन और जवानी वाले उस के पहाडी गाँव के पत्थरो तक पहुँचती हुई।

सनाई के मरुस्थल की वह रस्म, जिसमे किसी की निजी खुशी बेगाना पराया की मेहनत को भी अपनी छाती म समेट लेती है, और उस के पहाडी गाँव की उर्सिला, जो किसी बेगाने का एक महीने की कद होन की उस खबर के गिर्द काली लकीरे खीचती है।

लाखो मीलो का फासला तय करके—मानो मानव मन के दोनो सिर एक ही स्थान पर जुड जाते हैं इकबाल चकित सा आँखो म आयी हुई इस स्पष्टता को देखने लगा।

स्पष्टता की रेखा एक ही थी—केवल उर्सिला के दो चेहरे थे—एक हाते

हुए भी दो चेहरे, एक शरीर पर धारण किये हुए अरबी वस्त्र की ओर झुका हुआ और अपने होने वाले पति की चादर में लिपटा हुआ लाल और लजाता हुआ चेहरा, और दूसरा आँखों के आगे अख़बार रखकर परायी भूख से तड़पता हुआ उदास चेहरा।

और उर्मिला इकबाल के जन्म और लालन-पालन की भूमि से लेकर लाखों मील दूर अरब के मरुस्थलों तक फैल गयी।

दोनों सिर बहुत दूर थे, हाथ कहीं नहीं पहुँच सकता था, और बीच में—वह सारा आडम्बर था, जिसे लोग घर संसार कहते हैं।

पर तौलिये से आँखों और माथे को पोंछते हुए इक़बाल को लगा कि बीच में वह जो कुछ था, वह केवल कुछ धब्बों जैसा रह गया है, शायद पोंछा जा सकता है।

और इकबाल के शरीर पर थोड़ी-सी धूप निकल आयी।

उस ने किचन में जाकर गैस का चूल्हा जलाया और पानी की केतली चूल्हे पर रख दी। सिंक में रात की कॉफी का प्याला उसी तरह बिन धोया पड़ा था। बराबर चाहे शीशे की पट्टी पर और प्याले रखे थे, पर वह सिंक में पानी की टोंटी खोलकर रात वाले प्याले को ही धोने लगा।

केतली का पानी अभी उबला नहीं था। उस ने स्वाभाविक तौर पर आग को तेज़ करने के लिए जब ज़ोर से फूंक मारी, गैस की आग बुझ गयी, और गैस की अजीब सी गन्ध उस के सिर में चढ़ गयी।

ठिठुरते हुए हाथ से दियासलाई से फिर गैस को जलाते हुए इकबाल ने अपने माथे में एक उस बहुत पुराने दिन को ज़ोर से झझोड़ा, जब कालेज की पिकनिक वाले दिन झरने के पत्थरों के पास बैठकर जंगल की कुछ सूखी टहनियों को इकट्ठा करके उर्मिला ने चाय बनाने के लिए आग जलायी थी और वह आग को बनाये रखने के लिए, नयी टहनियों को जलती हुई टहनियों के साथ लगाता हुआ आग को बार बार फूंक मारता रहा था।

एक बुझी हुई लकड़ी का धुआँ उस की आँखों में लगा था। न जाने किस तरह का धुआँ था कि आज वर्षों बाद इकबाल को याद आया तो उस धुएँ से उस की आँखों में पानी आ गया।

कॉफी का प्याला बनाकर जब इकबाल अपने कमरे में आया, उसे अचानक कल देखी हुई वह पेन्टिंग याद आ गयी, जिस में लाल परों वाले सिर का वह पंछी था, जो मानव जाति के लिए देवताओं के घरों से आग चुराकर लाया था अपने सिर पर रखकर, जिस के कारण उस के सिर के पर सदा के लिए लाल

हो गये थे

इक़बाल को लगा—वह कल का सच था, आज का सच उस के उलट है।

और एक पेण्टिंग की तरह उस ने अपनी शक्ल शीशे में देखी, और शीशे की ओर उँगली से इशारा करते हुए, मानो अपने कानों से कहने लगा—'पर यह वह इन्सान है, जो देवताओं के यहाँ से धुआँ चुराकर लाया है '

कानों में एक खटका सा सुनाई दिया—पीठ की ओर से।

उस ने पीठ मोड़कर टाइलों की छत के नीचे, कच्चे आमों की चटनी कूटती हुई अपनी माँ की ओर देखा।

माँ के चेहरे को गौर से देखना चाहा, पर आँखों के आगे बीसों बरसों का धुआँ फैल गया।

धुआँ इधर था, माँ के मुख से इधर, और मुख दूसरी ओर था।

उस ने धुएँ में हाथ मारा, हाथ से धुएँ को परे करते हुए, सिलबट्टे के खटके से वह दिशा ढूँढने लगा, जहाँ माँ लकड़ी की एक पटरी पर बैठकर हरी मिर्च और कच्चे आमों की चटनी पीस रही थी।

वह जब स्कूल से आकर, माँ से रोटी माँगने के लिए दौड़ता हुआ रसोई की ओर जाता था, तब भी इसी प्रकार हाथ से धुएँ को आँखों के आगे से परे हटाया करता था।

और माँ कहा करती थी, 'रे, कोई धुएँ वाला कोयला पड़ा हुआ है चूल्हे में, चिमटे से पकड़कर निकाल दे।'

और उसे चूल्हे में से उठते हुए धुएँ के गुबार में कहीं इधर उधर पड़ा हुआ चिमटा नहीं मिलता था।

फिर माँ के पाँवों के नीचे पड़ी हुई लकड़ी की पटरी हिलती थी, माँ ही उठकर धुएँ में हाथ मारते हुए चिमटा ढूँढ लेती थी और चूल्हे में से धुएँ वाले कोयले को निकालकर, चूल्हे पर तवा रख देती थी।

'कई बरस भी शायद धुएँ वाले कोयले की तरह होते हैं' वह सोचने लगा—पर वह चिमटा, जिस से पकड़कर वह धुएँ वाले कोयले को निकाल दे ' उसे हँसी सी आ गयी—'वह तो मुझे तब भी नहीं मिला करता था '

उसे लगा—वह ज़िन्दगी के पन्नों का बस्ता लिये हुए अब भी किसी ड्योढ़ी में खड़ा हुआ है और सामने कई बरस धुएँ वाले कोयलों की भाँति सुलग रहे हैं।

उसे लगा—शायद वह सदा इसी प्रकार भूखा प्यासा ड्योढ़ी में खड़ा रहेगा, कहीं दूर से हरी मिर्चों की और कच्चे आमों की महक आती रहेगी, और धुएँ में हाथ मारता हुआ वह चेहरा सदा ढूँढता रहेगा—जो धुएँ के पार था।

काफी गम थी, पर धुएँ स आँखो में पानी भर आया। इकबाल न उँगली पोर से वह पानी पाछा तो काफी के गर्म घूट ने भी उस के शरीर म एक ठडी-कम्पन उतार दी।

उस के शरीर पर अभी तक वही कपडे थे, जो उस ने रात को सोते सम पहन थे—उस का हाथ एक आदत के तौर पर अलमारी म टँग हुए अपन ऊ ड्रेसिंग गाउन की ओर बढा, पर ड्रेसिंग गाउन को पहनते समय जब उस हाथ स्वाभाविक ही उस की जेब म गया—ऊनी गाउन की कुछ गर्माइश लेने लिए, तो हाथ जसे जेब म अटक गया।

एक जेब थी, जिस म उर्मिला का हाथ था।

उस दिन पिकनिक से लौटते हुए जब बहुत ठड उतर आयी थी उस दि उर्मिला को हलका सा बुखार हो गया था। उस के पास कोई गम कपडा नहं था। उस की एक सहेली ने अपना कोट उतारकर जबरदस्ती उसे पहनाया था जिस के दायी ओर की जेब म उस न अपन दायें हाथ को गम कर लिया था प उस के बायी ओर चलते हुए, उस के दायें हाथ को इकबाल न पकडकर अपने कोट की जेब मे डाल लिया था।

और उर्मिला ने जब अपने घर के पास की सडक के पास आकर उधर मुडन चाहा था—'अच्छा, इकबाल ! इस मोड से मुझे पास पडेगा, मैं '

और उस की बात को बीच में काटकर इकबाल ने कहा था, 'अकेली जाओगी ? अच्छा '

पर उस का हाथ इकबाल की जेब म था, जिसे 'अच्छा' कहकर भी उस ने पकड रखा था।

और वह उसी तरह खडी रह गयी थी।

'जाओ '

'हाथ '

'यह मेरी जेब में रहगा '

और वह जोर से हँस पडी थी। कहने लगी, अच्छा, फिर मैं हाथ के बिना चली जाती हूँ पर यह बताओ, तुम इस का क्या करोगे ?'

'जेब में डाल रखूगा।'

'कितने समय तक ?'

'हमेशा '

'और जब कोट धोन के लिए दोगे ?

'धोन के लिए दूगा ही नही '

'और जब कोट पुराना हो जायेगा ?'

यह पुराना होगा ही नही '

"और जब '

चुप क्यों हो गयी ?'

'अगर बुरा मानोगे तो नहीं कह सकूगी '

'कह दो '

जब वह ज़मीदार की बेटी तुम्हारी जेब की मालकिन हो जायेगी, तब ?'

ज़मीदार की बेटी के साथ होने वाले इक़बाल के रिश्ते की बात सारी हवा में थी, वह जानता था, पर उस ने जेब में अपने हाथ मे लिया हुआ उर्मिला का हाथ ज़ोर से भीच लिया

पर ऐसे, जैसे उस ने अपने हाथ के लिए उर्मिला के हाथ का सहारा लिया हो।

कहा, 'वह मेरा सपना नहीं है, उर्मिला !'

उस ने जो कहा था, सच कहा था। उर्मिला के सिवाय दुनिया की कोई लड़की उस का सपना नहीं थी। ज़मीदार की बेटी सिर्फ़ उस के माता-पिता का सपना थी

उर्मिला ने ग़ौर से उस के मुह की ओर देखा, अपलक देखती रही

फिर धीरे से बोली, बेटी के चेहरे म माता-पिता की छवि होती है न '

'कुछ नैन नक्श विरसे म मिलते हैं '

'घर-ज़मीन भी विरसे म मिलते हैं '

इक़बाल को अनुमान नहीं हुआ कि वह क्या कहना चाहती है, इसलिए चुप-सा रह गया।

उर्मिला ने ही फिर कहा, मेरा खयाल है सपने भी विरसे म मिलते हैं '

'नहीं !' और वह हँस पड़ा। कहने लगा, 'अभी सपनों की वसीयत करने वाले काग़ज़ नहीं बने।'

वह भी हँस पड़ी थी। कहने लगी, 'इस का जवाब दे सकती हूँ, पर दूगी नहीं।'

क्या ?'

वह फिर हँस पड़ी थी। कहने लगी, 'कई बातें ऐसी होती हैं, जिन्हे लफ़्ज़ों की सज़ा नहीं देनी चाहिए।

और पावों की भांति बात भी खड़ी हो गयी।

फिर जब उस ने जाने के लिए पाव उठाया तो उस की बाह खिंच-सी गयी।

'जाओ ! पर यह हाथ यहीं रहेगा, मेरी जेब म मजूर ?"

'हाँ, मजूर हाथ के बिना चली जाऊँगी।'

बहुत-बहुत दिन उस क्षण म समा गये थ। इक़बाल ने अपनी जेब म उर्मिला

के हाथ को ढककर छिपाकर पकड रखा था और जिन्दगी का एक टुकडा सच मुच उस की जेब म पडा रहता था ।

फिर न जाने कब, किस तरह, वह कोट मर गया ।

और वह कोट मरकर उस के विवाह क जामे की जून म पड गया

जमींदार के घर की दौलत पांवो के आगे बिछी, पर इकबाल ने जेब म हाथ डालते हुए देखा, जेब हाथ से खाली थी।

खाली जेब न इकबाल की ओर देखा ।

'मैं न उस हाथ को बेच दिया।' उस न धीरे से जेब से कहा।

जब न चकित होकर उस की ओर देखा—मानो धुर तक, अपनी सीवनों तक, अपने खालीपन को दिखाते हुए पूछ रही हो, 'पर किस कीमत पर ?'

इकबाल जोर से हँसा, मानो आंखो तक भर आये रोने को रोक रहा हो। कहने लगा, 'कई बातें ऐसी होती हैं कि उन्ह लफ्जो की सजा नही देनी चाहिए'



टेलीफोन की घटी बजी

इकबाल ने चौककर मशीन के उस काले से टुकडे की ओर देखा—जो उस के चारो ओर की दुनिया न उस के सोने वाले कमरे मे भी एक लम्बे हाथ की तरह रखा हुआ था ।

घटी फिर बजी ।

इकबाल ने टेलीफोन के तार की ओर घबराकर देखा, मानो वह मास की लम्बी बाह हो, जिस का हाथ उस की छाती के बिलकुल अन्दर तक पहुँच रहा हो ।

घटी बजे जा रही थी ।

मानो कोई दीवार म लगातार छेद किये जा रहा हो ।

स्वतन्त्र कोई नही है देखने म केवल यह दिखाई देता है कि यह मालिक और गुलाम का रिश्ता है, जिस म केवल गुलाम स्वतन्त्र नही है, मालिक स्वतन्त्र है। और यही मालिक की स्वतन्त्रता अधूरा सच है। मालिक अपने गुलाम का सबसे अधिक मोहताज है, क्योकि यह केवल गुलाम का अस्तित्व होता है, जो उसे मालिक होने की हैसियत दे सकता है अगर प्रजा ही न हो, तो कोई बादशाह कैसे बने ? इस तरह बादशाह सबसे अधिक प्रजा का मोहताज होता है।'

आवाज़ कानो को छूकर, न जाने क्यो, परे नही हो रही है। उस म कुछ भारी सा है जो काना से टकरा रहा है, कानो को मानो झिझोड रहा हो।

'जिस तरह स्वतन्त्रता, कई जगहो पर अपने होने का भ्रम नही डालती, पर कई जगहो पर अपने होने का भुलावा डालती है, उसी तरह 'विल-पावर' भी कई जगहो पर अपने होने का भ्रम पैदा करती है—इन्सान को बदलने का, समाज को बदलने का राजनीति को बदलने का। इस से मेरा यह मतलब नही है कि भुलावा नही खाना चाहिए।'

हॉल म धीमी-सी हँसी कुर्सियो के ऊपर स छलक गयी और फिर झाग की तरह नीची हो गयी।

उर्सिला कह रही है, 'दुनिया की एक बहुत प्यारी कविता है कि जो लोग दूर चमकती हुई रेत को पानी समझकर रेत म नही दौडते, वे जरूर बुद्धिमान होगे, पर मैं उन्ह प्रणाम करता हूँ, जो रेत म पानी का भ्रम खाते है और पानी की एक बूद पीने के लिए सारी उम्र रेत पर दौडते रहते हैं।'

और उर्सिला किचित हसते हुए से स्वर में कह रही है, 'एक कवि का यह प्रणाम वास्तव मे भ्रम का नही, मनुष्य की प्यास को है, और प्यास का दूसरा नाम जिन्दगी है।'

हॉल म बठे लोगो के चेहरे कुछ खिच से गय, जैसे वे सोच म पड गये हो।

उर्सिला सहज सी कह रही है, किसी सचाई के 'होने' और 'दीखने' के बीच एक फासला होता है जो अभी तक इन्सान न तय नही किया है—जसे खँडहरो म से कई बार बीती हुई सभ्यता के चिह्न मिल जाते हैं, उसी तरह किसी दस्तावेज म कई बार इतिहास के बीते हुए सच के टुकडे मिल जाते है। और कल का विचार आज के विचार के आगे अचानक झूठा पड जाता है। दखा जाय तो यह धरती विवशताओ का एक लम्बा इतिहास है '

फूलो स लदी हुई मेज के पास कुर्सियो पर बठे तीनो जज कुछ हैरान से उर्सिला की ओर देख रहे है। उन की दृष्टि म कुछ बेचनी-सी भी है

पर उर्सिला का स्वर सहज है 'हाँ, विल-पावर कुछ इतना काम आती है कि इन्सान अपने दद को अपनी जबान पर ला सकने की जगह अपने होठो स पोछ सकता है। उसे अन्दर अपने गले म उतार सकता है। इस से ज्यादा जो कुछ है,

वह प्यास की करामात है, पानी की नहीं, और प्यास का जगाये रखने के लिए उस जगह पर खडे होना जरूरी है, जो सच और झूठ के बीच म है क्योंकि दुनिया के सब फसले केवल वही खडे होकर किये जा सकत है विल-पावर से कुछ बन सकने और बदल सकने का फैसला भी केवल वही खडे होकर '

हॉल मे जो लोग बैठे हुए थे, उन सब को मानो किसी ने कुछ सुघा दिया हो, इतना कि तारीफ के चिह्न के रूप मे ताली बजाने के लिए उठे हुए कुछ हाथ हवा म ही रह गये

उर्सिला सहज ही हँस पडी है कह रही है, 'शायद अपने शब्दो म मैं बहुत अच्छी तरह नही कह सकती, इस लिए एक चेक कहानी सुनाती हूँ—कगलर नाम *का एक आदमी था। कई हत्याएँ कर चुका था, बहुत बदनाम था कगलर।* हमेशा जासूस और पुलिस उस के पीछे लगे रहते थे। पर उस ने जो नौवी हत्या की थी, वह अपने बचाव के लिए एक पुलिसमैन पर गोली चलायी थी। वह पुलिसमैन भी मरते-मरते उस पर सात गोलियाँ चला गया था, जिस से कगलर मर गया खैर, वह दूसरी दुनिया म पहुँचा, परलोक म, और तीन जजो की खास अदालत मे हाजिर किया गया '

सुननेवालो का कहानी से बँधा हुआ ध्यान जरा सा छिटक गया स्टेज पर बठे हुए जजो की ओर देखकर हवा जैसे मुसकरायी हो, पर उर्सिला किसी के ध्यान को छिटकने का मौका नही दे रही है कह रही है, 'मेज पर उसी तरह की फाइलें थी, जैसी हमारी दुनिया म हमारी अदालतो मे होती हैं—कि फर्दिनाद कगलर, बेरोजगार, अमुक तारीख को जन्मा और अमुक तारीख हो उन फाइलो में उस की मृत्यु की तारीख भी थी

'मुख्य जज ने, हमारी अदालतो के जजो की तरह ठडी आवाज मे पूछा— कगलर! तुम अपने आप को दोषी समझते हो या निर्दोष?

'कगलर ने कहा—निर्दोष।

'और जज की आज्ञा से उस की गवाही मांगी गयी।

'कमरे मे गवाह आया, अजीबोगरीब सूरत, बुजुर्ग तने हुए कधे, बडे जलाल वाला चेहरा, और शरीर पर पहने हुए नीले चोगे पर बहुत चमकदार सितारे जडे हुए।

'कगलर हैरान होकर गवाह के जलाल को देखने लगा, और वह और भी हैरान हुआ, क्योंकि तीनो जज उस गवाह के स्वागत के लिए उठकर खडे हो गये खैर, जब गवाह कुर्सी पर बैठ गया, तब जज भी अपनी कुर्सियो पर बैठ गये

'फिर मुख्य जज कहने लगा—गवाह! तुम सब कुछ जानते हो, जाननहार! तुम परम सत्य हो, इस लिए तुम्हे सौगन्ध दिलाने की आवश्यकता नही है कि तुम

जो कुछ कहोगे, सच कहोगे इस लिए अब मुकदमे की कार्यवाही शुरू की जाती है

'और मुख्य जज ने कगलर से कहा—अपराधी ! तुम किसी भी बात से मुकरने की कोशिश मत करना, क्योंकि गवाह सब कुछ जानता है खैर, जज ने ऐनक उतारी और आराम से कुर्सी की पीठ का सहारा लगाकर बैठ गया

'वह जो गवाह था, उस ने धीरे से कहना शुरू किया—यह कगलर बचपन से ही एक अक्खड बालक था। अपनी माँ को बहुत प्यार करता था, पर माँ काम मे फँसी रहती थी और लडका माँ का ध्यान आकर्षित करने के लिए दिनो दिन जिद्दी बनता गया, इतना कि एक बार इस के पिता ने इसे थप्पड मारने की कोशिश की तो इस ने पिता के अँगूठे को बडे जोर से दातो से घायल कर दिया और गवाह ने कगलर की ओर देखकर कहा—फिर तुम ने पहली चोरी की, किसी के बागीचे से गुलाब का एक फूल चुराया

'हाँ, मैं ने एक लडकी इरमा के लिए फूल चुराया था।—कगलर ने कहा।

'गवाह हँस-सा पडा, कहने लगा—हाँ, मुझे मालूम है, इरमा जब सात बरस की थी तुम्हे मालूम है इरमा के साथ क्या हुआ ?

'कगलर चकित होकर गवाह की ओर देखने लगा, बोला—मैं ने कई बार उस के बारे मे सोचा, पर मुझे फिर पता नही चला कि इरमा कहाँ गयी

'गवाह ने बताया कि इरमा का एक रोगी आदमी से विवाह कर दिया गया था, और दुखी होकर वह कुछ दिनो बाद मर गयी थी

'कगलर चकित होकर गवाह के मुख की ओर देखता रहा। एक जज ने कुछ बेसब्री से गवाह से कहा—ऐ खुदा ! तुम सब कुछ जानते हो, पर यह सब ब्योरा हमे नही चाहिए, तुम सिर्फ कगलर के गुनाहो की बात करो।

'सो कगलर ने जाना कि खुद खुदा उस का गवाह है।'

हाल मे बैठे हुए सारे लोग बुत से हो गये हैं, जज भी, और उर्मिला की कहानी आगे बढ रही है।

'गवाह हँस सा दिया और बताने लगा कि कगलर की दोस्ती एक बूढे शराबी से हो गयी, जो समय कुसमय कगलर को खाना खिलाया करता था।

कगलर से रहा न गया, बीच मे ही बोल पडा—पर उस की लडकी मरी का क्या हुआ ?

खुदा ने बताया—मरी मुश्किल से चौदह बरस की हुई थी, जब जबरदस्ती उस की शादी कर दी गयी और बीसवें बरस मे वह मर गयी मृत्यु के समय तुम्हे बहुत याद कर रही थी

'कगलर ने बहुत उदास होकर खुदा से पूछा—मैं तो चौदह बरस की उम्र मे घर से भाग गया था, मेरी माँ का क्या हुआ ? मेरी बहन का ? मेरे बूढे बाप

का ?

'ख़ुदा ने बताया—चिंताओं के कारण तुम्हारे पिता की मृत्यु हो गयी और मां की आंखें रो रोकर जाती रहीं। गरीबी के कारण तुम्हारी बहन का विवाह नहीं हो सका, इस लिए वह लोगों के कपडे सीकर निवाह करती है।

'मुख्य जज ने गंभीरता से टोका—ऐ ख़ुदा ! मुकदमे की कार्यवाही करनी चाहिए—यह बताओ कि अपराधी ने कितनी हत्याएँ कीं ?

'गवाह बताने लगा—इस ने नौ हत्याएँ कीं। पहली हत्या एक दंगे फ़िसाद में इस के हाथों अनजाने हो गयी थी, जिस के लिए इसे जेल में डाला गया था। जेल में यह बहुत बिगड गया। बाहर आकर इस ने दूसरी हत्या अपनी बेवफ़ा प्रेमिका की की। तीसरी, चोरी करने के बाद उस बूढे आदमी की, जिस के यहां इस ने चोरी की। चौथी हत्या रात के एक पहरेदार की। पांचवीं और छठी हत्याएँ एक बूढे आदमी और उस की औरत की, जिन के यहाँ चोरी करने से इसे केवल सोलह डॉलर मिले थे, जब कि उन के पास बीस हजार डॉलर थे

'कगलर ने हैरान होकर पूछा—बीस हज़ार डालर ? वे कहां रखे हुए थे ?

'ख़ुदा ने बताया—उसी चटाई में, जिस पर वह सोये हुए थे—और कहा—सातवीं हत्या इस ने अमरीका में अपने एक हमवतन की की थी, और आठवीं एक रास्ता चलते आदमी की, जो पुलिस से भागते हुए इस के रास्ते में आ गया था और नौवीं हत्या उस पुलिस वाले की, जिस ने इस पर गोलियां चलायीं, और इस ने उसपर

'अपराधी ने इतनी हत्याएँ क्यों कीं ?—एक जज ने पूछा।

फिर ख़ुदा कगलर की ओर देखकर कहने लगा—कुछ पैसों के लिए, कुछ गुस्से में आकर, कुछ अचानक हो गयीं ख़ैर, यह उदार हृदय भी बहुत था, समय-समय पर लोगों की सहायता भी कर दिया करता था बडे कोमल स्वभाव का था, इस लिए स्त्रियों के साथ इस का व्यवहार अच्छा था वादे का यह पक्का था, किसी से जो कहता था, सदा

'एक जज ने ख़ुदा को टोक दिया कि इस विवरण की आवश्यकता नहीं है। और फिर तीनों जज कगलर की फाइल पर गौर करने के लिए बराबर के कमरे में चले गये

'अब कगलर और ख़ुदा कमरे में अकेले रह गये तो कगलर ने हैरान होकर ख़ुदा से कहा कि मेरा खयाल था कि इस दूसरी दुनिया में सारे फ़ैसले तुम स्वयं करते होंगे, पर यहां भी यही लोग फ़ैसले करते हैं क्या ?

'और ख़ुदा कुछ उदास होकर कहने लगा—हाँ कगलर! इन्सान के कामों का फ़ैसला इन्सान ही कर सकते हैं मैं पूरा सच जानता हूँ और जब पूरा सच जान लिया जाता है, तब किसी के गुण अवगुण का फ़ैसला नहीं किया जा सकता

ये इ सान अधरा सच जानते है, इसी लिए सजा का फसला कर सकते हैं '

उसिला ने एक ठडी-सी सांस ली है, इतनी ठडी कि सारे हॉल मे हलका-सा कम्पन फल गया है।

वह कह रही है—'हम सब अधूरे सच के योग्य है, हम अपनी विल पावर से दुनिया बदल सकते हैं—यह एक मोहक भ्रम है, जो केवल अधूरे सच से ही स्थापित रखा जा सकता है। मै यह बिलकुल नही कहना चाहती कि भ्रम नही रखना चाहिए, क्योकि भ्रमो के बिना जि दगी को जिया नही जा सकता केवल यह कहना चाहती हूँ कि इन जैसे भ्रमो को अ तिम सच कह देना मनुष्य की काई जीत नही हैं '

और उसिला स्टेज से उतर रही है।

हॉल म उपस्थित सभी जन हाथ हिलाना भी भूल गये है और कुसियो स उठना भी।

तीन कुसियो पर बठे हुए तीन जज मानो घडी-भर के लिए कुसियो का अस्तित्व ही भूल गये हो। एक ने दायी आख के पास आये पानी को धीरे से उँगली से पोछा है।

और जि दगी का तकाजा अचानक अस्तित्व म आ गया है—सारा हाल तालियो से गूज उठा है। जजो न एक-दूसरे की ओर दखा है—फिर उन म स एक न उठकर स्टेज से परे जाती हुई उसिला का नाम पुकारा है।

एक नाम एक हाल मे गूजकर खुले दरवाजे से बाहर चला गया है।

दूर घाटियो म

दूर पहाडियो के पीछे

समय के भी परे

इकबाल कमरे म सुन्न सा रह गया है।

बीता हुआ समय कुछ क्षणो के लिए कमरे मे आया और चला गया।

शायद उसी खिडकी से आया था—इकबाल ने चकित सी आखो स अपन इद-गिद देखा—वह, जो एक ब द कमर की खिडकी उस ने सवेरे के उजाले क साथ खोली थी।



इकबाल ने काफी का गर्म प्याला बनाया और किचन के ऊँचे स्टूल पर बैठकर सामने पत्थर के स्लैब पर प्याला रखते हुए सोचा—एक समय था, जो मेरा हो सकता था, मेरे साथ पांव से पांव मिलाकर चलता हुआ। इस समय यहां, इस कमरे में आ सकता था

काफ़ी के एक प्याले की-सी वास्तविकता।

रोटी के टुकड़े की सी वास्तविकता।

पर वह समय—

किसी नदी में गिर गया पानी की तरह बह गया।

या शायद भूमि पर गिरकर एक पत्थर के समान हो गया।

और काफ़ी के प्याले की ओर बढ़ा हुआ इकबाल का हाथ भी ठहरे हुए समय की भांति हो गया।

हाथों में कुछ फूल थे, और हाथ उर्मिला की ओर बढ़ा हुआ था।

उर्मिला के घर के मोड़ वाले मंदिर की दीवार के पास। और कुछ आवाज़ें थी, जो अभी भी वहां हवा में खड़ी हुई थी।

—इकबाल! तुम यहां?

—तुम्हें यह फूल देने के लिए

—हार के फलसफे को फूल दिये जाते है?

—सच के अधूरेपन को देखना हार का फलसफा नहीं

—पर उसे जीत भी तो नहीं कह सकते।

—जीतो और हारो को देशो की लड़ाइयों के लिए रहने दें।

—फिर?

—केवल यह जानना चाहता हूँ

—क्या?

—कि इस उम्र म, उम्र के परे जो कुछ होता है, वह तुम ने कैसे देखा है ?
हवा म एक हँसी-सी भी ठहरी हुई है
और ठहरे हुए समय के पास खडा हुआ इकवाल अब भी उसे सुन सकता है
—इकवाल ! तुम ने कभी वे लोग देखे है, जो खुद अपने जनाज़े के साथ चलते हैं ?
—नही उर्सिला !
—म ने देखे हैं। शायद इसी लिए जो कुछ उम्र के परे है, वह देख सकती हूँ।
—वे लोग ?
—इतिहास भरा हुआ है उन लोगो से—नही, यह इतिहास नही, जो हम स्कूल या कॉलिज मे पढते है ।
—खँडहरो मे दवा हुआ इतिहास ?
—हा, खामोशी के खँडहरो म दवा हुआ उस का कोई-कोई टुकडा सा कभी खुदाई मे निकलता है उसे भी लोग कभी जब्त कर लेते हैं, पर कभी हवाओ मे रुलता हुआ सा अचानक दिखाई दे जाता है। मैं ने परसो एक जब्त शुदा किताब पढी थी
—जब्तशुदा किताव ?
—एक जेल के कदी की लिखी हुई।
—वहुत भयानक होगी ?
—हा, वहुत भयानक उस मे मेरी उम्र की कई लडकियो की वारदातें भी थी
—जेलो म डाली हुई लडकियो की ?
—जेलो म केवल साधारण कदियो की तरह नही और राजनीतिक कदियो की तरह भी नही वे आम साधारण थी, जिन के पास सिर्फ एक छोटे से घर का सपना होता है, छोटे-से रोजगार का और इज्जत की रोटी का
—पर वह जेलो मे ?
—मैं ने कहा था न—दुनिया दो हिस्सो म बँटी हुई है, एक को आदेश देने का अधिकार होता है, दूसरे का लेने का वह जिन अफसरो की नजर चढी और उन के आदेश का उल्लघन कर दिया
और हवा म ठहरी हुई हँसी इकवाल के कानो को छूती रही
—साधारण लडकियो की साधारण घर वसाने की विल पावर

—और अफसरो ने उन्हे राजनीति के जाल म फँसाकर जेलो म डलवा दिया। सिर्फ इतना ही नही, जेलो के दारोगाओ को हुक्म मिला कि उन्हे जेल के

अफ़सरो की वेश्याएँ बना लिया जाए। इक़बाल ! ये कुछ वे लोग होते हैं, जो अपना जनाज़ा आप देखते हैं।

—पर उर्सिला

—तुम कहोगे, मैं उन लडकिया मे अपनी शक्ल क्यो देखती हूँ ? वे, वे थी, मैं नही ।

और हवा म अभी तक उर्सिला की आवाज की तरह इकबाल की खामोशी भी ठहरी हुइ है

उर्सिला की आवाज़ है—मैं ने उन्हे आखो से नही देखा, लेकिन उन्ही जसी अपनी मा को आखो से देखा है।

—माँ को ?

—मा जब कुआरी थी, उसपर कोई रीझ गया था। वडे तगडे घर का आदमी था। उस गाव का राजा कहलाता था। और मा ने भी वही अपराध किया, जो उस की श्रेणी के लोगो को नही करना चाहिए। जिद ठान ली कि वह मर जायगी, पर उस घर नही जायेगी। मा की आखो म भी एक छोटे-से घर का सपना था।

—वह सपना ?

—पूरा हुआ, पर एक कज की तरह

—कर्ज की तरह ?

—हाँ। घर बना, मर्जी का मद भी मिला, और एक बच्चा भी यानी मैं पर इस दुनिया का कज बढता गया।

—उर्सिला !

—जगबीती नही, आपबीती कह रही हूँ। मैं सात बरस की थी, इस लिए जो आखो से देखा था, वह आखो म पडा रहेगा। उस समय जब कज लेने वाले लोग आये थे बहाने से आये थे कि मेरे पिता को घोडी से गिरकर बहुत चोट लगी है, और माँ उस के घावो की पीडा से चीखकर, उन लोगो के साथ चल दी थी।

—यह उसी गाँव के राजा कहलाने वाले का बदला था ?

—हाँ, और यह बदला उस ने अपनी हवेली म बठकर लिया

—और माँ ?

—जब आधी-रात को हवेली के बाहर निकाल दी गयी साधारण औरतो के बडे साधारण सस्कार होते हैं, इकबाल ! वह एक टूटा हुआ सपना लेकर साबुत घर मे नही लौट सकती थी, वह नदी म डूबकर मर गयी। वह आप अकेली अपने जनाज़े के साथ गयी थी।

वहाँ, मदिर की दीवार के पास, इक्बाल की एक खामोशी है, जो पत्थर

बनकर धरती पर गिरी थी, और अभी तक वहाँ एक पत्थर की तरह पड़ी हुई है।

उर्मिला की आवाज़ भी वहाँ ही खड़ी हुई है।

फिर मैं ने अपने पिता को अपने जनाज़े के साथ जाते हुए देखा। और कोई बदला उस के बस का नहीं था और न उस ने लिया, पर एक बदला उस के बस में था जिस दुनिया ने उस की औरत छीन ली थी, उस ने उस दुनिया की ओर पीठ कर दी साधु होकर उस ने दुनिया तज दी।

—वह जीवित है ?

—जीने और मरने का सम्बंध अपने ज्ञान के साथ होता है। अगर ज्ञान न हो तो दोनों चीज़ें एक समान हैं।

—उर्मिला !

—इसी लिए अपनी उम्र से बहुत आगे आ गयी हूँ, इकबाल ! और अब आशाओं और सपनों जैसी चीज़ों की ओर पीछे नहीं लौटा जा सकता

शायद इकबाल का हाथ कांप गया था कॉफ़ी का प्याला अपने-आप कांप गया, वह स्लैब से नीचे गिरकर कई टुकड़ों में बिखर गया।

'वह समय अब कहीं नहीं ' इकबाल के माथे की एक नस अपने लहू को कसती हुई-सी माथे की चीस बन गयी 'मैं बहुत दूर आ गया हूँ लौटकर उस समय की ओर नहीं जा सकता '

आँखों के आगे से मानो मंदिर की दीवार बह गयी।

केवल मलबा रह गया।

इकबाल किचन के स्टूल से उठा मानो कोई बेहोश-सा इंसान मलबे के नीचे से निकला हो।



पाव एक आदत म वँधे हुए उसे सोने के कमरे मे ले गये, पर शरीर म एक अजीब-सी थकान थी कदम लडखडाते हुए से। वह अपने पलग के पास आकर एक हाथ से उस की पट्टी को पकडकर पलग पर बैठा गया।

किसी ने, एक मलबे का ढेर सा, मानो उस परली जगह से उठाकर इधर इस ओर रख दिया हो।

एक गहरी और कठिन सास लेते हुए इकबाल को अपने ऊपर आश्चय सा भी हुआ उर्मिला की मा नदी मे डूब गयी थी यह बात मुझे ज्ञात थी परन्तु आज ऐसा क्यो लगा, जसे यह बहुत भयानक बात अभी अचानक मालूम हुई हो।

ऐसे, जैसे आज इकबाल न नदी म बहती हुई उस की लाश देखी हो

पलग के पास रखी हुई शीशे की सुराही मे से इकबाल ने पानी पिया, पावो के तलुओ तक एक ठडी सी लकीर खिच गयी।

आज जैसे सब कुछ दूसरी बार घट रहा हो।

जसे एक समय दुनिया पर दो बार आया हो।

नही, शायद समय एक गुफा की भाँति वही खडा है केवल वह स्वय दूसरी बार उस गुफा म से गुजर रहा है।

आज आज उर्मिला उस के पास स दूसरी बार खो गयी है।

आज आज उर्मिला की माँ दूसरी बार मर गयी है।

इकबाल ने अपने आपका एक दीवानगी की खाई म उतरते हुए देखा। कुछ दिखाई नही दिया केवल एक अँधेरा धरती को खोदकर बनाई गई अँधेरी गहरी जगह मे छिपा हुआ हो।

मन के पत्थरो को चीरती हुई सी एक चीख से इकबाल ने अपने पाँव सम्भाले।

अपना हाथ पकड़कर वह खाई से कुछ बाहर आया और अपने ध्यान को सम्भालने के लिए कमरे की दीवारों और किताबों की ओर देखने लगा।

अलमारी से एक किताब उठायी, रखी दूसरी का उठाया, रखा। ऐसे ही कुछ पन्ने आगे पलटे कुछ पीछे, और उकताये हुए हाथों ने कितनी ही किताबें अलमारी के पास रखी हुई मेज पर बिखर दीं।

—उर्मिला किताबों के बाहर है।

—उस की मां की लाश भी किताबों के बाहर है।

वह हाथों की भांति, उकताकर, मेज के पास इधर को आने लगा तो खयाल आया दुनिया म न जाने कितने लोग हैं, जो इस तरह मरते हैं, और भरी दुनिया म वे अकेले अपने जनाजे के साथ जाते हैं

हाथ जल्दी से इण्डेक्स की आर बढे और उस म व आत्म हत्या के इतिहास के पन्ने का नम्बर देखकर सुनहरी अक्षरा की एक किरमिची जिल्द की पुस्तक म से वह पन्ना निकालकर आत्म-हत्या का इतिहास पढने लगा

आत्महत्या के क्षेत्र म एक सौ वर्ष की खोज

इकबाल के निचले होठ के पास मुसकराहट की एक लकीर-सी खिंच गयी। 'मर्दुमशुमारी की तरह मरने वालों की पूरे आंकड़ा के साथ की गयी खोज '

ये आकड़े अक्षरों म डूबन और तरने लग

'कई देशों मे दूसरे देशों के मुकाबले आत्महत्या की दर पाँच गुना है।

'और देशा के मुकाबले म आयरलड के आकड़े सबसे कम हैं एक लाख की आबादी के पीछे केवल तीन व्यक्ति ।

'डेनमार्क, आस्ट्रेलिया और हगरी मे आत्महत्या करने वाला की गिनती सबसे अधिक है लाख पीछे बीस से अधिक

फ्रास, जर्मनी और स्वीडन मे पन्द्रह और बीस के बीच

'इग्लैंड और अमरीका म दस या बारह

'स्पन, इटली, नार्वे मे पाच से लेकर दस तक

'सबसे अधिक गिनती जापान मे '

और साथ ही इकबाल का ध्यान इन अक्षरों पर पडा—'यह गिनती बहुत अधूरी समझी जानी चाहिए, क्योंकि बहुत सारे मरने वालों के रिश्तेदार इस वास्तविकता को छिपा जाते हैं।'

—उर्मिला ने मुझ से कुछ नहीं छिपाया, पर तब भी नदी मे पड़ी हुई उस की माँ की लाश किसी गिनती म नहीं है।

हाथ मे ली हुई पुस्तक का पन्ना कांप गया शायद इकबाल की एक गहरी सी साँस उसे छू गयी थी

शायद दुनिया के सभी मरने वालों की आत्मा को छू गयी थी।

एक नदी का पानी उछलता हुआ सा किनारो को छू गया न जाने मन की नदी का, या उस नदी का, जिस म उर्मिला की मा की लाश थी

इक़ब ल की आंखो के सामने कुछ अक्षर फैल गये।

'आत्मघात के लिए हथियारो का इस्तेमाल प्राय स्त्रियाँ नही करती है, केवल पुरुष करते हैं '

और इक़बाल का मन पुरुषो के उन हथियारो के बारे म सोचने लगा, जो लोहे के नही होते।

—जिन वहशी हाथो से गाव के उस राजा कहलाने वाले आदमी ने उर्मिला की माँ को मौत के रास्ते पर भेजा था, वह भी तो हथियार था, लोहे का नही, केवल वहशत का, जहरीले मास का

और इक़बाल के मस्तिष्क मे एक विचार रक्त की बूदो की भाँति बहने लगा 'जिस हथियार से मेरा और उर्मिला का भविष्य मर गया, वह भी तो लोहे का नही था ।'

इकबाल ने अपनी आखो से अपनी ओर देखा 'वह हथियार मेरे पाँव थे, जो जाना किधर चाहते थे, और चले किधर गये मेरी आँखें जो झुकी तो झुकी रह गयी मेरी जीभ जो चुप हुई तो चुप रह गयी '

सब आकडे—पुस्तक के पन्नो मे टूटने लगे

विचार आया—'उन लोगो के भविष्य, जो आत्महत्या करते हैं, किसी गिनती मे नही हैं '

इकबाल थककर पुस्तक को परे रखने ही लगा था कि नजर पडी—एक पन्ने पर दुनिया के जीने वाला ने मरने वालो के मौसम का भी ब्योरा लिखा हुआ है।

पढने लगा

'बहार का मौसम जब अन्त होने वाला होता है और गर्मी के शुरू के दिन जब पास आने वाले होते है, तब आत्महत्या करने वालो की गिनती सबसे अधिक होती है '

इकबाल न हाथ को एक झटका देकर किताब परे रख दी। मन म विचारो की भीड हो गयी 'एक मौसम घर-घरानो की इज्जत का भी होता है जब मन के सारे कोमल पत्ते झड जाते है '

और इकबाल मन के सूखे हुए पेड के नीचे खडे होकर अपनी उस टहनी की ओर देखता रहा, जिस से एक रस्सी बाँधकर—आज से तीन बरस पहले उस के भविष्य ने आत्महत्या की थी



अचानक उसे लगा   दरवाज़े को कोई बाहर से अजीब तरह से खरोंच रहा है

यह मानुषी हाथ का खटका नही था।

शायद अतीत का कोई खटका था, जो वर्षों से उस के कानो म पडा हुआ था और आज अचानक कानो म हिलने लगा था।

उस ने एक चेतन यत्न किया, अतीत की ओर कान लगाने का   पर दूर बरसो तक एक सन्नाटा था।

अपने पुराने पहाडी गाव को ध्यान मे लाया, पर खड्डो से उठने वाली धुध गाव के मकानो पर इस तरह लिपी हुई दिखाई दी कि सारे मकान एक भुलावा से प्रतीत होने लगे   और हवा ऐसे ठहरी हुई कि पेडो के पत्ता को भी मानो हिलना मना हो।

पर खटका अभी भी आ रहा था, जसे नाखूनो और पजो से कोई दरवाज को और दीवार को उन की जगह से हिलाता हो।

उस ने दीवारो की ओर देखा, फिर दरवाज़े की ओर, उस के सोने के कमरे का दरवाज़ा खुला हुआ था। वह चकित सा उस खुले हुए दरवाज़े म से होता हुआ बाहर के बडे कमरे की ओर गया।

उस कमरे की दहलीज़ उस ने लाघी ही थी कि खटका ज़ोर से हुआ   पहले सामने की दीवार की ओर, फिर बायें हाथ के बन्द दरवाज़े की ओर

उस ने दरवाज़े की कुडी खोली तो जल्दी से सरककर रुई के गुच्छे जसी कोई चीज़ भीतर आयी और उस के पाँवो से लिपट गयी

—अरे, तू ?

उस ने झुककर सफेद रुई के गाले जसे पामरेनियन कुत्ते को हाथो म उठा लिया, पुचकारा, पूछा, 'तू अकेला किस तरह आ गया ? इतनी दूर ? अपने-आप रास्ता ढूढकर ?

वह अपनी छोटी सी जीभ स उस के हाथो को चाटने लगा।

यह छोटा-सा कुत्ता, उस के देश से बाहर जान की खबर सुनकर उस के

दफ्तर के एक सहकर्मी न उस स मांग लिया था और उस ने परसा उस द दिया था, पर आज

उसे हँसी सी आ गयी लाग ता कहत हैं, य पामरेनियन नस्ल के कुत्ते वडे डरपोक हाते ह, जितन सु दर हाते ह, उतन डरपाक, फिर यह अकेला रास्ता खोजता उस के पास किस तरह लौट आया ?

उस न उस के रेशमी बाला को दुलराया, फिर किचन म जाकर उस एक बिस्कुट दकर उस के लिए कटारे म दूध डाला।

—तू सूघकर पहचानता है न ? तून मुझ म क्या सूघा था, जिसे सूघने के लिए फिर आ गया ?

और वह रुई का गुच्छा-सा दूध चाटकर फिर उस के पावो के पास आकर पांवो को चाटन लगा

उस की उगलियां कुत्ते क वालो म छिपी हुई सी काप उठी किसी के शरीर की पहली सुगध, पहली पहचान, क्या उम्र के साथ चलती रहती है ?

ऐसे ही उस की उगलियां उर्मिला के लम्बे लम्बे वाला म डूब जाया करती थी। उस लम्बे उडत हुए से वालो म से एक महक चढ जाया करती थी।

आज उस एक अजीब खयाल आया—'अगर सारी दुनिया की औरते किसी एक जगह पर काई वैठा दे और उस की आखा पर पट्टी वाधकर कह भला वताओ, उर्मिला कौन सी है ? तो वह वाला का सूघकर उसे झट पहचान सकता है पर मनुष्य के पास बुद्धि हाती है न' एक हँसी उस के हाठो पर लकीर-सी लिप गयी 'वह जिस तरह जानवरो के गले मे जजीर बाधता है, उसी तरह अपने आप का

उस न अपन लिए गिलास म कुछ ह्विस्की और पानी डाला, फिर गिलास को ऊपर उठाकर कहने लगा, दुनिया की सब जजीरो और साँकलो के नाम, जिन्हे मनुष्य के किसी-न किसी सयानेपन न बनाया '

कुछ देर बाद उसे खयाल आया, 'मालूम नही, मिस्टर आचाय ने इसे जजीर से क्या नही वाँधा ?'

—यह वहुत छोटा है, जजीरें तो उम्र के साथ पडती हैं उस ने आप ही अपने आप को जवाब दिया।

और फिर उसे खयाल आया व लोग इसे ढूढ रहे होगे, क्या मालूम, ढूढते हुए यही आ जायें ?

आज वह नही चाहता था कि कोई आय। उस ने सोचा स्वय जाकर इसे छोड आऊँ। बाहर से ही किसी नौकर को देकर आ जाऊँगा ।

उस न जल्दी से कपडे पहने। अभी तक उस ने साने वाले कपडे पहने हुए थ, ऊपर सिफ ड्रेसिंग गाउन लपेटा हुआ था। और उस ने छोटे से पामरेनियन को

हाथ मे पकडकर, बाहर आकर अपनी गाडी का दरवाजा खोला। उसे गाडी मे रखा, और जब वह घर के बाहर वाले गेट को खोल रहा था, अचानक एक सवालिया हाथ उस के सामने आया।

दरवाजे के पास से गुजरता हुआ एक साधु अपने हाथ का भिक्षा-पात्र उस के सामने करता हुआ दरवाजे के पास आकर खडा हो गया था। वह साधु के मुख की ओर देखता रह गया।

—क्या चाहिए बाबा ?

—जो श्रद्धा हो।

—श्रद्धा को भिक्षा की तरह मागोगे, बाबा ?

—न मागने का कोई अहकार नही, बेटा !

—अगर इस दुनिया से कुछ मागते रहना था तो दुनिया छोडी ही क्यो, बाबा ?

—वह तो शरीर छोडने तक नही छोडी जा सकती।

—फिर अगर त्याग नही है तो त्याग का यह भेस क्यो ?

—त्याग है, बेटा !

—किस चीज का ?

—मन का।

—और तन का ?

—वह मजबूरी है कुछ अन्न की आवश्यकता तन की मजबूरी है।

—फिर, बाबा, अगर तन को इनकार नही, तो मन को इनकार क्या ?

—तन पर भी सयम है, बेटा ! केवल उस की अग्नि के लिए दो मुट्ठी अन्न

—क्या मन की अग्नि सच नही है, बाबा ?

—वह भी सच है, जिज्ञासु, पर उस का अन्न और है

—कौन सा ?

—ईश्वर उस का सृजनहार

—क्या जिस मा ने जन्म दिया, आप का यह शरीर रचा, वह ईश्वर नही थी ? छोटा-सा ईश्वर ?

—वह माया का जाल है, बेटा !

—क्योकि दिखाई देता है पर ईश्वर दिखाई नही देता, इस लिए उस का जाल भी दिखाई नही देता क्या जो दिखाई देता है, केवल वह ही झूठ है ?

उस के अन्तर से उस साधु के प्रति उठता हुआ क्रोध मानो उस की आंखो मे आ गया।

घर दिखाई दिया।

यह शायद गाडी के हार्न की आवाज थी, सामने घर म से एक नौकर दौडता हुआ गाडी की ओर आया—'साहब ! हमारा पामरेनियन नही मिल रहा है।'

यह ला। अब सँभालकर रखना।'

उस ने सीट के ऊपर स छोटे-स कुत्ते को उठाकर एक बार उस क बालो को सहलाया फिर उस नौकर के हाथो म थमा दिया।

'साहब बहुत परशान हुए हम इसे बहुत ढूढते रहे आप को भी फोन करते रहे, पर आप का फोन खराब था।'

'फोन खराब था ?'

हा, साहब ! बिलकुल डेड '

उसे याद आया, आज जिस समय मिस्टर पुरी का फोन आया था, उस ने उस के बाद अपने फोन का प्लग निकाल दिया था।

नौकर कह रहा था—'साहब अभी आप के घर जाने वाले थे '

वह गाडी चलाकर जाने लगा तो नौकर ने जल्दी से कहा—'साहब, अदर नही आयेंगे ?'

नही, बहुत जल्दी है।'

उस न तेजी से गाडी मोड ली।

अपने आप पर एक हसी सी आयी—बहुत जल्दी है उस जगह पर पहुँचने की, जो कही नही है ।



आसमान पर हलके से बादल थे, पर अचानक गहरे हो गय, और नन्ही नन्ही बूदें पडने लगी।

उस ने गाडी का वाइपर नही चलाया, केवल गाडी को धीमी चाल पर डाल दिया और सामन के शीशे म से इद गिद की इमारतो को इस तरह देखता रहा, मानो सारे शहर को कुछ धुधला करके देख रहा हो।

उस के हाथ पर गीला-सा स्पश अभी भी था। उस के रुई के गुच्छे जैसे पामरेनियन ने लौटते समय जब फिर उस के हाथ को जीभ से चाटा था तो उस की गीली जीभ का कुछ अभी भी उस के हाथ पर पडा रह गया था।

ज़िन्दगी के कई बीते हुए दिन भी शायद गीली जीभ की भाति होते है, उसे लगा, तो विचार आया, 'कुत्त को पालतू बनाने की मनुष्य की रुचि बहुत पुरानी है, इतिहास के अनुमान के अनुसार आज स चौदह हज़ार वष पहले की।'

और मन मानव-स्वभाव के खडहरो मे चला गया पर कई यादा को पालतू बनान वाली रुचि न जाने कितने हज़ार साल पहले की है।

उस के मन म एक अजीब तुलना आयी जसे कुत्तो की कई नस्ले होती ह, उसी प्रकार मनुष्य की यादो की भी कई नस्लें होती हैं।

—कुछ यादें, केवल कोमल-सी खाल वाली, पावो से और हाथा से लिपटती हुई, छोटी-सी जीभ मे शरीर के मास को चाटती हुई और छोटी छोटी आखो से टिमटिम आप के मुह की ओर देखती हुई।

—कुछ जिन की आखें भी सामन दिखाई नही देती, बालो मे गहरी कही छिपी हुई होती है, पर यह मालूम होता है, वे वही छिपकर आप को दख रही है।

—कुछ आप के पहरे पर बठती हुई, और दुनिया के हर खटके पर भौकती हुई।

—और कुछ याद, यादो की बैरी, एक दूसरे के अस्तित्व को नकारती हुई, परस्पर मे लडती हुई, झगडती हुई, और एक दूसरे को लहूलुहान करती हुई।

—और कुछ यादे, आप चाहे कही क्यो न चले जाये, आपक खुरो को सूघती हुई, आप का पीछा करती, आप को सदा ढूढ लेती है

और कुछ यादे, केवल रोटी के टुकडे के लिए पूछ हिलाती हुई

—और कुछ, पागल हो गयी उन के मुह से झाग निकलती हुई।

उस के पाँव को जसे एक पागल कुत्ते ने दातो म भीच लिया

और पाँव घबराकर उस के पास से छूटने के जतन मे गाडी के ऐक्सिलरेटर पर दब गया।

बायी ओर से मुडने वाली कार वाले न अगर ज़ोर से ब्रेक न लगाया होता तो मन की घटना बाहर सडक पर बिखर जाती।

उस ने माथे पर आय हुए पसीने को घबराकर पोछा, और गाडी को अगली सडक पर धीमी चाल मे डालकर वाइपर को चला दिया।

चलते हुए वाइपर मे से शहर की इमारतें एसे दिखाई दने लगी, जस एक पल कोई उन पर मुलतानी मिट्टी लीपता हो, और दूसरे पल पोछता हो

दिन की लौ अभी बाकी थी, पर मह ने उसे ढक लिया—इस लिए कई इमारतों म बिजली की रोशनी होने लगी।

छोटे-छोटे, गोल टुकडो म टूटी हुई रोशनी।

और आग को पालतू करने वाली बात पर उसे हँसी-सी आ गयी।

'पालतू आग म से धुआँ नही उठता,' उसे ध्यान आया, 'पर और हर तरह की आग से धुआँ उठता है '

धुएँ स उस का ध्यान सिगरट पीने की ओर गया और उस ने जेब स सिगरेट केस निकालकर सिगरेट सुलगा ली

सिगरेट के धुएँ म से जसे कई धुएँ निकल आये।

खडो म से उठती हुई धुध का धुआँ

पहाडी घरो के चूल्हो से उठता हुआ लकडियो का धुआँ

हवन की अग्नि म से उठता हुआ सामग्री का धुआँ

कारखानो की चिमनियो म से उठता

और चिता की आग मे से

पूरी की पूरी जिन्दगी उस की आंखो के सामने अगारे की तरह जली और भस्म हो गयी

फिर उस की अपनी साँस भी मानो उस के होठ से छुई कोहरे म से निकलते हुए मुह के धुएँ की तरह

और फिर साँस, जैसे, अचानक रुक गयी हो—सामने सडक पर कोई दो जने —एक जवान लडकी और एक उस के साथ कोई—सिर पर एक ही छतरी ताने हुए, मेह से एक दूसरे को बचाते हुए—बिलकुल उस की गाडी के सामने आ गये थे

उस ने जोर से ब्रेक लगाया, इतना कि पहियो के एकाएक रुकने की आवाज जोर से हवा मे फल गयी और गाडी उलटने को होती हुई सी काँपकर खडी हो गयी

सडक के दोनो किनारे जो दुकानें थी वहाँ से कुछ लोग दौडते हुए-से आये

—क्या हुआ साहब ?

उस न हैरान गाडी के दोनो ओर खडे हुए लोगो की ओर देखा, कहा, 'कुछ नही, वे सामने गाडी क नीचे आ चले थे '

लोगो न सामन वाली सडक पर देखा, उन की चकित आखें मानो पूछ रही थी, 'कौन ?'

वह गाडी से उतरा। सामन सडक की ओर देखने लगा, पर सडक दूर तक खाली थी।

उस ने घबराकर, नीचे, गाडी के पहिया की ओर देखा जसे सडक वाले वे दो जन, अगर सडक पर नही दिखाई दे रहे है तो जरूर गाडी के पहियो के नीचे होगे पर वहा कुछ नही था—

लोग हैरान थे, 'साहब ! गाडी उलट चली थी, मुश्किल से बची है. '

'पर वे ?'

'वे कौन ?'

'कोई दो जन थ, छतरी लेकर चल रहे थे

पर सडक पर तो कोई नही

वह परेशान सा फिर गाडी मे बैठ गया, गाडी को स्टाट किया और सामने की खाली सडक को देखता हुआ गाडी चलाने लगा

उस के हाथो मे हलका सा कम्पन आ गया

खयाल आया—जब वाइपर नही चलाया था सारे शहर का धुधला करके देख रहा था जस हर चीज को धुधला करके पर वह छतरी धुध मे से कैसे उभर आयी थी ? बिलकुल मरे सामन आ गयी थी

बहुत पुराना एक दिन याद आया, जब उर्सिला बरसते हुए मेह म कालेज स घर को चल दी थी।

वह कितनी देर तक उसे चलते हुए देखता रहा, उस की भीगी हुई पीठ को देखता रहा।

वह फिर पास से, एक पान वाले की दुकान की ओर चढ गया था और एक रुपये का नोट पान वाले को दकर, उस की छतरी उधार मांगकर उर्सिला के पीछे दौड-सा पडा था।

हाथ मे ली हुई छतरी उस ने दौडकर उर्सिला के सिर पर तान दी थी।

उर्सिला ने भी छतरी की डडी को हाथ मे लेकर छतरी को उठाया था और फिर वह थोडी थोडी देर बाद डडी पर जोर डालकर छतरी को अपने सिर से परे—उस के सिर की ओर कर दती थी।

छतरी एक ही थी, और कभी वह आधी भीग जाती थी, कभी वह

उस का पाव कभी ऐक्सिलरेटर पर कांपता रहा, कभी ब्रेक पर, और उस की गाडी शहर की कई सडको के मोड काटती रही

पर विचार एक ही सडक पर पड गया—आज वह गाव की पगडडी वाला दिन शहर की सडक पर क्यो आ गया ?

वही मेह ? वही छतरी ?

वह घर से सिफ अपने पामरेनियन को मिस्टर आचाय के घर छोडने आया

था, पर घर लौटने की बजाय वह शहर की सडका पर, यूँ ही, जो मोड सामने आता, उधर ही गाडी को मोडता हुआ शहर को देखे जा रहा था

मेह अभी थमा नही था, इस लिए सडकें और सूनी होने लगी थी, और कई जगहो की, खास कर बडी सडका की दुकानें ब द होने लगी थी।

फिर अकेले, भीगते हुए, और जलती-बुझती बत्तियो के शहर को देखन का यह अनुभव, अचानक उस के मन मे किसी उस देश के उस शहर स मिल गया, जिसे उस न कभी देखा नही था, केवल एक कदी की डायरी म पढा था

"मुझे शीशो वाली एक ब द गाडी म बठाकर व ले जा रहे हैं गाडी भरे शहर म से गुजर रही है ओर इधर-उधर लोग गिरती हुई बफ म भी चल रहे हैं बिजली की रोशनी म बफ अजीब तरह स चमकती है। लोगो क चेहरे भी अजीब तरह से चमक रहे हैं। एक ठडी और एक गम लहर मिलकर उनके चेहरो पर बठी हुई ह। बफ की ठड ओर जि दगी की गर्माइश। मैं शीशो म स उ ह देख सकता हूँ, पर उन तक यह खबर नही पहुँचा सकता कि मैं आज भर शहर मे से गुजरते हुए भी बिलकुल अकेला हूँ, और अभी मिनटा बाद मैं उन की आबादी का हिस्सा नही रहूँगा।"

और वह, गाडी को चलाता हुआ, गाडी के शीशा म स भरे शहर को एक वैसी हसरत से देखने लगा, जिस स बहुत वर्षों के लिए किसी जेल म पडने स पहले केवल एक कदी देख सकता है।

फिर सामने एक चौक की लाल बत्ती ने जब उस का पाँव ब्रेक पर रखवा दिया, उस का होश उसे रोककर कहन लगा, 'जि दगी म ब द शीशा वाली कुछ वे गाडिया भी होती है जि ह मनुष्य स्वय ही चलाता है और स्वय ही उन म कदी होकर बठता है

चौक की लाल बत्ती न जब रग बदला, यानी हरी होकर दिखाई दी, ता उस ने गाडी को चौक से लँघाकर अगले गोल चक्कर स घर की ओर मोड लिया।

यह भी जसे स्वय को दिया हुआ स्वय का आदेश था।

लगा—शायद यही घर की ओर जाने वाली वह सडक थी, जिस से बचता हुआ, वह कई घटा से शहर की सडको पर फिर रहा था।

मेह थम रहा था, बस कोई-कोई बूद रह गयी थी। उस ने वाइपर ब द कर दिया। पर कुछ देर बाद देखा—शीशे पर पडने वाली किसी किसी बूद से वह कुछ इस तरह दिखाई देने लगा, जसे शीशे को पसीना आ गया हो।

गाडी जब घर के दरवाजे से गुजरकर, दीवार के साथ लगकर खडी हो गयी तो उस ने गाडी से उतरते हुए, सामने की दीवार पर लग हुए पीतल के उस टुकडे की ओर देखा, जिस पर उस का नाम लिखा हुआ था—जसे हर जेल के बाहर जेल का नाम लिखा हुआ होता है।



न जाने क्या, उस का हाथ दरवाज़े के पास लगी हुई घंटी के बटन की ओर गया—मानो वह एक मुलाक़ाती हो और इस घर में किसी से मिलने आया हो।

घंटी ज़ोर से बज उठी तो उस का हाथ मूर्च्छित-सा हो गया

हवा तेज़ हो गयी थी। अचानक दीवार पर लगे हुए पीतल के टुकड़े में से, छोटा-सा टुकड़ा हवा से झड़ गया और भूमि पर उस के गिरने की आवाज़ आयी।

उस ने चौंककर उधर दीवार की ओर देखा। उस के नाम वाले पीतल के उस टुकड़े की छाती में से शायद एक कील नीचे गिर गयी थी, पर छाती में चुभी हुई दूसरी कील के सहारे वह अभी भी दीवार के साथ लगा हुआ था, पर लटकता हुआ-सा और हवा से हिलता हुआ, मानो हाथ हिलाकर उस से कुछ कह रहा हो।

सारा मकान दीवारों में भी सिमटा हुआ था, अँधेरे में भी, पर बाहर सड़क की बत्ती की कुछ रोशनी थी, जिस में वह पीतल का टुकड़ा एक आँख की भाँति चमककर उस की ओर देखता हुआ प्रतीत होता था।

उस का अपना नाम, मानो उस की ओर देख रहा हो।

उस ने घबराकर जेब में हाथ डाला, चाबी को टटोला, और दरवाज़े के अँधेरे में छिपे हुए ताले के छेद को खोजने लगा।

जेल के दारोग़ा की भाँति जब उस ने भारी से दरवाज़े को खोला तो फिर एक क़ैदी की भाँति उस के अन्दर चला गया।

मेंह की बूँदें जैसे सिर के बालों में अटककर कमरे के भीतर आ जाती हैं, उसे लगा—पिछले दिनों पढ़ी किसी क़ैदी की डायरी के कुछ शब्द—जेल, दारोग़ा, क़ैदी—उस की स्मृति में अटककर ख़ामख़ाह उस के साथ चल पड़े हैं।

सोने के कमरे की बत्ती जलाते हुए उस ने जल्दी से अलमारी से ह्विस्की की बोतल निकाली और कट-ग्लास के एक सुन्दर-से गिलास में डालते हुए—क़ैदी की डायरी में से चिपट गये लफ़्ज़ों को अपने से झटकारना चाहा

शीशे की सुराही से गिलास में पानी डालते हुए जब उस ने गिलास ऊपर होंठों के पास किया, कानों में कहीं से आवाज़ आयी

—ऐ बंदे ! मेरे सवालों का जवाब दिये बिना इस गिलास को मुंह से न लगाना।

उसे एक बहुत पुरानी घटना याद आ गयी—एक ऐतिहासिक घटना—जब वह पांच पांडवों में से एक था और जब सब द्रौपदी को साथ लेकर वनों में विचर रहे थे। बहुत प्यास लगी तो युधिष्ठिर ने कहा, 'जाओ नकुल ! पानी का स्रोत ढूंढो।'

उस ने पानी का स्रोत ढूंढ लिया था, पर जब पानी लेने के लिए गया तो किनारे पर उगे हुए पेड़ से आवाज़ आई—'हे नकुल ! मेरे प्रश्नों का उत्तर दिए बिना यह जल मत पीना नहीं तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।'

पर उस ने आवाज़ की ओर ध्यान नहीं दिया और पानी के झरने के नीचे खड़े होकर उस ने ओक लगा दी और पानी पीते ही धरती पर ढेर हो गया।

लगा—वही आवाज़ थी, जो तब एक पेड़ पर से आयी थी।

उस ने चकित होकर ऊपर की ओर देखा।

ऊपर केवल कमरे की छत थी, और कुछ नहीं न कोई पेड़, न परछाई।

उस ने जन्म-जन्मांतरों की उस आवाज़ को पहचानने की चेष्टा की, शायद यही प्रश्न थे, जो अनेक जन्म पूर्व भी इस आवाज़ ने पूछे थे।

पहला प्रश्न था—सूर्य को कौन उदय करता है ?

दूसरा प्रश्न था—सूर्य को कौन अस्त करता है ?

और तीसरा—सूर्य के चारों ओर कौन घूमता है ?

और चौथा—सूर्य किस से सम्मानित होता है ?

प्रश्न जाने पहचाने लगे, परन्तु उत्तर ? उत्तर तो उस ने तब भी नहीं दिये थे, युधिष्ठिर ने दिये थे।

उस ने आज भी, आवाज़ को कानों से बाहर निकालकर हाथ में थामे हुए गिलास को पी जाना चाहा, पर हाथ रुक गया, आवाज़ माथे से टकरायी।

—ऐ आज के इनसान ! मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना इस गिलास को मुंह से न लगाना, नहीं तो

'नहीं तो' के आगे जो हो सकता था, वह उस के साथ हो चुका था—जब वह नकुल था।

आवाज़ ने, शताब्दियों से हवा में खड़े हुए प्रश्न दोहराये—वही चार प्रश्न, और फिर अगले चार प्रश्न—

—ज्ञाता कौन है ?

—महान पद कैसे प्राप्त होता है ?

—मनुष्य एक से दो कसे होता है ? और

—बुद्धि कस प्राप्त होती है ?

उर्मिला उस के मन म एक सूरज के समान चढी, और फिर अचानक उस के आसमानो का एक बार लाल करके सूरज की भांति डूब गयी

मन म घोर अधकार छा गया

घोर अधकार म उस न घबराकर हाथ म लिया हुआ गिलास मुह से लगा लिया ।

प्रश्न उसी प्रकार, बिना उत्तर के, हवा म खडे हुए रह गय

और वह, जसे आवाज़ न कहा था, पलँग पर बेहोश-सा पड गया ।

शायद फिर मृत्यु का शाप लग गया, जस उस समय लगा था, जब वह नकुल था ।



नही, वह मरा नहीं शायद जीवित है, उसे लगा—कि कोई उस के पलँग के पास खडे होकर उस की बाँह हिला रहा है, और उस की बाँह जीवित मनुष्य की बाँह की भांति हिल रही है।

—यादो का शाप उस अवश्य लगा हुआ था, विचार आया—आखिर मरा तो तब भी नही था, जब मैं नकुल था। युधिष्ठिर ने सब प्रश्नो के उत्तर द दिये थे और उस ने जीवन का वर पा लिया था।

लगा—आज फिर उसी युधिष्ठिर ने प्रश्नो के उत्तर दे दिये होंगे, और अब वह ही उसे बाह से पकडकर पलँग से उठा रहा है

उस ने बाह की ओर देखा, पर वहाँ कुछ दिखाई नही दिया ।

हा, यह विश्वास अवश्य हो गया कि वह जीवित है।

गले से चीख सी आवाज़ निकली—प्रश्नो के उत्तर किस ने दिये हैं ? युधिष्ठिर ने ?

कमरे मे दिखाई कुछ नही दिया, किन्तु कोई धीरे से हँसा—यह युधिष्ठिर का युग नही है।

—फिर ?

—आज के प्रश्नों के उत्तर तुम्हें स्वय देने पड़ेंगे।

—वही प्रश्न ?

—हाँ, वही प्रश्न, पर युग बदल गया है।

—प्रश्न नही बदले ?

—नही, पर शब्द बदले है।

—किस तरह ?

—जिस तरह तुम्हारा नाम बदला है। तब नकुल था, पर आज

—मैं जानता हूँ।

—फिर उठो।

—कहा जाना होगा ?

—अदालत मे।

—किस की अदालत मे ?

—यह तुम खुद जाकर देख लेना

लगा, एक हाथ उसे पलँग से उठा रहा है

कमरे मे बिलकुल अँधेरा था शायद उसी अजनबी हाथ ने कमरे की बत्ती बुझा दी थी पर बाह की कलाई के पास किसी के हाथ की पकड उसी तरह है

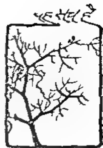
वह उठकर चलने लगा

लगा—वह धरती के एक साधारण व्यक्ति की भाँति चालीस लाख तीन सौ बीस वष स चल रहा है और कोई ब्रह्मा आज हँसकर उस से कह रहा है—अभी तो केवल एक दिन हुआ है

चालीस लाख तीन सौ बीस वष जितना एक दिन

उस की धरती का मिथहास उस की रगो म स बोल उठा—आज निणय का दिन है, किसी निर्णायक के आगे सफाई देने का दिन। किसी रचना के ईश्वर मे लीन हो जाने से पूव का दिन, जो अपना निणय किसी ओर भी दे सकता है जीवन से मुक्ति का निणय भी, और इसी जीवन को पुन जीने का निणय भी '

—यह दूसरा निणय मेरी सजा होगा उस के अपन अन्तर् से उस के मन ने कहा, पर वह खामोश चलता गया।



शायद गहरे अंधकार का प्रभाव था कि उसे लगा वह मर चुका है, अब उसे केवल पृथ्वी से यमपुरी ले जाया जा रहा है।

पूछा— हे दूत ! तुम मुझे यमपुरी ले जा रहे हो ?

उत्तर मिला— सब तुम्हारे ही बनाये हुए शब्द हैं। अगर तुम उसे यमपुरी कहना चाहते हो तो कह लो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

—रास्ता कितना लम्बा है ?

—तुम्हारे गिनने मापने का हिसाब मैं नहीं जानता

उत्तर देने वाला चुप हो गया तो उसे याद आया—एक बार युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर कृष्ण ने बताया था कि पृथ्वी से यमपुरी छियासी हजार योजन है।

और वह मन मे हिसाब लगाने लगा—चार कोस का एक योजन होता है इस तरह छियासी हजार योजन को चार से गुणा करने से बना

और साथ ही एक भयानक सी याद उभर आयी—कृष्ण ने यह सब कुछ बताते हुए कहा था कि इस रास्ते मे न कोई पेड है न कुआ, न तालाब, न कोई नगर या गाव, न आश्रम, सारा रास्ता अंधकार से भरा हुआ है

उस ने भूख प्यास की कल्पना करनी चाही, पर लगा न इस समय उसे भूख थी, न प्यास। और छियासी हजार योजन की कल्पना करके भी उस के पावों म थकावट नहीं थी।

पर लगा—कुछ था, जो अँधेरे म उस के पीछे-पीछे चलता आ रहा था।

उस ने खडे होकर पीछे की ओर देखने का यत्न किया, पर अँधेरे म कुछ दिखाई नही दिया।

पूछा— हे दूत ! हे मार्गदर्शक ! मेरे पीछे-पीछे कौन आ रहा है ! कुछ है, जो मेरे साथ चल रहा है, पर मैं उसे देख नहीं सकता।'

उत्तर मिला—पर अपने आप म एक प्रश्न के समान—'आज के मनुष्य के साथ कौन चल सकता है ?

उस ने फिर कहा—'मालूम नही, पर किसी समय कृष्ण ने ही युधिष्ठिर से कहा था कि मनुष्य जब पृथ्वी से जाता है, तब उस के पाप-पुण्य उस के पीछे-पीछे चलते हुए उस के साथ जाते है।'

अँधेरे मे हलकी सी हँसी की आवाज सुनाई दी, साथ ही यह भी—'हो सकता है, तुम्हारे यही सस्कार तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहे हो।'

उस ने जल्दी स कहा—'नही, सस्कार नही, पर हो सकता है, ये मेरे विचार हो, जो मेरे पीछे-पीछे मेरे साथ आ रहे है।'

उत्तर मिला—'हा, हो सकता है।'

फिर बहुत देर तक अधेरे की भाँति खामोशी भी छायी रही

केवल वे विचार, जो उस के पीछे-पीछे आ रहे थे, कदम मिलाकर उस के साथ चलने लगे।

एक ने, बिलकुल उस के निकट आकर, हथेली से कोई जडी बूटी सुघाई, और एक अजीब सी सुगध मे लिपटकर उस ने पूछा—'यह तुम ने मुझे क्या सुघाया है?'

'एक बूटी।'

'क्यो?'

'इस से हजारो वर्ष पुरानी बातें भी याद आ जाती हैं'

'मुझे कुछ याद नही आ रहा है।'

'अभी याद आयेगा।'

सुनो!'

'हा'

कुछ याद आ रहा है'

क्या?'

'मैं ने एक बार जुआ खेला था।'

'फिर?'

सारा धन, हीरे मोती, लाल-पन्ने दावँ पर लगा दिये'

'फिर?'

सारे गाव गोठ भी हाथी घोडे भी

फिर?'

सब कुछ हार गया'

'फिर?'

फिर मैं ने अपनी पत्नी भी दावँ पर लगा दी।'

'पत्नी?

'हा, उर्मिला भी '

'क्या कहा ?'

'हा, उर्मिला भी दावँ पर लगा दी, और हार गया '

'अच्छी तरह याद करो ।'

हा, सच, द्रौपदी उस समय उर्मिला का नाम द्रौपदी हुआ करता था '

अचानक वह चुप हो गया। उसे लगा—समय उस के अन्दर कुछ इस तरह हिल रहा है कि कभी वह हजारो वष उधर चला जाता है, कभी हजारो वर्ष इधर आ जाता है।

उस ने कोशिश की कि वह समय की कोई आवाज न सुन सके, पर एक आवाज उस के कानो के पास आयी और खडी हो गयी।

उस के विचार ने कहा, 'यह आवाज तुम्हे सुननी पडेगी

पूछा, 'किस की आवाज है ?'

'दुर्योधन की सभा म खडी हुई द्रौपदी की। सुनो! वह कह रही है कि युधिष्ठिर जब अपने आप को हार चुके तो मुझे दावँ पर लगाने का उन्हे क्या अधिकार था ?

'सुन रहा हूँ

'उत्तर दो !'

'इस का उत्तर तो युधिष्ठिर भी नही दे सके थे।'

'इसी लिए यह प्रश्न हजारा वर्षों से हवा मे ठहरा हुआ है।'

'पर मैं इस का क्या उत्तर दे सकता हूँ ?'

'अब तुम ने फिर इस जन्म में जुआ खेला धन सम्पदा और मान सम्मान के लिए जमींदार घर की लडकी से विवाह किया '

'पर मैं ने अपने आप को दावँ पर लगा दिया, और हार गया '

'यही तो आज की द्रौपदी पूछ रही है कि आज के युधिष्ठिर! तुम्ह अपना आप हारने के बाद क्या अधिकार था कि तुम ने मुझे भी दावँ पर लगा दिया आज वह किसी दुर्योधन के सामने खडी हुई '

'चुप रहो !'

चुप छा गयी



अचानक एक मद्धिम सी रोशनी हुई, सामने एक इमारत दिखाई दी, और उस के भिड़े हुए दरवाजे के पास पहुँचकर उस के पाव ठिठक गये

'यह क्या जगह है ?' उस ने अपने अदृश्य दूत से पूछा।

—अदालत।

—क्या यह पुरातन कथा कहानियो के अनुसार धमर ज की कचहरी है ?

—बीसवी शताब्दी के मनुष्य ! इस मे पुरातन कहानिया का धमराज नही, इस म तुम्हारी आज की अदालत है, जज भी और सरकारी वकील भी

—और मैं ?

—एक अपराधी।

—पर मेरा अपराध ?

—तुम अ दर जाकर पूछ लो

—पर जिन शहरो मे मैं रहता हूँ, वहाँ तो मुकदमे अकसर झूठे होते हैं

—इसी लिए यह अदालत तुम्हारे शहरो के बाहर है।

पूछने स कुछ बात नही बन रही थी, इस लिए वह भिड़े हुए दरवाजे को खोल इमारत के अ दर चला गया।

सामने एक बहुत बडी दीवार थी, जिस पर एक चित्र लगा हुआ था। कमरे मे बहुत थोडी रोशनी थी, इस लिए वह चित्र को पहचान नही सका, पर इतना जान लिया कि यह चित्र समय के उस शासक का होगा, जिस क नाम पर इस अदालत म न्याय होता है।

उसी बडी दीवार के पास, उस चित्र के नीचे, ठीक उस की सीध म एक ऊँचा चबूतरा सा था, जिस पर एक बहुत बडी मज रखी हुई थी, कागजो से भरी हुई, और जिस के पास एक ऊँची पीठवाली कुर्सी पर एक जज बैठा हुआ था। उस न सफेद चोगा पहना हुआ था, जिस से उस ने अनुमान लगाया कि वही जज है।

उस न कमरे का दायें-बायें भी गौर से देखा—वहाँ केवल एक व्यक्ति और

था, जिस का मुह जज की ओर था और उस न काला कोट पहन रखा था, जिस से उस न अनुमान लगाया कि वह अवश्य सरकारी वकील होगा।

कमरे मे और कोइ नहीथा।

उसे हलकी सी हँसी आ गयी—माना दुनिया मे केवल एक ही जज रह गया हो, एक ही वकील, और एक ही अपराधी

उस के परा की आहट सुनकर सामने की वडी दीवार के पास बठे हुए जज का ध्यान उस की ओर गया, आर उस न हाथ के सकेत से उसे उधर खडे होने के लिए कहा, जिधर लकडी का एक जगला-सा था—अपराधी के खडे होने का कठघरा।

वह कठघरे मे जाकर खडा हा गया।

खयाल आया—अजीब अदालत है, कही कोइ आवाज नही ! क्या अदालतें भी इस तरह खामोश हाती है ?

उस न धीरज से पूछा, हुजूर ! मुझे किस लिए बुलाया गया है ?'

उस वडी दीवार की ओर से न्यायाधीश की आवाज आयी, 'आज तुम्हारी पेशी है, अब तारीख और आगे नही डाली जा सकती, क्योंकि तुम जल्दी ही इस देश से बाहर जा रहे हो।'

—पर किस बात की पशी ?

—तुम तीन साल तक सोचते रहे हो कि तुम्हारे मुकदमे की सुनवाई न हो।

—पर कौन सा मुकदमा ?

—आज से तीन साल पहले तुम ने खुद ही एक दरख्वास्त दी थी

—मैं ने ?

—तुम्हे याद नही ?

—हा एक दरख्वास्त दी थी पर वह बहुत पुरानी बात है

वकील ने मेज पर से एक फाइल उठायी और धीरे से जज से कहन लगा, 'हुजूर ! यह बहुत खतरनाक आदमी है किसी बात का जवाब सीधी तरह नही देगा। आप मुझे जिरह करने की इजाजत दें।

'इजाजत है।' जज न सकेत किया।

सरकारी वकील ने जेब से रूमाल निकालकर अपनी ऐनक के शीशे पोंछे, फिर एक-दो कागजो पर कुछ पढते हुए कठघरे की ओर देखकर पूछा, 'तुम्हारा नाम ?'

उसे हँसी-सी आ गयी, बोला, 'क्या आप के कागजो म मेरा नाम नही है ? अगर आप को नाम भी पता नही है, ता मुझे यहाँ बुलाया किस तरह ?'

वकील के माथे पर हलकी-सी त्योरी पड गयी, कहन लगा, तुम्हे मालूम है,

तुम पर क्या इलजाम है ?'

—नही ।

—कत्ल का ।

—क़त्ल का ? किस के कत्ल का ?

—अपने दोस्त के कत्ल का ।

—पर वह तो

—जिस के लिए तुम ने दरख्वास्त दी थी कि मिल नही रहा है

—अगर मैं ने उसे कत्ल किया होता, तो दरख्वास्त क्यो देता ?

वकील हस उठा ।

—इसी लिए मैं ने तुम्हे खतरनाक अपराधी कहा था । अच्छा, यह बताओ, उसे गुम हुए कितना अर्सा हुआ है ?

—तीन साल ।

—वह कब से तुम्हारा दोस्त था ?

—बचपन से ।

—स्कूल म तुम्हारे साथ पढता था ?

—हाँ, स्कूल म भी, कालेज म भी ।

—उस की उम्र ?

—मुझ जितनी ही ।

—सिर्फ वही एक दोस्त था ?

—हा, सिर्फ वही ।

—तुम्हारा क्या खयाल था ?

—यही कि यह दोस्ती सारी उम्र रहेगी ।

—फिर ?

—अचानक वह गुम हो गया ।

—तुम ने उसे ढूढा नही ?

—बहुत ढूढा अभी तक ढूढ रहा हूँ ।

वकील मुस्कराया । वह हैरान हुआ, कहने लगा—'वकील साहब ! आप को मुझ पर विश्वास नही है ?'

—तुम्ह शायद खुद अपने ऊपर विश्वास नही है ।

उस क अतर् म कुछ घबराहट-सी हुई । उस ने भी वकील की तरह जेब से रूमाल निकाला, पर ऐनक को नही, माथे को पोछा । माथे पर अचानक कुछ पसीना-सा आ गया था ।

वकील हँस पडा ।

—आप मुझ पर हँसते क्या हैं, वकील साहब ?

—तुम रूमाल से माथे को इस तरह पोछ रहे थे

—यह कमरा बहुत गम है, मेरे माथे पर पसीना

—नही, तुम माथे को इस तरह पोछ रहे थे, मानो हर याद को स्मतिपट से पोछे दे रहे हो

वकील का मुह बहुत गम्भीर हो गया। कहने लगा—'तुम दोना दोस्त जब मिलकर किताबे पढते थे, वह कौन सी कहानी थी, जिस का तुम दानो पर बहुत प्रभाव पड़ा था ?'

—कई थी।

—कोई एक, जो तुम्हारे मन का बल देती थी

—एक थी एक बच्चे की, जो एक ऋषि के पास विद्या ग्रहण करने के लिए गया था

—फिर ?

—ऋषि ने उस के पिता का नाम पूछा तो वह दूसरे दिन आकर कहन लगा —मेरी मा कहती है कि मैं ने कई लोगो की सेवा करके यह पुत्र पाया है, इसलिए किसी एक का नाम नही बता सकती—और ऋषि ने बच्चे को गले से लगा लिया।

—क्यो ?

—क्योकि वह इतना बडा सच बोल सका, बडे सहज मन से वह उस स्त्री का बच्चा था, जिसे सच से कोई सकोच नही था

—तुम जानते हो, यहा केवल एक जज है एक मै, और एक तुम ?

—हाँ।

—यहा तुम्हारा कोई गवाह नही है ?

—क्यो ?

—क्योकि हमारा विश्वास है कि उस कहानी का अभी भी तुम पर थाडा-सा प्रभाव बाकी है। इस लिए तुम अपनी गवाही आप दागे।

—फिर वकील साहब ! आपन मुझे खतरनाक अपराधी क्या कहा ?

—क्योकि पिछले तीन वर्षों के 'तुम', वह 'तुम' नही हा, जो पहले थ। तुम कभी कभी कोशिश करोगे सच को छिपान की

—पर ?

—एक वाक्य म छिपाकर दूसरे मे स्वय ही बता दोग

उस ने सिर झुका लिया। एक हलकी सी आह भी भरी। फिर सिर उठा कर कहा—'हाँ, पूछिये वकील साहब, जा पूछना चाहते हैं।'

—उर्मिला कौन थी ?

—मैं उस से मुहब्बत करता था।

—अब नहीं करते ?

—जो जबान 'हाँ' कह सकती है, वह कट गयी है।

—किस ने काटी ?

—मैं ने।

—तुम्हारे दोस्त ने नहीं ?

—नहीं।

—तुम्हारे दोस्त को तुम्हारी इस मुहब्बत का पता था ?

—वह सब जानता था।

—वह खुश नहीं था ?

—वह बहुत खुश था   बहुत खुश था, वकील साहब !

—फिर ?

—मेरी माँ खुश नहीं थी।

—क्यों ?

—वह चाहती थी—मैं

—वह जमींदार के घर की दौलत चाहती थी ?

—अपने लिए नहीं, मेरे लिए।

—और तुम्हारा दोस्त ?

—वह तब पहली बार मुझ से लड़ा था। उस से पहले हम इकट्ठे रहते थे, एक ही कमरे में   उस के बाद वह मुझे छोड़कर चला गया।

—तुम ने उसे मनाया नहीं ?

—किस जबान से मना सकता था ! मैं ने अभी आप को बताया था कि जिस जबान से दोस्ती की और मुहब्बत की बात की जाती है, वह मैं ने काट दी थी।

—पर जमींदार की बेटी से ब्याह करने की हामी किस तरह भरी ?

—कटी हुई जबान से   दुनिया का हर काम कटी हुई जबान से हो सकता है, वकील साहब !

—फिर उस के बाद तुम्हारा दोस्त तुम से कभी नहीं मिला ?

—दूर से कई बार देखा

—कहाँ ?

वह चुप हो गया। उस के कानों में अनेक पेड़ों के पत्ते साँय-साँय करने लगे, अनेक मंदिरों के घण्टे बज उठे, और अनेक पुस्तकों के पन्ने हिलने लगे

—तुम बोलते नहीं ?

—अगर मैं कहूँ कि मैं ने कई बार रात को चाँद की लौ में उसे देखा था

किसी टहनी पर उगने वाले पहले पत्ते म और नदी के पानी म तैरते हुए मंदिर के कलश म और किसी किसी किताब के

वकील हँसने लगा, बोला, 'आज अगर कोई अदालत की कार्यवाही देखे तो यही समझेगा कि हम किसी कालिदास को पकड़कर अदालत म ले आये है

उस ने एक पल के लिए आँखें मूद ली शायद आखें गीली हो आयी थी, फिर बोला, 'म शायद एक छोटा सा कालिदास हो सकता था, पर हुआ नही.

—क्या तुम खुश नही हो कि तुम ने एक ऐसा पद प्राप्त किया है, जिस के लिए तुम्हारी दुनिया के कई लोग तुम से ईर्ष्या करते थे ?

—वकील साहब !

—यह चुप क्यो ?

—इस लिए कि मुझे खुशी शब्द के अर्थ भूल गये हैं

—यह पद तुम ने किस तरह पाया ?

वकील के इस प्रश्न पर वह चौंक गया। उसे वह दिन याद आया, जब उर्मिला ने उस से कहा था—'कई बाते ऐसी होती है, जिन्ह लफ्ज़ो की सज़ा नही दी जाती '

वह आँखो म एक मिन्नत डालकर वकील की ओर देखने लगा।

वकील मुस्कराया, कहने लगा—'एक बालक था, जो एक ऋषि के पास विद्या ग्रहण करने के लिए गया था '

उस ने सिर नीचा कर लिया, आवाज़ काँप सी गयी—'वह न जाने किस युग की बात थी '

—हो सकता है

—क्या ?

—कि उस युग मे वह बालक तुम ही थे।

एक पल के लिए समय और स्थान बदल गये।

वकील के कहे हुए शब्द कानो मे पड़े तो वह, जो इस समय अभियुक्त था, एक ऋषि की कुटिया म कुशा के आसन पर बैठ गया।

—फिर एक पल का सुख मन मे डालकर वह वकील की ओर देखने लगा

—क्या, मैं ने ठीक नही कहा ?

—शायद नही।

—तुम नही चाहते कि तुम वह बच्चे होते ?

—वकील साहब ! जो जबान हो कह सकती है, वह कह गयी है

वकील ने एक ठंडी साँस ली। फिर एक बार पर उस ऊँची कुर्सी पर बैठे हुए न्यायाधीश की ओर देखा, मानो अभियुक्त के लिए दया की अपील कर रहा हो।

पर न्यायाधीश चुप था।

वकील ने फिर अभियुक्त की ओर देखा, कहा—'क्या यह सच है कि तुम्हारा यह पद भी जमींदार की बेटी ने लेकर दिया था? मेरा मतलब है, तुम्हारी पत्नी ने?'

—पहला वाक्य ही काफी था, वकील साहब!

—उसे पत्नी कहने पर आपत्ति क्यो?

—आपत्ति नही, सकोच हो सकता है

—किस तरह?

—क्यो कि आपत्ति का सम्बन्ध कानून से है, और सकोच का मन से

— और तन से? वकील हँस सा दिया, तो अभियुक्त के मुह मे एक कडवाहट सी घुल गयी—पर वह चुप रहा।

इस चुप से उसे अपने तन की वह चुप याद आ गयी, जब उस ने विवाह की पहली रात जमीदार की बेटी के बिस्तर म चुप पाव रखा था

तन गूगा हो गया था

उस ने कपडो का फाडने की तरह अपने शरीर से उतारा था, पर शरीर बोलता नही था

तन की आवाज को ढूढने के लिए उस ने तन के अधे कुएँ म रस्सी लटकायी थी, पर केवल कुएँ की चर्खी चीखी थी, मानो तन की खामोशी बिलख उठी हो

आज उसे वह रात याद आयी तो उस का कल्पना धीरे से हँसी, कहने लगी —अगर उस रात वह बिस्तर उमिला का होता?

कल्पना ने टोना कर दिया तो वह सोचने लगा—'तन के साज को छूने के लिए हाथो मे अदब भरा जाता—मैं उस के अगो की गोलाइयो को इस तरह छूता, जसे कोई साज क तारा को छूता है। पोरुओ से तन की नोको को टटोलता, जसे कोई तारा को सुर दे रहा हो तार, तलवो तक हिल जाते सारे अग स्वर बन जाते परो के 'सा' स लेकर माथे के 'सा' तक

और जब खरज और गधार के जादू म वह लिपट गया, तो साज के किसी तार का तोडते हुए वकील की आवाज आयी 'सो, फिर तुम्हारा दोस्त तुम्हे कही नही मिला?'

—नही, फिर कही नही मिला—उस ने निराश स्वर स उत्तर दिया।

—कभी दूर से भी नही दखा?

—रास्ता चलते देखा था

—किस सडक पर?

—केवल एक ही सडक पर।
—कौन-सी ?
—उस पर, जिस पर कई बार रात को मैं जाया करता था
—कहा ?
—उस के पास, जा यह सब कुछ दिलवा सकता था
—और तुम्हारा दोस्त ?
—अँधेरे मे मोड पर खडा रहता था।
—किस लिए ?
—मुझे उस रास्ते से हटाने के लिए।
—तुम्हारे हाथो म क्या हुआ करता था ?
—कई तरह की रिश्वत।
—और वह तुम्हारा दास्त ?
—मेरे हाथो को तोड देना चाहता था।
—तुम उसे अपने रास्ते से किस तरह हटाते थे ?
—उसी तरह, जिस तरह किसी को रास्त से हटाया जाता है।

वकील मुस्करा पडा, कहने लगा—'सो, अब भी तुम यह कहते हो कि तुम ने उस की हत्या नही की ?

—मैं ठीक कहता हू, मैं ने उस की हत्या नही की। मैं सदा चाहता था, वह जीवित रहे

—तुम ने अन्तिम बार उसे कब देखा था, और कहा ?
—उसी सडक के मोड पर जिस दिन वह मेरे साथ थी।
—वह कौन ?
—वही जमीदार की बेटी
—तव तुम्हारा उस से विवाह हो चुका था ?
—हा चुका था
फिर तुम उसे अपनी पत्नी क्यो नही कहते ?
—कानून कहता है। मैं न भी कहूँ तो क्या फक पडता है
—अच्छा, यह बताओ, उस दिन तुम उसे अपने साथ लेकर क्यो गये थे ?
—वह मेरी मर्जी नही थी, उस की थी। या फिर उस की, जिस ने बुलाया था।

—क्या वह भी एक रिश्वत का टुकडा थी ?
—हा पर जिसे न वह बैंक म रख सकता था न घर मे। केवल एक घंटे भर के लिये सोने के कमरे मे।

—सो, उस दिन तुम्हारा दोस्त तुम्हे अन्तिम बार मिला था ?

—'हाँ' और उस ने अँधेरे में उस मोड़ पर खड़े होकर मेरे ज़ोर से थप्पड़ मारा था

—और जवाब में तुमने क्या किया ?

—केवल हाथ से उसे रास्ते से हटाया था

—और वह वहाँ अँधेरे में गिर गया था?

—हाँ, वह गिर गया था, इसी लिए मैं तेज़ी से आगे बढ़ गया

—और, क्या मालूम, उसे बहुत चोट लगी हो ?

—ज़रूर लगी होगी

—और क्या मालूम, वह वहाँ मर गया हो ?

—नहीं

—तुम किस तरह जानते हो ?

—मैं विश्वास से कह सकता हूँ

—किस तरह ?

—मेरे पास इस का प्रमाण मौजूद है।

—क्या ?

वकील ने प्रमाण माँगा, तो उस की आँखें गीली हो आयीं, कहने लगा—'वकील साहब ! अगर वह सचमुच मर गया होता तो मेरी आँखों में यह पानी नहीं आ सकता था मैं अभी भी अपने आप पर रो सकता हूँ। तो इस का मतलब यही है कि वह जीवित है

—क्या यह प्रमाण काफी है ?—वकील ने फिर पूछा तो वह कुछ खीझ उठा बोला, 'प्रमाण अपने समर्थन के लिए होते हैं, किसी को समझाने के लिए नहीं '

वकील ने बात पलट दी, कहा—पर तुम्हारी पत्नी ने जो कुछ भी किया, तुम्हारे लिए। क्या उस की यह कुर्बानी नहीं थी ?

—नहीं। पहली बात तो यह है कि उस ने जो कुछ भी किया, अपने लिए। इस सब कुछ की मुझे ज़रूरत नहीं थी, उसे थी। मेरे हाथों में पहली रिश्वत उस ने ही थमाई थी।

—और दूसरी बात ?

—कि यह कुर्बानी नहीं थी वह जो कोई भी था, ज़मींदार घराने का पुराना आदमी था उसे, मेरा मतलब है—ज़मींदार की बेटी को, उसी तक पहुँचता था मैं केवल एक कानूनी रास्ता था, जिस पर चल कर उस तक जाया जा सकता था

—अब तुम आपस में किस तरह रहते हो ? किस प्रकार की ज़िन्दगी जीते हो ?

—बड़े आराम से हम एक दूसरे के तन का झूठ जी रहे हैं।

—पर इस विवाह के लिए आखिर तुमने ही 'हां' की थी।

—मेरी 'हां' केवल मा की जिद के आगे थी, और किसी के आगे नही

—फिर बाद में तुम्हारी मा को उस का पछतावा नही हुआ ?

—वह बहुत जल्दी मर गयी, पछतावे का दिन देखने से पहले केवल कई बार खयाल आता है.

—क्या ?

—कि अगर उस की इस तरह इतनी जल्दी मत्यु होनी थी तो इस से कुछ दिन पहले हो

—तुम्हारा मतलब है कि तुम्हारा विवाह करने से पहले उस की मत्यु हो जाती ?

—हां ।

—क्या अपनी मा के बारे में ऐसे सोच सकना तुम्हारी कत्ल की वह रुचि नही, जिस से हो सकता है, तुम ने अपने दोस्त का क़त्ल किया हो, हालांकि तुम मानते नहीं

—आप नही समझेंगे, वकील साहब !

वकील ने न्यायाधीश की ओर देखा, मानो कह रहा हो कि अभियुक्त के भीतर छिपी हुई उस की कत्ल की रुचि स्पष्ट दिखाई देती है, उस में और समर्थन की कोई गुंजाइश नही है न उस की सफाई में कुछ सुनने की

पर न्यायाधीश ने पहले बडी गभीर दृष्टि से अभियुक्त की ओर देखा, फिर वकील की ओर। हाथ से सकेत करते हुए कहा, वह जो कुछ कहना चाहता है वह सुना जाय ।

वकील ने अभियुक्त के कठघरे की ओर देखकर कुछ थके हुए स्वर में कहा — सो, मा की मृत्यु की कामना करके भी तुम इसे कत्ल की रुचि नही मानते ?

—नही, क्यो कि मैं मा को बहुत प्यार करता था इस लिए उस की ज़िद के आगे अपनी उर्मिला की बलि दे दी थी

वकील व्यग्य से मुस्कराया— पर उस की मृत्यु की कामना करना प्यार का अच्छा प्रमाण है '

वह उत्तर में मुस्कराया कहने लगा, 'वकील साहब ! आप की कठिनाई यह है कि आप को हर बात के लिए प्रमाण चाहिए। अच्छा, सुनिये ! एक बहुत बडा तपस्वी था। उस ने रेनुका नामक एक राजकुमारी से विवाह किया। उस रानी के पाच पुत्र हुए। सुन रहे हैं न ?'

—हां, सुन रहा हू

वकील ने एक बार हँसकर न्यायाधीश की ओर देखा फिर ध्यान अभियुक्त की ओर कर लिया ।

वह सुनाने लगा—'एक बार वह रानी नदी में नहाने गयी तो वहाँ चित्ररथ को देख उस के रूप पर मोहित हो गयी। घर आयी, तो उस के ऋषि पति ने अपनी तपस्या के बल से यह बात जान ली। उसे बहुत क्रोध आया। उस ने अपने चार पुत्रों को बुलाकर उन्हें आदेश दिया कि वे अपनी माँ को मार दें '

वकील के ध्यान को अभियुक्त की इस कहानी ने सचमुच आकर्षित किया, और वह गंभीर होकर सुनते हुए बोला—'फिर ? पुत्रों ने सचमुच माँ को मार दिया ?'

—नहीं, वे माँ के मोह में आ गये। उन्होंने माँ पर हाथ नहीं उठाया। इस से ऋषि का और भी क्रोध आया और उस ने चारों पुत्रों को जड़ हो जाने का शाप दे दिया सो, वे चारों जड़ हो गये

—फिर ?

—पांचवाँ, सब से छोटा पुत्र परशुराम था। वह जब घर आया तो ऋषि-पिता ने उसे आदेश दिया कि वह अपनी माँ को मार दे, और परशुराम ने उसी समय तलवार लेकर माँ का सिर धड़ से अलग कर दिया—पर, जानते हैं, वकील साहब ! आगे क्या हुआ ?

—क्या ?

—ऋषि पिता अपने आवेश का पालन देखकर प्रसन्न हो गया और उस ने पुत्र से वर माँगने के लिए कहा। फिर जानते हैं, उस ने क्या वर माँगा ?

—क्या ?

—उस की माँ जीवित हो जाये और चारों भाई भी, जो जड़ हो गये थे अब समझे, वकील साहब ?

—तुम्हारा मतलब है कि

—मैं भी एक परशुराम हूँ। माँ ने मेरे विवाह का दोष कमाया, इस लिए उस की मृत्यु की कामना कर सकता हूँ। लेकिन अगर वह घड़ी गुजर जाती, जिस में माँ को ज़िद करनी थी, तो मैं अपना विवाह जिस तरह करना चाहता था, कर लेता, और बाद में माँ को उसी तरह जीवित देखना चाहता, जैसे परशुराम ने चाहा था

वकील ने अपनी चुकी हुई आँखों को अभियुक्त के चेहरे से परे कर लिया

वह फिर कहने लगा—'पर मेरा, आज के आदमी का दु:खांत यह है वकील साहब, कि मैं न किसी को मार सकता हूँ, न किसी को जिला सकता हूँ मैं बहुत कमज़ोर आदमी हूँ देखिये न मैं ने उसे जंगल में अकेला छोड़ दिया '

वकील चकित सा हो गया, पूछने लगा—'जंगल में ? किसे ?'

—कुछ नहीं। उसके स्वर में एक घबराहट आ गयी

एक पल के लिए वकील को संदेह हुआ कि अभियुक्त का दिमाग ठिकाने

की पखुडियाँ सब के माथे पर मली थीं—असने वाला म भी फूल लगाये थे, माँ के बालो म भी आप जानते है, कुसुम के फूलों का अग्निशिखा भी कहते हैं ?'

—पर ?

—नानी भी कहती थी, जगलों मे बहुत सी रूह रहती हैं। पर अगर बालों म कुसुम के फूल हो, गले मे रगीन मोती और माथे पर कुसुम का लाल रग, तो जगल की रूह रास्ता चलने वाला को कोई दुख नही देती, न ही व रास्ता भूलते है

—फिर उस दिन तुम ने उर्मिला को जगल म अकेला छोड दिया ?

—नही, वकील साहब ! उस दिन तो उस के माथे पर कुसुम का रग लगाया था। उस दिन नही बाद म यह दुनिया भी तो एक भयानक जगल है, इस भयानक जगल म मैं ने उसे अकला छोड दिया। पर नही, अग्नि-शिखा की रीत मैं ही भूल गया

—किस तरह ?

—मैं अपने माथे पर कुसुम का रग लगाना भूल गया, सो जगल की रूहे मुझ स नाराज हो गयी, और मैं जगल मे रास्ता भूल गया

—हा, लगता है, तुम झूठ नही बोल सकते।—वकील ने धीरे स यह कहा तो वह जो अभियुक्त था, धीरे से हँस पडा और कहने लगा—झूठ नही बोल सकता, पर झूठ को आखो से देखकर भी चुप रह सकता हूँ अकसर रहता हू '

—उदाहरण दो।

—उदाहरण ? उस औरत को लाग जब मेरी पत्नी कहते हैं तो मैं चुप रहता हूँ।

—और ?

—और जब मेर सामने लाखो के बजट पर हस्ताक्षर होते हैं, तब उस की कितनी रकम कहाँ लगती है और कितनी कहाँ जाती है, सब जानता हूँ, पर चुप रहता हूँ

—किस के बजट ?

—नय महकमो के, नयी मिलो के, नयी खरीद के या किसी न किसी चीज की प्रोमोशन मे, उदाहरण के तौर पर एजुकेशन की, आर्ट की कल्चर की

—यह चुप रहने की आदत तुम्हे कब स पडी ?

—उस दिन से, जब माँ की जिद के आगे चुप रह गया था।

—फिर ?

—फिर जब मरा दोस्त मेरे पास से जाने लगा तो मैं चुप रह गया था।

—फिर ?

—फिर उस रात, जब मेरी पत्नी कहलाने वाली औरत मेरी नौकरी के

कागजों पर हस्ताक्षर करवाकर ले आयी थी और केवल उस रात नहीं, अब भी कई रातों को, जब मुझे मालूम होता है कि वह कहां गयी थी और वह कहती है कि वह कुछ खरीदने गयी थी, मैं चुप रहता हूँ हाँ, सच, एक बात है

—क्या ?

—मुझे अपने घर में बाजार की गंध आती है, खासकर अपने बिस्तर में से

—इस का क्या मतलब ?

—इस का मतलब यह है कि मेरा दोस्त अभी कहीं जीवित है।

—उस के जीवित होने का इस गंध से क्या सम्बन्ध है ?

—वकील साहब ! मैं आप को किस तरह समझाऊँ कि वह अगर मर गया होता तो मुझे किसी भी गलत चीज़ में से गंध नहीं आ सकती थी जैसे

—जैसे क्या ?

—जैसे, अगर वह मर गया होता तो मुझे किसी भी अच्छी चीज़ में से सुगंध नहीं आ सकती थी।

—तुम अजीब आदमी हो अच्छा, यह बताओ, तुम ने अभी तक अपने किये के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा, आखिर सब कुछ तुम्हारे हाथों हुआ

—हां, मैं ने जुआ खेला।

वकील हँस पड़ा, कहने लगा—और इतनी धन-सम्पदा, मान सम्मान जुए में जीत लिये '

अभियुक्त की आँखों में रोष भड़क उठा कहने लगा—जुए में सब से पहले मैं ने अपने आप को हारा, फिर अपनी ज़िन्दगी के सबसे बड़े दोस्त को, और फिर उर्मिला को जैसे युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को दावें पर लगाया था और हार दिया था फिर अपने आप को, और फिर द्रौपदी को '

वकील मुस्कराया—'सो, आज के पांडव ! तुम ने भी जुआ खेला '

—हां, उसी तरह पर दौलत के लालच से नहीं।

—फिर किस लिए ?

—जैसे पांडवों ने खेला था, अपने बुज़ुर्ग धृतराष्ट्र की आज्ञा मानकर मैं ने मां की आज्ञा मानी थी।

—पर तुम्हें आज्ञा मानने का पछतावा है ?

—हां, यह युग का अन्तर है, आज के आदमी के पास 'किन्तु' है, सन्देह है तक है, पछतावा है

—पर मन के वनों में भटकते हुए तुम्हारी द्रौपदी तुम्हारे साथ क्या नहीं है ? न तुम्हारा मित्र तुम्हारे साथ है पांडव तो इकट्ठे वन को गये थे

—यह भी युग का अन्तर है, वकील साहब ! हम सब भटक रहे हैं, अपने-

अपने वनो मे यह अकेलापन भी इस युग की देन है

—तुम सचमुच दिलचस्प आदमी हो बातो से तुम अपनी साधारण बात को असाधारण बना देते हो

—किस तरह ?

—जसे अपनी उर्मिला को तुम ने द्रौपदी से मिला दिया।

—उर्मिला की ज मकथा भी द्रौपदी की ज मकथा जसी है।

—वह किस तरह ?—वकील के मुख पर आश्चय आ गया

—आप जानते ही हैं द्रौपदी एक हवनकुड से पैदा हुई थी, एक अग्निकुड से

—हा !

—उर्मिला भी एक अग्निकुड से पैदा हुई थी उस के माता-पिता हवन कुड के समान पवित्र थ पर उस कुड म उस की मां के रूप पर मोहित होकर एक राक्षस ने बदले की आग जला दी मां नदी म डूबकर मर गयी, पिता भिक्षा पात्र लेकर सयासी हो गया

—पर यह सारी कहानी तो द्रौपदी की नही थी

—यह भी युग का अतर है इस तरह आज की मुहब्बत को कोई हवन-कुड नही कहता आज के राक्षसो को कोई राक्षस नही कहता आज की भलाई को कोई वर नही कहता, और आज की बुराई को कोई शाप नही कहता

वकील की आंखो म अभियुक्त के लिए मोह भर आया, उस ने कोमल-से स्वर म कहा—'सो तुम्हारे कथन के अनुसार, तुम पर अपने मित्र के क़त्ल का दोष नही लगता '

—उसे खो देने का दोष लगता है वकील साहब !

वकील हैरान हो गया, उस ने पूछा—'पर यह दोष तुम्हारी दृष्टि मे बहुत बडा दोष है ?'

—हा, वकील साहब ! यह चुप का दोष है, बहुत बडा, और बहुत दूर तक फैला हुआ मेरे बिस्तर से लेकर दुनिया के राजसिंहासन तक फला हुआ हर देश के राजसिंहासन तक

वकील की आकृति गभीर हो गयी, उस ने धीरे से कहा—'पर आज के मनुष्य ! यह दोष तो हर युग म था '

अभियुक्त हँसा कहने लगा—क्या समय का विस्तार दोष को दोष-मुक्त कर देता है ?

वकील ने कुछ नही कहा।

वही कहने लगा—देखिए ! किस समय की बात है, उस समय की, जब दुर्योधन की भरी सभा म द्रौपदी को घसीटकर लाया गया तो भरी सभा मे रोते

हुए द्रौपदी ने अपने धमराज युधिष्ठिर से एक प्रश्न पूछा था '

—क्या ?

—कि युधिष्ठिर जब अपने आप को हार चुके तो उन्हें क्या अधिकार था कि वह उसे दावें पर लगा दें।

—युधिष्ठिर ने क्या उत्तर दिया ?

—कोई उत्तर नहीं दिया वकील साहब ! कोई उत्तर नहीं दिया। हालांकि भरी सभा में भीष्म पितामह ने कहा कि द्रौपदी का प्रश्न बहुत गूढ़ है गौरव का . पर इस प्रश्न का किसी ने उत्तर नहीं दिया मैं वही तो कह कहा हूँ कि अनेक प्रश्न शताब्दियों से हवा में खड़े हुए हैं परन्तु मनुष्य शताब्दियों से चुप है

—अभियुक्त !

—हाँ, वकील साहब ! उर्मिला का भी यही प्रश्न है, और मैं चुप हूँ मैं चुप रहने का दोषी हूँ

वकील किसी चिन्ता में पड गया फिर न्यायाधीश की ओर देखते हुए धीमे स्वर में अभियुक्त से पूछने लगा— तुम्हारा क्या खयाल है अगर तुम्हारी जगह तुम्हारा मित्र होता तो वह इस प्रश्न का उत्तर देता ?'

अभियुक्त ने एक गहरी सांस ली फिर थके हुए स्वर में कहने लगा—'वह चुप नहीं रह सकता था इसी लिए वह मेरे पास से चला गया वह मेरी शक्ति था, मेरा बल

—पर अगर तुम्हारी जगह वह होता, दुनिया के जो सुख-आराम तुम्हारे सामने हैं, अगर उस के सामने होते ?

अभियुक्त हँसा, इतना कि रूमाल से उस ने अपनी आंखों में आये हुए पानी को पोंछा, और कहने लगा— वह मेरी जगह हो ही नहीं सकता था, वकील साहब ! वह उस सडक को तोड देता जिस सडक पर चलकर मैं यहां पहुँचा हूँ यह रास्ता उस के पैरों के लिए नहीं था एक बात कहूँ, वकील साहब ?'

—हां।

—इन रास्तों पर चलने के लिए मनुष्य को साहस नहीं चाहिए, बल्कि इन पर न चलने के लिए साहस चाहिए और यह केवल उस के पास था

—और तुम ?

—मैं बहुत कमजोर आदमी हूँ चला, तो बस चलता रहा

—तुम इस रास्ते से वापस जाना चाहते हो ?

वकील के इस प्रश्न पर अभियुक्त फिर हँस पडा कहने लगा—'अजीब प्रश्न है !

—क्यों ?

—क्योंकि कुछ चाह सकने के लिए भी साहस चाहिए।

—सो, तुम नही चाहते, पर न चाहने के लिए भी साहस चाहिए ?

—हाँ, वकील साहब ! हाँ और नही दोनो के लिए। मैं दोना से दूर आ चुका हूँ

वकील ने मेज पर झुककर एक कागज़ पर कुछ लिखा, फिर अभियुक्त की ओर देखकर कहने लगा—'तुम जानते हो, इन सब बातो से तुम्हारे मुकदमे की कार्यवाही कही नही पहुँचती '

—ठीक है, उसे भी मेरी तरह कागजो म भटकने दीजिये—उस ने उचाट-से मन से कहा, और फिर पूछने लगा—'मुझे बहुत प्यास लग रही है, मैं कही से पानी पी सकता हूँ ?'

—पानी ?

उस ने कुछ झिझककर कोट की जेब को टटोला, फिर बोला—'मेरे पास थोडी सी ब्राडी है, मेरा मतलब है, ह्विस्की मैं पी लू ?'

वकील न यायाधीश की आर दखा तो वह धीरे से मुस्करा दिया। इस लिए वकील ने अभियुक्त की ओर देखकर कहा— तुम्हारी मर्जी '

उस ने जल्दी से छोटी सी बोतल से पाँच छ घूट भर लिये, और कुछ तृप्त होकर वकील की ओर देखा।

वकील ने वही प्रश्न, कागजो म से उठाकर, फिर दोहरा दिया—'सो तुम्हारा दोस्त गुम हो गया है, तीन साल से मिल नही रहा है ?'

उस ने समथन किया— हाँ, तीन साल से नही मिल रहा है।'

वकील ने अपना सदेह भी दोहराया—'शायद उस का कत्ल हुआ है ?

उस ने फिर उसी प्रकार आपत्ति की—'नही, वह जीवित है '

'कोई प्रमाण ?' वकील की आवाज ठडी और कारोबारी हो गयी।

'मैं प्रमाण दे चुका हूँ, अब बार-बार नही दूगा।' उस ने थके हुए स्वर मे कहा।

—पर तुम उसे ढूढते क्यो नही ?

—अगर ढूढ सकता तो आपको दर्खास्त क्यो देता ?

—उसे ढूढना किस का काम है ?

—हम सब का।

कमरे म खामोशी छा गयी।

कमरे की उस बडी दीवार की ओर पहले ही खामोशी थी दीवार पर लगा हुआ चित्र भी और नीचे उस की सीध म बठा हुआ सफेद चोगे वाला यायाधीश भी उस दीवार का हिस्सा थे। केवल इस ओर लकडी के कठघरे म खडा अभियुक्त और उस स कुछ फासले पर खडा हुआ काले कोट वाला वकील बोल रहे थे—व भी चुप हो गये तो कमरा भयानक-सा हो गया।

वह कठघरे पर अपनी बायी कोहनी टिकाकर, खाली खाली आखो से कमरे की दीवारो को देखने लगा और बिना पानी ह्विस्की का पिया हुआ घूट उस की छाती मे बहुत गम लगने लगा।

सिगरेट की भी तलब लगी, और उस ने जेब मे से सिगरेट-केस निकालकर एक सिगरेट जलायी

—यह नगी ईंटो का कमरा शायद बहुत पुराना है, और शायद यहा राज कचहरी नहीं लगती। वह कोनो म लग हुए जालो को देखता रहा, फिर अचा नक सफेद चोगे वाले न्यायाधीश के मुख की ओर देखने लगा

सोचने लगा—कम्बख्त पत्थर की मूर्ति की तरह बठा हुआ है—न बोलना है, न हिलता है, केवल आंखे झपककर देखे जा रहा है

और उस खयाल आया अगर उस की आँखें भी न झपकती तो वह सम-झता कि वह सचमुच पत्थर का बना हुआ है

फिर अपने ही एक विचार से उसे हँसी सी आ गयी—अगर दुनिया की हर अदालत मे याय का एक बुत बनाकर रख दिया जाये, तो क्या हज है ?

—पत्थर हो गये याय का बुत उस ने स्वय ही अपने विचार मे सशो धन किया।

और अपने आप को तक दिया—अगर भगवान पत्थर का बनाया जा सकता है, तो याय क्यो नही ? बल्कि वही तो सच होगा

—और सुनवाई ?—उस के मन म 'कि तु' उठा।

पर वही 'कि तु उस के होठो पर आकर हँस पड़ा—अब क्या सुनवाई होती है ? किस की ?

उस ने हथेली म होठो पर से कि तु को पोछ दिया, उसे लगा—जीभ केवल हुकूमतो की होती है, इ सान तो कब से चुप है

आज इस अदालत म चुप का दोष उस ने स्वय ही अपने क धो पर रखा है, इस बात ने उसे कुछ तसल्ली सी दी।

और अचानक एक बहुत पुरानी वार्ता उसे याद आ गयी—जब पाँचो पाडव कु ती के साथ जगलो मे मारे मारे फिर रहे थे तो वहा एक हिडिंबा नाम की राक्षसी भीम की काया का बल देखकर उस पर मोहित हो गयी थी और एक सु दर राजकुमारी का रूप धारण करके आयी थी।

पुरातन कहानी को उस न एक झटके से शोधित किया— नहीं, जमीदार की बेटी का रूप धारण करके आयी

और वह कहानी पर विचार करने लगा—महाबली भीम न उस राक्षसी का भेद जान लिया, तब भी उस की इच्छा पूण की, पर एक शत रखी—उस ने कहा कि जब तुम्हारे पुत्र का ज म होगा, मैं वापस अपनी जि दगी मे लौट

आऊँगा

मन, जस नगे पैर जगलो की ओर दौड पडा, पर उन जगलो की ओर, जो भीम के समय के थे। काल और स्थान की चेतना आयी तो पाँवों म बहुत-से काँटे चुभ गय

—कितना पुरातन समय था !—वह विचार म डूब गया—एक बरस बाद अपनी जि दगी म लौट आन का रास्ता उस न सुरक्षित रख लिया, पर अब शताब्दियो के बाद भी, किस प्रकार का, नया समय आया है, जो उस पुरान समय जितना भी नया नही है कि एक वष बाद या तीन वष बाद वापस अपनी जिन्दगी म लौटा जा सके

'अपनी जि दगी'—दो छोटे से शब्द उस की आँखो के आगे चमकन लगे।

उर्मिला उन छोटे से शब्दो मे समा गयी मानो ढाई पगो से वह सारी धरती नाप रही हो

आखे शायद किसी विचार के कारण चकाचौंध हो गयी थी, मुद सी गयी

—उठो अभियुक्त ! सो गये ? वकील की आवाज आयी।

—नही तो।

उस ने चौककर कमरे की दीवारो की ओर देखा। फिर बडी दीवार पर लगे हुए चित्र की ओर उस की दृष्टि गयी तो उस ने वकील की ओर मुह करके पूछा—'यह चित्र किस का है ?

—अच्छी तरह देखो, पहचानो।

—बहुत अधेरा है, पहचाना नही जाता।

—यही तो आज के इ सान की मुश्किल है।

वकील की कही हुई बात से वह चौक गया, और चित्र को दृष्टि गडाकर देखन लगा

—यह यह मेरे उस दोस्त का चित्र प्रतीत होता है।

—अच्छी तरह देखो

—क्या वह सचमुच मर गया है ?

—तुम्ह विश्वास है कि वह जीवित है ?

—हाँ, मुझे विश्वास था कि वह जीवित है।

—फिर अब क्यो विश्वास नही होता ?

हमारी दुनिया मे लोग उन के चित्रो पर हार डालकर दीवारो पर टाँगते है, जो मर जाते है। आप ने, वकील साहब ! इस के चित्र पर हार क्यो डाला हुआ है ?

—चित्र को फिर अच्छी तरह देखो।

उस की समझ म कुछ नही आ रहा था कि वकील उस स लौट-पलटकर यह

नही आ सकती थी '

—कल रात मैं न सचमुच एक सच ढूँढ़ लिया है।

उस ने फिर बिस्तर से उठने की कोशिश की, पर उठ न सका

रात का न जाने कौन सा पहर था, उस न समय देखना चाहा, पर उस के सोने के कमरे मे बिलकुल अँधेरा था

अचानक अपने बिस्तर से उसे एक सुगन्ध आयी

वह हैरान हो गया पहले सदा उस अपन बिस्तर से दुर्गन्ध आती मालूम हुआ करती थी

मन मे आकाश की बिजली की भांति कुछ कौंध गया—शायद रात को जब मैं सोया हुआ था, मेरा दोस्त मेरे कमरे म आया था, मुझे सोए हुए देखने को तभी तो मेरे पलँग से सुगन्ध आ रही है

उस ने एक ठडी सुख की सास ली एक तसल्ली की, सोचा—मेरा जो 'मैं' मेरा दोस्त था वह भले ही गुम हो गया है, पर मरा नही है

फिर अचानक वह चित्र याद हो आया, जो दीवार पर लगा हुआ था, और जिस के गले मे फूलो का हार पडा हुआ था

और उस ने एक नि श्वास लिया—हाँ, मेरा चित्र था मुझे तीन साल हो गये हैं कत्ल हुए ।'

और उस न चादर के सिरे से शरीर पर आये हुए पसीने को इस तरह पोछा, जसे कत्ल हुए शरीर से लहू पोछ रहा हो



करमावाली

बडी ही सुदर तदूर की रोटी थी, पर सब्जी की तरी से छुआ कौर मुह को नही लगता था।

"इतनी मिर्चें " मैं और मरे दोनो बच्चे सी-सी कर उठे थे।

"यहाँ बीबी, जाटो की आवाजाही बहुत है। शराब की दुकान भी यहाँ कोसो म एक ही है। जाट जब घूट पी लेते है, फिर अच्छी मसालदार सब्जी माँगते है।" तन्दूर वाला कह रहा था।

"यहाँ जाट शराब"

"हाँ बीबी, घूट शराब का तो सब ही पीते है, पर जब किसी आदमी का खून करके आयें, तब जरा ज्यादा ही पी जाते है।"

'यहाँ ऐसी घटनाए "

"अभी तो परसो-तरसो कोई पाच छ आ गय। [एक आदमी मार आय थे। खून चढा रखा थी। लगे शरारतें करन। वह देखो, मेरी तीन कुर्सिया टूटी पडी हैं। परमात्मा भला करे पुलिस वाला का वह जल्दी पकडकर ले गये उन्ह, नही तो मेर चूल्हे की इटें भी न मिलती पर कमाई भी तो हम उन्ही की खाते हैं ।"

कौशलिया नदी देखने की सनक मुझे उस दिन चण्डीगढ से फिर एक गाँव म ले गयी थी, पर मित्रो से चली बात शराब तक पहुँच गयी थी। और शराब से खून-खराबे तक। मैं उस गाव से जल्दी जल्दी बच्चा का लेकर लौटने को हो गयी थी।

तन्दूर अच्छा लिपा पुता और अन्दर से खुला था। और भीतर की ओर एक तरफ कोई छ-सात खाली बोरियाँ तानकर जो पर्दा कर रखा था, उस के पीछे पडी तीन खाटा के पाये बताते थे कि तन्दूर वाले के बाल-बच्चे और औरत भी वही रहते थे। मुझे लगा, कोई इतना बडा खतरा नही था। वहाँ पर औरत की रिहायश थी, इज्जत की रिहायश थी।

किसी औरत ने टाट का काटा मोडा। बाहर की ओर झाँककर देखा, और फिर बाहर आकर मेरे पास आ खडी हो गयी।

"बीबी, तू ने मुझे पहचाना नही ?'

नही तो "

वह एक सादी सी जवान औरत थी। मैं उस के मुह की ओर देखती रही पर मुझे कोई भूली बिसरी बात भी याद नही आयी।

'म ने तो तुझे पहचान लिया है बीबी! पिछले साल, न सच, उस स भी पिछले साल तू यहाँ आयी थी न।"

"आयी तो थी।"

सामने मैदान मे एक बरात उतरी थी।'

'हाँ, मुझे यह याद है।

"वहा तू ने मुझे डोली मे बठी हुई को रुपया दिया था।"

बात याद आयी। दो साल पहले मैं चण्डीगढ गयी थी। वहाँ पर नया रडियो

स्टेशन खुलना था। और पहले दिन के समागम के लिए, मेरे दिल्ली के दफ्तर ने मुझे वहाँ एक कविता पढ़ने के लिए भेजा था। मोहनसिंह तथा एक हिन्दी कवि जालन्धर स्टेशन की तरफ से आये थे। समागम जल्दी ही खत्म हो गया था, और हम तीन चार लेखक कौशलिया नदी देखने के लिए चण्डीगढ़ से इस गाँव में आये थे।

नदी कोई मील डेढ़ मील ढलान पर थी, और वापसी चढ़ाई चढ़ते हुए हम सब चाय के एक एक गर्म प्याले को तरस गये थे। सब से साफ और खुली दुकान यही लगी थी। यहीं से चाय का एक-एक गर्म प्याला पिया था। उस दिन इस दुकान पर पक रहे मांस और तन्दूरी रोटियों के साथ-साथ मिठाई भी काफ़ी थी। तन्दूर वाला कह रहा था—'आज यहाँ से मेरी भानजी की डोली गुज़रेगी। मेरा भी तो कुछ करना बनता है न '

और फिर सामने मैदान में डोली उतरी। डोली किसी पिछले गाँव से आयी थी। उसे आगे जाना था। रास्ते में मामा ने स्वागत किया था।

'विवाह भी अजीब चीज़ है। आते वक्त कैसे रंग बाँधता है, और जाते समय ' हम में से एक ने कहा था, और चाय के घूँटों के साथ रंग की फिलासफ़ी भी गर्म होती गयी थी।

'रुको मैं नयी दुल्हन का मुँह देख आऊँ। भला उस के मुँह पर आज कैसा रंग है ' मुझे याद है, मैं ने कहा था और आगे से मेरे साथियों ने जवाब दिया था, 'हमें तो कोई डोली के पास नहीं जाने देगा, तुम ही देख आओ पर खाली हाथों न देखना '

मैं एक मुस्कराहट लिये डोली के पास चली गयी थी। डोली का पर्दा एक तरफ से उठा हुआ था। मैंने पास में बैठी नाइन से पूछा था 'मैं दुल्हन का मुँह देख लूँ?'

बीबीजी सदके देख—हमारी लड़की तो हाथ लगाये मैली होती है '

और सचमुच लड़की की शृंगारपुरी नथ में जो मुस्कराहट का मोती चमक रहा था, उस का रंग झेलना कोई आसान नहीं था।

मैं ने एक रुपया उस की हथेली पर रखा। और जब लौटी, तो मेरे साथी कह रहे थे, क्षण भर पहले जब तुम ने कविता पढ़ी थी, कालेज की कितनी लड़कियाँ ने रुपये रुपये के नोट पर तुम्हारे हस्ताक्षर करवाये थे। उस बेचारी को क्या मालूम होगा कि वह रुपया उसे किस ने दिया था वर्ना जानती होती, हस्ताक्षर ही करवा लेती ।'

दो साल पहले की बात थी। मुझे पूरी की पूरी याद आ गयी।

'तू वह डोली वाली लड़की?"

हाँ, बीबी!"

जाने किस घटना ने उस दो बरसो म लडकी से औरत बना दिया था। घटना के चिह्न उस के मुह पर से दृष्टिगोचर होते थे, पर फिर भी मुझे सूझता नही था कि मैं उसे कैसे पूछू।

"बीबी, मैं ने तेरी तस्वीर अखबार म देखी थी, एक बार नही दो बार। यहा भी कितन ही लोग आत ह जिन के पास अखबार होता है, कई तो रोटी खाते खाते यही पर छाड जाते है।"

"सच, और फिर तू ने पहचान ली थी?"

"मैं ने उसी वक्त पहचान ली थी। पर बीबी, वे तरी तस्वीरें क्या छापते हैं?"

मुझ से जल्दी काई जवाब न बन पडा। ऐसा सवाल पहले कभी किसी ने नही किया था। कुछ लजाते हुए म ने कहा, 'म कविताएँ कहानियाँ लिखती हूँ न।'

"कहानिया? बीबी, क्या वे कहानिया सच्ची होती हैं या झूठी?'

"कहानिया तो सच्ची होती हैं, वैसे नाम झूठे होते ह, ताकि पहचानी न जाये।"

"तू मरी कहानी भी लिख सकती है बीबी?"

"अगर तू कहे, तो मैं जरूर लिखूगी।"

'मेरा नाम करमावाली (सौभाग्यशालिनी) है। मेरा तो चाहे नाम भी झूठा न लिखना, मैं काई झूठ थाडे ही बोलूगी, मै तो सच कहती हू पर मेरी काई सुन भी तो! कोई नही सुनता।"

वह मरा हाथ पकडकर मुझे टाट के पीछे पडी खाट पर ल गयी।

"जब मरी शादी हानी थी न, मेरे ससुराल से दो जनी मेरा नाप लेन आयी। उन म स एक लडकी मरी उम्र की थी—बिलकुल मेरे जितनी। वह रिसी दूर क रिश्त म मरी ननद लगती थी। मरी सलवार कमीज नापकर कहने लगी, 'बिलकुल मरी ही नाप है। भाभी, तू चिता न कर, जो कपडे सीऊँगी, तुझे बिल-कुल पूरे आयग।'

'और सचमुच वरी के जितने भी कपडे थे मुझ खूब अच्छी तरह से आत थ। वह ननद मरे पास कितन महीने रही, और बाद म भी मर कपडे वही सीती रही। मरा चाव भी बहुत करती थी। मुझे कहा करती थी 'भाभी, चाहे मैं दो महीने के बाद आऊँ, चाहे छ महीने क बाद पर तू किसी और स कपडा मत सिलाना'

'मुझ भी वह अच्छी लगती थी। सिर्फ उस की एक बात बुरी लगती थी, मरा जो भी कपडा सीती थी पहले स्वयं पहनकर देखती थी। कहती थी, तरा मरा नाप एक है। देख, मुझे कस पूरा है! तुझ भी पूरा आयगा।

"और सारे कपडे पहनते समय मेरे मन म आता था, कपडे भले ही नये हो, पर हैं तो उस के उतारे हुए ही न !"

रस्सी के साथ टँगे हुए टाट का पर्दा था, वान की ढीली सी खाट थी। खेस भी खस्ता था, लडकी भी अल्हड और अपढ़ थी—पर यह खयाल, इतना नाजुक, इतना मुलायम मैं चौक उठी।

"पर बीवी मैं न अपने मन की बात कभी नही कही। जाने बेचारी का मन छोटा हो जाये।"

"फिर ?"

'फिर मुझे कोई बरस-डेढ बरस बाद पता चला, किसी न बता दिया। उस की और मेरे घरवाले की लगी हुई थी। यह उस का दादा पोता के रिश्त से भाई लगता था, पर एक उस के सगे भाई को यह बात बहुत बुरी लगती थी। वह तो एक बार अपनी बहन की गदन उतार देने लगा था।

किसी ने मुझे यह भी बताया कि थोडे समय जब वह बाग गोदने लगी थी, तो उसे फिट आ गया था।" आँसुओं से भीगी करमाँवाली ने मेरा हाथ पकड लिया। 'बीबी, तू मेरी मन की बात समझ ले। मुझ से उतार नही पहना जाता—मेरी गोटा किनारी वाली सलवारें, मेरी तारा जडी चुनरियाँ और मेरी सिलमा वाली कमीजे—सब उस का 'उतार' (पहले पहन हुए कपडे) थे। और मेरे कपडो की भाँति मेरा घरवाला भी "

करमाँवाली की आवाज़ के आगे मेरी कलम झुक गयी। कौन लेखक ऐसा फिकरा लिख देता!

"अब बीवी, मैं वे सारे कपडे उतार आयी हूँ। अपना घरवाला भी। यहा मामा-मामी के पास आ गयी हूँ। इन का घर लीपती हूँ, मेज धोती हूँ। और मैं ने एक मशीन भी रख छोडी है। चार कपडे सी लेती हूँ, और रोटी खा लेती हूँ। भले ही खद्दर जुडे, चाहे लट्ठा मैं किसी का 'उतार' नही पहनती।

'मेरा मामा सुलह कराने को फिर रहा है। मेरे मन की बात नही समझता। मैं जसे जी रही हूँ, वैसे ही जी लूगी। और कुछ नही चाहती, तू सिर्फ एक बार मेरे मन की बात लिख दे। "

करमाँवाली के जिस जिस्म के साथ कहानी घटी थी, उसे मैं ने एक बार अपनी बाहा म भीचा, कितनी मज़बूत देह थी कितना मज़बूत मन! यह चौगिर्दा वहा मैं पल भर पहले मिर्चों स शराब और शराब से खून-खराबे पर पहुँचती बात स घबरा गयी थी वहा पर करमाँवाली कितनी दिलेरी से जी रही थी!

बाहर सडक पर शिमले स आती मोटरें गुज़रती थी, और जिन की सवारिया रेशमी कपडा म लिपटी हुई, कई बार पल भर के लिए इस दुकान पर चाय के

प्याले के लिए रुक जाती थी, या सिगरट की डिब्बी के लिए, या गम त दूरी राटी के लिए—वे जिन के पहन रखे रेशमी कपडे, जाने किस किस का उतार ये !—और करमांवाली उन की मेज पोछती थी, कुर्सिया झाडती थी—वह करमावाली जिस ने एक खद्दर की कमीज पहन रखी थी, जो अपने जिस्म पर किसी का उतार नही पहन सकती थी।

"बीबी, मै ने तेरा वह रुपया सँभाल कर रखा हुआ है।'

"सचमुच ? अब तक ?"

"हा बीबी ! वह रुपया मैं ने उस समय अपनी नाइन का पकडा दिया था—और फिर उस के दूसरे दिन की ही बात थी, जब मै ने तेरी तस्वीर देखी थी। मै ने नाइन से वह रुपया ले कर सँभाल लिया था। तू बीबी, मुझे उस रुपये पर अपना नाम लिख दे। फिर तू जब मेरी कहानी लिखेगी, मुर्ये जरूर भेजना।"

और करमावाली ने उठकर खाट के नीचे रखा ट्रक खोला। ट्रक म एक लकडी की स दूकची थी। उस ने रुपये का तह किया हुआ नोट निकाला।

"मै अपना नाम लिख दती हूँ करमावालिये ! मैं ने जाने कितनी लडकिया के नोटो पर अपना नाम लिखा होगा पर आज मेरा दिल चाहता है, तू मेरे नोट पर अपना नाम लिख दे।

"कहानी लिखने वाला बडा नही होता, बडा वह है जिस ने कहानी अपने जिस्म पर झेली है।"

"मुझे अच्छी तरह से लिखना नही आता।' करमावाली लजा सी गयी और फिर बोली—' मरा नाम कहानी मे जरूर लिखना।

हा, मैं ने वही नाम, तेरे हाथो लिखा हुआ तेरा नाम, अपनी कहानी का रखूगी।" मैं ने पस से नोट भी निकाल लिया और कलम भी।

करमावालिय ! आज तेरी कहानी लिख रही हूँ। वही रुपये के नोट पर लिखा हुआ तेरा नाम, आज इस कहानी के माथे पर पवित्र टीके की भाति लगा हुआ है।

यह कहानी तेरा कुछ नही सँवारेगी पर यह भरोसा रखना, वे दिल भी इस तेरे टीके को प्रणाम करते ह, जिन के ख़ून का रग तेरे टीके के रग स मिलता है।—और व माथे भी एक लज्जा से इस के आगे झुकते है, जिन्हो ने अपने गला मे जाने किस किस के 'उतार' पहन रखे है।

[illegible]



तेरहवाँ सूरज

फ़िक़रा ज़ेहन म बना रह गया, और सामने खाली कागज की ओर देखती हुई क़लम की स्याही खत्म हो गयी

सजय की आखा के आगे एक अँधेरा सा फल गया। सिफ कानो म एक आवाज आने लगी, पता नही कहाँ से, ऐसे जसे काई धीरे-धीरे किसी वरतन म कुछ रगड रहा हो

फिर आखे शायद अँधेरे से कुछ परिचित हो गयी सामन एक झलक सी दिखाई देने लगी—एक हाथ की झलक, जो अँधेरे म धीर धीर हिल रहा था

न जाने किस का हाथ है, पहचाना नही जाता। सिफ इतना दिखाई द रहा है कि उस हाथ मे एक लकडी-सी है, और उस से वह हाथ एक वरतन म कुछ घोल रहा है और सजय ने आखें अँधेरे म गडा दी

लगा—हा, वरतन, हाथ से भी ज्यादा अँधेरे म चमक रहा है शायद इस लिए कि वह तांबे का है

और अचानक वह चौक उठा—'ख़ुदाया ! मरे ज़ेहन म भी कुछ चमक रहा है उस ताबे के वरतन की तरह एक वहुत पुरानी याद की तरह ौर अँधेरा की तहो म कुछ हिल रहा है

उसे लगा—कुछ याद आ रहा है—एक नुसखा-सा काजल एक सिर-साही

और वह सोचने लगा—सिरसाही, यह सिरसाही क्या है ? याद आया—सिरसाही एक वजन होता था शायद दो तोले

और उसे एक नुसखा-सा याद हो आया—काजल दो तोले, बेल दो तोले, कीकर का गोंद चार तोले, एक रत्ती लाजवर्द, एक रत्ती सोना, और बिजय सार का पानी और इन सब को ताँबे के बरतन में डालकर, नीम की लकडी से बीस दिन तक हिलाते रहना

खुदाया ! यह तो स्याही बनाने का नुसखा था और उसे लगा सामने अँधेरे में हिलने वाला हाथ शायद मेरा है

सजय कितनी ही देर तक निश्चल बैठा रहा, शायद ध्यानमग्न होकर, फिर उस ने एक गहरी सांस ली यह शायद मैं था, जो कुछ लिखने के लिए स्याही बना रहा था, और फिर शायद मैं अचानक मर गया और मेरे हाथ की हसरत वही पडी रह गयी

सजय के होठो पर मुस्कराहट की एक हलकी सी लकीर खिंच गयी जैसे एक गुफा से गुजरते हुए गुफा के अन्तिम भाग के पास रोशनी की एक लकीर खिंची हुई हो वह हैरान सा सोचने लगा—आज मेरा मन कई सदियों को चीरकर यह कौन सी जगह थी जहां चला गया ? शायद वहाँ जहाँ आदम की जात ने पहली बार अपने अक्षरो को अंकित करने के लिए स्याही बनायी थी

मन मे कई सदियाँ ऊपर नीचे हो गयी। लेकिन सजय ने चेतन मन से सोच कर देखना चाहा—यह शायद जन्म जन्मान्तर से हाथ में ली हुई क़लम का कोई इशारा है या सिर्फ मेरी खुदी से भरी हुई एक कल्पना कि जिस आदमी ने दुनिया मे अपने हाथ से पहला अक्षर लिखा था, वह मैं ही था

सजय खिलखिलाकर हँस उठा, जैसे एक अँधेरी गुफा से निकलकर वह बाहर खुली रोशनी में आ गया हो। और हँसते हँसते वह अपने आप से कहने लगा—सजय साहब ! नया उपन्यास छपने से बडी शोहरत मिल गयी है न, वही सिर को चढ रही है जनाब को लग रहा है, जैसे दुनिया के आदि-लेखक भी जनाब ही थे, कोई और नही

पर सजय के मन को शायद रोशनी का तर्क अच्छा नही लगा। वह फिर एक अँधेरी गुफा ढूढने लगा—जहाँ वह अपने साथ कुछ देर अकेला बैठ सके। गुफा शायद कोई मुराद नही होती, वह भाग्य से मिल जाती है। सजय के पैरो के नीचे से योजन गुजर गये, और वह एक गुफा के द्वार के पास जलती हुई मशाल हाथ में लेकर, गुफा में दाखिल हो गया

इस बार शायद उसका प्रयास कुछ चेतन मन का भी था, उस ने सोचा—

मशाल की रोशनी म मैं गुफा के भेद का पता लगाऊँगा

और वह गुफा की नीची छन को एक हाथ से टटोलता हुआ, दूसरे हाथ म थमी हुई मशाल को ऊँचे करता हुआ, गुफा की दीवारो की ओर देखने लगा

ख़ुदाया ! सजय ने मशाल की रोशनी मे एक दीवार की ओर देखा तो देखता ही रह गया यह मैं मैं किस का सारथि बना हुआ हूँ ? हूबहू मैं, यह किस का रथ चला रहा हूँ ? कोई रथ मे बठा है, सिर के ऊपर सोने का छत्र, और मैं रथ चलाते हुए, पीछे की ओर देखकर, उस स बाते कर रहा हूँ

सामने का दश्य स्थिर था दीवार पर उत्कीण, जैसे मन्दिरा की दीवारो पर या पुस्तको के पृष्ठा म इतिहास के दश्य उभरे हुए या छापे हुए होते है

गुफा म कही से हवा नही आ रही थी, फिर भी सजय के हाथ मे थमी हुई मशाल की लपट काप उठी, शायद उस के अपनी ही सास से और वह अपलक दृष्टि से गुफा के उस चित्र के नीचे लिखे हुए बारीक अक्षरो को पढने लगा—'यह धृतराष्ट्र का रथ है, वह अपने मन्त्री-सारथि से युद्ध का हाल पूछ रहे ह, और सजय, महापडित सजय, अपनी दिव्य दृष्टि से कुरुक्षेत्र का सारा हाल देख रहे हैं, और धतराष्ट्र को बता रहे हैं ' सजय ने गुफा की दीवार पर यह लेख पढा, पर पैर शायद काप गये, वह लडखडाकर वही गुफा के फश पर गिर पडा, और शायद उस के गिरने के कारण ही उस के हाथ से मशाल गिरकर बुझ गयी

फिर न जाने कितना समय, घुप अँधेरे की तरह बीत गया, और जब सजय को होश आया, वहाँ न कोई गुफा थी, न कोई चित्र, न मशाल। वह उसी तरह मेज पर कुहनियाँ टिकाये कुर्सी पर बठा था, सामन मेज पर लिखे हुए कुछ काग़ज थे, कुछ खाली और एक अधलिखे काग़ज पर उस की वह कलम पडी हुई थी, जिस की स्याही अभी खत्म हो गयी थी

सायास वह कुर्सी से उठकर अपने कमरे की दीवारो को हाथ स छूकर देखने लगा कि यह भी कोई कल्पना है या हकीकत

और फिर सजय घडे से पानी का गिलास भरकर पीते हुए, अकेला खडा अपने आप पर हसने लगा—सो, जनाब सजय साहब ! आप अपना काम ही नही, अपना नाम भी इतिहास मे जोडना चाहते है ! व्यास का कोई चेला सजय अगर महापडित था और उसे दिव्य दृष्टि मिली हुई थी तो क्या वही नाम रख लेने से वह सब कुछ आप को भी प्राप्त हो जायेगा ?

मन ने ही तक दिया—हो जायेगा का प्रश्न नही है, न है का प्रश्न है, पर वह कभी था, तब जब मैं धतराष्ट्र का सारथि था। उस की सूरत मैं ने आज आखो से देखी है आज मेरी भी वही सूरत, वही शक्ल

पर सजय ने मन के आगे हार नही मानी, बोला—यार सजय ! तुम ने यह शक्ल-सूरत उस से ली नही, उसे दी है। तुम्हारी कल्पना ने उस की सूरत को

देखा है, अपनी जैसी ही। अगर तुम ऐसा न करते तो शताब्दियों से अपना रिश्ता कैसे जोड़ते ?

और संजय को फिर हँसी-सी आ गयी—हम लोग भी अजीब हैं पहले स्वयं ही मनगढ़ंत कहानियां लिखते हैं, फिर स्वयं ही उन पर विश्वास करने लगते हैं।

संजय ने दवात ढूंढकर कलम में स्याही भरी, और मेज पर से आधे लिखे कागज को उठाकर पढ़ते हुए, अधूरी कहानी के छोर को मन में खोजने लगा। फिर कुछ मिनट ही ध्यान में डूबने जैसी दशा में बीते थे कि कलम में ऐसी गति आ गयी कि कहानी को अंत तक पहुँचाने से पहले कागजों पर से उस ने सिर नहीं उठाया।

एक सन्तोष की सी भावना के साथ संजय ने लिखे हुए कागजों को क्रमानुसार रखा। यह उस का अपने ऊपर एक भरोसा था कि एक अखबार की ओर से नयी कहानी की मांग होने पर उस ने कह दिया था कि वह दो दिनों में कहानी भेज देगा जब कि तब उस के पास कोई अप्रकाशित कहानी नहीं थी। और संजय ने वह नयी लिखी कहानी पोस्ट करने के लिए जब लिफाफे पर पता लिखने के लिए अखबार वालों की चिट्ठी सामने रखी और उस पर नजर पड़ी तो देखा, लिखा था—कहानी के साथ अपनी तसवीर अवश्य भेजिये।

वह प्रेस को देने वाली तसवीरें हमेशा मेज के छोटे खाने में अलग रख देता था, नहीं तो कभी जरूरत पड़ने पर कोई तसवीर नहीं मिलती थी, इस लिए उस ने इत्मीनान से वह खाना खोला पर आज खाने में कोई तसवीर नहीं थी। याद आया—पिछले दिनों उपन्यास प्रकाशित होने पर उस के कई इंटरव्यू छपे थे सब ने तसवीरें ले ली थीं, छपने के बाद लौटाने का वादा करके, पर किसी भी अखबार ने तसवीर लौटाई नहीं थी। और आज आवश्यकता पड़ने पर तसवीर न मिलने के कारण संजय के मन में एक खीझ-सी आयी, साथ ही थकान-सी कि वह इस समय निगेटिव लेकर किसी फोटोग्राफर की दुकान पर नहीं जा सकता आज वह सिर्फ़ कहानी भेज सकता है, तसवीर नहीं

कागजों को उसी तरह मेज पर रहने दिया, और वह कुर्सी से उठकर दीवान पर लेट गया। अंगों में थकान की और एक सुख की साथ-साथ अनुभव हुआ, और उसे खयाल आया—किसी कवि ने एक कविता लिखी थी कि ईश्वर छह दिन सृष्टि की रचना करके इतना थक गया कि सातवें दिन सब कुछ छोड़कर पड़ गया गया और उसे लगा—हर बार कहानी या उपन्यास लिखने के बाद उस ईश्वर की भांति थकान होती है, और वह अपने आप पर मुसकराया—आज मेरा सातवां दिन है आज मैं कहानी पोस्ट करने भी नहीं जाऊंगा

पर साथ में पहले उसे सिगरेट की तलब हुई, और एक गिलास बीयर की भी। उस के पास कमरे में न बीयर था न सिगरेट, मन में सुस्ती का उलाहना-

सा दिया—यार ! तुम्हे तो मेरी तरह स्वय ही बाज़ार जाकर सिगरेट नही लाने पडते और न ही बीयर खरीदने योग्य पसे जुटाने पडते हैं

पर जिन्दगी की कमिया के मुकाबले म उसे ख़ुशी ज्यादा हुई कि वह ख़ुदा को अपने स्तर पर लाकर उलाहना दे सकता है, और इस बात के गव से वह दीवान से उठ बठा। पर जब उस ने बीयर और सिगरेटा के लायक पसे जेब मे डाले, मेज़ का छोटा खाना खोलकर अपनी तसवीर का निगेटिव भी निकाल लिया अगर जाना ही है तो इस के पाँच छह प्रिंट भी बनवा लूगा

जाते समय वह ग़ुसलख़ाने के छोटे शीशे के पास खडे हाकर बालो को हलके हलके ब्रश करने लगा तो नज़र शीशे मे अटक गयी—सजय यार, सच बताना, तलब सिगरेट या बीयर की है, या अखबार म अपनी तसवीर छपी हुई देखने की ?

मन म हलकी-सी टीस उठी—अपने आप को ख़ुदा तो समझ लिया पर शोहरत का छोटा सा मौका भी छोडा नही जाता और उस न शीशे की ओर से आँखें परे कर ली।

जिस इमारत म सजय रहता था, वह कितन ही छोटे-छोटे घरो की इमारत थी, जिस की साम्ने की डयोढी मे कई-कई साइकिलो मे मिली हुई उस की साइकिल भी पडी रहती थी। उस न डयोढी से अपनी साइकिल ढूढकर बाहर निकाली। बाज़ार बहुत दूर नही था, पहले निगेटिव प्रिंट करन के लिए दिया, फिर सिगरेट का पकेट खरीदा, पर जब बीयर की दुकान पर गया तो पता लगा, आज बुधवार है, और बुधवार ड्राई डे होता है

सजय क मन पर वही उलाहने का आलम छा गया—ख़ुदा यार, अगर तुम्हारे भी हफ्ते मे दो दिन ड्राई डे आ जायें, तो तुम्हे कैसा लगेगा ?

वह फोटोग्राफर की दुकान की तरफ मुडा। अभी आधा घटा भी नही हुआ था—जितना कि फोटाग्राफर न कहा था—पर घर लौटना और फिर बीस मिनट बाद आना उसे बहुत कठिन लगा। वह उस छोटी सी दुकान की बेंच पर बैठ गया।

एक सिगरेट जलाया, और बेध्यान ही सामन क उस छोटे बन्द कमरे की ओर देखने लगा, जिस के अन्दर वह दुकान वाला उस के निगेटिव से तसवीरे बना रहा था।

बात पुरानी हुई—एक बार उस न अपन एक परिचित के डाक रूम मे जाकर फिल्म को धोने की और निगेटिव से पाजिटिव बनाने की प्रक्रिया देखी थी, इस समय अपने आप ही वह आखो के सामने आ गयी—लगा, अभी उस के सामने जो खाली सफेद कागज था, उस पर उस के नक्श उभर रहे हैं—पहले हलके से, फिर देखते देखते गाढे होकर

पर अचानक—उस की आँखें सहम गयी, सामने कागज पर एक नहीं, कई चेहरे उभर रहे थे न जाने किस किस के अजीब और भुरियात भरे हुए केवल पुरुषों के नहीं, स्त्रियों के भी

उस ने घबराकर आसपास देखा—पर सब ओर अँधेरा था, केवल एक उसी कोने म रोशनी थी, जहाँ लकडी के कुछ चौखटे से थे, और जहाँ ट्रे ओ म कुछ तसवीरें उलटी पडी हुई थी

उस ने एक ट्रे म हाथ डालकर एक उलटी तसवीर का सीधा किया, तसवीर पर कई चेहरे हिल रहे थे, और उस के देखत देखते बदल रहे थे उस न पह चानने की कोशिश की, कुछ याद करने की, पर याद नहीं आया, केवल इतना लगा कभी किसी की आँखें बिलकुल उस की अपनी आँखों की तरह लगती हैं कभी किसी की नाक उस की नाक जैसी लगती है, कभी किसी के होठ

'लो गये जनाब ! य लीजिय अपनी तसवीरें " फोटोग्राफर ने शायद एक बार कहा या दो-तीन बार, उसे ठीक पता नहीं, पर इस आवाज से वह जसे नींद से जागा हो। उस ने लिफाफा लेकर पहले जल्दी से एक तसवीर देखी, फिर दूसरी, तीसरी और चौथी, पाँचवी सब की सब एक जैसी थी, और सब म एक ही चेहरा था, उस का अपना

उस ने पैसे दिये, तसवीरें ली, पर वापस घर पहुँचकर एक तसवीर को कहानी वाले लिफाफे मे डालकर जब लिफाफा ब द करने लगा तो उसे हुसी सी आ गयी यह तसवीर छपेगी तो तब भी सब को एक ही चेहरा दिखाई देगा, मेरा, श्री सजय कुमार का

और लिफाफे को बन्द करके, एक ओर रखते हुए सजय के मुह से निकला—देखा यार फ्रायड ! तुम्हारी थ्योरी पर मैं ने कितना विश्वास किया है कि आज मेरे सामने मेरे निगेटिव मे से मेरे पिता के पिता के पिता का चेहरा भी निकल आया, और मेरी माँ की माँ की मा का भी यह तुम क्या मुसीबत डाल गये हो लोगो के मन म कि उन का 'मैं' कभी भी स्वत त्र 'मैं' नहीं बनता पूरी वशा-वली उस मैं के नक्शो मे चलती है

और सजय ने किताबो की अलमारी से एक किताब निकालकर फ्रायड की वह पक्ति फिर पढ़ी, जिस पर निशान लगाकर उस ने उसे अलग-सा किया हुआ था—'कल्पना, इ सान की बगावत का सब स बडा माध्यम होती है इसी की शक्ति से एक लेखक वह पात्र गढता है जो बहादुर होता है दूसरे पात्रो का कत्ल करता है और 'हम शब्द से निकलकर 'मैं' बनता है कत्ल का उत्तरदायित्व हम पर नहीं बाटता, 'मैं' पर लेता है

और सजय ने किताब को ब द करके अलमारी म रखते हुए सोचा—मेरे पिता को सिर्फ दो किताबें पढनी आती थी—एक वह, जिस म गुरुमत्र लिखकर

उसे एक साधु ने दी थी और दूसरी वह वही, जिस मे वह अपने कर्जदारो की रकमे लिखता था यही दो किताबें वह मुझे विरसे म दना चाहता था, और मुझ इन्ही दो किताबो से नफरत थी

सजय ने एक सिगरेट सुलगाया, और उस क मन की बात एक धुएँ की तरह उस के होठो पर आ गयी म सिफ नयी, और बिलकुल अपनी किताब लिखकर इन दो किताबो को कत्ल कर सकता था, सो म न लिखी मेरी यही बगावत थी, मैं ने की पर क्या विरसे को कत्ल करके भी अपने साथ उठाये रखना पडता है ? अपन नाम-पते म भी, जात मजहब म भी, और अपन नन नक्श म भी ?

सिगरेट का एक लम्बा कश खीचते हुए सजय को याद आया—एक बार वह, हाथ म सिगरेट लिए जान-बूझकर नही, अनजान अपन पिता की उस मोघले जसी कोठरी म चला गया था, जहां दिन म दो बार सिफ उस का पिता जाया करता था, और आले म रखी हुई पत्थर की एक मूर्ति के आगे धूप जलाया करता था और पिता न कसकर एक थप्पड उस के मुँह पर मारा था फिर उसी दोपहर को, जब आसपास कोई नही था, वह चोरी से उस कोठरी म गया था, और उस ने आल म रखी हुई पत्थर की मूर्ति क आगे से धप उठाकर, वहा जलती हुई सिगरेट रख दी थी

आज वर्षों बाद सजय का यह बात याद आयी तो वह अकेला खडा हँसने लगा, कहने लगा—देखा यार फ्रायड ! अब चाहे तुम उस का कुछ भी एनलिसिस करो, मैं ने तो अपनी ओर से एक बहुत बडी बगावत की थी, जितनी कि उम्र के हिसाब से कर सकता था

और सजय के मुँह से निकला—यार नीत्शे ! इस तुम्हारे सुपरमन का क्या होगा, जिसे आज भी अपने चेहरे म अपने लकड दादाओ के मुँह, उन के नक्श दिखाई देते हैं ? साथ ही उस हँसी-सी आ गयी यार हिटलर ! तुम ने गडबड कर दी, नीत्शे के सुपरमन का बदनाम कर दिया नही तो उस का तसव्वुर कुछ और ही होता

सजय को लगा—हिटलर की जि दगी पर कई किताबें लिखी गयी है, जितने कसेण्ट्रेशन कम्प थे, उन मे मरने वालो की गिनती भी लिखी गयी पर हिटलर के सब स बडे कत्ल की घटना किसी ने नही लिखी, किसी ने नही जाना कि हिटलर पर नीत्शे के सुपरमन को कत्ल करन का भी अभियोग था

हाथ मे लिए हुए सिगरेट का आखिरी गम सिरा सजय की उँगली स छू गया तो वह चौका, सिगरेट को राखदानी म रखा, और एक नया सिगरेट जला लिया

अपनी इस अजीब तलब पर उसे हँसी आयी—न पिऊ तो म सारे दिन सिगरेट नही पीता पर अगर पीने लगू तो एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा,

और फिर पता नही कितने सिगरेट एक ही बार में पी जाता हूँ

विचारों की तलब भी शायद सिगरेटों की तरह होती है कई बार कितने ही दिन कुछ नही लिखा जाता, जैसे हर खयाल से खाली हो गया होऊँ, पर कभी जब एक सांस के साथ एक खयाल आता है और दूसरी सांस के साथ दूसरा आ जाता है, तीसरी सांस के साथ तीसरा और खयाल भी सांसो की तरह आते जाते हैं सांसो की तरह गर्म ठंडे, खुश्क, और अपनी ही जीभ से गीले-से नहीं । संजय ने अपने वाक्य को दुरुस्त किया—सिगरेट की आग से जली हुई सांस की तरह व्हिस्की के घूंट में भीगी हुई सांस की तरह

और संजय अपने ही एक खयाल की भयानकता से कांप-सा गया—नहीं, कत्ल के ताजा लहू में से उठती हुई गन्ध की तरह

कत्ल ? किस का कत्ल ? अपना या किसी और का ? संजय का खयाल फिर सुपरमैन की तरफ मुडा। साथ ही फ्रायड के कथन की ओर कि मनुष्य के इतिहास का आदि मनुष्य सुपरमैन था जिसे सदियां बाद नीत्शे ने लिखा वह दल का मुखिया था, गिरोह का सरदार, रेवड का रखवाला, कुटुम्ब का पिता जो अपने पुत्रो को और अपने अधीन सबो को, उन की भूख के अनुसार नही, अपनी मर्जी के अनुसार, रोटी भी देता था, सेक्स भी और उन की 'मैं' भी यही सुपरमैन फिर गुरु भी बना, राजा भी

और साथ ही संजय को खयाल आया—हिटलर उस सुपरमैन का पहला कातिल नही था, पहला कातिल एक कवि था, जिस ने अपनी 'मैं' का सवाल अपने हाथ में ले लिया या पहला कातिल किसी सुपरमैन का पुत्र था, किसी सुपरमैन का चेला, किसी सुपरमैन का सिपाही

संजय के मन में आदम के वंश की अजीब वंशावली उभरी—सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी नामों में आदम की जाति को बांटना सिर्फ एक हसीन कल्पना है। असल में हकीकत यह है कि आदम की जाति जिन दो हिस्सो में बंटी हुई होती है, व होते हैं कत्ल वंशी और कातिलवंशी जो 'हम' श्रेणी के होते हैं स्वयं' की पहचान को खोकर जीने वाले, वे कत्लवंशी हैं, कत्ल हो चुके लोगो के वंश से। और जो 'मैं' श्रेणी वाले होते हैं, वह सुपरमैन के पहले कातिल के वंश से हैं—कातिलवंशी।

और संजय ने अपने ही खयाल से घबराकर परे मेज पर पड़ी हुई अपनी कलम की ओर देखा—कलम यार! यह बात कहीं लिख न देना, वह सब जो अपने आप को सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी समझते है, डंडे सोटे उठाकर तुम्हारे पीछे पड जायेंगे और तुम्हारा लेखक बेचारा श्री संजय कुमार अपना नाम लेखको की गिनती में लिखाने की जगह शहीदों की गिनती में लिखा जायगा।

अचानक संजय का मन अपने से परे होकर एक नया मोड मुड गया—पता नही दुनिया में सब से पहले शहीद बनने का शौक किस हुआ था ? शायद वह

भी ऊँचे हुए 'मैं' को उठाता भी । और सजय इस बात को बड़े दार्शनिक ढंग से सोचने लगा—'मैं' की पहचान इन में से किसी से है, प्रतिक्रिया में से नहीं—शहीद होने की सम्भावना उन सम्भावनाओं को जानना व पहचान होती है । कला की दृष्टि का अन्तर्दृष्टि हो जाना । जिन के लिए दलील हाज़िर नहीं, दलील खोजनी पड़ती है । कभी इनसान ढूँढ़ जाता है, नहीं निरन्तरता ढूँढ लेता है पर कभी इनसान को बनी-बनायी और पड़ी-पड़ायी दलील दे दी जाती है । उन को आये दिन करके उस के हाथों में थमा दी जाती है और जिन के सहारे वह मौत का कफ़न अपने हाथों से अपने ऊपर तान लेता है । इस तरह जो एक इन्सानी घटना में से गुज़र जाता है 'और' उस एक को नामी मौत की चमक देखकर चौंधिया जाते हैं ।

और अच्छी-खासी मौत लगी ज़िन्दगी का सिर मौत की दरगाह पर रख देते हैं । यह पहचान वह साधारण मौत में से नहीं खोज सकते जिस नामी मौत में से खोज सकते हैं । यानी 'नाम' में से नहीं, विशेषण में से । पता नहीं कितनी सदियाँ हो गयी हैं आदम की जात को इस शहीद शब्द का विशेषण अपने साथ जोड़ते हुए । सचमुच अगर पूरे इतिहास को छानकर सब विशेषण इकट्ठे किये जायें—यानी दुनिया में कितने कारीगर हुए, कितने साइंसदाँ, कितने कलाकार, और कितने शहीद । सब से ज़्यादा गिनती शहीदों की मिलेगी । यानी इस विशेषण के आशिक़ों की ।

विचारमग्न सजय का हाथ अचेतन ही उस की मेज़ के एक खाने की ओर गया और खाने में से एक ख़त निकालकर उस ने बाहर मेज़ पर रख दिया । सजय की नज़र ख़त पर पड़ी, तो उसे अपने-आप पर हँसी आ गयी—यार सजय ! तुम भी अजीब हो, तुम्हारा ख़याल कहाँ शुरू हुआ था, कहाँ पहुँच गया । बात तो इस ख़त की थी, ख़त लिखने वाली लड़की की, जो ख़ामख़ाह मुहब्बत की दरगाह पर शहीद होना चाहती है ।

सजय को अपनी याद में एक अजीब ख़ालीपन का एहसास हुआ । क्या नाम है उस का ? ख़त की बात याद रह गयी, लेकिन ख़त लिखने वाली का नाम भूल गया । और उस ने ख़त खोलकर उस की अंतिम पंक्ति की ओर देखा, जिस के नीचे उस लड़की का नाम लिखा हुआ था—मेनका ।

सजय को हँसी आ गयी—देख अप्सरा ! मुझे तेरा नाम ही भूल गया । अगर मैं ऋषि भी होता, तब भी तेरा नाम मुझे याद रहता, हमारा तो इतिहास भरा हुआ है कि किस अप्सरा ने कौन-से ऋषि की समाधि भंग की । मैं शायद उन से भी गया-बीता हूँ । यह मेरा हठ, अगर केवल तप होता तो भंग हो ही जाता । यह न जाने क्या है, जो मेनका की किसी बात पर भी आँखें खोलकर उस की तरफ़ देखता तक नहीं ।

और सजय का ध्यान ऋषियों और अप्सराओं की प्राचीन कथा से हटकर

फिर वही आ गया, जहाँ कोई शहीद होने वाली आँखों से किसी की ओर देखता है और सजय खत की ओर देखते हुए कहने लगा—यार मेनका! तुम अच्छी-भली ब्याही हुई लडकी हो, पैसे और इज्जत में खेल रही हो यह तुम्हें शहीद होने का क्या शौक चर्राया है?

सजय ने खत को फिर उसी तरह मेज के खाने में रख दिया, लेकिन उस का चिंतन फिर दार्शनिक सा हो गया—सब से अधिक लोग किस दरगाह पर शहीद होते हैं? किसके नाम पर? मुहब्बत के नाम पर? नहीं, शायद किसी वाद या वतन के नाम पर नहीं, नहीं, सब से अधिक लोग मजहब के नाम पर कत्ल होते हैं

सजय एन्साइक्लोपीडिया निकालकर, मजहब के नाम पर शहीद होने वालों की गिनती की कुछ जानकारी खोजने लगा था कि कमरे के दरवाजे पर दस्तक हुई। खयाल आया—शायद डाकिया होगा। उठकर दरवाजा खोला—तो सामने मेनका खडी थी

—अन्दर आ जाऊं?

—हाँ हाँ

—मुझे देखकर कुछ हैरान-से हो

—नहीं मैं ने समझा था, शायद डाकिया है

—हाँ, डाकिया ही तो है, पर वह डाकिया, जो खत भी खुद लिखता है, और फिर खुद देने भी आ जाता है

कमरे में आकर मेनका ने हाथ का पर्स कुर्सी पर रख दिया, और खुद दीवान पर बैठते हुए पूछने लगी—क्या कर रहे थे?

—तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था।—सजय मुस्करा दिया।

—जहे किस्मत! मेनका हँस पडी, साथ ही पूछा—मेरा खत मिल गया था?

—हाँ।

—जवाब नहीं दिया?

—अब एन्साइक्लोपीडिया निकालकर जवाब ही ढूँढ रहा था

मेनका कुछ देर चुपचाप सजय की ओर देखती रही, फिर कहने लगी—जनाब कहानियाँ भी एन्साइक्लोपीडिया में देखकर ही लिखते हैं?

सजय हँस दिया—मैं ऐतिहासिक कहानियाँ नहीं लिखता नहीं तो वह भी एन्साइक्लोपीडिया में देखकर लिखनी पडती

—पर खत का कोई ऐतिहासिक जवाब देना था?

—अप्सराजी! ऐतिहासिक खत का जवाब और किस तरह ढूँढता?

मेनका के कटे हुए बालों का एक कुण्डल उस के माथे पर भ्रमर की तरह पडा

हुआ था, सजय ने वह कुण्डल हाथ की एक उँगली से परे किया, पर फिर उँगली मे वहीं ही इधर को माथे पर लाकर, हँसने लगा

—क्या देख रहे थे ?

—अप्सरा का रूप

—फिर समाधि को कोई फक पडा ?

—नही, क्योंकि मैं ऋषि नही

—*यू आर ए वरी फुअल पसन !*

—नही, मैं नेपोलियन भी नही हूँ

—क्या मतलब ?

—हाँ, सच, यार मेनका ! तुम ने मुझे अपना नया नाम तो बताया ही नही

—नया नाम ? मेरा ?

—हा मैं बताऊँ ?

—क्या ?

—मारिया

एक पल पहले मेनका का चेहरा कुछ उतर गया था, नये नाम से उस का ध्यान 'मिसेज़ चौधरी' नाम की ओर चला गया था, जो बहुत दिन हुए, उस के होंठो के स्पश को स्वीकार करते हुए सजय ने कुछ समय बाद ही उसे उस नाम से बुलाया था और मेनका का खयाल था कि अब भी सजय व्यग्य से उसी नाम को दोहरायेगा, पर उस के मुँह स मारिया नाम सुनकर वह फिर कुछ खिल उठी और हँसकर कहने लगी

—समझ गयी, जनाब ने किसी कहानी मे मेरा नाम मारिया लिखा है ।

—नही हसीना ! मैं ने तुम पर कोई कहानी नही लिखी है, सजय का चेहरा और गम्भीर हो गया ।

—फिर जनाब ने मेरा यह नाम क्यो रखा है ?

—मै ने नही रखा, मेनका ने रखा है। शायद सोचा होगा कि अप्सरा बनने से कुछ नही होता, काउटेस बनना चाहिए

—समझ गयी

—सच !

—यह मानना पडेगा कि जनाब कयामत की नजर रखते है सचमुच नेपोलियन की पोलिश महबूबा काउटेस मारिया के बारे मे पढ रही थी तो अपने आप को मारिया की तरह ही महसूस किया था पर जनाब ने कसे जाना ?

—क्योंकि किताब म जगह जगह पर पेंसिल से लकीरें लगी हुई थी

—सो अगर मै मान लू कि आज मैं मनका स मारिया बनकर आयी हूँ, तो

फिर ?

—फिर किसी नेपोलियन बोनापार्ट को ढूँढना पड़ेगा

—इस मारिया के लिए सजय ही नेपोलियन है मारिया का अन्जाम, जानती हू कि नेपोलियन उस से हुए अपने पुत्र को अपने तख्त का वारिस नही बना सकता था और तख्त के वारिस के लिए उसे मारी लुइस चाहिए थी पर जो भी मारी लुइस कभी आयेगी, आ जाय, मैं तो मारिया हू

—पर यह गरीब सजय नेपोलियन नही है

—नेपोलियन सिर्फ एक आक्रमणकारी नाम नही है। न ताज-तख्त के वारिस का यह एक असाधारणता का नाम है

—लेकिन असाधारणता का असली अर्थो मे, लौटकर साधारणता की ओर मुड़ना होता है, जो कोई भी नेपोलियन नही मुड सकता

—क्या मतलब ?

—साधारणता से मेरा अर्थ है दरिया मे बहने जैसी साधारणता, जो जीत और हार के किनारो के पास से अविचल भाव से बहकर आगे चली जाती है

मेनका हँसकर दीवान पर से उठ बैठी और उस ने अपनी बाहे सजय के गले मे डालकर कहा—लेकिन दरिया से कोई भी जी भरकर पानी पी सकता है, दरिया को कोई आपत्ति नही होती पीने वाले की प्यास पर कोई एतराज नही होता

सजय हँस दिया, पर चुपचाप अपने बायें हाथ की उँगलियो से मेनका के बालो से खेलता रहा

—जनाब क्या सोच रहे है ? कुछ देर बाद मेनका ने ही पूछा।

—यही कि हाउ टु सरेडर टु जाय

—एक-एक करके सारे हथियार हाथ से फेंककर । मेनका ने कहा, और हँसते हँसते सजय की कमीज के सारे बटन खोल दिये।

एक एक कर उतरे हुए कपडे जब फर्श पर बेकार हथियारो की तरह गिर पडे तो सजय ने अपना बदन मेनका के हवाले कर दिया। पर मन मे अजीब खयाल आया—क्या बदन भी कपडो जैसा हथियार होता है, जो शरीर से उतारकर परे सामने रखा जा सकता है ? पर उस ने मेनका से कुछ नहीं कहा।

खयाल, दिल की नाडियो मे चलते हुए लहू की तरह चलता रहा—खुशी की उम्र चाहे एक पल हो, मैं उस के हवाले होना चाहता हूँ पर जो हवाले हुआ है वह सिर्फ हथियार है मैं नही

यह शायद मेनका के जिस्म मे से गुजरने वाला पल था कि सजय मन की किसी गुफा मे गुजर गया—वहाँ गुफा मे काफ्का बैठा हुआ था, और काफ्का की महबूबा लडकी मिलेन दोनो चेहरे बहुत पहचाने हुए थे, काफ्का का बीमार

फेफडे के कारण पीला और शा त चेहरा, और मिलेन का अपनी छोटी उम्र की तपिश म किसी से किये हुए विवाह से दुखी और उदास चेहरा और दोनो का एक दूसरे के चहरे की रोशनी म, जि दगी के लिए तरसता और तडपता हुआ चेहरा

सजय एकटक दाना की ओर देखता रहा, फिर कानो म काफ्का की आवाज आयी, वह मिलेन से कह रहा था—'तुम्हे प्यार करता हूँ, मूख लडकी ! जिस तरह समुद्र अपनी छाती की तह म पडे हुए पत्थर के टुकडे का प्यार करता है—अपने अ दर निगलकर और ईश्वर करे, मैं इसी तरह तुम्हारे समुद्र म पडा हुआ एक पत्थर का टुकडा हो जाऊँ '

काफ्का के शब्द सजय के काना मे पडे, तो कान उन शब्दो स भर गय इतन कि किसी और की आवाज कानो मे नही पड रही थी बहुत देर बाद उस के क धो को हिलाती और गदन के पास से सरकती हुई एक आवाज उस के कानो से टकरायी—जनाब सा गये है ?

सजय ने चौक्कर सामन देखा—न वहा काफ्का था, न मिलेन, वहा सिर्फ वह स्वय था, और सामने मेनका

होठा स एक गहरी सास निकली ।

मेनका न फश स उठाकर एक कपडा अपने अगो के आगे किया, और सजय की कमीज सजय को देत हुए हँसकर बोली—लो जनाब, अपने हथियार सँभाल लो

सजय न अपना बदन भी गिरे हुए हथियार की तरह दीवान से उठाया और हम पडा ।

मेनका ब्लाउज के हुको को ब द करते हुए सजय की ओर देखने लगी, फिर बोली—क्या दरियाजी ! किसी प्यासे न एक घूट पी लिया तो आप का कुछ घट तो नही गया ?

सजय न ख श्क से हाठा पर जीभ फेरी,और एक बात होठो पर आकर अटक गयी—दरिया को भी प्यास लगती है, पर कोई भी यह बात दरिया से नही पूछता

मेनका ने साडी को अपने गिद लपेटते हुए, दोनो बाह सजय के गले मे डाल दी, पूछा—आज का दिन कसा लगा ?

—आज का दिन ?—सजय के होठ कुछ सकोच म पड गये लेकिन फिर सकोच को पार कर गए। उस ने कहा—आज का दिन तुम्हारे नाम। इन डिफेंस आफ मेनका

मेनका छोटे शीशे के आगे खडे होकर बाला को सँवारन लगी, बोली—मिस्टर चौधरी टूर पर जा रहे हैं, परसा मैं घर अकेली रहूँगी वहा परसा

रात

सजय हसने लगा

—क्यो ? —मेनका ने बस इतना ही कहा था कि सजय बोल उठा—परसो ? नही इन डिफेंस आफ सजय

मेनका ने कुछ नही कहा, शायद सोचा कि परसो वह स्वय आ जायगी और सजय को आकर ले जायेगी, उस समय वह कुछ नही कहेगा, जिस तरह उस ने आज कुछ नही कहा

—चाय पियोगी ? मेनका जाने को हुई तो सजय ने पूछा।

—चाय ? पर यहाँ चाय कौन बनायेगा ?

—स्टोव पडा हुआ है, मै बना दूगा

मेनका ने चाय नही पी, हँसकर चली गयी। उस के जाने के बाद सजय ने स्टोव जलाया, चाय का प्याला बनाया, और ठडे-से हुए होठो से एक गम घूट भरते हुए कहने लगा—यार काफ्का ! तुम जानते हो कि एक दरिया को जो प्यास लगती है, वह दूसरे दरिया के लिए होती है राहगीरो के मिलन से क्या होता है जब तक कि दरिया से दरिया न मिले

मन की एक बहुत बडी लहर आयी और सजय के पर उस लहर से उखड गये—वह सारे का सारा मन के पानियो के हवाले हो गया

पता नही कितना समय बीत गया, फिर एक—उसे बाहो से पकडकर पानियो से बाहर निकालती हुई आवाज आयी—तुमने मुझे पहचाना नही ? मै मिलेन हू, तुम्हारे काफ्का को प्यार करने वाली तुम्ह बताना चाहती हूँ कि अगर तुम्हें जीना है तो काफ्का मत बनना उस म सब कुछ था, सिर्फ़ वह नही था, जो जीने के लिए चाहिए तुम नही जानते, वह क्या होता है, जो जीने क लिए चाहिए ? एक ओट, एक सहारा, काहे का ? किसी भी चीज का चाहे कभी सिफ एक झूठ का ही हो, एक भुलावे का या उत्साह का, या किसी विश्वास का, और चाहे वह सहारा सिफ निराशा का ही हो हम सब लोग किसी न किसी सहारे पर जीते है केवल काफ्का था, जिस ने किसी भी चीज का सहारा नही लिया था इसी लिए वह मर गया वह सचमुच जी नही सकता था तुम्हे जीना है तो तुम काफ्का नही हो सकते मत होना !

पूरे दो दिन सजय ने मन की अजीब दशा देखी—दीवान पर लेटकर कभी एक किताब पढ़ता, कभी दूसरी, कभी तीसरी इस तरह कि किताबो की अल मारी म स एक एक करके सारी किताबें दीवान के इद गिद बठ गयी

और तीसरे दिन शाम को जब मेनका आयी, उस न मेनका स कमर म आने के लिए नही कहा वही दरवाजे के पास हाकर कहा, "नही नही जा सकूँगा "

मेनका न एक बार सजय की बाँह पर हाथ रखत हुए हाथ का पूरा जादू कर

देना चाहा, उसे खुद ही लगा, जैसे उस ने मास की बाह पर नही दीवार के एक टुकडे पर हाथ रखा है और दीवार उसी तरह सख्त और अचल है

मेनका चली गयी, तो दीवान की ओर लौटते हुए सजय के मुह से निकला—सॉरी मिलेन ! मैं ने तुम्हारा कहना नही माना शायद कोई आट, कोई सहारा मेरे लिए नही बना।—और फिर वह हँस पडा, कहने लगा—यार सजय ! तुम्हे भी सारी उम्र अपनी छाह मे बठना है, और अपनी धूप म खडे होना है

अपनी इस तक़दीर की झलक सजय के जेहन म उभरी, तो पल-भर के लिए वह पत्थर की मूर्ति के समान हो गया। फिर हवा के एक याके की तरह हँसते हुए कहने लगा—यार सजय ! इस तरह पत्थर हो जायगा ता तेरी पूजा करनी पडेगी। साथ ही एक धुआं-सा उसके भीतर से उठा—जब कई वर्ष पहले उस ने अपने पिता के कमरे म जाकर किसी देवता की मूर्ति के आगे धूप की जगह जलती हुई सिगरेट रख दी थी कहने लगा—सजय यार ! अगर तुम पत्थर हो ही गये हो, तो फिर तुम्हारी पूजा कर ही देता हूँ और उस ने एक नया सिगरेट सुलगा लिया



सजय ने ड्योढी मे से साइकिल निकाल ली थी, लेकिन अभी बाहर तक नही आया था कि सामने से ए० सी० मेहरा आता हुआ दिखाई दिया। पडिल पर रखने के लिए उठाया हुआ पर सजय ने रोक लिया।

—मैं जनाब को खोजता हुआ आ रहा हूँ, और जनाब किसे खोजने जा रहे हैं ?—मेहरा ने पास आकर कहा और साइकिल के हैंडल पर हाथ रख दिया।

सजय मुस्करा दिया—रोटी खोजने जा रहा था ढाबे पर

—चलो साइकिल रखो। आओ, कमरे मे चलें।

—लेकिन खाना ?

—मैं कमरे मे छत्तीस प्रकार का भोजन परोस दूगा।—मेहरा हँसने लगा।

सजय ने मेहरा के खाली हाथो की ओर देखा, लेकिन कहा कुछ नही।

मेहरा ने एक उँगली से सजय के माथे को छुआ, कहा—जनाब! दिमाग म जितनी भूख है, सारी मिटा दूगा।

सजय हँस पडा—तुम आदमी हो या ढावा?

—चलो, पहले अपने कमरे मे चलो, फिर तुम्ह बताऊगा कि मेरे ढावे म क्या-क्या पकवान पके हुए हैं

सजय ने पीछे मुडकर साइकिल को फिर ड्योढी म रखा, और अपने कमरे को खोलते हुए कहने लगा—सो, आज तदूरी रोटी की जगह खयाली पुलाव खाने होगे।

मेहरा ने कमरे मे आकर दीवान पर बठते हुए कहा—खयाली पुलाव तो जनाब पकाते हैं, नॉवेल और कहानियो मे। किसी लडकी को कभी हाथ लगाकर नही देखा, और जनाब कहानियाँ लिखते हैं इश्क की।

मेहरा के बैठने से, या जब उस ने जोश मे दीवान पर हाथ मारा था, दीवान पर से हलकी सी धूल उडकर फिर दीवान पर गिर पडी

—क्या हाल किया हुआ है कमरे का

—वह जो लडका आता था, आया नही है दो दिन मे शायद बीमार है।

—कौन, वह मेहतर का लडका? लेकिन तुम्हारी इमारत की मेहतरानी तो बाहर दरवाजे के पास अभी-अभी झाड़ू दे रही है।

सजय हँस दिया—लेकिन मेरे कमरे मे सिफ उस का लडका आ सकता है, वह नही। अच्छा, उठो, मैं दीवान की चादर झाड दू।

मेहरा जोर से हँसा—समझ गया, मेहतरानी ने जनाब की नजर पहचान ली होगी, इस लिए डर गयी होगी

—नही, डरी हुई तो पहले स थी, उसे कोई मेहरा मिला होगा, इस लिए बेचारे सजय से भी डरन लगी।—सजय ने कहा और सिगरेट का पकेट मेहरा की ओर बढाया।

मेहरा ने एक सिगरेट सुलगा लिया। कहा—बस खाली होंठ ही फूंकने हैं? सूखे हुए गले के लिए कुछ नही मिलगा?

—चाय बनाऊँ?

—नही आज चाय नही चलेगी, पर जश्न का इकरार चलेगा। अच्छा, यह बताओ, साहित्य म कितने वाद होत हैं?

—वाद?

—यही रोमाचवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, आदि-आदि।

—ए साइक्लोपीडिया दपू?

—नही तुम्हारे ए साइक्लोपीडिया का रोब नही चलता।

—फिर क्या चलेगा ?

—एक नया वाद चलेगा यार तुम्हारे लिए एक नया वाद चला देंगे।

—मेरे लिए ?

—हाँ, मैं चलाऊँगा।

सजय ने एक नजर मेहरा की ओर देखा, पर कहा कुछ नही।

—यह तो पूछो, मैं कौन-सा वाद चलाऊँगा।

—तुम कुछ भी चला सकते हो, सिफ ठहरा हुआ समय नही चला सकते।

—अगर ठहरे हुए समय को भी चला दू ?

—हर घडी की सुई वाह झटकारती है, पर समय नही चला सकती।

—फ़िलॉसफर साहव, जरा आसमान से नीचे उतरो, नीचे देखो, मैं क्या चला रहा हूँ।

मेहरा ने जेब से एक कागज निकाला और सजय के सामने रख दिया।

—देखा जनाब ?

—हाँ, वोटर साहब ! देख लिया है।

—यह अकादमी एवाड का फाम है।

—हाँ, देख लिया है।

—अगर मैं इस पर जनाब का नाम भर दू ?

—बात तो वाद की थी, इस से कौन सा वाद चलेगा ?

—प्रबघवाद !

—समझ गया।

—नही समझे। मैं अकेला अगर तुम्हारा नाम लिख भी दू, तो कुछ नही बनेगा।

—फिर ?

—फिर प्रबधवाद चलाऊँगा। और जिन लोगो के पास ऐसे फाम आये है, उन पर भी तुम्हारा नाम लिखवाना पडेगा।

—पर यह प्रबधवाद मेरे लिए क्यो ?

—यार ! तुम समझते क्यो नही ? अगर मैं ने भी कोई नॉवेल-शॉवेल लिखा होता तो अपने लिए चला सकता था।

—फिर प्रबघवाद स पहले

—तुम्हारा मतलब है, नावेल लिखू ?

—हाँ, प्रबघवाद से पहले कलमवाद

—यह अपने वस की बात नही है अपने बस का तो प्रबधवाद है।

—फिर उस से ठहरा हुआ समय चलने लगेगा ?

—हाँ, रोटी पानी चलेगा, तो समय चलेगा।

—रोटी तो आदम तब से खा रहा है, जब से उस ने गेहू का पहला दाना मुह से लगाया था

—सजय साहब, फिलॉसफी छोडो, सीधी बात बताओ।

—अच्छा, पूछो।

—कोई एक हजार रुपया खच आयेगा।

—किस का, मेरा ?

—और क्या मेरा ? पाच हजार तुम्ह मिलेंगे, मुझे नही। बस, समझ लो, पाँचवा हिस्सा

—समझ गया।

—पर शोहरत सारी तुम्हे मिलेगी, हर अखबार म तुम्हारी तसवीर

—यार ! फिर मेरा पोर्ट्रेट नही, कोलाज छपना चाहिए, चेहरे का एक टुकडा तुम्हारा, एक टुकडा उस का जो दूसरा वोट देगा, और एक टुकडा उस का, जो तीसरा वोट देगा और

मेहरा खिलखिलाकर हँसने लगा, बोला—यार ! तुम कमाल क आदमी हो, तुम्हारी तसवीर छपेगी तो समझ लेना, हम सब ने अपन चेहरे तुम्हे दान कर दिये, गुप्तदान।

—दान ? किस तरह ? देखो, कुल कितन वोट चाहिए ?

—कम से कम तीन। लेकिन अगर चार पाच हो जायें तो प्रबधवाद पक्का।

—फिर पक्के की बात करो, कच्चे की क्यो करते हो ? देखो, कुल पाँच हजार है न। अगर एक वोट का एक हजार गिन लें, तो पाँच हजार में वोट पक्के।

—चलो, हाथ मिलाओ ! फिर तो पक्के से भी पक्का प्रबधवाद ! लेकिन यार, फिर तुम्हारे हिस्से मे एक पसा नही आयेगा।

—पसे से चेहर जो खरीद लूगा। एक ही बात हो सकती है, या तो आदमी रोटी खरीदे, या फिर चेहरे। कम से कम यह तो होगा कि चेहरे दान नहीं लन पडेंगे।

मेहरा को सजय का यह वाक्य अच्छा नही लगा, पर वह हँस दिया—चलो यार ! तुम्हारी अकड कायम रहे, इस तरह ही कह लो, पर यह तो देखो, हमे आसमान मे जाल डालकर हुमा पकडना है।

—हुमा ?

—कहते हैं, हुमा पक्षी जिस के सिर पर आकर बठ जाता है वह बादशाह बन जाता है। हम तुम्हारे लिए हुमा पकडकर लाना है।

—और मैं ?

—शोहरत भी तो बादशाही होती है, तुम्हें मिल जायेगी।

—पर हुमा का क्या बनेगा जाल में उस के दो चार पंख तो टूट ही जायेंगे, फिर मैं उस के टूटे हुए पंखों की ओर देखूंगा, और वह मेरे मुंह की ओर जो एक पोर्ट्रेट से एक कोलाज बन चुका होगा।

मेहरा ने अपने हाथ का काग़ज़ तह करके जेब में रख लिया और दीवान से उठते हुए कहने लगा—अच्छा सजयकुमार जी ! फिर अपनी पोर्ट्रेट बनाओ और कमरे में टांग लो। वह मेहतर का लड़का जब मेज़ और दीवान झाड़ा करेगा तुम्हारी तसवीर भी थाड दिया करेगा।

सजय मुस्करा दिया—यार अतरचंद, तुम तो नाराज़ ही हो गये। तसवीर तो मैं खुद पाड लिया करूंगा पर तुम देखने तो आया करोगे न ?

मेहरा का चेहरा अतरचंद के नाम पर तमतमा गया। यह उस के बहुत थोड़े परिचितों को पता था कि वह जब से कुछ लिखने लिखाने की कोशिश कर रहा था, तब से उसे अपना नाम अतरचंद एकदम पसन्द नहीं रहा था। इस लिए वह अतरचंद की जगह ए० सी० लिखने लगा था

सजय ने अतरचंद के चेहरे की ओर देखा, कोई पल भर चुप रहा फिर उस के चेहरे की तमतमाहट को मुस्कराहट से मेलते हुए बोला—जब कोई बाज़ झपटता हुआ दिखाई देता है तो छोटे-छोटे पक्षी, चिड़ियों और घुघियों जैसे, उस से बचना चाहते हैं। जिस पक्षी को वह पहले दिखाई दे जाता है, वह साथियों को सावधान करने के लिए कू-कू करता है यों तो ज़्यादा खतरा उसे ही होता है, जो मुंह से आवाज़ निकालता है, वह यह भी सोच सकता है कि वह चुप रहा तो यह खतरा उसे नहीं होगा, औरों को होगा, लेकिन वह औरों के लिए बोलता है, मैं सचमुच इसी तरह बोला हूं। हवा में उड़ने वाले यह पैसे या शोहरत के बाज़ हमारे ऊपर झपटने के लिए होते हैं।

मेहरा ने धीरे से मुस्कराकर सजय की ओर देखा पर कहा कुछ नहीं। सजय ने ही फिर कहा—और खतरे के समय, दूसरे व्यक्ति को खतरे का सही पता देने के लिए कई बार चौंकाना भी पड़ता है। मैं ने तुम्हें ए० सी० की जगह इसी लिए अतरचंद कहा था। पर यह नाराज़ होने की बात नहीं है, मेरे प्यार की झिड़की है। मैं नहीं चाहता कि तुम इस तरह के कामों में अपने आप को ज़ाया कर दो।

मेहरा का चेहरा खाली-सा हो गया—पता नहीं, अपने आप से खाली या सजय से खाली। और वह चुपचाप चला गया।

कमरे में हलकी-सी धूल अवश्य थी, पर अपनी जगह पर बैठी हुई। अचानक सजय को लगा, वह धूल अपनी जगह से उठकर सारी हवा में फैल गयी है।

सजय के मुंह से धीरे से निकला—यार सजय ! आसमान में यह कैसी धूल

उड रही है, जो उडता हुआ बाज भी सब को हुमा दिखाई देता है, और सब उसे पकडकर अपने-अपने सिर पर बैठाने की कोशिश कर रहे हैं—अगर नहीं कर पाते तो दूसरे के सिर पर बिठाने का सौदा कर रहे हैं



दोपहर तप रही थी, जब मेहतर के लडके ने संजय के दरवाजे को खटखटाया, कहा—आप के गांव से कोई आदमी आया है जी, बेचारा एक घंटे से परेशान हो रहा है जी, आप को पूछता हुआ

—मेरे गांव से ?—संजय को हैरानी-सी हुई। मन में अपने सारे खानदान का नक्शा घूम गया पर दूर-पास का कोई रिश्ते में भी ऐसा व्यक्ति याद नहीं आया, जो आज वर्षों बाद उसे ढूंढता हुआ आ सकता हो।

—मैं जी उस एक घंटे से देख रहा था, गेट के अन्दर आकर कभी किसी से पूछता था, कभी किसी से, फिर बाहर सडक पर चला जाता था, पर फिर लौटकर आ जाता था। फिर मैं ने ही उस से पूछा कि आप किस का घर ढूंढ रहे हैं।

—फिर ?

—बोला—जो किताब लिखते हैं—सो मैं ने उसे झट से बता दिया। देखो जी, उस ने कइयों से पूछा, पर किसी को भी पता नहीं कि आप किताब लिखते हैं। मुझ से उस ने पूछा ही नहीं था, नहीं तो मैं तो पहले ही बता देता।

संजय को हँसी आ गयी। लगा—सारी इमारत में शायद यही मेहतर का लडका है जिसे उस का भेद मालूम है। हँसकर बोला—सो मेरे एकमात्र बायोग्राफ़र, जाओ, उसे अन्दर बुला लाओ।

मेहतर के लडके की समझ में आधा वाक्य नहीं आया पर आधा समझ में आ गया, इस लिए बाहर जाकर वह गांव से आने वाले को अन्दर बुला लाया।

सचमुच किसी गांव से आया हुआ कोई आदमी था। शरीर पर खद्दर का कुरता पाजामा, जो दिन भर की धूप और धूल से अटा हुआ था, शर्मिन्दा-सा

उस के शरीर स सटा हुआ था। उस क पावा की लाल मलो जूतो म भी एक विनम्रता थी, और वह सकुचाकर कमरे की दरी को ओर देख रही थी

—आप हो न सजय कुमार, जिन्होंने वह किताव लिखी है ?—आगन्तुक ने पूछा।

—जी हां।

—वस जी, मरा जी करता था आप का दखन का।

सजय न आगन्तुक से बठन के लिए कहा, पर अपन किसी पाठक का यह रूप उस न कल्पित नही किया था, इस लिए पूछा—आप का पसन्द आयी, मुझे खुशी है, पर आप को कठिन नही लगी ?

सजय का अपना वाक्य अच्छा नहीं लगा। लगा कि उसे किसी को समन्च पर सवाल करन का अधिकार किसी तरह भी नही था। लेकिन सुनन वाले न हँसकर सुना, कहा—नही जी ! मैं न तो वह औरो का भी पढकर सुनायी है। हम न, कोई दस आदमिया न पढी है जी। पर एक वात जरूर है जी, यह शोर गुल म पढने वाली किताव नही है। इसे तो आदमी अकेले म बठकर पढे, और वह भी मन चित्त लगाके। और वीच म कोई उसे वुलादे-वलाय भी नही

सजय को यह मन-चित्त लगाकर पढन वाली सीधी-सादी भाषा मे कही गयी वात वहुत अच्छी लगी, और उस ने आगन्तुक को पहली वार आदर से देखा।

—मुझे जी शहर आना था, अफ्रीका का टिकट वनवान के लिए

—आप अफ्रीका जा रहे हैं ?

—हमार ताऊजी वहा रहते हैं जी। एक मौका निकल आया जाने का वहन का ब्याह है वहां, ताऊजी की लडकी का। कहत हैं—लडके ! आ जा दो-चार महीन यह दुनिया भी देख जा।

सजय को उस आदमी की सादगी भली-सी लग रही थी। कुछ कहने की बजाय वह उसा की वात ध्यान से सुनता रहा। वह कह रहा था—सो, मैं ने किताव पर प्रकाशक का पता देखकर उसे खत लिखा था और आप का पता मालूम कर लिया था।

—आप गाव मे क्या करते हैं ?

—वस जी जून भुगतत हैं

सजय कुछ हैरान हुआ, पर उस ने दिलचस्पी से पूछा—वहा कुछ जमीन होगी ? खेती-वाडी करना भी वढिया काम हाता है।

—वह तो जी ठीक है, पसे टके वहुत हैं गुजारे लायक। पर सच पूछे तो हम जून काट रह ह। हम दो चार आदमी हैं, कुछ सुलगन है जिन मे। चोरी छिपे शहरो का चक्कर लगा लेते है। कोई अच्छी किताव मिल जाती है तो वह भी चोरी छिपे ले जाते हैं।

संजय को उस की 'सुलगन वाले आदमियों' की, बात छू गयी। लेकिन शहर जाकर और कुछ करने की जगह चोरी छिपे किताबें खरीदने वाली बात अजीब लगी। पूछा —क्या किताबें पढ़ने और खरीदने के लिए भी चोरी की जरूरत होती है ?

वह हँस दिया। अब शायद वह संजय से बातें करते करते सहज हो गया था, अब उस में पहले का संकोच नहीं था। कहने लगा—हम एक खास फ़िरक़े के लोग हैं जी, एक धार्मिक वर्ग के। हमारे गुरु की गद्दी पर आजकल जो गुरुजी हैं, उन का बस यह आदेश है कि जो धार्मिक पुस्तकें वह हमें पढ़ने के लिए दें, हम बस उन्हें ही पढ़ें। वह हमें और किताबें नहीं पढ़ने देते। सोचते होंगे, अगर इन लोगों को अक्ल आ गयी तो फिर हमारा आदेश कौन मानेगा।

संजय ने एक आश्चर्य से उस गाँव से आये हुए व्यक्ति की ओर देखा, लगा, फ्रायड के शिक्षा और समाज वाले विश्लेषण को कभी किसी ने इतने सरल और सीधे शब्दों में नहीं कहा होगा।

—क्योंजी, मैं ग़लत कहता हूँ ?—उसी ने पूछा, शायद इस लिए कि संजय चुप था।

—नहीं। मैं सोच रहा था, अगर आप इस तरह सोचते हैं तो उस सम्प्रदाय को छोड़ क्यों नहीं देते ?

—हम बाप दादा के समय से उस सम्प्रदाय में हैं जी। बात यह है जी, कि सम्प्रदाय का जो पहला गुरु था, वह तो सच्चा क्रांतिकारी था, उस समय जो उस के साथी थे, वे भी धर्म कर्म वाले थे। उन्होंने तो अंग्रेजी शासन से लड़ाई भी लड़ी थी। बाद में कोई गुरु नहीं रहा जी, बस गद्दी रह गयी, और गद्दियाँ आप जानते ही हैं, कैसे चलती हैं

संजय ने सुराही से पानी का गिलास भरा, सामने रखा, पूछा—कुछ और पियेंगे ? कुछ ठण्डा ? या चाय ?

—लो जी, किसे खयाल था कि आप के हाथ का कभी पानी पियेंगे। आप ने जी किताब में वे बातें लिखी हैं जिन से अन्दर आग सुलग उठती है।

संजय को अजीब सा अहसास हुआ कि आज एक पाठक ने कड़ी धूप झेल कर एक लेखक को नहीं पाया आज एक लेखक ने बरसों के बाद एक पाठक पाया है

—मुझ से बताया नहीं जाता जी बस, यही जी करता था कि एक बार आप को आँखों से देख आऊँ। मैं ने शायद आप को हर्ज ही किया हो काम का पर आप की मेहरबानी, आप ने आये हुए आदमी से पाँच मिनट बातें कर लीं

—नहीं, बैठिये। मैं खाली हूँ।—संजय ने कहा, और पूछा—पर यह

—[illegible] है [illegible]। [illegible]

[illegible] है, [illegible]

मदन [illegible]

[illegible]

[illegible]

—[illegible]

[illegible]

मदन [illegible]।

[illegible]

[illegible]

नाम लिख दीजिए।

मदन ने [illegible]

लिख दिया। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

एक बार खयाल आया, मैं न उस का नाम भी नहीं पूछा, न उस का, न उस के गाव का। फिर लगा, जिस गाँव स मैं न सोचन की चिनगारी पायी है, वह भी जरूर उसी गाँव का होगा, तभी तो इस तरह सोचता है और तडपता है। और साथ ही मेहतर के लडके की कही हुई बात याद आयी—आप के गाँव स जो कोई आदमी आया है। और, सजय को लगा कि उस मेहतर के लडके ने आज इलहाम जैसी बात कही थी

मन म एक टीस उतर गयी—यार सजय! पाठको की कापिया पर तुम्हारे हस्ताक्षर क्या अथ रखते हैं? विद्रोह तो गलो म घुटा हुआ है, वहाँ केवल रोटी के हस्ताक्षर होने चाहिए।



यह ढलते जाडो के बाद के पतझड के दिन थे।

सजय की मिलकियत केवल एक कमरा था, लेकिन उस कमरे की खिडकी वष के सभी मौसमो की ओर खुलती थी। खिडकी के ठीक सामने नीम के पाच पेड थे—नीम के पत्तो का छोटा सा जगल। और खिडकी जसे सीधी जगल की छाती म खुलती थी। ऋतुओ की छाती म। पत्ते झडते, नयी कोपलें बनकर फिर उगते, उन पर बौर आता, निबोलियाँ पडती, उन की टहनियो पर कभी तोते बठते, कभी गिलहरियाँ घूमती और सजय कितनी कितनी देर खिडकी मे खडे होकर पीछे नही मुड सकता था

पतझड के दिनो मे पत्ते झड झडकर उस के कमरे म आते रहते थे मेज के कागजो पर अक्षरो की भाति गिरते रहते थे और वह कितनी कितनी देर खडे होकर हरे पीले अक्षरो की भाषा पढता रहता था

यही पतझड के दिनो की शाम थी कि एक तेज झोक के साथ बाँहो म भर लेने जितने पत्ते कमरे म आ गिरे। सजय को सवेरे वाले मेहतर के लडके के चेहरे का ध्यान हो आया—साहब! यह खिडकी बन्द कर दिया करो, सारा

कमरा कूड़े से भर जाता है।—और इस समय भी सजय का सवर की तरह हँसी आ गयी—यार ममतू! अगर मैं खयाला की खिडकी व द कर दू तो कमर म कागजो का कूडा भी नही रहेगा।

अँधेरा गहरा होता गया। सडक की वत्ती की लो नीम के पडा म से छनकर आ रही थी, पत्तो म जलती-बुझती-सी दिखाई दती हुइ इस लिए सजय न कमरे की बत्ती वन्द कर दी।

अचानक कमर मे खडका सुनाई दिया—पत्ता के जगल की दिशा से नही इमारत की मनुप्यो की वस्ती वाली दिशा से

सजय न कुछ हिचकिचाकर दरवाजा खाला। वाहर सीढिया की मद्धिम-सी रोशनी मे एक लगभग सालह वरस की लडकी परछाइ के समान खडी हुई थी।

आकार-सा दिखाई दिया, लेकिन पहचान नही सका। सजय का लगा, जस दरवाजे की यह खटखट इस लडकी से ग़लती मे हा गयी हागी।

लेकिन लडकी इस ग़लती का पहचानकर पीछे नही हुइ, झिझकत हुए कदमा स आग कमर की आर वढी—मैं अ दर आ जाऊँ?—लडकी न पूछा, ता सजय न कमरे की बुझाई हुई वत्ती का जलाया, लडकी की आर दखा, लेकिन कहा कुछ नही। सिफ ख्याल आया—आग की खिडकी से केवल पतझड का अहसास हुआ है, पर इस दरवाजे स जस खुद पतझड की ऋतु कमरे म आ गयी है

लकिन यह वात लडकी से कहन की नहीं थी, इस लिए सजय न केवल इतना कहा—मैं ने पहचाना नही।

लडकी के शरीर पर मटमले-से कपडे थ, पर उस के चेहरे से अधिक मटमले नही। वह छाट-छोट फूल वाली छीट की सलवार-कमीज पहन हुए थी। पर कपडे के उडे हुए रग स अधिक उस के चहरे का रग उडा हुआ लगता था। सालह वप की चढती जवानी म भी, जवानी क ढलन का सा अहसास दता था।

—मरा नाम कमला है।

लडकी क पतल उजडे हुए चेहरे पर कवल एक चीज थी—उस की आखा की पलकें जो दूसरे नक्शा की तरह उजडी हुई नहा थी। शायद वहाँ उस की आयु क सालहवें वप का वास था

उस न आँखें झपककर—सामन सीधे सजय की आर दखा, कहा—पिछली तरफ जो छाटे कमरे है, मेरी माँ वहाँ रहती है।

सजय का हलका-सा आश्चय हुआ कि लडकी न पिछन सर्वेण्टस क्वाटस का सीधे सर्वेण्ट्स क्वाटम वहन की जगह छाट कमरे कहकर काम चला लिया है।

—आप दा वार वहाँ आकर मेरी माँ का बुख़ार की दवाइ द गय थ।

यह वडी छोटी सी वात थी सजय का याद नहीं आयी। उस न कइ वार माली

को, चौकीदार को, और बाहरले किरायेदारों म से कइयों की कोठरी म जाकर समय-कुसमय किसी का दवाई या चाय जगी छोटी मोटी मदद दी थी। सो, अव भी उसी अनुमान से पूछा—माँ बीमार है ?

—नहीं। वह आज मासी क घर गयी है। मुझे जात समय चाभी दे गयी थी, पर चाभी कहीं खो गयी है।

—सो, कमरा बन्द है। पहले क्या नही बताया, अब इतनी रात गय

—पीछे घास म गिरी थी, मैं कितनी ही दर तक ढूढ़ती रही।

—अब ताला तोड़ना है ?

लडकी न न हाँ की, न नही। पलको का सारा बोझ आँखो पर डाल लिया।

—चौकीदार से कहना था, वह ताला खुलवा देता या तोड देता।

—नही, माँ गुस्से होगी।

—फिर ?

—मैं रात को यहाँ सो जाऊँ ?—लडकी ने दोनों भारी पलकें आँखो म उठाकर सजय की ओर देखा, और काली स्याह आँखो की चमक क साथ कहा—सवेरे चाभी ढूढ लूगी, वही घास म कही पडी होगी।

सजय का एक क्षण के लिए लगा—यह बडी साधारण-सी बात है, एक इनसान से एक इनसान की माँगी हुई छोटी-सी मदद, लेकिन दूसरे ही क्षण यह साधारण-सी बात साधारण नही लगी। कहा—यहाँ मेरे कमरे म ? वहाँ चौकीदार स कहना चाहिए था, मेरा मतलब है चौकीदार की औरत से।

—उन लोगो से मुझे डर लगता है।—लडकी ने फिर अपनी पलको का बोझ आँखो पर डाल लिया। शायद इस बार अपनी बात का भी।

सजय ने अपने कमरे की चारो दीवारो की ओर देखा, फिर उस खिडकी की ओर जो जगल की ओर खुलती थी, और उस दरवाजे की ओर जो शहर की ओर खुलता था—शहर जो रात को भी कभी पूरी तरह नही सोता उस के किसी कोने से किसी बच्चे के रोने की आवाज आती है, किसी कोने से किसी पत्नी की चूडियो की खनक आती है, किसी और कोने से किसी बूढे के खखारने की

सजय ने जोर से हँसना चाहा, कहना चाहा—यार सजय ! इस शहर और जगल के बीच जो तेरी चौदह फुट × चौदह फुट की मढ़या है, देखो ! वह भयरहित है। और कही कोई भी जगह एक जवान और अकेली लडकी को सुरक्षा नही दे सकी

लेकिन सजय ने केवल इतना कहा—तुम कहाँ सोओगी ?

कमरे मे दीवान एक ही था पर फर्श पर हरे रग की दरी घास की तरह बिछी हुई थी—नीम के पत्ता के छिडकाव वाली।

—यहाँ एक तरफ को सो जाऊँगी।—लडकी ने कहा, और परली दीवार के

पास को होकर दूरी पर बठ गयी।

कमरे का दरवाजा व द करना था, सजय ने व द कर दिया। लेकिन कमरे की बत्ती को व द करत समय हाथ रुक गया—बत्ती जलती रहने दू, अँधेरे म तुम्ह डर लगेगा

लडकी न खिडकी की ओर देखा, जिस म से बाहर सडक की बत्ती की मद्धिम सी रोशनी दिखाई देती थी, कहा—नही, बुझा दीजिये।

सजय न अलमारी से एक चादर निकाली, लडकी का दी, फिर कमरे की बत्ती बुझाकर, कितनी ही देर खिडकी मे खडा रहा।

लडकी चादर को खोलकर, क धो तक लपेटकर, दीवार से सटकर, गुच्छा-सी होकर पड गयी।

झडते हुए पत्ता को मुह और छाती पर लेते हुए सजय ने एक रोमाचक कल्पना करनी चाही कि एक लडकी सारे शहर से अपनी जवानी को बचात हुए एक नीम के पेड पर चढ गयी, और फिर टहनियो को थामते हुए एक टहनी से लटककर खुली हुई खिडकी म से गुजरकर उस के कमरे म आ गयी

पर ऐसी काई कल्पना सजय के मन मे टिकी नही। उस ने कमरे के अँधेरे म मेज, कुर्सी, अलमारी, दीवान जैसी चीजो के गोलाइया और लम्बाइयो मे टूटत हुए आकारा की ओर दखा, फिर फश पर छोटे छोटे और जीवित चीजो की तरह हिलते हुए नीम के पत्ता की ओर, और फिर परली दीवार के पास गुच्छा सी सोयी हुई उस लडकी की ओर

लडकी के ऊपर लिपटी हुई सफेद चादर अँधेरे म अधमली-सी दिखाई दे रही थी, ऐस जसे नीम के पेड से उतरकर एक बडी सी गिलहरी उस की खिडकी स अ दर कमरे मे आ गयी हो।

सजय को अपनी यह गिलहरी वाली कल्पना अच्छी लगी, पर साथ ही खिडकी की ओर स नही, दरवाजे की ओर से भय का एक खडका हुआ—सवेरे इसे चौकीदार या कोई और मरे कमरे स जाते हुए देखेगा तो क्या सोचेगा ?

पर एक निमिष बाद सजय को हँसी आ गयी—यार सजय ! तुम कब से लोगो के विचार स्तर पर उतरकर देखन लगे हो ?

लोगो का खयाल सजय ने मन से झटक दिया पर उडती हुई मक्खी की तरह एक नया खयाल उस के मन पर आ बैठा—कल इस की मा आकर क्या कहेगी ? वह न जाने क्या सोचेगी ? शायद मुझ से यह भी कहेगी कि लडकी तो डरी हुई थी, पागल थी, पर तुम्ह तो कुछ सोचना चाहिए था

सजय के चौदह फुट × चौदह फुट वाले भयरहित कमरे मे एक नय भय का पत्ता झड आया, न जाने मन की किस टहनी से

कमरे म नीम के पत्तो की हलकी-सी सरसराहट थी, पर इन नय पत्ता का

अलग और अधिक आवाज वाला धड़का सजय के कानो म आने लगा

लडकी निश्चल, दीवार स सटी, दीवार का ही हिस्सा-सा बनी हुई खड़ी थी

सजय को अपना आप लडकी स भी छोटा और नगण्य लगा, एक साधारण लडकी स भी अधिक साधारण

और वह अपनी आँखो म बे-आराम-सा होते हुए, दीवान पर आकर लेट गया

कुछ दर सो नहीं सका

नीद कब आयी, सजय को पता नहीं। वह कितनी देर सोया, उस यह भी पता नहीं। सिफ यह पता है कि कोई उस की बाँह पकड कर बार-बार जगा रहा था, और वह जाग नहीं पा रहा था।

चौंककर नीद खुल गयी, देखा—दीवान क पास वही लडकी खडी जगा रही है

सजय ने अधेरे म टटोलकर दीवान के सिरहान की ओर लगा हुआ बिजली का स्विच ढूढ़ा, बत्ती जलायी और कुछ घबराकर उस लडकी की ओर देखा।

लडकी चुपचाप दीवार के पास खडी हुई थी।

सजय ने घडी देखी, रात के चार बजे थे। घडी की लम्बी सूई की तरह सजय के माथे पर त्योरी पड गयी, कहा—अब क्या हुआ है तुम्ह ? सोती क्या नहीं ?

—मुझे डर लगता है।

त्योरी जैसे माथे मे लिखी गयी। सजय का जी चाहा—अभी कमरे का दरवाजा खोलकर लडकी को चौकीदार के हवाले कर द, कहे कि उस के कमर का ताला तोडकर लडकी को उस के कमरे म पहुँचा दो वहाँ, जहाँ उसे डर नहीं लगता।

लगा, वह इस समय कमरे का दरवाजा खोलेगा तो एक भयानक शहर जाग पडेगा। सो, एक गुस्से से लडकी को देखते हुए बोला—फिर मैं बत्ती जला कर तुम्हारी चौकीदारी करता हूँ, तुम सो जाओ।

लडकी ने कहा कुछ नहीं, वहीं काँपती हुई दीवान के पास दरी पर बठ गयी

सजय ने सटपटाकर कहा—क्या नाम है तुम्हारा ? तुमने क्या बताया था ?

लडकी ने अपना सिर दीवान क सहारे टिका दिया, और धीरे से कहा—कमला।

—पर कमलादेवीजी ! अब तुम्ह नीद नहीं आ रही है तो मैं क्या करूँ ?

सजय की त्योरी माथे स उतरकर उस के होठो पर आ गयी। पर देखा, लडकी सुबक-सुबककर रो रही है।

काई और समय होता तो सजय का मन पिघल जाता, लेकिन वह उसी तरह कठोर सा उस की अपनी छाती स टकराता रहा

—फिर बताओ, देवीजी! मैं क्या करूँ?

लडकी ने दीवान पर अपनी बाँह बढ़ाकर सजय के हाथ को छुआ, कहा कुछ नही, उस की आर देखा भी नही

सजय उस के हाथ को झटककर परे कर देना चाहता था, लकिन उस ने कुछ सोचा, और हाथ का उसी तरह रहने दिया, सिफ कहा—कमला! मेरी तरफ दखो!

कमला ने देखा नही, गदन का कन्धा म और गुच्छा कर लिया।

—कमला! सजय न आदेश के स्वर म कहा।

लडकी शायद डर गयी, उस ने सिर को ऊपर करके सजय की आर देखा।

—तुम्हे सचमुच डर लग रहा है?

लडकी ने नही मे सिर हिला दिया।

—फिर तुमने मुझे आधी रात को क्यो जगाया है?

लडकी पतझट के पत्ते की तरह काप उठी। फिर उस का सिर दीवान के सिरे पर इस तरह गिर गया, जस कापता हुआ पत्ता पड से गिर पडा हो। पत्ते के समान पीली आवाज मे बोली—मा ने कहा था।

सजय की त्योरी उस के माथ पर स उतरकर उस के होठो पर आ गयी थी, अब हाठो पर से भी उतरकर उस की छाती मे उतर गयी।

न जान वह मन की त्योरी से दूर कहा तक देख रहा था।

—रात भरे कमरे म आने के लिए तुम्हारी माँ ने कहा था?—सजय ने सीधा सवाल लडकी के सामने रख दिया।

लडकी ने हा मे सिर हिला दिया।

—चाभी खो जाने की बात भी उसी न सिखायी थी?

लडकी ने फिर हाँ म सिर हिला दिया।

सजय अब मन की त्योरी से लडकी को नही देख रहा था उस से परे उस की माँ की ओर, या शायद उस स भी पर उस की किसी मजबूरी की ओर देख रहा था।

अचानक पूछ उठा—तुम्हारा बाप नही है?

—नही।

—भाई?

—नही।

—माँ गुज़ारे के लिए क्या करती है ?

—लोगो के कपडे सीती है ।

—गुज़ार के लिए पैसे नही कमा सकती ?

लडकी कुछ देर चुप रही, पर शायद सजय की उपस्थिति म यह चुप आसान नही थी बोली—मशीन किस्तो पर ली है। वह जितन पैस कमाती है, आधे किस्त म चले जाते हैं।

सजय कुछ देर कुछ सोचता रहा, फिर उस न कहा—जस आज उस ने तुम्हे रात यहाँ भेजा है, पहल भी कही भेजती रही है ?

—नही, कभी नही। वह रोज़ कहती थी, मैं आती नही थी। रात उस न जबदस्ती

सजय को लगा—लडकी झूठ नही बोल रही है।

पूछा—तुम्हारी माँ का क्या खयाल था कि इस तरह मैं तुम्हें सवेरे कुछ पस दूगा ?

—नही।

—फिर !

लडकी न जवाब नही दिया। फिर रोने लगी।

लडकी का हाथ कब का सजय के हाथ से परे हो गया था, इस समय सजय ने ही हाथ आगे बढाया, लडकी के कधे पर रखा, कहा—फिर अगर तुम्हे इस तरह पसे नही लेने थे, तो क्या करने आयी थी ?

—माँ कहती थी—लडकी ने मुश्किल से इतना कहा, फिर सुबककर रोने लगी।

—तुम स्कूल म पढ़ती हो ?

लडकी ने 'नही' मे सिर हिला दिया।

—तुम्हारा पढने को जी नही चाहता ?

—माँ ने स्कूल से उठा लिया था—लडकी ने कहा, और उस की रुलाई कुछ थम गयी। बोली—माँ मुझ से कपडे सीने के लिए कहती है, पर कपडे सीने म मेरा जी नही लगता।

—स्कूल म पढन को जी करता है ?

लडकी ने 'हा म सिर हिलाया।

—अगर मैं तुम्हारी स्कूल की फीस दे दिया करूँ, तो तुम पढोगी ?

लडकी के चेहरे पर एक गहरा-सा रग फिर गया, कहने लगी—ज़रूर पढूगी।

—अच्छा, यह बताओ, माँ न क्या सोचकर तुम्हे रात को यहा भेजा था ?

लडकी शरमा गयी। यह शम एक कुआरी लडकी की स्वाभाविक शम थी।

सिर नीचा करके कहा — वह मेरा ब्याह करना चाहती है।

सजय ने इस बात के परिणाम को यहा तक नही सोचा था, इस लिए उस की त्यारी उस के सारे शरीर मे फल गयी।

—आप फिक्र न करें।—लडकी म अचानक एक बल आ गया था और वह दीवान के पास गुच्छे-सी होकर बठी हुई, अचानक खडी हा गयी थी।

सजय ने केवल उस की आर देखा, कहा कुछ नही। लडकी ने ही कहा—मा सवेरे ही आयेगी। कहती थी, पहले कमरे की तरफ जाऊँगी, वहा ताला लगा देखकर ज़ोर-ज़ोर से शोर मचाऊँगी

—ओर फिर जब तुम मेरे कमरे मे पायी जाओगी, वह लोगा के सामने मुझे ज़लील करेगी।—सजय ने बाकी बात स्वय कह दी।

लडकी ने 'हा' म सिर हिलाया, फिर कहा—मैं अभी जाकर कमरे मे सो जाती हूँ। फिर वह कुछ नही कर सकती।

सजय ने पहली बार लडकी के भले से मुह की ओर देखा, पूछा—तुम्हे इस समय वहा अकेले डर नही लगेगा ?

—नही, मैं कई बार अकेली रहती हूँ, मुझे डर नही लगता।

—तुम्हारी मा पहले भी बाहर जाती रही है ?

—कभी-कभी

—कहा ?

—पता नही

सजय ने आगे कुछ पूछने की जगह कहा—इस वक्त बाहर चौकीदार होगा, वह तुम्हे जाते हुए देख लगा, वह तुम से पूछेगा।

—नही देखेगा, वह सिर्फ गेट पर नही रहता, बाहर सडक पर जाकर भी खडा होता है, बायी तरफ के खँडहरा तक भी जाता है।

सजय को लडकी की इस समझ पर कुछ हैरानी हुई। सचमुच इस इमारत के दाहिने हाथ की ओर कितनी ही इमारतें थी, पर बायी ओर केवल नीम के पड थे, और पत्थरो की किसी पुरानी इमारत के खँडहर। और इमारत का चौकीदार हाथ मे लालटेन लिए हुए खँडहर तक भी निगाह रखता था।

—मशीन की कितनी किस्तें बाकी है ?—अचानक सजय ने पूछा।

—पता नही, छह सात होगी, पर अगर मैं भी सिलाई का काम करूँ, झट उतर जायेंगी।

सजय ने देखा—इस समय रात के चार बजे वाली यह लडकी रात के ग्यारह बजे वाली लडकी नही थी।

पूछा—पर तुम तो सिलाई का काम नही करना चाहती हो, पढना चाहती हो ?

—दोना करूँगी। पढ़ाई का एक स्कूल शाम को भी लगता है।

अचानक सजय का मन पिघल गया। उस ने उठकर अलमारी खोलकर बटुए म पड़ा हुआ एक सौ का नोट निकाला, और लड़की के आग करते हुए कहने लगा—देखा, इस से मशीन की किस्तें एक ही बार म दी जा सकेंगी, फिर तुम्हारे पास पढ़ाई के लिए पैसे बच जाया करेंगे।

लड़की ने हाथ आगे नही बढ़ाया, शायद कुछ सोचती रही, फिर कहने लगी—नही, माँ का अगर सौ रुपये इस तरह मिल गय, तो थोडे दिन बाद वह फिर रात का मुझे किसी के घर भेज देगी।

सजय ने पहली बार हैरान होकर लड़की के चेहरे की ओर देखा

लड़की ने प्रणाम करने की तरह हाथ जोडे, कहा—कमरे की बत्ती ब द कर दीजिये, खिडकी से देख लूगी। जिस समय चौकीदार खँडहरों की तरफ जायगा, मैं अपने कमरे म चली जाऊँगी।

—और पास म गिरी हुई चाभी कस मिलेगी?—सजय को हलकी सी हँसी आ गयी।

—वह तो मैं ने ख़ुद एक पत्थर के पीछे रखी है

लड़की अब सहज हो गयी थी, अपनी आयु स भी बड़ी लग रही थी

सजय ने कमरे की बत्ती बुझा दी, और खिडकी के पास आकर बाहर सड़क की ओर देखन लगा।

—सुना। तुम मरी एक बात मानोगी? सजय न दूर से गेट के पास खडे हुए चौकीदार की आर देखा, और पीछे कमरे के अँधेरे म खडी हुई लड़की की आर मुडकर कहा।

—मानूगी।—लड़की ने नि शक सा उत्तर दिया।

—फिर कभी इस तरह रात को किसी के घर मत जाना।

—नही जाऊँगी।

—अगर माँ ने जबदस्ती भेजा?

—मैं नही जाऊँगी।

सजय ने फिर कुछ सोचा, कहा—सवेरे माँ से क्या कहोगी?

—कुछ नही यही कि मैं नही गयी।

—वह गुस्से होगी

—हुआ करे।

सजय ने और कुछ नही पूछा, सिफ कहा—फ़ीस के लिए और कुछ किताबों के लिए कुछ पैसे

लड़की ने बात काटते हुए कहा—अभी नही, कभी दिन के वक्त आकर ले जाऊँगी थोडे-से

'थोडे से' छोटा सा शब्द था, पर यह लडकी पर हो रहे विश्वास को सजय के मन मे बढा गया। उस ने फिर खिडकी से बाहर देखा—चौकीदार की लालटेन खँडहरो को जाने वाली सडक पर थी।

सजय ने खिडकी से पीछे मुडकर दरवाजे की ओर जाकर कमरे की कुडी धीरे से खोल दी।

वह लडकी कमरे के अँधेरे से अँधेरे का एक टुकडा सी बाहर चली गयी।

लडकी के अपने कमरे तक ठीक तरह पहुँच जाने का अनुमान अब वह लडकी से नही लगा सकता था, पर चौकीदार की स्वाभाविकता से लगा सकता था, इस लिए सजय जाकर खिडकी मे खडा हो गया।

चौकीदार की लालटेन खँडहरो की ओर जाने वाली सडक पर कितनी ही देर तक हिलती-डुलती दिखाई देती रही फिर कोई पल भर के लिए ओझल सी हुई, और फिर वह सडक पर मुडती हुई दिखाई देने लगी।

गेट की ओर भी सजय कितनी ही देर तक देखता रहा। लालटेन वहा आकर ठहर गयी। चौकीदार के स्टूल के पास बैठकर जैसे ऊँघने लगी

इमारत के अन्दर की तरफ की दीवार पर बिजली की रोशनी थी, सजय ने चौकीदार को एक बार साधारण दृष्टि से अन्दर इमारत की दीवार की ओर देखते हुए देखा, और फिर देखा कि चौकीदार वहा स्टूल पर बैठकर बाहर की सडक की ओर देखते हुए एक बीडी सुलगाने लगा है

विश्वास के अनुमान से विश्वास की पुष्टि तक समय फल गया तो सजय खिडकी के पास से हटकर दीवान पर बठ गया। नीद नही आ रही थी इस लिए एक सिगरेट जलाकर पीने लगा।

सिगरेट के न जाने कौन से कश म से बीती रात का पहला पहर उभर आया, जिस समय धीरे से खडका करके वह लडकी आयी थी।

खयाल आया—उस लडकी को देखकर उसे पहला अहसास यह हुआ था कि दरवाजे मे से जैसे सचमुच पतझड की ऋतु कमरे म आयी है इस समय वह एहसास नही था इस लिए सजय के मुह से निकला—यार सजय! आज तक तुम न पडो का पतझड ही देखा था, आज देखा है जब इन्सान के मन पर पतझड आता है, उस के पत्ते कैसे झडते हैं ?

आज की घटना पिघलकर सजय के मन म बहने लगी—किसी माता पिता के मन म पतझड आ जाये तो देखो, सोलह वष के कोमल पत्ते भी हवाओ के हवाले हो जाते हैं ।

आज की घटना से विचलित हुए सजय न एक माँ के चेहरे को कठोरता स देखना चाहा लेकिन आखो म कठोरता नही आयी, केवल कल्पित चेहरे की बदनसीबी आँखो के सामने आ गयी, जिस जवान होती बेटी की चिन्ता एस भयानक

को सँभालकर रखते हुए पीढ़ी कौन-सी शताब्दियों में पहुँच गये? वहाँ जहाँ कभी तुम जैसे किसी व्यक्ति ने ये अक्षर पत्थरों पर लिखे थे। फिर शायद चमड़े पर लिखे थे। और फिर शायद भोजपत्र पर। तब जब कागज़ नहीं बना था।

और साथ ही संजय को अहसास हुआ—कहाँ तो यह शताब्दियाँ पुराना समय, और कहाँ आज से गिनती में बीस बरस पहले की बात, जब माँ ने उस के चपत लगायी थी। दोनों समय उस के मन में किस तरह इकट्ठे हो गये?

संजय ने गिलास के बाकी रहे घूँट को एक ही बार में पी लिया, और एक सिगरेट सुलगाकर कमरे में बेचैन-सा घूमने लगा।

अचानक आँखें भर आयीं—माँ! तुम अगर जीवित होतीं तो आज तुम से पूछता—जब कई शताब्दियाँ पहले मैं भोजपत्रों पर लिखा करता था, तुम तब भी मेरी माँ थीं? क्या तब भी किसी भोजपत्र पर लिखे हुए अक्षरों पर मैं ने पैर रखा था, और तुम ने तब भी मेरे चपत लगायी थी? सच तुम कितनी शताब्दियों से अक्षरों का सम्मान करना सिखा रही हो?

आज बहुत वर्षों के बाद, संजय को माँ की मृत्यु पर इस तरह रोना आया, जैसा शायद मृत्यु के समय भी नहीं आया था।

जलते हुए सिगरेट का आखिरी टुकड़ा संजय की उँगली से छू गया तो उस ने सिगरेट को राखदानी में बुझा दिया। अपना ध्यान किसी और तरफ़ करना चाहा। कमरे का अखबार उसी तरह रखा हुआ था, सो वही उठाकर पढ़ने लगा।

पहले पृष्ठ पर एक मोटा-सा शीर्षक था—एक राजनीतिक नेता के भाषण का, जिस में उस ने लोगों से ईमानदार और नैतिक जीवन जीने की अपील की थी।

ज़ोर से हँसते हुए संजय के हाथों से अखबार छूट गया। याद आया—लोहे के कारखाने वाले केशव ने एक लाइसेंस के लिए अपने हाथ से इसी नेता को दो लाख रुपये दिये थे। मुँह से निकला—यार नेताजी! जिन अक्षरों से रिश्वत लेते हो, उन अक्षरों से सदाचार की बात तो न किया करो। यार! अक्षरों का मान तो रखा करो।

और संजय का चेहरा किसी मौत के ग़म जैसा हो गया, लगा—सचमुच माँ जैसी कोई चीज़ है, जो दुनिया में मर गयी है। वह जो शताब्दियों से अक्षरों का मान करना सिखाया करती थी।

लगा—मेरी माँ का वास्ता सिर्फ़ मुझ से था। एक साधारण औरत का वास्ता सिर्फ़ अपने पुत्र से। पर जिस चीज़ का वास्ता हर इनसान से होता है, वह तो साधारण नहीं हो सकती। पर उस की मृत्यु पर कोई नहीं रोता, कोई नहीं, एक माँ के मरने जितना भी नहीं।

संजय की दृष्टि मेज़ पर पड़े हुए अपने उन काग़ज़ों की ओर गयी जो उस

की छह महीने की तपस्या थ, और जिस के पास से आज अभी, वह एस उठा था जसे बाधि वृक्ष के नीचे म उठा हो ख्याल आया—आज कौन सा ज्ञान लकर इस बाधि वृक्ष के नीचे म उठा हूँ ? लगा सचमुच कोई ज्ञान प्राप्त हुआ है, किसी चीज की मौत का ज्ञान

और ज्ञान जसा ही एक और एहसास हुआ—शायद जब स दुनिया बनी है, तब स ही कुछ लोग लगातार अक्षरों का जत्न करते हैं और कुछ लोग होते है जो अपने-आप को भी अक्षरों म डाल देते हैं, सदा डालते रहते है

लगा—अभी थोड़ी एक घड़ी पहल ख्याल आया था कि मेर प्राण इन कागजो म हैं, य साबुत रहेंगे तो मैं नहीं मर सकता। वह ख्याल सिर्फ इतना ही नहीं था, न इन कागजों तक सिमटा हुआ और न मैं सिर्फ संजय के एक नाम स जुड़ा हुआ

संजय की नजर दुनिया की पहली किताब से लेकर वहाँ तक फैल गयी जहाँ अंतिम कुछ रहा था, और वह हँसकर कहने लगा—यार संजय ! तुम्हारा कब क्या नाम था और कब क्या नाम होगा, यह तो तुम भी नहीं जानते

पर इतने बड़े अज्ञान म एक ज्ञान का संतोष संजय के चेहरे पर छा गया कि आज उस ने अपना वंश ढूँढ़ लिया है। वह मनुष्य के उस वंश से है, जिस के लोग जब स दुनिया बनी है तब स अपने प्राण अक्षरों म डालते चले आ रहे हैं

और संजय ने झूमकर मेज पर पड़े हुए सारे कागज एक फाइल म इकट्ठे किये। फाइल को धागे स बाँधा और ड्योढ़ी स साइकिल निकालकर अपने उस प्रकाशक की ओर चल दिया जिस ने उस का पहला उपन्यास छापा था।

गर्मी का मौसम चला गया था, लेकिन बाहर सड़क पर आकर संजय को धूप का एहसास कुछ इस तरह हुआ जैसे जाते जाते गर्मी आज बाहर सड़क पर रुक गयी हो।

उस ने साइकिल को धीमा कर लिया, पर माथे के पसीने को पोंछकर वह प्रकाशक के दफ्तर पहुँचा तो लगा कि कई सड़कें पार करके यहाँ पहुँचने तक बिलकुल जाड़ा हो गया है

बहुत ठंडे कमरे ने अचानक संजय की आँखों म नींद भर दी। लगा—वह शायद छह महीने स सोया नहीं था, और अब जी भरकर गहरी नींद म सोना चाहता है

—संजय साहब ! आप का पहला नॉवेल अच्छा तो था, लेकिन बिका नहीं। —कमरे म अचानक यह आवाज आयी तो संजय का हाथ, जिस मे फाइल थी, अपने शरीर से सट गया।—बैठिये बैठिये, कोई नया नॉवेल लिखा है ?

—जी हाँ।

—बैठिये मैं आप को एक तरकीब बताता हूँ

—तरकीब नॉवेल लिखने की ?—संजय हँस सा पड़ा।

हँसती हुई सी आवाज में ही जवाब आया—लिखने की न सही, लेकिन छापने की तो बता ही सकता हूँ

संजय ने कहा कुछ नहीं, सिर्फ सुना—आप को नाम बदलना पड़ेगा।

इस बार संजय ने जवाब दिया—लेकिन आप ने तो अभी देखा ही नहीं, मैं ने क्या नाम रखा है

—मैं नॉवेल के नाम की बात नहीं कर रहा हूँ, वह तो खैर हम खुद ही बदल लेंगे

—फिर किस का ? मेरा ? संजय न जाने क्या जोर-जोर से हँसने लगा।

—मैं यही कह रहा हूँ

संजय को सुनकर विश्वास नहीं हुआ, इसी लिए उसी तरह हँसते हुए पूछने लगा—क्यों, पहला नावेल कम बिका है, इस लिए अब मेरा नाम ज्योतिषी से पूछकर रखा जायेगा ?

—नहीं नहीं, मेरा यह मतलब नहीं था। बात यह है कि नये लेखक को लोग पढ़ते नहीं

—लेकिन नया तो मैं पहले नॉवेल की बारी था

संजय को याद आया कि पहला नॉवेल इस शर्त पर छापा गया था कि संजय को कोई पैसा नहीं मिलेगा। खयाल आया—शायद अब भी यह भूमिका उसे उसी शर्त पर ले आने के लिए है इस लिए उस ने फाइल को फिर अपनी ओर कर लिया। इस बार वह इस शर्त के लिए तैयार नहीं था। अब वह बेकार के कामों की मदद के बिना जीना चाहता था। लेकिन साथ ही खयाल आया—इस के लिए नाम बदलने वाली बात का क्या सम्बन्ध है

—इस बार आप कुछ पैसे लेना चाहेंगे ?

—हाँ, इस बार मैं पहले की तरह नहीं कर सकता।

—मैं ने इसी लिए कहा था। आप को अच्छे पैसे मिल जायेंगे।

—लेकिन नाम ?

—हमारे पास तीन नाम हैं इन में से किसी नाम से भी छाप देंगे—पैसे नकद वह भी पेशगी

संजय का माथा ठनका। वह जानता था कि कई प्रकाशकों ने जाली नाम रजिस्टर्ड करवाये हुए हैं। संजय का नाम भी उसी किसी जाली नाम की कब्र में डाला जाने वाला है।

—देखिये, संजय साहब ! दो चार अखबारों में आप की तसवीरें छप गयीं, दो चार इण्टरव्यू लिये गये इस से आप तो खुश हो गये, लेकिन इस से किताब नहीं बिकती। आम घरों की औरतें नॉवेल शॉवेल पढ़ती हैं और वह अखबारों को

पढकर नही खरीदती

सजय यह जानता था कि जाली नामो से जो नॉवेल छपते हैं वे ये सिर-पर के घटनाप्रधान नावेल होते है, बहुत करके विदेशी जासूसी नॉवेलो की घटिया नक़ल—इस लिए मुस्कराते हुए बोला—पर मैं उस तरह के नॉवेल नही लिखता।

—यह कोई बात नही है, सामाजिक भी चलेगा। कहिए पाच सौ रुपए अभी दे दू? हा, सच, याद आता है, एक इण्टरव्यू म आप ने खुद कहा था कि असली लेखक का वास्ता लिखने से होता है, शोहरत से नही। वह चाहे सारी उम्र गुमनाम रहे। क्यो, आप ने कहा था न?

—हाँ, कहा था।

—फिर आप को नाम की क्या परवाह है?

—नाम की तो नही—सजय मुस्करा दिया—पर वश की है।

—क्या मतलब?

सजय का जी किया, कहे कि दुनिया मे जितने भी लोग है दो वशो से हैं, एक जो अक्षरो का कत्ल करता है, और दूसरा

पर सजय को उस वश की बात करना व्यर्थ लगा जो अपने प्राण भी अक्षरो म डाल देता है इस लिए चुप हो गया। लेकिन चुप रहना स्वाभाविक नही था, इस लिए वह ज़ोर स हसने लगा

—लो जी, इस मे हँसने की कौन-सी बात है?

—मैं बराबर की मेज पर पडी हुई आप की तसवीर देख रहा था

—क्यो जी, हमारी शक्ल ऐसी है कि

—वरी हैंडसम फेस मुझे याद आया कि इसे मैं ने किसी अखबार म देखा है

—नही जी हमारी तसवीरें कौन अखबारो म छापता है

—नही, मेरा मतलब है कि वह तसवीर जो मैं ने देखी थी, उस स आप की शक्ल बिलकुल मिलती है

—किस की तसवीर थी?

—किसी जमन डाक्टर की।

—जमन डाक्टर की? मेरी शक्ल उस से मिलती है?

—हा।

—क्या नाम था उस का?

—डाक्टर रोज़ेनथाल।

—अजीब बात है। जमन तो बहुत खूबसूरत होते हैं।

सजय फाइल उठाकर कमरे स चलने लगा तो प्रकाशक न चकित होकर

कहा—क्या पाच सौ भी मजूर नही ?

—नही ।

—चलिये, सात सौ ले लीजिये फाइल इधर दीजिय ।

सजय न उत्तर नही दिया। फाइल लेकर बाहर साइकिल स्टड पर आ गया, जहा अपनी साइक्लि रख गया था ।

भीडवाला मोड गुजर गया, सामने खुली सडक आ गयी तो सजय को खयाल आया—यार सजय ! अगर वह तुम स पूछ लेता कि डाक्टर रोजेनथाल कौन था, तब तुम क्या जवाब देत ? झूठ तो बोलते नही, फिर क्या सच बतात ?

अब यह सवाल सामने नहा था। न उस ने पूछा था, न सजय ने बताया था। लेक्नि अचानक सजय को खयाल आया—अगर उस ने किसी दिन हिटलर के समय का इतिहास पढ लिया तो उस मे रेवसब्रुक के कन्सेण्ट्रेशन कम्प का हाल पढते समय वह रोजेनथाल का नाम जरूर पढ लेगा

सजय को इस समय हसी नही आयी, एक झावका सा आ गया, आखो के सामने कई व कदी तडपने लगे, जिन के दातो मे सोने की कीलें थी और जिन का 'इलाज' करते हुए डॉक्टर रोजेनथाल उन्ह मारकर उन के दातो से सोना निकाल लेता था

आखो के सामन अनगिनत चेहरे आ गय, और उनमे सजय का अपना चेहरा भी अपनी आखो के आगे आ गया



सौतेला शब्द सजय के जन्म के साथ ही जन्मा था

यह सिफ एक रिश्ते के सम्बन्ध म जन्मा था, उस के पिता की पहली पत्नी के पुत्र स उस का रिश्ता जोडकर । उस क कोमल कानो न घर और अडोस-पडोस स, बाल उपदेश क पहले पाठ की भाँति, यह शब्द सुना था—सौतेला भाई जसे पटिया पर कोई पहला अक्षर लिखता है एक आकार' या 'ओम्' या 'सात सौ

छियासी'।

बाद म उस ने यह शब्द फिर किसी से नही सुना, लेकिन देखा कि दुनिया के हर रिश्ते म यह फला हुआ है हर मनुष्य के हर मनुष्य क साथ रिश्त म। सौतेले पडोसी के रूप मे भी, सौतेले दास्तो के रूप म भी और सौतेले समाज, सौतेले मजहब, सौतेली सरकार और सौतले ईश्वर की शक्ल म भी

पिता की मृत्यु के बाद घर-जायदाद को सौतले भाई ने अपन कब्जे म कर लिया था, कहा था—बात कानूनी कायवाही तक पहुँची तो वह कानून को खरीद लेगा—और अपन गोल विचारो को जलाकर उस ने सारे गाव म धुआँ फैला दिया था कि उस के पिता की दूसरी पत्नी घर म डाली हुई औरत थी, विवाह कर लायी हुई नही थी इस लिए उस का दूसरा पुत्र उस का जायज बच्चा नही था

उस दिन सजय ने दुनिया के इसाफ का भी सौतला होते देखा था

—चला, यार सजय! तुम तो सगे सजय लगत हो, और सब सौतेल ही सही। और चिरकाल स सजय न यह सगा रिश्ता पाकर, और कुछ सोचना छोड दिया था।

लेकिन एक और सग रिश्त का एहसास था जा सिफ हवा मे था। यह उस क मन म मुहब्बत की कल्पना थी, जो हर हकीकत की पहुँच से परे थी। इस लिए यह एहसास सदा हवा म बना रहा। बहुत समय हुआ माँ की शक्ल म उस न देखा था, और उसे विश्वास था—किसी न किसी दिन वह एक अपरिचित औरत की शक्ल मे भी उसे देखेगा और उसी हवा मे ठहरे हुए एहसास की बाते करने के लिए वह कहानी भी लिखता था उपन्यास भी

—सिफ यह नही—उस ने अपने आप को स्पष्टता दी थी—दुनिया का सब कुछ जो सौतेला है, वह स्वाभाविक नही है जो स्वाभाविक था वह कब अस्वाभाविक बन गया, किस न बना दिया क्या बना दिया, यह सब जानने के लिए भी लिखना होगा—

जानने की और पाने की एक चाह सजय के सामने स्थिर नही रहती थी, कई बार उन सूखी सूनी टहनियो की तरह हा जाती थी, जिन्हें हरे रग की याद भी न रही हो, पर फिर सूखी टहनिया म से किसी एक रात को कई हरी कापलें निकल आती थी और सजय का अपने मन की मिटटी के धरती की तरह करामाती होने म फिर विश्वास आ जाता था

समाज और राजनीति के कोल्हू म जाते हुए मनुष्य की आखा पर खोप चढाकर, एक ही दायरे म घूमती रहने वाली हानो, कभी-कभी सजय की रीढ की हड्डी म कपन के समान उतर जाती थी। वह मनुष्य की आखो से खाप उतार-कर उस की नजर स चमत्कार की कल्पना करके देखना चाहता था। पर यह सारी कल्पना कभी किसी बादल के छोटे स घेरे म सिमटकर रह जाती थी, कभी

हवाओं में हाथ-पाव मारते हुए सारे आसमान पर फैल जाती थी और कभी केवल उस की आँखों से बरसकर धरती पर बिखर जाती थी।

मन कभी-कभी बहुत थक जाता था। संजय यह भी सोचता था—वह चुपचाप घास के एक टुकड़े पर धूप की भाँति पड़ा रहे और फिर उम्र की संध्या के समय चुपचाप वहाँ से उठकर चला जाये पर फिर उस की अपनी धूप ही चमत्कारी हो जाती थी गुजरती हुई हवा से, या उड़ते हुए पक्षी की चोंच से, गिरा हुआ बीज भी उस की धूप के नीचे उग जाता था और फिर कागज-कलम लेकर बैठ जाता था

रोटी रोजी के लिए वह कई छापेखानों में प्रूफ रीडिंग करता था। यह मजदूरी पृष्ठों के हिसाब से होती थी, जो कई दिन लगातार करने के बाद वह कई दिनों के लिए छोड़ देता था—जब कभी कुछ लिखने के लिए या यूँ ही कुछ पढ़ने के लिए, वह घर बैठकर अपने पल्ले से रोटी खा सकता हो।

वह प्रूफ प्राय घटिया पुस्तकों के हुआ करते थे, पर कभी-कभी किसी बढ़िया पुस्तक के भी होते थे, जिन की मात्राएँ ठीक करते हुए वह प्राय मन में सोचा करता था—चलो, बैठ जाओ, यार संजय! जिन अक्षरों का कल कत्ल होना है या जिन अक्षरों को कल इंसान का भविष्य कत्ल करता है, उन्हें सँवार-बनाकर रख दो!

उस के मन की इस दशा का, और किसी को नहीं, एक प्रेस के एक मशीनमैन को कुछ पता था। वह कभी कभी हँसकर कहा करता था—संजय साहब! यह सारा दुख इल्म का है। न कुछ जानो, न दुखी हो। मुझे देखिये, मुझे पता ही नहीं मैं रोज क्या छापता हूँ, बस इतना ही पता है कि मुझे सभी अक्षरों के मुँह पर एक जैसी स्याही पोतनी है

संजय हँस दिया करता था, कहता—अच्छा, यार करीम! यह बताओ कि यह ढंग तुम ने खुदा से सीखा था या खुदा ने तुम से? जैसे तुम रोज किताबें बनाते हो, यह पता ही नहीं कि क्या बना दिया, उसी तरह खुदा भी रोज आदमी बनाता है और उसे पता ही नहीं कि वह क्या बना रहा है

करीम भी हँस दिया करता था—फिर खुदा भी शायद मशीनमैन ही होगा।

पिछले तीन महीनों से करीम के शब्दों में संजय साहब 'लापता' थे। वह जब भी दस दिन या पन्द्रह दिन नहीं आता था तो प्रेस की कोई आवश्यकता पड़ने पर करीम उसे लापता होने का फतवा दिया करता था। इस बार तो संजय ने अपना नावल लिखने में पूरे तीन महीने लापता होने में गुजार दिये थे। सो, आज जब संजय अपने नावेल की फाइल को अपनी मेज की दराज में रखकर रोटी रोजी की फिक्र में प्रेस आया तो उस वक्त ही करीम हँसने लगा—संजय साहब! इन तीन महीनों में खुदा ने तो पता नहीं कितने आदमी बनाये हैं लेकिन

लेकिन मैं ने एक किताब को अस्सी हज़ार कापियाँ छापी है

—अस्सी हज़ार ?—सजय को किताव के लेखक से ईर्ष्या सी हुई, पूछा—उस महान् लेखक का मुझे नाम तो वता दो।

करीम ने कान के पास होकर कहा—लेखक-लूखक कोई नहीं जी, स्कूल की किताव थी, ऐसे ही पुरानी धुरानी कहानियो को इकट्ठा करके वनायी हुई। पर भेद की वात कुछ और है

—वह क्या ?—सजय ने कुछ वेदिली से पूछा।

—यहाँ बताने की नही जी। दीवार के पीछे मालिक बठा हुआ है। आप काम का पता कर लें, छह बजन वाले हैं, फिर हम बाहर ढाबे पर जाकर चाय पियेगे।

काम बहुत नही था, लेकिन वत्तीस पृष्ठा के प्रूफ मिल गये और सवेरे दस वजे दने का इकरार करके सजय ने प्रूफ ले लिये, वह करीम को साथ लेकर वाहर चाय के ढाबे की ओर आया, लकिन आज न जाने क्या करण था, चाय की दुकान वन्द थी।

सजय का अपना कमरा इस प्रेस से बहुत दूर नही था, इस लिए सजय ने कहा—यार करीम! मैं ढाबे की चाय से अच्छी चाय वना सकता हूँ। चलो, आज तुम मेरे हाथ की वनी हुई चाय पिओ।

कमरे मे आकर सजय ने प्रूफ मेज़ पर रखकर स्टोव जलाया।

करीम हँसने लगा—देखो न साहब, लेखक तो ऐसे होते है, खुद लिखते है, खुद पढते है, और खुद ही उठकर आग मे फूके मारते है। किताबो की मलाई तो और लोग ही खाते है।

—यार! स्कूलो म लगने वाली सरकारी किताबें तो इस से भी ज्यादा गिनती म छपती है

करीम वीच म ही बोल उठा—मैं वह वात नही कर रहा हूँ, जी। मै तो अफसरो की वात कर रहा हूँ। सरकारी आडर तो बाद मे शुरू हुआ। अफसरा न अस्सी हज़ार पहल ही छापकर रख ली और अन्दरखान वेच भी दी। वह तो कागजो पर चढी ही नही।

सजय कोई पल भर के लिए चुप रह गया, फिर उसने कहा—प्रेस के मालिक को मालूम है ?

—लो जी!—करीम हँसने लगा—प्रेस म तो पत्ता न हिले उस की मर्जी के बिना, यह ता अस्सी हज़ार किताबा के कागज हिलते रहे

—छपनी तो उस की मर्ज़ी से ही थी, पर यह आडर सरकारी नही था, यह भी उसे मालूम था ?

—आप किस दुनिया म रहत हो, सजय साहब ?

सजय हँसने लगा—यार करीम ! सचमुच खबर नहीं किस दुनिया म रहता हूँ

—यह ता जी दुकान वाला का भी पता है, जिन्हे किताब बेचनी हाती है

—पर इस सारे सारे

—आखिर, जी, और भी सो बिल होते है जो सबको अफसरा से ही पास करवाने होत हैं। वह भी अपनी ग़रज को सब कुछ करत हैं और चुप रहत हैं।

सजय के होठो पर हँसी सूख गयी, बाला—कभी कोई किताबा का यह इतिहास भी लिखेगा ?

करीम चाय पीत हुए फिर हँसन लगा—यह ता जी बडी लम्बी बातें हैं। भले ही होती तो ह मालिक के कमरे म ही, पर कभी-कभी हमारे काना म भी पड जाती हैं। यह जो दूसरी किताबा की सरकारी खरीद हाती है, आप को पता है किस तरह होती है ?

—किस तरह ?

—वह भी जो पस चढाय, उस की होती है और साथ ही कइ तो अफ़सरा की अपनी लिखी हुई होती ह, पर छपती हैं उन की घरवालियो के नाम से। बेचारी घरवाली चाहे सात जमाअत ही पढी हुई हो, पर वह साइस की किताब लिखती है। ऐस भेद ता हम चहरा देखकर ही बूझ लत हैं

सजय का चेहरा बुझ-सा गया, इस लिए करीम न बात बदलते हुए कहा—आप कहिय, तीन महीन कहा रहे ?

—एक नॉवेल लिखता रहा।

—नावल ? फिर तो बात हुई न। क्या नाम रखा है ?

सजय ने करीम के मुख की ओर देखा, कोई मिनट भर चुप रहा, फिर उत्तर दिया—सोने का दात !

—सोने का दात ? यह भी नाम खूब है। किताब छपने के लिए दे दी ?

—नहीं, कोई डाक्टर रोज़ेनथाल ढूढना पडेगा। छापन के लिए

—यह जी कोई खोज की किताब है, दाँतो क बारे म ?

सजय हँसने लगा—यार ! यही समझ लो। भई, दात म जो सोना जडा हुआ हो, तो उस दाँत को कसे तोडते है

करीम की समझ म कुछ नहीं आया, लेकिन वह सजय को हँसते देखकर खुद हँसने लगा

—सच करीम यार ! तुम कभी-कभी बहुत अच्छा गाते हो। एक दिन दोपहर की छुट्टी म वहा प्रेस मे ही तुम गा रहे थे

करीम को अपनी उदासी से बचाने के लिए सजय अपने नॉवेल की बात का वहीं छोड देना चाहता था। कोई और बात सोच रहा था कि करीम की वह हूक

सी आवाज याद आ गयी जब एक दिन प्रेस म वकरो को छोड और कोई नही था और उस दिन खाम की छुट्टी के समय सब करीम के गिर्द इकट्ठे हो गय थे

करीम लहर म आ गया, कहन लगा—देखो जी ! मैं ने अलिफ बे से आगे नही पढ़ा है, पर बचपन म भी मिर्जा साहिबां की वह धुन अलापता था कि गाव का गाव इकट्ठा हो जाया करता था। काफिया, सद्दे, सह-र्फियां सब गा लेता था। पर शहर आकर जी जसे मन ही मर गया पूरा-पूरा किस्सा मुझे मुहजबानी याद हुआ करता था

—लेकिन याद की सलट पर से सब कुछ ही तो नही धुल जाता

—अब ता जी सलेटें ही टूट गयी हैं। मन की बात आज तक किसी से कभी कही नही, आज आप का बता दूं भई, मन ता फकीर हो जाने को करता था। चाहता था सूफी हो जाऊँ और नाचू गाऊँ

आज का करीम सजय ने पहले नही देखा था। आज वह बडी रूह वाला आदमी दिखाई दे रहा था। सजय न मुसकराकर पूछा—क्या करीम मियां ! यह भी रांझे की तरह जोग का स्वांग करने वाली बात थी या कुछ और ?

—आधी-थोडी वह भी थी। करीम हँसने लगा।

—चलो, पूरा न सही, तुम ने, आधा राया बनकर तो देख लिया।—सजय ने मसखरी की रौ म कहा।

लेकिन करीम के मन म वराग की धुन आ गयी, बोला—मैं तो सारा ही बनने को तयार था, पर उधर हीर ही आधी थी। पर जी, मैं उस का कसूर भी नही मानता, कसूर तो सारा शिया और सुन्नी होने का था।

—यार, यह महजब और एक एक महजब की भी कई कई फाकें

—तभी ता मन कहता था—ऐ मिया करीम कादिर ! और कुछ नही तो बुल्हेशाह हो जाओ और जोर जोर से गाओ कि 'धम साल धडवाई वस'[1]

—एस नही यार आवाज लगाकर सुनाओ !

सजय ने कहा तो जोश म आये हुए करीम ने कानो पर हाथ रखकर आवाज उठाई

धमसाल धडवाई वसदे, ठाकुरद्वारे ठग्ग
विच्च मसीत कुसीते रहिंदे, आशक रहन अलग्ग
ओह भट्ठ निमाजां चिक्कड रोजे, कलमे फिर गयी स्याही
बुल्हेशाह शहु अन्दरो मिलिया मुल्खी फिरे लुकाई[2]

1 धमशाला म लुटरे बसत हैं।

2 धमशाला म लुटरे बसते ह ठाकुरद्वारे मे ठग
मस्जिद म बदमें रहते हैं आशिक अलग रहत हैं।
भाड म जायें नमाज कीचड म रोजे कलम पर स्याही पुत गयी
बुल्हशाह को शाह (ईश्वर) अन्तर म मिला दुनिया भटकती फिरती है।

संजय करीम की आवाज पर भी झूम गया, और बुल्हेशाह के बोलों पर भी। कहने लगा—करीम मियाँ! तुम्हारा बुल्हेशाह यह बात कैसे इतने ज़ोरों से कह गया? इसे तो आज भी कहना सुनना मुश्किल है?

—क्या बात करते हो जी बुल्हेशाह की!—करीम ने एक गहरी साँस ली और बोला मेरे अब्बाजी की दो भतीजियाँ थीं, उनके एक बड़े जिगरी दोस्त की बेटियाँ। दोनों यतीम हो गयीं तो अब्बाजी का उन्हें किसी ठिकाने लगाना था, सो मेरी नाक में ही नकेलें डाल दीं। नहीं तो, खुदा की कसम, मैं तो फकीर बनने को फिर रहा था, एक दिन बुल्हेशाह बन ही जाता।

संजय ने हैरान होकर पूछा—दोनों?

करीम हँसने लगा—शुक्र करो जी दो ही थीं। पाँच होतीं तो मेरी पाँचों नमाज़ें हो जातीं।

संजय करीम की ज़िन्दादिली पर खुलकर हँस पड़ा, बोला—नहीं, यार करीम! पाँच तो नहीं हो सकती थीं।

—क्या जी, हो क्यों नहीं सकती थीं?—करीम ने हिसाब लगाया और कहा—बस, इतनी ही बात का फर्क रह जाता कि भई बड़ी अगर सोलह बरस की होती तो सब से छोटी सात-आठ साल की होती फिर उसे चाहे मैं शक्कर-पारे खिलाकर बहलाता रहता

संजय ने हँसकर करीम के कंधे को हिलाया—यार! तुम अच्छे मुसलमान हो। तुम्हें यह भी याद नहीं रहा कि चार से ज़्यादा निकाह तो तुम कर ही नहीं सकते थे।

करीम हँसने लगा—यह बात आप ने ठीक कही है जी। पाँचवें निकाह के वक्त पहली को तलाक देना पड़ता—और करीम ने घड़ी की ओर देखा, कहा—आज मन तो बहुत लगा है, जाने को जी नहीं करता, पर अब मैं चलता हूँ। घर जाकर दो नमाज़ें पढ़नी हैं।

—तो दोनों बेगमें साथ रहती हैं?—संजय ने करीम से पूछा। वह उठने को होते हुए भी उठा नहीं, कहने लगा—और जी, मैं ने क्या उन्हें अलग अलग महल बनवाकर देने हैं? दोनों ने मिलकर मेरा जो मकबरा बनाया हुआ है, बस, बाल बच्चों को लेकर उसी मकबरे में रहती हैं।

संजय ने एक सिगरेट सुलगाते हुए कहा—करीम मियाँ! तुम सिगरेट तो पीते नहीं, मैं जानता हूँ। कुछ दारू शारू पियोगे?

करीम ने कोई एक मिनट सोचा, फिर कहा—कभी घूँट लगा लेता हूँ, पर फिर सही। अभी रास्ते में चावल-शावल लेने हैं, घर पर खत्म हो चुके हैं। नहीं तो पहुँचते ही दोनों

करीम जाने के लिए उठ खड़ा हो गया तो संजय ने हँसकर उस से कहा—

तो आज पुलाव पकेगा ?

करीम भी हँसने लगा—देखो ! घर पहुँचते ही दोनो पुलाव पकाकर खिलाती हैं या रोज़ा ही रखवाती है

—अच्छा, करीम मियाँ ! आज तुम से मिलकर बहुत अच्छा लगा।—सजय न कहा और करीम को नीचे तक छोड आने के लिए दरवाज़े की ओर बढा। लेकिन करीम दरवाजे से इधर ही था, कहने लगा—जी करता है, जाते जाते बुल्हेशाह की एक तुक और गाता जाऊँ।

सजय दरवाज़े से इधर आ गया। फिर दीवान पर बठने लगा था कि करीम ने कहा—नही दोस्त, बैठो नही। मैं बठ गया ता फिर मुझे बुल्हेशाह ही आकर उठायेगा।

और उस न खडे-खडे ही आवाज़ लगायी

चल बुल्हेया चल ओत्थे चल्लिए जित्थे सारे अन्हे,

ना कोई साडी ज़ात पछाणे, ना कोई सानू मन्ने [1]

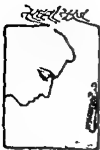
करीम इस बन्द को दूसरी बार गाकर जल्दी से सीढ़िया उतरन लगा जैसे अगर वह और ठहर गया तो न जाने कितनी देर ठहर जायेगा

वह चला गया, पर उस की आवाज़ कितनी ही देर तक वही कमरे म ठहरी रही सजय उस आवाज़ के जादू म लिपटा चुपचाप दीवान पर बैठा रहा

कमर म अँधेरा सा हो गया था जिस समय एक गहरे सास के साथ सजय के मुह से निकला—यार बुल्हेशाह ! और कहाँ जाओग। यही रहो हमारी दुनिया मे, यहा तुम्ह कौन पहचानता है ? तुम ने यह बात तब कही होगी जब लोग आख वाले होते होगे

---

1 चलो बुल्हशाह ! वहा चल जहा सभी अध हा
जहाँ न कोई हमारी जाति पहचाने न कोइ हम मानें



यह मार्च का महीना था। जिन प्रकाशकों को 'बल्क परचेज' के सरकारी आर्डर मिले थे, उन्हें वह इकतीस मार्च तक सप्लाई करने थे। कई प्रकाशकों के पास ऐसी कुछ किताबें थोड़ी गिनती में थी जिन की ज्यादा कॉपियों के आर्डर मिले थे। इसलिए बहुत-सी किताबें प्रेसों में थीं, और संजय के पास प्रूफ देखने का काम बहुत बढ़ गया था।

आधी-आधी रात तक, बिजली की रोशनी में, प्रूफ देखने के कारण संजय की आँखों के गिर्द काले-से घेरे उभर आये थे, इतने कि एक दिन जब करीम वाले प्रेस में एक फरमा मशीन पर चढ़ने से रुका हुआ था, और संजय के पास प्रूफों का घर ले जाकर देखने का समय नहीं था, वह वहीं बरामदे में एक स्टूल पर बैठकर प्रूफ देख रहा था, तो करीम ने चाय का प्याला मँगवाकर उस के सामने रखते हुए कहा—ये प्रूफ तो आँखों के दुश्मन होते हैं, संजय साहब! ज्यादा काम हाथ में मत लीजिये, बाद में चारपाई पर पड़ जायेंगे।

संजय हँस दिया—यार! अच्छा है फिर, चारपाई पर पड़कर आराम से अपनी मनचाही किताबें पढ़ूँगा। काम का बस यही एक महीना है, फिर चार महीने तो जैसे छुट्टी हो जायगी। फिर कहीं अगस्त में जाकर काम शुरू होगा, जब स्कूलों-कॉलिजों के लिए खरीद शुरू होगी।

संजय ने यह दिया, लेकिन सिर्फ जबान हिली, आँखें और सिर पत्थर हुए पड़े थे। मशीन पर चढ़नेवाले फरमे के प्रूफ खत्म करके, संजय ने बाकी गली-प्रूफ एक लिफाफे में डाल लिये और उठते हुए उस ने पूछा—इस वक्त साढ़े ग्यारह बजे हैं अगला फरमा कितने बजे छपेगा?

प्रेस के मालिक ने जल्दी से कहा—नहीं जी, यह काम खत्म करके जाइये। बस, पहला छपते ही दूसरा मशीन पर चढ़ा देंगे।

करीम सुन रहा था। मालिक की बात में वह कभी दखल नहीं देता था, लेकिन आज वह रह न सका बोल उठा—छोटी मशीन है जी, चार चार पन्ने छपेंगे, यह फरमा चार बार मशीन पर चढ़ेगा इस छपते छपते तो शाम के पाँच बज जायेंगे।

मालिक जानता था, बडी मशीन कल से खराब है, और करीम ठीक कह रहा है, तब भी बोला—फिर भी तीन साढे तीन तक तो हम फरमा तयार मिलना चाहिए। गलतियाँ लगाने म भी एक घटा लग जाता है।

और कोई दिन होता संजय वही बैठकर अगले सोलह पृष्ठ पढ देता पर आज उस की थकी हुई आखें अक्षरो पर से फिसल फिसल पडती थी, इस लिए लिफाफा लेकर उठते हुए उस ने कहा—ठीक है, मैं तीन बजे आकर प्रूफ दे आऊँगा।

अपने कमरे मे पहुँचकर संजय ने आखो को कई बार पानी से धोया, फिर कोई आधे घण्टे के लिए आखें मीचकर दीवान पर लेटने लगा ही था कि उस के कमरे के दरवाजे पर खटका हुआ।

संजय ने दरवाजा खोला, सामने कमला थी। उस रात के बाद पहली बार आयी थी। संजय ने कुछ हैरान होकर उस की ओर देखा। वह उस रात की पतझड के पत्ते जसी कमला नही थी।

—मुझे दस रुपये चाहिए नयी किताबें खरीदनी हैं।—कमला ने कहा, लेकिन ऐसे जसे अधिकार से कहा हो, ऐसे जसे 'अब कभी किसी के कमरे म इस तरह नही जाऊँगी' का वचन पूरा करने के बाद जरूरत के पैसे लेने को अपना अधिकार समझा हो।

आज वह गुनाह मुक्त थी

संजय को एक सूखी टहनी म से एक हरे पत्ते के निकलने जैसा एहसास हुआ। उस ने जेब से दस रुपये निकालकर देते हुए कहा—कमला! मुझे बहुत अच्छा लगेगा अगर तुम पढ लो।

कमला म न जाने कब के कौन से संस्कार थे उस ने दस रुपये का नोट लेकर गुरु के चरणो मे प्रणाम करने की मुद्रा म अपने हाथ संजय के पैरों की ओर झुकाये, फिर चुपचाप सीढियो से नीचे उतर गयी।

संजय को वह रात याद आ गयी जब वह खिडकी म खडे होकर चौकीदार की खँडहरी की ओर जाती हुई लालटेन को देखता रहा था, और कमला अपने कमरे की ओर जाते हुए इमारत की दीवार से सटकर अधेरे का सहारा लेती रही थी

—आज वही लडकी है—संजय का मन मुस्करा उठा—जो दिन के उजाले मे हँसकर आयी है, हँसकर गयी है।—उस दिन और आज के दिन के बीच का फ़ासला वह कसे तय कर गयी है—यह सोचते हुए संजय को लगा, उस की सारी थकान उतर गयी है

वह दीवान पर आखें मीचकर लेटने का इरादा छोड देखने लगा

संजय ने प्रूफ देखे, चौकीदार ने पान के ठेले से खाना मँगवाकर [illegible] तब भी देखा—अभी तीन बजने म [illegible] बाकी है। वह [illegible]

[illegible]

—देख लो ! पाँच-साढे पाच से पहले दूसरा फरमा मशीन पर नही चढ सकता।—करीम माथे से धाराओ की तरह बहते हुए पसीन को पोछते हुए हँस-सा दिया

—अच्छा, देखो ! मैं अभी आता हूँ। मेरे आने पर जाना। ऐसे ही छह बजे मत चले जाना। कल तो बडी मशीन चालू हो जायेगी।

—आप वह मशीन चालू करवाइये, मैं सवेरे नौ बजे आकर जितना काम कहेंगे निकाल दूगा।

—इसी लिए तो आ रहा हूँ। इन जमन मशीनो का एक पुर्जा टूट जाये, मुसीबत आ जाती है। न यहा मिलता है, न यहाँ किसी स बन पाता है। मैं तभी तो कहता था, उस मशीन को बडी एहतियात से चलाया करो।

जब प्रेस का मालिक यह कहकर कुछ खीझा हुआ सा बराबर गरेज म रखी हुई कार को निकालकर, छोटी गली की दुकानो के फट्टो से कार को बचाता, बाहर चला गया, तब सारे कम्पोजीटर करीम की ओर देखकर मुस्कराये। उ ह शायद आज से पाच दिन पहले का वह वक्त याद आ गया जब बडी मशीन का पुर्जा टूट जाने से मशीन खडी हो गयी थी, तब प्रेस का मालिक करीम की ओर इस तरह घूरकर देखने लगा था, जसे करीम को खुद पुर्जा बनकर अभी उस मशीन मे लग जाना चाहिए।

करीम कम्पोजीटरो की ओर देखते हुए मुसकराकर सजय की आर देखन लगा—सजय साहब ! आप-हम से तो जमन मशीन का पुर्जा अच्छा होता है। हम तो मर भी जायें, तब भी काम न रुके

एक कम्पोजीटर पन्ने बाँधते हुए हर पक्ति के नीचे सिक्के के लेड डाल रहा था, एक उसी तरह हाथ म लिये करीम के पास आया, और हँसने लगा—करीम मिया ! मज देखना है तो कल जब मशीन चालू हो उस का पुर्जा खुद तोड देना।

करीम न स्याही पुते हाथ का एक मुक्का उस कम्पोजीटर की पीठ पर मारा—मशीन का पुर्जा तो बाद म तोडूगा, पहले तेरा एक पुर्जा तोड दू—और करीम हँसने लगा। फिर दरवाजे के पास स्टूल पर बठे हुए सजय की ओर देखते हुए कहने लगा—यह देखा, सजय साहब ! यह बडा नक्सलवादी क्या भाषण दे रहा है !

सजय ने कहा कुछ नही, मुसकरा दिया। उस गाव से आये हुए आदमी की आवाज जेहन मे घूम गयी—विद्रोह यहा से उठता है जी, छाती म से, आग की लपट की तरह।

और सजय के होठो पर वही अपना विचार जम गया विद्रोह तो गला म घुटा हुआ है, और वहा रोटी के हस्ताक्षर चाहिए

अगले फरमे के जो पष्ठ तैयार हो जाते, कम्पोजीटर उस के प्रूफ निकाल देते और सजय पहले प्रूफो पर लगाये हुए एक-एक निशान की दुरुस्ती का दूसरे प्रूफो पर दख लेता। ये फाइनल प्रूफ अकसर प्रेस का मालिक खुद देखा करता था। कभी सयोग से सजय वहाँ बैठा होता था तो वह देख देता था। यह मिनटो म देख लिये जात थे, लेकिन पहले चार पन्ना के बाद आगे के चार पन्नो के बीच का समय खाली बैठकर प्रतीक्षा करनी पडती थी।

कोई और दिन होता तो यह खाली समय सजय को अखर जाता, लेकिन आज प्रेस का मालिक सिर पर नही था, इस लिए सब कम्पोजीटर काम करते हुए भी बातो की रौ मे थे। सजय को उन की बातें छपने वाली किताब से बहुत ज्यादा दिलचस्प लग रही थी

—यह गीली पिसाई तो खत्म होती ही नही।—दूर खडा हुआ एक कम्पोजीटर मैटर कम्पोज करते हुए कह रहा था—न पैरा खत्म होता है, न पिसाई खत्म होती है।

—यह तो भाडे के लेखको को आप ही कम्पोज करना चाहिए। दूर खड़ा हुआ एक कम्पोजीटर यह कहकर हँसने लगा—

—आप बच गये, सजय साहब! अगर आप को ऐसी गीली पिसाई के प्रूफ देखने पडें तो आप चौथे दिन तोबा कर देंगे पता नहीं लगता कि बात कहाँ से शुरू होती है और कहा खत्म होती है।—एक कम्पोजीटर ने कहा जो सजय के पास बठा हुआ था, तो सजय मुस्करा दिया, बाला—यार! मैं भी तो भाडे का प्रूफरीडर हूँ।

—वह भाडे वाली बात और है जी।—उस ने उत्तर दिया और एक भेद खोलने के ढग से कहने लगा—एक तो लेखक होते है जी, एक अनुवादक होते हैं, वह तो ठीक हुए, पर एक और होत है जी भाडे के वह चवन्नी पन्ना लेते हैं, और मैटरो को एक भाषा स घसीटकर दूसरी मे कर दते है और मैटर के हाथ-पर ही टूट जाते है

सजय को कम्पोजीटरो की इस बुद्धि पर आश्चय हुआ, पूछा—आप जब कम्पोज करत है आप का ध्यान सिफ अक्षरो पर नही, बात म भी रहता है?

—लो, क्या नही जी!—एक कम्पोजीटर जो सजय से काफी दूरी पर खडा हुआ था, विस्तार से बताने लगा लेकिन बराबर के कमरे मे चलन वाली मशीन की आवाज म उस की आवाज साफ सुनाई नही दे रही थी, इस लिए वह कम्पोजीटर जो सजय के पास बैठा हुआ मटर के पन्न बाँध रहा था, बतान लगा—कहानी बढिया हो तो जी हमस भी मटर मिनटो म तयार हो जाता है ध्यान बात म बँध जाता है तो गलतियाँ भी कम होती हैं और मटर भी झट से खत्म हो जाता है पर यह जो सरकारी दफ्तरो का मटर होता है, एक तो यह हर रोज

एक ही तरह का होता है, जिसे देखकर ही हम ऊब जाते हैं और दूसरा, यह होता है अंग्रेज़ी से पंजाबी या हिन्दी मे किया हुआ और वह भी जिन्हे काम मिलता है वह तो करते नही, औरो म चवन्नी पन्ने के हिसाब स करवा के दफ्तरो के गले मढ देते हैं, खुद तो बस दस्तखत करके पसे ही बटोरते है।

सजय को भाडे वाली बात पूरी तरह स्पष्ट हुई तो पूछने लगा—और जो लोग कलम की ठेकेदारी करते है उन्ह एक पन्ने के कितने पैसे मिलते है ?

—वह भी हम पता है जी।—वह कम्पोज़ीटर बताने लगा—किसी दफ्तर से तो पच्चीस रुपये मिलते ह एक हज़ार शब्दो के और किसी किसी से चालीस भी मिल जाते है।

सजय मन म हिसाब-सा लगाने लगा—अगर पारिश्रमिक अच्छा मिल तो अनुवाद बहुत से मेहनती लोगो के लिए एक पेशा बन सकता है। लेकिन—सजय का यह हिसाब-किताब बीच म ही रह गया वह कम्पोज़ीटर बताने लगा—पर जी यह ठेका लेन के भी खास तरीके होते ह, ठेके के माल मे से ऊपर भी कुछ चढाना पडता है और नही तो हाथ तो जोडन ही पडते है। कई अफसर तो जी यह ठेका प्रेस वालो को ही दे देते हैं, वह जो भी किताबें छपवाते है उन मे एक पत्ती प्रेस की भी होती है साथ ही उन्ह यह मौज—न एक अक्षर पढना न लिखना, और पत्ती मिल ही जायेगी। और साथ ही अफसरो की मौज वह भी रातोरात किताबें छपवाकर लेखको मे नाम लिखा लेते हैं।

अचानक बातें रुक गयी। कोई बाहर का आदमी प्रेस के मालिक का पूछता हुआ पास आकर खडा हो गया। प्रेस का मालिक दफ्तर मे नही था, इस लिए वह वापस जाने लगा तो उस की निगाह सजय पर पड गयी—हैलो सजय !

सजय ने देखा, पहचाना—वह हसराज मदान था अकादमी का एक कमचारी जो कभी कभी शौकिया नज्मे भी लिखा करता था। मामूली-सी जान-पहचान थी, लेकिन मदान ने तपाक से हाथ मिलाया तो सजय उस के बठने के लिए कमरे से कुर्सी ले आया।

—यहा कोई नया उपन्यास छप रहा है ? मदान ने कुर्सी पर बठते हुए पूछा।

सजय हँस-सा दिया—नही उपन्यास छपत हुए दख रहा हूँ

—कोई नया उपन्यास नही लिखा ?—मदान न स्वाभाविक-सा प्रश्न किया। किसी लेखक स मिलने पर यही पूछा जा सकता है सो उस ने पूछ लिया। पर देखा—सजय के मुख पर उत्तर म एक छाया-सी आयी और चली गयी इस लिए बात बदलते हुए बोला—आप का पहला उपन्यास मैं न दो बार पढा था।

बाकी प्रूफ सजय के सामने मेज पर आ गये, इस लिए सजय कुछ भी कहन के बजाय प्रूफ देखने लगा।

मदान उठा नही, उसी तरह चुपचाप कुर्सी पर बठा रहा। सजय ने प्रूफ़ देख कर कागज कम्पोजीटर को लौटा दिये, तो मदान की ओर देखकर मुस्करा सा दिया—मै प्रूफ बहुत अच्छे देखता हूँ।

मदान भी उत्तर म मुसकरा दिया, फिर कुछ झिझकते हुए उस ने कहा—काम खत्म हो गया ? आइये, बाहर चलें, यहा बहुत गर्मी है।

सजय का काम खत्म हो गया था, उसे जाना ही था। इस लिए भीतर मशीन वाले कमरे के पास होकर उस ने एक बार करीम से कहा—अच्छा, करीम मिया ! मैं चलता हूँ। शायद सवेरे आऊँ। और बाहर अपनी साइकिल की ओर बढा। पर देखा—मदान उस की प्रतीक्षा म बरामदे के बाहर खडा है। इस लिए सजय ने साइकिल नही ली। मदान के साथ बाहर गली मे चाय के ढाबे की ओर चल दिया।

गली से लगी हुई एक लम्बी दीवार थी, खाली, जा कमेटी ने कार पाक के लिए नियत की हुई थी। मदान गली की ओर मुडने की बजाय सजय को साथ लिये उस लम्बी दीवार के साथ साथ चलते हुए जब प्रेस से कुछ दूर आ गया, तो एक जगह पर रुक गया।

सजय को लगा—वह कोई बात करना चाहता है, इस लिए वहा दीवार के पास खडे होकर बोला—कहिये।

—आप का उपन्यास मुझे बहुत अच्छा लगा था। मदान ने धीमे स्वर मे कहा, लेकिन ऐसे जसे वह यह बात नही, कोई और बात कहना चाहता हो।

सजय ने असली बात की प्रतीक्षा मे केवल उस की ओर देखा, कहा कुछ नही।

—सजय साहब !—मदान की आवाज म फिर झिझक आ गयी, लेकिन साथ ही बात को एक बार कहकर खत्म कर देने का निश्चय सा भी। उस ने पूछा—आप अकादमी का अवाड चाहते है ? लेकिन इतनी जल्दी क्यो ? अभी आप को बहुत कुछ लिखना है।

—मै ?—सजय का यह एक ही शब्द एक लम्बे आश्चय की भाति पूरी दीवार पर फैल गया।

मदान ने सजय के चेहरे पर आया हुआ एक तनाव देखा, इस लिए उस ने बात को हलकी रौ म डालते हुए कहा—शायद यह बात आप ने किसी से हसी म ही कही हो, लेकिन ऐसी बात बडी दूर तक फल जाती है।

सजय को लगा, बात कुछ गभीर है इस लिए उस ने कुछ कहन की आवश्यकता समझी। कहा—आप ने अभी कहा था कि आप न मेरा उपन्यास पढा है। मेरा विचार है कि आप ने मुझे उस म कुछ पहचाना भी होगा। आप खुद बताइये कि क्या मैं वसा सोच सकता हूँ ?

सजय ने कहना चाहा कि मुझे दुनिया से कुछ लेना नही है। सिफ जो अपने पास है, विचारो के रूप म, वह देना है लेकिन यह बात अपन मुह से कहना सजय को कठिन लगा, इस लिए इसे नही कहा।

मदान ने ये शब्द सजय के मुह से तो नही सुने, लेकिन इन का प्रभाव सा समझ लिया, इस लिए कहने लगा—अगर मेरा भी यही विचार न होता तो मै आप से यह बात कस करता ? लेकिन यह बात किसी ने बहुत दूर तक फला दी है।

—किस ने ?—सजय ने सीधा प्रश्न किया।

मदान को सीधा उत्तर देना कठिन प्रतीत हुआ, लेकिन उस ने कहा—आप अकादमी के सिद्धातो को जानते है कि अगर कोई लेखक अपने सम्बध म किसी से सिफारिश करवाये, या वोटें मागे तो वह । मदान से बात पूरी नही कही जा सकी, लेकिन सजय ने उस पूरा कर दिया—वह ब्लैक लिस्ट कर दिया जाता है।

—हा।—मदन ने धीरे स सिफ इतना ही कहा।

सजय के होठ अपनी ही हँसी से छिल गये। वोला—सो, मैं ब्लैक लिस्ट हो रहा हूँ

—मुझे इस बात की तकलीफ हुई थी, इसी लिए मुझ से रहा नही गया। आप को देखा तो मै ने बता दिया।—मदान के भले-से चेहरे पर सजय के लिए एक अपनत्व आया, और उस के मन की व्यथा के साथ मुह पर कुछ पिघलकर आ गया, कहने लगा—पर वह सब कुछ मुहज़बानी कहा जा रहा है किसी के पास लिखत म कोई सबूत नही यह हो नही सकेगा।

सजय मुस्कराया—ब्लैक या ह्वाइट एक ही बात है। मै किसी लिस्ट म न हूँ, न होऊँगा।

सजय पीछे मुडने लगा था, जिस समय मदान ने कहा—प्लीज़ सजय ! आप ए० सी० मेहरा या किसी के सामन मेरा नाम मत लीजियगा कि यह बात आप को मै ने बतायी है।—तो सजय के पीछे को मुडते हुए पर हैरान से खडे हो गये और फिर अचानक उस की ओर की हसी निकल गयी—सच मदान साहब ! आज मैं ने अपनी ज़िदगी का सब से बडा मज़ाक सुना है।

मदान भी सजय की हँसी से कुछ सहज सा हो गया, उस ने कहा—वसे तो कई बार बाते फैलती रहती हैं, पर आप का कोई मेहरबान

अब सजय को किसी मेहरबान के नाम के बारे मे कोई भ्रम नही रह गया था, इस लिए उस ने कहा—लेकिन मेहरा कहता क्या है ?

—यही कि सजय ने उसे एक हज़ार रुपया देने को कहा है, अगर वह

दूर आकाश तक, जहाँ तक सजय की दृष्टि जाती थी, एक हिकारत फल

गयी

फिर वह दोनो दीवार के परले सिरे से वापस लौटे। बाहर के मोड के पास आकर मदान बाहर चला गया, और सजय अपनी साइकिल लेने के लिए प्रेस की ओर मुड गया।

प्रेस का मालिक अभी नही आया था, लेकिन छह बज चुके थे। सारे कम्पोजीटर पानी के चौबच्चे के पास खडे हुए साबुन से हाथ धो रहे थे। सजय ने साइकिल ली, पर रहा नही गया, एक नज़र अन्दर करीम की ओर देखा जो सवेरे नौ बजे छपने वाले फरमे एक ओर रख रहा था

करीम को देखकर इधर आ गया। पर सजय ने देखा अभी करीम को मली चिकनी मशीनी वर्दी को उतारकर हाथ-पैर धोने है, कपडे बदलने हैं, और शायद प्रेस के मालिक की प्रतीक्षा करके जाना है, इस लिए सिर्फ इतना कहा—करीम मियां! थोडी देर के लिए मेरी तरफ आयेंगे? आज

'आज' शब्द सजय के होठो मे घुट-सा गया, शायद उस की कोई व्याख्या नही थी। केवल उस की एक चीस सजय के मुख पर लिख सी गयी। करीम ने पूछा कुछ नही, केवल हा मे सिर हिला दिया। सजय ने साइकिल को बाहर की गली की ओर मोड लिया।

घर जाने वाली सडक पर आकर, कोई आधी सडक गुज़र जाने के बाद, सजय का हाथ अनायास ब्रेक पर चला गया, और वह साइकिल को पीछे की ओर मोडकर उस बाज़ार को चला गया जहा से कुछ रम या व्हिस्की मिल सकती थी।

आज पहली बार सजय को वह तलब महसूस हुई जो शायद सिर्फ बरसो के आदी को कभी तोड के समय होती है।

दुकान पर बहुत भीड थी। और कोई दिन होता तो सजय शायद यह देखकर ही लौट जाता लेकिन आज सजय को लगा, आज गले मे कुछ अटका हुआ है, यह शायद सिर्फ शराब के घूट से अन्दर उतार सकूगा

और वह भीड का एक अग होकर भीड मे खडा हो गया

रम मिल गयी। उस ने साइकिल घर की तरफ लौटायी। पर गेट के पास पहुँचकर देखा—करीम गेट से लगा हुआ खडा है।

—बहुत देर लग गयी। मुझे डर था तुम कही वापस न चले जाओ।—सजय ने साइकिल से उतरते हुए कहा। लेकिन करीम हँसने लगा—सजय साहब! अगर करीम को आज़माना था तो अच्छी तरह आज़माते वह तो हश्र के दिन तक भी बैठा रहता

सजय को लगा, करीम की एक ही बात ने उसे थाम लिया है। भीतर ड्योढी मे साइकिल को रखकर वह अपने कमरे की ओर की सीढियां चढा, और कमरे

का दरवाज़ा खोलते हुए कहने लगा—आओ करीम मियाँ ! मैं समझा था अगर तुम आ जाओगे तो संजय भी घर आ जाएगा।

—मगर कहाँ गए थे उन्हें न जाना मुश्किल था —करीम हँसने लगा।

—ज़रा दूर दुनिया में चला गया था, जहाँ से लौटने का डर नहीं, फिर रहा था।

संजय ने चाहे हँसकर ही जवाब दिया था, लेकिन करीम गम्भीर-सा हो गया, बोला—यह तो राज़ की बात है !

संजय ने दो गिलास धोए, रम की बोतल उठाई, और उसे पीने को दूर हो पास रखकर, दीवान पर करीम के पास बैठते हुए कहा—राज़ की बात नहीं, करीम यार ! बस आज तुम्हारे साथ मिलकर गुस्ताख़ी करने को जी कर रहा था

करीम ने अपना रम का गिलास संजय के गिलास से टकराते हुए कहा—अच्छा जी, फिर आज का नशा अपने शाह इनायत के नाम पर पीते हैं

संजय ने गिलास में से एक बड़ा-सा घूंट भरा और पूछा—शाह इनायत कौन ?

—जिन्हें पीर मानकर बुल्हशाह बुल्हेशाह बना था।—करीम ने बताया।

—अच्छा यह बताओ मियाँ ! संजय ने एक सोच में उतरकर कहा—हीर का क़िस्सा तुमने पूरा पढ़ा है ?

करीम हँसने लगा—पढ़ा भी और कंठ भी किया।

—फिर बताओ, यार ! रांझा कौन था ?

संजय का प्रश्न करीम की समझ में नहीं आया। लेकिन बोला—रांझा वही आदमी था जिसे देखकर हीर को अल्लाह का दीदार हो गया।

—तुम पक्की तरह जानते हो कि तुम ने यह लिखा हुआ खुद पढ़ा है ?—संजय ने पूछा तो करीम को लगा, रम के दो घूंट से संजय बहक गया है। संजय ज़ोर देकर फिर पूछ रहा था—यार करीम ! तुम ने तो मुश्किल से अलिफ़ बे तक पढ़ाई की है, हो सकता है पढ़ने में ग़लती हो गयी हो।

करीम सचमुच हकला-सा गया, कहने लगा—रांझे के नाम से तो जो आशिक़ों की ज़ात चली। भला किसी को उस का नाम भी भूल सकता है !

—देखो, करीम मियाँ !—संजय ने भारी, दिल में उतरने वाली आवाज़ में कहा—क्या मालूम उस का नाम कैदो हो

करीम ने जैसे कानों पर हाथ रख लिये, कहा—जो किस का नाम ले दिया ! वह तो चुग़लख़ोर था, वही तो इधर की उधर करता था, इश्क़ का वैरी, आशिक़ों का भी

संजय ने करीम के गिलास में भी और रम डाली, अपने गिलास में भी, और

कहा—मैं ने तो आज वही सुना था।

—किस से ?—करीम ने जरा घबराकर पूछा।

—भई उन्हीं विद्वानों से, जिन से सरकारी अफ़सर बहुत-सी सलाह लेते हैं। संजय की आवाज गम्भीर थी सोच में डूबी हुई, इस लिए करीम जोर से हँसना चाहते हुए भी, हँस नहीं सका, बोला—फिर जो यह कहता है जी उसे कोई सराप लगा हुआ होगा।

संजय के होंठों पर कुछ फूल की भाँति खिल उठा, उस ने कहा—अच्छा, यह बताओ करीम मियाँ, क्या लोगों को किसी का दिया हुआ सराप सचमुच लगता है ?

—आजकल तो पता नहीं जी, पर अच्छे वक्तों में लगा करता था।—करीम ने कहा। लेकिन आज का संजय उसे कोई और संजय लग रहा था।

संजय कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला—मेरा खयाल है कि आजकल भी लगता है, लेकिन एक फ़र्क़ है

करीम ने कुछ नहीं कहा। वह सिर्फ़ संजय की ओर देखता रहा। संजय ने ही कहा—फ़र्क़ यह है कि आजकल इनसान को किसी का दिया हुआ नहीं अपना दिया हुआ सराप लगता है।

—वह कैसे जी ?—करीम ने कुछ सोच में पड़कर पूछा।

—वह ऐसे कि जब उसे कोई रौंशा कैदो दिखाई देने लगता है।

अचानक करीम को लगा कि उस ने संजय के मन की कुछ थाह पा ली है। पूछा—वह जो आदमी आज प्रेस में आया था, जो आप को परे दीवार की तरफ़ ले जाकर बातें करता रहा था, क्या आप उस की बात कर रहे हैं ?

संजय को खयाल नहीं था कि करीम दूर वहाँ तक देख लेगा, इस लिए एक साँस-सा भरकर चुपचाप दोनों गिलासों में और रम डालने लगा।

करीम ने अपना गिलास हटा लिया—नहीं जी मुझे तो अपने हवास क़ायम रखने हैं। अभी घर जाकर दो नमाज़ें पढ़नी हैं।

नमाज़ की बात पर संजय हँसने लगा, लेकिन करीम नहीं हँसा। वह बोला—वह तो मैं उसी वक्त कुछ-कुछ जान गया था जब आप ने आते हुए मुझ से घर आने के लिए कहा था।

—क्या जान गये थे ?

—यही कि किसी ने आप को कोई बुरी-भली बात बतायी होगी। आजकल लोग तोहमतें बहुत लगाते हैं।

संजय को लगा जैसे करीम इस तोहमत का कुछ भेदी है, पूछने लगा—किस बात पर तोहमतें लगाते हैं मुझ पर ?

करीम मुस्करा दिया, कहने लगा—फिर वही बात है मैं समझ गया। आज

मैं भी कहूँ, मेरे मुँह से बात की काट भी इस क्यों तन-मन में न्हो आ रही है अब सुनना

—क्या ?—अब सजय हैरान था करीम हैरान नहीं था, उस ने कहा—मुझे यह बताइये, सजय साहब कि क्या पागल कुत्ता काटकर रोने को ऐसे कहते हैं तो उस से पाने का क्या बिगड़ना है

सजय ने गिलास परे रखकर हाथ को सलाम के अन्दाज में माथे से लगाया और मुँह से कहा—सलाम मियाँ ! सच कह रहे हो, कुछ नहीं बिगड़ा।

—वही बात है न पाँच हजार वाली ?—करीम ने कहा, तो सजय एकटक उस के मुँह की ओर देखता रह गया फिर पूछा—मुझ पर लगायी गयी तोहमत तुम्हारी सुनी हुई थी ?

करीम ने हँसकर उत्तर दिया—वह एक आदमी कभी-कभी आता है यह महरा उस ने ही यह बात निकाली थी कि भई आजकल सजय साहब उस के पीछे लगे हुए हैं फिर कई लोगों ने प्रेस में बैठकर सुनायी

—तुम ने मुझे क्यों नहीं बताया ?

—लो, डालो एक घूट ! तो मैं पीकर जोर से हँसूँ

सजय ने करीम के गिलास में रम डाली, सुराही में से पानी डाला, और अपने लिए एक सिगरेट जलाते हुए उस की ओर देखने लगा।

करीम बोला—यह भी कोई मानने की बात थी, यानी आप उस की खिलाफत कर रहे हैं, उस कुत्ते की दुम को। मैं ने तो बात सुनकर वहीं थूक दिया था।

सजय को इस समय करीम अपने से बड़ा लगा, जिस ने यह तोहमत सुनकर एक मिनट के लिए भी उदास होने का कष्ट नहीं किया। और सजय को अपनी आज की उदासी पर शरमिन्दगी आ गयी।

करीम ने अब उदासी की नब्ज पहचान ली थी, इस लिए उस की सारी फिक्र दूर हो गयी थी। उस ने गिलास से एक लम्बा घूंट भरा और कान पर हाथ रखकर बुल्हेशाह की तुकें छेड दी

तू आशक़ होइओ रब्ब दा, तनूँ होई मुलामत लाख
तनू काफ़र काफ़र आखदे, तूँ आहो आहो आख[1]

और सजय सचमुच वजूद में आ गया, अपने आप में आ गया

खूब अँधेरा हो चुका था, जिस समय करीम गया।

सजय वजूद में था, उसे लगा, दीवान पर जिस जगह करीम बैठा हुआ था, शायद करीम नहीं, खुद बुल्हेशाह बैठा हुआ था, वह स्थान सदा के लिए रोशन हो गया।

---

1 जब तुम खुदा के आशिक हो गये तुम पर लाखों इलजाम लगे
लोग तुम्हें काफिर काफिर कहते रहे तुम हाँ हाँ कहते जाओ

सजय न दीवान के सामने खडे होकर एक तान लगायी

ओ बुल्हया ! तनू काफिर आखद, तूँ आहा आहो आख

सजय की तान म करीम की आवाज जसा सोज नही था, सुर भी नही था, लकिन दिल का कोई उफान था, उस अपनी आवाज़ कानो को अच्छी लगी

आज का जो झूठ उस न सुना था, वह उस क गल म नही, लकिन कानो म अडा हुआ था और अब काफिर कहलाकर भी 'हाँ' कहन वाले बुल्हशाह के बोल कानो म पडे तो काना म जो कुछ अडा हुआ था वह निकल गया

सजय का तन-मन सहज हो गया, और उस न आज दोपहर वाली ऐंथनी बिवन की किताब की ओर दखत हुए कहा—यार ऐंथनी ! सिफ तुम ने जाना था कि कोई झूठ गल म अ जाय तो क्या होता है। देखो ! काना में भी अड जाय तो क्या हाल होता है



अचानक सजय के गले म नही, कानो मे भी नही, लेकिन आखो म कुछ अड गया

अभी डाकिया वह पत्रिका दे गया था जिस म सजय की कहानी और तसवीर छपी थी। उस न छपी हुई कहानी के कई परे पढे। कहानी अपनी ही लिखी हुई होती है, लेकिन यह शायद हर लिखने वाले की स्वाभाविक आदत होती है कि छपी हुई कहानी को वह स्वय भी पढता है—शायद इस लिए कि उस दिन वह लेखक स अधिक एक पाठक होता है

कहानी के कई हिस्से उस के जेहन से इस तरह टकराये कि उस की नजर जब अपनी तसवीर पर पडी तो वह तसवीर किसी सात बरस के बच्चे की बन गयी

—राहुल !—सजय के मुह से घबराकर निकला। उस तसवीर वाले बच्चे को सम्बोधन करते हुए उस न सीधे ही उस का नाम लेकर पुकारा, जसे कहना

चाहता हो—यह क्या मज़ाक है ?

—मेरा नाम राहुल नहीं है।

—तुम्हारा नाम राहुल है, देखो

—सिर्फ कहानी में लिखा हुआ

—पर कहानी में बहुत कुछ फर्ज़ी होता है, सो, नाम भी

—नहीं, कहानी फर्ज़ी नहीं है, सिर्फ नाम फर्ज़ी है

—तुम्हारा नाम ? मुझे क्या पता तुम्हारा क्या नाम है

—तुम जानते हो

—नहीं, मैं ने यह किसी खास बच्चे पर नहीं लिखी है, हर उस आम बच्चे पर लिखी है जो जायज़ बच्चा नहीं कहलाता है, जो अकेलापन और उदासी भोगता है

—क्या कहा ?

—यही कि जो जायज बच्चा नहीं कहलाता

—तुम वह बात क्यों नहीं कहते जो कहनी चाहिए

—क्या ?

—कि जिस बच्चे को हरामी कहते हैं

—एक ही बात है

—नहीं, एक बात नहीं है।

—कैसे ?

—यह लफ्ज़ एक ज़ख्म है, लहू से भरा हुआ ज़ख्म तुम ने कहानी में ज़ख्म को दिखाया है पर कपड़े में ढककर

—तुम कौन हो ?

—वही सात बरस का बच्चा जिस का ज़िक्र तुम ने कहानी में किया है।

—राहुल !

—नहीं, मेरा नाम राहुल नहीं है।

—ऐसे उदास बच्चे बहुत होते हैं, सैकड़ों, शायद हज़ारों

—होते होंगे।

—लेकिन किसी कहानी में हज़ारों नाम नहीं लिखे जा सकते। बात कहने के लिए एक नाम ही लिखना होता है।

—मैं ने कब कहा है कि तुम्हें हज़ारों नाम लिखने चाहिए थे।

—फिर एक नाम कुछ भी हो सकता था, राहुल भी, कुछ और भी

—गोला कबूतर क्यों नहीं ?

—गोला कबूतर ?

—मेरी तरफ़ देखो !

और संजय ने आज चाई बीस बरस के बाद फिर देखा—वह ड्योढ़ी के फ़र्श पर, दीवार से सटकर, हाथ में कई रंग की चमकती हुई कांच की गोलियां लेकर खड़ा हुआ है भूख से मुंह सूख रहा है। सवेरे स्कूल जाते समय तक खाना तैयार नहीं हुआ था, इस लिए मां ने चार आने उस की मुट्ठी में थमा दिए थे कि वह स्कूल में आधी छुट्टी के समय कुछ खा ले। लेकिन उस ने कुछ भी नहीं खाया था, और स्कूल की दुकान से चार आने की कांच की गोलियां खरीदकर बस्ते में डाल ली थीं लेकिन इस समय उसे भूख की याद नहीं थी वह भूख से सूखा हुआ मुंह लिए हुए भी खुश था

—देखा ? तसवीर वाले बच्चे की आवाज आयी।

संजय ने आंखें झपककर तसवीर को देखा।

—तुम्हारा नाम गोला कबूतर किस ने रखा था ? बच्चे ने पूछा।

—शायद दाई ने पर फिर सारा गांव ही इस नाम से पुकारने लगा था।

—सारा गांव ?

—हां, गांव वाले भी इसी नाम से पुकारते थे, घर में भी सब

—नहीं, घर में एक जना था जो तुम्हें इस नाम से कभी नहीं पुकारता था।

—हां, मेरा बड़ा भाई।

—वह तुम्हारा बड़ा भाई था, लेकिन सौतेला उस का नाम क्या था ?

—पुरुषोत्तम।

—आज भी उस का नाम बताते हुए डर लगता है ?

—डर ?

—उसे गांव वाले पहाड़ी कौआ कहते थे

—हां, कहते थे, लेकिन वह तो मज़ाक था, सिर्फ़ इस लिए कि वह कुछ मोटा था, काला भी लड़ाका भी

—और तुम्हें गोला कबूतर कहते थे, क्योंकि तुम गोरे थे, बहुत सुन्दर थे, और शर्मीले से भी

—गांव वाले इसी तरह शक्ल और स्वभाव से नाम गढ़ लेते हैं।

—लोग तुम दोनों को इन्हीं नामों से पुकारते थे, लेकिन तुम्हें याद है, तुम ने कभी उसे इस नाम से नहीं पुकारा, न उस ने तुम्हें

—हां, मैं ने उसे पहाड़ी कौआ कभी नहीं कहा, न उस ने मुझे कभी गोला कबूतर कहा।

—क्यों ?

—पता नहीं।

—तुम्हें पता है, तुम उस से डरते थे, इस लिए नहीं कहते थे। और वह सिर्फ़ इस लिए नहीं कहता था कि वह तुम से नफ़रत करता था

—शायद... लेकिन मैं उसे हमेशा बड़े भाई कहता था।

—और वह तुम्हें ?

—वह... वह कुछ भी नहीं।

—वह हमेशा तुम्हें हरामी कहता था।

—हाँ... लेकिन वह तो सब को गालियाँ दिया करता था, पीठ पीछे अपने पिता को भी, अपने पिता को वह

—बुड्ढा कंजर कहा करता था।

—असल में वह अपने पिता से नाराज़ था, क्योंकि उस की माँ के मरने के बाद उस के पिता ने दूसरा ब्याह कर लिया था।

—उस का पिता तुम्हारा पिता भी था, लेकिन जब वह उन [illegible] देता था, तुम्हें गुस्सा नहीं आता था ?

—मुझे गालियाँ बहुत बुरी लगती हैं, लेकिन शायद गुस्सा नहीं [illegible] था

—क्यों ?

—शायद इस लिए कि

—वह अपने ही पिता को गालियाँ देता था [illegible] को नहीं

—हाँ।

—सो, तुम अपने ही पिता को सिर्फ़ [illegible] था या नहीं

—हाँ।

—सो, तुम उसे रिश्वत देना चाहते थे

—रिश्वत? नहीं, मैं सिर्फ यह चाहता था कि वह मुझे कुछ प्यार करे

—इसी लिए तुम उस के प्यार को खरीदने के लिए सारे दिन भूखे रहे फिर? वह खुश हुआ था?

—आज सत्ताईस बरस की उम्र मे भी सजय की आँखो म पानी आ गया। बोला नहीं गया। उस ने मेज पर पडी हुई पत्रिका के प न पलट दिये, वह तसवीर छिपा दी जिस मे सात वष का सजय कहानी की पक्ति-पक्ति म से निकलकर आ बठा था

लेकिन सात वष की आयु का वह बच्चा जिस तरह कहानी की पक्तियो म से निकलकर तसवीर म चला गया था, तसवीर म से निकलकर कमरे म आ गया

सजय दीवान पर बैठते हुए चौंक गया

—तुम मुझे देखना नहीं चाहत? तुम्ह मेरी तसवीर अच्छी नहीं लगी? बच्चे न दीवान के सामने खडे होकर पूछा।

—लेकिन अखबार मे मेरी तसवीर छपी है, तुम्हारी नहीं

—सो, तुम चाहते हो मैं वहीं खडा रहूँ, दरवाजे के पीछे, हाथ मे रगीन काँच की गोलियाँ लिये हुए?

—तुम्हारी गोलियाँ उस न जबरदस्ती छीन ली थी, जब तुम न मुट्ठी खोलकर उसे दिखायी थी

—और उस न मुझे प्यार करन की जगह जोर से थप्पड मारा था।

—तुम सोच रह थे आज वह मुझे गोला कबूतर कहेगा

—लेकिन उस ने कहा था, 'हरामी! ये गोलियाँ कहाँ स लीं हैं?'

—और तुम दीवार से सटकर रोने लगे थे।

—मैं अभी तक उस दीवार के पास खडा हुआ हूँ।

—फिर यहाँ मेरे कमरे म कैसे आ गये?

—तुम्हारी कहानी पढकर मेरा मतलब है अपनी कहानी पढकर।

—लेकिन वह तुम्हारी कहानी नहीं है, वह एक गैर-कानूनी बच्चे की कहानी है तुम ने अपने-आप को गैर कानूनी कैसे समझ लिया है?

—मैं नहीं, तुम समझते हो अभी तक।

—नहीं, मैं नहीं समझता।

—तुम्हे वह दिन याद है जिस दिन तुम्हारी माँ न खुम्बियाँ पकाई थी? तब तुम मुश्किल से पाच बरस के थे।

—मुझे वह सब्जी बहुत अच्छी लगी थी।
—लेकिन उस दिन खाना खाते समय तुम्हारे पिता ने क्या कहा था ?
—उन्होंने मुझ से कहा था कि अगर आज तुम्हारी दादी जीवित होती, तो वह चौके में रोटी नहीं खाती।
—फिर ?
—मैं ने पूछा था—क्यों ? तो उन्होंने बताया था कि खुम्बियां हराम की उपज होती हैं, हिन्दू लोग इन्हें चौके में नहीं ले जाते
—फिर ?
—मैं हंसने लगा था, मैं ने कहा था—मुझे बहुत स्वाद लगी हैं।—और मैं ने मां से कहा था—मां, तुम यह हराम की भाजी रोज बनाया करो।
—फिर ?
—पिताजी भी हंसने लगे थे। लेकिन फिर उन्होंने खाना खाते समय मुझ से पूछा था—कबूतर ! तुम जानते हो हराम का क्या होता है ?—मैं ने कहा था—नहीं, तो उन्होंने बताया था—खुम्बियों के बीज कोई नहीं बीजता, यह ससुरी अपने-आप उग जाती हैं, इस लिए हराम की होती हैं बीज तो पिता होता है, इन का कोई पिता नहीं होता।
—सो, उस दिन तुम ने जाना कि हराम का बच्चा क्या होता है।
—हां उसी दिन, लेकिन खाना खा चुकने के बाद, जब पिताजी ने मुझे मूढ़े से उठाकर अपनी गोद में उठा लिया था, और प्यार करते करते उन्होंने मां से कहा था—यह गोरा खुम्बी जैसा लड़का तुम कहां से ले आयी थी ?
—लेकिन तुम ने अभी कहा था कि तुम्हारे पिता सिर्फ अपने बड़े पुत्र को प्यार करते थे, तुम्हें नहीं
—मैं ने यह नहीं कहा था। मैं ने सिर्फ यह कहा था कि वह मुझे पुत्र के पिता लगते थे, अपने नहीं।
—लेकिन क्यों ?
—क्यों कि मैं गोरा था, खुम्बी की तरह, और मेरी मां मुझे खुम्बी की तरह कहीं से ले आयी थी।
—फिर ?
—मैं गुस्से में पिताजी की गोदी से उतर गया था, और दौड़कर मां की टांग से चिपट गया था।
—तुम आज भी यह सोचते हो कि वह पिता तुम्हारा पिता नहीं था ?
—नहीं। लेकिन तब मैं बहुत छोटा था मैं इस मज़ाक को समझता नहीं था।
—लेकिन तुम जानते हो—वह पांच बरस का गोला कबूतर आज भी मां की टांग से सटकर खड़ा हुआ है ?

—यह कसे हो सकता है ? माँ तो अब जीवित नही है।

—इस से क्या फ़र्क पडता है, यह बच्चा भी तो अब पाँच बरस का नही है।

सजय न पत्रिका को फिर हाथ म उठा लिया। इस बार उस की नजर बाकी पन्नो पर भी गुजरी, देखा—ए० सी० मेहरा का एक लेख है, जिस म गालियों जसे शब्दो म उस के पहले उपन्यास की आलोचना की गयी है। सजय ने पढा और फिर एक गहरा साँस लकर पत्रिका पर रख दी।

वह कितनी दर कमर की खाली दीवारो को देखता रहा फिर लगा—सचमुच सारी दुनिया से डरा हुआ एक बच्चा माँ की टाँग से चिपककर खडा हुआ है और एक भूखा बच्चा हाथ म काँच की गोलिया की रिश्वत लकर एक दीवार से लगा खडा हुआ है, और गोलियो के बदले वह किसी स थोडा-सा प्यार माँग रहा है।

अपनी आँखें ही अपने अन्दर उतर गयी, मुँह से निकला—यार सजय ! तुम्ह आज भी यह राष्ट्र मजहब, समाज अपना नही लगता, तुम किसी स लडते नही, सिर्फ़ चुपचाप

और मा शब्द की जगह सजय की आँखो के सामन 'कलम' खडी हो गयी। लगा जसे आज वह मेहरा के झूठ के सामने कुछ नही बोला, वह कभी किसी जुल्म के सामन नही बोलगा, उसे यह सारा जहान अजनबी लगता है, वह इस से लडगा नही, वह सिर्फ़ चुपचाप और उदास

लगा—कलम शायद मा का प्रतीक बन गयी है, और वह सिर्फ़ डरकर उस के पास खडा हुआ है

और लगा—समय शायद सौतेले पुत्र के समान है, जिसे खुश करने के लिए वह भूखा रहकर भी उपन्यासो और कहानियो की गोलियाँ इकट्ठी कर रहा है, पर जो कोई पुत्र उस के हाथो से छीन लेता है और उसे थप्पड मारकर उसे गालियाँ भी देता है

लगा—वह समय से कभी नही लडेगा, जब कोई पुत्र उस का रोटी का अधिकार छीनेगा, वह चुप रहेगा। जब कोई मेहरा उस के माथे पर इलजाम लगायेगा, वह चुप रहेगा। जब कोई समाज उसे गुमनामी या बदनामी देगा, वह चुप रहेगा। जब कोई सरकार उस के जीवन का अधिकार छीनेगी, वह चुप रहगा

नजर कमरे की दीवारो की ओर उठ गयी—दीवारो पर चेहरे ही चेहरे थे जितनी किताबें थी उतने ही चेहरे—वाल्मीकि का भी कालिदास का भी, और पूर्व से लेकर पश्चिम तक फल हुए असख्य चेहरे जो पुस्तको के पृष्ठो स निकलकर बाहर सजय की दीवारो पर आ गये थ

और सजय को लगा, उस का अपना चेहरा भी दीवार पर जाकर असख्य

चेहरो म मिल गया है

लगा वह अकेला नही है, न चुप है। उस के अपने हाथो म वही हथियार है जो रामायण लिखते समय वाल्मीकि के हाथो म था।

उस न यह जाना कि अक्षरो के हथियार किसी ओर के नही अपने लह मे डुबोने हाते है और समय से शायद वही हथियार जूझते हैं जो अपन लहू म डूबे होते हैं

सजय न एक प्यार की नजर से सारे चेहरो की ओर देखा—अपने चेहरे की ओर भी।

लगा—समय ने हर चेहरे को हर काल मे काफिर कहा है और हर चेहरे ने प्रतिक्रिया मे बुल्हेशाह की भाति *'हा' कहा है। यह 'हां' एक बहुत वडी शक्ति* है, बहुत वडा विद्रोह

और सजय को लगा, उस दिन जब करीम ने बुल्हेशाह का कलाम गाया था यह 'हा' बुल्हेशाह की थी, उस ने सिफ उसे सुना था, आज यह उस के अपने होठो पर आ गयी है—उस की अपनी शक्ति बनकर, उस का अपना विद्रोह बनकर



चौकीदार ने दरवाजे पर खडका नही किया, ऐसे जस दरवाजे का तोडा हा

कमरे का दरवाजा खोलते हुए सजय के माथे पर त्योरी-सी उभर आयी।

चौकीदार का सास चढा हुआ था। बोला—साव ! नीच आइय, जल्दी उधर वगीचे म, वह ऊपर की मजिल वाली गिर गयी है वही वागीचे म टहल रही थी, *चलत चलते गिर गयी*

—तो वहादुर ! ऊपर जाकर वालो। उन के घर के लागो से

—ऊपर ताला पडा हुआ है, साव ! कोई भी ता नही है उधर, सब पलट का सब मद लोग काम पर चला गया

यह सवर का लगभग साढे दस वजे का समय था। सजय को खपाल

आया—वह सचमुच दिन के समय, इतवार को छोडकर, सारी इमारत मे अकेला मद रह जाता है और ऐसे समय म घबराया हुआ चौकीदार और किसे बुला सकता है ? पर तब भी सजय झिझका, बोला—उन के घर म कोई भी नही है इस वक्त ?—लेकिन साथ ही सीढिया उतरने लगा

चौकीदार पीछे-पीछे सीढ़ियाँ उतरते हुए कह रहा था—साब ! वह अकेली तो रहती हैं, बस उन के साथ एक नानी-माँ हैं, जो हर रोज इस समय बाहर जाती हैं साग भाजी खरीदने रोज देखता हू

सजय ने जल्दी से कदम उठाते हुए इमारत के पिछवाडे की ओर पहुँचकर पूरे बागीचे म दृष्टि घुमायी, लकिन उसे कही कोई गिरा हुआ नही दिखाई दिया। उस ने पीछे आने वाले चौकीदार की ओर सवालिया नजर से देखा।

—वह साब वह ।—चौकीदार आगे को हुआ और केले के एक बडे-से झुण्ड की ओर बढा।

लम्बे-लम्बे केला के पत्ता वाले हिस्से की तरफ सजय ने पहले भी देखा था, एक जगह एक पेड के पास कुछ दिखाई भी दिया था, लेकिन ऐसे जैसे बड-बडे पत्ता का एक तना गिरा हुआ हो।

सजय ने आगे बढकर बेहोश पडी हुई औरत की नब्ज देखी, होठो के पास हथेली रखकर हलके-हलके आ रहे सांस को छुआ और फिर चौकीदार से पानी लाने के लिए कहा।

चौकीदार की कोठरी बागीचे से लगी हुई थी, वह दौडकर एक लोटा भरकर ले आया।

पानी के छीटे पडने स औरत की बांह हिली, दायाँ हाथ अपने मुह की ओर बढा, गीले मुह को पोछता सा—और वह चौंककर टिकी हुई-सी दृष्टि से सजय की ओर देखते हुए, फिर अपने इद गिद देखने लगी, जसे अचानक उस की समझ मे न आ रहा हो कि वह कहाँ है

फिर शायद चौकीदार को देखकर उस की पहचान लौट आयी, और परों पर धोती को जो ऊँची सी हो गयी थी, हाथ से ठीक करते हुए उठने लगी। लेकिन शायद लगा कि शरीर बेजान-सा है, वह केले के तने का सहारा-सा लेकर बठ गयी

उस का चेहरा बहुत कोमल और पीला-सा था। शरीर पर कच्चे हरे रग की धोती थी। सजय को आश्चय हुआ—यहाँ कहीं कोई गिरने की जगह नहीं, शायद वह गिरी नही थी। फिर उसे क्या हुआ था ? लेकिन इस से ज्यादा उसे अपने ऊपर आश्चय हुआ कि उसे वहाँ पडे देखकर भी उसे केले के तने का खयाल क्यो आया था ? शायद इस लिए कि उस की धोती उसे केल के पत्तो जैसी दिखाई दी थी और उस का चेहरा केले के पीले फल जैसा

औरत ने फिर उठने की कोशिश की, और कुछ कांपते हुए, केले के तने का सहारा लेकर खडी हो गयी

—आप शायद डर गयी थी, मुझे लगता है मैं ने आप की चीख सुनी थी। —चौकीदार न कहा ता औरत मुस्करा सी दी, वोली—हा, लगता है डर गयी थी अब ठीक हूँ

सजय ने हाथ से सहारा देना चाहा, पर औरत ने लिया नही, धीरे धीरे चलकर इमारत की ओर लौटने लगी।

सजय ने अभी तक कुछ पूछा नही था, अब सिफ इतना पूछा—सीढिया चढ सकेंगी ?

—हाँ।—औरत की आवाज म एक हलीमी थी, लेकिन आखो मे उस से भी अधिक हलीमी आ गयी—शायद खामखाह किसी का तकलीफ देने के खयाल से और उस न एक सकाच से सजय की ओर देखा।

नीचे की मजिल की खिडकियो से एक दो औरतो ने बाहर की ओर दखा, लेकिन कोई बाहर नही आयी। उस ने सीढियाँ चढते हुए चौकीदार स पूछा—*नानी-माँ बाहर गयी थी, आ गयी ?*

—अभी कहाँ, ऊपर तो ताला पडा है तभी तो सजय साहब को बुलाकर लाया था।—चौकीदार ने कहा, तो औरत ने चौंककर सजय की ओर देखा।

—किसी चीज़ की जरूरत हो डाक्टर की या किसी भी चीज़ की । —सजय ने उस से सीढिया चढते हुए पूछा।

औरत ने शायद यह बात सुनी नही, कहा—आप सजय हैं

शब्दो मे प्रश्न सा था, लेकिन ऐसे जसे कुछ पूछने के लिए न हो, सिफ याद मे से उठी हुई एक पहचान-सी हो

पहली मजिल की सीढिया खत्म हो गयी थी, लेकिन औरत की दूसरी सीढियाँ चढने की हिम्मत भी खत्म हो गयी थी। वह दूसरी सीढियो के सिरे पर खडे होकर सुस्ताने लगी।

यहा सीढिया के सिरे के पास बायी ओर सजय का कमरा था। सजय को आश्चय तो हुआ कि औरत ने न जाने कौन-सी पहचान के कारण उस का नाम दोहराया था, लेकिन उस ने कुछ पूछा नही, सिफ इतना कहा—अगर सीढिया चढना मुश्किल है तो कुछ देर मेरे कमरे म बैठ जाइये।

उस ने नही नही की, इस लिए सजय न जल्दी से आगे बढकर कमरे का आधा भिडा हुआ सा दरवाजा खोल दिया। वह कमरे की ओर आयी, लेकिन दहलीज़ के पास रुक-सी गयी जसे कमरे म बठने के लिए नही, केवल एक नजर कमरे को देखने के लिए आयी हो।

बोली—अपनी कोई किताब देगे एक दिन के लिए, अपनी लिखी हुई

आया—वह सचमुच दिन के समय, इतवार
म‍ रह जाता है और ऐसे समय म घव
सकता है ? पर तब भी संजय झिझका, व
इस वक्त ?—लेकिन साथ ही सीढ़ियाँ उत

चौकीदार पीछे-पीछे सीढ़ियाँ उतरते
तो रहती है बस उन के साथ एक नानी-
जाती हैं साग भाजी खरीदने रोज देखता

संजय ने जल्दी से कदम उठाते हुए इ
पूरे बागीचे म दृष्टि घुमायी, लेकिन उसे
उस ने पीछे आने वाले चौकीदार की ओर

—वह साब वह ।—चौकीदार
झुण्ड की ओर बढ़ा ।

लम्बे-लम्बे केलों के पेड़ों वाले हिस्स
एक जगह एक पेड के पास कुछ दिखाई
पत्तों का एक तना गिरा हुआ हो ।

संजय ने आगे बढ़कर बेहोश पड़ी हुई
हथेली रखकर हलके-हलके आ रहे साँस
लाने के लिए कहा ।

चौकीदार की कोठरी बागीचे से लग
ले आया ।

पानी के छींटे पड़ने से औरत की
बढ़ा, गीले मुह को पोंछता-सा—और व
की ओर देखते हुए, फिर अपने इद गिद
म न आ रहा हो कि वह कहाँ है

फिर शायद चौकीदार को देखकर
पर धोती को, जो ऊँची सी हो गयी थी,
लेकिन शायद लगा कि शरीर बेजान-सा
लेकर बठ गयी

उस का चेहरा बहुत कोमल और पील
की धोती थी । संजय को आश्चय हुआ—य
शायद वह गिरी नहीं थी । फिर उसे क्या
अपन ऊपर आश्चय हुआ कि उसे वहाँ पडे देख
क्यों आया था ? शायद इस लिए कि उस
दिखाई दी थी और उस का चेहरा केले के पीले

इतना याद है, लगा था कि किसी ने फूलों को चूहों की तरह पकड़ने के लिए यह पिंजरा रखा हुआ है

सजय उस के मुख की ओर देखता रह गया

—है न मेरा पागलपन

सजय से बोला न गया।

सीढ़ियों पर किसी के गुजरने की आवाज आयी, सीता ने बाहर की ओर देखा, फिर आवाज दी—नानी-माँ।

नानी माँ ऊपर की सीढ़ी पर रखा हुआ पैर फिर नीचे रखते हुए आवाज की दिशा पर कमरे की ओर मुड़ी और कहने लगी—तू ठीक है? नीचे बहादुर ने मुझे बताया कि तू

—अब ठीक हूँ।—सीता ने कहा और दीवान से उठकर खड़ी हो गयी।

-



-

आखिर सजय की खामोशी उस की अपनी आवाज से हिली मुह से निकला—यार खलील जिब्रान! तुम ने एक दिन कहा था कि मै अपनी ही रूह के पके हुए फल से इतना भारी हो गया हूँ कि जी चाहता है कोई आये यह फल तोड ले और मुझे इस भार से मुक्त कर दे। देखो! मैं भी आज तुम्हारी तरह रूह के पके हुए फल को लिये इस तरह खडा हुआ हूँ कि जी चाहता है कोई आये

और सजय को लगा—आज यह 'कोई' केवल करीम हो सकता है।

इस इमारत मे केवल एक ही घर था, निचली मजिल पर मिस्टर चोपडा का, जहाँ टेलीफोन था। सजय का जी चाहा, आज वह करीम वाले प्रेस मे फोन करके करीम को बुला ले। इन दिनो प्रूफो का काम नही था वह बहुत दिनो से प्रेस नही गया था। आज भी जाने को जी नही कर रहा था।

टेलीफोन वाले घर का फोन उस ने पहले सिर्फ एक बार इस्तेमाल किया था, वह भी घर के मालिक की उपस्थिति मे, आज उस की अनुपस्थिति मे दरवाजे

सजय ने एक आश्चय से उस की ओर देखा, कहा—मेरा खयाल था इस सारी इमारत मे कोई नही जानता कि मैं कुछ लिखता हूँ।

सजय न रैक पर पडी हुई वह पत्रिका उठायी, जिस मे उस की नयी कहानी छपी थी और वही देते हुए कहने लगा—क्या सिफ पढने वाले को लेखक का नाम मालूम होना चाहिए ? लेखक को पढने वाले का नही ?

—आप का नाम क्या है ?

—मीता।—औरत ने कहा और अचानक उस के चेहरे पर लाली फिर गयी।

केले के कांपते हुए पत्ते की भाति सजय का अपने शरीर म कपन का अनुभव हुआ। अपने ऊपर फिर आश्चर्य हुआ कि अभी एक पल पहले जब उस औरत के चेहर पर लाली सी आयी है तो मुझे फिर केले के उस फूल का एहसास क्यो हुआ है जो कवल पीला नही होता, उस म पतली लाल धारियाँ भी होती है

—मैं राज ममतू से कहा करती थी, उस जमादार लडके से, कि मुझे आप के पास से आप की कोई किताब ला दे।—मीता ने कहा तो सजय को हँसी आ गयी, पूछा—यह मेरे लिखने लिखाने की बात उस ने कही थी ?

—हाँ, पहले दिन ही, जब पिछले इतवार को वह नीचे से मेरी चीजें उठाकर ऊपर ला रहा था। कुछ किताबें भी थी। और उस ने किताबो को देखकर ही कहा था कि यहा दूसरी मजिल पर वह साहब रहते हैं जो किताबें लिखते हैं उस से ही मैं ने आप का नाम सुना था।

—वह मेरा बायाग्राफर है।—सजय न ऐसी गभीरता से कहा जसे कोई बडी भेद की बात बतायी हो।—मीता खिलखिलाकर हँस पडी।

सजय न अभी तक उस से यह नही पूछा था कि नीचे बागीचे मे उसे अचानक कोइ चाट लग गयी थी या क्या हुआ था, लेकिन अब उस हँसते हुए देखकर एक अपनत्व का अनुभव हुआ। कुछ चिता के साथ पूछा—मीता ! नीचे बागीचे म क्या हुआ था ?

मीता धीरे से कमरे म आकर दीवान के कोने पर बैठ गयी, कुछ देर चुप रही, फिर उस न कहा—और किसी का शायद नहा बता सकती, कोई नहीं समझेगा। आपन वहाँ रेलो की परली तरफ जहाँ बुगनविलिया है, वहाँ एक चीज देखी थी ?

—नहीं क्या थी ?

मीता कुछ कहन जा रही थी, लकिन कुछ झेंप-सी गयी, चुप हो गयी।

—मुझे खयाल नही है कि मैं न कुछ देखा था। क्या था वहाँ ?

मीता का मुख छाया के रग का हो गया। उस न एक गहरा सांस भरा, फिर अपने ऊपर हँसत हुए कहन लगी—वहाँ किसी न एक चूहेदान रखा हुआ था। मुझे खुद नहा मालूम हुआ कि इतने जोर म मरी चीख क्यो निकल गयी सिर्फ

इतना याद है, लगा था कि किसी ने फूला को चूहो की तरह पकडने के लिए यह पिंजरा रखा हुआ है

सजय उस के मुख को ओर देखता रह गया

—है न मेरा पागलपन

सजय से बोला न गया।

सीढियो पर किसी के गुजरने की आवाज आयी, मीता ने बाहर की ओर देखा, फिर आवाज दी—नानी माँ।

नानी-माँ ऊपर की सीढी पर रखा हुआ पैर फिर नीचे रखते हुए आवाज की दिशा पर कमरे की ओर मुडी और कहने लगी—तू ठीक है? नीचे बहादुर ने मुझे बताया कि तू

—अब ठीक हूँ।—मीता ने कहा और दीवान से उठकर खडी हो गयी।



आखिर सजय की खामोशी उस की अपनी आवाज से हिली, मुह से निकला—यार खलील जिब्रान! तुम ने एक दिन कहा था कि मैं अपनी ही रूह के पके हुए फल से इतना भारी हो गया हूँ कि जी चाहता है कोई आय, यह फल तोड ले और मुझे इस भार से मुक्त कर दे। देखो! मैं भी आज तुम्हारी तरह रूह के पके हुए फल को लिए इस तरह खडा हुआ हूँ कि जी चाहता है कोई आये

और सजय को लगा—आज यह कोई' केवल करीम हो सकता है।

इस इमारत मे केवल एक ही घर था, निचली मजिल पर मिस्टर चोपडा का, जहाँ टेलीफोन था। सजय का जी चाहा, आज वह करीम वाले प्रेस मे फोन करके करीम को बुला ले। इन दिनो प्रूफो का काम नही था, वह बहुत दिनो से प्रेस नही गया था। आज भी जाने को जी नही कर रहा था।

टेलीफोन वाले घर का फोन उस ने पहले सिर्फ एक बार इस्तेमाल किया था, वह भी घर के मालिक की उपस्थिति मे, आज उस की अनुपस्थिति मे दरवाजे

पर दस्तक देकर, घर की किसी औरत से अनुमति लेना उसे कठिन प्रतीत हुआ। लेकिन रूह के पके हुए फल का भार शायद उस से भी अधिक कठिन लग रहा था। उस ने नीचे जाकर सकोची हाथों से दरवाज़े पर खटका किया

सजय ने जब करीम को शाम के छह बजे आने के लिए कहा, तो करीम ने कहा—छह बजते किस ने देखे जी, अभी आया

जेब म हाथ डाला, टूट हुए पचास पसे नही थ, सजय ने पूरा रुपया फोन के पास रख दिया। करीम के अभी आने की बात क कारण उसे रुपया भी थोड़ा लग रहा था, इस लिए कमरे स बाहर आते समय उस ने घर की मालकिन को मन के भीगे हुए अक्षरो वाला धन्यवाद भी दिया।

—एक मिनट।—मिसेज चोपडा ने रोका।

सजय न कमरे क बाहर रखा हुआ पैर फिर कमर की ओर मोड लिया।

—एक मिनट के लिए अन्दर आ जाइये। मुझे आपसे एक बात करनी थी, सोचती थी शाम को चोपडा साहब से कहूँगी, वह आप से कहेंगे, लेकिन अब आप आ ही गय हैं तो

सजय चुपचाप कमरे के भीतर आकर एक कुर्सी के पास खडा हो गया।

—बठिये।—मिसेज चोपडा ने कहा और स्वय दूसरी कुर्सी पर बठते हुए कहने लगी—आप ऊपर की मजिल वाली मिसेज पुरी को जानते हैं ?

—मिसेज पुरी ? नही मैं नही जानता।

—वही, जो सवरे पीछे बागीचे म गिर पडी थी।

—वह ?

—मैं आप को बताना चाहती थी कि उसे न जाने क्या बीमारी है, लेकिन जो भी है अच्छी नही है, इस लिए उस के आदमी न उसे अपने घर म नही रखा, यहाँ अलग कमरा किराये पर ल दिया है, नही तो उस की अपनी कोठी तो बहुत बडी है, आदमी लखपती है, मशहूर है लोहे वाला पुरी

—मैं नहीं जानता।

और तरह, और फोन करने के बाद उस की आवश्यकता है कुछ और ही तरह।

लगा, रूह का पका हुआ फल अचानक अपने आप रिसने लगा है—बूंद-बूंद, और अब रूह मे कुछ खालीपन लग रहा है।

थोडी देर म करीम आ गया, लेकिन उस की हँसी जसे उस से भी पहले सीढियाँ चढ आयी थी। वह दरवाजे के पास आकर खुले हुए दरवाजे से ही टकराकर खडा हो गया। करीम न दहलीज पर पँर रखते ही कहा—या अल्लाह! सजय साहब के मुह पर आँसू

सजय न जल्दी से मुह को छूकर देखा तो हाथ गीला सा हो गया, लगा—उसे ख़ुद नही मालूम था कि उस किस समय रोना आ गया था, लेकिन उस ने मुसकराते हुए करीम की ओर देखा—आज तुम्हारे काम का हरज करवा दिया, करीम मियाँ !

—कसे, मैं तो रोज ही आधे दिन काम करता हूँ, आठ दिन हो गये हैं

—क्यो ?

—यह कितने दिनो से घुटने दुखते थे, मैं गरदानता नही था।

—तुमने कभी बताया नही।

—बताना क्या था। सोचा कि बेगम एक होती तो एक घुटना टूटता, पर वे दो हैं, सा दोनो घुटने टूटने ही थे

सजय हँसने लगा—करीम मियाँ! क्या उन बेचारियो को हर वक्त कोसते हो ? दोना घुटना की टकोर भी तो वही दोनो करती होगी

करीम भी हँस पडा, बोला एक बात तो अच्छी हुई जी, मुझे भी घुटनो के दद के हाथो एक घुडी हाथ आ गयी है।

—क्या ?

—एक दिन दद ज्यादा था, मुझे किसी ने अस्पताल के रास्ते पर डाल दिया, और जी, वहाँ वे रोज मेरे बिजली का सेंक करने लगे तभी तो आठ दिन से आधी छुट्टी करके चला जाता हूँ बस जी वही से घुडी हाथ आ गयी

और करीम हँसते हँसते कहने लगा—वहाँ जी, जिस मशीन से तार जोडकर सेक करते है फिर उस म घण्टी बजती है, उस का मतलब होता है, यानी अब सेंक बन्द कर दो।

—हा फिजियो थिरेपी ऐसे ही होती है

—पहले रोज घर जाता था, पहुँचते ही दोनो की लडाई तैयार होती थी, फिर कौन जाने कितनी देर लडना और कब चुप होना। मैं ने भी एक दिन जी अलारम घडी लेकर अलारम लगा दिया, और चुपचाप चारपाई पर लेट गया। उन दानो ने अपना काम शुरू कर दिया। जी बीस मिनट के बाद जब अलारम

पर दस्तक देकर, घर की किसी औरत से अनुमति लेना उसे कठिन प्रतीत हुआ। लेकिन रूह के पके हुए फल का भार शायद उस से भी अधिक कठिन लग रहा था। उस ने नीचे जाकर सकोची हाथो से दरवाजे पर खटका किया

सजय ने जब करीम को शाम के छह बजे आने के लिए कहा, तो करीम ने कहा—छह बजते किस न देखे जी, अभी आया

जब म हाथ डाला, टूट हुए पचास पसे नही थे, सजय ने पूरा रुपया फोन के पास रख दिया। करीम के अभी आने की बात के कारण उसे रुपया भी थोडा लग रहा था इस लिए कमरे से बाहर आते समय उस ने घर की मालकिन का मन के भीगे हुए अक्षरो वाला धन्यवाद भी दिया।

—एक मिनट।—मिसेज चोपडा ने रोका।

सजय ने कमरे के बाहर रखा हुआ पैर फिर कमर की ओर मोड लिया।

—एक मिनट के लिए अदर आ जाइए। मुझे आपसे एक बात करनी थी, सोचती थी शाम को चोपडा साहब से कहूँगी, वह आप से कहेगे, लेकिन अब आप आ ही गये हैं तो

सजय चुपचाप कमरे के भीतर आकर एक कुर्सी के पास खडा हो गया।

—बैठिये।—मिसेज चोपडा ने कहा और स्वय दूसरी कुर्सी पर बठते हुए कहने लगी—आप ऊपर की मजिल वाली मिसेज पुरी को जानते हैं?

—मिसेज पुरी? नही मैं नही जानता।

—वही, जो सवेरे पीछे बागीचे मे गिर पडी थी।

—वह?

—मैं आप को बताना चाहती थी कि उसे न जाने क्या बीमारी है, लेकिन जो भी है अच्छी नही है, इस लिए उस के आदमी ने उसे अपने घर म नही रखा, यहाँ अलग कमरा किराये पर ले दिया है, नही तो उस की अपनी कोठी तो बहुत बडी है, आदमी लखपती है, मशहूर है लोहे वाला पुरी

—मैं नही जानता।

—बडी उम्र का है, बडे शौक से इतनी जवान लडकी से ब्याह किया था। अब ऐसे ही तो नही यहाँ किराये के कमरे मे डाल दिया! न कोई नौकर न चाकर, उस की नानी ही गाँव से आ गयी है उस के साथ रहने के लिए अभी आठ-दस दिन तो हुए है उसे आये हुए, एक बार डाक्टर भी आ चुका है मैं सिर्फ आप को खबरदार करना चाहती थी बीमारी की तरफ से

सजय को कुर्सी से उठते हुए मिसेज चोपडा से एक रस्मी धन्यवाद कहना था, लेकिन होठो से यह रस्म अदा न हो सकी। उस ने सिर्फ सिर हिलाया, जसे सुन लेने की पुष्टि कर दी, और अपने कमरे की ओर लौट गया

कमरे मे आकर लगा, फोन करने से पहले करीम की आवश्यकता थी कुछ

और तरह, और फोन करने के बाद उस को आवश्यकता है कुछ और ही तरह।

लगा, रूह का पका हुआ फल अचानक अपने आप रिसने लगा है—बूद-बूद और अब रूह मे कुछ खालीपन लग रहा है।

थोडी देर मे करीम आ गया, लेकिन उस की हँसी जसे उस से भी पहले सोढियाँ चढ आयी थी। वह दरवाजे के पास आकर खुले हुए दरवाजे से ही टकराकर खडा हो गया। करीम न दहलीज पर पैर रखते ही कहा—या अल्लाह! सजय साहब के मुह पर आसू

सजय ने जल्दी से मुह को छूकर देखा तो हाथ गीला-सा हो गया, लगा—उसे ख़ुद नही मालूम था कि उस किस समय रोना आ गया था, लेकिन उस ने मुसकराते हुए करीम की ओर देखा—आज तुम्हारे काम का हरज करवा दिया, करीम मियाँ!

—कैसे, मैं तो रोज ही आधे दिन काम करता हूँ, आठ दिन हो गये हैं

—क्यो ?

—यह कितने दिनो से घुटने दुखते थे, मैं गरदानता नही था।

—तुमने कभी बताया नही।

—बताना क्या था। सोचा कि बेगम एक होती तो एक घुटना टूटता, पर वे दो है, सो दोनो घुटने टूटने ही थे

सजय हँसने लगा—करीम मियाँ! क्या उन बेचारियो को हर वक्त कोसते हो ? दोनो घुटनो की टकोर भी तो वही दोनो करती होगी

करीम भी हँस पडा, बोला एक बात तो अच्छी हुई जी, मुझे भी घुटना के दद के हाथो एक घुडी हाथ आ गयी है।

—क्या ?

—एक दिन दद ज्यादा था, मुझे किसी ने अस्पताल के रास्ते पर डाल दिया, और जी, वहाँ व रोज मरे बिजली का सेक करने लगे तभी तो आठ दिन से आधी छुटटी करके चला जाता हूँ बस जी वही से घुडी हाथ आ गयी

और करीम हँसते-हँसते कहन लगा—वहाँ जी, जिस मशीन से तार जोडकर सेक करत हैं, फिर उस मे घण्टी बजती है, उस का मतलब होता है, यानी अब सेंक बन्द कर दो।

—हा, फिजियो थिरेपी ऐसे ही होती है

—पहले रोज घर जाता था, पहुँचते ही दानो की लडाई तयार होती थी, फिर कौन जाने कितनी देर लडना और कब चुप होना। मैं ने भी एक दिन जी अलारम घडी लेकर अलारम लगा दिया, और चुपचाप चारपाई पर लेट गया। उन दोनो ने अपना काम शुरू कर दिया। जो बीस मिनट के बाद जब अलारम

बजा तो मैं ने कहा कि भई इस का मतलब यह है कि अब दोनों चुप हो जाओ।

—तो अब सिर्फ बीस मिनट लड़ाई होती है?

—बस जी, यही समझ लें कि आजकल अस्पताल में बीस मिनट घुटना की टकोर होती है, और घर पर बीस मिनट कानों की टकोर होती है।

सजय के होठों के पास पीड़ा की एक लकीर सी खिंच गयी, बोला—यार! यह बताओ अगर आज तुम्हारे पास तुम्हारी वह होती

—आप मुमताज की बात करते हैं?

—तुम ने नाम तो बताया नहीं कभी, सिर्फ शिया सुन्नी होने की बात बतायी थी

—वही

—भला तसव्वुर तो करो, तुम जब रोज घर जाते तो वहाँ वह मिलती, फिर उस की आवाज को भी तुम कानों की टकोर कह सकते थे?

—फिर तो जी उस की आवाज अल्लाह की आवाज की तरह कानों में पड़ती

—करीम मियाँ! यह जो फर्क है, तुम्हारे-मेरे जैसे लोगों का सारा दुःख इसी फर्क के कारण है।

करीम कुछ क्षणों के लिए चुप हो गया, केवल सजय के चेहरे की ओर देखता रहा, फिर कहने लगा—मैं ने तो यह फर्क अपनी छाती के भीतर झेला है, पर आप को इस की पीड़ा कैसे मालूम हुई?

—सोचा था पता लगने में बरसों लग जायेंगे, लेकिन पता लगा तो एक ही दिन में लग गया। सजय ने कहा, लेकिन उसे खुद पता नहीं लग रहा था कि आज गिनती के क्षणों में उस ने युगों का फासला कैसे तय कर लिया है। वह कहीं खड़े होना चाहता था, और खड़े होकर इस रास्ते को ध्यान से देखना चाहता था, लेकिन उस के अपने ही पैर उस के बस में नहीं आ रहे थे। इसी लिए उस ने कोई क्षण भर को करीम के कंधे पर हाथ रखने के लिए उसे बुलाया था।

—खाने का वक्त हो गया है। अगर करीम मियाँ! तुम्हें जाने की जल्दी न हो तो खाना मँगवा लूँ।—सजय को समय का ध्यान आ गया।

—इस दर्द ने तो रोटी भी छीन ली है जी, एक ही वक्त खाता हूँ, वह भी उबली हुई फीकी साग भाजी से। लेकिन आप खाइये, मुझे चाय का एक गिलास मँगवा दीजिये।

सजय ने स्टोव पर चाय रखी, कहा—मेरा भी जी चाय पीने का कर रहा है

चाय पीते हुए करीम ने कहा—आप की कहानी देखी जो छपी हुई

—पढ़ी नहीं?

—काफिरो की जवान का तो एक भी अक्षर नही पहचाना जाता, पढता कैसे ?—करीम ने हँसते हुए कहा। फिर बोला—पर देखो जी, हम जिसे काफिरो की ज़वान कहते है, यही कभी हमारे लकडदादा की ज़वान थी

—देखो ! यह भी एक पिंजरा है

—क्या, जी ?

—एक काफिर होने का पिजरा, एक मोमिन होने का पिंजरा भला एक आदमी को एक पिंजरे से निकालकर दूसरे पिंजरे म डाल दिया तो क्या सवाव मिल गया ?

—आप यही कहानी लिखिये न !

—नही, यार ! आज तो लगता है, हम मन की बातें भी व्यय म कहानिया के पिंजरो मे डाल देते हैं

—आज आप बहुत उदास लग रहे है

सजय हँस पडा, बोला—लगता है, ईश्वर ने मनुष्य को पकडने के लिए उदासी का भी एक पिंजरा बनाया हुआ है।

—सो जी, यही आज आप का पता लग अभी आप ने कहा था न कि उस पीडा का पता लगा तो एक ही दिन म लग गया।

—देखो, करीम ! तुम ने कोलम्बस का नाम सुना है ? उस आदमी ने वह धरती खोजी थी जिसे आज अमरीका कहते हैं

—अच्छा जी, एक ही आदमी ने खोजी थी ?

—हा, एक ही आदमी ने खोजने कुछ गया था, मिल गया कुछ, और नयी धरती जब मिली तो एक ही दिन म मिल गयी

—और आप को ?

सजय ने एक सिगरेट सुलगाया, और कहा—मुझे भी एक धरती मिल गयी है, शायद उदासी की धरती भी तो पिजरा होती है

—समझ गया जी।

सजय हँसने लगा तो करीम ने कहा—तो आप ने यह रंग भी देख लिया, पिंजरे म फँसने का लेकिन जी, और पिंजरे म से तो आदमी निकल भी आवे, यह जो दिल का पिंजरा होता है

—नही, करीम मिया ! बस एक वह पिंजरा नही होता, और सब पिंजरे होते है।

—नही जी, इश्क तो सब से बडा पिंजरा होता है आदमी की पूरी जिन्दगी ही पिंजरे म पड जाती है

—तुम भूल गये, करीम मिया ! अभी तुम ने क्या कहा था कि घर पहुँचने पर अगर तुम्हे मुमताज़ की आवाज़ सुनाई देती तो उस की आवाज़ अल्लाह की

आवाज की तरह कानों में पड़ती... अगर तुम्हारा निकाह मुमताज से हुआ होता तो वह तुम्हारा पिंजरा होती या तुम्हारी उड़ान होती ?

—वह... वह जी, एक दिन उस ने मुझ से कहा... कि तुम मेरे कुरान शरीफ हो... और जी, मेरे बदन पर उस ने ऐसे... हाथ रखा जैसे कोई कुरान शरीफ पर रखता है, और बोली—कुरान पर... हाथ रखकर... कहती हूँ कि यह रूह हमेशा तुम्हारी रहेगी।

मुमताज की बात करते समय करीम पर वज्द-सा छा गया, तो संजय ने उस के कंधे पर हाथ रखकर कहा—फिर अब बताओ, मुहब्बत पिंजरा होती है या उड़ान ? उस ने तो एक मिनट में तुम्हें आदमी की जून से निकालकर कुरान शरीफ बना दिया !

—वह तो जी, सच में कोई करामात होती है...

—तो मियाँ ? तुम्हारा इश्क पिंजरा नहीं था, पिंजरा तो आदमी का शिया या सुन्नी होना था, जैसे ब्राह्मण या खत्री होना पिंजरा होता है, या अमीर और गरीब होना होता है... या... या...

—आप क्या कहने जा रहे थे ?

संजय ने उत्तर देने के बजाय एक सिगरेट सुलगा... लिया, और उस के धुएँ में अपने आप को छुपाते हुए कहा—कानून भी तो एक पिंजरा होता है।

—वह तो होता है जी।—करीम ने सिर्फ इतना ही कहा और फिर चुप हो गया।

लेकिन संजय की रूह का पका हुआ फल बूँद-बूँद रिसता हुआ उस के होंठों पर आ गया—करीम मियाँ ! रस्में भी चहेदामियाँ होती हैं रूहों को फँसाने के लिए...

करीम की समझ में... नहीं आ... रहा था कि... संजय किसी... रस्म में... फँसने से डरते हुए यह बात कह रहा है... या किसी को फँसा हुआ देखकर कह रहा है, इसलिए वह चुप रहा।

संजय के चेहरे पर एक उदासी माथे की नस की तरह दिखाई देने लगी... तो करीम ने बात अपनी तरफ मोड़ ली, बोला—आप को... एक और करामाती बात बताऊँ, मुमताज... ने जब... मुझे कुरान शरीफ कहा, तो मैं ने भी... हँसकर उस से कहा—अच्छा, फिर हमारे घर जो भी लड़कियाँ होंगी, उन का... नाम हम आयतें रखेंगे। आज मेरे घर में... दो बेटियाँ हैं, मैं ने हर... बार सोचा है... कि लड़की का नाम आयत रख दूँ... लेकिन रखा नहीं गया...

संजय मुसकरा... दिया—देख लो करीम मियाँ ! इश्क का सोचा... हुआ... भी किसी चेहरे की कद्र में नहीं पड़ता...

करीम भी मुसकरा पड़ा—हाँ जी, ... बेटियाँ... तो यह भी अपनी ही हैं, लेकिन मेरे कुरान की आयतों को तो मुमताज ही जन्म दे सकती थी।



आज सवेरे का वही समय था, कल वाला, जब चौकीदार ने जोर से दरवाजा खटखटाया था, और संजय के माथे पर एक त्योरी-सी उभर आयी थी लेकिन एक भेद, जो संजय को कल मालूम नहीं था, आज मालूम हो गया कि कल चौकीदार के भेस में क़िस्मत ने दरवाजा खटखटाया था, और उस के माथे पर त्योरी नहीं, क़िस्मत की लकीर उभर आयी थी

आज सवेरे से वह दो बार पिछले बग़ीचे में हो आया था, लेकिन मीता वहाँ नहीं थी, सिर्फ़ वह चूहेदान अभी तक वहीं था जिसे कल उस ने नहीं देखा था, और उसे देखकर आज उस वह दहशत अनुभव हुई थी जो कल केवल मीता ने अनुभव की थी, और उस ने चौकीदार को बुलाकर वह पिंजरा वहाँ से उठवा दिया था

अचानक छत की ओर से एक आवाज आने लगी, जैसे ऊपर की मंजिल पर कोई लगातार धीरे-धीरे चल रहा हो—कमरे के एक सिरे से दूसरे तक, फिर उस परले सिरे से लेकर इधर के सिरे तक

संजय को खयाल आया, ऊपर की मंजिल पर भी शायद नीचे की मंजिल की तरह चार हिस्से होंगे, न जाने कौन किस में रहता है या शायद वहाँ एक-दो ही बने हुए हैं बाकी खाली जगह है

संजय ने कभी ऊपर की मंजिल पर जाकर नहीं देखा था, लेकिन लगा, ऊपर, इसी छत के ऊपर, इस समय वह ही है

पैरों की धीमी धीमी आवाज—एक चाल में बँधी हुई संजय के कानों में से उतरकर एक ठण्डी लकीर की तरह उस की पीठ में फैल गयी लगा, शायद यह ठण्डी लकीर कल मीता की पीठ में फैल गयी थी, जब उस ने एक चूहे की तरह फूलों को पकड़ने वाला दुनिया का भयानक भेद जान लिया था

संजय को अपने साँस भी अपने कानों को सुनाई देने लगे।

पैरों की आवाज़ उसी तरह जारी थी—पूरे चौदह फुट के फ़ासले में घिरी हुई। और संजय को लगा, शायद पन्द्रहवें फुट के लिए पैरों के पास कोई धरती

नहीं है, न उन परों के पास जो ऊपर की मंजिल पर हैं, और न उस के अपने पैरों के पास

पन्द्रहवाँ फुट !

संजय ने कल्पना करनी चाही, लेकिन पन्द्रहवाँ फुट कल्पना से भी परे हो गया

लगा वह आज तक जो कुछ लिखता रहा, धरती का पन्द्रहवाँ फुट पाने के लिए लिखता रहा है

नहीं संजय को लगा—दुनिया में आज तक जितनी भी किताबें लिखी गयी हैं वह धरती के पन्द्रहवें फुट को पाने के लिए लिखी गयी हैं

कमरे का दरवाजा सवेरे से खुला हुआ था, संजय ने खुले हुए दरवाजे से देखा—नानी माँ दोनों हाथों में साग भाजी की टोकरियाँ लिये हुए ढहते हुए-से कदमों से सीढ़ियाँ चढ़ रही हैं

पैर अनायास दरवाजे की ओर चले गये—लगा, चौदह फुट में चलने वाले परों को आज किसी और चौदह फुट में चलने वाले इन पैरों के पास जरूर जाना है ! आगे बढ़कर नानी माँ के हाथों से टोकरियाँ ले लीं, कहा—मैं छोड़ आता हूँ ।

हवा में कुछ अक्षर फैल गये । शायद नानी-माँ ने कोई असीस सी दी थी, लेकिन संजय के कानों में सिर्फ उन परों की आवाज आयी जो ऊपर की मंजिल पर चौदह फुट के घेरे में चल रहे थे

ऊपर के कमरे का दरवाजा खुला हुआ था, संजय ने हाथों में थामी हुई टोकरियाँ दरवाजे के भीतर पड़ी हुई मेज पर रखी तो देखा—सामने मीता के पैर जहाँ थे वहीं रुक गये

शायद मीता के पैरों के नीचे सिर्फ परों जितनी धरती रह गयी थी

—आप ?—मीता की आवाज भी होठों के पास आकर रुक गयी—धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर नानी माँ आयी तो कमरे का रुका हुआ साँस कुछ स्वाभाविक हो गया

कमरे में दो दीवान थे, शायद वही दिन में बैठने के लिए और रात को सोने के लिए थे । नानी माँ ने संजय के बैठने के लिए अपने दीवान पर नयी चादर बिछायी, और बोली—दो मिनट बैठो बेटा ! चाय पीकर जाना ।

कमरे में एक बन्द अलमारी थी शायद कपड़ों की, और दो खुली हुई सिर्फ फट्टों वाली अलमारियाँ थीं जिन में से एक किताबों से भरी हुई थी, दूसरी दवाओं से । संजय उन दोनों अलमारियों की ओर देखकर हँस-सा दिया—इतनी दवाओं की जरूरत पड़ गयी ? मैं किताबों को दवाओं की तरह पीता हूँ ।

मीता ने अब तक संजय के आने के आश्चर्य को झेल लिया था, इस लिए

अपने दीवान पर बैठते हुए कहा—नही, किताबो के जम्ज जब मेर अन्दरहु बत हो जाते हैं, तब दवाएँ पीनी पडती है।

—दुनिया के लेखको पर इतना बडा इलजाम ?

मीता ने जवाब मे कल सजय की कहानी वाली जो पत्रिका ली थी, वह लौटाते हुए कहा—हा, इस कहानी के लेखक पर भी, क्योकि इसे पढने के बाद शाम को रोज़ से ज्यादा बुखार हो गया था

—इसी लिए आज सवेरे

मीता ने ज़रा चौककर सजय की ओर देखा, कहा—इसी लिए सवरे बागीचे मे नही गयी कि अगर आज फिर बेहोश हो गयी तो रोज रोज़ सँभालने के लिए कोई नही आयेगा

सजय मुस्कराया—दो चार दिन तो बेहोश होकर देख लेना था

मीता की आखो मे पानी भर आया लगा, सजय का चेहरा उस पानी मे तर रहा है, इस लिए परे खिडकी की ओर देखन लगी।

— दिन भर यहाँ एक हो कमरे म

मीता ने जल्दी से कहा—दिन भर लगी रहती हूँ, कभी इस काम म, कभी उस काम मे

—काम ?—सजय ने चारो ओर दृष्टि घुमायी, किसी काम का कोई आसार नही था।

मीता हँस-सी पडी, बोली—पहले कोई किताब पढती हूँ और जम्ज इकट्ठे करती हू, फिर उन्हे मारने के लिए दवा पीती हूँ, फिर वह मर जाते है तो नये पाने के लिए फिर कोई किताब पढती हूँ

इस बार मीता की नही, सजय की आखा म पानी आ गया।

मीता अपनी आँखो के पानी से नही डरी थी, लेकिन सजय की आँखा के पानी से डर गयी, इस लिए उसे आँखो के पानी से बचाने के लिए बोली—दुनियादारी मे मैं बहुत सयानी औरत हूँ, उम्र बडी नही, लेकिन छोटी उम्र म ही बहुत बडा ढग सीख लिया, जल्दी से एक बहुत अमीर आदमी स ब्याह कर लिया ताकि वह मेरी दवाओ के दाम भरता रहे, मैं आराम से बैठी रहूँ, और वह मुझे रोटी, कपडे, फल, दवाए—सब कुछ देता रहे

मीता यह कह रही थी जब नानी माँ चाय लेकर कमरे म आ गयी। उस न भी यह बात सुनी। वह छोटी सी मेज पर चाय रखते हुए चाय स भी ज्यादा खौल गयी—देखो इस की बात नयी-नवली कच्ची कोपल-सी ब्याही थी उस निगाडे से, बुड्ढे खूसट स। मन तो इस का मारा गया, उस का क्या गया चार दिन बुखार चढा तो मक्खी की तरह छटककर घर के बाहर कर दिया है दवाओ के दाम भरता है तो बडा एहसान करता है

नानी-माँ ने जो कहा, सजय ने वह पहले सुन रखा था, लेकिन जब उसी बात को जसे मीता ने कहा था, सजय से सहन न हो सका। उस ने कहा—मीता ! यह बात तुम ने कल सवेरे भी बतायी थी।

—कल सवेरे ?

—जब बताया था कि किसी ने फूना को चूहा की तरह पकडने के लिए पिंजरा रखा हुआ है

मीता ने इस पहचान की असह्य पीडा से आँखें बन्द कर लीं, धीरे से उस के मुह से निकला—आप समझ गये थे ?

आज सजय के मुह पर मीता के लिए 'तुम' किस समय आ गया, सजय को भी पता न चला, मीता को भी नहीं।



—उहे किस्मत !—आज तो दरवाजा भी खटखटाना नहीं पडा। दरवाजे की ओर से यह आवाज आयी तो सजय ने मेनका की ओर देखा—वह दीवान पर लेटकर एक किताब पढ रहा था। किताब को परे रखते हुए वह दीवान से उठा, मुह से निकला—आह मिसेज चौधरी !

मेनका को लगा जसे उसे अन्दर आकर बैठने के लिए नहीं, बल्कि उठने के लिए कहा गया हो। लेकिन उस ने सजय की आवाज को कानों मे डालकर भी कानों से बाहर निकाल दिया और दीवान पर बठते हुए कहने लगी—सरकार ! गरहाजरी की माफी माँगने आयी हूँ।

सजय ने कहना चाहा—गरहाजरी की या हाजरी की ? लेकिन कहा नहीं।

मेनका ही बोली—चौधरी साहब की माँ का आपरेशन होना था, इस लिए मजबूरन इतने महीने वहाँ जाकर रहना पडा लेकिन अब गैरहाजरी का बहुत बडा जुर्माना अदा करूँगी बहुत बढिया तरकीब सोची है, बताऊँ ?

—बताओ !

—मैं एक अखबार शुरू करना चाहती हूँ

—अखबार ?

—रोज़ाना अखबार नहीं साप्ताहिक, द्वमासिक या त्रैमासिक। मिस्टर चौधरी मान गये है, वही पैसा लगायेंगे और जनाब उस के सम्पादक होंगे

—मैं ? क्या ?

—जनाब को काम नहीं चाहिए ?

—सो यह जुर्माना है ! लेकिन जुर्माना मुझे तो नहीं भरना था ?

—नहीं, जनाब ! जुर्माना मैं दे रही हूँ।—मेनका हँस पड़ी। लेकिन फिर गम्भीर होकर बोली—देखो सजय ! मैं जानती हूँ कि तुम्हे मेरे घर आकर मुझ से मिलना अच्छा नहीं लगता वहाँ मैं तुम्हे हर समय मिसेज़ चौधरी लगती हूँ। और यहाँ इतना अनकम्फर्टेबल है। यह अखबार वाला जाब होगा तो हम किसी होटल मे भी जा सकते हैं दो दो, चार-चार दिन शहर के बाहर भी

—प्लीज मिसेज़ चौधरी !—सजय को भी पता नहीं था कि उस की आवाज़ कभी ऐसे तमक सकती है, मेनका हैरान होकर उस की ओर देखने लगी।

सजय के मुह से गहरी साँस निकली—मेरा खयाल था मैं ने ज़िन्दगी म कोई गुनाह नहीं किया, लेकिन लगता है मै ने एक बहुत बडा गुनाह किया है।

मेनका दीवान से उठकर सजय के पास जाकर खडी हो गयी। उस ने पूछा—कौन-सा गुनाह, सजय ?

सजय ने उत्तर नहीं दिया।

मेनका हँस पड़ी—एक ओरिजिनल सिन होता है जिसे सब करते हैं

सजय ने जलती हुई आखो से मेनका की ओर देखा शायद अपनी ओर भी, फिर कहा—सिन ऑफ इगनारेंस !

और सजय ने कमरे की चाभी हाथ मे लेते हुए कहा—मुझे काम है मुझे बाहर जाना है।

—इस का मतलब है, मैं जाऊँ

सजय वैसे ही, जिन कपडो म था, बाहर दरवाज़े की ओर बढ़ा, तो मेनका ने कमरे से बाहर आते हुए सिर्फ एक बार कहा—यू रॉस्कल !—और फिर सीढियाँ उतर गयी।

सजय कई प्रेसो म प्रूफ देखने का काम करता था। अब मार्च वाला प्रूफो का भीड वाला समय बीत गया था, फिर भी मई जून म छपने वाली स्कूली किताबों की प्रूफ-रीडिंग का काम उस की रोटी के सहारे के लिए बना हुआ था। लेकिन सजय का लगा

'जो लगा वह उस ने अपने होठो से अपने कानो को भी नहीं कहना चाहा।

वह साइकिल लेकर करीम वाले प्रेस की ओर चल दिया। यह प्रेस औरो से बडा था, इस म सिलिंडर मशीन थी, जिस के कारण इसे बडे दफ्तरो का काम भी मिल जाता था, साथ ही वह काम भी जो बहुत सी एम्बेसिया अनुवाद करवाने की ज़िम्मेदारी के साथ इस प्रेस को छापने के लिए देती थी।

—प्रूफो का काम तो आजकल नही होगा ?—सजय ने प्रेस के मालिक से जाकर पूछा।

—वही थोडा बहुत जो हम आप को देते हैं

—अनुवाद का ?

—वह आप करते नही।

—करूँगा।

—लेकिन आप जानते है

—जानता हूँ, वह आप उन्ह देते है जो ऐप्रूव्ड लिस्ट पर होते हैं, लेकिन वह ख़ुद तो अनुवाद करते नहीं

—सब ही औरो से करवाते है, जी, थोडे से पैसे दकर

—मै ने वही औरो से करवाने वाली बात कही है

—लेकिन उस के पैसे मुश्किल से एक रुपया प ना

—ठीक है

—और किताबो पर भी आप का नाम नही होगा

—इमारत पर कभी किसी मजदूर का नाम नही होता

सजय हँस-सा दिया। प्रेस के मालिक ने अग्रेजी की एक किताब सजय को देते हुए कहा—यह काम तो मैं ने पहले भी आप से कहा था

सजय ने उत्तर मे केवल किताब के पन्ने देखे, तीन सौ पच्चीस थे और मन म हिसाब लगाया, रोज आठ या दस पन्ने किये जा सकते हैं

—जरा लिखाई साफ हो पर, कोई बात नही, प्रूफ भी आप ख़ुद ही देखेंगे,

प्रेस के मालिक ने सरसरी सी आवाज मे सजय से कहा और फिर मशीनमैन को बुलाने के लिए चपरासी को भेजा।

सजय न बरामदे से गुजरते हुए करीम वाले हिस्से की ओर नजर डाली। वह चपरासी के साथ इधर ही आ रहा था।

'सलाम मियाँ' के जवाब म करीम न सजय क हाथ म किताब देखी और धीरे से उत्तर म कहा—सजय साहब, ख़ुदा से आखो का बीमा करवा चुके हैं या अभी करवाना है ?

सजय मुस्करा दिया, बोला—करीम मियाँ ! किसी दिन बीमे के उस एजेण्ट को लेकर आ जाना, बीमा करवा लूगा।



सजय को आज फिर यही अनुभव हुआ जो आज से तीन वर्ष पहले तब हुआ था जब पैसो की सख्त आवश्यकता पडने पर उस ने कुछ दिन सरकारी भाषणो का अनुवाद किया था। तब भी थोड़े से पन्ने लिखने पर रोज उस की उँगलियो मे पीडा होने लगती थी। आज भी वैसा ही हुआ। बस, कोई दस पन्ने ही लिखे थे कि दाहिने हाथ की उँगलियाँ ऐसी अकड गयी कि हाथ से कलम छूटने लगी।

सजय को अपना उपन्यास या कहानी लिखते समय ऐसा कभी महसूस नही हुआ था। उस ने एक एक दिन मे बीस बीस पन्ने लिखकर देखा था, कभी भी उँगलियो और कलम का साथ छूटता हुआ नही लगा था।

उस ने एक बार अपने शौक के लिए विश्व की कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ चुनकर उन का भी अनुवाद किया था, लेकिन तब भी उस की उँगलियो को कुछ नही हुआ था।

आज फिर उँगलियो म पीडा हुई, तो आधी रात के समय मन मे चढती धूप जैसा विचार आया—क्या केवल सरकारी भाषणो का अनुवाद करते समय ही पीडा होती है?

आज की किताब अपने देश के सरकारी भाषणो की नही थी, किसी और देश के सरकारी भाषणो की थी, लेकिन लगा—देश चाहे कोई भी हो, हर सरकार के भाषणो का आपस मे कोई गहरा सम्बन्ध है।

हर भाषण, जैसे अक्षरो का व्यापार हो—मनुष्य के मन को बेचता भी और खरीदता भी

—नही, सजय को लगा—मन को नही, केवल तन को और तन के द्वारा मनुष्य के वर्तमान को भी और भविष्य को भी बेचता और खरीदता हुआ

सो, आज की किताब, अक्षरो का व्यापार, एक ओर रखकर सजय एक काग़ज़ पर अपनी नयी कहानी के कुछ नुक्त नोट करने लगा, जो कितने ही दिनो से एक बादल की तरह उस के मन म घिर रहो थी

न जाने किस समय कागज हाथ से छूट गया, और मेज के नीचे गिर गया

उस ने झुककर कागज को उठाया, लेकिन देखा, कागज खाली है

उस ने फिर मज के नीचे देखा कि शायद यह वह कागज न हो, जिस पर वह कहानी के नोटस ले रहा था, लेकिन मेज के नीचे और कोई कागज नही मिला।

उस न फिर हाथ म लिये हुए कागज की ओर देखा कि उस पर जो कुछ लिखा था वह कहा गया

कुछ पता नही चल रहा था, इस लिए उस ने मेज का बिजली का लैम्प हाथ म उठाकर फिर मेज क नीचे देखा

एक कम्पन सा शरीर से गुजर गया—नीचे उस की आखा के सामन सारे अक्षर फश पर पडे हुए थे, ऐसे कि लगा, वह उँगलियो से एक एक अक्षर उठा सकता है

मेज के नीचे हाथ लम्बा करके वह अक्षरो को उठान लगा—छोटे, गोल और काले बीजो जसे अक्षर

हथेली को लैम्प की रोशनी के आगे करके देखा—सारे अक्षर एक-से थे, छोटे छोटे दानो के समान

बायी हथेली पर रखे हुए अक्षरो को उस ने दायें हाथ की उँगलियो से फिर टोह टोहकर देखा, लेकिन साथ ही लगा—बाया हाथ, जिस की हथेली पर वह अक्षर पडे हुए थे, बहुत पोला और गीला हो गया है

उस ने दायें हाथ की एक पोर से बायी हथेली को दबाकर देखा। हाथ सच मुच मिट्टी की भाति पोला और गीला था, इतना कि उस पर पडे हुए कितने ही अक्षर हथेली के भीतर खुभ गये

उस ने चौंककर बायें हाथ के अँगूठे स अपने दायें हाथ की हथेली को टोहा तो अँगूठे को लगा कि दायें हाथ की हथेली भी गीली और पोली है

उस न हैरान होकर बायें हाथ की हथेली पर जो बचे हुए अक्षर थे, वे दायें हाथ की हथली पर पलट दिये, और जब बायें अँगूठे से दबाकर देखा तो वह सारे अक्षर उस की दायी हथेली मे खुभ गये

साँसो को गीली-तर मिट्टी की सुगध आयी तो उस ने दोनो हाथ सूघकर देखे

लगा—दोनो हाथ मिट्टी के बने हुए हैं।

अब हाथो पर कोई अक्षर दिखाई नही देता था, दानो हथेलियाँ खाली थी

छाती म से एक भय उठकर उस के माथे की ओर गया—अब हाथो के बिना मैं कस लिखूगा ?

सजय के सारे शरीर म एक जीवित शरीर वाली हरकत थी—वह सोच रहा था, आँखा से देख रहा था, घबराकर दीवान पर भी बठा, फिर दीवान पर से उठा भी टाँगें पाव, बाहे, सिर—सब कुछ उसी तरह था—लेकिन हाथ ?

लगा—अगर वह हाथ हिलायेगा तो दोनो हाथ उस के शरीर से मिटटी की तरह थड जायेंगे

वह कितनी ही देर तक उसी तरह सहमा हुआ-सा खडा रहा। पर फिर उस ने एक बांह को यटका, यह देखने के लिए कि बाह से लगा हुआ हाथ गिर पडेगा या नही। लेकिन हाथ उसी तरह बाँह से लगा रहा। उस ने दूसरी बाह का भी झटककर देखा, उस बाह का हाथ भी उसी तरह कलाई से जुडा रहा

वह फिर हैरान होकर हाथो की ओर देखने लगा, लेकिन इस बार उस की आखें देखती रह गयी—हाथो म छोट छाट फूल उग रहे थे

विश्वास नही हुआ आखें झपककर उस ने फिर देखा—हाथो पर सचमुच बडे कोमल और लाल रग के फूल उग हुए है

पूरी हथेलियाँ फूलो से भरी हुई थी

उस ने फिर हाथो को सूघकर देखा—उस के हाथो से सिफ मिटटी की नही फूलो की भी महक आ रही थी

यह महक सजय के सारे माथे म फल गयी—आखें एक सुरूर म बन्द हो गयी—और नशे जसी उस सुगध म सजय के सारे अग अचेत हो गये

समय का ध्यान सजय को नही, पर सूरज को आया। इस लिए चढते सवेरे की रोशनी जब सजय की खिडकी मे से अन्दर आकर सारे कमरे मे फैल गयी, तो सजय चौककर जाग उठा

देखा—वह दीवान पर औधे मुह लेटा हुआ है।

उठकर देखा—सामने कमरे की वही दीवारें थी, एक दीवार के कोन मे वही उस की लिखने वाली मेज है, और मेज पर अभी तक रात वाला लम्प जल रहा है

उस ने जल्दी से अपने हाथा की ओर देखा—पर वह भी सारे जिस्म के अगो की तरह मास के हाथ है, मिट्टी के नही

उस ने मेज पर पडे हुए रात वाले उस कागज की ओर देखा जिस पर वह अपनी कहानी के नोट्स लिखता रहा था, कागज भी उसी तरह अक्षरो से भरा हुआ दिखाई दिया

सजय कितनी ही देर तक कमरे म चकित खडा रहा फिर खडा नही रहा गया, वह उसी तरह कमरे का खुला छोडकर, जल्दी से ऊपर जाने वाली सीढिया चढने लगा

ऊपर मीता का कमरा खाली सा दिखाई दिया, खयाल आया—शायद नानी माँ बाजार चली गयी होगी, और मीता नीचे बागीचे म वह तेजी से मुडने ही वाला था, जब कमरे की परली खिडकी की ओर से मीता की आवाज आयी—आइये।

—मीता !—संजय कमरे के अन्दर चला गया लेकिन उस का आश्चर्य शायद उस के चेहरे पर ऐसे लिखा हुआ था, मीता ने पास जाते हुए घबराकर उस की ओर देखा।

—मीता ! तुम्हें कुछ नहीं होगा, कुछ नहीं तुम बिलकुल ठीक हो जाओगी। —संजय ने एक अजीब उत्साह से मीता की ओर देखा।

वह मुस्करा सी दी, बोली—लेखकों के लिए कहानियां तो शायद आसमान से उतरती हैं आकाशवाणियां भी होती हैं।

संजय हँसता हुआ सा दीवान पर बैठ गया, कहा—आज ज़िन्दगी में पहली बार सचमुच आकाशवाणी हुई है।

—क्या ?

—तुम जिस दिन बागीचे में बेहोश हुई थी, मैं ने तुम्हें बताया नहीं कि उस दिन तुम्हें वहाँ केले के झुंड के पास पड़े हुए देखकर मुझे पहला खयाल क्या आया था

—क्या ?

—सिर्फ यह कि जैसे केले के पेड़ का एक बड़ा सा तना फूल समेत नीचे घास पर गिरा हुआ हो

—सच ?

—सच। तुम्हारे कपड़े केले के बड़े-बड़े पत्तों की तरह दिखाई देते थे, और

—और ?

—तुम्हारा चेहरा केले के पीले फूलों की तरह

संजय उत्साह में था, लेकिन मीता की आंखों में पानी सा आ गया

—समझी ?

—हां, सचमुच तने की तरह टूट चुकी हूँ

—लेकिन नहीं

—नहीं, संजय ! पेड़ से टूटा हुआ तना वापस धरती में नहीं लगता

—लगता है

मीता इधर दीवान के पास आकर, एक बांह दीवान पर रखकर फ़र्श पर बैठ गयी

—रात को मुझे एक अजीब सपना दिखाई दिया। समझ में नहीं आ रहा था कि यह सपना क्या है, लेकिन मैं ने फ्रायड की तरह खुद ही सपने को एनैलाइज़ कर लिया है

—कैसे ?

—रात को मैं पहले एक बड़ा थका देने वाला काम करता रहा, फिर उस से जी ऊब गया तो अपनी कहानी के नोटस लेता रहा न जाने किस समय मेरी

आँख लग गयी, सपने मे देखा—कागज पर से निकलकर सारे अक्षर मेरे हाथो मे आ गये मेरे दोनो हाथ मिट्टी के हो गये, और वह सारे अक्षर बीजो की तरह हाथो मे बीजे गये सुन रही हो ?

शायद मीता की आवाज भर आयी थी वह बोली नही उस ने सिर्फ 'हा' मे सिर हिला दिया

—और फिर मेरे देखते-देखते वह सारे बीज उग आये, और मेरे दोनो हाथ बहुत सुन्दर फूलो से भर गये

मीता ने हाथ आगे करके सजय का हाथ छुआ फिर सीधा करके उस की हथेली की ओर देखने लगी

मीता जिस दिन बेहोश हुई थी, उस दिन सजय ने उसे अपने हाथ का सहारा देना चाहा था, लेकिन मीता ने लिया नही था। आज यह पहली बार थी जब मीता ने उस का हाथ अपने हाथो से छुआ था। सजय के सारे शरीर मे एक झुर-झुरी सी आ गयी लगा—यह उसी तरह का कम्पन है जैसा रात को फूलो से भरे हुए हाथो को सूघकर आया था

सजय ने दूसरा हाथ भी आगे कर दिया कहा—फूल दोनो हथलियो पर उगे थे

मीता ने भर आयी-सी आखो से सजय की ओर देखा तो सजय ने मीता का हाथ दोनो हथेलियो पर रखते हुए कहा—देखो ! सपना सच हो गया है

—कसे !

—मेरी दोनो हथेलिया पर तुम्हारा हाथ एक सफेद फूल की तरह उगा हुआ है

—मीता से शायद आखो का पानी झेला न गया, उस ने अपना सिर दीवान की पट्टी पर टिका दिया।

—यह हथेलियो पर फूलो का उगना, केले के टूटे हुए तने के वापस लग जाने का चिह्न है

मीता हँस पडी—यही फ्रायड का एनलिसिस है ?

सजय भी मुस्करा दिया—सचमुच, आज फ्रायड जीवित होता तो वह भी यही कहता

मीता का सास खिच सा गया, बोली—अब मै फ्रायड बनकर दिखाऊँ ?

—किस तरह ?

—मैं इस सपने का एनलिसिस करूँ ?

—इस का सिर्फ यही एनैलिसिस है जो मैं ने किया है

मीता मुस्करा पडी—तो फ्रायड का यह मजूर नही है कि दुनिया मे कोई दूसरा फ्रायड भी हो सकता है

—नहीं मैं ने यह नहीं कहा

—फिर मेरा एनैलिसिस भी सुन लो

—अच्छा कहो !

—इस सपने का मतलब है कि हमारी जवान के अक्षर इन हथेलियों में से कहानियां और उपन्यास बनकर उगेंगे

—नहीं

सजय ने मीता के हाथ के नीचे से हथली खीच ली, कहा—मुझे यह एनलिसिस नहीं चाहिए

मीता न हाथ आगे करके फिर सजय के हाथ को छुआ, कहा—बड़े फूल खिलेंगे, सारी दुनिया देखेगी लेकिन मैं नहीं होऊंगी मुझे अभी देख लेने दीजिये

सजय ने मीता का हाथ ऊपर उठाकर होठों से लगा लिया, मुह से निकला —और कोई फल नहीं चाहिए सिफ इस हाथ का फूल—तुम्हारे हाथ का फूल मीता !



एक दिन दोपहर का समय था जब नानी माँ नीचे आयी, सजय के कमरे म, और बोली—तुम्हारे लायक एक काम है, बेटा ! डरते-डरते आयी हूँ

सजय वही अनुवाद वाला काम कर रहा था, कलम जिस अक्षर पर थी उसे उसी तरह वहीं छोडकर उठ बैठा—नानी मा ! मुझ से कोई भी काम कह दिया कीजिय, किसी समय भी बीच म यह डरने वाली बात मत कहा कीजिय

—नहीं, बेटा ! तुझ से नहीं, मीता स डरती हूँ। वह पढ़ते-पढ़ते अभी सोयी है, तो मैं चोरी से आ गयी हूँ

—कहिये !

—मुझे टेलीफोन करना नहीं आता यह देखो। इस कागज़ पर नम्बर

लिखा हुआ है

सजय न नानी मा के हाथ से कागज़ लिया, देखा, मिस्टर पुरी का लेटर-फाम था, जिस पर घर का और कारखाने का, दानो नम्बर लिखे हुए थे।

—तुम मेरे साथ चलो तो, बाज़ार म कई दुकाना पर टलीफोन लगे हुए है, बस तुम म्बर मिला देना, बात मैं ख़ुद कर लूगी

सजय को फिक्र-सा हुआ कि मीता शायद पहले से ज्यादा बीमार है। पूछा—वहाँ से किसे बुलाना है?

नही, बेटा! जो आप आकर खर खबर भी नही पूछत, उन्ह बुलाकर क्या करना है तुम न कभी देखा है? किसी ने बात पूछने का झूठमूठ भी इधर का रास्ता नही पकडा नही तो आदमी लोकाचार के लिए ही

सजय को लगा, उस ने नानी-मा की किसी बहुत दुखती रग को छू लिया है, वह न जाने क्या कहना चाहती हैं जो मीता से भी छुपाकर कहना चाहती है

—है तो मर के मिटटी होने वाली बात, पर क्या करूँ?—नानी मा ने कहा तो सजय ने उन्ह बठने के लिए कहकर कहा—फिर मुझे बता दीजिये जो कहना है, मैं जाकर कह आता हूँ, आप यही बठिये

—नही बेटा! तुम अपने मुह से क्या कहोगे वह दस तरह के सवाल पूछेंग—भई आप कौन हैं

सजय को इस बात का खयाल नही आया था, लगा, नानी माँ ठीक कह रही हैं

—तुम्हारे पास साइकिल है न, मुझे पीछे बिठा लोगे? पदल जाने मे बहुत वक्त लग जायेगा। और अगर हमारे पीछे वह जाग गयी

नानी-मा को जो मीता तक की चोरी से कहना है, सजय को उस का अनुमान सा हुआ, कहा—जो मीता नही चाहती, नानी-मा वह बात जाकर नही कहनी चाहिए।

—लेकिन करूँ क्या, बेटा! अगर मेरे अपने पल्ल कुछ होता

नानी मा ने सिर पर लिये हुए दुपटटे का कापते हुए हाथो से किनारी की तरफ स फैलाया, कहा—इस पल्ले मे मुई किस्मत ने छेद कर दिये हैं, नही तो आज लडकी को जसे उस न धक्का दे दिया है, मैं अपन घर न ले जाती?

सजय ने नानी मा को बाहो मे भरकर दीवान पर जसे ज़बदस्ती बिठा दिया, कहा—जाकर पैसो की बात करनी है?

—हा बेटा! मुह जलता है ऐसी बात करते लेकिन उधर से डॉक्टर कहता है, रोज़ इतने इतन फलो का रस दो कहा से लाऊँ दीवार पर जलान की छिपटिया रखने से सिर पर छत नही पड जाती।

नानी मा की आवाज टूट गयी। वह जैसे सजय के आगे नही, किस्मत के

आगे बिलख रही हो—आग लग जाये उस के लाखो को, मेरी लडकी के लिए कुछ नही रहा उस के पास कहता था, हर पहली तारीख को मैं खुद ही वहाँ भेज दिया करूँगा आज पन्द्रह दिन ऊपर हो गये हैं

सजय जिस दिन अनुवाद वाला काम लेने गया था, उसे अपने भीतर कुछ लगा था, वह जो उस ने अपने होठो से अपने कानो को भी नहीं कहना चाहा था, लेकिन इस समय लगा, उस के कान वही बात नानी-मा के मुह से सुन रहे है

—चलो, बेटा ! उठो लेकिन आकर लडकी को कुछ मत बताना, वह मुझ पर गुस्से होगी हाथो म सोने की एक-एक चूडी है, कहती है—यही बेच दो

नानी मा दीवान से उठ गयी, तो सजय ने उन के कन्धे पर हाथ रखकर उसे दरवाजे की ओर जाने से रोका, कहा—चलिये, फिर मा-बेटे एक इकरार करें

नानी मा उस के मुह की ओर देखने लगी, सजय ने कहा—अभी आप ने कहा था कि मैं आप की बात मीता को न बताऊँ, कहा था न ?

नानी मा ने हाँ म सिर हिलाया। सजय ने कहा—न मैं आप की बात मीता को बताऊँगा, न ही आप मेरी बात मीता को बतायें !—और सजय ने अलमारी मे से तीन सौ रुपये निकालकर नानी माँ के आगे रखते हुए कहा—यह हमारा माँ-बेटे का इकरार हुआ

—लेकिन, बेटा !—नानी माँ की आवाज गले के नीचे उतर गयी शायद गले मे नही, उस की अपनी छाती म।

वह छाती मे से उठती हुई हूक की तरह कहने लगी—देखो ! मेरी किस्मत ! मेरी इकलौती बेटी थी, वह भी अपने आदमी के हाथो रिस रिसकर मर गयी मैं ने इस लडकी को गले से लगा लिया, मूल से ज्यादा ब्याज प्यारा होता है और देखो ! आज वह भी

सजय को कभी कभी लगा करता था कि कोई बेटा माँ की जवानी को सुखी नही कर सकता, उस के हिस्से म सिर्फ माँ का बुढापा आता है, जिसे वह चाहे तो जी भरकर सुखी कर सकता है और उस की छाती म एक हसरत उठा करती थी कि वह समय उस की जिन्दगी म क्यो नही आया ? आज सामने नानी-माँ की ओर देखा तो उस की उस हसरत को जसे साँस आ गया हो, बोला—नही, नानी-माँ, रोइए नही।



शाम का समय था जब सजय ने अनुवाद से थककर सारे कागज़ परे रख दिये, और अकेले बैठकर ह्विस्की पीने लगा

कानो म मीता की आवाज सुनाई दी, लगा—ह्विस्की सचमुच एक करामात होती है।

पर आवाज़ ह्विस्की की करामात नही थी, मीता सचमुच दहलीज़ से अन्दर आकर बिलकुल पास मे खडी हुई थी।

—डॉक्टर के पास गयी थी।—मीता ने कहा।

सजय ने दीवान से उठकर मीता से बैठने के लिए कहा, पर वह बैठी नही, ह्विस्की के गिलास की ओर देखने लगी

—डॉक्टर न क्या कहा है ?

—यही कि ह्विस्की मत पीना।

सजय हस पडा—अच्छा है, डाक्टर न आज तुम्हारी जगह मुझे मरीज़ बना लिया

मीता का चेहरा न जाने किन चिताओ म घिर गया, बोली—सच कह रही हूँ, मैं जन्म से ही ह्विस्की से परिचित हूँ

—अच्छा, ह्विस्की की घुटटी ली थी ?—सजय हँसने लगा।

—ह्विस्की की नही, पर इस के अजाम की घुटटी ली थी।

मीता दीवान पर बैठ गयी, कहने लगी—यही ह्विस्की थी, जिस के लिए मेरे पिता न मेरी मा की जिदगी गिरवी रख दी थी

सजय ने मीता से आज तक कभी कुछ नही पूछा था, अब मीता खुद कुछ बता रही थी तो सजय ने अनायास पूछ लिया—सच मीता ! तुम जो हो जा थी, वह ऐसी कैसे हो गयी ? मेरा मतलब है—तुम

—समझ गयी, यही न कि पसो के लिए कम बिक गयी ?

—मैं ये शब्द नही कह सकता

—लेकिन यह सच है

—अगर सच है तो क्यों ? क्यों ?

—बता तो रही हूँ मेरे पिता ने मेरी मा की ज़िन्दगी ऐसी चिंताओं के पास गिरवी रख दी थी कि वह फिर कभी छुड़ा न सका माँ सचमुच फिनों के पास गिरवी रख दी गयी थी

संजय को कुछ कहना बहुत कठिन लगा, वह केवल मीता की ओर देखता रहा।

—मीता ने ही आगे कहा—सो, मा के बाद मेरी बारी थी लेकिन ब्याह तो चीज़ को गिरवी भी नहीं रखता जो कभी छुड़ाया भी जा सके सो, उस ने मुझे बेच दिया यह सब कुछ ह्विस्की का नतीजा है, संजय ! इसी लिए कह रही हूँ

संजय के हाथ का गिलास अभी हाथ में ही था, उस ने मेज पर परे रख दिया।

—इकरार कीजिये, नहीं पियेंगे।

—एक शर्त पर।

—क्या ?

—कि एक बार यही बात मुझ से रोज़ कह दिया करोगी हमेशा

—अगर हर रोज न कहूँ ?

—जिस दिन नहीं कहोगी, उस दिन पीऊँगा

मीता ने संजय की कही हुई शर्त के मर्म को समझा, आँखें नीची कर लीं, जैसे ज़िन्दगी को उलाहना दे रही हो कि इस मासूम सी बात को कहने के लिए भी तू मुझे मोहलत क्या नहीं दे रही है—

—देखो !

मीता ने संजय की ओर देखा, लेकिन हारी हुई-सी आंखों से।

—तुम ने कहा था कि जो कुछ ब्याह जैसी चीज़ के आगे गिरवी पड़ जाता है, वह छुड़ाया नहीं जा सकता मैं इकरार करता हूँ, वह छुड़ा दूंगा, किसी भी कीमत पर

और संजय ने झुककर दीवान पर बैठी हुई मीता के होंठ चूम लिया। यह अचानक हो गया था, इस लिए मीता ने घबराकर संजय की ओर देखा, कहा—फिर कभी ऐसा मत कीजियगा।

संजय को लगा—मीता के शब्दों से मन को कहीं चोट लग गयी है उस जगह पर जहाँ नहीं लगनी चाहिए थी।

—मैं भूल गया था। —संजय के मुंह से आधा सा यह वाक्य निकला, और वह चुप रह गया।

—बीमारी कोई भूलने की चीज़ होती है ?

मीता न कहा तो सजय न एक अजीब तसल्ली के साथ उस की ओर देखा।

—आपन गलत समया। मरी वफ़ा किसी कानून से नहीं है दिल स है जिन्दगी से थी, लेकिन उस न तोड दी

—मीता!—सजय की आवाज जि दगी क कण-कण म उतर गयी—तुम न क्या समझ लिया है कि तुम जी नही सक्ती हो तुम्ह जीना पडेगा

—हमशा चाहती थी कोई यह कह

—मैं कह रहा हूँ

—पर, अब बहुत देर हो गयी है।

—नही नही नही

—अब और कुछ नही, एक ही चीज मागन का समय है

—क्या?

—कह दू? जो चाहता हू?

—बोला, मीता! मेरी जान माग लो

—अगर अपनी जान अपने पास बची होती तो जरूर यही मागती यह माग सकती तो मुये दुनिया से और कुछ नही चाहिए था

—मीता!

—लेकिन अभी भी एक चीज मागने का समय बाक़ी है मेरा जी चाहता है मरा कफ़न और किसी के हाथ का न हो, सिर्फ़ तुम्हार हाथ का सजय!

आज पहली बार मीता के मुह स सजय के लिए तुम' निकला शायद मुह स नहीं, रूह से! जसे एक रूह को पास बिठाकर दूसरी रूह न बात की हो!

सजय को पहली बार एक दरिया का दूसरे दरिया स मिलन जसा एहसास हुआ। बीत हुए दिना की अपनी प्यास याद आ गयी, और वह तडप जब एक दिन उस न काफ्का को सम्बोधन करके कहा था—यार काफ्का! तुम जानत हो कि एक दरिया का जो प्यास लगती है वह दूसरे दरिया की होती है। राहगीरो क मिलन स क्या होता है जब तक दरिया से दरिया न मिले और सजय ने आज काफ्का की जगह यह बात मीता को सुनायी।

मीता बहुत दर तक चुप रही फिर कहने लगी—लेकिन, सजय! एक रगिस्तान है जा मरे चारो ओर फला हुआ है और मैं उस से छिपकर एक कमरे मे पडी हुई हूँ न जान किस दिन, सवेरे शाम, किसी भी समय वह मेरे कमरे मे आ जायगा



शाम के पांच बजे का समय था जब संजय ने अनुवाद वाले काम की अंतिम पंक्ति लिखी। उठकर एक नजर लिखे हुए कागज़ों के ढेर की ओर देखा, और लगा—आज रात उस का कमरा इन कागजों के शब्दाडम्बर से मुक्त होकर सोना चाहता है

संजय के हाथ के सिगरेट के धुएँ से अचानक एक और धुआँ भी निकला खुदाया! कभी हमारी धरती भी उन भाषणों के शब्दाडम्बर से मुक्त होकर सोयेगी?

उसी शाम को संजय ने सारी मेहनत जाकर प्रेस के मालिक को सौंप दी, पारिश्रमिक लिया, रसीद दी, और जब उठने लगा, प्रेस के मालिक ने बैठने के लिए कहा।

—और काम मिल सकता है?

—बहुत बड़ा अगर करें तो

—करूँगा

—लेकिन अनुवाद का नहीं है। वह भी मिल सकता है, लेकिन उस से बड़ा काम है, हज़ारों का

हज़ारों के नाम पर संजय के मन में संदेह उत्पन्न हुआ, लगा—जिस दिन मेहनत का मूल्य पेट भर रोटी देगा, वह समय अभी नहीं आया। यह ज़रूर कोई और समय है। लेकिन कहा कुछ नहीं।

—एक काम दिलवा सकता हूँ, पैसे भी आप की मर्ज़ी के, जितने चाहें।—प्रेस के मालिक का स्वर कुछ इतना मेहरबान लगा कि संजय के माथे की नस इस मेहरबानी से खिंच-सी गयी।

—एक किताब लिख दीजिये—वह कह रहा था कि संजय को लगा कि आज फिर उस का नाम किसी जाली नाम की कब्र में डाला जाने वाला है। इस लिए उस के होंठों के पास एक हँसता हुआ-सा बल पड़ गया। मुँह से निकला लेकिन वह छपेगी किसी और के नाम से?

—नहीं, नहीं, आप के नाम से छपेगी, सजय कुमार के नाम से।
—मैं ने, नया उपन्यास लिख लिया है वह
—नहीं, नहीं, उपन्यास नही
—फिर?
—एक धार्मिक सम्प्रदाय है, लेकिन उन के पास पैसा बहुत है उस सम्प्रदाय के गुरु के पास लाखो रुपये हैं वह चाहता है उस पर किताब लिखी जाये
सजय हँस पडा—क्या लिखू? उस के चमत्कारो पर?
प्रेस का मालिक भी हँसने लगा—चमत्कारो से रहित भी भला कोई गुरु होता है! बस जो वह बताता जाये आप चुपचाप लिखते जाइये
—यह चुपचाप वाली बात बहुत बढिया है
—और क्या। क्या मुर्दे देखने आयेंगे कि सच क्या है और झूठ क्या है
—वह मुझे भी नहा देखना है
—आप देखकर करेंगे भी क्या, बस दस हजार रखवाइये और आँखें मूद कर लिख दीजिये। दस ही नही, चाहे तो बीस हजार रखवा लीजिये।
सजय को लगा—न कभी इस जैसी रुलाई आयी है, न कभी इस जैसी हँसी। कहा—लेकिन आँखें मूदकर अक्षर कैसे देखूगा?
प्रेस का मालिक कुछ देर तक सजय की ओर देखता रहा, फिर कहने लगा—आप को एक बात बताऊँ, सजय साहब! कई काम आँखें मूदकर ही होते हैं। ये मशीनें जो चल रही हैं रात होने से पहले ही रुक जायें अगर हम बहुत-से काम आँख मीचकर न करें। कई बेकार किताबें छापते हैं अफसरो की, नही तो वह खाक राइटर हैं? बस, सौ पचास जितनी वह माँगते है, देकर, बाकी कबाडी को उठवा देते हैं। कई सीधी हथेली पर पैसे लेते है, कई उलटी पर, हम क्या जैसे कह कर देते हैं
प्रेस के मालिक ने पहले कभी सजय से अपनी निजी बाते नही की थी। आज कुछ की तो सजय को लगा—इनसान कुछ भी करे, वह चाहे कितना ही बडा व्यापारी क्या न हो, उस से भी कभी कभी मन का बोझ नही उठाया जाता। उसे प्रेस के मालिक के प्रति कुछ सहानुभूति हो गयी, उस के रोजगार की मजबूरी के कारण नही बल्कि इस लिए कि वह गलत ठीक की पहचान कही बचाकर रख सका है।
वह बता रहा था—और जिन की चलती है वह अपनी किताबें लोगो को जबदरती तो नही पढवा सकते, लेकिन स्कूलो, कालेजो मे लगवाकर, बच्चो को पढवा देते है। जबदस्ती उन के गले से नीचे उतरवा देते है।
कुछ क्षणो के लिए सजय के मन का दर्द प्रेस के मालिक से साझे का सा हो

गया, मुह से निकला—लेकिन बच्चो का भविष्य

—ऐसी तसी जो बच्चो के भविष्य की, उस की किसे चिता है

सजय के मन म मीता के शब्द घूम गये—मेरे पिता ने मरी मा की जिदगी चिताओ के पास गिरवी रख दी थी। मन ही मन इस समय मीता से कहा—देखो, मीता ! किस किस ने किस-किस का क्या-क्या गिरवी रखवाया हुआ है देखो, हमारी दुनिया मे लोग आने वाली नस्लो का भविष्य भी गिरवी रख देते ह

—क्या साच रहे है ?

—कुछ नही।

—फिर किताब लिखेगे ?

—नही लिख सकूगा।

—सोच लीजिये।

—अनुवाद का काम है तो कर दूगा

प्रेस के मालिक ने एक छोटी सी किताब दे दी। साथ ही कहा—यह तो गुजारा करने वाली बात है।

सजय हँस दिया, किताब ले ली और बाहर आकर बराबर के मशीन वाले हिस्से म करीम को देखने लगा।

करीम बाहर नलके पर हाथ पाव धो रहा था। उस ने दूर से ही सजय को आवाज दी और पास आकर उस के हाथ म नयी किताब देखकर फिर पुरानी बात को दोहराया—सजय साहब ! खुदा से आखो का बीमा करवा चुके हैं या अभी करवाना है ?

सजय ने करीम से हाथ मिलाते हुए कहा—मैं ने तो, करीम मियां ! तुम से कहा था कि भई एक दिन बीमा के उस एजेण्ट को ले आना, मैं बीमा करा लूगा तुम लाये ही नही

—अब कहा घर की तरफ चले है या ?—करीम न दरवाजे क पीछे टँगे हुए कपडे लेते हुए और शरीर से मशीन के तल स सने कपडे उतारते हुए पूछा।

—सीधे घर।

—फिर मैं चलता हूँ आप के साथ।

—मैं तुम स कहने ही वाला था।

—आपने मुह पर बातो की टाटी जो लगा दी है, कुछ दिन हो जाते हैं आप स बातें किए हुए तो, ईमान से, नशा टूटन लगता है।

करीम न भी अपनी साइकिल निकाल ली और सजय न भी। रास्ते म सजय न करीम से कहा—मियां ! तुम अगर मोड पर जरा ठहर जाओ तो मैं कुछ दारू ले आऊँ।

—मुझे तो जी अस्पताल वालों ने परहेज़गार बना दिया है। आप पीना चाहें तो आप की मर्ज़ी। करीम ने कहा तो संजय ने साइकिल नहीं रोकी, कहा—वैसे तो मुझे भी किसी ने परहेज़गार बना रखा है?

—चलिये फिर चलकर चाय पीते हैं।

रास्ते में करीम ने अपने मन की भड़ास निकाली—संजय साहब! लोग परहेज़गारों की बड़ी इज़्ज़त करते हैं, लेकिन जी अगर किसी ने घूंट-दो घूंट पी ली या नहीं पी, तो लोगों को उसी की इतनी फ़िक्र क्या हो जाती है? जिन बातों के लिए परहेज़गार होना चाहिए, उन से तो कोई होता नहीं।—और करीम ने बात सुनाई कि प्रेस के मालिक का सरकार-दरबार में अच्छा रसूख है। उसे मशीन के लिए लाइसेंस आसानी से मिल जाता है, उसे चाहे नई मशीन की जरूरत न भी हो, वह लाइसेंस लेकर आगे बेच देता है।—और वह जैसे उदास होकर बोला—मेहनत का मोल तो सुना था जी, लेकिन अब तो कहावतें भी झूठी पड़ गयी हैं, अब तो रसूख का मोल होता है उँगली हिलाने का

संजय मुस्करा दिया तो करीम दुख से कहने लगा—सरकार भी अंधी होती है जी! आँख खोलकर कभी नहीं देखती कि भई कागज़ किसे दिये हैं और मशीनें कहाँ पहुँच गयी हैं! अगलों ने बस दस्तख़तों के लिए उंगली हिलाई और हज़ारों के नोट जेब में भर लिये

—करीम मियाँ! यह बात तो अल्लाह हुज़ूर ने ख़ुद चला दी है फिर आदमी बेचारा क्या करे।—संजय ने कहा और हँसने लगा। करीम बहुत परेशान हुआ, तो संजय ने कहा—देखो मियाँ! अल्लाह को भी लाइसेंस मिला था आदमी बनाने का, लेकिन उन ने भी लाइसेंस आगे बेच दिया—किसी कारीगर को बेचना तो कोई बात थी, वह आदमी गढ़-गढ़कर बनाता लेकिन उस ने इस की भी तमीज़ नहीं की, न जाने किस अनाड़ी को दे दिया और वह रोज़ ठेके पर आदमी गढ़ने लगा

करीम को जैसे ही हँसी आने लगी, तो सामने सड़क पर से उस का ध्यान उखड़ गया। संयोग से संजय की साइकिल न आगे थी न पीछे बिलकुल बराबर में थी उस ने अपनी साइकिल की ब्रेक पर हाथ रखते हुए करीम की साइकिल के हैंडल को भी हाथ से थाम लिया तो करीम के होश लौटे। सामने से साइकिल छूता हुआ एक बच्चा दौड़ लिया तो करीम ने उस के बच जाने पर चैन की साँस ली, कहा—बच गये जी! नहीं तो आज अल्लाह के माल की कटौती हो जाती

संजय ने कमरे में पहुँचकर चाय बनायी। सवेरे के चाय के गिलास अभी तक धोये नहीं गये थे, सो करीम गिलास धोने लगा, साथ ही बताने लगा—आज तो जी मैंने हाथों को भी दो बार साबुन से धोया था, बड़ा कुफ़ तोला आज इन हाथों से

—मैं नही मानता।

—क्यो जी ?

—तुम मियाँ ! इन हाथो से कोई कुफ्र नही तोल सकते।

—लेकिन स्याही तो मली थी

और करीम ने सजय को बताया कि आज एक नयी पत्रिका प्रेस म छपने आई है जिस म कितने ही प ने सजय के खिलाफ गालियो जैसी बातों से भरे हुए हैं।

सजय चाय पीते हुए हँसने लगा—फिर तो लगता है मैं सचमुच कोई बडा राइटर हूँ, नही तो, करीम मियाँ ! किसी को क्या मुसीबत पडी थी कि कागज के पैसे भी खच करता और छपवाई के भी और अपने पास से पसे भी खच करके गालिया देता

—वह कोई है बडे पैसे वाले, जी ! लेकिन यह समझ मे नही आता, भई पसा है तो कोई अच्छी-अच्छी किताबें छाप लो, कागज भी वही लगगा और छपाई भी वही लगगी, व्यथ म थूक बीजने म लगे हुए है

—करीम मिया ! अगर तुम्हारे पास पसा होता न, तो बस मजा आ जाता

—अल्लाह कसम, आप ने मेरे दिल की बात कह दी। अब्बा मरहूम जि दा थे जब मैं ने उन से कहा था—मैं उर्दू के चार अक्षर पढ ही लेता हूँ, मुझे किस्सों की एक दुकान खुलवा दो। जी चाहता था, भई किस्सो को खूबसूरत ढग से छापूगा भी और बेचूगा भी वाहवा वारेशाह की हीर थी पीलू का मिर्जा, बुल्हेशाह की काफिया, शाह हुसन की काफिया, मुलतान बाहू के दोहरे

फिर तो मिया ! एक दिन मैं भी अपना उप यास उठाकर तुम्हारे दरवाजे पर ही जाता

—बस जी, मौज ही हो जाती फिर तो, आप भी मिल जाते तो मेरा काम थोडी पढाई स भी चल जाता

लेकिन जान, मियाँ ? तुम ने वह कसे पढ लिया जो मेरे खिलाफ लिखा था ?

—लगा-लतूरी करने वाले कम्पोजीटर जो हैं

—हा, सच ?

—मेरा जी चाहता है कि भई उस अमीरजादी से पूछू कि तुम ने मोटर चलाना तो सीख लिया लेकिन लिखना नही सीखा है ?

—कौन ?

—वही जा इस पत्रिका की मालिक है, जी ! एक बार आयी थी प्रस म। अक्सर ता उस का दुमछल्ला ही आया करता है, वही महरा, जिसे उस ने पत्रिका का एडीटर बनाया हुआ है

—ए०सी० महरा ? वह पत्रिका का एडीटर है ?

—न जान क्या राख मिट्टी है, लिखना तो उसे आता नही।

—और पत्रिका का मालिक ?

—कोइ चौधरी चौधरी है।

सजय को जोर से हँसी आ गयी, इतनी कि करीम मियाँ भी हैरान रह गया। पूछने लगा—जानते ह उसे ?

—हा मियाँ ! जानता हूँ।

—फिर उसे आप से क्या दुश्मनी है ?

दुश्मनी यही कि उस ने एडीटरी करने के लिए मुझ से कहा था और मैं ने इनकार कर दिया था।

—लेकिन, सजय साहब ! उस के पास पैसा तो बहुत मालूम होता है। आप मान जाते तो पत्रिका भी अच्छी हो जाती और रोजगार भी बन जाता।

—नहीं, करीम मियाँ ! तुम उस औरत को नही जानते

—समझ गया जी।

फिर सजय ने करीम को आज की प्रेस वाली बात सुनायी, किसी गुरु के चमत्कारों पर एक किताब लिखने वाली। तो दस हजार, बीस हजार की बात सुनकर करीम ने कहा—लेकिन एक बात है, जी ! अगर एक बार आप कडवा घूट भर लें, तो फिर चाहे सारी उम्र अपनी मर्जी का आराम से बैठकर लिखते रहें।

—करीम मिया ! कडवा घूट भरने लगता हूँ तो फिर इसी से आदमी टूट जाता है।

—टूट तो जाता है जी

—सच-सच बताओ, तुम्हें साबुत सजय नही चाहिए ? तुम्हारी तरह और भी कोई है जिसे टूटा हुआ नही, साबुत सजय चाहिए

—और कौन ?—करीम आज पहली बार चकित हुआ।

—उस से मिलोगे ?

—अगर आप मिलायेंगे तो

—उठो तब !

सजय करीम को ऊपर मीता के कमरे म ले गया।

पिछले दिनो मीता ने सजय का छपा हुआ उपन्यास पढ लिया था, और परसो से वह नया लिखा उपन्यास पढ रही थी जो अभी छपा नही था। सो, अचानक सजय को कमरे म आये हुए देखकर उस के मुह से उपन्यास के पात्र का नाम निकल गया—इकबाल !

वह कुछ और कहने वाली थी लेकिन सजय के साथ किसी और को देखकर चुपचाप दीवान से उठकर खडी हो गयी।

—यह मेरे दोस्त है, करीम कादिर।—सजय ने मीता को बताया और

करीम से कहा—यह मेरी मुमताज है, करीम मियाँ !

—सुब्हान अल्ला ! करीम ने बड़े अदब से मीता को सलाम किया और सजय की ओर देखते हुए बोला—इलाही सूरतें खुदा अपने हाथों से बनाता है ।

मीता ने मुमताज शब्द का अर्थ समझने के लिए सजय की ओर देखा, लेकिन सजय ने उस की ओर नहीं, रसोई की ओर देखते हुए आवाज दी—नानी माँ ! चाय पिला दीजिये बढ़िया सी इलायची वाली ।

नानी माँ कोई एक मिनट के बाद रसोई से बाहर आयी। करीम ने दीवान से उठकर दुआ-सलाम की, और वह प्यार से भरकर बोली—अभी आयी, बेटा !

—करीम भाई ! आप ने इन का नया उपन्यास पढ़ा है ?—मीता सहज मन फिर दीवान पर बैठ गयी ।

करीम को जिन्दगी में पहली बार अपने बे-इल्म होने पर पछतावा हुआ, लेकिन हँसकर उस ने कहा—हम ने तो सिर्फ अपने यार को पढ़ा है और कुछ नहीं पढ़ा है ।

—जो करीम ने पढ़ा है मीता, वह किसी और ने नहीं पढ़ा है। अगर तुम करीम के मुँह से बुल्हेशाह सुनो—सजय ने कहा तो मीता के चेहरे पर एक चमक-सी आ गयी, बोली—फिर नानी-माँ को बुलाओ, वह तो दीवानी हो जायेंगी। मेरे नानाजी बहुत अच्छी काफ़ियाँ गाते थे, वह तो मुरीद थे बुल्हेशाह के सुलतान बाहू भी गाते थे जिस की एक हूक से सारा गाँव गूँज उठता था

—क्या बात है जी हजरत बाहू की।—करीम का मन उछल पड़ा, मुँह से निकला—फिर तो जी आप सब ही रूह वाले लोग हैं

नानी-माँ चाय ले आयी, लेकिन रखकर जाने लगी तो मीता ने उन्हें जाने नहीं दिया, कहा—आज करीम भाई हमारी मुराद पूरी करने आये हैं, यह सुलतान बाहू का कलाम गाते हैं ।

—तुम्हारे नानाजी गाया करते थे।—नानी माँ ने भरे मन से मीता से कहा, लेकिन एक हसरत से करीम की ओर देखा ।

चाय पीकर करीम ने बोल उठाये

अलफ़ अल्लाह चम्बे दी बूटी मुर्शद मन विच्च लाई हू
नफी असबात दा पाणी मिलिया हर रगे हर जाई हू
अन्दर बूटी मुश्क मचाया, जाँ फुल्लण पर आई हू
मुर्शद बाहू हर दम जीवे जिस एह बूटी लाई हू[1]

---

1 अल्लाह चम्बे की एक बूटी है मुर्शद ने मन में लगाई है
हर रग में हर जगह पर हाँ और नहीं का पानी मिला,
बूटी जब फूलने पर आयी तो मेरा अन्तर महक से भर गया
बाहू कहता है मेरा मुर्शद हर समय जाय जिस ने यह बूटी लगायी है ।

नानी मा की आखो से टप-टप आसू बहने लगे, और सजय ने आज पहली बार मीता के मुख पर वह वज्द देखा जो अब मीता की उम्र के अपने वर्षो को भी भूल गया था

करीम मिया ने मन की लहर मे उस के साथ आर तुके भी जोड दी

रांझण नू मैं ढूढण चल्ली, मैनू राझण मिलिया नाही
रब्ब मिलिया, मैनू राझा ना मिलिया, रब्ब राझ वरगा नाही[1]

मीता को नानी मा का अस्तित्व भूल गया, करीम भाई का भी और शायद अपना भी। उस ने सजय को देखते हुए मन का न जाने कौन सा आलम आखो म डाल लिया, सजय को लगा—जब ईश्वर भी किसी के अस्तित्व के सामन छोटा हो जाता है, उस न वह क्षण जो लिया है

करीम को समय का होश हुआ, और वह मीता को सलाम करते हुए दीवान पर से उठ खडा हुआ।

—आज मालूम नही, करीम भाई! आप मुझे क्या दे चले है।—मीता ने भरी हुई आखो से करीम की ओर देखा, और कहा—ऐसे लगता है जस मुझे अपना आप खोजकर दे चले है।

सजय करीम को लेकर नीचे अपने कमरे म आया तो उस का मन वह निकला। करीम को दीवान पर बिठाकर वह परो के बल नीचे फश पर बैठते हुए करीम की गोद म सिर रखकर गे पडा, सुबककर बोला, यह जो कुछ मिला है, करीम मिया! अभी खो जायेगा। जो भी मुमताज होती है, वह दुनिया की चीज नहीं होती।

करीम ने सारा दु ख जाना, समझा, बोला—खुदाव द! देखो, अपने आदम के आसू, जो तुम से भी पोछे नही जाते



सजय कितनी ही देर तक खिडकी से दिखने वाले आसमान के उस टुकडे की

1 मैं रांझ को ढूढने चली मुझे राझा नही मिला,
खुदा मिला मुझ रांझा नही मिला लेकिन खुदा राझे जसा नही है।

और देखता रहा जहाँ एक क्षण पहले मीता ने उँगली में मस्त किया था—

—सजय ! विश्वास करोगे ?—उसने पूछा था ।

—हाँ, करूँगा, मीता !—सजय ने कहा था । वह नहीं जानता था किस बात पर, और क्या । पर विश्वास न करने से विश्वास कर लेना ही आसान लगा था । उस से मीता का चेहरा भी कुछ सुर्खी हो गया लगा था और उस ने कहा था—यहाँ नील बादल में मैं होऊँगी

और सजय ने देखा—सामने बादल का एक नीला टुकड़ा है और आसमान में एक सफेद पक्षी उस बादल की दिशा में उड़ रहा है

फिर लगा—वह उड़ता हुआ पक्षी बादल के बीच में जाकर रुक गया है—एक ही जगह पर, उसी तरह सफेद परों को फैलाये हुए—और बादल के नीले रंग में से पक्षी के परों का सफेद रंग और उघड आया है

पक्षी उसी तरह एक ही जगह पर ठहरा हुआ है फिर ढलते हुए सूरज की लाली से बादल का वह टुकड़ा भी लाल हो गया, पक्षी के पंख भी

नानी-माँ की चीख निकली, लेकिन सजय की गोद में एक खामोशी हमेशा के लिए पड गयी जैसे इस समय मीता का सिर गोद में पड़ा हुआ था

और फिर रात की स्याही आसमान की लाली को दोनों हाथों में पोंछने लगी



अन्तिका

कुछ आवाजे, शायद शताब्दियों से हवा में ठहरी हुई थी, सजय के कानों में पड़ी

—हे बेटा ! अगर तुम इस महायुद्ध को देखना चाहो तो मैं तुम्हे दिव्य दृष्टि दे सकता हूँ

—हे ब्रह्मदेव ! वेदव्यास ! इस युद्ध में मेरे ही कुल का नाश होगा, इस

लिए मैं इसे आँखो से नहीं देखना चाहता। मैं धृतराष्ट्र आँखो से हीन ही रहना चाहता हूँ। मैं केवल युद्ध का समाचार सुन सकू ऐसी कृपा कीजिए।

सजय के कान चौक गए, एक आवाज कान म पडी—हे सजय ! तुम युद्ध की सम्पूर्ण प्रकट, अप्रकट, और मन की बात जानने म भी समर्थ होगे मैं तुम्हे दिव्य दृष्टि देता हूँ, तुम ही धृतराष्ट्र को सारे युद्ध का हाल सुनाते रहोगे।

कानों म फिर आवाज आयी। इस बार वेदव्यास की नही धृतराष्ट्र की—हे सजय ! पुण्यभूमि कुरुक्षेत्र के मैदान म इकट्ठे हुए कौरवो और पाडवो ने किस प्रकार युद्ध आरम्भ किया ?

असीम निस्तब्धता छा गयी। घोर अँधेरे का साम्राज्य हो गया। न कोई शब्द, न कोई आकृति।—समय का ज्ञान भी अलोप हो गया सजय को कुछ पता नहीं लग रहा था कि वह किस स्थान पर है और किस काल म।

अचानक एक रथ के पहिया की आवाज कानो म आयी साथ ही एक आवाज—आओ, सारथि, रथ चलाओ !

अँधेरे की थाह नही लग सकी इस लिए सजय ने चकित होकर पूछा—राजन् आप स्वय रथ चलाकर कसे आये ?

उत्तर मिला—यह धृतराष्ट्र का रथ नहीं है इतिहास का रथ है बीसवी शताब्दी के इतिहास का। आओ सजय ! मेरे कलाकार ! रथ चलाओ और मुझे सुनाओ कि मन की पुण्यभूमि पर इस समय क्या घट रहा है ? जो कोई भी जिन्दगी का सपना क़लम म भरता है उस के मन का हाल सुनाओ !

सजय ने रथ की रास थामी और कहा—जो आज्ञा !

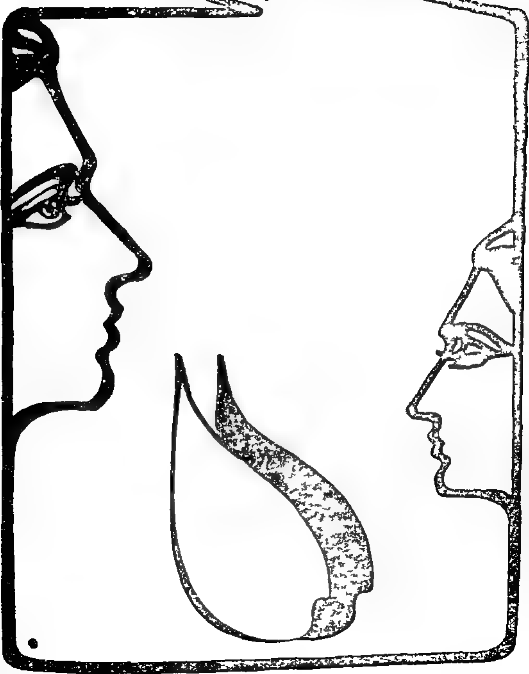
आवाज आयी—सुनाओ ! कलम की शक्ति कसी है ?

—लहू-लुहान अक्षरो म डूबी हुई।—सजय ने कहा, और अपने मन के पन्नो को अक्षर-अक्षर खोल दिया

सजय ने, चेतन और अचेतन तौर पर, जो कुछ जिया, भोगा, सोचा और सुनाया, यह किताब अक्षर अक्षर वही है।

और इतिहास सिर झुकाकर सुनता रहा। केवल एक बार उस ने सिर ऊपर उठाया, सजय की ओर देखा, और कहा, "पुराणो और स्मृतियो म अलग-अलग महीनो के लिए अलग-अलग सूरज की कल्पना है। सो, बारह सूरज गिनाये गये हैं—इन्द्र, धाता, भग, पूषा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अशु विवस्वत, त्वष्टा, सविता और विष्णु। पर इन्सान के चिंतन को मैं दिव्य दृष्टि मानता हूँ। सो मेरे सारथि, तुम्हारा यह सारा दर्द और सारा चिंतन, तुम्हारे मस्तिष्क की रोशनी है। इस रोशनी को म तेरहवाँ सूरज कहता हूँ और मानव जाति को वर देता हूँ कि उस का तेरहवाँ सूरज सदा उस के आकाश पर चढ़ा रहेगा

उनचालीस दिन





उनचास दिन

सजय की सारी जान सिकुडकर सिफ एक लकीर बन गयी, उस के मस्तिष्क म पडी हुई हलकी-सी होश की एक लकीर।

सजय के होठ नहो, जसे वह लकीर हिली हा, "आप कौन हैं ? मेरे सारे शरीर पर यह नमक की डलिया क्या रख रहे हैं ?"

कमर म सिफ सजय का जिगरी दोस्त करीम क़ादिर था। उस के सिरहाने की ओर बठा हुआ वह जल्दी से बोल उठा, "सजय, यार, नमक की नही, बफ की डलिया हैं। और यहा काई नही है। डाक्टर आया था, पर वह ता चला गया है। सिफ मैं हूँ तुम्हारा करीम।"

सजय के मस्तिष्क की लकीर म फिर एक हरकत हुई, 'कौन, करीम मियाँ ? सुनो, मरी रूह इस जिस्म को छाड चुकी है। अब इसे नमक की डलिया म सँभालकर रखन का कोई फायदा नही है।'

जसे बफ की डलियो स पानी की बद गिर रही थी, करीम की आखा से भी गिर पडा और वह अपनी आवाज का सँभालकर बोला, 'कुछ नही हुआ, सजय। बहुत जार का बुखार था, अब उतर रहा है।'

सजय ने अपने मस्तिष्क की चेतना को अपनी आखो म उतारना चाहा, नजर



चिराग़ दिल्ली म एक पुराने टूटे फूटे-से घरों की बस्ती थी, जहाँ करीम का घर था। घर अच्छा खुला हुआ था लेकिन ऐसा, जैसे किसी खँडहर का एक हिस्सा हो। दो तरफ कितनी ही छोटी छोटी कोठरियाँ थी और बीच म एक आगन था। पर जिस गली से इस घर को रास्ता आता था, वह कुछ तो तग थी और कुछ उसे गली वालो ने खाटें मूढे डालकर तग बनाया हुआ था। किसी किसी न वहाँ डगर-बच्छा भी बाँध रखा था पर उस तग गली की बू म से होकर जो आदमी एक बार सास रोककर गुजर जाये और करीम के घर का गली की ओर खुलने वाला दरवाजा ब द कर ले, तो भीतर जाकर एक पतझडी सास जरूर आती थी—पर खुली हुई और पिछली दीवार की ओर उगे हुए नीम के पेडा का जो छाया आगन में पडती थी, वह सार घर को गली से तोडकर एक अलग थलग सा घर बना देती थी।

गली तक पहुँचने वाला बाहर का रास्ता चाहे कच्चा और गड्ढे वाला था, पर करीम मिया टक्सी वाले के हाथ पर जोडकर टैक्सी को गली के माड तक ले आया। फिर गली के मोड वाले पहले मकान म उपले थाप रही हुस्नो दाई से कहकर अपनी बडी लडकी को घर से बुला भेजा जो कपडा और दवाओ की पोटली को और बर्फ की गठरी को टक्सी से निकालकर घर ल जायें। ख द उस ने बिलकुल अचेत पडे सजय को अपने क धे पर डाल लिया।

दरवाज के अ दर पाव रखत ही, जब करीम की दाना बीवियाँ 'हाय अल्ला' कहकर एक कोठरी म चारपाई बिछाने लगी तो करीम ने दोनो को सबोधन करते हुए कहा, 'यह मेरा यार भी है, मेरा बेटा भी। अगर तुम दोनो इसकी खिदमत करके इसे अच्छा कर दो तो नेक बदियो ! मैं तुम्हारा कजदार रहूँगा।

तौलिये म लपेटी हुई बर्फ सजय के सिर पर रखते हुए करीम न जब अपनी एक बीवी का काल चने का शोरबा बनाने के लिए कहा तो उस याद आया कि वह रास्त से स तरे लाना भूल गया था।

पछतावा सा करत हुए करीम न अपनी बेटी से कहा, 'जाओ, दौडकर जाओ,

थीं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो। वह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है

पानी डालकर [illegible] [illegible] करेगा।"

[illegible] [illegible] को [illegible] दीं। थोड़ी देर बाद वह [illegible] [illegible] के [illegible]

चार सन्तरे [illegible] "[illegible]" [illegible] वाला तो जा चुका था [illegible] [illegible] के बदले

सन्तरे ले आया हूँ।'

करीम का [illegible] ध्यान नहीं आया था पर उस को [illegible] [illegible] का [illegible]

लिया तो उसे ध्यान आया कि वह सन्तरों की छाबड़ी [illegible] है

'चाचा [illegible] [illegible] [illegible] थे, वह तो छाबड़ी लेकर [illegible] [illegible] [illegible] हैं [illegible]

औरत से मोल लिया है।' [illegible] ने कहा तो करीम का चेहरा [illegible] [illegible]। [illegible]

के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए बोला, "मैं नहीं जानता था [illegible] [illegible]

मद लड़का हो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] तो [illegible] [illegible] [illegible] नहीं और [illegible]

का पानी [illegible] होगा। तुम [illegible] [illegible] पानी की बाल्टी भर [illegible] और [illegible] [illegible]

पट्टियाँ [illegible] [illegible] [illegible] जाओ।"

रात काफ़ी गुज़र चुकी थी जब करीम का [illegible] कि [illegible] का बुख़ार अब

बहुत कम हो गया है। [illegible] [illegible] [illegible] आँखें [illegible] [illegible] [illegible] कुछ देखा था।

पर यह [illegible] [illegible] बुख़ार [illegible] नहीं [illegible] [illegible] जितनी उस के [illegible] पड़े

हुए शरीर की।

करीम ने [illegible] [illegible] उस के मुँह के पास हथेली रखकर उस की साँस देखी थी।

साँस धीमी थी, पर [illegible] हुई नहीं। करीम ने [illegible] [illegible] के मुँह में दवा

डाली, दवा भी [illegible] [illegible] [illegible] थी, सन्तरे का [illegible] रस भी, और [illegible] [illegible]

का कोई आधा [illegible] [illegible] भी।

और करीम अब [illegible] की तरह घबराया हुआ नहीं था, इस लिए जब उस

ने कई घण्टे से लगातार [illegible] के सिरहाने बैठे-बैठे अपने शरीर की अकड़ाहट

को तोड़ा तो [illegible] [illegible] के पास लाई हुई उस की एक बीवी जाग पड़ी, उठकर

आयी और बोली, "अब जाओ, घड़ी भर को कमर सीधी कर लो, मैं तुम्हारे इस

बेटे के पास बैठी हूँ।"

करीम हँस [illegible] पड़ा, "अच्छा! बरकत! तुम्हें भी मेरा दर्द है?"

"आज [illegible] [illegible], किसी का तुम्हें दर्द है, नहीं मैं तो समझती थी कि तुम

[illegible] की तरह किसी भी [illegible] में नहीं [illegible]।" बरकत ने कुछ उलाहने से

कहा।

करीम ने हँसकर अपनी बीवी का उलाहना झेल लिया और बोला, "[illegible]

कहता हूँ, अगर इस आदमी को कुछ हो गया, तो मैं ज़िन्दा नहीं रहूँगा।"

करीम [illegible] चारपाई पर पड़कर कोई घण्टा भर सोया होगा कि [illegible] [illegible] [illegible]

घबराकर उसे जगाया, "उठो, देखो । उस ने आखें खोलीं फिर चारों तरफ देखता रहा कुछ बोला भी, पर मेरी समझ म नही आया "

करीम जल्दी से उठा, सजय के पास बैठकर बोला, "देखो, यार सजय ! मैं तुम्हे कहाँ ले आया हूँ, देखो "

अब सजय ने आँखें खोली, पास ही रखे लकडी के स्टूल की ओर देखा, जिस पर पानी का गिलास, शोरबे का प्याला और एक सतरा रखा हुआ था।

"कुछ दू ?" करीम ने जल्दी से पूछा और लकडी के स्टूल की ओर हाथ बढाया।

सजय की आवाज काना म पडी, "आप लोग रोज यहाँ मेरे खाने के लिए कुछ रखत है ?'

करीम हँस सा पडा, "आज तो पहला दिन है "

करीम को लगा, सजय स्टूल से नजर हटाकर उस की ओर देख रहा है, पर शायद पहचान नही रहा है। कह रहा था, "ये सब वहम होते हैं।"

"काहे के वहम ?" करीम ने कुछ घबराकर पूछा।

"यही कि जिस जगह किसी की मौत हुई हो, उस जगह उस की रूह रोज कुछ खाने के लिए आती है लोग रोज वहा उस के लिए खाना रख देते हैं पूरे उनचास दिन पर मेरा अब शरीर नहीं है, सिर्फ रूह है, और रूह के कोई हाथ नहीं होता, खाने के लिए " सजय ने कहा तो करीम बहुत घबरा गया, जल्दी से सजय का हाथ पकडकर हिलाया और बोला, ' यार सजय ! तुम्हे कुछ नही हुआ है। यह देखो, तुम्हारा हाथ, यह तुम्हारा माथा, कधे टाँगें अच्छा-भला यह तुम्हारा शरीर है "

' नही, यह मेरा शरीर नही है।" सजय ने लम्बी-सी सास लेते हुए कहा, "यह तुम ने मेरी मौत के बाद मेरा पुतला बनाया है मेरा शरीर तो तुम ने आग मे जला दिया था '

करीम की चीख सी निकल गयी, "नही, सजय ! नही "

"मैं न खुद देखा था "

"कब ?"

सजय की आवाज रुक गयी, जसे वह कुछ याद कर रहा हो, लेकिन याद न आ रहा हो।

' कब ? कब ? ' करीम ने फिर घबराकर कहा तो सजय को कुछ याद-सा आ गया। बोला, "जब मीता को भी लकडियो पर रखकर जलाया था '

करीम को लगा, उस ने सजय की बेसुधी की कुछ थाह पा ली है। हौले से उस ने माथे पर हथेली रखकर कहा, "मेरे यार ! मरे हुओ के साथ मरा नही जाता। मीता की सचमुच मौत हो गयी, पर तुम जिन्दा हो। देखो, ऐसी बात मत

करो। तुम यहाँ मेरे पास हो, अपने करीम के पास "

"नही मीता के पास मैं ने अभी उसे देखा है।"

करीम को लगा, अगर वह इस समय और किसी बात की वजाय सिफ मीता की वातें करता रहे तो शायद सजय का होश लौट आये।

करीम ने पूछा, ' अच्छा, तुम ने मीता को देखा था ? कहाँ थी ?"

सजय की आवाज आयी, "वहुत दूर से देखा था, नीली रोशनी म "

"वह नीली रोशनी किस चीज की थी ?" करीम ने साधारण और स्वाभाविक-सी वातें करने वाली आवाज मे पूछा।

'न जाने किस की है, अब भी दिखाई दे रही है चारो तरफ वहुत हलकी नीली, दूधिया-सी "

"पर किस चीज की रोशनी है ?"

"पता नही न सूरज की है, न चाद की, न आग की "

"और तुम कहाँ वठे हुए हो ?"

"बैठा हुआ नही हूँ, मैं उस रोशनी म तैर रहा हूँ '

"वह पानी जैसी है ?"

"नही, हवा जसी "

"पर हवा मे तो पख वाले पछी उडत हैं।"

"रूह भी "

"और वहाँ मीता भी है ?"

"मैं ने देखा था, वहुत दूर से अभी ढूढ लूगा "

'वह कस कपडे पहने हुए थी ?"

"रूहो के शरीर पर कपडे नही होते "

"कसी लग रही थी, वसी ही सुदर ?"

'रूहो का शरीर भी नही होता "

"फिर तुम ने उसे कसे पहचाना ?"

"रूहे रूहो को पहचान सकती है "

"लेकिन कसे ?"

"उन का शरीर होता है, पर आग और हवा का बना हुआ मास का नही होता "

"और तुम्हारा शरीर ?"

"वह भी आग और हवा का बना हुआ है वह मुझे जरूर पहचान लेगी '

"और वहा क्या है ?"

"कुछ नही, सिफ चारा तरफ नीली रोशनी है "

और सजय की वातो पर करीम को रोना आ गया।

नही है।"

करीम डाक्टर के साथ ही चला गया, दवा लाने के लिए। रास्ते मे उस ने हलीमी से, पर ज़ोर देकर पूछा, "मुझे सच सच बताइये, डाक्टर साहब ! कोई खतरे की बात तो नही है ?"

डाक्टर न कोई एक पल के लिए सोचा, फिर कहा, "मेरा खयाल है, नही। आप ने शायद ठीक कहा था कि सदमा गहरा लगा है। पर आप ने एक चीज का ध्यान किया था ?"

'क्या ?'

"जिस समय मैं ने सिर्फ अपना हाथ आगे किया तो उस ने कहा था, 'नीली रोशनी है, सलेटी सी, बादलो जसी ' "

'यह तो जी वह आज आधी रात से कह रहा है।"

"नही, मैं और बात कह रहा हूं। और फिर जब लाल रग की चुनरी उस की आखो के सामने रखी थी तो उस ने कहा था, 'यह नीला रग है, बहुत गहरा नीला, चमकदार ' "

"हाँ जी !"

"इस का मतलब यह है कि पहले उसे फीका नीला रग दिखाई दे रहा था, पर चुनरी के गहरे रग का ज़रूर उस पर कोई असर हुआ कि वह फीका नीला रग गहरा रग दिखने लगा "

"आप का मतलब है कि कही थोडा सा होश कायम भी है ?"

' हाँ, बहुत थोडा, अचेत सा पर है।"

"साथ मे जी, बात का जवाब भी तो देता है भले ही जवाब कुछ और ही देता है। पर उसे थोडी सी हमारी बात भी तो सुनाई देती है, तभी जवाब देता है।"

' बिलकुल।"

' रात को जब उस ने नीली रोशनी की बात की तो यह भी कहा कि वहाँ मीता भी दिखाई दे रही है।"

"मीता कौन ?"

"वही, जी ! जिस की मैं ने बात की थी।"

"जिस की मौत का सदमा लगा है, तुम बताते हो "

"जी हा !"

शायद " डाक्टर कुछ सोचता सा रह गया, फिर बोला, "उस की मौत शायद इस ने अपने ऊपर प्राजेक्ट कर ली है।"

"क्या मतलब ?"

' यही कि इसे लग रहा है कि असल मे उस की नही, इस की मौत हो गयी

है।'

"पर, जी, उस की मौत भी इसे याद ज़रूर है।"

'कसे ?"

"इस के खयाल मे अब उस की रूह आसमान म है, और वहा जाकर इस ने मीता की रूह को भी देखा है। अगर उस की रूह को देखा है तो उस की मौत की याद ज़रूर होगी।"

डाक्टर ने सहमति मे सिर हिला दिया। फिर ज़रा ठहरकर कहा, "दो दिन देखते हैं, अगर फ़क नही पडा तो अस्पताल ले जाना पडेगा।'

करीम जब दवा लेकर लौटा, सजय उसी तरह शात लेटा हुआ था। उस न हाथो से सजय के शरीर को टोहा, साँस को भी। बुखार बढता हुआ नही लग रहा था। जसे डाक्टर ने कहा था, करीम ने पहले कोई आधा प्याला दूध चमचा चमचा करके पिलाया। फिर दवा पिला दी।

और फिर सजय के पास बठा तो करीम को डाक्टर की वह बात याद आयी कि कही थोडा सा होश बाकी भी है। उस ने जल्दी से अपनी बेटी शीरी को बुलाकर कहा कि वह बराबर वाली गली मे जाय और अत्ता माली के घर से थोडे-से फूल माँग लाये। करीम जानता था कि अत्ता माली की घरवाली घर पर गजरे भी गूथती है जिन्ह उस का लडका सध्या समय इडिया गेट के चौक म जाकर बेचता है।

करीम न होले होले सजय से नीली रोशनी की बातें छेड दी। सजय बहुत देर तक चुप रहा जस उसे कोई बाहरी आवाज सुनाई नही दे रही है, फिर होले होले उस के होठ फडकन लगे। करीम ने पूछा, "यार ! तुम वहा अकेले ही हो, या और भी है कोई ?"

"और भी बहुत-सी रूह !' सजय न होले से कहा।

करीम को सजय की आवाज़ ऐसी लग रही थी, जसे बहुत दूर से आ रही हो। उस न चारपाई के पाये के पास बैठते हुए अपना सिर सजय के तकिये से लगाकर अपना मुह उस के कानो के पास कर लिया।

पूछा, "तुम पहचानते हो, और कौन सी रूह है ?"

"नही।"

'कही करीम भी दिखाई देता है या नही ?"

"कौन ?"

'करीम—तुम्हारा यार हुआ करता था न, करीम क़ादिर "

"नही, वह तो धरती पर होगा।"

तो तुम अकेले वहाँ अभी थके नही ?"

नहीं है।"

करीम डाक्टर के साथ ही चला गया, दवा लाने के लिए। रास्ते में उस ने हलीमी से, पर जोर देकर पूछा, "मुझे सच सच बताइये, डाक्टर साहब ! कोई खतरे की बात तो नहीं है ?"

डाक्टर ने कोई एक पल के लिए सोचा, फिर कहा, "मेरा खयाल है, नहीं। आप ने शायद ठीक कहा था कि सदमा गहरा लगा है। पर आप ने एक चीज का ध्यान किया था ?"

'क्या ?'

'जिस समय मैं ने सिर्फ अपना हाथ आगे किया तो उस ने कहा था, 'नीली रोशनी हैं, सलेटी सी, बादलों जसी ' "

'यह तो जी वह आज आधी रात से कह रहा है।"

'नहीं, मैं और बात कह रहा हूँ। और फिर जब लाल रंग की चुनरी उस की आँखों के सामने रखी थी तो उस ने कहा था, 'यह नीला रंग है, बहुत गहरा नीला, चमकदार ' "

"हाँ जी !"

"इस का मतलब यह है कि पहले उसे फीका नीला रंग दिखाई दे रहा था, पर चुनरी के गहरे रंग का जरूर उस पर कोई असर हुआ कि वह फीका नीला रंग गहरा रंग दिखने लगा "

'आप का मतलब है कि कहीं थोड़ा सा होश कायम भी है ?"

"हाँ, बहुत थोड़ा, अचेत सा पर है।"

"साथ में जी, बात का जवाब भी तो देता है, भले ही जवाब कुछ और ही देता है। पर उसे थोड़ी-सी हमारी बात भी तो सुनाई देती है, तभी जवाब देता है।"

'बिलकुल।"

"रात को जब उस ने नीली रोशनी की बात की तो यह भी कहा कि वहाँ मीता भी दिखाई दे रही है।"

"मीता कौन ?"

'वही, जी ! जिस की मैं ने बात की थी।"

'जिस की मौत का सदमा लगा है, तुम बताते हो "

"जी हाँ !"

'शायद " डाक्टर कुछ सोचता सा रह गया, फिर बोला, "उस की मौत शायद इस ने अपने ऊपर प्रोजेक्ट कर ली है।"

क्या मतलब ?"

'यही कि इसे लग रहा है कि असल में उस की नहीं, इस की मौत हो गयी

है।"

"पर, जी, उस की मौत भी इसे याद जरूर है।'

"कसे ?"

"इस के खयाल मे अब उस की रूह आसमान म है, और वहा जाकर इस न मीता की रूह को भी देखा है। अगर उस की रूह को देखा है तो उस की मौत की याद जरूर होगी।"

डाक्टर ने सहमति मे सिर हिला दिया। फिर जरा ठहरकर कहा, "दो दिन देखते हैं, अगर फर्क नही पडा तो अस्पताल ले जाना पडेगा।'

करीम जब दवा लेकर लौटा, सजय उसी तरह शात लेटा हुआ था। उस न हाथो से सजय के शरीर को टोहा, सास को भी। बुखार बढता हुआ नही लग रहा था। जसे डाक्टर ने कहा था करीम ने पहले कोई आधा प्याला दूध चमचा चमचा करके पिलाया। फिर दवा पिला दी।

और फिर सजय के पास बठा तो करीम का डाक्टर की वह बात याद आयी कि कही थोडा सा होश बाकी भी है। उस न जल्दी से अपनी बेटी शीरी का बुलाकर कहा कि वह बराबर वाली गली म जाय और अत्ता माली क घर स थोडे-से फूल माग लाये। करीम जानता था कि अत्ता माली की घरवाली घर पर गजरे भी गूथती है जिन्ह उस का लडका सध्या समय इडिया गेट के चौक म जाकर बेचता है।

करीम ने हौले हौले सजय मे नीली रोशनी की बातें छेड दी। सजय बहुत देर तक चुप रहा, जसे उसे कोई बाहरी आवाज सुनाइ नही द रही है, फिर हौले हौले उस के होठ फडकन लगे। करीम न पूछा, "यार ! तुम वहां अकेले ही हो, या और भी है कोई ?"

"और भी बहुत-सी रूह !" सजय न हौले से कहा।

करीम को सजय की आवाज ऐसी लग रही थी, जसे बहुत दूर से आ रही हो। उस न चारपाई के पावे के पास बठते हुए अपना सिर सजय के तकिये स लगाकर अपना मुह उस के कानो के पास कर लिया।

पूछा, 'तुम पहचानते हो, और कौन सी रूह हैं ?'

"नही।"

'कही करीम भी दिखाई देता है या नही ?

'कौन ?"

'करीम—तुम्हारा यार हुआ करता था न, करीम क़ादिर "

'नही, वह तो धरती पर होगा।'

'तो तुम अकेले वहां अभी बने नहो ?"

"नहीं, रूह नहीं थकती   उन के गिर्द शरीर का बोझ नहीं होता।"

करीम की लड़की मोतिये के फूलों का एक गजरा ले आयी तो करीम ने फूलों का वह गजरा संजय की नाक के आगे रखकर धीरे से पूछा, 'फिर वहाँ मीता मिली है या नहीं अभी तक ?"

संजय बहुत देर तक चुप रहा, फिर अचानक बोल उठा,' वह मीता दिखाई दे रही है   वह फिर   बीच से ओर रूह गुजर रही है, वह परे है   मुझे खुशबू आ रही है   आज मीता ने अपने बालों में फूल भी बांध रखे हैं   "

करीम ने एक ठंडी और गहरी सांस ली।

उसे काम पर नहीं जाना था, छुट्टी की अर्जी भेजी हुई थी। ज़रा सा शरीर को सुस्ताने के लिए, संजय की चारपाई के बराबर, नीचे फर्श पर दरी बिछाकर वह लेट गया।



"करीम मियाँ!" संजय की आवाज़ बड़े ज़ोर से करीम मियाँ के कानों में पड़ी तो करीम की अचानक नींद टूट गयी।

वह हड़बड़ाकर उठने लगा तो पैर का टखना चारपाई के पाये से टकरा गया और सारे शरीर में एक चीस सी दौड़ गयी। पर उस ने एक हाथ से टखने को मला, जल्दी से दूसरा हाथ संजय के कंधे पर रखा, कहा, 'यह देखो, मैं तुम्हारे पास खड़ा हुआ हूँ।"

पर लगा, संजय को उस की आवाज़ नहीं सुनाई दी।

संजय कुछ बोल जरूर रहा था, पर उससे नहीं, किसी और से।

करीम ने उस की आवाज़ पर कान लगाये। अब वह बहुत हौले बोल रहा था, कह रहा था, "यार संजय! मौत के फरिश्ते ने सच कहा था कि इस शीशे में देखो, इस में तुम्हें पिछले जन्म का सब कुछ दिखाई देगा   मैं ने अभी शीशे में करीम को देखा था   उसे देखकर मैं भूल ही गया कि वह तो पिछले जन्म की बात है, मैं ने उस ज़ोर से आवाज़ दी   "

करीम जानता था कि जब सजय अपने आप से मुखातिब होता था, हमेशा अपने आप को यार सजय कहकर बात करता था। और अब बेहोशी में भी वह अपनी आदत नहीं भूला था। अब भी वह अपने आप को मुखातिब कर के बात कर रहा था।

फिर, जब सजय चुप सा होता हुआ जान पडा तो करीम न, करीम होकर नही, शीशे वाले फरिश्ते की जगह होकर कहा, 'देखो! मैं ने तुम्हे कैसा शीशा लाकर दिया है, तुम उस में अपने पिछले जन्म का जो कुछ चाहो, देख सकते हो।"

"अच्छा, लाओ, फिर देखू!" सजय की आवाज़ आयी, और साथ ही आवाज़ हुलस-सा गयी, "सचमुच इस में मेरा करीम मियाँ मुझे फिर दिखाई दे रहा है यह मेरा बढ़िया यार हुआ करता था "

"फिर तुम नही चाहते कि तुम्हारा यार भी यहाँ आ जाय तुम्हारे पास?"

"नही, नही, उसे अभी दुनिया में रहने दो। उस के घर में दो बेगमे है, बिचारियों का क्या हाल होगा बाद में? उस के बाल बच्चे भी है, उन्हें कौन पालेगा?"

"पर तुम उस से बातें क्या नही करते? देखो, वह तुम्हारे सामने तुम्हें दिखाई दे रहा है।"

"वह तो शीशे मे है। यार! तुम ने खुद ही तो कहा था कि तुम सिर्फ देख सकते हो, बातें नही कर सकते।"

"अच्छा, तुम्हें धरती का और कुछ देखना है इस में?'

"मीता को देखना था, पर वह तो अब धरती पर नही है।

"इस में बीते हुए दिन दिखाई देते हैं।"

"मैं वह नही देखना चाहता उन दिनो मीता बीमार रहा करती थी साथ ही किसी और से ब्याही हुई थी वे धरती की मजबूरियो के दिन थे

"तुम मीता से मिलना चाहते हो?"

"उस से ही मिलने के लिए तो यहाँ आया हूँ "

'फिर और कुछ धरती का तुम नही देखना चाहते हो?

"नही।"

'मै यह शीशा ले जाऊँ?'

"ठहरो! मैं एक बार करीम को फिर देख लू "

सजय के माथे पर पडा हुआ करीम का हाथ कापने लगा और उस ने उसे परे करके अपने दोनो होठो से सजय का माथा चूम लिया। उस की अपनी आवाज़ ही उस की छाती को चीर गयी, "होश में आओ, सजय! मुझे ऐसे रुला-रुलाकर न मारो!"



छाती मे उठते हुए बगूलो से करीम ने सारा दिन बिताया । एक बार बाल्टी म गम पानी डालकर, और एक तौलिये को भिगो भिगोकर सजय का शरीर पोछा, उस के कपडे बदले, दो बार और समय से दवा दी । दो सतरा का रस निकालकर दिया, दो बार शोरबा । पर सारे दिन सजय ने उस की किसी भी बात की हुकार नही भरी ।

करीम की दोनो बीविया, बरकत और नमत, अपने मद की घबराहट को समझ गयी थी । उन्हो ने, वैस ही, जैसे करीम ने चाहा था, घर म किसी बच्चे की भी ऊँची आवाज़ नही निकलने दी । दो लडकियाँ बडी थी, एक पन्द्रह वष की शीरी, और एक तेरह वष की जमीला, पर दोना लडके छोटे थे, एक बारह वष का, दूसरा मुश्किल से पाच वष का ।

रोटी का टुकडा मुह म डालते हुए करीम ने सवेरे वाली बात दोना बीवियो को सुनाई, 'देखो ! अपनी समझ म वह जि दा नही है, और वहा आसमान मे अकेला है, पर जब खुदाई आईन म उसन धरती की दखा तो सब स पहले मेरी सूरत देखी उस से मलिकुलमौत के फरिश्ते ने पूछा भी, कि अगर तुम कहो ता तुम्हारे यार को भी दुनिया से बुला लें, तो उस ने कहा, 'नही, उसे दुनिया म रहने दो, उस की दो बेगम है, वह बिचारी बाद म क्या करेगी ? साथ ही उसे बाल-बच्चो की परवरिश करनी है ' ' और करीम ने दोनो बीवियो से कहा ' जिस ने आज तक तुम्हारी सूरत भी नही देखी, उसे इस हालत म भी तुम्हारा फिक्र है बस, इसी यार से मेरी दुनिया बसी हुई है, और तुम भी बसी हुई हो । नेक-बदियो ! यह तो मैं समझता हूँ कि मै तुम्हारा गुनहगार हूँ, पर अगर तुम अल्लाह के सामने दुआ कर के उस की जान की खर मागो, ता मैं भी बदले म तुम्हारा हक लौटाऊँगा "

करीम की दोनो बीवियो को यह बात मालूम थी कि करीम से उन का ब्याह करीम के बाप ने जबदस्ती कर दी था । उस ने कभी भी दिल से उ ह कबूल नही किया । करीम के बिलकुल पहले इश्क के बारे मे भी वे जानती थी, इस लिए एक

ने दूसरी को इशारा-सा किया और करीम की रोटी पर खुला मक्खन चुपड़ते हुए बोली, "लो, देख लो, नेमत ! बंदे को जरूरत पड़ती है तो वह अल्लाह ताला से भी सौदा कर लेता है।"

छोटी नेमत बरकत की अपेक्षा जरा मुंह की ज्यादा खुली हुई थी इस लिए सीधे करीम से बोली, "अच्छा मियाँ ! फिर कर लो सौदा हम तो दोनों रात को दुआ माँगेंगी, पर अगर हमारी दुआ कबूल हो गयी तो आगे से तुम सोच लो कि तुम ने जिस मुमताज की खातिर हम सारी उम्र तड़पाया, वह तुम्हें किस में दिखाई देगी, मुझ में या बरकत में ?"

कोई और दिन होता, करीम उन के मुंह से मुमताज का नाम सुनता तो दोनों की जबान खींच लेता, पर आज वह अल्लाह के करम की खातिर इस दुनिया को कुछ भी माफ कर सकता था, इस लिए बड़ी ठंडी आवाज में बोला, "यह बरकत 'बड़ी मुमताज' और नेमत ! तुम 'छोटी मुमताज ।'

करीम ने उस समय ध्यान नहीं दिया कि उस की बड़ी लड़की शीरों रसोई में पानी की बाल्टी रखने आयी थी, वह दरवाजे के पास खड़ी होकर सब कुछ सुन रही थी। करीम ने सिर्फ रात को ट्रंकों वाली कोठरी में जाकर नया तौलिया ढूंढ़ते हुए जाना कि वह वहाँ अँधेरे में बैठकर, दोनों हाथ फैलाकर खुदा से दुआ माँग रही है।

करीम उलटे पाँव कोठरी के बाहर चला गया और बाहर आंगन के अँधेरे में खड़े होकर आसमान की ओर देखने लगा

करीम का भरा हुआ मन जैसे खुदा से कह रहा था, तुम्हें यह भी रंग दिखाना था, मेरे अल्लाह ! मुमताज शोहदी तो अब मुझे तेरी दरगाह में ही मिलेगी, इस धरती पर न उसे मिलना था न मिली, पर उस की सूरत तुम ने आज मुझे मेरी बेटी की सूरत में दिखा दी !'

करीम को लगा कि उस की छाती में बड़ा हुआ कोई घाव भर गया है।

सारी उम्र का एक घाव था कि उस के और मुमताज के बीच अगर शिया और सुन्नी का फासला न होता तो दोनों फूलों की तरह हँसता दुनिया पर बसाते

और मुमताज की खाली जगह को भरने वाली दोनों [illegible] बरकत और नेमत उसे काँटों की तरह चुभती थीं।

पर आज करीम को अपनी छाती में से मोह का [illegible] उठता हुआ लगा, जैसे उस के अपने अंगों को मुमताज का [illegible]।

करीम के हाथ अनायास नीचे धरती की ओर झुक गए, [illegible] में दुआ मांगने के लिए उठी हुई उस की बड़ी [illegible] हो [illegible] दोनों हाथों से उस का सिर [illegible]।

[illegible]



करीम बिजली का पखा किराय पर ले आया था, तब भी रात को जब कुछ ठढ हो गयी, तो उस ने सजय की चारपाई बाहर आगन मे हवा मे कर दी। पास ही अपनी डाल ली।

न जाने किस समय करीम की आख लग गयी, जागा तो सजय वसे ही आखें मीचे पडा हुआ कुछ इस तरह बोल रहा था, जसे आदमी सपने म बडबडाता है।

करीम उस की चारपाई की पट्टी पर बैठ गया।

सजय की आवाज कभी साफ सुनाई दे जाती, कभी कई अक्षर जसे लौटकर उस के होठो म ही गिर पडते। वह कह रहा था, "क्या कहा? यह नीली रोशनी नीली इल्म की और सफेद रोशनी? देवता देवलोक नही मुझे डर नही लगता बहुत चमकती है "

"क्या चमकती है सजय?" करीम ने बार-बार पूछा, पर सजय बोला नही।

कितनी ही देर बाद सजय की आवाज सुनाई दी, "छ लाक सात नही, मैं वहाँ नही जाऊँगा पीली रोशनी काहे की? मुक्ति की? नहीं, मुक्ति नही मीता सामने मीता सात रगो के झूले पर "

और फिर सजय ने ऐसे धीरे से 'मीता' कहा, जसे उस ने मीता के पास जाकर, पास खडे होकर, आवाज दी हो।

और फिर सजय की आवाज नही आयी। करीम ने बहुत देर प्रतीक्षा की, फिर उठकर, अपनी चारपाई पर बैठ गया। एक सहम सा उस की कनपटिया म टकराने लगा, 'शायद जो रत्ती भर होश था, अब वह भी नही आयेगा जिसे पाने के लिए उस का होश भटक रहा था, वह मिल गयी अब लौटकर होश म आयेगा तो वह खो जायेगी, इस लिए होश म नही आयेगा '

करीम ने दोनो हाथ आसमान की ओर उठा दिये, "या खुदा! तुम्हारी क्या रजा है!"

और वह उठकर सजय के तलवो को सहलाने लगा।

सोते-जागते पौ फट गयी तो करीम को लगा, जसे इस समय अम्बर से बूद-बूद करके उजाला बरस रहा हो। बाहरी दीवार के साथ उगे हुए नीम के पेड की पत्तिया आगन के एक कोने मे ऐसे झूलती हुई दिखाई दे रही थी, जस उस कोन म एक झूलती हुई छत पडी हुई है जिस म से चढते हुए दिन का उजाला बूद-बूद होकर आगन मे बरस रहा है।

"अल्लाह तेरी कुदरत !" करीम के मुह से निकला। और उसे अचानक एक खयाल आया, 'सजय की रूह को शायद चन आ गया है यह उजाला शायद वही है जिन की रूह खाकी बदन म नही मिली थी, अल्लाह का रूप होकर मिली '

पर अपनी आखा के पानी से जब करीम का मुँह गीला-सा हो गया तो उसे होश आया कि उसके आसू बह रहे हैं। हथेलिया से उस ने मुह पोछा और मन को नयी दलील ढूढकर दी, 'यह उजाला इस लिए बरस रहा है कि वह अब अच्छा हो जायेगा लौटकर जि दो मे हो जायेगा "

करीम ने उठकर मुह पर पानी का छीटा मारा। बीवियाँ और बच्चे अभी सोये हुए थे। उस ने किसी को आवाज नही दी उठकर चाय बनाने लगा।

चूल्हे की लकडियो म से आग की छोटी-छोटी लपटे करीम के दिम मे कितने ही खयालो की तरह उठी पर साथ ही अचानक एक धुआ भी उठता था जो सारी लपटो को एक ही बार म बुझाता हुआ लगता था।

करीम झुककर चूल्हे म फूक मारने लगा तो उसे लगा, चूल्हे मे कोई आसमानी फूक लग रही है और लकडियो मे से आग की एक लपट गहरी लाल होकर चूल्हे म खडी हो गयी है।

उस ने हैरान होकर सिर ऊपर किया तो देखा, उस की बेटी शीरी उठकर चूल्हे के पास आ बठी है और चाय का पानी धर रही है

"उठिये अब्बा ! मैं चाय बना देती हूँ।" लडकी ने कहा तो करीम उठकर बाहर सजय की चारपाई के पास आकर खडा हो गया।

लगा, सजय फिर कुछ कह रहा है। उस ने कान लगाय, मद्धिम-सी आवाज कानो मे पडी, लेकिन समझ म कुछ नही आया। सजय कह रहा था, ' हरी रोशनी फीकी सी हरी बहुत गहरी "

लडकी चाय बना लायी तो करीम ने चमचे से सजय के मुह म एक एक घूंट करके डालने की बजाय, उस के सिरहान की ओर बैठकर उस का सिर ऊँचा किया अपने कधा तक, और उसे चारपाई पर बठाकर चाय का प्याला उस क मुँह से लगा दिया।

प्याले की चाय जब नीची हो गयी तो करीम ने लडकी को आवाज दी,

"थोडी और डाल दो !"

करीम के हाथ का प्याला संजय के मुँह की ओर था, इस लिए लडकी ने आगे होकर सामने की ओर से जब प्याले में और चाय डाली तो करीम के कानों में संजय की आवाज फिर पडी, "लाल सुख रोशनी बहुत फीकी बहुत गहरी लाल "

सवेरे का उजाला यू तो अभी भी हल्का था, पर आँखो के आगे रगो का अलगाव जरूर कर रहा था। करीम ने जरा चौंककर लडकी के सिर पर ली हुई चुनरी की ओर देखा, वही कल वाली गहरे लाल रग की चुनरी थी।

करीम की घबराहट कुछ हलकी पड गयी। लगा, संजय का होश अभी भी कहीं धरती से जुडा हुआ है, शायद इसी लिए अब उसे हरे रग की बजाय लाल रग की रोशनी दिखाई दी है यह जरूर लडकी की लाल चुनरी का कोई असर होगा, चाहे उस ने आखें खोलकर उधर देखा नही

और जरा दिन चढा तो करीम डाक्टर की ओर चल दिया। उसे मालूम था कि वह न भी जाय तो भी डाक्टर खुद आ जायेगा कल कह गया था, पर दिल की तरह पाव भी कहीं टिकते नही थे।

पावो को डाक्टर वाली गली पर डालकर करीम जब डाक्टर के पास पहुँचा, तो उस का बग उठाते हुए बोला, "आप का किया चुकाऊँगा, डाक्टर साहब! बस, सारा जतन लगा दीजिय, जितनी लगा सकते हैं।"

"मरीज का हाल क्या है ?" दरवाजे से बाहर पर निकालते हुए डाक्टर ने पूछा, फिर दरवाजे के पास खडा हो गया।

"वसा ही है रत्ती भर फर्क नही सिर्फ यही फर्क है कि बुखार नही मालूम होता।" करीम ने कहा और बाहर टैक्सी की ओर बढने लगा।

"एक मिनट " डाक्टर ने उस से कहा और वही दरवाजे के पास खडा रहा। करीम पास आ गया तो डाक्टर ने कहा, "आप का नाम करीम कादिर है न ?"

"हाँ जी !"

"मरीज का नाम आप ने संजय लिखवाया था ?"

"हाँ जी !"

" पर आप मुसलमान, वह हिन्दू "

"हाँ जी !"

" मेरा मतलब है, अगर उस की हालत बिगड गयी, कुछ भी हो सकता है, तो उस का जिम्मेदार कौन होगा ?"

"भले-बुरे का मालिक अल्लाताला बन्दा क्या कर सकता है जी ?"

"आप समझे नही अस्पताल में दाखिल करवाना पडा तो वहा दस्तखत

कौन करेगा ?"

"मै करूँगा जी ।"

"पर आप उस के कुछ नही लगते, दस्तखत तो घर के किसी सबधी को करने पड़ते हैं "

"आप इन बातो मे न पड़ें, डाक्टर साहब ! वह अच्छा हो गया तो उस से ही पूछ लीजियेगा, मेरा उस से क्या रिश्ता है ।"

"वह तो मैं समझता हूँ, लेकिन कानून तो इस रिश्ते को नही समझता ।

करीम के दिल मे होल सी उठी । माथे पर एक त्योरी भी पड गयी । बोला "वे काहे के कानून हैं जी, जो यारियो का रिश्ता ही नही समझते ?

डाक्टर के चेहरे पर करीम वाला खयाल नही आया वह दुनिया की कतर-ब्योत और शताब्दियो से मस्तिष्क मे पडे हुए खयाल से कहने लगा, ' अच्छा होगा अगर इस वक्त आप उस के घरवालो को खबर कर दें, उस के मा-बाप को '

"उस के मा-बाप कोई नही हैं, जी ! '

"कोई बहन-भाई होगा ?"

"बहन नही है एक भाई है, पर सौतेला, जो बहुत सालो स उस से नही मिला है ।'

"पर इस वक्त उसे इत्तला करना बहुत जरूरी है ।"

"वह तो मैं नही जानता जी, कहा रहता है, न मुझे उस का नाम-पता मालूम है ।"

"कही से मालूम करो ।

"नही जी, मै कहा स पता कर सकता हूँ ?

"फिर ? '

"सब कुछ अल्लाह पर छोड दीजिये !"

' सोच लें, कल यह हिन्दू-मुसलमान का सवाल भी बन सकता है ।'

"बनने दीजिये जी, अगर बनता है तो "

"पर आप के छोटे-छोटे बच्चे हैं ।"

"कोई बात नही जी ! अगर उसे कुछ हो गया, तो फिर हम कौन सा जिन्दा मे रहना है ?"

डाक्टर बाहर खडी हुई टैक्सी की ओर बढा, करीम भी उस का बग उठाकर टक्सी म बैठ गया । टक्सी चल पडी, तो करीम को वह समय याद आ गया । जब बीमार मीता को उस के घर वाले ने अलग कमरा लेकर घर के बाहर फेंक दिया था । उस का, जब तक वह जीवित रही, कोई वारिस न बना । पर जब मर गयी तो कानून को हाथ म लेकर उस के वारिस आकर खडे हो गय थे ।

टक्सी जिस भी सडक पर मुडती, दोनो ओर मकानो की पक्तियाँ दिखाई

दती थी। करीम कभी दाया आर देखता, कभी वायी आर। उसे लग रहा था, जम कही भी काई इसान जिन्दगी का वारिस नहा है, सब जगह मौत क वारिस है।

डाक्टर और करीम जब सजय क पास पहुँचे, करीम न डाक्टर को सवेरे तडकेवाली रगा की वात बताई। डाक्टर ने नाडी देखी, सांसा की गति देखी, थर्मामीटर लगाया और फिर इजेक्शन लगान की तयारी करन लगा।

करीम न बताया, 'आज सवरे मैं ने इसे साथ बिठाकर पिलायी थी, प्याल स "

सजय के अगा म हरकत अभी भी नही थी। डाक्टर न उस के हाथ, बांह, पाँव कई बार उठा हिलाकर देख। सजय का उन के हिलाय जान स कोई आपत्ति नही मालूम हाती थी, जस ये सार अग उस के न हा, किसी और के हो।

' आज दूध और शोरबे स थाडी सी रोटी भी दे दा, या पतले-से चावल पकाकर।" डाक्टर न कहा और सजय को बुलाने की काशिश करने लगा।

"काई फक मालूम हाता है जी ?" करीम न उतावली स पूछा।

"हाँ, थोडा-सा।" डाक्टर न कहा।

"काहे म जी ? हम तो दिखाई नही देता।" करीम और आगे होकर सजय के चेहरे का गौर से देखन लगा।

"शायद आप न ध्यान नही दिया। आज जब बांह म सुई लगायी थी तो उस का चेहरा कुछ कस-सा गया था, जसे उस ने सूई लगन की पीडा को महसूस किया हो थल ऐसा नही हुआ था।" डाक्टर ने बताया।

डाक्टर चला गया तो करीम ने दूध के प्याले म डबलरोटी का एक टुकडा डालकर एक चमचा चीनी डाली और उसे चमचे से घोलते हुए सजय के सिरहाने की आर बठकर अपनी छाती का सहारा देकर उस सवेरे की तरह बिठा लिया। और दूध का प्याला अपने हाथ म लेकर उस का चमचा सजय के हाथ म देने का जतन करने लगा।

कितनी ही देर तक सजय के हाथ म हरकत नही आयी। चमचा उस की उगलियो म से बार बार गिरता रहा। पर एक बार करीम ने कुछ आश्चय से देखा कि सजय की उँगलिया ने चमचे को थाम लिया है। पर जब करीम ने उस का हाथ ऊँचा करके प्याले से छुआया तो चमचा फिर उस की उँगलिया म स गिर पडा।

फिर करीम ने उस के हाथ को अपने हाथ का भी सहारा दिया, पर चमचा उस की उँगलियो मे ही रख रखा और प्याले म से भरकर वह चमचा उस के होठो तक ले गया।

इस तरह जब करीम ने पाँच छ बार सजय के हाथ से ही भरा हुआ चमचा

उस के मुँह मे डलवा दिया तो ध्यान से देखा कि चमचे पर सजय की उँगलियो की पकड कुछ कस गयी है।

'यह देखो, यार! तुम्हारे हाथ, तुम्हारे पाँव, तुम्हारा मुँह " कहते हुए करीम की आवाज़ भर आयी।

करीम ने अपने हाथ की पकड ढीली कर दी तो देखा कि सजय ने चमचे को उँगलियो म अभी भी थामा हुआ है। उस का हाथ भी प्याले की ओर से, ऊपर मुँह की आर ख द वढ रहा है।

करीम के सारे शरीर मे आन द की लहर दौड गयी।

"सजय!" करीम के मुँह से आवाज़ निकली, चाहे उसे विश्वास नही था कि वह सुन लेगा, पर सजय ने आवाज पर हुकार भरी, कहा, "हाँ।'

'अब कैसा लगता है?" करीम को कुछ सूझ नही रहा था कि वह क्या कहे।

"सो अब आप लोग मेरा जिस्म मुम्म वापस दे रहे है?" सजय ने कहा तो करीम क कानो को विश्वास नही हुआ।

"तुम्हारा जिस्म हमेशा तुम्हारे पास था, पहले भी " करीम की आवाज़ भर आयी।

"नही, पहले नही था। वह धर्म काया के चिह्न थे, मुझे मौत के फरिश्ते ने बताया था " सजय ने कहा, तो करीम फिर बौखला गया।

"उस ने क्या बताया था?" करीम ने घबराकर पूछा।

"यही कि मौत के वाद रूह को कई दिन तक जिस्म नही मिलता।"

'कितने दिन?'

'पता नही ज मपत्री की तरह मौत की भी पत्री होती है।"

"मौत की पत्री? उस मे क्या लिखा हुआ होता है?'

"नय-काया "

क्या?"

"पहली धम काया, फिर आग और वायु की काया "

"फिर?"

"फिर सभोग काया "

'वह क्या होती है?"

'जैसा शरीर धरती पर होता था, वसा फिर मिल जाता है वही शक्ल वही सूरत "

"और अब तुम्ह वह मिल गया है?"

"हा, अव मुझे अपने वही हाथ-पाव दिखाई दे रहे है "

करीम क दिल का कुछ राहत मिली कि और कुछ नही तो इतना-सा फ़र्क़

तो पडा है कि अब उसे अपना जिस्म अपना लगने लगा है।

करीम ने कुनकुने पानी की बाल्टी मँगवायी और दरवाजा बन्द करके सजय के सारे शरीर को गीले तौलिये से पोछा। फिर उसे कल के धुले हुए कपडे पहना कर लिटा दिया।



शाम का समय था। बरकत बाहर आँगन म कूईं के पास चबूतरे पर बठकर कपडे धो रही थी और नेमत खिचडी के लिए दाल और चावल चुनते हुए उस से बातो म लगी हुई थी। फिर शायद उस की आवाज ऊँची हो गयी या करीम के कान पतले हो गये, करीम ने सुना, वह कह रही है, "जी करता है इस निगोडे नीम को आरी से चीर दू। इस ने तो दिन और रात मेरे हाथ मे झाड़ू थमा दी है। अभी सारा आँगन बुहारा था, अब फिर इस की पत्तिया का ढेर लग गया "

न जाने क्या करीम का दिल दहल गया। लगा, कोई उस का अपना शरीर आरी से चीरन लगा है।

सवेरे के बाद सजय ने फिर कोई बात नही की थी। सारा दिन करीम के मन से नीम के पड की तरह कड पत्तियाँ झडती रही थी। और अब शाम पडे नेमत की आवाज उसे नीम जसी कडवी लगी। नीम को चीरने वाली बात उसे अत्यन्त अपशकुन की बात लग रही थी।

मन म गुस्से का एक भभका-सा उठा और करीम उठकर बाहर आँगन मे जाकर खडा हो गया।

इस समय उस के मुह स न जाने क्या निकल जाता। तभी सामने वाले दरवाजे म से उस की बेटी शीरी आकर उस के निकट खडी हो गयी, "देखिय, अब्बा! मै क्या लायी हूँ?"

करीम ने देखा, बेटी के हाथ मे एक पौधा है, जड की ओर से मिट्टी मे लथ पथ। बेटी कह रही है, "अता चाचा के घर से लाई हूँ। यह देखिये, उन्होंने मुझ

थोडे से फूल भी दिये है, पर म ने कहा, 'चाचा ! मैं बार-बार फूल मागने के लिए आती अच्छी लगती हूँ ? देना ही है तो पौधा दे दीजिये। मैं आगन मे लगा लूगी।' अब्बा ! इस मे मोतिया के फूल लगेंगे "

करीम का जी ठडा हो गया। उसे लगा, सारा अपशकुन शकुन मे बदल गया है। और वह ख ुद भी बेटी की उम्र जितना होकर बोला, "चलो, फिर इसे लगा दें। मैं गडढा खोदता हूँ। कहो, कहा लगायें ?'

लडकी ने पूरे आगन को आखो से जाच की।

'सामने दरवाजे के पास न लगा दें, भीतर आते ही इस के फूल दिखाई देंगे ?" करीम ने पूछा।

"वहाँ कोई पैरो से उखाड ही न दे।" लडकी ने नही म सिर फेर लिया।

"फिर वहाँ कूई की तरफ "

"नही, वहा तो अम्मा कपडे सुखाने के लिए डालती है फिर वही दिन भर जूठे बतन पडे रहते हैं "

"फिर तुम्हारी कोठरी के पास लगा देते है, तुम ख ुद पानी दोगी, ख ुद उस का ध्यान रखोगी "

"वहा तो, अब्बा ! धूप सीधी पडती है, मैं भी दोपहर म भुन जाती हूँ। यह बेचारा तो उगने भी नही पायेगा।"

दायें हाथ की कोठरियाँ पूरब की ओर खलती थी, पर सामने की सारी कोठरिया कुछ छाह मे रहती थी। उन मे से अ तिम कोठरी, जो तीसरी दीवार की ओर थो, लडकी ने उधर देखा तो करीम ने जल्दी से हामी भर दी।

घर म ख ुरपा नही था, करीम ने छुरी और छैनी से ही एक छोटा सा गडढा बना लिया। लडकी न चुनरी म लपेटकर लाया हुआ पोधा उस म लगाया और फिर पानी देने लगी।

करीम ने मुह से कुछ नही कहा, पर मिट्टी से सन हुए हाथ धोकर दोनो हाथ आँखो से छुआये, और दिल मे दुआ मागी बेटी ! तेरे हाथ हो करमो वाले हा, सजय की जि दगी का पोधा फिर इस मिट्टी म उग आये '

दीवार से लगी हुई यही अ तम कोठरी थी, जिस मे इस समय सजय था। पर करीम ने मन का शकुन-अपशकुन लडकी को नही बताया।



रात के घने अँधेरे को सजय की आवाज चाकू की तरह चीर गयी, "नही, नही सात रगो के झूले पर खुदा नही, मीता है "

करीम ने आगन की बत्ती जलायी। देखा, कपन की एक रेखा सजय के सारे शरीर म दौड रही है। हाथो मे भी हरकत है, परो म भी।

करीम के मन मे एक भय उत्पन्न हुआ, 'सजय का होश न जाने किस देश मे पहुँच गया है और शरीर इस देश मे रह गया है। पता नही रूह और शरीर फिर इकट्ठे होंगे या नही।'

करीम ने उस के कान के पास मुह ले जाकर कहा, "तुम ठीक कहते हो, सात रगो के झूले पर मीता दीख रही है मुझे भी "

सजय अभी भी गुस्से मे था, बोला, "फिर अभी तुम ने क्यो कहा था कि वह मीता नही है और साथ ही यह कहा था "

सजय चुप हो गया तो करीम ने पूछा, "तुम ही बताओ, मैं ने क्या कहा था ?"

'यही कि गहरे लाल रग की रोशनी बहिश्त की है और फीके लाल रग की दोजख की "

'हाँ कहा था।'

"पर मुझे कही भी नही जाना है।'

'फिर तुम्हे कहाँ जाना है ?"

"जहाँ सात रगो का झूला है पर तुम झूठ बोलते हो।"

'नही, मैं झूठ नही बोला।"

'मैं ने भी सोचा था कि मौत के फरिश्ते झूठ नही बोलते।"

'पर मैं झूठ नही बोला '

"फिर तुम ने क्या कहा था कि वहाँ मीता नही है ?"

अब करीम को कुछ नही सूझा कि वह क्या कहे।

तुम बोलते क्या नही ? ' सजय ने पूछा तो करीम के मुह से निकला,

"कहा था, सोचा कि तुम बहिश्त देख लो "

"तुम न मुझे दूर से दिखाया भी था दोजख भी दिखायी थी जहा कई आदमी हाथा मे लहू से सन चाकू लिये नाच रहे थे पर मुझे मीता के पास जाना है मैं तम्हारे साथ कही नही जाऊँगा । तुम चले जाओ ।"

सजय न गुस्से होकर उसे जाने के लिए कहा तो करीम को इलहाम जसा एक खयाल आया, जल्दी से बोला, "सजय यार ! तुम्हे याद है, तुम पिछले ज"म मे क्या किया करते थे ?"

' मैं ? मालूम नही "

करीम अब सजय की बातो से कुछ भेद पा गया कि सजय का होश इस समय कहाँ है । और यह भी समझ गया कि अब जबदस्ती उस के होश को लौटाया नही जा सकता । इस लिए अटकलपच्चू उस की बातो की हामी भरते हुए बोला, ' मैं तुम्ह वह आईना दिखाऊँ, जिस म पिछला ज म दिखाई देता है ? '

' मैं ने वह देखा था, उस म अपने करीम को भी देखा था ।

' फिर यह भी देख लो कि तुम पिछले ज"म म क्या काम किया करते थ ।"

"अच्छा दिखाओ शीशा ।"

"यह देखा !"

"हा मुझे याद आ गया, मैं नाविल और कहानिया लिखा करता था ।

"फिर अब क्यो नही लिखते ?"

"अब कसे लिखू ?'

"यहाँ जो कुछ है, सब कुछ देखकर "

"पर लिखूगा कसे ? '

"क्यो ? मैं तुम्हे कागज क़लम ला दूगा ।

"पर तुम न कहा था कि अब चाहे मुझे हाथ-पाव मिल गये हैं पर य धरती के हाथो और परो की तरह नही हैं '

करीम सोच म पड गया, अब वह क्या कहे । उसे लगा कि सजय को काम मे लगाने की जो तरकीब उस न सोची थी, वह व्यथ हो गयी । सजय ने ही कहा, "यह लेखक होना भी एक अजीब शाप होता है ।"

"क्यो ? करीम ने धीरे से पूछा ।

' यही कि मनुष्य मरकर भी लिखना चाहता है, हाथ भी न रह गय हो तब भी लिखना चाहता है एक बात सुनो !'

'कहो ?"

' मैं जो कुछ देखूगा बोलता जाऊँगा तुम लिखत जाना । '

'हा !" करीम ने जल्दी से कहा ।

करीम को एक ही जबान थोडी-बहुत आती थी, उर्दू, लेकिन उस ने इस समय

हाँ कहने में ही भलाई समझी।

"अच्छा, फिर तुम मुझे वहाँ ले चलो, जहा लोग अपने हाथो मे लहू के चाकू लेकर नाचते हैं। वह दोजख है न ?"

"हा, पर यार ! तुम बहिश्त मे क्यो नही जाते ?"

"वहाँ बाद मे चलेंगे।"

"अच्छा ! चलो फिर "

"चलो।"

"सुनो ! तुम कागज-कलम लाये हो ?"

"नही।"

करीम उठकर सचमुच कागज कलम ले आया। उस के अपने पास न कागज था न कलम, वह बराबर वाली कोठरी म से अपने बच्चो की कापी और पेंसिल उठा लाया, और लौटकर सजय की चारपाई के पास नीचे फर्श पर बठकर बोला, "अच्छा, बोलो मैं कागज कलम ले आया हूँ।"

"देखो देखो उधर देखो !" सजय ने जोर से कहा।

करीम का कुछ पता नही लग रहा था कि वह किधर देखे। वह चुपचाप सजय के मुँह की ओर देखता रहा।

"अजीब बात है मैं ने दूर से समझा कि बहुत सारे बच्चे स्कूल जा रहे हैं, पर पास आने पर देखा कि बच्चे हैं ही नही, सिर्फ छोटे छोटे बस्ते हैं जो चले जा रहे हैं। दोजख म ऐसा ही होता है ?

"हाँ।"

"अगर बच्चे बस्तो के साथ नही जायेंगे तो वे पढेंगे कसे ? पर बात तो ठीक है अगर बच्चे पढ जायेंगे तो वे दोजख मे कसे रहेंगे "

करीम सजय के इस तक से हैरान सा सजय के मुह की ओर देखने लगा।

"सुनो ! तुम्हारा नाम क्या है ?" सजय न अचानक पूछा।

"मरा !" करीम को कुछ नही सूझ रहा था कि वह क्या कहे।

सजय ने कहा, "शायद मौत के फरिश्ते का यही नाम होता है, मौत का फरिश्ता।"

"हाँ।"

"देखो ! वहाँ मुर्गों की लडाई हो रही है चलो, पास चलकर देखें !"

"चलो।"

अचानक सजय के हँसने की आवाज आयी, साथ ही वह कह रहा था, "सामने देखो ! सब मुर्गे कुर्सियो पर बठे हुए हैं, एक-दूसरे को चोच मार-मारकर कुर्सी पर आ जाते हैं सब के परों म से लहू बह रहा है देखो, दीवार पर क्या लिखा हुआ है ?"

' तुम पढकर सुनाओ।" करीम ने धीरे से कहा।

' तुम्हे पढना नही आता ?"

"नही।"

"देखो ! लिखा हुआ है कि इन सब कुर्सियो पर दोज़ख के कानून बैठे हुए हैं "

"अच्छा !"

"ओ खुदाया !" सजय का चेहरा उदासी मे डूब गया। उस ने कहा, "भला कानून इस लिए होते है कि वे एक दूसरे के शरीर लहूलुहान करते रहे ?" और फिर एक गहरी सास लेकर बोला, ' मै यह भूल ही गया कि य सब दोजख के कानून है।"

फिर कुछ देर के लिए खामोशी सी छा गयी तो करीम ने खामोशी तोडी, बोला, ' और क्या लिखू ?"

"ठहरो ! सामने देखो। बडी भीड लगी हुई है। एक आदमी एक बहुत ऊँची जगह पर खडे होकर बोल रहा है, सुनो !"

सजय चुप हो गया तो करीम भी चुप होकर ऊपर आसमान के तारो की ओर देखने लगा।

"रहम कर खुदाया !' करीम के मुह से निकल गया तो सजय ने जल्दी से पूछा, "क्या कहा ?"

"कुछ नही।"

' नही तुम ने खुदा का नाम लिया है देखो, वह आदमी जो बहुत ऊँची जगह पर खडे होकर बोल रहा था, अब वह हमे घूर-घूरकर देख रहा है सुनो ! वह कह रहा है कि यहा जो भी खुदा का नाम लेगा, उसे कैद कर दिया जायगा।"

"अच्छा ग़लती हो गयी, मैं अब नही बोलूगा।"

' देखो ! वह कह रहा है कि आजकल इलेक्शनो के दिन है, जो भी खुदा का और सच का नाम लेगा, उसे जेल मे डाल दिया जायेगा "

"पर क्यो ?"

' कहते है, इलेक्शनो के दिनो मे सच बोलना ग़ैर कानूनी होता है तुम खुद ही तो मुझे दोजख दिखाने के लिए लाये हो, और खुद पूछते हो, क्यो ! '

"मैं न तो लिखने के लिए पूछा था।'

सजय चुप सा हो गया, फिर बोला, पर यार ! जब तक मै खुद न लिखू, बात नही बनती !"

"यह लो कागज खुद लिखो।"

"तुम मुझ से मजाक कर रहे हो। अगर मै तुम्हारे इस लोक की बजाय

धरती पर होता, मृत्युलोक म, तो मैं खुद ही लिखता यहाँ बहुत अजीब अजीब बातें दिखाई देती है।"

"क्या ?"

"देखो ! इलेक्शन वाले अपना-अपना निशान चुनते हैं न "

"हाँ।"

"यह जो तम्बू लगा हुआ है, इस तम्बू वाला ने अपना निशान कुर्सी बनाया हुआ है चलो, देखें, दूसरे तम्बू वालो ने अपना निशान क्या रखा है।"

"चलो !"

"यार ! कमाल है, दूसरे तम्बू वालो ने भी अपना निशान कुर्सी रखा हुआ है पहले तम्बू वालो न सफेद रग की कुर्सी बनायी हुई थी, इन दूसरे तम्बू वालो ने हरे रग की बनायी हुई है चलो, तीसरा तम्बू भी देखे !"

"चलो।"

और सजय जोर-जोर से हँसने लगा, "देखो यार ! इन्होंने भी अपना निशान कुर्सी रखा हुआ है, इन की कुर्सी लाल रग की है यह सब कुछ देखकर मेरा जी करता है, मैं फिर मृत्युलोक चला जाऊँ और अपने हाथो से यह सारा हाल लिखू।"

करीम न दाया हाथ माथे से लगाकर ऊपर आसमान की ओर उठाया, दिल मे कहा, 'शुक्र है खुदावन्द ! इस ने फिर धरती पर आने की बात सोची है।'

सजय कह रहा था, ' भयानक बहुत भयानक ! सुनो ! सुनो ! एक नक्कारची ऐलान कर रहा है कि इलेक्शन जीतने वाले के गले मे अट्ठाईस खोपडियो का हार डाला जायेगा '

क्या ?" करीम न घबराकर कहा।

"और यह भी कि रात को उस की दावत मे लाशो के ताजा खून के जाम पिये जायेंगे और, देखो ! सामने देखो ! उस मदान म लोग कसे रो रहे हैं, चीखे मार रहे हैं कुछ आदमी मिलकर छुरी से उन का मास काट रहे है '

"शायद उन्होंने कोई कसूर किया होगा ?"

"चलो, पास जाकर देखें।"

'चलो।"

' कमाल है, मदान म बास पर एक बोर्ड टँगा हुआ है कि यहा लोगो से टैक्स वसूल किया जाता है।"

टक्स ?"

"देखो लिखा हुआ है कि जो लोग बिलकुल बे अक्ल होंगे, न कोई काम करेंगे, न किसी काम के काबिल होंगे, उन स कोई टक्स नहीं लिया जायेगा, पर जो लोग अक्ल के जोर से रोटी कमायेंगे और रोटी खाने से उन के शरीर मे

ताज़ा लहू चलेगा, वह पचास प्रतिशत अपना लहू और मास टक्स के तौर पर देंगे। और जो लोग अक्ल के ज़ोर से और भी बड़े काम करेंगे, उन के टक्स की दर नब्बे प्रतिशत होगी।"

करीम ने देखा, सजय का सारा शरीर कांप रहा है। वह कागज-पेंसिल वही रखकर सजय के पर दबाने लगा।

धीरे धीरे सजय की आवाज आयी, "नही देखा जाता, नही देखा जाता दे आर टक्सिग दि माइड ऐंड द आर प्रोटेक्टिग दि माइडलेस।"

करीम ने गिलास मे पानी डालकर सजय को पिलाया और फिर हौले-हौले उस के माथे को दबाने लगा।

अचानक फिर सजय की चीख जसी आवाज आयी, 'तलाशी ? काहे की तलाशी ?"

करीम न अटकलपच्चू सा सवाल किया, "काह की तलाशी ल रहे ह ?'

"कहत हैं, आज सारे शहर की तलाशी ली जा रही है सब के घर-बार टटोले जायेंगे, जेबें भी

"क्यो ?"

"कहते हैं, कोई सच को स्मगल करके यहा ले आया है कहत है, आप सोना स्मगल कर सकते है, हीरे भी अफीम भी, शराब भी, कुछ भी कर सकते है, पर सच को आप किसी तरह नही ला सकते, वह सब से खतरनाक होता है "

"फिर, अब ?"

"कहते हैं, जो आप ने माल-असबाब की बजाय उस छाती म छिपा लिया, तो वह छुरी से चीरकर वहां स भी निकाल लेंगे '

' फिर अब ? '

"चलो, किसी बडे आदमी से मिलें, किसी मिनिस्टर से, जो हमे इन से छुडा दे "

' चलो।"

"पर किस से मिले, हम तो किसी को नही जानते। ठहरो ! इन से पूछता हूं, 'क्या ? क्या ?' "

करीम न देखा, सजय के माथे पर ठडा पसीना आ रहा है। पास म कोई कपडा नही मिला, उस न बिस्तर की चादर किनारे की ओर स उठाकर सजय का माथा पोछा।

सजय कह रहा था, "सुनो ! यह क्या कह रहे है ? पता नही यहा का राज्य कसे चलता है !"

"क्या कहत है ? '

"कहते हैं, यहाँ एक मिनिस्टर सिर्फ जंगी सामान का मिनिस्टर है, जो दूसरे इलाक़ा में हर महीने गोला और बारूद बेचता है, इस लिए कि भई लोगों के पास यह सामान ख़त्म न हो जाय नहीं तो अगर लोग लड़कर मरेंगे नहीं तो सारे इलाकों की आबादी बहुत बढ़ जायगी।"

"अच्छा!"

"और कहते हैं, एक मिनिस्टर सिर्फ़ फ़िसादों का मिनिस्टर है, जिस के ज़िम्मे यह होता है कि एक बरस में कम से कम बारह बार अलग-अलग धर्मों के लोगों में फ़िसाद ज़रूर करवाये जायें नहीं तो धर्म के नाम पर मर मिटने की आदत लोगों को नहीं रहेगी।"

'तौबाह!"

"तुम ने तौबाह तौबाह क्या लगा रखी है, सुनो तो सही, क्या कह रहे हैं कह रहे हैं, एक मिनिस्टर सिर्फ़ हड़तालों का ज़िम्मेदार है कि हर कारखाने में छह छह महीने के बाद एक हड़ताल ज़रूर करवायी जाय, नहीं तो इतना माल पैदा हो जायेगा कि कीमतें गिर जायेंगी और सरकार को घाटा हो जायगा'

"और, और क्या कहते हैं?"

"कहते हैं—बताओ किस मिनिस्टर से मिलना चाहते हो। यहाँ एक मिनिस्टर सिर्फ रिश्वतख़ोरी का मिनिस्टर है, जिस का यह ज़िम्मा है, किसी भी दफ्तर में वह कोई काम बिना रिश्वत न होने दे, नहीं तो, कहते हैं, लोग सरकारी ओहदे वालों की इज्जत करना भूल जायेंगे।"

संजय ज्यों ज्यों बोलता जा रहा था, करीम का सिर चकराता जा रहा था। उसे मालूम नहीं हो रहा था कि अब यह बात कहाँ पहुँचेगी, और संजय का होश—दोज़ख की भयानक तफ़सील से कैसे परे हटेगा।

'देखो! कह रहे हैं, बस एक मिनिस्टर और है जो लोगों की बे अक्ली का ज़िम्मेदार है, लोगों को सिर्फ़ सुनने का कायदा सिखाया जाय सोचने का कभी न सिखाया जाये। सोचने से कहते हैं कि लोग आज्ञाकारी नहीं रहते'

संजय ने अपने शरीर में खौल रहे गुस्से से बाँह को उठाया और करीम की बाँह को खींचकर बोला, "मैं और कुछ नहीं देख सकता चलो, मेरी मौत के फ़रिश्ते! तुम जैसे मुझे यहाँ लाये थे, वैसे ही अब मुझे यहाँ से ले चलो।"

करीम समझ नहीं पा रहा था कि वह हँसे या रोये। आज कितने ही दिनों के बाद संजय के शरीर में हरकत आयी थी, पर होश अभी भी न जाने किस लोक में था।

संजय क्रोध से काँप रहा था। करीम जल्दी से सिरहाने की ओर से उठकर उस की पायँते की ओर गया और हाथों से उस के पैरों के तलवों को मलने लगा।

रात का अन्तिम पहर था, जिस समय करीम ने संजय के सिर को हौले से तकिये पर टिकाया और उठकर अपने बिछौने पर घड़ी भर के लिए आँख लगाने के लिए लेटने लगा तो दोनों हाथ ऊपर आसमान की ओर किये, "तेरा शुक्र, खुदावन्द करीम ! तेरा शुक्र !" और करीम को लगा, जैसे उस के दोनों हाथ तारों से भर गये हैं।



करीम की आँख खुली तो संजय की चारपाई की ओर गयी उस की नज़र चारपाई के पाँवों से टकराकर ज़मीन पर गिर गयी।

संजय चारपाई पर नहीं था।

करीम के हाथ-पाँव जैसे धरती पर रह गये हों, और उस की रूह खाली आसमान में डोल रही हो।

आँगन का बाहरी दरवाज़ा चौपट खुला हुआ था

करीम दरवाज़े की ओर दौड़ा, सामने खाली गली दिखाई दे रही थी। गली से भागता हुआ वह बाहर की सड़क पर आ गया, सड़क की धूल भी अभी नींद से जागी नहीं लगती थी।

दाहिने हाथ की ओर और गलियाँ थीं, सिर्फ बायीं ओर एक पगडंडी थी जो घरों के पिछवाड़े खँडहरों की ओर जाती थी। करीम ने उधर की तरफ कदम उठाये। उसे विश्वास नहीं होता था कि छत्तीस घंटे पहले संजय जिन पाँवों को अपने पाँव नहीं समझता था, उन्हीं पाँवों से चलकर उधर गया होगा। पर नज़र के लिए और कुछ खोजने योग्य कहीं कुछ दिखाई भी नहीं देता था।

करीम को एक झलक सी दिखाई दी, जैसे ऊँचे नीचे पत्थरों में एक कुछ मनुष्य के आकार जैसा हो पर वह बिलकुल निश्चल था, बुत की तरह। करीम इस खँडहर के एक एक पत्थर से परिचित था। वहाँ कोई साबुत या टूटा हुआ बुत नहीं था फिर भी उस ने आँखें झपकाकर देखा कि शायद दृष्टि का भ्रम

हो

और आगे बढा, तो पाव म अटके तहमत से एक ठोकर सी लगन को हुई। पाँव सम्भल गया, पर उस के झटके से एक छोटा सा पत्थर फिसलकर वातावरण की निस्तब्धता को ताड गया, तो करीम न उस बुत को हिलते हुए देखा।

करीम के पाँव जसे पत्थ हा गय। पास पहुँचा तो सजय ने चुपचाप अपना सिर करीम की छाती स लगा दिया।

करीम से बोला नही गया।

सजय न हो कहा, 'यकीन नही आता, करीम मियाँ! तुम और मैं एक ही दुनिया म हैं?'

"इस धरती पर तुम्ह मुश्किल से लौटाकर लाय हैं।" करीम ने कहा, और आखो म आया हुआ पानी पोरो से छिटक दिया।

'अभी भी पता नही लग रहा है कि सच क्या है, और सपना क्या है।" सजय न करीम के मुह की ओर देखत हुए दोनो हाथो से जैसे उसे फिर टटोलकर दखा और पूछा, "अब मैं जहा से उठकर आया हूँ, वह तुम्हारा घर था?'

"हाँ, तुम्ह बुखार म होश नही आ रहा था, इस लिए मैं तुम्हारे कमरे से तुम्ह अपने घर ले आया था।" करीम ने बताया।

"वहाँ मैं ने तुम्ह चारपाई पर लेटे हुए देखा था, तुम्ह हाथा से छूकर भी देखा था, पर पता नही लग रहा था कि कहा हूँ।"

"मुझे जगाया क्यो नही?"

"ख़ुद पता नही लग रहा था कि सोया हुआ हूँ या जाग रहा हूँ यही देख रहा था कि यह कौन सी जगह है। तुम्ह कुछ पता नही, मैं कहाँ था, मुझे भी पता नही।'

"तुम्ह कुछ याद आता है?"

"याद आता है, पर यकीन नही आता। अजीब सपना था, बिलकुल सच लगता था।"

'चलो, घर चलो! घर की औरतें जाग गयी हागी तो घबरा रही हागी।"

सजय चलने लगा तो फिर पल भर के लिए रुक गया, बोला "करीम मियाँ! तुम नहीं जानते, मैं कहा गया था। सचमुच वहाँ गया था, जहा से कभी कोई लौटकर नही आता।"

"वह मै जानता हूँ, पर तुम्हे ख़ुदा की कसम, अब लौटकर वहा न जाना।"

सजय हँस सा पडा, 'एक दिन तो सचमुच जाना है—मुझे भी, और सब का भी।" और सजय ने हैरान-सा होकर पूछा, 'पर यार! तुम्ह कसे पता है, मैं कहा गया था?"

मुझे तो पता है, पर तुम्ह सचमुच याद है तुम कहाँ गय थे?"

"हाँ जिसे यह नही, अगला देश कहते हैं। यह जरूर बुखार की तेजी म आया हुआ सपना होगा, पर बहुत भयानक था। अगर तुम्हे पूरा सपना सुनाऊँ तो तुम कांप उठो।"

"अच्छा," करीम कुछ कहने लगा था, फिर रुक गया। उस ने पूछा, "तुम सपने मे कुछ उनचास दिन कहते थे, याद है ?"

"करीम मिया! सदियो से यह मान्यता चली आ रही है कि आदमी जब मर जाता है तो उस की रूह को लौटकर दुनिया म आने से पहले उनचास दिन आस मान मे रहना पडता है।"

करीम हँस सा पडा, बोला, "फिर तो शुक्र है, यार! तुम ने चार पाँच दिन मे ही उनचास दिन खत्म कर लिये। अगर कही सचमुच के उनचास दिन इस तरह काटने पडते, तो फिर मैं भी तुम्हे ले आने के लिए तुम्हारे पीछे जाता। अब तक तो मैं इसी दुनिया म खडे रहकर तुम्हे आवाजे देता रहा।"

अब करीम की नही, सजय की आखो मे पानी आ गया। उसे बचाने के लिए करीम ने क्या क्या जोड-तोड किये होगे, सजय ने कल्पना की, और उस का मन करीम के आगे झुक गया।

"तुम उठकर इधर खँडहरो मे क्यो आ गये ?"

'किसी भी जगह की पहचान नही पड रही थी। एक दरवाजा सा नजर आया, खोलकर देखा बाहर एक गली-सी भी दिखाई दी और आगे हुआ, तो सामने कुछ भी नही था, इधर मुडा तो खँडहर दिखाई दिये देख रहा था, यह सचमुच की दुनिया है या नही। अगर है भी तो अभी बसी हुई है या खँडहर हो चुकी है ?'

करीम ने सजय को दोनो बाहो म भर लिया, और किसी के लिए तो पता नही, लेकिन अगर तुम्हारा होश लौटता नही, तो मेरे लिए तो यह खडहर हो ही जानी थी।

करीम और सजय लौटकर गली के मोड तक आये तो सजय ने कहा, 'तुम्हे आराम से बैठकर सुनाऊँगा, मैं ने परलोक के सपने मे क्या क्या देखा। पर एक बात अभी बताने को जी कर रहा है, वहाँ मौत के फरिश्ते ने मुझे एक अजीब शीशा दिखाया कि अगर तुम चाहो तो तुम्हे पिछले जन्म का सारा हाल उस मे दिखाई दे सकता है और शीशे म मैं ने सब से पहले तुम्हे देखा था।"

'देख लो, फिर मैं ने सचमुच यारी का हक कमाया हुआ है। तभी तो मर-कर भी मीना की तरह मैं तुम्हारी स्मृति म बना रहा।"

सजय ने बात बीच म ही काट दी, "तुम्हे कैसे पता है कि मैं ने मीता को भी कितनी ही बार देखा था ?"

'तुम्हारे ही मुह से सुना था, तुम सपने मे बडबडाये जा थे।"

"और भी कुछ बोला था ?"

"बहुत कुछ।"

"क्या-क्या ?"

'बैठकर बातें करेंगे, शायद कई दिन यही बातें करते रहेंगे।"

और करीम ने घर के दरवाज़े में कदम रखते हुए एक खामोशी आंगन में देखी। और जल्दी से सब को हौसला देता हुआ बोला, "लो बरकत ! नेमत ! जो शीरनी बांटनी है, बांट लो। देखो, मेरा यार अच्छा हो गया।"

और करीम ने संजय की ओर मुड़कर कहा, 'ये मेरी दोनों बेगमें हैं, और ये चारों बड़े छोटे उन के बिलोटे "

संजय ने दोनों को हाथ उठाकर सलाम किया, और फिर शीरी और जमीला की ओर देखते हुए कहा, 'करीम मियां, यह तो बिलोटा नहीं, खासी बिल्लियां हो गयी हैं।"

करीम ने हँसकर शीरी की ओर देखा और कहा, "यह बड़ी बिल्ली परसों रात मुझ से भी छिपकर कोठरी में बैठकर ख़ुदा से तुम्हारे लिए दुआ मांग रही थी।"

शीरी ने अपनी लाल चुनरी की किनारी लजाकर दांतों में बीच दे ली और भीतर की तरफ जाती हुई बोली, "अब्बा ! तुम्हारे लिए चाय बनाऊं ?"

सब चाय पी रहे थे जब डाक्टर आया।

करीम ने जल्दी से चारपाई से उठकर डाक्टर का बैग पकड़ लिया और बोला, डाक्टर साहब ! आज तो मुझे ही जल्दी से इंजेक्शन लगा दीजिये नहीं तो मैं ख़ुशी से पागल होने का हूँ।"

डाक्टर ने उधर देखा जिधर संजय चारपाई पर बैठा हुआ चाय पी रहा था। आंगन में अब कुछ धूप आ गयी थी। पर जिस कोने में नीम की छाया थी करीम ने दो चारपाइयां उधर छाया की ओर डाली हुई थी।

संजय ने डाक्टर की ओर देखा, अंदाज़ से जान लिया कि वह उसी के इलाज में था, इस लिए चाय का खाली प्याला चारपाई के पाये के पास रखते हुए उठकर खड़ा हो गया।

'मुबारक हो, संजय साहब ! हमारे पास इस लोक में लौट आने की।" डाक्टर ने कहा और संजय से हाथ मिलाया।

"लगता है, बेहोशी में बहुत बोलता रहा हूँ, तभी आप इस लोक की बात कर रहे हैं।" संजय हँस पड़ा।

'आप ने वहां कौन कौन से रंग देखे, नीला, लाल, पीला, एक दिन बैठकर बातें करेंगे। पर इस वक्त तो बांह आगे कीजिये, आज का इंजेक्शन लगा दूं।

कल चाहे आप खुद मेरे क्लिनिक में आकर लगवा लीजियेगा। दो एक दिन और लगा ही दें तो अच्छा है।" डाक्टर ने कहा तो करीम ने हँसकर बाहु आगे कर दी, "अब मरीज बदल लीजिये जी, और इन से कहिये, दो चार दिन मेरी खिदमत करें।"

"तुम में, मियां! बडी जान है। दवाएँ तो खैर अपनी जगह हुईं, लेकिन असल में इन की जान तुम्हारी खिदमत ने ही लौटाई है।" डाक्टर ने करीम से कहा और सजय को इंजेक्शन लगा दिया। दवा भी बदली, अब सिर्फ ताकत के लिए नयी दवा लिख दी।

"जान तो मेरी सचमुच, डाक्टर साहब! मेरे यार ने ही लौटाई है।" सजय कह रहा था, जब करीम ने बात काट दी, "नहीं जी, मेरी औकात नहीं थी इस धरती पर लौटाकर लाने की, यह तो भला हो इस के कलम का जो परलोक में अडकर बैठ गया कि यहाँ नहीं लिखा जाता। यह तो दोजख का हाल लिखने के लिए बेसब्र हो गया था तभी धरती पर लौट आया। भई यहाँ और कुछ नहीं तो आदमी लिख तो सकता है।"



सजय को राजी हुए पूरे दो दिन हो गये तो तीसरे दिन सवेरे उठते ही उस ने करीम से कहा, "यार! आज मेरे हाथों में खुजली हो रही है।"

करीम ने हँसकर जोर से आवाज दी, "ऐ बेटा शीरी, जमीला! कहाँ हो? जल्दी से एक बोरी ले आओ।"

सजय करीम के मुह की ओर देखने लगा तो करीम उसी रौ में लडकियों की ओर देखते हुए बोला, "लो भई, हाथों में खुजली हो, तो बहुत पैसा मिलता है। सो, लडकियो! बोरी तैयार रखो रुपयों से भरने के लिए। आज मेरे यार के हाथों में खुजली हो रही है।"

सजय हँस पडा, 'वे हाथ और होते हैं यार, जिन में रुपयों की खुजली

होती है। तुम्हारे-मेरे जसे लोगा के हाथा म तो कामो की खुजली होती है। मैं सोचता हूँ, बहुत दिन हो गये मेहमाननवाजी करवाते हुए, अब अपने कमरे मे जाकर कोई काम करूँ।"

करीम ने अपने दोना हाथो की ओर देखा, "खुजली तो सच म मेरे हाथा म भी हो रही है। ये भी जब तक मशीन न चला ले, इ ह बेचनी हाती रहती है।"

"तुम ने प्रेस से छुट्टी ले रखी है ?" सजय ने पूछा।

"वह ता लेनी ही थी, पर चार दिन ज्यादा ही ले ली। क्या वार है आज ?"

"मगल।"

"सो मगल, बुध, जुमेरात, जुमा, हफ्ता और इतवार—अभी छ दिन बाकी हैं।" करीम ने उँगलिया पर दिन गिनते हुए कहा, "हिसाब से ता पीर को जाना है काम पर।"

"तनखाह कटाकर छुट्टी ली, या "

"वसे तो मेरी छुट्टी बनती थी, पर मालिक छुट्टी दने क लिए राजी नही था। मैं ने कहा था, छुट्टी तो जरूर चाहिए, चाहे तनखाह दें या न दें, आप की मर्जी। सो उस ने गोल मोल-सी हा की थी। पर वह तो कोई बात नही है, तनखाह भी काट लेगा तो क्या है छुट्टी का मकसद तो पूरा हुआ " करीम कह रहा था जब सजय को चिन्ता हुई कि करीम ने न जाने कसे डाक्टरो और दवाओ के पैसे दिये होगे, कौन जाने उधार किया होगा या घर का कोई गहना-पत्ता बेचा होगा, सो, चाय के अन्तिम घूटो का जल्दी से पीते हुए बोला, "चलो, फिर अपने-अपने काम पर चलें। तुम बाकी छुट्टी कटवाकर अपना काम करना, और मैं भी प्रेस जाकर देखता हूँ, शायद प्रूफो का कोई काम अभी मिल जाये "

"अच्छा, फिर मैं जाता हूँ, मालिक तो शुक्र करेगा कि मैं काम पर आ गया, और अगर कोई प्रूफो का काम हुआ तो लेता आऊँगा। अभी तुम्हे मैं बसो और साइकिलो पर जाने की परेशानी नही उठाने दूगा।" करीम ने एक हुक्म की तरह सजय से कहा और घर की रसोई की ओर मुह करते हुए बोला, "नेक बदियो ! दो रोटियाँ पकाकर डब्बे म रख दो " और फिर अपने बडे लडके को आवाज देकर बोला, "दुल्ले ! देखो बेटा, मेरी साइकिल मे हवा भरी हुई है ?"

करीम एक प्रेस मे मशीनमैन का काम करता था। छुट्टी पर था, इस के आने की आज किसी को उम्मीद नही थी पर वह जब प्रेस पहुच गया तो प्रेस का मालिक उस की ओर ऐसे देखने लगा, जसे वह किसी कठिन समय म छत फाड-कर प्रकट हुआ हो।

"आ भई करीम मियाँ !" मालिक कुर्सी से उठते हुए बडे तपाक से बोला।

पर दूसरे पल ही उस की आवाज सिकुडकर ठण्डी पड गयी, खयाल आया कि इन वकरो का अपनी मोहताजी अधिक नही बतानी चाहिए, नही तो य और सिरचढे हो जाते है। सो बोला, "आप लोग तो छुटिटया लेकर घर बठ जात है, छुट्टियो की तनखाह मुफ्त जो मिलती है। यह नही देखते कि हम तो ग्राहको को काम वक्त पर करके देना होता है "

एक शका उस के मन म यह भी आ गयी कि करीम शायद और छुटटी लेने के वास्ते अर्जी देने के लिए आया है। इस लिए उस की आवाज और सख्त हो गयी, और वह बोला, 'वह जो तुम अपनी बजाय भाडे का टट्टू दे गय थे, उस से यह तो पूछ लेना चाहिए था कि उस ने कभी पहले सिलिंडर मशीन का नाम भी सुना है या नही ?"

करीम हँस सा दिया 'नही, जी, वह मैं ने काह को दिया था, वह तो आप न खुद ही कहा था कि चार दिन काम चला लेगा, पहले भी वह आप क यहाँ मशीनमैन था।"

'था भई, पर तब हमारे पास ये सिलिंडर मशीने कहा थी ? तुम ने ही कहा था कि तुम ने इसे काम समझा दिया है।"

"जसा आप ने कहा था, दिहाडी लगाकर समझा दिया था, सो, भाड के टट्टू न मशीन के दुलत्ती मार दी है ? करीम की हँसी सी निकल गयी।

मालिक ने और मुह बिगाड लिया। करीम का इस तरह हँसना उसे अच्छा नही लगा। जल्दी से बोला, "पर अब तुम्ह और छुटटी नही मिल सकती '

'मै छुटटी लेने कब आया हूँ जी, मैं तो उलटे छुट्टी कटवाने आया हूँ। आना तो इतवार के बाद पीर को था, मै न कहा—भई, जिस काम के लिए छुट्टी ली, वह हो गया, अब घर पर खाली बठकर क्या करूँगा।"

मालिक की आवाज म फिर कुछ तपाक आ गया, बोला, "अच्छा अच्छा फिर, आज बहुत जरूरी काम देना है, जल्दी से निकाल दो।"

करीम ने मालिक के दफ्तर के कमरे स निकलकर बाहर लकडी के बने हुए छोटे छोटे छप्परो के नीचे काम कर रहे कम्पाजीटरा से सलाम-दुआ की, और मशीनवाले कमरे म जाकर कोने मे टगे हुए अपन काम करने के कपडे पहन लिये।

इस कमरे म जो दो कम्पोजीटर फरमे बाधकर मशीन के पास रख रहे थे व करीम को पहचान हुए नही लगे। उन से करीम ने हँसकर कहा, 'यहाँ तो काम की बरकत हो गयी लगती है। क्या भाई, नय आय हो ? क्या नाम हैं तुम्हारे ?'

'बन्ता और सन्ता," उन म स एक ने कहा, 'यह तुम्हारा मालिक बहुत होशियार है, नौकरी नही देता, हम ठेके पर रखा है।"

करीम ने फरमा मशीन पर चढाते हुए कहा, ' भाई, काम मिल गया, और क्या चाहिए। नौकरी का नावा क्या शीशे म जडवान के लिए हाता है ?

दोना व ता और स ता करीम के पास आकर खडे हो गय और बाहर छ परा की ओर हाथ से इशारा करते हुए वाल, यह देखो नौकरियो वालो को दिहाडी म चार प ने नही बनाते। हम तो पोर तोडकर काम करते हैं ठेके पर जा काम करना हुआ।"

"हा, हा " करीम ने मशीन पर कागज च ाते हुए कहा, "जितना गुड डालोग, उतना ही मीठा हागा। जितन प न बनाओग रकम भी तो उतनी ही बनाओग।"

ब ता जल्दी स बोला, ' यह तुम भून ही गय, मिया कि हम कोई तन ही पूछता है जब काम अड जाता है। आग पीछे तो नौकरी वाल ही जँवाई होत है। काम हा या न हो, पहली का बँधी तनखाह घर ले जाते है।"

करीम मशीन पर कागज चढाकर मालिक स गिनती का आडर पूछन क लिए जा रहा था कि ब ता की बात सुनकर रुक गया बोला, "दास्त ! तुम यह भी भूल गये कि नौकरी वाले तो जँवाई होते ह, नकिन सग बेट तो काम वाले हाते हैं।"

दोपहर की आधे घण्टे की खाने की छुट्टी के समय जब सब काम करनेवालो ने अपने-अपने डब्बे खोलकर एक बेंच पर रख लिये तो करीम भी उन के साथ बैठकर खाना खाते हुए अपने पुरा े यार-दोस्तो स बोला, "सालो ! आजकल हाथ ढीले किये हुए हैं, काम क्या नही निकाल रहे हो ?"

एक कम्पोज़ीटर हँस पडा, बोला, "मिया ! जमाने की रफ्तार से चलना चाहिए, हम तुम्हारी तरह सतयुग के आदमी नही है।"

"अच्छा, बेटा !" करीम ने मुह के निवाले को चबाते हुए अपनी आवाज़ भी चबा ली "मुझे भी फिर कलयुग का भेद बता दो।"

एक और कम्पाज़ीटर ज़ोर से हँस पडा बोला, "जो कुछ बडे बडे सरकारी दफ्तरो मे होता है वह ढग हम ने भी सीख लिया है, वह हाता है—गो स्लो।'

' वह क्या होता है भाई ?'

'यही कि काम को आगे चलने ही न दो।'

' समझ गया।' करीम हँसने लगा तो एक कम्पाजीटर वाला, ' पर यह बात तुम्हारी समझ मे नही आयेगी चाचा !"

करीम ने बुजुर्गी मे सिर हिलाया, बोला "हा, भतीजे ! मेरी समझ म तो नही आयेगी कि आदमी काम पर ताला लगा द, और अपनी जबान खाल दे।'

तुम्हारा मतलब यह है कि हम अपनी मागें न माँगें ?' दो कम्पोज़ीटर

करीम पर गुस्सा खा कर बैठे।

करीम वैसे ही शांत गंभीर बोला, "चाचा कहा है तो चाचा की बात भी तो सुन लो। मैं ने कब कहा है कि तुम जो मांगो वाजिबी समझते हो, वह मत मांगो ?"

"तुम यही तो कह रहे हो "

"नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूँ। मैं यह कह रहा हूँ कि जबान चलाने का हक सिर्फ उस को पहुँचता है, जो हाथों को भी चलाता है। पूरा काम करो, और पूरी उजरत मांगो।"

"पर चाचा! चुप बैठने से उजरत कौन देगा ?"

"नहीं देता तो काम छोड़ दो।"

"लो सुनो चाचा की बातें! अच्छे भले रोजगार को लात मार दें और बेरोज-गार होकर घर बैठ जायें। यही तो फायदा होता है नौकरी का कि सताते भी रहो और खाते भी रहो। अब नौकरी से तो कोई निकाल नहीं सकता।" एक कम्पो-जीटर ने जब यह कहा तो औरों ने उस की ओर ऐसे देखा, जैसे उस की बहुत सयानी दलील की दाद दे रहे हों। एक और ने हामी भी भरी, "इसी लिए तो यूनियन होती है, और किस लिए होती है ?" और औरों से दाद-सी मांगते हुए बोला, "क्यों भई, मैं ने ठीक कहा है न ?"

करीम ने सब के सिर भेड़िया की तरह हिलते देखे, और अपने खाने के खाली डब्बे को बन्द करते हुए बोला, "जिस ने भी यह यूनियनों की तरकीब सोची है, कोई बहुत ही गांठ का पक्का रहा होगा। उस ने यह न सोचा कि तुम नारे लगा लगाकर नौकरियां तो लिये रखोगे पर तुम्हारी हड्डियों में पानी भर जायगा। मुझे एक बात बताओ !"

"क्या ?" सब ने कुछ खीजकर पूछा।

"यह कि आज तक जितनी भी हड़तालें होती है, यह बात तो जोर जोर से कहते हैं भई, महँगाई बढ़ गयी है इस लिए तनख्वाह भी बढ़ायी जायें। कभी हड़-ताल वालों ने यह भी कहा है भई, आज से ज्यादा काम करेंगे हम आज से ज्यादा तनख्वाह दी जाय ? बताओ मुझे कभी किसी ने यह कहा है ?" करीम की आवाज बात करते हुए बहुत गंभीर हो गयी तो सारे बकर हँस पड़े। उन में से एक बोला "करीम चाचा! सरकारी नौकर तो सरकार के जँवाई होते हैं। हर कुर्सी सरकार की बेटी होती है और कुर्सी पर बैठने वाला सरकार का जँवाई।"

करीम ने आह जैसी साँस भरी और कहा, "मैं भी यही कहता हूँ कि तुम अपने देश के बेटे बनो तुम्हारे दिल में देश का दर्द जागे! जँवाइयों को काहे का दर्द होता है ?" और करीम की सांस और गहरी हो गयी, "पर तुम से क्या कहूँ, देश के सब से बड़े जँवाई तो देश के मिनिस्टर होते हैं।"

सारे कम्पोज़ीटर हँस पड़े। एक बोला "करीम चाचा! कहाँ गये थे छुट्टी लेकर? बहुत ही गहरी बातें सीख आये हो... धरम से, अगर तुम भी किसी इलेक्शन में खड़े हो जाओ, ऐसी बातें करो, तो सब लोग तुम्हें वोट देंगे... हम तो देंगे ही।"

खाने की छुट्टी का आधा घंटा बीत गया था। सब के कानों में घंटी की आवाज पड़ी और सब के सब एक दूसरे की ओर देखते हुए, हँसते हुए अपनी अपनी जगह पर जाकर काम पर लग गये।

बाकी आधा दिन चलती हुई मशीन की ताल में बंधा हुआ, चुपचाप बीत गया। पर शाम को कोई छः बजे का समय था, छुट्टी होने का समय... जब एक जोर की 'खड़ाक' से वह चुप टूट गयी।

सारे करीम की मशीन वाले कमरे की ओर दौड़कर गये। करीम ने बन्ता और सन्ता दोनों के खाने के डब्बे हाथ में लिये हुए थे और वह मशीन से भी ज्यादा जोर की आवाज से गरज रहा था, 'सालो! आज घर जाकर बाल बच्चों को रोटी की जगह सिक्का खिलाओगे?'

सब समझ गये कि बन्ता और सन्ता ने कुछ टाइप चुराकर अपने-अपने डब्बे में डाल लिया है। पर यह कोई नयी और अनहोनी बात नहीं थी इस लिए सब हँस पड़े। एक जने ने जल्दी से मालिक के कमरे में झांककर देखा। उस ने कोई आधे घंटे पहले मालिक को प्रेस से बाहर जाते देखा था, फिर भी लौटकर कमरे में देखकर तसल्ली कर ली और करीम के पास आकर उस की बाँह पकड़कर बोला, 'छोड़ो मियाँ! तुम्हें क्या लेना है इस बात से। तुम काहे को रास्ता चलता से वैर बांधते हो?'

करीम के स्वभाव को सब जानते थे, इस लिए एक और जना आगे होकर करीम से बोला, "छोड़ो जी, जो करेगा, सो भरेगा, तुम्हें क्या?"

बन्ता और सन्ता ने जब और कम्पोज़ीटरों की तरफ से बात ठंडी पड़ती देखी तो जरा चमककर करीम के सामने आकर खड़े हो गये। बोले, 'लिहाज करो तो अपने जैसों का। जैसे तुम मजदूर हो वैसे हम मजदूर। इस वक्त मालिक तो सिर पर नहीं है। तुम काहे उस के सरकारी वकील बनकर खड़े हो गये हो?"

सरकारी वकील वाली बात से सब का जोर से हँसा गयी। सब ने बारी-बारी हामी भरी, 'हाँ, करीम मियाँ! जो मजदूर की हिमायत करे, वह तो सच्चा वकील हुआ, तुम खामखाह के सरकारी वकील क्या बन बैठे हो? तुम्हें मालिक से क्या लेना है?"

करीम की आवाज रोने जैसी हो गयी, और गुस्से से भी खौल गयी, वह बोला, हाँ, मैं सरकारी वकील हूँ मेरी सरकार एक ही है ईमानदारी। फिर

मेरी नही, वह हर मजदूर की होती है और तुम से किस ने कहा है कि तुम मजदूर हो ? मजदूर का काम मजदूरी करना होता है, चोरी करना नही होता।"

करीम की बात अभी पूरी नही हुई थी कि कम्पोजीटरा म जो पीछे खडे हुए थे उन्हान घबराकर देखा कि मालिक सिर पर आकर खडा हो गया है। उन्होंने अपने परो से आग खडे हुए साथियो के परो का ठोकर मारकर चुप होने का इशारा किया। और आगे वाला न जब इशारा समझने के लिए पीछे देखा तो सब की आखें मालिक पर पड गयी और व बिखरकर पीछे की ओर लौटने लगे।

साथ ही उन की हमदर्दी बन्ता और सन्ता की ओर से पीछे हट गयी। आखिर यह मामला उन म से किसी का नही था जो नौकरीपेशा थे, उन्हाने मन मे इस बात का शुरू-सा किया और उन म से एक ने मालिक को सुनाते हुए अपने साथियो स कहा, "और रखो बाहर के आदमी। हम तो प्रेस का दद है पर बाहर वालो को किस का दद ? वे तो चार दिन आकर दुगन पसे भी कमा लेते है और अपनी जेबें अलग भर लेते हैं।"

मालिक न आग बढकर करीम के हाथ म लिए हुए वे दोनो डब्बे देखे, बात को समझा और इशारे स बन्ता और सन्ता दाना को अपने कमरे मे बुला लिया।

करीम चुपचाप चौबच्चे पर जाकर साबुन से हाथ धाने लगा। छह बजने वाले थे, छुट्टी का समय था। बाकी कम्पोजीटर भी धीरे धीरे चौबच्चे के गिद इकट्ठे हो गये, तो उन म से एक मालिक के कमरे की ओर से आता हुआ उत्तजित सा बोला "लो और सुनो ! वे दोनो हमारा नाम लगा रहे है कि हम ने उन्हें खामखाह बदनाम करन के लिए, उन के डब्बो म सिक्के भर दिये।"

कम्पोजीटर गुस्से से दात पीसने लगे, तो करीम धीरे से हँसकर उन स बोला, 'ला भई, जस तुम मजदूर वसे हम मजदूर, अब तुम मे से कौन सा सच्चा वकील बनगा मै तो सरकारी वकील हूँ न।'

'आज तो, करीम चाचा ! बात उलटी पड गयी। एक-दो ने कहा और खीमें हुए-से हँस पडे।



शीरी गली के बाहर वाले रास्ते पर एक पेड़ के नीचे अकेली घबराई हुई खड़ी थी जब दूर साइकिल पर आते हुए अपने अब्बा पर उस की नज़र पड़ी।

और उसे लगा, वह अब्बा को आते हुए देखकर और भी घबरा गयी है। वह पेड़ के पीछे छिप-सी गयी ।

करीम की साइकिल अभी पेड़ के पास नहीं आयी थी कि शीरी ने देखा साइकिल दूर परे ही खड़ी हो गयी है और अब्बा साइकिल को मोड़कर पीछे लौटने लगे हैं।

शीरी ने आगे बढ़कर आवाज़ दी, 'अब्बा !

वह अब्बा को आते देखकर घबरायी भी थी पर फिर वापस लौटते देखकर और भी घबराई। आवाज़ उस के मुंह से अपने आप ही निकल गयी पर करीम बहुत दूर था। यह भी लगा, आवाज़ उस तक नहीं पहुंची। पर साथ ही देखा, अब्बा ने साइकिल को फिर घर की ओर मोड़ लिया है।

करीम जब पेड़ के पास पहुँचा तो उस ने शीरी को देखकर साइकिल रोक ली। साइकिल से उतरते हुए उस ने पूछा, 'क्यों, खैर तो है? यहाँ क्यों खड़ी हो?'

शीरी ने जवाब देने की बजाय पूछा, "अब्बा, तुम पीछे क्यों लौटने लगे थे?"

करीम ने कहा, "वह मैं एक बात भूल गया था, दिन भर याद ही नहीं आयी। प्रेस से प्रूफ लाने थे, पर भूल गया। अभी घर के पास आकर याद आया, पहले सोचा, लौटकर ले आऊँ फिर खयाल आया कि इस वक्त तो प्रेस बन्द हो गया होगा। वह कोई बात नहीं, कल सही। पर तुम यहाँ क्यों खड़ी हो?"

"अब्बा " शीरी ने कहा और जल्दी से फिर दूर एक बार सड़क की ओर देखा।

"बताती क्यों नहीं?"

अब्बा ! माँ भी डर रही है, मैं भी, तुम हम पर नाराज़ होगे पर हमारा

क्या कसूर ?" शीरी ने डरते-डरते कहा, और फिर एक बार जल्दी से दूर तक सडक को देखा।

"मुझे ये पहेलियां अच्छी नहीं लगतीं, जो कुछ हुआ है, सीधी तरह बताती क्यों नहीं ?" करीम ने लडकी पर ताव खाकर कहा तो शीरी की आवाज रुआसी हो गयी, "वह वह पता नहीं कहा चला गया।"

"कौन, संजय ?"

लडकी ने हां मे सिर हिलाया और कहा, "मा ने बहुत मना किया था। कहता था, अभी आ जाऊंगा। तुम्हारे आने से पहले, पर अभी तक आया नहीं।"

"हूँ।" करीम ने साइकिल को पेड से लगाकर खडा कर दिया और पीछे सडक की ओर देखते हुए पूछा, 'गये हुए कितनी देर हो गयी है ?"

'कितने ही घंटे हो गये हैं। तब दोपहर थी। मैं इसी लिए यहां खडी हुई थी, मा ने कहा जाकर मोड पर देख।' शीरी ने जल्दी जल्दी कहा, और फिर रुककर बोली "मा की भी जान सूखी हुई है। अगर उसे कुछ हो गया तो तुम "

करीम ने कडवाहट से भरकर लडकी की ओर देखा, पर फिर खुद ही ठहराव-भरे स्वर में बोला "मैं जानता हूँ उस जिद्दी को अपनी सी पर आ जाये तो उसे खुदा भी नहीं रोक सकता। चलो तुम घर चलो।"

शीरी गयी नहीं, बोली 'पर कहता था, तुम्हारे अब्बा के आने से पहले आ जाऊँगा।'"

करीम हँस-सा पडा। पूछा 'अच्छा! और मुझ से डर भी रहा था ?"

'बहुत डर रहा था।' लडकी की आवाज में अपने अब्बा का रुख देखकर कुछ जान पड गयी, "अम्मा से कह रहा था, मेरे जाने के बारे में तुम मत बताना, मैं खुद बताऊँगा।'"

"वह देखो, वह आ रहा है। कितनी तेज साइकिल चला रहा है, मन में डरता होगा कि मैं कहीं उस से पहले न पहुँच गया होऊँ।' करीम ने कहा तो शीरी ने भी एकटक दूर सडक की ओर देखा, कहा, 'वही है ? अभी तो पहचाना नहीं जाता कौन है।

'वही है। मेरी तो बाज जैसी निगाह है धोखा नहीं खा सकती।" करीम हँस पडा, "चलो, यही शुक्र है कि ठीक-ठाक लौट आया है।"

पर जिस समय संजय की साइकिल उस पेड के पास पहुँचने लगी, जहाँ करीम और शीरी खडे हुए थे, तो करीम आगे बढकर सडक पर खडा हो गया।

संजय पास आया तो साइकिल से उतरकर चुपचाप करीम के सामने खडा हो गया।

"जनाब कहाँ से आ रहे हैं ?' करीम ने तनी हुई आवाज में पूछा तो संजय ने हलीमी से कहा, "बहुत दूर से, मलकुल मौत के यहाँ से। मैं पहले ही उसे कह

रहा था कि बहुत देर हो गयी है, करीम मियाँ इंतजार कर रहा होगा, मुझ पर नाराज हो रहा होगा ..."

"अच्छा !" करीम ने अपना सारा अधिकार अपनी आवाज में भर लिया और कहा, "मलकुल मौत से तुम्हारी यारी जरा ज्यादा हो गयी है तुड़वानी पड़ेगी।"

संजय ने करीम के कंधे से अपना माथा लगा दिया और हौले से कहा "यार ! तुम सब कुछ कर सकते हो। अगर मौत का फरिश्ता बनकर तुम मेरी बेहोशी में मुझ से बातें कर सकते हो तो क्या नहीं कर सकते !"

करीम ने कुछ चकित होकर संजय के मुंह की ओर देखा तो पास से शीरीं बोली, "अब्बा ! वह जो कुछ तुम ने कागजों पर लिखा था, आज इन्होंने अम्मा से वह कागज लेकर पढ़ा था।"

करीम को जोर से हँसी आ गयी, बोला, 'अच्छा ! वह दाजय का हाल पर वह तो बहुत ही टूटे-फूटे अक्षरों में मैं ने कुछ लिखा था और साथ ही सच, वह उर्दू में लिखा हुआ था, तुम ने कैसे पढ़ लिया ?"

'मैं ने भी एक फरिश्ता ढूंढ लिया है उर्दू पढ़ने के लिए।' संजय ने कहा, तो पास से शीरीं बोली, "अम्मा ने पढ़ पढ़कर सुनाया था।"

घर पहुँचे तो करीम जागा था, जिसे दरवाजे में से साइकिल भीतर लाते हुए देखकर बरकत बहुत घबरायी हुई बोली, 'वह तुम्हारा कुछ लगता, मुझे नहीं मालूम कहाँ चला गया है।"

करीम ने दरवाजे के बाहर देखते हुए आवाज दी, "आ भई, मेरे कुछ लगते !" और संजय जब भीतर आया, करीम ने बरकत से कहा 'लो एक दफा तो मैं अपना कुछ लगता तलाश करके ले आया हूं पर अब आगे अगर तुम ने इस मेरी चोरी से जाने दिया तो देखना।"

बरकत ने संजय को आते हुए देखकर चैन की सांस ली और अपने खाविन्द से बोली, 'फिर कल से एक हथकड़ी दे जाना, इसे बांध रखूंगी।"

करीम हँसने लगा, 'बरकत ! यह बिचारा करीम कादिर नहीं है जो हथकड़ी में बँध जायेगा।'

बरकत ने कुछ नहीं कहा, चूल्हे पर चाय का पानी रखने लगी, पर उस की बजाय नेमत बोली, 'तुम ना जैसे बँधोगे ही, एक हाथ में बरकत ने हथकड़ी डाली, दूसरे में मैं ने, पर दो हथकियों से तो तुम्हारा कुछ बना नहीं।

नेमत ने करीम और संजय के बैठने के लिए आंगन में दो चारपाइयाँ डाल दीं, तो करीम चारपाई पर बैठते हुए बोला, बात तो सच है। मेरा दो हथकड़ियों से कुछ नहीं बना। असल में वे अक्लमन्द थे, जिन्होंने सोच-समझकर मर्द को चार निकाह करने के लिए कहा था। अगर दो हाथों के लिए दो हथ

कड़ियाँ चाहिए, तो दो परों को भी तो दो बेड़ियाँ चाहिए।"

नेमत ने नलके के नीचे हाथ रखकर देखा, नलके का पानी अभी भी गुनगुना था। सो उस ने ठंडे पानी की बाल्टी निकालने के लिए कुएं म रस्सी लटका दी, और पानी की बाल्टी खींचते हुए बोली, 'फिर दो निकाह और कर लो, कोई हसरत न रह जाये।"

और नेमत न पानी की बाल्टी नीचे रखते हुए एक तौलिया करीम को दिया, एक सजय का, और बोली "इस बात म हिंदुओं की औरतें अच्छी हैं, नसीबों वाली। सारी उम्र आदमी की एक ही औरत रहती है।"

सजय ने कहा कुछ नही, सिर्फ हँस दिया, और उठकर हाथ मुह धोने लगा। पर करीम मुह पर पानी के छींटे मारते हुए बोला, नेकबख्तो! वे अच्छी कैसे हुई? अच्छी तो उलटी तुम हुइ कि आदमी का दिल खट्टा नही होता, मोचता है, अगर एक अच्छी है तो दूसरी भी अच्छी होगी, दूसरी अच्छी है तो तीसरी भी अच्छी होगी, चौथी भी हिंदू तो एक से ही तौबा कर लेता है, दूसरी का नाम नही लेता।"

आगन म पानी की बजाय हँसी के छींटे उड गये।

शीरी ने चाय के भरे हुए दो गिलास उन दोनो के सामने रख दिये, तो करीम ने सजय को वह पूरी बात सुनायी जो आज प्रस म हुई थी। और बताया, बस इसी झगड़े में आज मैं मालिक से प्रूफो की बात पूछना भूल गया।"

कोई बात नहीं आज तर्जुमे का कुछ काम मिल गया है।" सजय ने कहा और बताया कि आज दोपहर वह इसी काम के लिए गया था। आते हुए अपने कमरे म भी गया था। वहा चौकीदार से कमरा साफ करवाया, इसी लिए देर हो गयी।

वह तो मैं साइकिल को देखकर ही समझ गया था। साइकिल वहीं स तो लाये होगे।' करीम ने कहा तो सजय न जरा झिझककर कहा, "सोचता था, रात को वहीं सो जाता, पर यार की इजाजत नही थी आज, इस लिए हुक्म का गुलाम बनकर आ गया।'

देखो मियाँ!' करीम न गुस्स स कहा, 'ताश मैं ने कभी नही खेला। मुझे नही मालूम, यह हुक्म का गुलाम क्या होता है और चिड़िया की बेगम क्या होती है, और पान का इक्का क्या होता है। बात बडी सीधी है कि डाक्टर न कहा है, चार दिन दवाई भी पीनी है और आराम भी करना है। तुम चुपचाप यहीं बठ रहो, य दोनो बेगम तुम्हारी मा जसी है।'

और सजय कोई आपत्ति नही कर सका।

शीरी दोनो चारपाइया क पांवो के पास रख हुए चाय के खाली गिलास उठा रही थी जब छोटी बहन जमीला न आवाज दी 'देखो शीरो! तुम्हारे



सवेर करीम अपने काम पर चला गया तो सत्य [illegible] ने [illegible] को [illegible] दी उधर चारपाई डालकर तर्जुमे का काम करने लगा।

घंटे-भर के क़रीब उस का मन काम में लगा भी, फिर उचाट हो गया और वह लिखे हुए कागज़ों को लकड़ी के स्टूल पर [illegible] किताब के नीचे रखकर, [illegible]

चारपाई पर कुछ निढाल-सा लेट गया।

बीमारी की थकान थी, पर संजय को लगा, यह सिर्फ बीमारी की थकान नहीं है। यह खराब किताबों के तर्जुमे की उस के अंगों में शुरू दिन की थकान है। वह जब भी पैसों की जरूरत के लिए ऐसा काम करता था, उस के अपने हाथ उस का कहा मानने से इंकार कर देते थे, और तीन चार पन्नों के बाद हाथों की उँगलियाँ अकड़ जाती थीं।

बारी-बारी एक हाथ की उँगलियों को दूसरे हाथ से दबाते हुए वह कितनी ही देर चारपाई पर लेटा रहा। कभी-कभी नीम की दो-तीन पत्तियाँ झड़कर उस पर गिर पड़तीं तो उस के थके हुए अंगों को एक सुख सा मिल जाता। फिर शायद हवा कुछ तेज हो गयी, नीम की पत्तियाँ भी बहुत झड़ने लगीं। उसे नींद-सी आ गयी।

नींद के एक सपने का सुख उस के सारे अंगों में समा गया। उस ने देखा, वह अपना नया उपन्यास लिख रहा है। कई पृष्ठ लिख लिखकर उस ने पास में रख दिये हैं, फिर भी लिखे जा रहा है, न उस की उँगलियाँ थकती हैं, न उस की नजर थकती है।

फिर करीम मियाँ चाय का प्याला देकर उस के पास बैठ गया है और पूछ रहा है, 'इस उपन्यास का क्या नाम रखा है?'

वह करीम को बताता है, 'उनचास दिन।'

करीम हँस रहा है पर एक अजीब बात हो जाती है कि उस का अपना हाथ लिखते लिखते कागज बन गया है और उस पर अब टप टप अक्षर गिर रहे हैं।

वह करीम की ओर देखकर जोर से हँसता है और कहता है, 'देखो! यह क्या करामात हो रही है।'

और उसे लगा, कोई उस के कंधों से झकझोर रहा है। चौंककर उस की आँखें खुल गयीं तो नेमत उसे जगाते हुए कह रही थी, 'बूँदें पड़ने लगी हैं, उठो, तुम्हारी चारपाई अंदर कर दूँ।"

संजय को सपने वाली बात भूल गयी, याद आया कि वह स्टूल पर लिखे हुए कागज रखकर सो गया था वे सब मेंह में भीग गये होंगे। उस ने जल्दी से स्टूल की ओर देखा।

- 'मेंह बरसने लगा था तो सारे कागज शौरी ने उठाकर अंदर रख लिये थे।" नेमत ने बताया, तो संजय निश्चिन्त हो गया।

उठकर कमरे में आ गया, जैसे नेमत ने कहा था, पर अभी देखे हुए सपने से उस के सारे अंगों में झुनझुनी सी हो गयी। यह भी याद आया कि असल में वह पिछली रात से, उस समय से बेचैन है, जब करीम ने उस प्रेस की बात सुनायी थी।

आ सकेंगे।"

अम्मी कुछ सकोच म पड गयी, शायद वह एक न पौधा के पस देन लगी थी पर दस-बीस का नाम सुनकर ठिठक सी गयी। फिर कोठरी म स एक डलिया लाकर बोली "चाचा अता से कहना तुम्हारे अब्बा आकर खुद पस द जायेंगे।"

अच्छा।" शीरी न कहा और माँ क हाथ स डलिया थाम ली।

सजय ने अता के घर स मोतिया के पौधे भी खरीद, एक आडू का और एक अनार का पौधा भी खरीदा और जब पस देन लगा शीरी जल्दी स उस का हाथ पकडते हुए अता चाचा म बोली "चाचा "

अता पौधा का ध्यान म डलिया म रख रहा था उस की नजर शीरी की ओर नहीं थी, सो सजय न जल्दी स शीरी के होठो पर हाथ रखकर उस की आवाज का रोक दिया।

अता से पसे लिय, पौधा स भरी हुई डलिया थमायी, तो सजय बाहर गली म आकर शीरी स बोला 'मेरी और तुम्हारे अब्बा की बात घर की बात है। घर की बात लोगो के सामन करत हैं क्या ?"

शीरी कुछ शर्मिदा सी हो गयी। पर साथ ही उस गुरूर-सा भी आया कि सजय न अपन आप को उन के घर का एक आदमी कहा है।

घर आकर सजय न डलिया एक ओर रख दी और फिर अकेला अता क घर जाकर एक रस्सी माँग लाया।

पहले शीरी और जमीला ने मिलकर आगन म कोई एक एक फुट के फासले पर निशान लगाये, फिर सजय रस्सी स वहाँ छोटे छोटे गड्ढ बनाने लगा।

बारी बारी सब पौधे लगा दिय गय, तो बेहाल स पडे हुए कच्चे आँगन म एक छोटा-सा बागीचा दिखाई देने लगा।

करीम का बडा लडका सलामत मौलवी के यहाँ पढने गया हुआ था और छोटा अकरर सोया हुआ था, जब घर का आँगन बागीचा बना। दोपहर खाने के समय सलामत आया तो आगन स गुजरत हुए जसे उस का पर ठिठक गया। नेमत देख रही थी, जोर स हँसकर बोली, अरे! आज तो तुम्हारे अब्बा भी अपना घर नहीं पहचान सकेंगे। सोचेंगे, शायद किसी और के घर म आ गया हूँ "

सलामत ने पहले पौधो को देखा, फिर शीरी को फिर चिढकर उस ने कहा 'मुझे पता है, शीरी ने सारे पौधे अपनी पस द के लगा लिय है, मेरी पस द का एक भी नही लगाया।'

सजय न सलामत की यह बात सुनी तो होले से शीरी से पूछा, "कौन सा पौधा सलामत कह रहा था? तुम जानती थी ?'

'जानती थी।' शीरी न हौले स जवाब दिया।

"फिर मुझे क्यो नही बताया ?' सजय ने कुछ झिडककर पूछा।

"वह ता आपने खुद चुना, मैं क्या बताती।'

"कौन सा ?"

"अनार का।"

सजय को हलकी सी हँसी आ गयी, शीरी से बोला 'अच्छा, अब तुम कुछ मत बालना।"

और सजय ने सलामत का बाँह से पकडकर अपने पास करत हुए कहा, "एक सुरमा होता है, सुलेमानी वह अगर आखो म लगा ले तो जो भी पौधा चाहे, वही दिखाई देन लगता है।"

'फिर अगर शीरी डाल ले तो उस सब पौधे मोतिया क दिखन लगेंग ?' सलामत का चेहरा रुआसा सा हो गया।

"मुझे तो ऐसे ही दिखाई दे रहे है। जिस दिखाई न दे रह हा, वह सुरमा डाल ले।" शीरी हँसन लगी।

'अच्छा, यह बताओ, तुम कौन सा पौधा देखना चाहते हो ?' सजय न पूछा।

'अनार का।' सलामत ने कहा।

'वह अब तुम्ह दिखाई नही द रहा है न ?' सजय ने पूछा।

"नही, मै ने सब देख लिय है, सब मोतिया के ह।"

'अच्छा, फिर तुम सुरमा डालो।" सजय ने कहा।

'कहाँ है वह सुरमा ? वह तो किसी के पास होता ही नही। वह ता ऐसे ही एक कहानी है।"

बरकत और नेमत हँस रही थी। नेमत ने सलामत क चेहरे पर आसू बहते हुए देखे तो उस की बाँह पकडकर बोली, "ले, वह तो मेरे पास है, चल, तेरी आखा म डाल दू।"

और नेमत ने जब चादी की सुरमेदानी लाकर एक एक सलाई सलामत की आखो मे डाल दी, तो सजय ने उसे बाहर आँगन म ले जाकर अनार का पौधा दिखाया और कहा, 'तुम देख लो इसे, बडे लाल अनार लगेगे।

"सचमुच के ?"

"हा, सचमुच के। पर तुम यह बताओ कि तुम्ह सिर्फ अनार का पौधा क्या अच्छा लगता है ?" सजय ने पूछा तो सलामत ने उस के कान म कहा, 'भाई जान ! सब के सामने नही बताऊँगा, रात को बताऊँगा, सोने से पहले।"

शीरी परे खडी सुन रही थी। उस ने यह भी समझ लिया कि सलामत ने सजय के कान म क्या कहा है। इधर सलामत के पास आकर बोली, 'मैं अभी बता दू ?'

तुम नहीं जानते, तुम ने कितनी बड़ी बात कह डाली है। अगर वे सचमुच देश के बेटे होते, लायक बेटे, तो देश कैसा होता।'

"हाँ, यार! अच्छे बेटे तो बाप की कमाई में अपनी कमाई मिला देते हैं।" करीम ने एक लम्बी साँस ली।

"तुम शायद नहीं जानते, यूनान की एक मिथक है," संजय ने कहा, 'जो आदमी किसी राजा का दामाद बनता था, वह पहले राजा को मार डालता था, फिर उस का राज सँभाल लेता था।'

"और राजा के बेटे?' करीम ने बड़ी फिक्र से पूछा।

"बेटे को कभी भी राज नहीं मिलता था। राज सिर्फ दामाद को मिलता था।' संजय ने बताया।

"तो बेटे क्या करते थे?'

"फिर जो बेटा जिस भी राजा का दामाद बनता था, उसे मारता था और उस का राज सँभाल लेता था।"

"तब तो मैं समझ गया।"

"क्या?

कि दुनिया शुरू से ही उलटे रास्ते पर पड़ गयी थी, और वह बात अब भी चली आ रही है।'

'सचमुच वही बात चली आ रही मालूम होती है।'

"यह तो भई आदमी ख़ुद सोचे, जिस मारने वाले को किसी की जान का दर्द न आया, उसे उस के माल का दर्द क्या आयेगा? वह तो दूसरे की कमाई को बेदर्दी से फूँकेगा ही।'

बस, यही बात, करीम मियाँ! मैं लिखना चाहता हूँ।"

तुम्हें लिखने का तो ढंग आता ही है, फिर लिख डालो।

'आज दिन में घड़ी भर के लिए सो गया था, सपना आया कि लिख रहा हूँ।'

"फिर छोड़ो यह प्रूफ-श्रूफ़ और अपना काम करो।'

"पर उस के लिए अब मुझे जाना पड़ेगा। तुम यह तो समझते ही हो कि यह काम मैं वहाँ, अपने कमरे में, जाकर ही कर सकता हूँ।'

"हाँ, यह तो समझता हूँ।"

'फिर मैं कल चला जाऊँ?"

'अच्छा, मैं आते जाते चक्कर लगा लिया करूँगा।'

'वह तो मैं भी जिस दिन लिखने को जी नहीं करेगा, साइकिल उठाकर यहाँ तुम्हारे पास आ बैठूँगा।"

करीम को संजय की बात से तसल्ली-सी हो गयी तो वह बात याद आयी जो

आज वह दिन-भर सोचता रहा था, लेकिन घर आकर भूल गया था। बाला, "एक बात करनी है तुम से।"

"क्या ?"

"आज मैं सोच रहा था कि सलामत अब दस बरस का हो गया है, चार अक्षर मौलवी से पढ़कर क्या बन जायेगा ? इसे अब काम मे डाल दू।'

"करीम मिया ! इस छोटे-से बच्चे का अभी पढ़न दो। इसे किस काम मे डालोगे ?"

"बात तो सुनो। इतने छोटे बच्चे अगर प्रेस के काम म पड जायें तो ऐसे होशियार हो जाते है कि बडी उमर वाले उन की रीस नही कर सकते।'

"पर थोडा-सा पढना लिखना तो उस काम के लिए जरूरी होता है।"

"होता तो है, पर यह जो कुछ मौलवी से पढता है, वह अब इस के काम नही आयेगा।"

"तुम्हारा मतलब है ?"

"हा, चार अक्षर हिन्दी-पजाबी के पढ लेगा तो इस के काम आयेगा। अगर कही यह कम्पोजिंग सीख जाये तो दिन मे आठ पन्ने देख सकता है छ तो कही गये नही। आजकल तीन रुपये पन्ना तो मामूली बात है।"

"फिर ऐसा करो," सजय ने कुछ सोचा, फिर कहा, "यह जिम्मा तुम मुझे दे दो। अगर इस स्कूल मे डाला तो वहाँ दो बरस म भी कुछ नहीं बनगा। घर पर इसे बरसो का काम दिनो म करवा दूगा।"

'फिर तो बन गया काम ! यह मुझे सूझा ही नही था।' करीम चारपाई पर लेटा हुआ था, उठकर बैठ गया, बोला, 'म जो सोच रहा था कल सवेरे से इसे साइकिल पर बिठाकर साथ ले जाया करूँगा वहाँ खद हो इसे देख देखकर अक्षरो की पहचान हो जायेगी।"

"नही, ऐसे तो इस का साल लग जायगा।'

'बरस कहाँ, ज्यादा ही लगेगा, बहुत हुआ इस टाइप फेकना सिखा देंगे, दो बरस तो बेगार ही बनाय रखेंगे।'

"मैं कल सुबह से इसे पढाना शुरू करूँगा। फिर चाह इसे रोज न भी पढाऊँ, महीने भर बाद देखना कहाँ पहुँचता है।'

सजय की बात सुनकर करीम उत्साह स भर गया और जोर से आवाज देकर बोला, 'देखो, नेमत ! तुम्हारा साहिबजादा सो गया है या जाग रहा है ?

'क्या बात है, अब्बा ? मैं जाग रहा हूँ।' सलामत न आवाज दी और उठकर आ गया।

करीम ने उस बाँह स पकडकर अपनी चारपाई की पट्टी पर बिठा लिया और बोला, 'तुम्ह अगर आदमी बनना है तो कल सवेरे स सजय मियाँ का

उस्ताद मान लो ! बोलो, रोज पढोग ?"

"और तब मौलवी साहब स भी पढने जाऊँगा ?" लडके ने पूछा तो जवाब मे करीम से पहल सजय बोल उठा, "वहाँ तुम उर्दू पढोगे, मुम से हिन्दी, पजाबी और अग्रेजी !"

करीम हसने लगा, "इतनी जबानें पढकर इसे कोई आलिम फाजिल बनना है ? बस, काम चलान के लिए चार अक्षर पढ ले "

सजय न करीम का दलील के साथ समझाया कि इस उम्र के बच्चे कई जबानें एक साथ सीख सकत हैं । बल्कि बडी उम्र के नही सीख सकते, लेकिन छोटी उम्र के बच्चे बहुत जल्दी सीख जाते हैं ।

"अच्छा, फिर !" करीम न सलामत की पीठ पर थपकी दी और हँसने लगा, 'सवरे इशा अल्लाह कहकर सीखना शुरू कर देना !"



एक दिन की बात है करीम ने एक फरमा मशीन पर चढाया और पहला कागज निकालकर स्याही की रगत देखने लगा, तो वहा नजर पडी जहा किताब छपने का साल-सवत लिखा रहता है ।

करीम को न हिन्दी आती थी, न पजाबी अक्षरो की गलती वह नही देख सकता था । पर अका की गलती देख सकता था । उस ने देखा कि किताब पर 1968 लिखा हुआ है, जिस वप वह पहले छपी थी। अब के छपवाते समय 1978 लिखना चाहिए, इतना वह जानता था, इस लिए फरमा मशीन से उतार दिया, और हाथ म वही कागज लिये मालिक के कमरे की ओर चल पडा ।

'यह बहुत बडी गलती रह गयी, जी।" करीम ने वह पन्ना मालिक की मेज पर रखकर 1968 के अको की ओर सकेत किया।

मालिक ने सरसरी नजर से देखा और कहा, 'कोई बात नही, छाप लो फरमा।'

"यह किताब का नया एडीशन छप रहा है, जी।"

"हाँ हाँ "

'यह प्रूफ की ग़लती रह गयी जी।"

"कोई नही, चलने दो।" मालिक ने कहा और ध्यान मेज़ के ओर कागज़ो की ओर कर लिया।

करीम ने अपनी ओर से जो बहुत बडी गलती पकडी थी वह मालिक की नज़रो मे गलती ही नही थी। करीम बात को कुछ समझ नही पा रहा था, इसी लिए खडा रहा, बोला, "पर जी मिनट लगते हैं, अभी फरमा खुलवाकर गलती ठीक करवा दीजिये।"

मालिक ने देखा, करीम अपनी बात पर अडा हुआ है, इस लिए बोला, "फरमा मशीन पर चढा हुआ है, उतारा तो यूँ ही एक घटा लग जायगा फिर फरमा खोलना पडेगा, मशीन खाली खडी रहेगी, ऐसे ही छाप दो।"

'किस लिए जी, फरमा तो मैंने मशीन से उतार दिया है। बस किसी कम्पोज़ीटर से कहिये कि एक मिनट म खोलकर दो अक बदल दे, और करना ही क्या है।"

"करीम मिया! यह तुम्हारी बहुत बुरी आदत है।" मालिक ने खीझकर करीम की ओर देखा और कहा, "तुम बहस बहुत करत हो।"

"मैं ने तो आप ही के भले के लिए कहा है।" करीम की आवाज़ बिचारी सी हो गयी, "और मुझे क्या लेना-देना है इस म!"

"नही लेना-देना है तो बहस क्यो कर रहे हो? तुम से एक दफा जो कह दिया छाप दो फरमा। एक बार मे तुम्ह सुनाई नही देता?'

मालिक की आवाज जैस सारे कागज़ पर स्याही की तरह बिखर गयी। करीम को लगा, अब मेज पर पडे हुए कागज़ का कोई भी अक्षर उसे दिखाई नही दे रहा है।

मालिक को उस दिन की बात याद आ गयी जब करीम ने कम्पोज़ीटरो के डिब्बो म चोरी का सिक्का पकडा था, सो कुछ हलीमी से उस ने करीम की ओर देखा और कहा, "करीम मियाँ! तुम बेगाने नही हो, अपने ही आदमी हो। लेकिन बहस करने की बजाय इशारा समझा करो।"

करीम ने शायद फिर भी इशारा नही समझा, टुकुर-टुकुर मालिक के मुह की ओर देखने लगा।

"दखो, बहुत-सी बातें होती है " मालिक ने कुछ ठडी आवाज म कहा, "जो तुम लोगो की समझ म नही आ सकती, और न तुम्ह समझनी चाहिए।"

करीम चुपचाप कमरे से बाहर जाने लगा तो मालिक न रोक लिया, कहा, "सुनो! तुम बहुत अच्छे वरकर हो, पर सिफ काम की होशियारी ही सब कुछ नही

होती। वक़र म मालिक का इशारा समझने की भी होशियारी होनी चाहिए।"

करीम की नज़र मालिक के चेहरे पर ठहरकर रह गयी, जसे मालिक का इशारा समझन का ढग सीख रही हो।

"अच्छा जाओ अपना काम करो।" मालिक ने कहा तो करीम की नज़र हिलकर बाहर के दरवाज़े की ओर चली गयी, पर एस, जस उस ने कुछ भी न सीखा हो।

वह कमरे से बाहर आकर अपने मशीन वाले कमरे की ओर मुडा तो उस ने देखा, प्रस का सब स पुराना और बूढा कम्पोज़ीटर मोहरसिंह दरवाज़े के बराबर वाली दीवार के पास खडा हँस रहा है, और फिर उस न देखा कि उस के पीछे-पीछे वह मशीन वाले कमरे म भी आ गया है।

करीम जब मशीन से उतार हुए फरमे को फिर मशीन पर चढाने लगा, तो मोहरसिंह ने उस के पास होकर धीरे से पूछा, 'क्यो, मियाँ! आज कोई ढग सीख कर आये हो या नही?'

करीम चुपचाप उस के चेहरे की ओर देखता रहा।

फिर तुम ने इशारा समझ लिया या नही?' मोहरसिंह हँस पडा और बोला, "बात तो बिलकुल सीधी है, भई यह किताब दूसरी या तीसरी बार नही छप रही है "

"नही छप रही है? और फिर मैं इन कोरे कागज़ों पर क्या छाप रहा हूँ?" करीम ने पहले अपने हाथो की ओर देखा, फिर कोरे कागज़ो की ओर, फिर मशीन की ओर

तुम समझ लो, नही छप रही है, यह तब की छपी हुई पडी है जब पहली बार छपी थी।" मोहरसिंह ने एक बार पीछे दरवाज़े की ओर दखा, फिर दबी हँसी हँसने लगा।

करीम कुछ नही बोला तो मोहरसिंह न कहा 'तुम तो सिफ अक पढ सकते हो वह तुम ने पढ लिय। नीचे अक्षरो म जो कुछ लिखा हुआ है, वह तुम्हे पढकर सुनाऊँ?"

करीम फिर कागज़ की आर दखन लगा।

'यह देखो! नीचे लिखा हुआ है, पहली बार। यह 1968 मे भी पहली बार थी, फिर जब 72 या 73 मे छपी थी, तब भी पहली बार थी, और अब 1978 म भी पहली बार है।'

"समझ गया, जनाब! हमेशा—पहली बार ही रहेगी।" करीम अपने हाथो पर लगी हुई स्याही जसे अपन होठो से पोछ रहा हो, और उस का मुह बहुत कडवा हो गया हो।

मोहरसिंह ने फिर एक बार दरवाजे की ओर देखा और कहा, "कुछ ऐसी

किताबे होती हैं जो बिकती ही नही। ऐसी किताब का लेखक जब पूछेगा कि उस की किताब कितनी बिकी है तब उसे पता लगेगा कि उस की किताब तो बिकती ही नही तुम बोलो अब कुछ समझे?"

नही' करीम ने बडे कसे हुए मुह से कहा, "देखो न, कछ बाते होती हैं जो हम लोगो की समझ मे नही आ सकती।"

मोहरसिंह न दरवाजे के बाहर खडे हुए यह फिकरा भी सुना था जब मालिक ने करीम से कहा था, इस लिए हँस पडा और बोला, "सो, अब तुम समझ गये।"

करीम ने कहा "हमारा मालिक हमेशा लोगो की लिखी हुई किताबे छापता है, एक किताब उसे भी लिखनी चाहिए।"

वह क्या?"

'तुम न सुना होगा कि एक मशहूर किताब हुआ करती थी हिदायतनामा खाविन्द'।"

हा। पढी तो नही, पर नाम सुना है उस के बडे बडे इश्तहार छपा करते थे।"

"और वसी ही एक और किताब हुआ करती थी हिदायतनामा बीवी।

'हाँ, वह भी थी।'

अब हमारे मालिक को 'हिदायतनामा वकर' लिखनी चाहिए।"

मोहरसिंह हँसते हुए करीम के कधे पर एक थपकी देकर कमरे के बाहर चला गया।

और फिर जब वह मशीन पर फ़रमा चढाकर, फरमा छाप रहा था, बाहर की ओर से, कम्पोजीटरो के केबिनो की ओर से कई बार दबी हुई हँसी की आवाज आयी। करीम समझ गया कि मोहरसिंह वह हिदायतनामा वकर वाली बात और सब कम्पोजीटरो को भी सुना रहा है।

शाम को जब छुट्टी हुई, करीम ने घर जाने की बजाय अपनी साइकिल सजय के कमरे की ओर मोड ली। सीढिया चढते हुए उस यह भी ध्यान आया कि वह शायद लिख रहा होगा और उस के जाने से विघ्न पडेगा। पर करीम आज अपने परो को रोक नही पा रहा था।

सजय न करीम को देखकर हाथ का कलम जहा था वही छोड दिया 'आओ करीम मिया! तुम्हारी बहुत बडी उम्र है।"

'भला कितनी है?" करीम ने दीवान पर बठते हुए पूछा, 'तुम्हारे उपन्यास जितनी होगी?"

मेरे उपन्यास की तो सिर्फ़ उनचास दिन है।'

'नही, भई, वह तो जिक्र उनचास दिन का है, उपन्यास की उम्र तो कई उम्रे होगी, जाने कितनी ही पीढिया इसे पढेंगी।"

सजय हँसने लगा, "पढ़ेंगी या नहीं, पर वसे तुम न ठीक कहा है, हर कहानी और उपन्यास लिखने वाला कम से कम पाँच-सात पीढ़ियों की बात तो जरूर सोचता है।"

"मैं ने भी तो, यार ! यह बात सोच-समझकर कही है, एसे ही नहीं कही। तुम्हारे इस उपन्यास म जो मौत के फरिश्ते का जिक्र होगा, वह मरा ही तो होगा। सो, जब तक उपन्यास जिदा रहेगा, मैं भी जिदा रहूँगा।'

सजय जोर स हँस पडा, "तुम्हारे इस हिसाब न, मियाँ ! मुझे लाजवाब कर दिया है।"

करीम परो स जूता उतारकर दीवान पर इत्मीनान स बैठते हुए बोला, "सीढ़ियो पर आते हुए मैं सोच रहा था कि यूँ ही जाकर काम म हरज करूँगा, वही बात हुई, तुम ने अपने हाथ का कलम वहीं का वहीं छोड दिया।"

"पर तुम न यह तो पूछा ही नहीं कि मैं ने तुम्ह देखकर तुम्हारी बडी उम्र होने की बात क्या कही थी ?"

'अभी मुझे याद किया होगा।'

"तो फिर हरज कसे हुआ ? याद इस लिए किया था कि कलम रुक रहा था, और यह मैं जानता हूँ कि कलम को जुबिश देनी हो तो आदमी को तुम्हारे पास बठकर बातें करनी चाहिए।"

"अच्छा, फिर चौकीदार को आवाज दो, भई पास की दुकान स दो गिलास चाय ले आय।'

"वह क्यो, मैं यहीं स्टोव पर खुद चाय बनाता हूँ। एक मुद्दत हो गयी। तुम स बुल्हेशाह नहीं सुना। बस, तुम उस की एक आवाज लगाओगे, और इतने मे चाय तयार।"

"नहीं, यार ! बुल्हेशाह गाने के दिन गये, अब तो मैं हजरत सुलेमान होने को फिर रहा हूँ।"

सजय ने स्टोव जलाकर उस पर चाय का पानी रख दिया और करीम के पास दीवान पर बठते हुए पूछा, क्या कहा ?"

"यही कि अब मैं हजरत सुलेमान हो जाऊँगा।"

"वह कौन था ?"

"लो, तुम नहीं जानते ? हजरत दाऊद के बेटे ! वह इजराइली वश के बादशाह थे।" करीम ने कहा और हँसने लगा।

'अच्छा किंग सोलोमन सो, तुम बादशाह बनने को फिर रहे हो ! फिर तो बात बन गयी। तुम बादशाह और मैं तुम्हारी प्रजा ! पर यार ! बादशाह बनकर आँखें न फेर लेना ! यह साथ बठकर चाय पीने का दिन याद रखना।"

"बादशाह मैं कहाँ बन रहा हूँ, मैं तो और ही बात के लिए कहता था।"

सजय उठा और गिलासो मे चाय डालकर ले आया, और फिर करीम के पास बठकर उस ने पूछा, "अच्छा, फिर और कौन सी बात से हजरत सुलेमान वन रहे हो ?"

करीम ने चाय के दो घूट भरे फिर कहा, ' देखो न, उस पर खुदा की एक वखशिश थी, खुदा ने उसे एक गवी इल्म दिया था, जिस स वह जानवरा की वाली समझ जाता था।"

"अच्छा फिर ?"

"वादशाह बनने की तो कोई हसरत नही है, लेकिन यह हसरत जरूर है कि मुझे जानवरो की वोली समझ म क्यो नही आती ?"

सजय हँसने लगा, "तुम किस की वोली समझना चाहते हो ? चिडिया-वुल-वुलो की, फाख्ता-मना की, कोयलो कबूतरो की, या किसी आर पछी-पखेरू की ?"

"नही भई, उन मासूमा की वोली तो खुद ही रूह म उतर जाती है मैं तो उन जानवरो की बोली समझना चाहता हूँ जा देखने मे आदमी दिखाई देते है और वोलते हैं चीला और गिद्धो की वोली।"

सजय ने करीम का हाथ अपने हाथ म लेकर दवा दिया।

करीम ने आज सुबह वाली प्रेस की सारी बात सुनायी, और कहा, "वस यार, सजय ! इस दुनिया मे आदमी जहाँ भी काम करता है, वहा काम के मालिक का इशारा समझन के लिए उसे जानवरो की बोली आना जरूरी है, वह मुझे आती नही, बताओ मै क्या करूँ ?"



मकान का किराया देना था तथा रोटी और ऊपर के खच के लिए भी हाथ मे पसे होने की जरूरत थी इस लिए सजय ने अपना उपन्यास शुरू करने से पहले कितने ही दिनो का कडवा घूट पिया था। अनुवाद का और प्रूफो का जितना भी काम मिला, निबटा लिया था और फिर अपनी प्यासी जान का लेकर वह खयाला

की वहती हुई नदी के किनारे बठ गया था।

पिछले जितन दिनो से वह अपना उपन्यास लिख रहा था, अपन मन की नदी मे नहा रहा था। उस के अग अग का एक सुख मिल रहा था। बेहोशी की हालत मे, मरने के बाद के जिन पहले दिना का अनुभव उस के ध्यान म था वह चाहे कुछ उस के बुखार के दिना के सपना के आधार पर था और कुछ तिब्बती दशन क आधार पर, इस समय वही उस के उपन्यास क पहले कई पृष्ठा की वास्तविकता थी, जिसे लिखते-लिखत वह फिर एक रालौकिक दुनिया म स गुजर रहा था।

यह मरन के बाद के व दिन थे, जब उस की कल्पना के अनुसार एक आत्मा शरीर के बधन से स्वतन्त्र होकर आकाश की हलकी नीली रोशनी म विचरती है। और इस वृत्त को अक्षरा म समेटते हुए, सवदना की तीव्रता क बल पर, वह स्वय भी कई दिनो से जस एक मुक्त आकाश म विचर रहा था।

उस क शरीर क सारे अग जस उस की आत्मा पर पखा की तरह उग हुए थ।

पर उपन्यास के पहले भाग के बाद, आज सध्या समय, जब उस न आग के दिनो का वणन लिखना आरभ किया, जब उस की कल्पना म कई दिना की लगातार दिखने वाली हलकी नीली रोशनी क बाद, आकाश म एक सतरगा झूला पड जाता है, तो उस के शरीर म आग जसी कई लाल लकीरें जलने लगी।

बुखार के दिनो म उस न इस सतरगे झूले पर मीता को बठे हुए देखा था और वही अब जब उस के कागजा पर उतरने लगी तो सजय को एक अजीब बेबसी के साथ मीता याद आन लगी।

सोचन लगा, यही धरती थी, यह बडा सारा कितन ही किरायेदारा वाला घर था, जिस म उस के अपन कमरे की ऊपर की छत पर मीता का कमरा हुआ करता था।

और सजय ने उपन्यास के पष्ठो को पर रखकर घडी भर के लिए आकाश के सतरग झूल को आकाश को ही लौटा दिया, और दीवान पर लेटकर धरती के उन दिनो के सबध म सोचने लगा, जब मीता सचमुच होती थी।

अचानक उस की आत्मा पर उगे हुए पख उस के रक्त मास के अग बन गये और एक जवान मद के अगा की तरह मीता के अगो के लिए तडप गय।

मीता अब कही नही है, यह चेतना भी कही उस के अगो म थी, इस लिए सारे तन हुए और कस हुए अगा की पीडा एक पश्चात्ताप मे बदलन लगी कि उस न मौत से जिन्दगी का उधार क्यो कर लिया था?

जानता था, मीता जब मिली थी, वह मौत के किनारे पर खडी हुई थी, पर किनारा अभी धरती का हिस्सा था, धरती की वास्तविकता का टुकडा। फिर उस न किनारे वाले पल पानिया म क्या बह जाने दिये?

और सजय ने तडपकर दीवान पर स उठकर एक सिगरेट सुलगायी और

सोचने लगा, तिब्बती दशन का जो भाग, कोई मरने के बाद जीता है, वह उस ने पहले जी लिया है, मरने से पहले

मरने के बाद सिफ रूह होती है, धम-काया, सिफ आग की और हवा की बनी हुई, जिसे हाथ से कोई नही छू सकता। सजय का शरीर सिगरट के धुएँ की लकीर की तरह काप गया। वह सोचने लगा, पर मै न इस रक्त मास के शरीर का धम-काया कैसे बना लिया ? और मीता जब जीवित थी, उसे भी धम-काया समझ लिया ? मै उस से ऐसे मिला, जसे आत्मा आत्मा स मिलती है। मे उस स, एक जि दा औरत से, एक जि दा मद की तरह क्यो नही मिला था ?

और सजय अपनी सिगरेट से झडी हुई राख की तरह दीवान पर बठ गया।

राख शायद अभी गम थी, सजय ने अपन आप को दलील दी, यार सजय ! मीता विवाहिता थी बीमार थी उसे पा सकने का समय नही था।'

और फिर वह राख ठडी होकर मिटटी म बिखर गयी। सजय को लगा, 'अब मैं कभी नही जान सकूगा कि जिस औरत से कोई मुहब्बत करता है, उस औरत के शरीर को छूना क्या होता है।



सलामत को पढाने के लिए सजय न न दिन निश्चित किया था न समय। जब भी दूसर-तीसर दिन दो घटे की उसे फुरसत मिलती वह चला जाता। पर जहा तक बन पडता, वह इतवार को जरूर जाता था क्योकि उस दिन करीम की छुट्टी होती थी।

पर आज इतवार को सवेरे भी सजय कई घट लिखता रहा। जब दोपहर होने लगी, भूख की भी तलब हुई और करीम से मिलने की भी। इस लिए साइ-किल पकडकर वह करीम के घर की ओर चल पडा।

करीम की गली का मोड मुडकर वह मुश्किल से तीन घर पार कर पाया था कि पीछे से आवाज आयी, *'सजय मिया ! तुम्हारा करीम लाला तो यहाँ*

बैठा है।"

सजय ने साइकिल से पर उतारा, पीछे देखा, एक बूढा-सा दिखने वाला आदमी, एक घर के दरवाज़े पर खडा हुआ उसे हाथ से पीछे की ओर बुला रहा था।

सजय ने साइकिल मोडी, दरवाज़े मे से भीतर झाँका, सामने चारपाई पर बैठा करीम हुक्का पी रहा था।

"आ जाओ, भीतर आ जाओ, यार! यह भी अपने फत्ते यार का घर है।" करीम ने कहा और चारपाई से उठकर सजय की साइकिल को दरवाज़े के पास खडा कर दिया।

सजय चारपाई पर बठते हुए हँस पडा, बाला, "सो आज तुम्हारे फत्ते यार ने तुम्हें करीम लाला बना दिया है।"

फत्ते न ऐनक की टूटी हुई कमानी की जगह धागा बाँधकर कान पर लपेटा हुआ था। वह शायद कुछ ढीला हो गया था। उसे कान से खोलकर, फिर अच्छी तरह बाँधते हुए वह बोला "इन्हे तो मैं पहले से ही करीम लाला बुलाता हूँ। आप को भी सजय साहब! आज सजय मियाँ कहकर आवाज़ दी है, आप यार जो हुए, यारी म लोग पगडिया तो बदला करते थे, अब पगडियाँ तो रही नही, सो, मैं ने कहा, थोडे थोडे आप के नाम ही बदल दू "

सजय को वह बूढा फत्ता दिलचस्प लगा। आगन म गीली मिट्टी और चाक को देखकर बोला, "बुजुर्गवार! आप का नाम फत्ता किस ने रख दिया, हमारे फज़लशाह ने आप का नाम तुल्ला कुम्हार रखा था "

फत्ते की बजाय करीम हँसने लगा, "फत्ते! कुछ समझे ?"

'*नहीं समझा,*' कहकर फत्ता बताने लगा, '*मुझे तो यही मालूम है कि* अब्बाजान ने बडे चाव से मेरा नाम फतह मुहम्मद रखा था, पर क़िस्मत बिगड गयी तो नाम भी बिगड गया, मैं निरा फत्ता ही रह गया।'

"पर सजय मिया न कुछ और बात कही है," करीम बताने लगा, "लोग हीर गाते है, वह तो तुम ने सुनी है न! उस का किस्सा वारिसशाह ने लिखा था, और हीर की तरह एक सोहनी भी थी "

फत्ता बीच म बोल पडा, लो भला, सोहनी-माहीवाल का किस्सा किस न नही सुना है, वही जो रात को दरिया पार करके अपने यार से मिलने जाती थी ?"

"यह भी उसी की बात कर रहा है। उस का किस्सा फज़लशाह न लिखा था।"

"समझ गया, वह कुम्हारो की बेटी थी न ?'

"तुल्ले कुम्हार की बेटी।"

"अच्छा, अच्छा तभी कह रहे है कि मेरा नाम तुल्ला कुम्हार होना चाहिए था। पर सजय मियाँ ! " फत्ते ने बात करते करते बात को होठो मे ही रोक लिया।

'अब तो इस की हड्डियाँ निकल आयी है पर सजय यार ! सचमुच एक जमाना था, जब फत्ता अपने चाक से ऐसी-ऐसी सुराहिया उतारता था जिन की गदन देखकर लडकियो की गदनें भी भूल जानी थी।' करीम ने बताया, जरा-सा हँस भी पडा, पर फिर परे सून आसमान की ओर देखने लगा।

"सच कहते हो, सजय मिया ! भला क्या नाम था उस का जो कीचम का माली एक दिन उस के घर आया था ?' फत्ते ने आधी बात सजय से की, आधी करीम से।

करीम ने बताया, "मिया ! वह इज्जत बेग था, शहजादो की तरह खूब सूरत, पर सोहनी को देखन के बाद फिर अपने मुल्क को नही लौटा।"

फत्ते ने एक गहरी सास ली और कहा, "ऐसे ही एक दिन आ गया होगा, जैसे आज सजय मियाँ मेरे घर आये है। करीम लाला ! यह तुम्हारा यार भी तो शहजादा लगता है।"

करीम ने जरा सा मुस्कराकर सजय की ओर देखा, फिर फत्ते से बोला, "अच्छा, यह तुम्हे इज्जत बेग जैसा दिखाई देता है ? पर अल्लाह जामिन है, झूठ मत बोलना, अगर आज तुम्हारी बेटी सलमा इस आगन म खडी होती तो मेरा शहजादा तुम्हे उस के लिए कबूल होता ?"

सजय की समझ मे न फत्ते की बात आ रही थी, न करीम की, उस ने देखा, फत्ते ने ऊपर आसमान की ओर हाथ उठाये फिर कहा, "मेरे नसीब मे कुछ भी नही है, करीम मिया ! अब यू ही मेरे जख्मो पर नमक क्यो छिडकते हो ?"

करीम ने धीरे से सजय को बताया, 'बिचारा किस्मत का मारा हुआ है। पहले इस की औरत अल्लाह को प्यारी हो गयी। एक ही लडकी थी सलमा, बडी मुसीबतो स पाली जवान हुई तो वह भी अल्लाह को प्यारी हो गयी। उस की सूरत इसे भूलती नही। उसी की बात कर रहा है। इस की उम्र तो कुछ नही है, जवानी म ही बुढापा उतर आया है।"

सजय का फत्ते की पीडा सचमुच छू गयी, मुह स कुछ नही कहा गया, पर ऐसा लगा, जसे पल भर के लिए फत्ते ने उसे इज्जत बेग समझकर उसे सोहनी के खो जाने की पीडा का स्पश करा दिया है।

चारपाई से उठते हुए सजय ने कहा, "चलो, करीम मिया ! घर चलें। थोडी देर सलामत को पढा दें "

"चलो !" करीम न कहा, लेकिन उठा नही।

"तू ही बटा ! अब घर ले जा इसे।" पास बठे फत्ते न कहा, "सुबह से घर

से रूठकर यहाँ बठा हुआ है। सुबह से मुह म दाना नही डाला। म न बहुत मिन्नत की, कुछ खा ले पर रोज़ा रख बठा हुआ है।"

"क्या बात हो गयी, मिया ? मैं तो अपने घर से भूखा आ रहा हूँ कि दावत अपने यार के घर है। तुम मुझ से भी रोज़ा रखवाओगे ?" सजय न कहा तो करीम हुक्का छोडकर चारपाई से उठ खडा हुआ, "चलो फिर, आज तो खुद ही रोटियाँ थोपेंगे, वहाँ तो आज न चूल्हे म आग है, न घडे म पानी।"

"ऐसी क्या बात हो गयी ?" सजय ने फिक्र से पूछा तो करीम उस के कन्धे पर हाथ रखकर बोला, "पर मुझे आज एक गज़ब की बात मालूम हुई है।"

"क्या ?"

"कि हज़रत सुलेमान न जानवरो की बोली कसे सीखी थी ?"

"तुम तो कहते थे, उन्ह खुदा की बखशिश हुई थी।"

"वह तो किताबें लिखने वालो की बनाई हुई बात है, पर असली बात क्या थी, मुझे मालूम हो गया।"

"अच्छा, आज कोई इलहाम हुआ है तुम्ह ?"

"इलहाम ही समझ लो। तुम्ह मालूम है, उस की कितनी बीवियाँ थी ?" करीम हँस सा पडा।

"नही।"

"सात सौ बीवियाँ, और तीन सौ बादियाँ, फिर एक हज़ार औरतों की लडाई मे जानवरो की बोली तो उसे खुद ब-खुद आ गयी होगी।" करीम न कहा तो सजय मुस्करा दिया।

"पूछो फत्ते से, आज सारी गली क लोग सुन रहे थे।" करीम न फिर कहा तो फत्ता बोला, "ओह, बस करो ! घर बसे रहने चाहिए, बतनो का क्या है, वे तो खनकेंगे ही। और साथ ही एक बात सुनो। बीवियाँ मिट्टी के बतन तो होती नही जो टूट जायेंगी, वे तो पीतल की थालियाँ होती है"

फत्ता हँसन लगा तो करीम की भी कुछ हँसी निकल गयी।

करीम सजय को लेकर घर आया, तो आगन के एक कोने म नये लगाये गय तन्दूर म नेमत रोटियाँ लगा रही थी। सजय ने दरवाज़े के बराबर साइकिल रखते हुए जल्दी से कहा, "छोटी अम्माँ ! मैं ने तो सुना था कि आज मुझे रोज़ा रखना पडेगा।"

नेमत का चेहरा तन्दूर के सेंक से कुछ लाल सा दिखाई दे रहा था। सजय की ओर देखते हुए, शरमाकर हँस पडी, तो चेहरे का रग और गहरा हो गया। बोली, "इल्म का अक्षर सिर्फ सलामत के पेट म ही डालना है ? दो चार अक्षर उस के अब्बा के पेट म भी डाल दो।"

करीम ने आगन म चारपाई डालते हुए कहा, "लाओ भई, सजय ! रोटी का

टुकड़ा तो मुह से अन्दर पड़ा नहीं, तुम अक्सर ही पकड़ाओ, मैं पेट म डाल लू।"

नेमत को हँसी आने को हुई, लेकिन उस ने रोककर मुह दूसरी ओर कर लिया और बोली, "और घर से रूठकर दूसरा के घर जाकर बैठ जाना अक्ल वालो का काम होता है?"

'देखिए भाई जान, मैं ने कितने पन्ने लिखे हैं।" सलामत ने लकड़ी के स्टूल पर कापी रखकर सजय को दिखाई तो सजय ने एक नयी पक्ति कापी पर लिख-कर उसे बीस बार उस के नीचे लिखने के लिए कहा, और खुद बरकत की कोठरी की ओर जाकर आवाज दी, 'बड़ी अम्मा!"

बरकत ने इशारे से उसे अन्दर बुला लिया और रोई हुई आँखो को एक बार फिर पोछकर उस के बैठने के लिए चारपाई की ओर हाथ से इशारा किया।

फिर होले होले बरकत ने बताया कि आज क्या बात हुई थी।

असल म नेमत को दिन चढ़े हुए थे। वह पिछले पाँच छ दिनो से मिस्सी तन्दूरी रोटी के लिए कई बार कह चुकी थी। बरकत ने कल आँगन मे एक कोने म तन्दूर लगा दिया था पर सवेर-सवेरे आटा गूधते हुए जब बरकत परात मे आटा डाल रही थी तो छोटा लड़का दुल्ला बाहर आँगन म गिर पड़ा और वह आटा वही छोड़कर बाहर चली गयी थी। बाद म नेमत आटा छानने लगी तो उसे परात म एक धागा मिला जिस मे कई छोटी छोटी गाँठे पड़ी हुई थी और एक गाठ म एक छोटा सा कागज बँधा हुआ था। नेमत को यह शक हो गया कि बरकत उस पर कोई टोना कर रही है।

बरकत बोली, "और कोई नही देखता तो अल्लाह तो सब कुछ देखता है। वह चाहे सात पूत और पैदा कर, मुझे किस बात की हसद है, मेरी एक ही शीरी और एक ही दुल्ला मेरे लिए बहुत है।"

और आखें भरकर बरकत बोली, "मेरे तो घुटनो मे दर्द रहने लगा था। मैं मौलवी से अपने लिए धागा पढ़वाकर लायी थी, वही बाहू पर बँधा हुआ था, खुल-कर आटे म जा पड़ा।"

सजय हँस सा पड़ा, "पर उस आटे की रोटी तो सब को खानी थी, करीम ने उन्ह यह बात नही समझाई?"

बरकत ने कहा, "यह बात तो मैं ने भी कही। पर वह कहती रही कि यह तो मिस्सी रोटी का आटा था, दूसरा आटा तो अभी बाद म गूधना था, और क्या मालूम तुम बाद मे मिस्सी रोटी न अपने मुह से लगाती, न अपने बच्चो के। करमो जली यह नही सोचती कि मैं न भी खाती तो घर का मर्द तो जरूर खाता, वह भी तो सवेर से कह रहे थे कि मिस्सी रोटी के साथ लस्सी जरूर बनाना, और मर्द तो जैसा उस का वैसा मेरा "

सजय बरकत को बाँह से पकडकर बाहर ले आया और सब के लिए उस मे रोटियाँ परसवायी और खुद छोटी छोटी बातो से दुल्ले और सलामत को हँसाता रहा।

फिर उस न और आधे घटे सलामत को पढाया। और जब जान लगा, करीम उसे गली के मोड नक छोडने के लिए साथ चला आया।

मोड के इधर ही जब वे फत्ते के घर के आग स गुजरने लगे तो सजय की दृष्टि अनायास ही फत्ते के दरवाजे की ओर चली गयी। बोला, "कितना रूह वाला आदमी है।"

'सचमुच रूह वाला हुआ करता था, पर जब से उस की लडकी की मौत हुई है, उस की रूह भी साथ ही मर गयी है।" करीम न कहा, फिर पूछा, "पर सजय यार! रूह क्या सचमुच होती है? कभी-कभी फत्ता अजीब बातें किया करता है। उसे यक़ीन है कि उस की बेटी की रूह इसी आँगन म रहती है, कई बार उस न आँगन म उस की पैंछन सुनी है।"

करीम और सजय बातें करते हुए बाहर वाली सडक पर आ गये थ, पर करीम को पीछे लौटने का ध्यान नही था, उस न सजय के साथ चलते हुए पूछा, "तुम आजकल जो कुछ लिख रहे हो, वह भी तो रूहों की बात है।"

"साइकिक रिएलिटी," सजय न कहा, और बाहर वाली सडक की तरफ स घरो के पिछवाडे वाले खँडहरा की ओर मुड गया।

"क्या मतलब?"

'वह सच, जिस की खुद ही कल्पना की हो और फिर उसे खुद ही सच समझ लिया हो खुद ही गढा हुआ सच "

'तुम जा कुछ बुखार म बोलते थे, वह सब तुम्हे दिखाई देता था?"

"जो कुछ हम बडी शिद्दत के साथ सोचते हैं, वह आखा का दिखाई भी देने लगता है, काना को भी सुनाई द जाता है, उस की बदबू-खुशबू भी आदमी सूघ सकता है।"

"यह दोज़ख और बहिश्त सचमुच होत ह?' करीम ने पूछा तो सजय हँस-सा पडा "हाँ, होते है, मियाँ! जब तुम्हारी बीरो आँगन मे पौध लगाती है, तुम्हारी बरकत और नेमत हँसकर तुम्हार आगे खाना परासती है, तुम्ह यही घर बहिश्त लगता है, और जब व एक-दूसर पर जादू टोन करन का शक करती है, लडती है "

"तब दोज़ख तो बन जाता है पर यह तो और बात हुइ न "

सजय ने साइकिल को खँडहर के एक ऊँचे पत्थर से टिका दिया, और नीच के एक पत्थर पर बठत हुए बोला, "म न भी कल रात उस समय का वणन लिखा, सतरंगे झूले वाला, जहा मरी कल्पना म मीता बठी हुई है पर उस झूले के

सारे रग मेरे ही खयालो का जादू हैं, और कुछ नही   "

"मरकर तो कोई सचमुच लौटा नही जो आकर बताय, फिर आदमी ने खुद ही यह सब कुछ कसे बना लिया ? बहुत लोग यह कहते है भई, उन्होंने रूहो से बातें भी करके देखी ह ।" करीम निढाल-सा होकर एक पत्थर पर बैठ गया ।

"देखो ! हिन्द चीनी देशो म तो कई लोग रूहो से ब्याह भी कर लिया करते थे ।" सजय मुसकरा पडा और बोला, ' तुम यह बताओ कि अगर कोई सचमुच यह बिछड गया हो, जिस के साथ जीने को आदमी का जी करता हो, तो यह दीवानगी क्या नही करा सकती ?"

"यह तो सच है, आदमी चाहे जीते हुए बिछडा हो या मरकर, रूहो के ब्याह न जाने कसे हो जाते है, उस की झलक तो सोते हुए भी मिलती है, जागते हुए भी, पर यह जो आदमी ने मृतको की रूहो की बात सोची है, बढिया सोची है । इस से एक सहारा-सा तो बना ही रहना है । तुम्हे एक बात बताऊँ ?" करीम ने बहुत गहरी साँस ली और कहा, ' नेमत को आजकल उम्मीदवारी है ।"

"हाँ, मुझे बडी अम्मा ने बताया था ।"

"रात मुझे सपना आया था   " करीम ने सिर झुका लिया, और ऐसे चुप हो गया जसे अपने ही गले मे अपनी आवाज़ की ताकत खोज रहा हो।

सजय ने हौले से उस के कधे पर हाथ रखा, कहा कुछ नही । करीम ने एक ठडी सास भरी, कहा, "न जाने कितने बरस बाद मुमताज़ की सूरत देखी, पर अल्लाह ने सूरत भी दिखाई तो किस वक्त   "

"क्यो ?"

"बस, आखिरी साँस ले रही थी, न जाने इस म अल्लाह का क्या राज़ है ?"

"कोई बात की ?"

"वही बताने जा रहा हूँ   बस, उस ने एक बार देखा और बोली, 'उदास क्यो होते हो ? अब तो तुम्हारे घर आऊँगी'   सजय !" करीम ने कहा और चुप हो गया ।

"तुम क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नही ।"

"तुम जो सोच रहे हो, मुझे मालूम है ।"

"मैं तो सोचता हूँ, वह जहा भी है, जीती हो   "

"पर साथ मे यह भी कि अगर वह जिन्दा नही है तो वह शायद तुम्हारे घर—नेमत के घर जन्म लेगी   " सजय ने कहा तो करीम न बच्चो की तरह उस के घुटनो पर अपना सिर रख दिया और कहा, "सवेरे से वही सोचे जा रहा हू   "

"अब तुम समझे कि इनसान ने री इनकारनेशन की बात क्यों सोची थी ?"।
"काहे को ?"
"यही कि बिछड़े हुए फिर जनम धारण करके मिलते हैं।"
"वह भी जरूर मुझ जैसे ही होंगे पर हम तो, यार! साधारण-से आदमी अपनी मजबूरियों की वजह से ये बातें सोच जाते हैं, पर तुम हिन्दुओं में तो बड़े-बड़े पैगम्बरों की बात भी ऐसे ही करते हैं, भई फलाना फलान का अवतार था, फलाना "
"वह उन के गुणों से ये बातें जोड़ते हैं, जैसे वाल्मीकि ने रामायण लिखी, तो उसे राम को दुनिया का सब से उत्तम पुरुष कहना था, कैसे कहता ?—सो, सब कुछ लिखकर, अन्त में लिख दिया कि राम विष्णु का अवतार था। फिर जिन्होंने महात्मा बुद्ध की बात की, उन्होंने कहा कि बुद्ध राम का अवतार था। इसी तरह जो विष्णु की पत्नी थी लक्ष्मी, वह राम के समय में सीता बन गयी और कृष्ण के समय में रुक्मिणी। यह बात गुणों के आधार पर की जाती है। गुण कई तरह के होते हैं निरी शक्ति के भी हो सकते हैं। एक टापू हुआ करता था एटलांटिक, न जाने कब का डूब चुका है। पर कहते हैं, जैसे लोग उस टापू के थे, वैसे ताकत वाले फिर कहीं पैदा नहीं हुए। वह नस्ल ही खत्म हो गयी। पर अब हिटलर और स्टालिन की रूह में कहते हैं, उन्हीं की रूह आ गयी थी ।" संजय कह रहा था, जब करीम ने टोककर पूछा, ' फिर तुम्हारा क्या खयाल है, मेरा सपना यूं ही है ?"
"मियाँ! इनसान का मन बड़ा जादूगर है। और किसी पर जादू न चले तो अपने ऊपर ही चला लेता है।" और संजय ने करीम का हाथ पकड़कर उसे उठाते हुए कहा, "तुम्हारे सामने मैं जो कुछ बेहोशी में बोलता रहा था, वह क्या सच था ? सच सिर्फ यह है कि मीता इस दुनिया में नहीं थी सो मैं ने जो कुछ आज तक पढ़ा-सुना था, उस के हिसाब में मीता से अगली दुनिया में मिलने चला गया। जिन्दगी का जादू नहीं चला तो मैं ने अपने ऊपर मौत का जादू चला लिया "

रहा।

"यह देखो ! कौन सा कागज किस फाइल म डाला हुआ है " मनेजर ने एक चिट्ठी निकालकर मेज पर रख दी।

"मिल गयी जी ?"

' मिल गयी "

"कितना आडर है ?"

मनेजर ने ध्यान से चिट्ठी पढी और बोला, "अस्सी हजार।"

"अस्सी हजार ?" करीम हँसने लगा, फिर बोला, "तब पहले कागज-मडी से जाकर कागज ले आइये।"

मनेजर न हैरान होकर करीम की ओर देखा, "मियाँ ! एम्बेसियो के काम का कागज तो एम्बेसियो से ही आता है। हमारे इस गरीब-से देश का खराब कागज भला उन्होने कभी इस्तेमाल किया है !"

हाँ जी, वह तो मैं जानता हूँ।"

"इस वक्त कितना कागज पडा हुआ है ?"

"दस रिम "

"दस रिम ?"

"सीधा हिसाब है जी, एक रिम के पाच सौ बडे शीट, तो एक रिम मे एक फरमा एक हजार छपता है। ये दो फरमे है, पाँच-पाँच हजार छापें तो दस रिम लगेंगे। पर आप कहत हैं अस्सी हजार छपेगा, फिर कागज तो एक सौ साठ रिम चाहिए, बाकी निकलवा दीजिय।"

"कहाँ स ?'

"गाडाउन से, स्टाक तो वही होता है "

"पर इस एम्बेसी का स्टाक तो हरी लाल के पास होता है मैं पहले जिस प्रेस म मनजर था, मुझे याद है, वहाँ सारा कागज वही से आता था "

करीम पहले चुप-सा रह गया, फिर बोला, "होता था जी, पर उस आदमी का तो अब उन्होन हटा दिया है।"

"क्यो ?' मनेजर ने कहा पर मुस्करा-सा पडा, बोला, ' उस न उस मे से कागज निकालकर बाहर बेच दिया होगा।"

"सुना तो यही है जी, रिम के रिम बाहर बेचकर खा गया।"

' सो अब कागज का स्टाक वह यहाँ रखते हैं ?" मनेजर ने कहा, पर साथ ही बोला, ' फिर तुम ठहर जाओ, कहा दस रिम, कहाँ एक सौ साठ। मैं यह जिम्मेदारी नही लता। तुम मालिक को आन दो "

"आप की मर्जी।' करीम न कहा और बाहर जाकर परे कोन वाली दुकान पर चाय पीन लगा।

कुछ दर बाद मालिक आया, करीम ने प्रिण्ट आडर पूछा, और चुपचाप दोना फरमे पाँच-पाँच हजार छाप दिये।

डेढ बजे की खान को छुट्टी के समय, करीम खाना खाकर नलके पर हाथ धो रहा था जब नया मैनेजर उस के पास से गुजरा तो मुसकरा दिया।

करीम नही मुसकराया, शायद इस लिए मैनेजर को खयाल आया कि उस ने उस की मुसकराहट का अर्थ नही समझा। नलके पर हाथ धोने के बहाने से जरा पास आकर उस ने होले से कहा, "मियाँ! आज तुम ने एक सौ पचास रिम बचा दिये।"

"हा जी, अल्लाह देखता है।" करीम ने होले से कहा।

"अगर मैं तुम्हारे कहने म आकर कागज निकलवा लेता तो कागज की तरह हम भी जाया हो जाते "

करीम बोला नही तो मनेजर न उसे हुकारा मांगा, कहा, "अब बोलते नही ?"

'मैं जी आजकल एक किताब लिख रहा हूँ हिदायतनामा बकस। करीम ने कहा और धोये हुए हाथो को झटककर परे चला गया।

फिर शाम के कोई चार बजे होंगे, जब मालिक ने करीम को बुलाया पूछा, "वह तुम्हारा यार आजकल कहाँ रहता है ?"

सजय साहब ?"

"वही तुम्हारा सजय साहब।"

"ठीक-ठाक है जी।"

'कोई बडा काम मिल गया है क्या आजकल ?"

"हाँ जी," करीम ने कहा और धीरे स मुसकरा पडा, "आजकल अपना उपन्यास लिख रहा है जी।"

"बडा काम कर रहा है।' मालिक ने जरा तीखे स्वर म कहा। पर फिर स्वर को नीचे करते हुए बोला, 'कालिदास से कम तो कोई पैदा होता ही नही। आजकल प्रूफ का काम बहुत है, अगर उसे चार पसे कमाने है तो "

"अच्छा जी, कह दूगा।" करीम यह कहकर पीछे लौटने लगा तो मालिक ने पूछा, तुम कब कहोगे और कब वह आयगा। यहाँ काम रुका पडा है।' और मालिक ने घटी बजाकर चपरासी को बुलाया, पूछा 'कौन सा ब्लाक है, सी ब्लॉक है, सफदरजग ?

"हा जी।"

मालिक ने एक कागज पर पता लिखकर चपरासी को दे दिया।

करीम वापस लौटने लगा तो मालिक ने हाथ के इशारे स उस रुकने क लिए कहा और चपरासी से बोला, 'सजय साहब को अपने साथ लेकर आना, कहना,

बहुत जल्दी का काम है।"

चपरासी चला गया तो मालिक ने करीम से पूछा, "क्यो मियाँ! तुम्हारी नजर में अगर कोई एक दो आदमी हों, बडे शरीफ, जो टाइप की चोरी शोरी न करे, काम चाहे कम ही जानते हो, यहाँ ख़ुद ही दो चार महीने लगाकर सीख जायेंगे "

"सोचूंगा जी।"

"सच, तुम्हारा अपना कोई लडका तो होगा?"

"है जी।"

"कितना बडा है?"

'ग्यारहवाँ लगने वाला है, जी।"

तो मियाँ! फिर डाल दो उसे काम म, एक बरस म ताक हो जायेगा। क्या करता है? पढता है?"

"हाँ जी।"

'पर वह तो तुम्हारी उर्दू पढता होगा?"

"अब तो हिन्दी, पजाबी भी अच्छी पढ लेता है।"

'फिर देखते क्या हो? ले आओ उसे काम पर।"

करीम ने हाँ म सिर हिला दिया और अपने मशीन वाले कमरे मे चला गया। आज उस का जी कर रहा था कि दो घटे रहते ही छुट्टी लेकर घर चला जाये। उस ने ज़रूरी काम निबटा लिया था। अब लगभग खाली था, पर यह देखकर कि चपरासी सजय को बुलाने के लिए गया हुआ है, उस ने छुट्टी नही की।

कोई साढे पाँच बजे सजय आया और जब पद्रह-बीस मिनट बाद मालिक के कमरे से प्रूफों का लिफाफा लिये हुए बाहर निकला, तो करीम के पास आया। छुट्टी का वक्त हो गया था, सो करीम अपनी साइकिल लेकर उस के साथ ही प्रेस से बाहर आ गया।

रास्ते म करीम न और कुछ नही कहा, सिर्फ इतना, "यार! आज घूँट भर पीने को जी कर रहा है, रास्ते म कही से ले लें?" तो सजय ने कहा, "रास्ते स लेने की जरूरत नही है, आज रम पडी हुई है घर पर।" फिर करीम सारे रास्ते कुछ नही बोला।

सजय न कमरे म आकर दो गिलासो म रम डाली, तब करीम बोला, "मियाँ! तुम रोज कहते थ, आजकल मैं बुल्लेशाह नही गाता। अब उस क्या गाना है, अब तो मैं वहाँ पहुच गया हूँ जहाँ वह भी नही पहुँचा था "

सजय न सिगरेट सुलगाया और रम के दो घूट एक साथ पीकर कहा, "अच्छा, बुल्लेशाह स भी अगली मजिल पर पहुँच गये हो?"

"हाँ। वह तो यही कहता रहा 'चल बुल्लेया चल ओत्थे चल्लिय जित्थे सारे

अन्हे'[1], पर वह वहाँ पहुँचा नही था, मैं पहुँच गया हूँ।" करीम ने कहा और हँसने लगा।

फिर करीम ने संजय को आज की वह सारी बात सुनायी, अस्सी हजार की बजाय पाँच हजार पैम्फलेट छापने वाली और कहा, 'अब तुम बताओ, आर्डर कुछ और छपा कुछ, और दिखाई किसी को कुछ नही देता, हो गयी न अन्धों की नगरी"

संजय हँसा नही, बोला, 'तुम क्या समझे?"

"यही कि अस्सी हजार की जगह पाँच हजार छापकर सारा कागज भी बचा लिया और छपायी भी बीस गुना धर ली।"

'नही, मियाँ! जितना तुम्हारा मालिक चालाक है, दूसरे उस से बीस गुना चालाक हैं।"

तब फिर यह क्या बात हुई?"

"तुम्हारा क्या खयाल है उन दूसरों को अस्सी हजार और पाँच हजार का फर्क दिखाई नही देता?"

'अगर दिखाई देता है तब फिर?' करीम को कहने के लिए कुछ सूझ नही रहा था, उसे सिर्फ यह पता लग रहा था कि भेद वाली कोई जगह ऐसी है जो उसे दिखाई नही दे रही है।

"मियाँ! यह सब कुछ उन दूसरों की रजामंदी से होता है।"

'तुम्हारा मतलब है भई, उन्हें भी यह बात मालूम है?"

'बिलकुल।'

'तो फिर वे भी मिले हुए हैं? मेरा मतलब है, ज्यादा कागज के भी पैसे, और छपवाई के भी वह अपनी सरकार से लेकर यहाँ आपस में बाँट लेते हैं?"

"नही, बात इस से भी ज्यादा खतरनाक है।'

"अच्छा!

'बात यह है, मियाँ, कि सरकारें ही सरकारों को चला रही हैं।"

'वह कैसे?"

'किसी देश को भीतर से तोड़ना हो तो तुम बताओ, [illegible] चाहिए या नही?"

'हाँ वह तो पहली बात है।"

'सो, उस पहली बात के लिए [illegible]
उस के लिए दूसरे नम्बर के रुपये की [illegible]
इस तरह जो भी रुपया बचता है, [illegible]

---

1 चलो बुल्हशाह! वहाँ चलो, [illegible]

' फिर हमारा मालिक सारी बात जानता होगा ?"

"और क्या, एक हो बेफिक्री से अस्सी हजार की जगह पाँच हजार छाप रहा है ?"

' पर यार ! यह तो अपने देश से गद्दारी हुई "

' मियाँ ! अगर लोग देश के खैरख्वाह होते तो देश का यह हालत होती ? '

' फिर तो, यार ! हमारे अपने लोग ही अपने घर में सेंध लगा रहे हैं ?"

'दोस्त ! अगर अपना देश लोगों को अपना घर लगता तो फिर किस बात का रोना था ! लोग विदेशी सरकारों से रुपया लेकर अपना देश तोड़ रहे हैं।"

"तब फिर तुम्हारे पहरेदार उन की खबर क्यों नहीं रखते ? उन्हें कुछ नहीं दिखाई देता ?"

संजय मुस्करा पड़ा, बोला, ' तुम ने जब मौत का फरिश्ता बनकर मुझे दोजख दिखायी थी वहाँ जिन का दीदार हुआ था, वे यही तो थे और कौन थे ? सिर्फ इतना फर्क है कि वहाँ सब बेनकाब थे, इस लिए अच्छी तरह पहचान गये।"

करीम ने एक ही साँस में रम का गिलास पी लिया, और तब बोला, "फिर तो, यार, यूँ ही दीवार से टक्कर मारने वाली बात है, अपने आप सोच-सोचकर आदमी अपना माथा फोड़ ले और क्या कर सकता है।"

संजय ने करीम के गिलास में और रम डालनी चाही तो करीम ने गिलास पर हाथ रख दिया, "नहीं, बस, आज जिस्म टूट रहा था, घूंटभर पी ली और नहीं। अभी पाँच मील साइकिल चलानी है।"

और करीम ने उठते हुए कहा, 'हाँ, सलामत किसी लायक हो गया है ? कल से उसे प्रेस के काम में लगा दूँ ?"

"उस के लिए अभी हाथ का लिखा पढ़ना मुश्किल है, छपा हुआ हो या टाइप किया हुआ हो तो बिलकुल ठीक पढ़ लेता है। उस काम में डाल दोगे तो और भी जल्दी पढ़ने लगेगा।" संजय ने कहा तो करीम ने बताया, 'आज मालिक ने खुद कहा कि लड़के को काम में डाल दो।"

"अच्छा है, फिर शाम को लौटते वक्त रोज मेरे पास आ जाया करेगा, मेरा फेरा बच जायगा रोज यहाँ पढ़ जाया करेगा।"

करीम ने जरा ताव खाकर संजय की ओर देखा, "सो घर आने का यह बहाना भी खत्म हो जायेगा।"

संजय हँस दिया, "मियाँ ! तुम्हारे लिए ही तो कह रहा हूँ फिर रोज तुम भी उस के बहाने आ जाया करोगे। साइकिल तो एक ही है न ! उसे रास्ते में उतार कर तो तुम नहीं जा सकते।"

करीम का गुस्सा ठंडा पड़ गया ' अब प्रूफ देखोगे ? काहे के लिए रास्ता चलते बला मोल ली ?"

"पर इस कला के पैसे मिलते हैं।" सजय हँस पडा, "अपने काम के कई पन्ने रफ लिखे हुए हैं, कापी करने की हिम्मत नही पडती, वह फालतू काम लगता है, नया चाहे कितने पन्ने लिख लू।

"प्रूफ अभी देखोगे ?"

"नही, कल सवेरे शुरू करूँगा। रात की रोशनी म आखें रह जाती हैं।'

"चलो, फिर घर चले, साथ बठकर खाना खायेंगे।'

सजय कोइ एक मिनट के लिए सोच म पड गया, फिर बोला 'अच्छा, चलो।"

करीम न रास्ते म एक पाव कलेजी खरीदी, बोला, 'आज मै अपने हाथ से भूनकर तुम्हे खिलाऊँगा, ऐसी कि जो तुम न होटलो म खायी है उसे भूल जाओगे।"

घर पहुँचकर करीम चूल्हे के पास जा बठा। बरकत खाने का इतज़ाम करने म लग गयी और सजय सलामत को पढाने म लग गया।

सलामत पढने म होशियार था, बडी रवानी म पढने लगा था पर लिखाई म अभी गलतिया कर जाता था। सजय ने उस की कई गलतिया को ठीक किया और उसे उत्साह देते हुए बोला 'सलामत मिया! जल्दी से लिखना सीखो मेरा पूरा उपन्यास तुम्हे कापी करना है, वह म तुम से करवाऊँगा।

शीरी तदूर के पास खडी हुई आटे की लोइयां बना रही थी। हाथ की लोई हाथ म ही लिये हुए वह इधर उस खाट की ओर आयी, जिस पर बैठकर सजय सलामत को पढा रहा था, और खाट के पाये के पास खडे होकर हौले से बोली, "मुझे दे दीजिये, मैं कापी कर दूगी।"

"तुम ?" सजय ने शीरी की ओर देखा।

"मुझ से कहती थी, मत बताना, अब खुद क्यो बताया ?' पास से सलामत ने कहा।

'क्या ?" सजय न पूछा।

शीरी नही बोली, पर सलामत बोल उठा, "मुझे मालूम है, इसे मुझ से ज्यादा आ गया है, पर यह मुझ से बडी भी तो है।"

सजय की समझ मे कुछ नही आया तो सलामत ने कहा, 'भाई जान! यह आप के सामने नही पढती, पीछे दिन भर मुझ से पूछ-पूछकर पढती रहती है। आप जो मुझे लिखकर दे जाते है, यह बाद म मुझ से छीन लेती है। इस ने तो सारी किताब पढ ली है।"

सजय ने हँसकर शीरी की ओर देखा, कहा, पर यह मुझ से छिपाने की कौन सी बात है ? अच्छा, बताओ, कौन-सी किताब पढी है ?"

शीरी न अपनी बाँह स अपना मुह छिपा लिया और परे तदूर की ओर चली

गयी। सलामत ने बताया, "वही किताब, भाई जान, जो आपने लिखी है। अब्बा के पास पडी हुई थी, इस ने अब्बा की अलमारी म से निकाल ली थी।"



शीरी का अपन ध्यान मे मग्न अपने कमरे म बठकर सजय के उपन्यास की नकल करते हुए कितना समय बीत गया, इस का ध्यान उसे नही था सिफ आगन की धूप को था, जो अब जाते-जाते पल भर के लिए कमरे की दहलीज पर रुककर उसे देख रही थी।

कागज पर जहाँ कोई पक्ति, लकीर मारकर, फिर से लिखी हुई होती, उस के बारीक अक्षरो को पढते हुए शीरी कुछ अटक जाती थी, पर वैसे उसे सजय की लिखाई पढने मे इतनी महारत हो गयी थी कि जहा शिकस्ता सा भी लिखा हुआ लगता था उसे भी वह बिना अटके पढ लेती थी।

आज वह कई पन्ने उतार चुकी थी, जब उसे लगा कि अचानक कुछ अक्षरो की पक्तिया उस के पोरो से लगकर खडी हो गयी हैं।

कलम दवात हाथ स परे रखे गये, और वह किसी ध्यान म खिची हुई, हाथ का कागज चारपाई पर रखकर, कमरे की अलमारी के पास आकर खडी हो गयी।

हाथा म न कोई जल्दी थी, न कपन, वे ऐसे सहज थे, स्वाभाविक, जसे उन के लिए कुछ भी नया नही था कुछ भी अचभा नही था।

अलमारी म एक छोटा सा शीशा था। शीरी ने उसे अपने हाथो म लिया, शीशे मे अपनी सूरत देखकर जरा मुस्करायी, और फिर थोडी सी हैरान हो गयी, जैसे अपनी ही आँखो ने आज अपने चेहरे पर बडी सुदरता देख ली हो

शीरी की आँखे जसी काली और मोटी थी, घर म और किसी की नही थी, पर चेहरा दुबला और पीला था, जिस की वजह से घर म जब कभी उस की आँखो की बात होती तो उलटी होती थी। अब नही, पर जब वह छोटी थी, नेमत

जो भी खा रही होती, उस का एक टुकडा उस के हाथ पर रखकर कहा करती थी, 'ले मर ! आखें फाड फाडकर क्या देख रही है ?'

अब भी शीरी का चेहरा पतला था, पर पीला नही था। आखो की घनी पलकें आँखो पर लगी हुई छोटी सी झालर जैसी थी जिन के रग से मिलाकर वह जब काली चुनरी आढती थी तो अकेली कोने म खडी होकर एक बार शीशा जरूर देखा करती थी।

पर आज की तरह नही।

आज उस ने न काली चुनरी आढी हुइ थी, न उस का ध्यान आखो की आर था। आज वह सिफ माथे का देख रही थी जो उस के सामने खडे होकर हौले से हँस रहा था।

फिर शायद उस के पारो से लगकर खडे हुए कुछ अक्षरा का जादू था कि उस न अडोल-सी अपनी एक उँगली अपन माथे से छुआयी ता सामने शीशे मे एक लाल बिंदी उस के माथे पर दिखने लगी।

और शीरी का अपना चेहरा बहुत नया होकर शीशे मे खडा हो गया।

अपने चेहरे को पहचानन के लिए वह शीशे म दखे जा रही थी कि कमरे म खटका हुआ। जमीला कमरे म आकर बोली मेरी चप्पले नही मिल रही है, तुम्हारी पहन लू ? बस, मोड तक जाना है। अम्मा कह रही है, एक पान ला दे।"

शीरी ने जल्दी से शीशा अलमारी म रख दिया और पल्ले की ओट म हा कर चुनरी से अपना माथा पोछन लगी।

जमीला ने इधर आकर अलमारी का पल्ला खोल दिया, बाली, "अलमारी म सिर घुसाकर क्या कर रही है ?"

शीरी ने फिर जल्दी से एक बार माथे को पोछा और कहा "कुछ भी नही, हाथ म स्याही लगी हुई थी शायद माथे पर लग गयी, पाछ रही थी।'

जमीला ने ध्यान से उस के सारे मुह पर दखा, बोली, "नही, कही भी नही लगी हुई है।" और फिर शीरी की चप्पलें पहनकर कमरे से चली गयी।

शीरी ने फिर एक बार अलमारी से शीशा निकालकर दखा और शीशा अलमारी म रखते हुए कुछ हैरान सी इधर अपनी चारपाई के पास आ गयी, जहा तकिय के पास वह अभी एक कागज और कलम दवात रखकर गयी थी।

कागज भी वहा पडा हुआ था, कलम-दवात भी, पर शीरी को लगा यही कागज अभी पता नही किस तरह उस के सारे दिल को छल गया था।

एक एक अक्षर याद आ गया जिन्ह अभी वह नकल कर रही थी। यह सजय के उपन्यास का वह हिस्सा था जब उस न आसमान के सतरग झूल क पास जाकर रगा को छुआ था, तो देखा था कि सार रग गीले थ, और उस न लाल रग म एक उँगली डुबाकर झूले पर बैठी हुई मीता के माथे पर लगा दी थी

शीरी का हाथ एक बार फिर अपने माथे को छू गया, लगा, नहीं, इस कागज ने उसे नहीं छला, उस ने आप ही अपने माथे को छल लिया।

और शीरी की आखो म पानी आ गया। पता नही लग रहा था, वह किस से पूछे कि यह मेरे हाथों मेरे साथ क्या हो रहा है।

उस के बाद शीरी ने सारे कागज तह कर अलमारी म रख दिये, और अपनी चारपाई पर ऐसे लेट गयी, जैसे बहुत थक गयी हो।

शाम का जब करीम आया, बरकत ने शीरी के कमरे की ओर इशारा कर के कहा, 'जरा लडकी को देखो, मुझे ता उस का जिस्म गर्म लगता है।"

शीरी सो रही थी। करीम ने माथे पर हाथ रखा, नब्ज देखी, हथलिया देखी, बाला, "हलका सा बुखार मालूम होता है, पर ज्यादा नही है। इसे भारी कपडा आढा दो, सवेरे तक ठीक हो जायगी।'

और करीम ने शीरी के पास से उठते हुए फिर एक बार उस के माथे पर अपनी हथेली रखी, और जरा सा हिलाकर पूछा, ' बेटा, कुछ पीने को जी चाहता है ? चाय बना दू ?"

शीरी न आखें खाली, पानी मागा, और फिर पानी पीकर तकिये पर सिर रखते हुए होले से पूछा, "अब्बा ! सिफ हिन्दू लडकियाँ माथे पर बिन्दी लगाती है न ?'

"हा, सिर्फ हिन्दू लडकियां " करीम ने कहा और थोडी सी चिंता के साथ शीरी की ओर देखते हुए पूछा, "तुम्हे काई सपना आ रहा था ?"

'नही " शीरी ने मुह दूसरी ओर कर लिया और कहा, "वह नॉवेल म लिखा हुआ था, इस लिए पूछा।"



जाडे की ठिठुरन म कमी आ गयी थी, पर आज दोपहर से गहरे बादल सब के सिर पर गीले तबू की तरह तने हुए थे।

और शाम, समय से पहले ही, आँगन म उतरकर शीरी के कमरे की खुली

हुई खिड़की में से होकर, उस की चारपाई पर आ बैठी थी।

चारपाई के पास स्टूल पर सजय के उपन्यास के वे सब कागज चुपचाप पडे हुए थे, जिन की नकल करते हुए शीरी पता नही किस समय अलसाकर चारपाई पर लेट गयी थी और कागजो के कितने अक्षर उस की आँखो में ऊँघने लगे थे।

लगा, एक बादल आसमान से उतरकर उस के माथे पर आकर बैठ गया है।

एक गीली सी ठड से शीरी का सारा शरीर गुच्छा हो गया।

फिर न जाने कब उस का ऊँघता हुआ हाथ अपने माथे पर से बादल को हटाने लगा।

शायद उस की ढीली सी चोटी से निकलकर बालो की एक लट आगे उस के माथे पर आ पडी थी, जो उस के हाथ से माथे से हट गयी तो शीरी को लगा, उस के माथे पर पडा हुआ बादल फिर दूर होकर हवा में उडने लगा है।

बादल दूर होते होते एक पतले से धुएँ की तरह फैल गया और शीरी को लगा एक बहुत ठडी-सी गध उस के गले में उतर रही है।

शीरी की साँस उस के गले में और तेज हो गयी।

शायद धुआँ भी नही था गध भी नही थी, सिर्फ ऐसे, जैसे सास लेने के लिए आसमान मे हवा खत्म हो गयी हो।

और फिर उस के सारे अग जैसे होश मे न रहे हो। शायद उस की ऊँघती हुई आखो में नीद कुछ गाढी हो गयी।

पता नही कब आँखो के आगे बिछे हुए अँधेरे मे कई रगो की धारियाँ पड गयी और शीरी ने एक लबी और बडे चैन की साँस लेकर अपने गुच्छा हुए अग चारपाई पर सीधे कर लिये।

रगो की धारियाँ और गहरी हो गयी, पास को भी आ गयी, जिस से शीरी को लगा कि वह अपने हाथ से उन्हे छू सकती है।

एक सुखद-सी हवा उस की साँसो मे रम गयी और उस ने रगो की धारियो को पकडने के लिए अपना हाथ ऊँचा किया

धारियाँ सिर्फ रगो की ही नही थी, एक बडी रेशमी-सी रस्सी उस के हाथ से छूट गयी।

हाथ छुआ, पर हाथ की पकड में कुछ नही आया, जैसे एक सख्त, पर रेशमी रस्सी उस के हाथ से फिसल गयी हो।

उस ने फिर रगो की धारियो की ओर देखा, अब वह कुछ दूर थी और ऊँची भी, जहा हाथ नही पहुँच रहा था।

और शीरी को लगा, वह बहुत जोर लगाकर एडियो को उठाकर ऊपर को

हाथ कर रही है, और फिर उस का पर उलटा पड गया

पर की मोच से वह चौककर जाग गयी।

देखा, पायँते की ओर खडी हुई उस की माँ उस के पैर को हिलाकर उसे जगा रही हैं, "यह कौन सा वक्त है सोने का, जाडो म दिन म सोयें तो सारा जिस्म अकड जाता है।"

शीरी ने आधी जागी सी हालत म चारो ओर देखा, अपने ऊपर पडी हुई लोई की ओर भी। अम्मा कह रही थी, "सोना था तो कोई भारी कपडा ओढ लेती, ठड से गुच्छा-सी बनी पडी थी, मैं ने लोई उठाकर डाल दी।' और कमरे से बाहर जाते हुए अम्मा ने कहा, "उठो, नेमत का जी अच्छा नही है, तुम आकर आटा गूध लो, म मटर की सब्जी के लिए आलू खरीद लाऊ, घर म नही है।'

शीरी ने लोई को हटाया। चारपाई से उठी तो उस की नजर उस स्टूल पर पडी, जिस पर वे कागज पडे हुए थे जिन पर सजय के उप यास की नकल करते हुए वह न जाने कब सो गयी था।

और वह हैरान होकर उन कागजो की ओर देखन लगी। याद आया, जो पन्ना वह लिखते लिखत सो गयी थी, उस मे सजय ने उस सतरगे झूले का वणन किया था, जिस पर उस ने मीता को बठे देखा था।

शीरी को अपना रगीन धारियो वाला सपना याद आया। लकीरें सब वसी ही थी, जसी आसमान पर सतरगे झूले की होती है।

खिडकी स आन वाली शाम की ठड उस की हड्डियो म उतर गयी, पर उस झूले पर तो सजय की मीता बठी हुई है। मैं उस हाथा स क्यो पकड रही थी ?'

यह भी याद आया कि उन लकीरो को पकडते हुए लगा था, जसे एक सख्त और रेशमी रस्सी सचमुच उस के हाथ से छू गयी हो।

शीरी ने खुद अपने आप को दलील दी, 'शायद वह ध्यान आ गया था, जब छोटे होते पेड की डाल से रस्सी बाधकर मै और जमीला झूला झूलती थी।'

पर शीरी का मन ठहरा नही, 'मै रेशमी रगो के झूले को हाथ से पकडन लगी थी तो झूला दूर हो गया था '

मन न कहा, वह शायद मीता ने ऊपर खीच लिया होगा।'

और शीरी स्टूल पर पडे हुए सारे कागजो को अलमारी म रखकर जब बाहर जाकर परात मे आटा छानने लगी तो आटे की चलनी उस के हाथो म थोडी काँप रही थी।



आज इतवार था। सजय करीम के घर जाते हुए जब फत्ते के घर के आगे से गुजरा तो उस की नजर सहज ही फत्ते के दरवाजे की तरफ चली गयी। दरवाजा खुला हुआ था, पर वह दरवाजे में या दरवाजे में से दिखाई दे रहे आंगन में बैठा हुआ नजर नहीं आया, इस लिए सजय सामने करीम के घर की ओर चलता गया।

देखा, सामने से करीम और फत्ता दोनों इधर ही आ रहे थे। फत्ते ने सजय को देखते ही सलाम किया, कहा, 'लो, यह तो हमारे इज्जत बेग चले आ रहे हैं।"

सजय हँस पड़ा, 'तो तुम मियाँ! इस वक्त करीम लाला को लेकर कहाँ चले?'

फत्ते ने हाथ से अपने घर की ओर इशारा किया, सजय दो कदम लौटा और उन के साथ चल दिया, फत्ते के घर की ओर।

तीनों अन्दर आंगन में आये तो करीम ने दीवार से लगी हुई चारपाई बिछाते हुए कहा, "आज नेमत कुछ ठीक नहीं थी, इस लिए दाई बुलाकर लाया था।"

सजय ने करीम के कान के पास होकर कहा "आज फिर तुम्हारी मुमताज आ रही है।"

करीम जवाब में हँस दिया, "तुम्हें वह बात याद है? पर अभी नहीं। वैसे ही शायद नेमत का पैर ऊँची-नीची जगह पर पड़ गया था, इस लिए दाई को बुला लाया। अभी तो काफी दिन बाकी हैं।'

फत्ते ने करीम के लिए हुक्का भर दिया, फिर सजय से पूछा, "[illegible] मियाँ! तुम्हारी क्या खिदमत करूँ? चाय बनाऊँ?'

"दोस्त! सजय मियाँ को तुम इज्जत बेग कहकर [illegible], और कौन-सी खिदमत बाकी रह गयी?" सजय ने [illegible] दुखते हुए बोला, 'तुम जिस दिन [illegible], [illegible] है, सारे दिन तुम्हारे पास बैठकर गुराहिया की गर्दन मरोड़ी [illegible] हूँ।"

"वरा, अब चाक के दिन आने वाले हैं। जाडो मे काम जरा ठडा पड जाता है। पिछले दिनो प्याले और मतवान उतारे थे, वे अभी तक आवे म नही रखे हैं।" फत्ता कह रहा था, जब सजय को एक खयाल आया। बोला, "मियाँ! प्यालो पर फूल बूटे बना लिये ?"

फत्ते ने दाहिने हाथ को इस तरह हवा मे हिलाया, जसे फूल बूटा की बात एक लम्बे समय से हवा म खो गयी हो। बोला, अगर तुम कहो तो तुम्हारे लिए मैं कुछ प्यालो पर फूल-बूट बना दू।"

सजय कुछ चुप रह गया।

"क्या सोच रहे हो ?" करीम ने पूछा तो सजय के होठो के पास पीडा की एक रेखा मुसकराहट-सी बनकर ठहर गयी। बोला, "जिन इलाको म मेह बहुत कम बरसता है, साल मे मुश्किल से एक बार तरसकर मेह दिखाई देता है, वहा लोग अपन बच्चो की उम्र मेहा से गिनते है, फलाने की उम्र पाच मेह, फलाने की सात मेह, फलाने की बारह मेह सोच रहा था, हर जगह आदमी की उम्र कुछ ऐसे ही होती है "

करीम वडे गौर से सजय के मुह की ओर देखने लगा तो सजय न कहा, "अगर सोचें तो हम सब की उम्र इसी हिसाब से है जसे, करीम मियाँ! तुम्हारी उम्र एक मुमताज, मेरी एक मीता, और फत्ते की उम्र एक सलमा "

करीम ने हुक्के का कश जोर से अन्दर को खीचा, और कहा, "बात तो कुछ ऐसी ही होती है, जिस की रूह जहाँ जुड जाये, वह चाहे आशिकी की बात हो, चाहे वात्सल्य की "

सजय ने अपनी कही हुई बात की पीडा से छुटकारा पाने के लिए फत्ते की ओर ध्यान किया, 'अच्छा, मियाँ! जिस दिन तुम आवा जलाओगे, मैं तुम्हारे पास बठकर तुम्हारे प्याला पर फूल-बूटे बनाऊँगा।"

फत्ते के चेहरे पर एक रौ आ गयी। पर करीम अभी उसी सोच मे पडा हुआ था बोला, यह बात भी ठीक है, पर एक और बात भी तो हो सकती है।"

'क्या ?" सजय ने पूछा।

"जो तुम्हारे जसे जहीन होते है, उन की रचनाएँ भी तो उन का इश्क होती हैं। उन्ह तो अपनी उम्र ऐसे गिननी चाहिए—भई फलाने की उम्र तीन नावल, फलाने की पाच मूर्तियाँ, फलाने की "

सजय बीच म बोल पडा, "फिर तो तुम्हारी चार मूर्तियाँ हो चुकी, अब पाँचवी होन वाली हैं "

"कसी मूर्तियाँ ? मैं कोई कलाकार हूँ ? मैं तो अदीबो और कलाकारा की बात कर रहा था।"

सजय हँसने लगा, "एक तुम्हारी शीरी एक जमीला, एक सलामत, और

एक दुल्ला   मा-बाप तो सब से बडे कलाकार होते हैं भई, देखो ! कसी-कसी मूर्तिया गढते हैं।

करीम को सजय की बात से दिल्लगी सूझ गयी, बाला, "नही, यार ! हमारे मजहब म बुत परस्ती नही चल सकती।"

'अच्छा," सजय ने करीम के कधे पर जोर से हाथ मारा, 'और यह बुत परस्ती की बात तुम्ह अब सूझी है ? मुमताज क नाम पर तो नही सूझी थी।'

करीम की दलील कच्ची हो गयी तो बाला 'कोई साधारण आदमी हो तो उस के सामने तो ठहर सकू, खुदा के सामन कोई कस ठहरे ?" और फत्ते की ओर मुह करके उस ने कहा, "यह अदीब भी धरती के खुदा होते हैं, कलम पकडी और अपने अफसाने म जसे जो म आया किसी की किस्मत लिख दी "

सजय न हँसकर करीम की ओर देखा और एक सिगरेट सुलगाई।

सिफ बातें करते जाना, और सजय के आगे खान के लिए कुछ न रखना फत्ते को अच्छा नही लग रहा था। उस न कहा, "मिया ! तुम्ह परहेज न हो तो अगली गली के मोड पर पीरबख्श की बढिया दुकान है, रोटी और कबाब ले आऊँ ?"

"परहेज ? ' सजय ने कहा तो फत्ता खुद ही बालने लगा "बस तो मैं जानता हूँ, करीम के घर का पका खाना खा लेत हो, फिर भी मै ने कहा, पूछ लेना चाहिए।"

फत्ता उठकर जाने लगा तो सजय ने उसे रोक दिया, "आज नही, मियाँ ! अभी चाय के साथ रोटी और अण्डे खाकर आ रहा हूँ फिर सही किसी दिन।'

फत्ता बैठ गया, पर उस ने पूछा, तुम ने मिया, शुरू से ही करीम के हाथ का खाने से परहेज नही किया ?"

"यह तो कभी खयाल ही नही आया।' सजय ने कहा, तो फत्ता बोला, 'यह तो मैं ने तुम्ह ही आखा से देखा है और किसी को न देखा है न सुना है। पर तुम ता अदीब हो, यह बताओ, यह शूद्र और ब्राह्मण वाली बात शुरू से ही चली आ रही है ? भला जब धरती पर आदमजाति बनी होगी, तब किस न बताया हागा कि फलाना आदमी शूद्र है, और फलाना ब्राह्मण "

करीम ने कहा, "यह तुम्ह मैं बताता हूँ, फत्ते ! यह बात शुरू स नही थी, बाद म तजुर्बे से बनी। जसे सूरतें अलग-अलग हाती है, वसे ही आदमी की अक्ल अलग-अलग होती है। जो जहीन थे, पढन लिखने म ध्यान दते थे, व ब्राह्मण हा गये। जो अच्छी काठी वाले थे, दुश्मन से लड सकत थ, व क्षत्रिय हो गय। जिन का मन वाणिज्य-व्यापार की तरफ चलता था क्या, मैं ठीक कह रहा हूँ न ?' करीम ने सजय की ओर देखा।

सजय न हाँ म सिर हिला दिया, कहा, 'व वश्य हा गय, जो वणज

करते थ ।"

और करीम कहने लगा, "जो समझ के बहुत साधारण थ, अपनी समझ से कुछ नही कर सकत थे, व छाटे मोटे काम करन वाले शूद्र हो गय, खिदमतगार। बात तो यहा स बनी थी "

"नही मियाँ ! यह बात तो बाद म बनी।" सजय न एक और सिगरेट सुलगायी, फिर बोला, "असल म एक ही आदमी पहले शूद्र होता है, फिर वश्य, फिर क्षत्रिय, और फिर ब्राह्मण।"

'क्या मतलब ?" करीम और फत्ता हैरान होकर सजय की आर देखने लगे।

"यही कि हर आदमी जब वह पदा होता है शूद्र होता है " सजय ने कहा तो करीम बोल पडा, 'ब्राह्मण के घर भी शूद्र पदा होता है ? यह किस तरह हो सकता है ?"

सजय ने हँसकर करीम की ओर देखा, ' हा मियाँ ! ब्राह्मण का बच्चा भी शूद्र होता है। असल म बच्चा जब बच्चा होता है, नासमझ होता है, मा बाप का हुक्म मानकर चलता है वह शूद्र होता है। फिर कुछ सीख पढकर जब वह काम-काज म पड जाता है, तब वश्य हो जाता है। फिर जब अपने मुल्क की हिफ़ाजत के लिए लडता है तो क्षत्रिय हो जाता है, और बडी उम्र म जब जि दगी का इल्म उसे आ जाता है, तब वह ब्राह्मण हो जाता है।"

'यार ! बात तो समझ मे आती है, पर आज तक कभी सुनी नही थी।" करीम ने हुक्के का एक गहरा कश खीचा और हैरान होकर सजय के मुह की ओर देखने लगा।

ये चारा हालतें एक ही आदमी की होती हैं, उस की उम्र के मुताबिक। बात असल मे यहा से शुरू हुई थी, पर फिर बिगडते बिगडते एसी बिगड गयी कि आज तक सँवरी ही नही।'

करीम ने हुक्का परे कर दिया। दिल मे सजय के लिए और भी प्यार आ गया। चारपाई स उठते हुए बोला "चलो, उठो, घर चले।"

"पर वहाँ " सजय ने कहा ता करीम बोल उठा, "वह दाई जरा दबा रही थी, मालिश कर रही थी, इस लिए मैं घडी भर के लिए यही बठ गया था। अब तो कब की चली गयी होगी। चलो !"

और सजय उठकर करीम के साथ चल दिया।



एक दिन दीवार से बाधी हुई लम्बी रस्सी पर करीम धोए हुए कपडो को सूखने के लिए डाल रहा था जब सजय ने अपनी साइकिल दरवाज के पास रखी और करीम की आर देखत हुए हँसी म कह उठा 'मैं न कहा घर ता करीम का मालूम होता है, पर यह नागा फकीर कहा से आ गया ?

करीम की कमर के गिर्द ऊँचा-सा तहमत बँधा हुआ था पर ऊपर वह नगा था। हाथ म लिय कपडे को निचोडकर रस्सी पर डालत हुए बोला कभी कभी यार ! फकीरा क मन म भी माह पड जाता है। मैं ने कहा, आज सजोग से एक छुट्टी आ गयी है इन फकीरजादियो के काम म हाथ बँटा दो "

सजय खुद ही एक कोठरी म से चारपाई को घसीटकर आगन म डालत हुए और उस पर बैठत हुए बोला, "तुम्ह तो, मिया ! अदीब हाना चाहिए था।'

'चाहिए तो था,' करीम तहमत से अपने गीले हाथ को पोछत हुए आकर चारपाई की पट्टी पर बठ गया और बाला, 'यार ! तुम्ह एक बार बताया तो था कि जब जवान होता था, यही जी करता था कि बुल्हेशाह की तरह फकीर हो जाऊँ, बस शेर लिखता रहूँ और गाता रहूँ, और काई गमो-खुशी का फिक्र न हो पर आज तुम ने कस कहा कि मुझे अदीब हाना चाहिए था !'

"इसी लिए कि तुम नय नये लफ्ज गढत हो, अमीरजादिया लफ्ज ता सुना था पर फकीरजादिया तुम से ही सुना है। पर आज तुम्हे छुट्टी काहे की हो गयी ? मेरा खयाल था, तुम घर पर नही मिलोग। मैं तो मोरी से जितना भी उपन्यास नकल हो गया है, वह लने आया था।" सजय न कहा, और उस की नजर उधर मुड गयी जहाँ चौतरी पर बरकत और जमीला बठकर मल कपडा का धा रही थी और बीच बीच म कपडा का थापी स पीट भी रही थी।

जमीला हँसन लगी, 'अम्माँ ! थापी अलग रख दा। बहुत शार होता है अब भाई जान और अब्बा बजाहत की बातें करेंग कुछ हम भी ता सुनन दा !"

सजय मुस्करा दिया, पर करीम का ध्यान उधर नहा था, बाला, 'आज राई हिदुओ के पीर का दिन है उस को छुट्टी है। अब मैं साच रहा था ध्यान न

बाद घर में निकलूँगा। एक और काम से भी जाना था, तुम्हारी तरफ से भी चक्कर लगाता आऊँगा।"

सजय ने जमीला की ओर देखा, "हमशीरा जान! वजाहत की बातें बाद म सुनना, पहले उठकर चाय पिला दो।"

जमीला चुनरी से गीले हाथ पोछते हुए उठकर चाय बनाने चली गयी, तो सजय ने करीम से कहा, 'यार! एक बात बनती मालूम होती है। उसी के लिए उपन्यास के जितने पन्ने नकल हो गये हैं, वह लेने आया था।"

"कोई मान गया है छापने के लिए?" करीम ने जल्दी से पूछा।

'अपनी जबान म तो नही पर लगता है, अंग्रेज़ी म छप जायेगा। कल शाम को एक आदमी से बात हुई थी, मैं ने महज़ज़बानी उस का प्लाट सुनाया था, वह बोला, 'लाओ मैं अंग्रेज़ी म तर्जुमा करता हूँ' और यह भी हो सकता है कि शायद किसी बाहर के देश म ही छप जाये।" सजय कह रहा था जब करीम के माथे पर गहरी त्योरी पड गयी, उस ने कहा, 'फिर लानत है अपनी ज़बान वालो पर"

सजय मुसकरा उठा, 'यार! व लानतें तो न जाने ईश्वर न उसे सारी उम्र देनी है, हम क्यो उस के लिए अपना वक्त गँवायें, बहुत काम पडा हुआ है करने लायक शीरी कहाँ है? देखू, कितने पन्ने हो गये है।"

करीम उठकर शीरी के कमरे की ओर गया, और लौटते हुए बोला, 'देखो उठकर, नज़ारा देखने लायक है। मेरे ख़याल म वह सारी रात यही काम करती रही है। आधी रात के वक्त भी मैं ने बत्ती जलती हुई देखी थी, सवेरे भी और अब उस के चारो ओर काग़ज़ ही काग़ज़ पडे हुए है, और ख़ुद उन म ऐसे सोई पडी है जसे काग़ज़ो की कब्र मे पडी हुई हो"

'काम तो उसे मैं ने सचमुच मुश्किल दे दिया है," सजय हँस सा पडा। 'मैं ख़ुद मुश्किल से काग़ज़ो की कब्र स निकला था, अब उसे डाल दिया।'

जमीला दो गिलासो मे चाय ले आयी तो सजय ने एक गिलास लेकर फिर जमीला को दे दिया, "जाओ शीरी को द आओ, उस ने शायद सवेरे स अब तक चाय नही पी होगी।"

"हाय भाई जान! आप न आते तो उस चाय को कौन पूछने वाला था," जमीला जोर से हँस पडी, 'उसी का दर्द आता है, बिचारी जमीला से एक बार भी नही पूछा कि तुम भी चाय पी ला।'

पगली! वह रात-भर काम करती रही है—इस न सोचा कि शायद सवेरे से भूखी ही सो रही है।' पास बैठे करीम न कहा तो जमीला चाय का गिलास फिर सजय को थमाते हुए बोली, 'बेफ़िक्र होकर पी लीजिये, भाई जान! मैं ने अभी उसे चाय पिलायी थी, सोने स पहले।" और फिर थोडी देर रुककर बोली,

"आप ने उस तो पढ़ा दिया, मुझे क्यो नही पढाते ?"

सजय मुस्करा दिया, "मैं न उस कब पढाया ? उस ने तो मरी चारी म पढ लिया।"

जमीला कुछ कहन जा रही थी जब बरकत न आवाज़ दी, "अरी ! बडिया डालकर चन की दाल धर दे। और य दा कपडे रह गय है, मैं पानी म निकाल-कर आती हूँ "

जमीला चली गयी तो करीम न चाय का घूट भरत हुए कहा, मियाँ ! तुम ने उस दिन जो बात सुनायी थी न, मैं तब से उसे ही सोच जा रहा हूँ।"

"कौन-सी ?'

वही शूद्र और ब्राह्मण वाली कि आदमी खुद ही चारो ज़ात होता है।

"हाँ, मियाँ ! बात तो किसी न बहुत सच कही थी।"

"जिस इल्म आ गया, वही ब्राह्मण हो गया '

' हाँ, जिसे आप आलिम फाज़िल कहते हैं।"

'पर यार ! वे भी तो होत हैं जो चाहे सौ बरस जीत रहे, इल्म का नाम इल (चील) जितना जानत हैं, फिर व ता सारी उम्र शूद्र रहे न ?"

"असल म फक यही से पडा था, कई सारी उम्र शूद्र ही रहते थे। कई वश्य बने, फिर सारी उम्र वश्य ही बने रहे। जरूरी नही होता कि उम्र से इल्म जरूर आ जाता हो।"

"एक हफीज साहब थे, बहुत मशहूर थे "

"वही, जिन के इन्तकाल की खबर हाल मे आयी थी ?"

"वही। खुदा उन की रूह को वख्शे, जितना अर्सा जिय, सरकारो के ढोल पीटते रहे। सरकारो को उन्हें खिलअते तो फिर देनी ही थी, बहुत दी।'

"हाँ, मैं न अखबार मे पढा था "

"पर सच पूछें ता खुदा न पशु को आदमी की जोन मे डाला हुआ था।'

"तुम उस जानते थ ?"

"नही, यार ! मुझ यह शरफ हासिल नही हुआ था। मैं न तो सब कुछ उन्ही की जबानी सुना जो अब आगे होकर ज़ोर ज़ोर स उन का मातम कर रहे हैं।'

सजय हँस-सा पडा 'सो, मातम भी कर रहे है और बातें भी उडा रहे हैं।"

' यही तो दुनियादारी होती है, और मियाँ ! तुम क्या समझते हो कि दुनियादारी क्या होती है ? परसो, अल्लाह की मार मैं भी उन की सोहबत म फँस गया।"

' वह कसे ?"

"मुझ से तो उन्हें सिफ इतना काम था कि उन्हें कोई अच्छा कातिब नही मिल रहा था। तुम जानते हो कि उर्दू का काम अब इतना कम हो गया है कि

कातिब नहीं मिलते। कातिब तो मुसलमान ही होते थे, कुछ पाकिस्तान चले गये, बाकियों ने यह पेशा ही छोड़ दिया।"

'फिर आजकल उन्होंने तुम्हें कातिब बनाया हुआ है?"

"वह तो काम ही अलग होता है, मियाँ! जैसे कातिब लिखते हैं, एक-एक अक्षर मोती की तरह, वह भला और कोई लिख सकता है? मुझ से तो कहते थे कि तुम कोई कातिब तलाश कर दो। आज इसी लिए सोचता हूँ कि शहर जाकर पता करूँ। एक पीरां दित्ता हुआ तो करता था, पर अब बहुत दिनों से देखा नहीं। अल्लाह जाने, जीता भी है या नहीं। मैं ने सोचा, अगर किसी मजदूर भाई को काम मिलता है तो अच्छी बात है..."

और करीम ने एक ठंडी साँस लेकर कहा "पर मैं और बात कर रहा था। वहाँ जो नज़ारा देखा, बस देखने लायक ही था। वे तो हफ़ीज़ साहब का यादनामा छापने की बातें कर रहे थे, साथ ही आपस में वह ऐसे चुटकुले सुना रहे थे, कि आदमी कानों पर हाथ रख ले।"

"सारी ज़बानों में, मियाँ, ऐसे ही होता है। कई अखबार वाले तो सिर्फ़ कफ़न ही बेचते हैं जो भी मर गया, उस की तारीफ़ों और तस्वीरों का बंडल छाप दिया।"

'फिर तो, यार! उस की जूती की तस्वीर भी छाप देते हैं कि वह कौन-सी जूती पहना करता था।'

संजय मुस्करा-सा पड़ा, 'हाँ मियाँ! इस दुनिया में उन की बात कौन करता है जो ज़िंदगी की राह खोजते हुए पैरों की एड़ियाँ घिसा लेते हैं!'

करीम ने संजय के निकट होकर ज़रा धीमी आवाज़ में कहा 'अब वे लिख लिखकर न जाने क्या कुफ़्र तोलेंगे पता नहीं, पर जो कुछ उन्होंने लिखना नहीं, आदमी सुन तो जीते जी मर जाये। जो कुछ लिखेंगे, फिर वह कुफ़्र ही हुआ न! निरा झूठ लिखेंगे, झूठी तारीफ़ें...'

और करीम उस से भी धीमी आवाज़ में बताने लगा, "कहते थे, सगी बेटी-बहन भी उस के कमरे में भेज दो तो उस की इज़्ज़त भी नहीं छोड़ता था। एक बच्ची-सी उस के पास रहने आयी थी। उस का बाप कहीं विलायत में था और लड़की को बड़े स्कूल में भरती होना था। बड़े स्कूलों में होस्टल होते हैं न, वहाँ अभी कमरा नहीं मिला था, दो-चार दिन उस के घर रुक गयी, तो बस मियाँ! कहते हैं, एक रात उस ने उसे पकड़ लिया। लड़की चीखें ही मारती रह गयी कि 'चाचा! यह काम मत करो...'"

'तौबाह!' संजय के मुँह से निकला, और उस की आवाज़ उस के माथे की नाड़ी की तरह कस गयी।

करीम ने माथे पर हाथ मारा और कहने लगा, 'कहते थे, अंजुमनइल्म वालों

ने एक बार एक रिसाला निकाला था, इसे मदीर (सपादक) भी बना दिया और एक छापाखाना खोलकर सारे काम का मातवर भी बना दिया। बस जी, कोई एक बरस म इस न सब कुछ बेचकर जेब म डाल लिया और हिसाब किताब के सारे कागजात गुम करवा दिये।'

"और अब उस के कौन स कारनामो के नम्बर निकालेग ?

"लो झूठ का सच बनाने म कोई माल लगता है ? साथ ही मोल तो बीस गुना पहले ही धरवा लिया है अगला स। और करीम बताने लगा, "पहले तो सरकार स पसा मिलता, एक किताब छापन के लिए, और फिर किताब म जो कुछ भी अनाप शनाप लिखेंग सरकार उस को दस हजार कापियां खरीदेगी। क्या बात है हमारी सरकार की !'

सजय कोई एक मिनट क लिए चुप हो गया, फिर होले से बोला, "सरकारो की यह फज़ूलखर्चियां होती है अधाधुध, जिस की वजह स हर साल लोगो का टक्स बढ जाता है।"

'वह तुम न जो नजारा दाजख का देखा था, भई एक मैदान मे व लोगो का मास छुरी स काट रहे थे वह उपन्यास म सब लिखा है कि नही ?" करीम ने पूछा तो सजय मुसकरा दिया। ' मियां ! अगर वह नही लिखना था, तो फिर उपन्यास क्यो लिखता !"

'वह तुम न बडा सच्चा नजारा देखा भई, जो लोग बिलकुल बेअकल होग, न कोई काम करेंगे न किसी काम के क़ाबिल होग उन से कोई टैक्स नही लिया जायेगा, और '

"और जो अकल क जोर से रोटी कमायेंग, और रोटी से उन के जिस्म म ताजा लहू बनेगा, व पचास फीसदी अपना मास और लहू टक्स म देंग '

"यह सब कुछ लिखा है ?"

' हा। साथ मे तुम्हे इस हफ्ते की बात सुनाऊँ कि अमेरिका म बडे लोगो ने प्रदशन किया कि सरकार अपन खर्च कम करे, जिस से लोगो पर टक्स कम हो। उन्होन नाम ले लकर बताया कि कितने ही आदमी टैक्स देन के फिक्र के कारण हाट अटैक स मर गये है।'

' हूँ " करीम की आवाज मे कुछ गरमाइश आ गयी, ' फिर तो और मुल्को म भी तुम्हारे जसे लोग अपनी आवाज उठा रहे है '

'पर मियां ! सजय की आवाज उसी तरह शात थी, ' सरकारो के सिर्फ जीभ होती है कान नही होते हर मुल्क म यही हाल है।'

"तुम्हे और बताऊँ," करीम की आवाज थोडी सी तेज हो गयी, ' किताब का बन्दोबस्त जो हो रहा है, हो रहा है। कल उन्होन सरकार से अपील की है कि हफीज साहब क नाम पर एक डाक टिकट भी जारी किया जाये।"

सजय की हँसी निकल गयी, "क्यो, वह उसे दोजख म चिट्ठी लिखेंगे ?"

यह शायद सजय और करीम की हसी की आवाज थी, जिस से भीतर कमरे म सोई शीरी जाग उठी, और उठकर सिर पर चुनरी ओढकर, वाहर आगन म आ गयी।

सजय ने चारपाई स उठकर शीरी को सलाम कहा, तो करीम हँस सा पडा, "बेटा ! तुम अभी शूद्र से ब्राह्मण बनती जा रही हो, देखो, सजय साहब तुम्हे सलाम कह रहे हैं।"

सच, यार ! मैं ने इस की उम्र के मुकावले म इस पर ज्यादा काम डाल दिया है, और काम करने वाले को सलाम तो कहना ही चाहिए।" सजय ने उत्तर दिया तो करीम शीरी से बोला, ' जिस उपन्यास की तुम नकल कर रही हो, वह अंग्रेजी म छपने जा रहा है।"

शीरी ने कहा कुछ नही एक वार सजय की ओर देखा, फिर आखें नीची कर ली।

"जाओ, वेटा ! जितने प ने तयार हो गये है, इसे दे दो।" करीम ने कहा तो शीरी फिर कमरे मे लौट गयी।

कोई एक मिनट बाद शीरी ने कमरे की दहलीज के पास आकर कहा, "एक बार देख लीजिये मेरा लिखा हुआ ठीक है ?"

शीरी को कई दिन हो गये थे नकल करते, पर सजय ने पहले पन्ने के सिवा और कोई पन्ना नही देखा था। सिर्फ पहले दिन उस ने बताया था कि वह हर पन्ने पर कितना हाशिया छोडा करे। शीरी ने वह पन्ना दोबारा लिखकर एक बार दिखा दिया था, फिर उस के बाद आज तक न पूछा था, न दिखाया था।

सजय ने कमरे की ओर जाते हुए सिर्फ इतना कहा, 'जब नया-नया लिखना सीखा होता है तो हर अक्षर बडा साफ साफ पढा जाता है।" और फिर कमरे म आकर कागजो को नम्बरवार लगा रही शीरी के हाथ से कुछ कागज लेकर देखने लगा।

"एक सौ वीस पन्ने कर भी लिये ?" सजय ने बाकी कागज उठाये और कुछ हैरान सा शीरी की ओर देखने लगा।

' पहले हाथ नही चलता था, अब और जल्दी हो जायेंगे।' शीरी ने कहा, और नकल किये हुए कागजो के साथ असल के कागज भी दे दिये।

शुक्रिया या मेहरवानी जसी कोई बात कहने के लिए सजय ने शीरी की ओर देखा पर शीरी की मेहनत के मुकावले म उसे ये सारे शब्द छोटे लगे, तो उस ने कहा, "सब से पहले तुम ने ही इस उपन्यास को पढा है, इस लिए सब से पहले तुम ही बताओ यह कसा लगा ?"

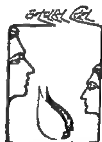
शीरी की मोटी काली आख जसे पल भर के लिए एकटक सजय के मुह को

ओर देखने लगी। सजय को अपने साधारण से प्रश्न का उत्तर साधारण नही लगा।

फिर यह भी महसूस हुआ, जसे शीरी की आखो म कुछ भर आया है। क्या ? पता नही।

भ्रम सा हुआ, शायद आसुआ जसा कुछ है। पर सजय न एक नजर फिर देखा। आँखें सूखी थी, सिफ पहले के मुकाबले कुछ ज्यादा फली फली था। और उस लगा, आँखो म सिफ कुछ शिकवा सा है।

शिकवा ? किस बात का ? सजय अपने ही खयाल की तशरीह नही कर सका, और वह कागज़ो को दोना हाथा म समेटकर बाहर आगन मे आ गया।



करीम के घर की कोठरिया जसे सारे कमरे बस दा दो चारपाइया जितने थे, वह भी साथ-साथ एक पक्ति म बने हुए। उन के दरवाजे भी आगन की ओर खुलते थे, और एक एक खिडकी भी आगन की ओर ही, जिस के कारण गर्मियो के दिनो म उन मे निरी उमस रहती थी। बरसात के दिना म या उमस होती या इन म बौछार सीधी चली आती और जाडे के दिनो म उनमे ठड से कही बचाव नही था। पर उस घर का सब को यह सुख बहुत था कि एक तो उस का आगन बहुत खुला हुआ था और दूसरे कोठरियो की गिनती बहुत थी, जिस की वजह से बरकत का रहना बठना अलग था, नेमत का अलग, दानो लडकियो को अलग एक कोठरी मिली हुई थी, और करीम का अपना अलग रहना बसना था। सलामत अभी करीम की कोठरी मे ही रात को आकर सो जाता था। उसे अकेले अलग कोठरी मे सात रात को डर लगता था। पर एक अलग कोठरी उस के नाम की जरूर थी। छोटा दुल्ला अभी मा के पास ही सोता था।

एक रात शीरी के कमरे के सिवा किसी के कमरे की बत्ती नही जल रही थी जब करीम ने करवट बदलते हुए सलामत की चारपाई की ओर स खडाक की

आवाज़ सुनी। नींद सी में भी आवाज़ दी "कौन है सलामत ?"

हाँ अब्बा! पानी पीने के लिए उठा था।" सलामत की आवाज़ आयी तो करीम फिर गहरी नींद में सो गया।

सलामत ने अंधेरे में अपनी जेब को टटोला, फिर दबे पाँव शीरी के कमरे के पास जाकर अन्दर झाँका।

शीरी अपने ध्यान में मग्न बत्ती की लौ में उपन्यास के बाकी रहते पन्ने नक़ल कर रही थी। सलामत दहलीज़ के पास ही था जब उस ने जमीला की आवाज़ सुनी 'मुझे तो अब इस कमरे में नींद नहीं आती। न तुम बत्ती बुझाती हो न सोया जाता है। कल से मैं सलामत का कमरा छीन लूँगी अकेली सोया करूँगी।'

शीरी ने कागज़ों से ध्यान हटाया, शायद जमीला से कुछ कहने ही लगी थी जब दरवाज़े के पास सलामत की झलक दिखाई दी, बोली, "कौन है ? सलामत ? तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?'

' कुछ नहीं, पानी पीने उठा था "

' जाओ, फिर सो जाओ जाकर।' शीरी ने कहा, और बाकी पन्नों को देखने लगी शायद गिनने लगी।

शीरी फिर अपने ध्यान में मग्न हो गयी और पूरे दो पन्ने उस ने और लिख लिये जब उसे आँगन में से एक खड़का-सा सुनाई दिया।

"कौन है बाहर ?' शीरी ने कुछ चौंककर दरवाज़े की ओर देखा लेकिन बाहर अँधेरा था, कुछ नहीं दिखाई दिया। वह अपने हाथ के कागज़ का तकिये के पास रखकर उठने ही लगी थी जब सलामत दहलीज़ में खड़ा हुआ भीतर झाँकता हुआ दिखाई दिया।

'तुम क्या कर रहे हो यहाँ ?' शीरी ने सलामत की ओर देखकर कुछ गुस्से से पूछा तो सलामत ने होंठों पर उँगली रखकर उसे चुप रहने के लिए इशारा किया, फिर हाथ से इशारा करके उस उसे दरवाज़े के पास बुलाया।

शीरी उठकर दरवाज़े की ओर गयी तो सलामत ने अंदर को झाँकते हुए धीरे से पूछा 'जमीला सो गई ?'

शीरी ने अंदर की ओर देखा, जमीला की चारपाई की ओर और कहा, "क्यों ? वह तो सो रही है।"

सलामत ने जेब में से एक कागज़ निकालकर शीरी को दिया, कहा, "जमाल ने कहा था, यह शीरी को उस वक्त देना जब वह अकेली हो।"

कौन जमाल ?' शीरी ने एक बार हाथ में लिये हुए कागज़ की ओर देखा, एक बार सलामत के मुँह की ओर।

'बराबर की गली वाला, फेरीवाला जमाल," सलामत कह रहा था, जब

करीम की आवाज़ आयी 'कौन है बाहर आगन म ?"

"मै हूँ अब्बा। पानी पीने आया था" सलामत ने कहा और जल्दी से अब्बा के कमरे को लौट गया।

'तुम्हे आधी रात का यह कसी प्यास लग गयी है ?" करीम की उनीदी सी आवाज़ आयी और फिर कमरे की तरफ चुप छा गयी।

शीरी का वह हाथ कॉप गया जिस म सलामत एक मैला सा कागज़ थमा गया था। कागज़ म पता नही क्या लिखा हुआ था। पर एक गध सी शीरी को एस आयी, जस अचानक एक बडी मली और कीचड वाली जगह पर उस का पैर पड गया हो।

शीरी का हाथ एक किचकिचाहट सी खाकर एक बार हवा म एसे हिला, जसे सलामत अभी सामने हो और उस ने ज़ोर स एक थप्पड सलामत के मुह पर मारा हो।

जी किया, ज़ोर से आवाज़ दे 'अब्बा ! यह दखो अपने बेटे की करतूत !'

एक डर सा मन म आया, सब साथ हुए जाग पडेंगे, और शायद सोयी हुई गली भी

वह कॉपती हुई-सी कमरे म आकर चारपाई की पट्टी पर बठ गयी।

वह मुडा-तुडा सा कागज़ अभी भी उस के हाथ म था शीरी को हाथ से घिन सी आयी और उस ने कागज़ परे स्टूल पर रख दिया।

स्टूल पर उपन्यास के असल वाले पन्ने भी थ और नकल वाले भी उन पन्नो पर पडा हुआ वह कागज शीरी को ऐसे लगा जसे उस दोजख म स किसीने यह खत लिखकर उसे भेजा हो जिसका हाल इस समय वह नकल कर रही थी।

शीरी ने उस खत को पढा नही, पर एसे लगा, जसे उसे दखकर ही उस का सारा शरीर मर गया हो।

फेरीवाले जमाल को वह जानती नही थी, पर इतना सुना हुआ था कि वह बराबर के मोहल्ले का गुडा कहलाता है।

मन म आया कागज को फाडकर वह पुर्ज़ा-पुर्ज़ा कर डाले और बाहर आगन म जाकर दीवार के बाहर फेंक दे, पर साथ ही मन मे फसला सा आया कि यह सवेरे अब्बा को ज़रूर दिखाऊँगी, नही तो न जाने कल परसो सलामत ऐसा ही कोइ कागज़ उस फिर दे जायगा।

इस के बाद शीरी से उपन्यास नकल नही किया जा सका। वह तकिय पर सिर रखकर ऐस लेट गयी जसे हाथो की सारी हरकत मर गयी हो।

न जाने किस समय उस नीद आयी, किस समय दिन चढा, किस समय घर क सारे साथ हुए खडके जागे, जब उस की आखें खुली, जमीला उसे चाय का गिलास थमा रही थी।

शीरी ने घबराकर जमीला की ओर देखा, फिर स्टूल की ओर, और बोली, "जरा अब्बा को बुलाना।"

करीम कमरे में आया तो शीरी ने स्टूल की ओर हाथ से इशारा किया।

"सारा खत्म हो गया ?" करीम ने तहियाये हुए कागजों की ओर देखा, और शीरी के सिर पर हाथ फेरा, "रात तुम शायद सारी रात ही लिखती रही ?"

करीम ने चारपाई के पाव के पास रखा हुआ चाय का गिलास देखा जिस को जमीला अभी वहाँ रख गयी थी तो गिलास उठाकर शीरी को देते हुए बोला, "लो गरम-गरम पीकर और थोड़ी देर सो जाओ। आज इतवार है, सजय जरूर आयेगा, बहुत खुश होगा भई..."

करीम कह रहा था जब शीरी ने टूटी हुई सी आवाज में कहा, "नहीं, अब्बा ! अभी तीन पन्ने और बाकी हैं।" और उस ने उस मुड़े-तुड़े कागज की ओर इशारा किया जो उन पन्नों में अटकाकर रखा हुआ था।

करीम ने कागज उठा लिया और उस की तह खोलते हुए पूछा, "यह क्या है ?"

"मैं ने नहीं पढा..." शीरी ने कहा तो करीम कागज की टेढ़ी मेढ़ी पंक्तियों को देखते हुए अदाज़े से पढने लगा, "ज़ालिम लोग, शीरी ! तेरे शहर के... अपने भीगे हुए रुखसार मेरे जलते हुए होठों पर रख दो..."

करीम के हाथ पर जैसे कोई डक मार गया हो, वह जल्दी से चारपाई की पट्टी पर बैठते हुए पूछ उठा, "यह तुम्हें किस ने दिया है ?"

"सलामत ने।"

"सलामत ने ?" करीम ने हैरानी से कहा और फिर उस कागज की ओर देखने लगा जिस के एक कोने पर लिखा हुआ था, "तेरा दीवाना जमाल।"

करीम कुछ देर चुप का चुप रह गया, फिर बोला, "यह सलामत लाया था ? कब ?"

"रात को..."

करीम को रात की बात याद आयी, जब उस ने दो बार खड़का सुनकर आवाज़ दी थी और सलामत ने कहा था वह पानी पीने के लिए उठा है।

करीम ने चारपाई से उठते हुए पूछा, "पहले भी कभी सलामत ने उस का कोई खत लाकर दिया था ?"

"नहीं..." शीरी ने कहा तो करीम उस कागज को मुट्ठी में दबाकर कमरे से बाहर चला गया।

जमीला आँगन में नलके पर पानी भर रही थी। करीम ने उस की ओर देखा, फिर बरकत की ओर जो रसोई में आटा गूँध रही थी, फिर नेमत की कोठरी के

भिडे हुए दरवाज़े की ओर और फिर सलामत की ओर जिसे जमीला भरी हुई बाल्टी उठाकर अंदर रखने के लिए आवाज़ें दे रही थी।

करीम ने नलके की ओर जा रहे सलामत की बाँह को पकड़ा और उसे खींचता हुआ-सा अपने कमरे में ले जाकर कमरे का दरवाज़ा भेड़ लिया।

भेड़े हुए दरवाज़े के अंदर से जब सलामत के चीखने की आवाज़ आयी तो बरकत ने आटे से सने हुए हाथ लिये बाहर आकर जमीला से पूछा, 'अभी तो वह तेरे पास खड़ा हुआ था, क्या बात हो गयी?"

"पता नहीं" जमीला ने कहा, और बाल्टी उठाने को हुई—नलके की टूटी को बंद करके टूटी पर ही हाथ रखे अब्बा के कमरे की ओर देखने लगी।

सलामत की चीखें और ऊँची हो गयीं साथ ही दरवाज़े की ओर से ऐसी आवाज़ सुनाई दी, जैसे उसका सिर दरवाज़े से टकराया हो।

नेमत भी अपनी चारपाई से उठकर दरवाज़े की चौखट पर आकर खड़ी हो गयी, तो बरकत करीम के दरवाज़े की ओर बढ़ते हुए बोली, 'अरे अब बस करो, मार ही डालोगे लड़के को?"

बरकत ने आटे से सने हाथ से ही ज़ोर से दरवाज़े पर खटका किया पर करीम ने भीतर से न कोई जवाब दिया न दरवाज़ा खोला।

सलामत की चीखें जब लम्बे हुंकारे बन गयीं तो करीम ने दरवाज़ा खोल दिया। बताया कुछ नहीं सिर्फ चिल्लाकर कहा, "तुम सब मेरे सिर पर क्यों खड़ी हुई हो? जाओ अपना काम करो।'

नेमत ने एक बार माथे पर त्योरी डालकर करीम की ओर देखा फिर चुप-चाप अपना दरवाज़ा बंद करके चारपाई पर लेट गयी।

जमीला पानी की बाल्टी उठाकर भीतर रसोई में ले गयी और फिर बाहर नहीं आयी।

सिर्फ बरकत ने अंदाज़ा सा लगाया कि शीरी इतनी आवाज़ें सुनकर भी कमरे से बाहर नहीं निकली, उसे ज़रूर मालूम होगा कि क्या बात हुई है। इस लिए वह शीरी के पास गयी और हौले से पूछा, तुझे मालूम है, क्या बात है?'

शीरी ने न जवाब दिया, न माँ की ओर देखा। सिर्फ बरकत ने देखा कि शीरी तकिये पर सिर रखे चुपचाप रो रही है।

बरकत चारपाई की पट्टी पर बैठकर शीरी से बार बार पूछने लगी तो शीरी ने हौले से कहा, "तुम खुद ही ठहरकर अब्बा से पूछ लेना।

उस के बाद किसी की हिम्मत न हुई कि करीम से कुछ पूछे। सिर्फ जब नेमत ने खाने के वक्त खाना खाने से इंकार कर दिया तो करीम ने खाने की थाली खुद उठा ली और नेमत के कमरे में जाकर, खाना उसके आगे रखते हुए कहा, 'आज तो तुम्हें खुशी से दुगनी रोटी खानी चाहिए, कल तुम्हारे बेटे ने पाँच

रुपये कमाये हैं।'

करीम की आवाज़ के तंज़ को नेमत ने पहचान लिया, इस लिए कुछ नहीं कहा। करीम ने ही कहा "यह तो पूछ लो, काहे की कमाई की है?" और खुद ही जवाब दिया "बहन को बेचने का सौदा करके आया है।"

फिर करीम ने पूरी बात बतायी तो नेमत ने कहा, "पर मुझे क्या ताने दे रहे हो? वह पेटा मैं ने अकेले पैदा किया है? जैसा मेरा है, वैसा तुम्हारा है।"

करीम कुछ ठंडा पड़ गया, तो बोला, "देखो! सोने को भी गलाना पड़ता है, और लोहे को भी तपाना पड़ता है। उस बुरी सोहबत से अगर अभी नहीं बचायेंगे तो फिर नहीं बचा सकेंगे।" और करीम नेमत के पास से उठता हुआ बोला, "जमीला से कहना, रोटी के दो टुकड़े उसे खिला जाय।'

शीरी जानती थी आज इतवार है, रात को बाकी रहे तीन पन्ने वह बड़े ध्यान से पूरे कर रही थी। आज के इतवार का सवेरा उस के लिए एक बहुत नये सवेरे की तरह चढ़ना था, पर उसे लगा, उस के सारे उत्साह को आज किसी की नज़र लग गयी है। जागी तो कितनी ही चीखें इकट्ठी होकर माथे में पड़ गयीं। सलामत की चीखें भी उस के गले में जाकर अटक गयी थीं।

न जाने कितनी देर तक आँखों में पानी आता रहा। हाथ में फिर से कागज़ भी लिये, पर सारे अक्षर पानी में डूबते उतराते से दिखने लगे।

पर इतवार शब्द का एक जादू था, ज्यों ज्यों दिन चढ़ता गया, उस के हाथ में एक हरकत सी आती गयी। आधे होश में उठकर उस ने बाकी पन्ने नकल कर लिये और फिर तकिये पर सिर रखकर ऐसे लेट गयी, जैसे अचानक आँखों के आगे दिन ढलने के बाद का अँधेरा आ गया हो।

जमीला ने जबरदस्ती उसे थोड़ा खाना खिलाया। करीम ने दो बार आकर माथे को हथेली से टोहा, शरीर थोड़ा सा गर्म लगा, पर ज्यादा नहीं।

शीरी ने फिर एक बार उठकर सारे कागज़ इकट्ठे किये, असल के भी, नकल के भी, और नम्बरवार लगाकर फाइल में रख दिये। फाइल अब्बा को थमा दी और और खुद खेस जैसी एक चादर ओढ़कर ऐसे सो गयी, जैसे आज दिन में उठने की और उस में हिम्मत न रह गयी हो।

संजय आया, लेकिन बहुत देर से। शाम ढल चली थी। करीम को आज दिन भर शायद संजय के साथ की पहले से ज्यादा ज़रूरत थी, इस लिए उसे देखकर दिन भर की उस की गैर हाज़िरी का गुस्सा उतारते हुए बोला, 'आदमी दोस्ती करे तो चाँद सूरज से करे, जो और कुछ नहीं तो समय से आ तो जाते हैं, आदमियों का क्या भरोसा होता है!'

संजय साइकिल को एक ओर टिकाते हुए करीम की चारपाई की पट्टी पर बैठ गया और बोला, "यार! चाँद तो अमावस को छुट्टी कर जाता है, पर तुम्हारे

इस दोरान न कभी छुट्टी की है ?"।

करीम हँस सा पडा, "हाँ, हाँ, अब तुम कहोगे, सूरज भी तो बादलो के आगे मजबूर होता है ।"

' वह तो होता है, पर आदमी वह जो गमियो और खुशियो का मोहताज न हो " सजय कह रहा था जब करीम ने बात बीच म काटकर कहा अच्छा, फिलासफर साहब ! दिन भर कहा रहे ?"

"यार ! अचानक पता लगा कि एक जगह चेक फिल्म की स्क्रीनिंग हो रही है । बस, रहा न गया, वहाँ चला गया । पहले स मालूम हो जाता तो तुम्हें साथ लेकर जाता "

"बढ़िया फिल्म थी ?"

"फिल्म भी बढ़िया थी, पर उस के साथ एक छोटी फिल्म थी वहा के एक लोकनृत्य की, उस का नाम था टोपी नृत्य "

"फिर तो जबान की मुश्किल न पडती, मेरी समझ म भी आ जाती '

' मैं न तुम्हें बहुत याद किया, अकेले देखते हुए हँसता रहा था । कमाल यह था कि देखकर हँसी आती थी, और सोचकर रोना आता था ।"

"अच्छा ।"

' किसी ने अजीब नाच बनाया है । जब बनाया होगा, बहुत गहरी बात सोची होगी । नाच यह था कि दस बारह आदमी, जितने भी थे, नाच रहे थे, सब क सिर पर बडी बडी सी टोपिया थी, पर किसी का पता नही चल रहा था कि उस की अपनी टोपी कहा है ?"

वह कम, भई ?"

"वह एस कि उन म से किसी क भी पास अपनी टोपी नही है । एक आदमी जल्दी से अपन दाहिने हाथ पर खडे हुए आदमी की टोपी उतारकर अपने सिर पर पहन लेता है, और जिस की टोपी उतर जाती है, वह अपन दाहिन हाथ पर खडे हुए आदमी की टोपी उतारकर अपने सिर पर पहन लेता है, और फिर वह '

' मैं समझ गया, ऐसे ही सब के सब अपने पास के आदमी की टोपी उतारते जाते हैं, और बात फिर शुरू स शुरू हो जाती है ' करीम न कहा और हँसने लगा ।

और इस तरह सब ही दूसरो के सिरो से टोपियाँ उतारने म लगे हुए हैं " सजय ने बताया, और आगे कहा, यार ! अगर सोचें तो बात कितनी ठीक है ।'

करीम जल्दी स बोला, ' मतलब है, भई सारे मुल्को म सियासी तमाशा ऐसे ही होता है । पर शाबाश, यह फिल्म किस ने बनायी ?"

'चकोस्लोवाकिया ने "

"समझ गया, मियाँ ! उन का भी कोई सजय होगा, जिस ने यह बात सोच ली।"

' नही, मियाँ ! तेरे सजय से बहुत ज्यादा सयाने लोग पडे हुए है।"

"होगे, पर वह जो तुम ने दोजख का नज़ारा लिया है, वह बात कोई छोटी तो नही है।"

सजय मुस्करा भी पडा पर उस का चेहरा जरा कुछ उदास सा भी हो गया, बोला, ' लिख तो लिया, पर अब छापेगा कोई नही।

"तुम कह रहे थे इसे कोई अंग्रेजी मे "

"वह तो शायद हो जायगा, छप भी जायगा, पर यार ! जिस ज़बान म लिखा हो, उस म न छपे तो तसल्ली नही होती। बात यह है कि तर्जुमे म वह बात नही आती जो अपनी ज़बान म आती है। मैं ने तर्जुमे के कुछ पन्ने पढे है " सजय चुप-सा हो गया तो करीम बोला, "हाँ, सच ! शीरी ने अपना काम निबटा दिया।"

सजय ने एक बार शीरी के कमरे की ओर देखा, फिर करीम की ओर देखते हुए बोला, "यार ! यह लडकी कमाल है चुपचाप एक नयी ज़बान सीख ली, और फिर इतनी मेहनत '

"आज कुछ जी ठीक नही है। देखू, जाग रही है तो ? ' करीम उठकर शीरी के कमरे की ओर गया तो सजय भी उस के साथ कमरे म चला गया।

शीरी सोयी हुई नही थी, पर जसे जाग भी नही रही थी। करीम अलमारी म से फाइल निकालने लगा तो सजय ने शीरी के पास होकर उस के माथ पर हाथ रखा, पूछा, "बुखार मालूम होता है ?"

शीरी ने नजर भरकर सजय की ओर देखा, फिर आँखें बन्द कर ली, कहा, "नही।"

"तुम्हे मालूम है, तुम ने मेरी सारी मेहनत बचा दी तो मैं ने खाली होने की वजह से इन दिनो मे एक छोटी-सी कहानी लिख ली।'

शीरी ने फिर आखे खोली, एक नजर देखा और कहा, "दीजिये, मैं उस की नकल कर दूं।"

' अभी थकी नही ?" सजय जोर से हँस पडा, "मेरा तो खयाल था, तुम कहती होगी कि उप यास की मुसीबत मुश्किल से खत्म की है "

और सजय को लगा, उस की हँसी उस के गले मे अड गयी है। शीरी एक टक उस की ओर देख रही थी, उस दिन की तरह जिस दिन सजय को महसूस हुआ था कि उस की आखो म शिकव की एक लकीर सी पडी हुई है

सजय कमरे के बाहर चला गया, पर पर कुछ स्वाभाविक नही पड रहे थे, ऐसे, जसे चौखट के पास भी लडखडा गये हो, बाहर आगन मे आकर भी ।

शीरी फिर सो नही सकी। थककर चारपाई से उठने लगी तो उठा नही गया। सारे शरीर से जैसे जान निकल गयी हो—पर उसे एक अजीब-सा एहसास हुआ कि माथे पर जहाँ अभी सजय ने हाथ रखा था, वह जगह बहुत जिंदा सी हो गयी है।



बादल छाये हुए थे। दिन भर सूरज की लौ बादलो से लडती रही और उस की तरह नेमत की जान भी पीडा से लडती रही।

शाम के समय जब सारे घरो म बत्तिया टिमटिमा उठी, करीम के घर म एक नयी किरण की तरह जन्म लेने वाले बालक का हुकार आने लगा।

'अल्लाह ! तेरी कुदरत !' आगन म बैठे हुए करीम के मन म नेमत के दद कई बार यह शब्द बन गये थे और अब जब दाई ने बालक को नहला धुलाकर एक मोटे कपडे म लपेटकर करीम की गोदी म दिया तो करीम के मुह स धीरे से निकला, *"तुम आ गयी, ताजो !"*

दाई के मन म अफसोस सा था कि लडके की बजाय लडकी पदा हो गयी थी, पर करीम को सचमुच लडकी की ही उम्मीद थी और उस न जसे लडकी को नही, अपनी उम्मीद को बाहा म लेकर उस के मुँह की ओर देखा।

बत्ती की रोशनी मे करीम ने लडकी का मुह देख लिया तो उस के पैर अपन *आप ही कमरे की दहलीज की ओर हो गये। बाहर सामने सिफ आसमान का* सलेटी अँधेरा था। पर करीम की आखें आसमान को ऐसे टटोलती रही, जसे वहाँ भी उसे एक चेहरा देखना हो।

उस के मन मे मुमताज का चेहरा था, पर वह बाहर अँधेरे म कही भी उघड कर नही दीख रहा था।

आसमान खाली था।

करीम की आखें हारी सी फिर नीचे को होकर गोद म पडी हुई बच्ची के मुह

की ओर देखने लगी।

कमरे की रोशनी करीम की पीठ की ओर थी इस लिए गोद की तरफ अँधेरा था। बच्ची का मुह दिखाई नही दे रहा था। पर वह गोदी मे थी, अँधेरे का एक टुकडा सी। वह कल्पना नही थी, एक अस्तित्व थी, जिंदा, हिलता हुआ और सास लेता हुआ अस्तित्व।

और फिर जब कुछ क्षण बाद करीम की आँखें ऊपर को उठी सामने आसमान के अँधेरे मे से चाँद की छोटी सी फाँक नीचे धरती की ओर झाँक रही थी।

अँधेरा अब खाली नही था।

करीम के हाथ बच्ची को लिये ऊपर को उठ गये, एक दुआ माँगते हुए।

दुआ के कोई शब्द करीम के होठो पर नही थे, पर होठो पर एक हलका-सा कम्पन था, शब्दो की छोटी छोटी लकीरो की तरह।

सजय के सिवा करीम के मन का यह भेद किसी को मालूम नही था, न अब उस ने किसी को बताया पर करीम के मुह से, बच्ची को देखते ही एकाएक उस का नाम ताजो निकल गया तो घर मे सब ने उस का यही नाम मान लिया। इस नाम को किसी ने भी मुमताज से जोडकर नही देखा था, इस लिए बरकत नेमत को गुड का सीरा पिलाते हुए बोली, "सुनो, लडकी का नाम ताजो रखा गया है।"

नेमत अब पीडा से छूटकर हलकी हो गयी थी, बोली, "अच्छा है, बडी होगी तो इसे सिरताज बुलाया करेंगे।"

अब यू तो फागुन उतर रहा था, पर अभी शाम ढले की ठिठुरन नही गयी थी, इस लिए करीम ने लडकी को नेमत के गर्म बिस्तर मे डाल दिया।

नन्हे दुल्ले ने ताजो को देखने की जिद पकडी हुई थी, इस लिए बरकत ने उसे कोई मिनट भर के लिए कमरे मे लाकर बच्ची दिखा दी तो दुल्ला अपनी छोटी सी उँगली से उस के मुह को छूते हुए बोला, "ताजो मासी आ गयी

और नन्ही ताजो सोते सोते मुसकरा पडी, जैसे उस ने कई अर्थ वाले अपने नाम को सुन लिया हो, और धीरे से सब पर हँस पडी हो।



सजय का उपन्यास तर्जुमा होकर एक साप्ताहिक म धारावाहिक छपने लगा और तीन महीने म किस्तो के खत्म होते ही किताबी सूरत म छपने का भी बन्दोबस्त था। पर अपनी जबान म हालत शायद पिछले बरसो से भी ज्यादा बिगड गयी थी। सजय ने जिस प्रकाशक से भी पूछा उस ने उपन्यास के साथ एक हजार रुपये की माँग की। यू तो कहने को कहा जाता था कि उपन्यास बिकने के बाद यह रुपये हर लेखक को लौटा दिये जाते है पर उस ने आज तक यह रुपये किसी को लौटाते हुए नही सुने थे, इस लिए सजय ने अपना उपन्यास किसी को नही दिया।

मेज की दराज म रखे हुए उपन्यास के सारे पन्ने हौले हौले पीडा की एक तह की तरह जम गये।

सजय अब अपनी मेज की इस दराज को नही खोलता था। लगता था, कागजो को हाथ लगाया तो उन के अक्षर खून की बूदो की तरह रिस आयेंगे।

उपन्यास का तर्जुमा जब से किस्तवार छपना शुरू हुआ था सजय को एक-एक करके तीन और जबान वालो के खत आ चुके थे जो उस से अपनी अपनी जबान मे तर्जुमा करने का हक माग रहे थे और सजय को उन एक ही माँग म ठडी हवा का झोका भी आ रहा था, गर्म जलती हुई हवा का भी।

एक दिन करीम आया तो सजय इसी ठडी-गर्म माँग के भाव म था, 'मिया ! तुम ने दुनिया की हजारो गालियाँ सुनी होगी, पर मैं तुम्हें एक नयी गाली सुनाता हूँ जो तुम ने कभी नही सुनी होगी।'

करीम की समझ मे कुछ नही आया, तो सजय ने कहा, "दुनिया म एक छोटा-सी जगह है, एक छोटा-सा देश, उस का नाम है अफ़ग़ानिस्तान, वहाँ की गाली है: कोई आदमी किसी से बडा ही तग हो जाए तो उसे कहता है, जा, तुझ पर खुदा की मार हो, तू अपनी मातृभाषा का लेखक बन जाए।"

"वाह वाह ! कई दिन बाद एक नयी गाली सुनी है," कहते हुए करीम हँसने लगा।

"मुझे लगता है, हमारी जबान का भी कोई शाप लगा हुआ है, जरूर किसी ने उसे यह बददुआ दी होगी, तभी उसे अपने साहित्यिकों का नाम भूल गया है।" सजय ने कहा, तो करीम की हँसी ठिठक गयी, बोला "सच कहा है, खुदा मे, महबूब म और अदीब म कोई फक नही होता, एक ही बात होती है।"

करीम भले ही उदू के अलावा किसी जबान का अक्षर नही पहचान सकता था, फिर भी वह हर हफ्ते सजय के उप यास की छपी हुई किस्त को सिफ शौक़ से दखता ही नही था, उस दिन का अखबार खरीदकर अपने पास सँभालकर रख भी लेता था।

आज भी साप्ताहिक का नया अक उस के हाथ म था करीम कुछ मिनट तक गौर से उस की आर ऐसे देखता रहा, जसे एक एक अक्षर जोडकर उस की इबारत पढ रहा हो, फिर अचानक ध्यान ऊपर करके सजय से बोला, "अच्छा, फिर हो गयी बात।"

"क्या ?"

"यही कि अब हम अपनी जबान को लगा हुआ शाप उतार देंगे।"

"क्या मतलब ?"

यार! बहुत दिनो से मन म एक बात बार-बार उठती रही है, पर शायद कच्चे फल की तरह थी मैं ने मन से उसे तोडा नही था। आज लगता है, वही कच्चा फल पक गया है।" करीम के मुह पर भी यह बात कहते हुए, पके हुए फल की लाली आ गयी, बोला, कलम तुम्हारे हाथ मे है और मशीन मेरे हाथ में। यार! हम दोनो मिलकर अपनी जबान को लगी हुई बददुआ उतार सकते हैं।"

सजय ने करीम की ओर ऐसे दखा, जसे वह हाड मास का एक वजद न हो, भविष्य की एक राह हो।

'लडका अब माहिर हो गया है कम्पोजिंग म, उस काम के लिए भी अब किसी की मोहताजी नही है।" करीम न कहा, तो सजय राह की ओर दखत हुए राह की कठिनाइया की ओर भी देखने लगा, "पर मियाँ! तुम्हारी नौकरी स घर के जीव रोटी खाते हैं।"

करीम बोल उठा, "और म अभी कहा इस्तीफा दे रहा हूँ! अभी तो अपनी मशीन के लिए मेरा इतबार ही बहुत है।'

सजय ने फिर भी हाभी नही भरी तो करीम बोला, 'लडके को अभी वह धेला भी नही देते। कहते है अभी गलतियाँ करता है। उस के लिए अगर पाँच सौ का टाइप खरीदकर घर पर डाल दू तो क्या बुरा है? गलतिया तुम खुद देख लाग। रह गया कागज का खच "

निरा कागज का खच नही, मियाँ! सब स बडा मशीन का खच है।"

'छाटी मशीन अमतसर की बनी हुई ढाई हजार म आती है। पर वह बात

भी छोडो। जितने दिन नही खरीदी जाती न सही फरमे बाधकर किसी की मशीन पर छाप लेग ।"

पानी का जसे चाँद की रोशनी का जादू चढ जाता है सजय के मन म भी कई लहरें उठ पडी। अपनी जवान के कई शताब्दियो के पुरान महान ग्रथ, जो समय की धूल म दबे हुए थे, सफेद कागजा म जडे हुए उस के सामने आकर खडे हो गये। विश्व के अय महान् ग्रथ भी, अपन मन म पडे हुए कइ उपयासो के आकार भी और एक साहित्यिक पत्रिका भी।

सजय न अपनी मज के पास खडे होकर करीम की आर भी देखा और खिडकी के बाहर आसमान की ओर भी, जहा कितने ही बादलो पर सूरज की लाली की सुनहरी किनारियाँ लग रही थी।

करीम की आवाज से उस का ध्यान फिर कमरे की ओर लौटा। वह कह रहा था, 'ले आ ! नाविल के पहले सोलह पन्ने निकाल द।'

'पर अभी तो मियाँ ! टाइप खरीदना है।

"वही तो खरीदना है, इस लिए पन मागे है। ऐसे कसे पता चलेगा कि कौन-से अक्षर कितन खरीदन है ?"

सजय के हाथ मे हरकत का वह कम्पन आ गया जो कलम वाल हाथ म उस समय आता है, जब कोरे कागज पर उस की किसी नयी रचना क पहले अक्षर पडते है।

सजय न मेज की दराज को खोलकर उपयास के पहले पन इस तरह उठाये जसे पीडा की एक तह को ताड दिया हो। फिर उस ने वह पन्ने करीम को देते हुए अलमारी म से दो सौ रुपये निकालकर कागजा के साथ रख दिय, कहा, "अगले हफ्ते उपयास की किस्त के और पसे आ जायेगे, फिर कुछ अगले हफ्ते खरीद लेंगे।"

करीम ने कागज उठा लिय, पर पस लौटात हुए बोला, 'अगली बार लूगा, पहली बार तो ताजी के जम का मुझे ही पहला शगुन डालना है।"

सजय मुस्करा दिया, "शगुन का हक सिफ तुम्हे है, मुझे नही ?"

करीम ने पसे उठा लिये, बाला, "अच्छा, फिर दोनो एक साथ शगुन डालते हैं, म इस म अपना शगुन भी मिला लूगा।"

एक बात सूझ गयी," सजय न कहा और हँसकर करीम के कधे पर हाथ रखते हुए बोला, "प्रेस का नाम ताजा क नाम पर रखेंग, तुम्हारी मुमताज के नाम पर, ताज प्रेस।"



करीम ने आधी छुट्टी लेकर दोपहर होने तक सलामत को टाइप खरीद दिया और घर आकर सब कुछ उस के हवाले करते हुए बोला, 'देखा बरखुरदार! आदमी के हाथ में गुन हो तो कोई काम भी छोटा नहीं होता। आज से घर की एक कोठरी काम की दरगाह हो गयी है। तुम जितना काम इस दरगाह पर चढ़ाओगे उतनी ही मुराद पाओगे।'

करीम ने आँगन में लाकर रखे हुए सारे सामान की ओर देखा तो उसे लगा, आज उस के अपने अंगों में कोई नया खून चल रहा है। सिक्के के काले और ठंडे अक्षरों ने उस के अपने अंगों में कोई महक डाल दिया है और उस की खाली आँखों में जहाँ मुद्दतों से कोई सपना नहीं था कुछ उग रहा है, खिल रहा है।

उस ने प्यार से भरा हाथ सलामत के सिर पर रखा और कहा, "जाओ! अपनी दादी माँ के पाँव छुओ और फिर अल्लाह का नाम लेकर काम में लग जाओ।"

करीम जब खुद सलामत जितना था, उस से कुछ ही बड़ी उम्र का, पुराने उस्तादों के किस्से गाते हुए उस ने एक ही सपना देखा था, अगर कभी वह किस्सों को छापकर उन्हें बेचकर जिंदगी का कर्ज चुका सके पर यह सपना सारी उम्र उस के माथे में एक टूटे हुए पंख की तरह हिलता रहा था, उसे उड़ान नहीं मिली। आज उसे लगा कि वही मरा हुआ सपना उस की आँखों के आगे जीवित हो रहा है।

आँखों में हलका सा पानी भर आया और सामने सलामत के जवान होते हुए चेहरे की जगह अपना चेहरा दिखाई देने लगा जब वह खुद जवान हो रहा था।

उस के तसव्वुर की करामात उस के अंगों में उतर आयी। वह साइकिल उठाकर अपने काम पर जाने लगा तो उसे लगा, जैसे आज उस के शरीर में पंख लगे हुए हैं।

जिस दिन करीम ने सलामत को बहुत मारा था, उस दिन शीरी ने किसी

के सामने कुछ नही कहा था। पर दोपहर को चोरी स उस के कमरे म जाकर, उस के सिर का गल स लगाकर कितनी ही देर तक रोती रही थी। उस ने सलामत का चोरी से दूध का गिलास पिलाया था उस का वदन दबाया था और सलामत के अलावा कोई नही जानता कि जब अगले दिन अब्बा के कहने पर उस ने जमाल के खत के टुकडे करके साथ म पाँच रुपये रखकर जमाल को लौटाये थे तो घर आन पर शीरी ने उसे कितना प्यार किया था।

शीरी जानती थी, सलामत म एक ही एब है कि उस खान की लजीज चीजो का बहुत शौक है। जमाल के दिये हुए रुपया म से वह एक पैसा भी अपनी जेब म डालकर नही लाया था। उस न जो भरकर तली हुई मछली और कबाब खाये थे। और उस दिन से, जब भी मौका मिलता शीरी उसे सब म छिपाकर, घी और शक्कर की उस की मनभाती रोटी बनाकर खिलाने लगी थी।

दो बार बरकत ने ताड भी लिया था कहा भी था "गिनती की हड्डियाँ, नपा हुआ शोरबा, सब कुछ इस चटोर के लिए तो नही है, औरो क मुह म भी तो कुछ डालना होता है।" पर शीरी न सारी कहा-सुनी अपने ऊपर ले ली थी, इस लिए सलामत शीरी का जरखरीद गुलाम सा बन गया था और उस न शीरी के कहे का एक आदेश की तरह मान लिया था कि वह फिर कभी जमाल के पास नही जायगा।

आज करीम जब दोपहर का खाना खाकर काम पर चला गया तो शीरी [illegible] सलामत के साथ मिलकर कोठरी म सारा सामान रखा और फिर उसे घी [illegible] की रोटी खिलाकर बोली, "पीर जो! पहले जिस तरह चोरी चारी [illegible] था, उसी तरह अब चोरी-चारी मुझे यह काम सिखा दो!"

"तुम कम्पाजिंग करोगी?" सलामत हैरान-सा हो गया [illegible]
"तुम कुछ ही दिनो म देख लेना, तुम से भी जल्दी कर लिया [illegible]
किसी को मत बताना।"

अब्बा का भी नही?"

"नही।"

"और भाइ जान का?"

"बिलकुल नही।"

"मुझे पता लग गया" सलामत [illegible]
एक दिन भाई जान का हैरान कर दिया [illegible]
भाई जान पर रोब डालोगी।"

शीरी के मुह पर हलका सा [illegible]
गयी, बोली, "नही सलामत! [illegible]
कुछ सोचते हुए बोली, "[illegible]

[illegible]

हुआ है, फिर तुम और मैं मिलकर एक बडा-सा प्रेस डालेंगे।"

"पर प्रेस म तो मशीन भी होती है ?"

"वह भी लगायेंगे।"

"कहाँ ?"

"यही।"

"पर अब ता कमरा ही ओर नही है।"

"मेरा जो है।"

"पर वह जमीला का भी है।"

"आधा। तुम अपना आधा कमरा उसे दे देना, फिर वह सारा मेरा हो जायेगा, मशीन के लिए।'

"नही, मैं अपना कमरा जमीला को नही दूगा।"

"फिर हम छत पर एक कमरा और बनवा लेंगे।"

"अब्बा पैसे नही देंगे।"

"न सही हम खुद काम करके जोड लेंगे, तुम और मैं।"

"और मशीन कौन चलायेगा ?"

"मैं। अब्बा से सीख लूगी। तुम भी सीख लेना।"

सलामत कुछ सोचने लगा, फिर बोला, "एक आदमी और चाहिए।"

"वह किस लिए ?'

"यह देखो! लकडी के खाने बने हुए हैं न, इन म अलग अलग अक्षर डालते हैं, फिर जिस अक्षर की जरूरत हो, वह उस के खाने म स निकालकर जोड लिया जाता है।"

"अच्छा।'

"और फिर जब जोडे हुए पन्ने कागजो पर छप जाते हैं, सारे अक्षर निकाल कर वापस खानो म डालते हैं।'

"हाँ, वह तो डालने पडते ही होगे।'

"इसे जानती हो, क्या कहते हैं ? इसे कहते ह, डिस्ट्रीब्यूट करना।"

"अच्छा।'

"उस काम के लिए एक आदमी और चाहिए।"

'वह भी तुम और मैं कर लिया करेंगे।"

"पर जितना वक्त उस काम म लगता है, उतने मे और कितना काम हो जाता है।"

"फिर दुल्ला कुछ बडा हो जायेगा, तो उस सिखा लेंगे।"

सलामत फिर अपनी उम्र से बडा होकर कुछ सोचने लगा, फिर बोला, "जमीला इतनी बडी हो गयी है, वह क्यो नही सीखती ? वह तो पढना भी नही

सीखती।"

"उस की मर्जी।" शीरी बोली, "चलो, मुझे तो सिखाओ।"

सलामत ने लिफाफे में लपेटकर रखे हुए संजय के उपन्यास वाले वे पन्ने निकाले, जिन्हें उस ने सवेरे टाइप खरीदते वक्त कम्पोज किया था। उस ने कहा, "ये सारे पन्ने कम्पोज के है।

"यही कम्पोज करने हैं न ?"

"हाँ, यही करने है, साथ ही ध्यान से करने हैं ताकि गलतियाँ न हो।

"पर अगर कोई गलती हो गयी, तब ?"

"वह तो सब से हो जाती है।"

"फिर वह गलत ही छप जाता है ?"

"नही, गलतियाँ पहले ठीक करनी पडती है।"

"वह कैसे ?"

"देखो ! चार या आठ पन्ने बनाकर, उन्हें ऐसे रख लिया जाता है नीचे जमीन पर, फिर उस पर स्याही का रूलर फेरकर एक कागज पर उस का प्रूफ उठा लेते है। बस, उसे पढकर सारी गलतियो का पता लग जाता है।"

"फिर ?"

"जहाँ गलती होती है, वहा निशान लगा देते हैं। फिर उन निशानो को देख-देखकर गलतियाँ ठीक कर लेते है।"

"तुम ने यह सब सीख लिया है ?"

सलामत हँसने लगा, "जो कम्पोज करते है, वह सिर्फ गलतियाँ ठीक करते हैं, प्रूफ नही देखते।"

"फिर वह कौन देखेगा ?"

"वह तो भाई जान देखेंगे। वह पहले भी प्रेस में जाकर प्रूफ देखा करते हैं।"

सलामत बातें करता जा रहा था, साथ साथ थैली में से निकालकर फर्श पर बिछाये हुए केसों में अक्षरों को अलग अलग खानों में डाल रहा था, और शीरी का ध्यान लिखे हुए कागजों की ओर था, जिन्हें देख देखकर वह खानों में से अक्षर निकाल निकालकर एक पंक्ति में जोड रही थी कि अचानक हाथ का अक्षर हाथ में ही रह गया और वह सलामत की ओर देखने लगी सलामत की ओर नही, उस से बहुत आगे, जहाँ बादलों में घिरते हुए और बादलों को चीरकर निकलते हुए किसी उजाले की तरह संजय का चेहरा दिखाई दे रहा था



सजय अपने कमरे म, मेज पर कागज रखे, कुर्सी पर बैठा कागजो पर ऐसे झुका हुआ था, जसे उस का सारा वजूद सिफ दो आँखें और एक हाथ की हरकत बन गया हो।

करीम, काम पर से लौटते हुए, कब उस की सीढ़ियाँ चढ़कर, उस के कमरे की चौखट पर आकर खड़ा हो गया था, सजय को बिलकुल मालूम नही हुआ।

करीम ने आवाज नही दी, चुपचाप कमरे म चला गया और दीवान पर बैठकर बीडी पीने लगा।

यह शायद हवा म मिली हुई बीडी की सुगध थी कि सजय को अचानक सिगरेट की तलब लग गयी। उस ने मेज पर पडी हुई डिबिया म से एक सिगरेट निकाली, पर दियासलाई की डिबिया उठाकर जब सिगरेट को सुलगाने के लिए काठी निकालने लगा, तब देखा कि डिबिया खाली थी।

सिगरेट वसे ही बे जली उस के बायें हाथ की उँगलियो म थमी हुई थी। फिर उसे दियासलाई की दूसरी डिबिया ढढकर सिगरेट जलान की याद न रही और वह दाहिने हाथ म फिर कलम उठाकर लिखने लगा। करीम ने उठकर अपनी डिबिया मे से एक काठी जलाकर उस के सामने कर दी।

सजय न एक पल सामने दियासलाई की ओर एसे देखा, जसे किसी गबी हाथ का चमत्कार देख रहा हो, फिर दूसरे पल लौटते हुए होश स हँस पडा, "करीम मियाँ ! तुम कब आये ?"

'यह बताओ, आज तुम किस रचना म डूबे हुए हो ?'

'म कागज बना रहा हूँ।"

"समझ गया अब तुम्हारे ताज प्रेस को रोज ही कागजो की जरूरत पडेगी न छापने के लिए, कोई नयी कहानी लिख रहे हो या और कोई उपयास शुरू कर दिया है ?"

नही, मियाँ ! कोरे कागज बना रहा हूँ दूध जसे सफेद कागज।"

करीम मेज पर पडे हुए कितने ही लिखे हुए कागजो की ओर देखता हुआ

वाला, "साहित्यकार तो सफेद कागजों को काला करते है "

सजय मुस्करा दिया, "मैं उलटा काम कर रहा हूँ, काले कागजों को सफेद कर रहा हूँ। तुम यह समझ लो कि मज पर कागज बनाने का छोटा सा कारखाना खोल लिया है।"

बात करीम की समझ मे नही आयी। सजय न कहा, 'प्रेस के लिए अब कागज चाहिए न ? कितने रिम चाहिए ?

"अगर उपन्यास दो सौ प ने बना, तो एक हजार कापी छापने के लिए तेरह रिम तो चाहिए ही चाहिए।"

"बस, वही तरह रिम बना रहा हूँ। तुम देखना, बस पन्द्रह दिन म तेरह रिम बन जायेंगे।" और सजय ने करीम को विस्तार से बताया "एक किताब मिल गयी है तजुमे के लिए, बीस पन्ने रोज के हिसाब म तजु मा करूँ, तो पद्रह दिन म उस के पूरे तीन सौ पन्न हो जायेंगे। फिर इतने पसे आराम से मिल जायेंगे कि हम तेरह रिम कागज खरीद लेंग।"

करीम न एक और बीडी सुलगायी और दीवान पर बठत हुए बोला, "मुझे एक बात बता दो कि तुम्हारी करमोवाली मा न क्या खाकर तुम्हे पदा किया था ?" और करीम ऊची आवाज से पीलू शायर के किस्से का एक शेर गाने लगा, पई जिस दिन जम्मी साहिबा, होर न जम्मेया कोय "

सजय ने वजूद मे आकर शेर सुना और कहा, 'यह बात गलत है, मिया! उस दिन किसी मा के घर करीम भी पैदा हुआ था।'

अच्छा, फिर उठो ! मै तुम्हे लेन आया हूँ। घर चलकर अपना ताज प्रेस देख आओ।'

"टाइप खरीद लिया ?'

आज आधी छुट्टी ली थी। सवेरे वही काम किया। फिर सब कुछ सलामत को सौंपकर काम पर गया था। अब घर पहुँचने तक उस ने दो चार पन्ने तो निकाल ही लिये होंगे।"

'फिर आज सलामत तुम्हारे साथ नही गया होगा ?"

"उसे काहे के लिए जाना था ? अपने प्रेस का मालिक होने के बाद वह अब दूसरो की नौकरी करेगा ? अब तो मैं अपने उस दिन क इतजार म हूँ, जब मुझे भी इस गुलामी से छुट्टी मिलेगी।" करीम ने कहा, तो सजय ने सिगरेट का गहरा कश खीचते हुए कहा, 'तुम्हारे पास अकेला सलामत है काम करने वाला, ऊपर के बन्दोबस्त के काम की फिक्र नही, वह म खुद कर लूगा। पर कम से कम एक वकर और चाहिए, फिर तुम मशीनमन हो जाओगे तो प्रेस का काम चल सकता है।"

"नही, मिया! बाहर के किसी आदमी को नही रखेंगे। एक तो ईमानदार

आदमी ही नही मिलते, रोज टाइप चुराकर ले जाते हैं और दूसरी बात यह है कि घर म वाहर का आदमी नही आ सकता।"

सजय शायद पल भर के लिए यह भूल गया था कि उन के पास सिफ एक ही जगह है, करीम का घर, जहाँ घर की औरतें भी हैं, बाल-बच्चे भी, इस लिए अपनी गलती के एहसास से चुप-सा हो गया।

"बस, एक हसरत सी मन म उठती है, भई, अगर शीरी और जमीला की बजाय दो लडके होते तो फिर काहे की कमी रहती।" करीम न कहा, पर साथ यह भी कहा, "चलो अभी तो वह दूर की बात है, क्यो सोच करें। अभी तो सलामत ही चला लेगा। फिर शायद एक बरस तक, अल्लाह ने चाहा तो सारे घर का ही प्रेस बना देंगे। बाल बच्चो के लिए ऊपर की छत पर कमरा बनवा देंगे।"

सजय को करीम के जिगरे से ईर्ष्या होने लगी। सवेरे स उसे लग रहा था कि काले कागजो से सफेद कागज बनाने वाली हिम्मत कर के आज उस ने बडी जिगरे वाली बात की है, पर करीम के सामने उसे यह बात भी बहुत छोटी लगने लगी।

"चलो, चलें," सजय ने कहा और मेज पर पडे हुए कागजो को मेज की दराज म रखने लगा।

करीम ने दीवान पर से उठते हुए कहा, "आज बस अपने ही मन का उत्साह था, मैं किसी से लडा नही, नही तो बात लडाई की हो गयी थी।"

"कहा ?"

"प्रेस म।"

"मालिक ने कुछ कह दिया ?"

"नही, वही लोग आये थे जो आजकल हफीज साहब का मसिया पढ रहे हैं। यार ! आजकल तुम्हारा नाम बहुत चल रहा है।"

मेरा नाम ! पर उस का हफीज साहब के मर्सिये से क्या ताल्लुक ?'

"चलो, तुम्हें रास्ते म सुनाता हूँ।"

सजय ने कमरे को बद किया, नीचे जाकर अपनी साइकिल निकाली। करीम ने भी अपनी साइकिल उठायी और दोनो रास्ते मे बातें करते रहे।

"तुम्हारा नाविल साप्ताहिक मे छप रहा है न, इस लिए अब चार हफ्ते से तुम्हारा नाम लोगो म बहुत मशहूर हो गया है। वही पाजी लोग कह रहे थे, तेरा बडा यार है उस से कह, हफीज साहब पर मजमून लिख दे।'

'सो तुम्हारी मेरी यारी भी मशहूर हो गयी है !" सजय हँसने लगा, पर करीम को उसी तरह ताव चढा हुआ था, बोला, "वे पाजी वही बैठकर हफीज साहब की वे-व करतूतें सुनाते रहे थे कि आदमी कानो म उँगलिया डाल ले।"

"वे तुम ने मुझे पहले भी सुनायी थी।"

' पर वे क्या खत्म हो गयी ? कहने लगे कि वह आदमी बडा रगीन था। एक वार वह इम्तहाना का काई वडा वह लग गया, क्या कहत ह उसे, जो नम्बर लगाता है, भई परचा देने वाला पाम हुआ है या फेल '

"एग्ज़ामिनर।"

"हा, हां, वही। तो उस के पास लडकियाँ आया करती थी नम्बर वढवाने के लिए।"

' मिया ! समझ गया तुम्हारी वात।'

"वह तो जी नम्बर भी वढवाकर ले जाती थी, साथ म हमल भी करवाके ले जाती थी।"

"छाडो मिया ! किस को वात छेड वैठे हो।" सजय न कहा तो करीम हँस-सा दिया, वोला, 'ऊपर स कहते है, सजय साहब से कहो कि उस की शायरी के परवाज़ पर एक मज़मून लिख दें।"

' मैं न तो उस की शायरी पढी नही है, पर किसी चिडीमार की परवाज़ भी चिडिया तक ही होगी, और क्या होगी।" सजय ने कहा तो हँसते-हँसते करीम की सास रुकने लगी, वोला, "यह चिडीमारो की परवाज़ वाली वात मुझे नही सूझी, नही ता मैं वही कह देता। अच्छा, अव भी किसी दिन कह दूगा, पर अपना नाम लेकर कहूँगा, नही तो यू ही तुम्हारे पीछे पड जायेंगे।"

वाते करते करीम और सजय जिस समय घर पहुचे, सजय ने आगे वढ़कर सलामत को वाहो म ले लिया और उस के साथ सीधा उस कोठरी म चला गया, जहा आज ताज प्रेस का छोटा-सा सपना अधेरे मे टिमटिमा रहा था।

सजय का विलकुल पता नही लगा कि शीरी इस समय आँगन म कूई के पास वठकर हाथो की स्याही को सावुन से धो रही थी और उस ने सजय को देखकर जल्दी से अपने हाथ वाल्टी की ओट म कर लिय थे।



फत्ता कई बार आप ही चूल्हे पर अपनी रोटी सेंक लेता था, पर कई बार पीरां दित्ता की दुकान से ही गोश्त रोटी ले आता था। कई बार मिरच से उस का मुंह जल जाता। वह रोटी का टुकड़ा चबाते और पानी के घूंट के साथ निगलते हुए पीरां दित्ता को गालियां भी दे देता था, नामुराद कहीं के, मिरचों की कमाई खाते हैं, हलाल की कमाई तो पाजियों को अच्छी नहीं लगती ' पर फिर जब चार दिन बाद मुंह फीका सा हो जाता, वह एल्युमीनियम के कटोरे में पीरां दित्ता से गोश्त की बाटी शोरबा डलवा लाता। आज भी कागज में रोटी लपेटकर और कटोरे में सालन डलवाकर वह शाम के समय पीरां दित्ता की दुकान से घर को लौट रहा था, जब गली के मोड़ पर उस ने शीरी को देखा।

"इस वक्त कहां से आ रही हो, बेटी ?" फत्ते ने पास आ होकर शीरी के सिर पर हाथ फेरा, साथ में कहा, "तुम तो माशाअल्ला सयानी हो गयी हो, देखो मेरे कंधे तक आ गयी हो।'

शीरी को हंसी सी आ गयी, "और चाचा जान ! क्या उम्र-भर आप के घुटने तक ही रहती ?"

फत्ता करीम से कहीं बड़ी उम्र का था, पर गली में सब ही फत्ते को चाचा पुकारते थे। कइयों के तो मां-बाप भी चाचा पुकारते थे, उन के बाल-बच्चे भी।

"देखो न, तुम इतनी सी हुआ करती थी, बालिश्त जितनी, जब तुम्हारी मां तुम्हें उठाकर गली से गुज़रा करती थी। अभी कल की बात है, नेमत बिलकुल तुम्हारे जैसी लगती थी।" फत्ता कह रहा था जब उस का पैर गली में पड़े छिलके पर से फिसलने लगा, तो शीरी ने जल्दी से उस की बांह पकड़ते हुए उस के हाथ से रोटी और सालन ले लिया और उस के घर के दरवाजे के पास पहुंच कर बोली, "चलिये, चाचा जान ! आप आगे चलिये, मैं रोटी अंदर रख दूंगी।'

शीरी ने सिर्फ यही कहा, यह नहीं कहा कि चाचा जान आप की याददाश्त को भी आप की निगाह की तरह कुछ हो गया है, नेमत तो छोटी मां है, मैं तो बरकत की बेटी हूं।

शीरी ने फत्ते की चारपाई पर रोटी रख दी और लौटते हुए घड़े की ओर देखा, पूछा, "चाचा जान! पानी का गिलास भरकर दे जाऊँ?"

"पानी मैं ख़ुद ले लूँगा, तुम मेरी एक बात सुनती जाओ!" फत्ते ने चारपाई की पट्टी की ओर हाथ से इशारा किया, "देखा न! सलमा ज़िंदा होती तो वह तुम से भी ऊँची होती।"

शीरी चारपाई के पास खड़ी हो गयी थी, पर बैठी नहीं थी। फत्ते के मुँह से सलमा का नाम सुनकर उसे फत्ते की पीड़ा छू गयी। वह चारपाई की पट्टी पर चुपचाप बैठ गयी।

"देखो न, मेरे लिए जैसी सलमा थी, वैसी तुम हो तुम अपने करीम की बेटी जो हुई।"

शीरी को लगा, फत्ते के मन में कोई बात है, न जाने क्या, पर कोई मन को दुखाने वाली बात है। वह चुपचाप फत्ते के मुँह की ओर देखने लगी।

"तुम अब अँधेरे-सवेरे घर के बाहर मत जाया करो।" फत्ते ने कहा तो शीरी ने हाथ में ली हुई कागज़ की छोटी-सी पुड़िया दिखाते हुए कहा "चाचा! कहीं दूर तो नहीं गयी थी, बस मोड़ तक। छोटी अम्मा को पान की इल्लत लगी हुई है, अब्बा अभी आये नहीं थे, आज सलामत भी उन के साथ सवेरे से गया हुआ है, जमीला के सिर में बड़ा दर्द था, मैंने कहा, मैं ही अम्मा को पान ला देती हूँ।"

"वह तो कोई बात नहीं, बेटी! पर बुरे लोग तिल का ताड़ बनाते हैं। हमारी गली वाले तो फिर भी अच्छे हैं, पर बराबर की गली वाले सूअर के बच्चे"

शीरी के मन में फेरी वाले जमाल की बात खटक गयी। जब से जमाल ने वह ख़त लिखा था और उस ख़त को फाड़कर सलामत ने उसे लौटा दिया था, तब से फिर कोई बात नहीं उठी थी। पर शीरी को उसी बात का खटका सा हुआ, उस ने पूछा, "क्यों, चाचा! क्या बात है?"

"तुम उसे जानती हो? क्या नाम है उस का बुरा सा"

"कौन?"

"वही फेरीवाला।"

जमाल कुछ ही दिनों से शहर में कुलचों की छावड़ी लगाने लगा था, पर उस से पहले जब फेरी लगाया करता था, तब से वह फेरीवाला कहलाता था।

"याद आ गया, जमाल फेरीवाला नाम तो अच्छा भला है, पर आदमी करम अच्छे न करे तो उस का नाम भी अच्छा नहीं लगता।" और फत्ते ने आगे कहा, "तुम्हारे ऊपर उस की बुरी नज़र है, मैंने इसी लिए कहा कि तुम अँधेरा पड़े घर के बाहर मत जाया करो। इन शोहदों का क्या पता होता है"

शीरी का चेहरा उतर गया। चारपाई से उठते हुए बोली, "अच्छा चाचा!"

"देखा न, मेरा इज्जत बेग लाखों म एक है।" फत्ते ने कहा तो शीरी की समझ म कुछ नही आया, उठते-उठते फिर बठ गयी, "चाचा कौन! इज्जत बेग?"

फत्ता हँसने लगा, "अर, तुम्हें तो वह बात ही नही मालूम। वही मेरा खूबसूरत शहजादा, जो अपने करीम का यार है—सजय साहब।"

शीरी के चेहरे पर आयी हुई उदासी की सध्या एक बार फिर दिन की लाली सी हो गयी, उस न कहा, "आप ने उन का नाम इज्जत बेग रखा हुआ है?"

"हाँ! वह मेरा इज्जत बेग है।"

"वह कसे?"

"एक दिन मुझ से कहा, 'भई, तुम्हारा नाम फत्ता कसे हो गया, तुल्ला कुम्हार होना चाहिए था।'"

"वह क्या, चाचा?"

'वह जो लाग सोहनी का किस्सा गाते है, सोहनी-महीवाल का"

"हा, साहनी कुम्हारा की लडकी थी, तुल्ला कुम्हार की, फिर?"

"मै ने कहा भई, हूँ तो मैं भी कुम्हार, पर मैं ने तुल्ला जसे नसीब नही पाय हैं। और सच मानना, बेटी! उसे देखकर यही लगा कि आज मेरे दरवाजे पर भी वही शहजादा आ गया है—इज्जत बेग।" फत्ते ने यह बताते-बताते उस दिन की तरह फिर माथे पर हाथ रख लिया, "मेरी सलमा अगर जि दा होती"

शीरी के सारे शरीर मे एक गहरा सा अँधेरा उतर गया, बाली, "और चाचा! अगर सलमा सचमुच जि दा होती, फिर आप" आगे शीरी से कुछ न कहा गया, और न कहे हुए शब्द उस के होठो के पास काँपने लगे।

फत्ते ने कहा, "तुम्हारे अब्बा भी पास बठे हुए थे। उ होने भी वही बात पूछी थी, जा तुम ने पूछी है। उ होंने कहा, 'अल्लाह जामिन है झूठ मत बालना, अगर सलमा जि दा होती तो यह मेरा इज्जत बेग तुम्ह उस के लिए कबूल होता? देखो! किस्मत का मजाक इसी को कहते है।"

शीरी ने एक तीखी पीडा से आखे बद कर ली।

शायद इस से पहले शीरी ने कभी पीडा को ऐसे नही पहचाना था। लगा, जो भी सवाल होता है, सिफ जीने वालो के लिए होता है। मरने के बाद हिन्दू और मुसलमान का सवाल भी मिट जाता है। मरने के बाद सलमा और मीता म भी किसी को फक नही मालूम होता।

शीरी का फत्ते की बात पर अविश्वास नही हुआ, सिफ यह लगा कि मौत की पीडा के सामने वह उन सब सवाला को भूल गया था जो जीने वालो के लिए होते हैं।

फिर वह एक पल के लिए, चाचा फत्ता के आँगन म बठी जसे उस को सलमा

हो गयी । फत्ते के कंधे से सिर लगाकर बोली, "चाचा ! मैं आपकी बेटी नही ?"

शीरी के मुह से ये शब्द ऐसे निकल गये, जैसे मन की किसी उमस मे से खुम्बियो की तरह उग आये हो, पर दूसरे ही पल उस ने अपनी लज्जित-सी होती हुई जीभ को काट लिया, बोली, "आप यू उदास मत हुआ करे चाचा ! नही तो सलमा की रूह भी उदास होती रहेगी। मैं ने इस लिए कहा है कि "

'हाँ, मैं कब कहता हूँ, तुम मेरी बेटी नही हो, देखो, आज तुम आयी हो तो मुझे ये दीवारें अच्छी लग रही है।"

"तो चाचा ! अगर आप कहे तो मैं रोज आ जाया करूँगी।

फत्ते का चेहरा सचमुच कुछ खिल उठा। लडकी की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोला, "जमाल खुद भी शोहदा है, पर उसे मोहल्ले वालो की भी शह है कहते है करीम की लडकियाँ मुह खोलकर काफिरो से हँसती-बोलती है।'

शीरी ने और कुछ नही कहा, सिर्फ इतना कहा, 'चाचा ! वह तो बडे इल्म वाले आदमी हैं बडे शऊरवाले ।

फत्ते ने जल्दी से कहा, 'लो, मुझे दिखाई नही देता ? ये जाहिल क्या जानें ? उस के माथे पर तो सितारा चमकता है।"

शीरी का मन कुछ सँभला, उस ने कहा, 'चाचा ! वह कहानियाँ लिखते है, किताबें भी ।"

फत्ता हँस पडा, "एक दिन मुझ से कह रहा था, 'जब तुम चाक पर प्याले और सुराहियाँ बनाओ, मुझे बुला लेना, मै तुम्हारे पास बैठकर प्यालो पर तस्वीरें बनाऊँगा।' सलमा बहुत खूबसूरत फूल बूटे बनाया करती थी।"

"अच्छा, चाचा ! उन्ह चाहे न बुलायें मुझे बुला लीजियेगा, मैं आप के बतनो पर बहुत खूबसूरत फूल बनाऊँगी।" शीरी ने कहा और चारपाई से उठकर खडी हो गयी।

"अच्छा अच्छा तुम आ जाया करो, बेटी ! मुझे तुम मे सलमा दिखाई देती है।" फत्ते ने कहा और साथ ही फिर चेतावनी दी, 'पर तुम अँधेरा पडे घर के बाहर मत जाया करो।"

शीरी की पान वाली मुट्ठी जोर से भिंच गयी, अपने ही नाखून हथेली म खुब गये और वह बाहर गली की ओर जाते हुए सोचने लगी, दिन कब चढता है इन गलियो और बाजारो म ? एक अँधेरा तो दिन म भी रहता है, रात को भी '



चत के खुले दिन आ गय थ। यू भी सवेरे से करीम के मन का एक उत्साह था जो सारे घर म पवन की तरह बह रहा था। आज सवेरे उस पहले फरमे के सोलह पन्ने बांधकर शहर ले जाने थे, छापने के लिए। इस लिए मुह तडके ही करीम के गाने की आवाज सब के कानों म पडी, 'वो यार ! जिन्हाँ नू इशक, तिन्हाँ नूँ कत्तन केहा '

और बरकत उठकर मीठे चावल पकाने लगी थी, सलामत न हाथ मुँह धोकर नया पाजामा और नया कुरता पहन लिया था, और शीरी ने अपनी अलमारी को खँखोलकर छोटे फूलो वाली चिकन की वह कमीज निकाल ली थी जो असल म बरकत की थी, पर जब तग हो गयी तो शीरी ने मांगकर बहुत दिनो से अपनी अलमारी म रख ली थी।

उगते हुए सूरज के साथ सजय की साइकिल दरवाजे पर आ गयी। आज आधे फरमे करीम को अपनी साइकिल पर रखकर ले जाने थे, आधे सजय को अपनी साइकिल पर।

आज करीम ने सलाम दुआ की बजाय आँगन म आ रहे सजय की ओर हाथ फैलाकर वही बोल उठाया जो वह कोई आधे घटे से गा रहा था, 'वो यार ! जिन्हाँ नू इशक तिन्हा नू कत्तन केहा ' और साथ ही जोर से हँस पडा, "यह मैं पहले भी गाया करता था, पर म सवेर से सोचे जा रहा हूँ, भई शाह हुसन साहब ने यह बात कसे कही ? क्यो मियाँ ! यह बात कुछ ठीक नही कही ?"

सजय न करीम के सवाल की थाह पा ली, पर कहा कुछ नही। करीम के मुह से ही सुनन के लिए उस की ओर देखता रहा। करीम बोला, "कातने-पीजने का असली मजा तो उसे ही आता है, जिसे इश्क होता है और लोग तो काम के लिए बगार कर रहे होते है '

सजय मुस्करा पडा, ' शाह हुसैन ने जिस कातने की बात कही, वह बेगार के धधे की बात थी, जिस से उकताकर यह शेर लिखा। अपनी जगह वह ठीक है, पर आज वह कामो को इश्क बनते देखता तो जरूर और तरह लिखता "

गोरी ने गिलासों में चाय डाली और एक-एक गिलास अब्बा और संजय के सामने रख दिया।

गोरी ने कान चिकन की क़मीज़ पहनी हुई थी। कानों में चाँदी की वालियाँ भी थीं जो उस ने ताज़ों के रंग पर एक-एक जोड़ी उन और जमीला को दी थीं। पर गोरी ने अभी बातें नहीं बनाये थे। उस ने जब चाय का गिलास संजय को दिया तो संजय की नज़र उस के मुँह पर पड़कर अटक गयी

सर्दी की मद्धिम रागनी में वह आँगन में उतर आयी—एक छलावा-सी लग रही थी।

गोरी ने भी नज़र भरकर देखा। पहले उस ने कभी संजय के मुँह पर अपने लिए ऐसा टिकी हुई नज़र नहीं देखी थी। उस का सारा शरीर कानों की वालियों की तरह लहर गया।

करीम मियाँ!', संजय के मुँह से निकला पर वह करीम की ओर नहीं अभी भी गोरी की ओर देख रहा था।

करीम साइकिल के पीछे क़रमा को बड़ी सावधानी से बाँध रहा था ताकि हिचकोले में उन के बँधे हुए अक्षर कहीं से हिल न जायें इस लिए उस ने संजय की आवाज़ नहीं सुनी। वह सलामत से कह रहा था दो-दो अक्षर, लड़के! फ़ालतू निकालकर काग़ज़ में बाँध लो वहाँ छपते छपते कभी अक्षर टूट जाता है तो बदलना पड़ता है।

करीम मियाँ!' संजय ने फिर कहा।

करीम इधर का उन के पास आते हुए अपने ध्यान में मगन कह जा रहा था, काग़ज़ मैं ने तेरह की बजाय चौदह रिम रखवा लिया है। तेरह में पूरी एक हज़ार कापी छपनी थी चौदह में ग्यारह सौ छप जायगी। छपाई तो प्रेस का जतो एक हज़ार की देना बसी ग्यारह सौ की सौ कापी ज़्यादा क्यों न छाप लें!

इस समय और किसी ने नहीं, सिर्फ़ गोरी ने जाना कि करीम की बात संजय को सुनाई नहीं दी और संजय की बात करीम को सुनाई नहीं दी।

और फिर इस पल को करीम ने भी देखा देखा कि चाय का गिलास उसी तरह संजय के हाथ में थमा हुआ है और उस की बाहर की ओर देखती हुई आँखें बाहर की ओर नहीं शायद कहीं भीतर की ओर देख रही हैं।

बरकत आवाज़ दे रही थी जल्दी न कीजिए! बस एक कनी रह गयी है चावलों में, मुँह मीठा करके जाना।

करीम चारपाई की पट्टी पर बैठते हुए बोला, "मियाँ! तुम तो मांह हुमन की तरह सचमुच कातना भूल गये।

संजय हँस पड़ा, "नहीं यार! कातने की बात ही सोच रहा हूँ, आज ज़रा गोरी को तो देखो।

"आ बेटी ! इधर आ !" करीम ने कहा तो शीरी की सारी जान इकट्ठी होकर बालियों की चाँदी की तरह जम गयी।

संजय ने फिर हाथ से इशारा किया और करीम से बोला, "किताब का टाइटल बनवाना है न ? देखो, यह लड़की ऐसी लग रही है जैसे किताब पर छपी हुई तस्वीर हो।

शीरी जहां खड़ी थी वहीं खड़े हुए एक तस्वीर जैसी हो गयी। एक कागज पर जमी हुई कुछ लकीरों और गोलाइयों की तरह।

करीम ने शीरी की ओर देखा, फिर किसी चित्रकार से कहते हैं "अभी उस ने इतना ही कहा था कि जमीला तश्तरियों में मीठे चावल डालकर उन के आगे रखने लगी।



आज दोपहर शीरी जैसे सारे 'छापेखाने' की मालिक थी, उस पूरी कोठरी की जहाँ कम्पोजिंग की मेज़ थी, पास मे खानो वाले लकड़ी के रैक थे, जिन में सिक्के के अक्षर भरे हुए थे और परे कोने में एक छोटी सी अलमारी थी, जिस में संजय के उपन्यास की सारी पाण्डुलिपि पड़ी हुई थी।

शीरी ने खाना पकाने मे अम्मा का हाथ बँटाया, फिर उस कोठरी में जाकर आगे का मैटर निकाला और कम्पोज करने लगी। उस का ध्यान अक्षरों की ओर था, रचना के अर्थ की ओर नहीं था, पर यह सारा उपन्यास उस के अपने हाथों का नकल किया हुआ था, इस लिए लिखाई के अर्थ इतने अक्षरों में नहीं जितने उस की याद मे से निकलकर उस के सामने आकर खड़े हो जाते थे।

यह उपन्यास का शुरू का भाग था, यद्यपि सोलह पन्ने निकल चुके थे, तब भी उस में मौत के बाद की नीली और शून्य रोशनी के वर्णन से ज्यादा अभी और कुछ नहीं था, पर इस रोशनी का एक जादू था, जो शीरी के तसव्वुर को चढ़ने लगा

अक्षरों के नाता की पहचान, अब होले होले सारे कारीगरों के हाथों में उतर जाती है शीरी के हाथों में भी उतर रही थी। हाथ सचेत उसी अक्षर के खाने की ओर चला जाता था जिस अक्षर की इबारत के अनुसार जरूरत होती थी। और शीरी को बिल्कुल पता नहीं चला कि उस ने किस समय कोई तीन पन्नों का मैटर कम्पोज़ कर लिया।

आँगन में पड़ती धूप और आँखों में पड़ती हुई थकान दोनों वास्तविकताएँ थीं पर उपन्यास की इबारत भी एक वास्तविकता थी जिस के अनुसार आग और हवा से बने हुए रूहों के अस्तित्व का न समय का ध्यान होता है न थकान का।

यह भी उस रूहों के अस्तित्व वाली दुनिया में एक रूह की तरह विचर रही थी।

और फिर नयी इबारत में उस ने मीता की रूह का अस्तित्व देखा

आग की एक गर्म लकीर-सी उस के शरीर में उतर गयी

यह बहुत छोटी होती थी जब अम्मी उस रात का पेड़ के नीचे नहीं खड़े होने देती थी। कहा करती थी पेड़ों पर रात को रूहें रहती हैं जो बच्चों को पकड़ में ले लेती हैं मिनटों में हँसते हँसते रोने लगते हैं। एक बार जब सलामत बहुत छोटा था, दूध पीते-पीते एक रोने लगा कि मिनटों में नीला पड़ गया। अम्मी उसे सब्ज़े के मज़ार पर ले गयी थी और वहाँ एक पीर ने उस पर से रूह को उतारा था।

यह बहुत पुराने दिनों की बात थी, शीरी को भूली हुई उपन्यास की नकल करते हुए भी याद नहीं आयी। पर आज शीरी को एक भूले हुए सपने की तरह उघड़कर दिखाई देने लगी और सामने की इबारत में से मीता भी उघड़कर इन में मिल गयी।

पर वह तो अच्छी रूह थी ' शीरी ने बड़ी होशमंदी से एक दलील खोज निकाली और रूहों की सुनी सुनायी कहानियों का हाथ से परे झटक दिया।

पर मीता का अस्तित्व उस के और निकट आ गया। इतना कि शीरी को लगा, उस के हाथ से छू गया है।

उस का सारा शरीर सुन्न सा हो गया

क्या मालूम रूह सच्ची होती हो तो इस वक्त ' शीरी के माथे में से एक विचार उभरकर माथे की नस की तरह कस गया।

उपन्यास की इबारत में संजय की रूह का हाथ मीता की रूह की ओर बढ़ा, तो रैक के खाने में से किसी अक्षर को लेने के लिए बढ़ा हुआ शीरी का हाथ, रैक के परे दीवार की ओर चला गया।

ठोस दीवार ने शीरी के हाथ को जैसे थाम लिया रोक लिया, तो शीरी को होश सा हो आया कि वह मीता की ओर बढ़े हुए संजय के हाथ को अपने हाथ से

जैसे रोक लेना चाहती थी

शोरी ने अपने हाथ को जैसे झिड़क सा दिया। सिक्के का एक अक्षर उस की पोरों में थमा हुआ था—'म', मीता के नाम का पहला अक्षर।

'मुझ से मीता का नाम सहा नहीं जा रहा है।' शोरी के हाथ में थमा हुआ सिक्के का छोटा सा अक्षर बहुत भारी हो गया।

'वह यहीं नहीं है पर हमेशा रहेगी ' और शोरी के हाथ में थमा हुआ सिक्का उस के सारे शरीर में भरने लगा

खिड़की के चौखट के पास धूप की एक लकीर आ गयी थी, वह जब चौखट लाँघकर खिड़की के पास लगी हुई मेज पर पड़ी, उन अक्षरों पर जो शोरी ने कम्पोज किये थे, तो शोरी को सवेरे वाली बात याद हो आयी, देखो यह लड़की जैसे किताब पर छपी हुई तस्वीर हो '

वही धूप की लकीर इधर शोरी के होंठों के पास आ गयी, 'मीता हमेशा किताब के अन्दर होगी, अक्षरों में, पर मैं '

और शोरी को लगा, वह सारी की सारी किताब की जिल्द पर मढ़ी हुई है

होंठों के पास एक मुसकराहट-सी आ गयी।

उसने फिर कागज की इबारत की ओर देखा और हाथ के अक्षर को कम्पोजिंग की इबारत में जोड़ दिया, फिर अगला अक्षर भी ले लिया, उस से अगला भी

और उस ने जैसे संजय का जो हाथ मीता की ओर बढ़ रहा था, वह बढ़ने दिया

इस समय, पूरे का पूरा संजय एक नीली शून्य की रोशनी में भटक रहा था, पर शोरी धरती की धूप-सी धरती पर ठहर गयी

सलामत दोपहर बाद लौट आया था, पर खाना खाकर सो गया। सन्ध्या समय जब करीम और संजय आये, करीम ने जमीला से चाय बनाने के लिए कहा और संजय सीधा कम्पोजिंग वाली कोठरी का भिड़ा हुआ दरवाजा खोलते हुए बोला, 'कल को करीम मियाँ ! चाहे हमारा बड़ा-सा प्रेस लग जाये, पर यह कोठरी हमेशा याद रहेगी।'

संजय जब कोठरी के भीतर गया तो सामने नये कम्पोज किए हुए पन्नों पर नजर पड़ी, जोर से सलामत को आवाज देते हुए उसने कहा, "सलामत मियाँ ! जवाब नहीं तुम्हारा

सलामत बराबर के कमरे में सोते हुए जाग उठा, बाहर आँगन में आते हुए बोला, "भाई जान ! दो अक्षर छपने में टूटे थे, पूछिये अब्बा से मैंने झट बदल दिये थे।'

'हाँ मियाँ ! वह भी रास्ते में मुझे करीम ने बताया था, पर मैं तो हैरान हूँ।

"मशीन ?"

"वही, जो आप चलाते हैं।"

'छाप की मशीन ?"

"वही। और मुझे सिखा दीजिये।"

'तुम मशीनमैन बनोगी ?"

करीम जोर-जोर से हँसने लगा, "बरकत ! बाहर तो आओ। तुम्हारी बेटी मशीनमैन बनने लगी है।"

बरकत जानती थी कि शोरी ने कैसे भीतर बैठकर पढ़ना सीखा था, कैसे बैठ बैठकर यह दूसरा काम सीखा था, बाहर दहलीज में आकर बोली, "यह तुम्हारी लड़की जग से न्यारी है, अपने हाथ से दी हुई गाँठें अपने ही दाँतों से खोलना"



अगले कुछ दिनों में दूसरा फरमा भी पहले की तरह छप गया। संजय ने प्रूफ देखे, गलतियों के निशान लगाये। शोरी ने वे गलतियाँ ठीक की थीं। अब उसे सलामत की ओट में खड़े होकर काम करने की जरूरत नहीं थी, उस ने दूसरी बार प्रूफ निकालकर खुद संजय को दिखा लिये थे। पर संजय ने महसूस किया कि घर की हवा किसी जगह कुछ तनी हुई है।

आज वह तीसरे फरमे के प्रूफ देख रहा था, जब करीम ने आकर दो पतले-पतले रजिस्टर उस के सामने रख दिये, "लो, तुम रोज कहते थे, मैं हिसाब किताब की कापियाँ ले आया हूँ"

संजय ने दोनों रजिस्टर देखे, एक कैश बुक थी, एक लेजर, बोला, 'यही तो हमारे ताज प्रेस की इब्तदा है—इब्तदाए इश्क '

सुन रही हो, ताजो की माँ !" करीम ने जोर से कहा, तो पास से संजय बोल उठा, "इस के पहले पन्ने पर ताजो का अँगूठा लगवायेंगे।"

नेमत पास आते हुए बोली, "मैं तो उज्र नही करती तुम्हारा जी करता है तो गाड ला मशीन, तुम्हारी मलिका-मुअज्जिमा ही कहती हैं कि घर म खड खड नही आने देंगी।"

करीम ने सजय को आर देखा, ' बदा खुदा का पार तो पा सकता है, पर खुदा की मखलूक का नही "

सजय ने कहा कुछ नही, हँस दिया। पर यह जान गया कि पिछले कुछ दिना से घर मे क्या तनाव था।

करीम कह रहा था, "लडकी न मशीन की बात क्या छेडी है ये दोनो उसी दिन से चिढी हुई हैं कि घर म मशीन नही लगान देंगी। वह क्या कहत हैं भई गहूँ खेत, लडकी पेट ओर आओ दूल्हा मिया ! रोटी खाओ अरे मशीन क लिए रकम कही छत छप्पर से गिरती है ! य पहले से ही लडाई ठानकर बठ गयी हैं।'

सजय कुछ देर सोचता रहा, फिर उस ने कहा, ' वे सच्ची हैं मिया !

पर सजय की बात काटकर करीम बोल उठा, हैं ता सच्ची साचती होगी कि दो मशीना की तो पहले ही खड-खड होती रहती है ऊपर स तीसरी मशीन आ गयी तो '

नमत मुह मे पल्ला देकर हँस पडी, पर बरकत न करीम को जवाब दिया, "हाँ हम कचिया भी हैं, मशीनें भी। गली-पडोस की बातें तुम्हार कानो तक नही पहुँचती, व सुन लें तो जबान खुद ही कैंची बन आती है।"

करीम ने भी घूरकर बरकत की ओर देखा, बोला, ' खुदा न सारी चीजें बनायी हैं लागो की जबान बनायी है, तो कानो मे दन क लिए रुई भी बनायी है पर मैं तो कहता हूँ, मशीन न जाने एक बरस म लगती है या दो बरस मे तुम "

'तुम' लफ्ज पर आकर करीम का स्वर ज्यादा गम हो गया, तो सजय न बीच मे बात काट दी, ' मियाँ ! तुम यू ही बहस करत हो मशीन घरो म लग नही सकती, उस के लिए कमर्शियल एरिया होना चाहिए "

करीम न कोई पल-भर सोचा फिर कहा, वह नयी आबादियो की बात है। पुरानी आबादियो म घरो म ही लगायी हुई हैं।"

' पर जो लग चुकी हैं, व लग चुकी हैं, शायद अब नही लगान देते।'

' वह ता मालूम कर लेंग, जब लगायेंग। अभी ता उस की बात भी सपना है।'

"सपना तो नही " सजय ने कहा, आज बल्कि मुझे तुम स बात करनी थी। वह जो किताब मैं ने तर्जुमा की है, उस के छापन की बात कर रह हैं बाहर के मुल्क वो है वह हर जबान म छपवाना चाहते हैं। कह रह थ, आप अपनी जबान म खुद छाप दीजिय तो छपते ही तीसरा हिस्सा कापियाँ वह खरीद लेंगे,

पूरे दाम पर। मैं ने हिसाब लगाया है, छापने की सारी नही ता पौनी लागत उसी वक्त निकल आती है, बाकी और सौ पचास कापियां बिकने पर निकल आयेगी। फिर बाकी कापियां निरा मुनाफा होगी "

' फिर ता मशीन लायक पसे यह रखे हुए है " करीम चारपाई पर आधा सा लेटा हुआ था, उठकर बठ गया।

पूछते थ,' आप की जबान म लगभग कितनी कापियां बिक जायेंगी ? मरा खयाल है छ सात सौ ■ ज्यादा नही बिक सकती, सा मैं न कहा, एक हजार छप जाये, तीन सौ वह ल लें तो बाकी बिक सकती हैं। और बडी बात यह कि वह किताब मुझे बहुत पसद है इटली के किसी इलाके की कहानी है, जहां अगूर की खेती करने वाले मजदूर शासन के जुल्म से लडते हैं "

करीम ने प्यार से सजय की पीठ पर हाथ फेरा, बोला, "तेरे जैसा और कौन जन्मा होगा। तुम्हारी जगह मेरे प्रेस का मालिक होता तो कहता, जी, हमारी जबान मे दस हजार बिकेंगी, और फिर जो तीन, साढे तीन हजार उन को खरीदनी होती, वही छपाकर उन के आगे धर देता और चौगुने पसे बनाकर जेब म डाल लेता। किताब की कीमत लागत से पाच गुना रखते हैं।"

"वह काम ताज प्रेस मे नही हो सकता।'

"वह ता नही हो सकता पर यह बताओ, क्या यह बात पक्की है ?"

'उन की तरफ से पक्की है। व तो लिखकर देने को तयार थ, मैं न कहा तुम से पूछ लू।'

' फिर करें मशीन का पता ?"

' नही, अभी नही।"

"क्यो ?"

"इसी तरह तकलीफ उठाकर औरो की मशीन पर छाप लें। फिर कोई जगह देख लेंगे, तब सोचेंगे चलो, यह रजिस्टर शुरू करें। कितने दिनो से छोटा मोटा खर्च हो रहा है, सब लिख लें।" सजय ने कहा और जमीला को बुलाकर बोला, ' ले आओ ताजी को। उस के अगूठे पर स्याही लगाकर पहले इस पर उस का दस्तखत करायें।"

करीम ने एक लम्बी सास ली और हँस पडा, लोग तो अपने रजिस्टरो पर पहला दस्तखत शतान का करवाते हैं, क्योकि बाद मे जाली रसीदो की रकम भरनी होती है, तुम्हे अभी परसो की बात सुनाता हूं। किसी चित्रकार से हमारे मालिक ने काम करवाया होगा। वह पसे लेने आया तो साठ रुपये देकर उस के आगे दो सौ की रसीद रख दी दस्तखत करने के लिए, वह तो जोर जोर स शोर मचाने लगा "

सजय हँस दिया, ' मिया ! तुम किस पर उगली रखोगे जो यह काम न

करता हो ?"

"तुम्हारे ताजे प्रेस पर उँगली रखूंगा, देखना तुम !" करीम ने कहा और ताजो के दाहिने अँगूठे पर स्याही लगाने लगा जिसे जमीला ने अपनी बाहों में उठा रखा था।

शीरी चुपचाप करीम के पास आकर खडी हो गयी और जब करीम ने रजिस्टर के पहले पन्ने पर ताजो का अँगूठा लगा दिया तब बोली 'अब्बा! चाचा फत्ते का सारा घर खाली पडा है, चाक तो एक तरफ लगा हुआ है, लगा रहे, दूसरी तरफ '

"आह तुम जीती रहो ! ' करीम ने जोर से कहा, "मुझे ध्यान ही नही आया! पया यार ! वहीं एक कोठरी में मशीन लगा लें "

"अगर वह मान जाये तो बल्कि पैसों से तंग है, हर महीने कुछ किराया उसे दे देंगे " संजय कह रहा था जब करीम चारपाई से उठकर खडा हो गया।

"अगर बात बन जाये, तो शीरी को फिर सलाम करना होगा " करीम ने हँसकर संजय को भी उठाया, "चलो, उस से चलकर पूछें।"

वे दोनो जाने लगे तो शीरी उन के पीछे पीछे आते हुए बोली "अब्बा ! मैं भी आ जाऊँ ?"

"आइये, मशीनमैनजी ! आप आगे आगे चलिये।" करीम ने मज़ाक में कहा तो शीरी ने सचमुच आगे होकर फत्ते का दरवाजा जा खटखटाया।

"मेरा इज्जत बेग आया है ? ' फत्ते ने आँगन में चारपाई डालते हुए कहा तो शीरी फत्ते के कान के पास को होकर बोल उठी, 'चाचा ! मैं और अब्बा भी आये हैं। आप को हम नही दिखाई देते ?"

फत्ते के कानो में कसर नही थी, पर शीरी ने जब ऐसे बात की जैसे ऊँचा सुनता हो तो फत्ता भी उस की नकल करते हुए बोला, "अच्छा, क्या कहा ? और कौन आया है ?'

और फत्ते के साथ और सब भी हँस पडे।

करीम जरा विस्तार से फत्ते को मशीन के बारे में समझाने लगा तो शीरी ने देखा, फत्ते के कुछ भी पल्ले नही पड रहा है। वह बार बार पूछ रहा था,"कैसी मशीन ? कितनी बडी होती है ?" तो शीरी बोल पडी, "चाचा ! आप यही समझ लीजिये, जितना आप का आवा है जिस में आप कच्चे बर्तन पकाते हैं। बस, वह भी आवे जैसी है, उस में अक्षर पकाने है—जो कच्चा लिखा हुआ होता है न कागजों पर '

अच्छा, अच्छा " फत्ते ने कहा, 'फिर तुम यहां बैठकर अक्षर पकाओगी ?"

संजय ने चौंककर शीरी की ओर देखा, तो उसे लगा, उस की अपनी नज़र अपनी आँखों में जम गयी है।

करीम भी मुसकरा पड़ा। संजय की ओर देखते हुए बोला, "मुझे पूरी उम्र हो गयी है मशीन चलाते, पर कच्चे अक्षरों को पकाने वाली बात मुझे नहीं सूझी थी।"

"यह तो, यार ! किसी अदीब को भी नहीं सूझ सकती।" संजय ने कहा और आँखें नीची कर लीं।

शीरी फत्ते से कह रही थी, 'हाँ, चाचा ! यहीं आप के पास बैठकर अक्षर पकाऊँगी... अब्बा आप से यही पूछने आये हैं...'

फत्ते ने लड़की की पीठ पर एक धप्पा मारा, "और इस बात के लिए तुम अब्बा की सिफ़ारिश लायी हो ? तुम तो सलमा बेटी हो, जो मशीन लगाना चाहती हो, लगा लो।"

वे तीनों जने फत्ते के घर से लौट रहे थे। संजय ने शीरी के पास को होकर कहा, 'लगता है, अब मुझे नया उपन्यास लिखना पड़ेगा—'कच्चे अक्षर।'

शीरी ने दोनों आँखें उठाकर एक बार संजय की ओर देखा, फिर आँखें अलग कर लीं। पर संजय को लगा, आँखों में कुछ था जो इधर उस के पास रह गया है।



सारी ओर फैला हुआ एक अँधेरा था, पर यह नहीं मालूम, रात के किस पहर का।

अँधेरे को रह रहकर हिलाती हुई एक आवाज़ ज़रूर आती थी, 'जागते रहो'... पर फिर घड़ी भर के लिए उस आवाज़ के होंठों पर भी वह अँधेरा अपनी हथेली रखता लगता था, और वह चुप हो जाती थी।

संजय भी अँधेरे के एक टुकड़े की तरह निश्चल अपने दीवान पर पड़ा रहा।

लगा, उस की छाती में से भी कोई चीज उठकर कह रही है 'जागते रहो' और फिर कहीं भीतर से ही एक हाथ उठकर उस आवाज के होठों पर हथेली रख रहा है।

जी किया कभी कमरे की सीढ़ियां उतरकर नीचे सड़क पर जाये और लालटेन लिए रातों सड़क पर घूमने वाले चौकीदार से पूछे तुम ने कभी उन लोगों के चेहरे देखे हैं जिन से डरते हुए तुम रात लोगों को जागते रहने के लिए कहते हो?

पर वह वैसे का वैसा दीवान पर पड़ा रहा।

उस का हाथ अपनी छाती पर था उँगलियां होले-होले हिलने लगीं, छाती को होले से सहलाती हुई भी शायद होठों का वही सवाल छाती से पूछती हुई, किस के डर से जाग रहे हो? किस के डर से? यहां इतने अँधेरे में कौन आयेगा? क्यों आयेगा? कौन?

लगा, छाती में कुछ हिलता है कोई चीज, जैसे कोई अँधेरे में किसी चीज को छिपाकर रख रहा हो।

संजय की सांसें छोटी और भारी हो गयीं, शायद भीतर पड़ी हुई किसी चीज के भार से

बाहर से चौकीदार की आवाज फिर आयी, "जागते रहो!"

संजय जाग रहा था, पर फिर भी कुछ था जो उस के भीतर बाहर [illegible] गया था। वह न जाने वहां कुछ रख रहा था, या वहां से कुछ निकाल रहा था।

उस ने थककर आँखें मींच लीं।

पर वह जाग रहा था, लगा, यह जबरदस्ती [illegible] को भी

उस के होठों ने एक बार उस के [illegible] 'जागो' पर [illegible] सुना नहीं।

छाती में फिर कुछ भारी सा महसूस हुआ। [illegible] छाती तक सारे मांस का टोह

"शीरी " सचेत कि तु जोर से उस के मुह स निकल गया। लगा, शीरी उस की बाँह के पास खडी हुई है, और उस की अपनी दुबली शीरी क बदन की काली चिकन की कमीज की बूटिया पर पडी हुई है।

बाहर स चौकीदार की आवाज आयी, "जागन रहो !"

पर वह सोया हुआ नही था

सजय न मुट्ठी म नीम की पत्तिया को लेकर दुलराया, तो उस काली कमीज की चिकन की बूटियाँ उस की पोरो म काँपन लगी।

सजय जानता था पिछले दो दिन स वह कुछ नहीं लिख सका था। करीम के घर भी नही गया था। लिखन के लिए जब भी कागज सामन रखता था, शीरी की वह कच्चे अक्षरो वाली बात याद आ जाती थी।

वह शीरी न सहज स्वभाव पता नही कस कही थी, पर सजय न जब स सुनी थी, वह उस के कानो म खडी हुई थी होनी का एक फैसला-सा बनकर।

लग रहा था, वह जब भी और जो कुछ भी लिखेगा, सब कच्चे अक्षर होगे।

'शीरी जब नही होगी, किताबें तब भी छपेंगी।' पर सजय को लग रहा था, 'छपी हुई किताबो म भी कुछ होगा, जो कच्चे अक्षर रह जायेगा।'

'बात सिर्फ छापे की मशीन की थी, सामन कुम्हार के औजार और सामान थे, चाक, आवा, मिट्टी, कम्बख्त उन्ही चीजो की उपमा देकर कितनी बडी बात कह गयी। किताबो के सारे इतिहास म किसी ने नही कही होगी, जो वह कह गयी—'चाचा! आप यही समझ लें, जस आप का आवा है, जिस म आप कच्चे बतन पकाते हैं, बस वह भी आवा जसी है, उस म अक्षर पकान हैं।' सजय आप ही सोचता और आप ही एक शून्य म देखता रह जाता।

कल एक बार सजय की आँखो मे पानी सा भी आ गया था, 'कम्बख्त! अम्बर-रगी बाते तो दुनिया म बहुत इल्म वाले है जो कर सकते हैं, पर तुम ने यह मिट्टी रगी बातें कहाँ से सीख ली? ये बातें कोई इल्म वाला भी नही कर सकता।'

और कल से सजय को अपने आप से एक खौफ-सा लग रहा था मैं जब भी कुछ लिखूगा, वह छपेगा, पर उस मे हमेशा ऐसा होगा जो कच्चे अक्षर रह जायेगा।'

यही 'कुछ' सजय की पकड म नही आ रहा था।

लगा, इस समय रात के अँधेरे म, जरूर यही 'कुछ' है जो उस की छाती म कोई छिपाकर रख रहा है, शायद उस का अपना ही हाथ!

सवेरा हुआ। काम पर जाते हुए करीम इधर भी आया बस इतना कहन के लिए, 'यार! तुम घर जाकर प्रूफ देख जाना, फरमा रुका हुआ है।' पर सजय से उठा न गया।

अब अच्छा दिन चढ आया था। लागो का जागने के लिए कहने वाली चौकीदार की आवाज कहीं रही थी, पर सजय की छाती म कही एक अँधेरा था जिस क किसी कान म अभी भी काई उस जागते रहन के लिए कह रहा था।

चौकीदार न रोज की तरह पास के होटल स सजय के लिए चाय और रोटी ला दी, तो सजय न गुसलखान म जाकर कपडे बदले, बाहर आकर रोटी खायी, और फिर एक बार शीशे म अपनी 'जागती आँखो' की ओर देखकर, साइकिल लेकर करीम के घर की ओर चल दिया।

करीम की गली वाले मोड म मुडा ही था कि अपनी दहलीज म खडे हुए फत्ते ने उसे पुकार लिया, 'मियाँ इज्जत बेग ! तुम्हारा सवेर स इन्तजार कर रहा हूँ। आज आवे म बतन चढ़ाय थे, करीम को कल स देशा भी दे दिया था '

सजय न अपनी साइकिल फत्ते की डयोढी मे रख दी, "कल मैं आया ही नही था, यार ! इसी लिए तुम्हारा सन्देशा नही मिला।'

और सजय न अन्दर आगन म जाते हुए पूछा 'फिर रख लिय बतन आवे मे ?'

कब के, अब तो बाहर भी निकाल लिये हैं। सवेरे से मेरी बेटी आयी हुई है मेरी मदद क लिए।" फत्ते ने कहा, तो सजय न दूसरे कोने म शीरी को आव से निकाले हुए बतनो का इकट्ठा करते देखा।

'देखो, मेरी बेटी ने प्यालो पर कस फूल-बूटे बनाय है !" फत्त ने आगे बढ़कर कई प्याले फर्श पर से उठाये और सजय को दिखाते हुए बोला, "कसे लगे तुम्ह ?'

'जी करता है, हर प्याले म पानी डालकर पीयू।" सजय न आगन म चारपाई पर बठते हुए जवाब दिया तो फत्ते ने शीरी की ओर देखा, 'ले आ, बेटी ! एक प्याला सुच्चा करवा ले !"

सजय की आँखें पिघलकर फत्ते की ओर देखने लगीं, कहा कुछ नही, पर अपनी इस सभ्यता पर उसे प्यार-सा आ गया, जहा लोग बतन का 'जूठा होना' कहन की बजाय 'सुच्चा होना' कहत हैं।

फत्ता एक ऐसा प्याला उठाकर शीरी की ओर कर रहा था जिस पर उस की समझ से ज्यादा बूटिया बनी हुई थी, पर शीरी ने हाथ मे एक प्याला रखा था, कह रही थी, 'नही, चाचा ! यह ज्यादा खूबसूरत।'

"अच्छा, जो तुम्ह खूबसूरत लगता है " फत्ते ने अपने हाथ का प्याला नीचे रख दिया और शीरी अपने हाथ के प्याले का धोकर घडे म से पानी भर लायी।

सजय ने पानी का भरा प्याला ले लिया और दो घूट पीकर उस की बूटियाँ देखने लगा।

"पर यह अखबार तो कोई अच्छा नहीं मालूम होता, बहुत खराब-सा कागज़ है, मोटे-मोटे शीर्षक "

"सो, अच्छा ही है, तुम देख सकते हो, पढ़ नहीं सकते।"

"यह भी नाविल छापने लगे है ?"

"नाविल नहीं, मियाँ! गालियाँ और वह भी किस्तवार। लिखा है, 'बाकी गालियाँ अगले हफ्ते दी जायेंगी'।"

"हराम के बीज " करीम की ज़बान पर ज़ोर से यह गाली आ गयी, तो सजय ने कहा, "तुम, मियाँ! अपनी ज़बान क्यों मैली करते हो, यह काम उन लोगों के लिए ही रहने दो।"

"पर कहते क्या हैं ?"

'कहते हैं, यह उपन्यास ज़ब्त हो जाना चाहिए।"

"वह क्यों ?"

"इस में जो दोज़ख का ज़िक्र है उस के कारण। कहते हैं, इस में सरकार के खिलाफ बगावत की गयी है, दोज़ख का नाम लेकर सरकारी अफ़सरों की निंदा की गयी है।"

"फिर तो सच ही कहते है।" करीम ने कहा और हँसने लगा, 'अगर ज़ब्त नहीं करेंगे तो दोज़ख का सबूत कैसे देंगे ? तुम खुद सोचो, मियाँ! अगर वह लोगों को धरती पर जन्नत का सपना देखने की इजाज़त दे दें तो फिर यह दोज़ख ही काहे की हुई ?"

सजय ने करीम के चेहरे की ओर मुसकराकर देखा, पर बोला, "मैं सोचता हूँ, अभी हम मशीन न लगायें। क्या मालूम उपन्यास सचमुच ज़ब्त हो जाये तो सारा नुकसान हो जाय, फिर मशीन की किश्तें भी उतारनी पड़ेंगी। साथ ही अगर तुम ने नौकरी छोड़ दी तो और मुश्किल हो जायेगी।"

जब सजय यह कह रहा था, कोने में खड़ी हुई शीरी सब कुछ सुन रही थी। वहाँ इधर इन के पास आ गयी और बोली, "अब्बा को नौकरी नहीं छोड़ने देंगे, मशीन मैं चलाऊँगी।"

करीम ने जवाब नहीं दिया, सजय ने दिया, "तुम ने सारी बात सुनी है ? यह उपन्यास शायद ज़ब्त हो जायेगा।"

'हो जाय " शीरी ने कहा और अब्बा की ओर ध्यान मोड़कर बोली, 'बस, इतवार के दिन मुझे सिखा दिया कीजियेगा दो-चार बार सिखायेंगे तो खुद चलाने लगूंगी।"

करीम हँस पड़ा, "अच्छा, अच्छा, तुम्हें ज़्यादा जल्दी है तो चलो, किसी प्रेस में मशीनमैन बना देते हैं।'

शीरी की आवाज़ कुछ तन गयी। ऐसी आवाज़ उसके मुँह से न पहले कभी

करीम ने सुनी थी, न सजय ने। वह रह रही थी, "मैं किसी की नौकरी नहीं करूँगी। न आप से सारी उम्र और कुछ माँगूँगी।"

करीम ने जरा चौंककर शीरी की ओर देखा, पर कहा कुछ नहीं।

सजय न कहा, "पर तुम जानती हो, किताब के जब्त होन स कितना नुकसान होगा?"

"बस, कागज का नुकसान, जो खरीदा हुआ है।'

"तुम्हारी और सलामत की सारी महनत?"

"उस का क्या है? उस स तो हम न काम करना सीखा।"

"मरी सारी महनत?"

"जिस ने नावल लिख लिया, उस की महनत पूरी हो गयी। अखबारो म गालियाँ दने वाले तो यह नावेल नहीं लिख सकत।"

अब सजय न जवाब नहीं दिया, एक बार शीरी की ओर देखा, फिर ध्यान हटा लिया।

शीरी न प्रूफ सामने रख दिय, और खुद भीतर चली गयी।

"एक बात सुनो," करीम ने कहा, "वह दूसरी किताब मिल गयी है छापने के लिए? वह जिस का तुम न तर्जुमा किया है?"

'हाँ, वह मिल गयी है।"

'एक काम और भी करें।"

क्या?'

"जो हमारे सूफ़ी शायर हैं, उन का कलाम इकटठा करके जरूर छापना चाहिए। वह मेरी सारी उम्र की हसरत है।"

"वह तुम इकटठा करो। फिर उस मे स उम्दा-उम्दा शेर लेकर उन्हे तरतीब द देंगे। और अगर तुम कहो "

"क्या?'

"अभी वह उपन्यास बीच म ही रोक दें?"

'बिलकुल नहीं। बल्कि और भी जबानो वाले जो माँग रहे है उन्हे छापने दो।"

सजय चुपचाप प्रूफ दखने लगा। अच्छा अँधेरा पड गया था। जब प्रूफ खत्म हुए तो सजय सारे कागज करीम को थमाते हुए बोला, "तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है। अगर मुल्क की तरक्की के लिए और लोगो के भले के लिए उठायी गयी आवाज को जब्त न किया जाये तो फिर वह दोजख ही काहे की हुई?"

"हाँ, मियाँ! तुम ने जो कुछ लिखा है, वही सच्चा हो रहा है।" करीम ने कहा और हँसने लगा, "अदीब तो, मियाँ! खुद ही पैगम्बर होता है।"



अब मौसम बदल गया था। पिछली गर्मियों में शीरी और संजय ने आंगन में जो पौधे लगाये थे, उन पर अब नयी गर्मियों के नये पत्ते आने लगे थे। मोतिया के पत्तों के बीच कोई-कोई सफेद कली दिखाई देने लगी, आडू के पेड़ पर कोई-कोई नीला फूल और अनार के पौधे पर लाल सुर्ख फूल

पर जिंदगी के जिस कोने से एक गहरा काला बादल उठा था संजय का उपन्यास ज़ब्त कर देने वाली अफवाह का, वह सब के सिरों पर उसी तरह घिरा हुआ था, कि एक और कोने से भी गरजता हुआ बादल उठ आया

करीम ने, शाम को इशारे से शीरी को बुलाया, कहा, 'चाचा फत्ता तुम्हें बुला रहा था। तुम चलो, मैं पीछे पीछे आ रहा हूँ।" और जब शीरी फत्ते के घर की ओर चल दी तो करीम उस के पीछे-पीछे तेज़ कदमों से चलकर उस के साथ जा मिला, कहा, 'फत्ते के घर नहीं, मेरे साथ-साथ चली आओ।

वे दोनों जब गली के बगल वाली दीवार की ओर से होकर पिछले खँडहरों तक पहुँच गये, करीम ने कहा तुम से एक बात करनी है, पर घर में किसी के सामने नहीं करनी थी।'

करीम खँडहरों की एक दीवार के साथ लगे हुए एक पत्थर पर बैठ गया शीरी को भी बैठने के लिए कहा, बोला, यह मैं जानता हूँ तुम झूठ नहीं बोलती हो, पर जो भी तुम्हारे मन में है, वह तुम मुझ से मत छिपाना। मुझे सच सच बता दो, तुम्हारे मन में क्या है?"

'क्या बात हो गयी अब्बा? मेरे मन में कुछ नहीं है।'

'तुम ने एक ज़िद पकड़ रक्खी है कि मशीन लगानी है।'

"पर वह तो आप का ही सपना है, अब्बा! ताज प्रेस का '

'मेरा तो है, पर तुम जो यह कहती हो कि मशीन तुम चलाओगी वह क्यों?'

'क्यों, लड़कियाँ मशीन नहीं चला सकती?"

'वह बात नहीं, पर तुम ने उस दिन कहा कि अब्बा! मशीन ला दीजिए,

फिर मैं जि दगी मे आप से कुछ नही माँगूगी "

"हाँ, कहा था।"

"तुम सारी उम्र मशीन चलाओगी ?"

"हाँ, मैं ताज प्रेस चलाऊँगी।"

"पर जव तुम निकाह करके चली जाओगी, तव ताज प्रेस कसे चलाओगी ?"

शीरी एक पल के लिए चुप हो गयी फिर वोली, "अब्वा ! आप ने कहा था सच सच वताना। इस लिए सच वताती हूँ कि मैं निकाह नही करूँगी।"

करीम चुपचाप शीरी की ओर देखता रहा, भले ही पल पल उतरते हुए अँधेरे म उस के नक्श ज्यादा साफ नही दिखाई दे रहे थे।

फिर वोला, "तुम जानती हो, आज सवेरे मौलवी मीर मुहम्मद ने मुझे बुलाकर क्या कहा था ?"

'क्या ?"

"तुम्हारे निकाह की बात कर रहे थे।"

"पर उस से किस ने कहा था करने के लिए ?"

करीम कुछ सोच म पड गया, फिर वोला, ' वह भी मैं तुम्ह वता दूगा। पर पहले तुम मुझे यह बताओ कि तुम निकाह क्यो नही करोगी ?"

शीरी न कुछ देर जवाव नही दिया, फिर हँसने लगी, "सीधी सी बात है, मुझे ताज प्रेस जो चलाना है।'

करीम ने अपना हाथ शीरी के सिर पर रख दिया, कहा, "मैं ने तुम से पहले ही कहा था कि जो भी तुम्हारे मन म है, वह तुम मुझ से न छिपाना।"

शीरी अब्बा के मुह की ओर देखने लगी, और अपने सिर पर रखे हुए उस के हाथ को अपने हाथ से ज़रा अलग करती हुई बोली, "इस का मतलव यह है कि आप मुझे अपनी कसम दिलवा रह हैं ?"

करीम ने लडकी के सस्कार को समझ लिया, कहा, "चलो ऐसे ही समझ लो।"

"अगर मैं भी अपनी कसम दिला दू कि यह बात मुझ से न पूछिये, तव ?"

करीम को लगा, लडकी अपनी उम्र से वहुत वडी हो गयी है, कहा, ' बेटे-वेटिया जव जवान हो जाते है एक तरह से वरावर के हो जाते हैं। फिर बेटे-वेटिया के साथ वह रिश्ता नही रहता, फिर माँ-बाप भी उन के दोस्त हो जाते है मैं '

' फिर मेरी कसम खाइये कि आप किसी को नही वतायेंगे "

"नही बताऊँगा।"

किसी को भी नही ? '

"लो, यह बात मुझे मालूम न हाती तो मैं तुम से घर वठे ही न पूछ लेता,

मैं ने इसी लिए तुम्हारी अम्मा के सामने कुछ नही पूछा।"

"मैं अम्मा की बात नही कर रही हूँ, यह मैं जानती हूँ आप उन्ह नही बतायेंगे।"

"फिर और किसे ?"

"आप कभी अपने दोस्त को भी नही बतायेंगे।"

"सजय को ?"

"हा।"

"अगर तुम कहोगी तो नही बताऊँगा।"

शीरी फिर चुप हो गयी।

"तुम्हें मुझ पर एतबार नही आता ?" करीम ने कहा तो शीरी जल्दी से बोल उठी, "अब्बा ! मुझे सिफ आप पर एतबार है, और किसी पर भी नही।"

"फिर ?"

"बात यह है कि न मेरी कोई गलती है, न और किसी की, गलती तो अल्ला मियाँ से हो गयी " शीरी कह गयी पर फिर न जाने अपने शब्दा से कुछ घबरा गयी, बोली, "चलिये, घर चलिय। आज नही, कभी फिर बता दूगी।"

"नही, शीरी " करीम उठा नही, उस ने कहा, "बस्ती वाला न दो टूक फ़ैसला मागा है, नही तो मुझे डर है, वह कोई वारदात न कर दें।"

शीरी को पहले फत्ते ने भी ऐसे खतरे से आगाह किया था, इस लिए वह ज्यादा हैरान नही हुई, बोली, "अब्बा ! हम किसी और जगह जाकर नही रह सकते ? मुझे यहाँ के लोग अच्छे नही लगते।'

करीम के अन्तर से एक पीडा उठकर उस के होठो पर आ गयी "तुम यह भूल गयी कि ग़रीबो के लिए सारी ही बस्तियाँ एक जसी होती हैं ?"

"पर उन्हें हमारी क्या तकलीफ है ? हम उन्हें क्या कहत हैं ? अब्बा ! आप भी उन से डरते हैं ?" शीरी ने यह कहा तो करीम न बाँह म लपेटकर उस का सिर घुटने से लगा लिया, और कहा, 'मैं अपने लिए नही डरता, पर अगर सजय को कुछ हो गया तो मै क्या करूँगा ?"

शीरी न अब्बा के घुटने पर से सिर उठाकर अब्बा की ओर देखा।

"मैं कहता हूँ कि तुम मुझे दिल की बात बता दो।" करीम न कहा तो शीरी ने फिर धीरे से उस के घुटने से सिर लगा दिया, बोली, 'अल्ला मियाँ से यही ग़लती हो गयी कि उस न मुझे शीरी बना दिया, मीता नही बनाया।"

करीम के अगो म फिर एक जान आ गयी, बोला, 'अगर वह मान जाय तुम से निकाह करने के लिए ?"

शीरी की सारी जान उस की आँखो म सिमट गयी, और वह अब्बा क मुह की ओर देखते हुए बोली, 'यह कसे हो सकता है ?"

"पता नही।" करीम की आवाज़ सोच मे डूबी हुई सी कह उठी, "बस्ती वाले कहते है, या तो सीधी तरह से शीरी का कही निकाह कर दो, या सजय से कहो, अपना मजहब बदल ले और शीरी से निकाह करे।"

"नहीं, अब्बा ! नही " शीरी ने जसे तडपकर कहा।

"मैं कब कह रहा हूँ " करीम न जल्दी से कहा, "उस से तो यह बात कहना भी कुफ है, मेरी जीभ न कट जाये यह बात कहते हुए।"

और करीम ने कुछ सोचते हुए शीरी से पूछा, "पर एक बात बताओ। तुम ने ख़ुद ही यह सब सोच रखा है या सजय को भी बताया है ?"

"नही, अब्बा ! नही "

"उसे तुम्हारे दिल का कुछ पता नही है ?" करीम न फिर पूछा।

"नही।"

'फिर मैं उस से क्या कह सकता हूँ ?" करीम चुप सा हो गया।

"पर मैं ने कब कहा है, कुछ कहने के लिए " शीरी ने कहा तो करीम सोच म पड गया, "अगर उस के मन म तुम्हारे लिए कुछ नही है, फिर तुम सारी उम्र क्या करोगी ?"

"प्रेस चलाऊँगी।" शीरी ने कहा तो करीम को रुलाई जैसी हँसी आ गयी, मुह से निकला, "दीवानी लडकी।"

"आप पर गयी हूँ," अब्बा शीरी हँस पडी। उस न और कुछ नही कहा। पर करीम की समझ से, आज वह अपने अब्बा से बहुत कुछ कह गयी थी।



सारी रात करीम के मन की उथल-पुथल तारा की तरह चढती और डूबती रही।

ऋतु बदल गयी थी, पर अभी किसी ने चारपाइयाँ बाहर नही डाली थी। सब अपनी-अपनी कोठरिया म साय पडे थे, पर करीम बाहर आँगन म चारपाई डालकर लेटा हुआ था।

उस ने घर म बरकत और नमत से कोई बात नही की थी, इस लिए वह पल मे चारपाई से उठता, पल म बठता था किसी को उस की खबर नही हुई । सिफ शीरी ने आधी रात के समय उठकर बाहर अब्बा के पास आकर, होले से कहा, 'अब्बा ! आप मरी फिक्र न कीजिय। आप आराम स सा जाइय, कुछ नही होगा।"

"तुम्हारे लिए फिक्र नही करता, बेटी ! पर य लाग कई इन मे शरीफ भी हैं, पर कई निर हराम के ' करीम कहते-कहते रुक गया। लडकी क सामन उस की जबान पर आने वाली गाली शर्मिन्दा हो गयी।

'गली से आना-जाना मुझे भी अच्छा नही लगता। अब्बा ! आप इस पीछ वाली दीवार मे एक दरवाजा खुलवा लीजिये पीछे की तरफ ता कोई नही रहता, जगह खाली पडी हुई है, वह भी इधर से ' कहते कहते शीरी कुछ लजा गयी।

"इन बाता से कुछ नही बनता, बेटी ! बसी हुई गली म ता चार आदमी होते है पिछली तरफ से गुजरत हुए आदमी को भले ही कोइ आराम से काटकर फेंक द ' करीम न कहा तो शीरी का मुह टूटत हुए तारे जसा हा गया।

' जाओ, तुम सो जाओ, जाकर नही तो भीतर स जागकर दोनो आ जायेगी।

शीरी फिर कमर म चली गयी। पर करीम की रात बरस जितनी हो गयी लगती थी बीतन म ही नही आ रही थी।

तडके ही शीरी को उठाकर उस न चाय पी और साइकिल निकालते हुए बोला, 'अम्मा स कह देना, आज जल्दी ही कोई काम था।"

"अब्बा ! " शीरी दहलीज के पास आकर खडी हा गयी, "आप कहा जा रहे हैं ? उन की तरफ ? '

' दिल नही ठिकाने लग रहा यूँ ही उस के पास जाकर बटूगा।"

"पर उन्हें यह बात मत बताइयेगा।"

करीम ने हामी मे सिर हिला दिया, और चला गया।

सडक पर बहुत दूर तक वह साइकिल को बडी तेजी से चलाता रहा, पर फिर वह ब्रेक लगाकर साइकिल से उतर गया।

कुछ देर साइकिल को हाथ से थामे पैदल चलता रहा, पर सजय के घर वाला मोड पास आ गया ता उस के पाव रुक गये।

'या खुदा ! कसा वक्त आ गया है ' करीम के मुह से निकला, और वह सोचने लगा, 'दुनिया जहान की बाते उस से कर लेता था, बेधडक हाकर अपने दिल की वह बाते भी जो और किसी स नही कर सकता था ' और उस के पावो की तरह उस का सोचना भी रुक गया, पर यह बात उस से कस कहूँगा ?

करीम ने साइकिल पीछे मोड ली। पर अभी चल हुए रास्त पर फिर चलत हुए सोचन लगा, 'मै उस स कुछ भी छिपाकर नही रख सकता अगर दुनिया

दुश्मन हो गयी है तो उसे नही बताऊंगा तो किसे बताऊँगा ?'

करीम ने फिर हिम्मत बाधकर साइकिल मोड ली। पर साइकिल पर चढा नही, उसी तरह उसे हाथ से थामे हुए पैदल चलता रहा। वह मोड भी पार कर लिया जहाँ सामने सजय के कमरे वाली इमारत थी।

पर करीम के पाँव एक-से नही पड रहे थे। इमारत की बाहरी दीवार का साइकिल को सहारा देकर, वह खडा हो गया, 'शीरी वाली बात अपने मुह से कैसे कहूँगा ? उसे अगर नागवार हुई तो वह भी फिर बेहिचक घर मे कैसे आयेगा ?'

करीम को लगा, कि शुक्र है, उस ने यह बात अपने मुह से नही निकाली। उसे अपने ऊपर हैरानी सी भी हुई कि वह कैसे लडकी की आबरू की बात अपने मुह से कहने के लिए आ गया था।

यह भी खयाल आया, अगर बात मुह से निकल जाती तो सजय को भी उस ने अजीब मुश्किल म डाल दिया होता। वह कौन जाने दोस्ती का लिहाज करके हाँ कह देता, पर वह बात अच्छी न होती

और करीम जल्दी से दीवार के पास से लौटकर साथ वाली सडक पर हो लिया। बस ही मुह से फिर निकल गया, 'या खुदा ! कैसा वक्त आ गया है, मैं अपने सजय के घर से चोरो की तरह लौटा जा रहा हूँ '

करीम को अगले पल अपनी बेटी पर गुस्सा आ गया, 'नसीबोजली ! यह तू ने अपने दिल को कौन सा रोग लगा लिया ?'

पर बेटी को नसीबोजली कहकर उस का अपना मुह जैसे कडुवा हो गया। फिर बेटी पर एक गर्व-सा भी आ गया कि उस के दिल ने कैसी गहराइयो को छू लिया है।

उसे शीरी के कल शाम कहे हुए वह लफ्ज भी याद आये, 'आप पर गयी हूँ, अब्बा !' और करीम का दिल उस के लिए उमड पडा।

करीम ने एक पल के लिए वजूद म आकर शीरी का और सजय का चेहरा आँखो के आगे सोचकर देखा, पर दूसरे पल अपने सोचन को जैसे लगाम दे ली, 'आदमी को अपनी औकात नही भूलनी चाहिए उस की दोस्ती नसीब हो गयी, कम बात है, अब मैं आगे क्या सोच रहा हूँ ?'

करीम धीमी चाल से साइकिल चलाते हुए शहर की ओर चल दिया। अभी काम पर पहुचने का समय बाकी था। पर घर की ओर लौटने का समय नही था। प्रेस के बाहर वाले बाजार म बैठकर उस ने एक प्याला चाय का पिया, फिर प्रेस चला गया।

आज करीम की जिन्दगी म पहला दिन था जब काम ने उसे रमाया नही, ध्यान टूट टूट जाता रहा। एक बार ऐसे भी हुआ, एक फरमा मशीन पर चढ़ाकर



अगला दिन भी गुजर गया, उस से [illegible] भी करीब [illegible] शाम संजय उस के घर की ओर चला गया। [illegible] में घुसते ही फत्ते का घर था। संजय ने देखा, वह ड्योढ़ी में खड़ा हुआ उसे इशारे से अंदर बुला रहा है।

संजय ड्योढ़ी में घुसा तो फत्ते ने बाहर का दरवाजा बन्द कर दिया, बोला, "तुम्हारे इन्तज़ार में खड़ा था, कल भी दो घंटे खड़ा रहा कि तुम आये हो?"

"क्या बात है? करीम ठीक है?" संजय ने फत्ते की ओर देखा, एक [illegible] सा उस के चेहरे पर लिखा हुआ दिखाई दे रहा था।

फत्ते ने आंगन में पड़ी हुई चारपाई पर बैठते हुए और संजय को बिठाते

हुए कहा, "ठीक है, पर बहुत घबराया हुआ है।"

सजय को एक हैरानी सी हुई, "अगर कोई फिक्र की बात होती तो सब से पहले वह मेरे पास आता, या सलामत के हाथ संदेशा भेजता"

"मैं ने तो उस से कहा था, जाकर तुम से बात करे, पर वह खामोश हो गया।" फत्ते ने कहा तो सजय ने फिक्र से पूछा, "पर बात क्या हो गयी है?"

"यह अब मैं भी क्या कहूँ इसी लिए वह खुद तुम्हारी तरफ नही गया कि तुम से क्या कहेगा कल से मुह सिर लपेटकर घर मे पडा हुआ है।"

सजय ने अदाजा सा लगा लिया, पूछा, "कोई हिन्दू मुसलमान का सवाल है?"

"और मिया! छोटे लोगो के सवाल ही क्या होते है, यह गरीबो पर खुदा की मार होती है, बडे-बडे अमीरो के घरो मे तो मिलकर खाते हैं, मिलकर बैठते हैं, कोई किसी की तरफ देखता नही, किसी को पूछता नही" फत्ता कह रहा था, जब सजय चारपाई से उठते हुए बोला, "बस, इतनी सी बात थी? वह आकर मुझे बता जाता। काम का क्या है, यहा नही, शहर में किसी और जगह कर लेगे।"

फत्ते ने सजय की बाह पकडकर उसे फिर चारपाई पर बिठा लिया, कहा, "सिर्फ इतनी बात नही। अपनी लडकी है न शीरी, मोहल्ले के मोतबर मिलकर उस का निकाह करने के लिए जोर दे रहे हैं, और उस ने पक्की नही कर दी है।"

"पर तुम तो कह रहे थे, हिन्दू-मुसलमान का सवाल है?"

अब बीच की बात का तो पता नही चलता कल से बरकत और नेमत उस के पीछे पडी हुई हैं, और लडकी रोये जा रही है।" फत्ते ने कहा, तो सजय फिर चारपाई से उठते हुए बोला, "मैं खुद जाकर करीम से पूछता हूँ, क्या बात है।"

फत्ते ने उस की बाह पकड ली, कहा, "वहाँ सब के बीच बैठकर क्या पूछोगे? मैं करीम को यहा बुला लाता हूँ।"

सजय कोई एक मिनट के लिए खडा रहा, फिर उस ने कहा, "अच्छा, पीछे की तरफ, मीनार की तरफ, उसे भेज दो। मैं वहा आकर उस का इतजार कर रहा हूँ।"

फत्ता करीम के घर की तरफ चला गया और सजय साइकिल लेकर पीछे मीनार वाले खँडहरो की तरफ।

करीम जब आया, सजय ने उस की बाँह पकडकर उस के उतरे हुए चेहरे की ओर देखा, कहा, "फिर मुश्किल के वक्त मे तुम ने अपने यार को किसी काबिल नही समझा।"

'मैं शर्मिंदा हूँ, मुझे ख द आना चाहिए था " और करीम ने एक पत्थर पर बैठते हुए कहा, "पर सारी बात ही उल्टी-सीधी है तौफीक हो, तो जी करता है, इस बस्ती से निकल जाऊँ "

सजय हँस-सा पडा, ' मिया ! अगर सचमुच सोचने लगे तो इस दुनिया से निकल जाने को जी क रता है । तुम बताओ, कौन सी जगह है जहा आदमी ख ुद जीता है और औरों को जीने देता है ?"

"वह तो ठीक है ' करीम ने हाले से कहा, 'सब जगह हरम के बीज रहते है ।

"यार ! दुनिया म कई बडे-बड अदीब है, लोगो न उ ह भी जलावतन कर दिया खर, जो भी होगा, देखा जायगा, तुम बात तो बताओ ! '

"बात ता वही है जो न कभी खत्म हुई है, न कभी खत्म होगी जिसे हमारा बुल्हेशाह भी रोत मर गया, ' और करीम न कहा "जी करता ह, मै भी उस की तरह जोर-जोर से गलियो म गाऊँ—व मेरी बुक्कल दे विच्च चार को रामदास को फतह मुहम्मद, यह कदीमी शोर '

सजय ने करीम के कधे पर हाथ रखा, "पर रामदास और फतह मुहम्मद की यारी को इस शोर स क्या फक पडता है ? यहाँ बस्ती मे नही मिलेगे, बस्ती के बाहर मिल लेगे ।"

"नही वह ता फक नहीं पडता करीम कहते-कहते चुप हो गया ।

"और दूसरी बात कौन सी है ? फत्ता कुछ और भी कह रहा था " सजय न पूछा, तो करीम न सिर झुका लिया "वह बात बडी मुश्किल है ।"

सजय हँस-सा पडा, "अच्छा, अगर ज्यादा मुश्किल है तो चलो, हम सब जलावतन हो जाते हैं ।"

करीम न साहस करके कहा, ' अपनी शीरी ने एक ही बात पकडी हुई ह, मशीन लगाने की और मोहल्ले वाले कुआरी लडकी का जीने नही देग । '

सजय कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला, "करीम मियाँ ! अगर तुम इजाजत दो, तो मैं शीरी से बात कर लू थोडी दर ? '

' वह अगर तुम कहो, म उस अभी बुलाये देता हूँ । ख ुद जाकर उस ले आता हू । पर वह तुम्हे बतायगी कुछ नही ।"

' नही, मुझे यकीन है, बता दगी ।" सजय न कहा तो करीम बाला, "मैं उस जानता हूँ, वह मुह से नही बोलेगी ।'

सजय ने करीम का हाथ पकडकर उस उठाया, कहा, "अच्छा फिर मुझ भी आजमा लेन दो ।"

या अल्लाह !' करीम के मुह से निकला और वह शीरी का ल आन क लिए खडा हो गया ।

वह जाने लगा था जब सजय ने उसे एक मिनट के लिए रोक लिया, कहा, "अगर मेरे मुह से कोई ऐसी बात निकल गयी जो तुम्हें पसद न हो, तो यार ! मुझ से इकरार करते जाओ कि तुम मुझ से गुस्से नही होगे।"

करीम ने कहा कुछ नही, सिर्फ इकरार देने के लिए अपना हाथ आगे कर दिया।

करीम चला गया तो सजय ने पत्थरों की एक दीवार पर हाथ रखकर अपनी आखें ऐसे मीच ली, जैसे इन खँडहरा के किसी बसे हुए युग की आवाज सुन रहा हो।

दीवार पत्थरो की थी, टूटते टूटते भी सदियो से खडी थी। सजय ने उस हौले हौले अपनी हथेली से छुआ। उस के झरते हुए कण उस की हथेली पर लग गये, तो सजय ने वह हथेली अपने माथे से छुआ ली।

माथा एक अदब से झुक गया जसे मिट्टी की उम्र को प्रणाम कर रहा हो।

करीम जब शीरी को लेकर आया, अँधेरा कुछ और गहरा हो चुका था। शीरी ने दूर से सजय को नही देखा। वह बहुत पास आ गयी थी जब उस ने देखा, और उस के सारे शरीर म एक हल्का सा कपन आ गया

फिर शीरी ने एक शिकवे से अपने अब्बा की ओर देखा, जिस ने रास्ते म उसे कुछ नही बताया था। और चारो ओर के एकात की ओर देखते हुए उसे एक नयी फिक्र याद हो आयी, "अब्बा ! आप ने कहा था यहाँ कोई खतरा है।"

शीरी ने सजय की ओर हाथ से इशारा सा करके यह बात कही, तो सजय समझ गया, पूछा ' किसे ? मुझे ?"

"पर अब तो हम पास हैं मैं जो यहा खडा हूँ।" करीम ने कहा और जरा दूर को जाने लगा।

"तुम यही बठो, यार ! जाने की जरूरत नही है। जो पूछना है, तुम्हारे सामने ही पूछ लूगा।' सजय न कहा तो करीम जरा कुछ अलग होकर एक पत्थर पर बठ गया। शीरी को भी एक चौडे पत्थर पर बठने का इशारा करते हुए सजय ने कहा, "सो यहाँ अकेले इनसान को खतरा होता है।'

शीरी को लगा कि सजय बात का समझा नही, बोली, "वसे नही, पर मजहब की वजह से "

"सो अकेले मजहब को खतरा होता है ' सजय हँसने लगा, सा जरा सी दूरी पर बठे हुए करीम की हसी भी निकल गयी। सजय कह रहा था, फिर तो जैसे दो आदमी मिलकर चलते है खतर से बचने के लिए, दो मजहबो को भी मिलकर चलना चाहिए खतरे से बचन के लिए।'

शीरी न नजर उठाकर सजय की ओर देखा, आखें एक अजीब परस्तिश स

भर गयी।

सजय, शीरी के सामने वाल, ऊँचे-नीचे पत्थरा पर बैठते हुए बोला, "फिर कच्चे अक्षरो को सचमुच पक्के अक्षर बनाना है?"

"हाँ।" शीरी न कहा।

"पर मैं प्रेस की बात नही कर रहा हूँ।"

शीरी ने फिर ध्यान सामने करके देखा, जस पूछ रही हो फिर और कौन सी बात है?

"जिंदगी म और भी अक्षर होते हैं, बहुत कच्चे, उन्हें भी किसी आग म पकाना होता है' सजय न यह कहते हुए शीरी की ओर देखा, और कहा, "मुहब्बत, शादी, रिश्ता यह भी सब चीजें होती हैं कच्चे अक्षरा को पकान के लिए।'

शीरा न सिर झुका लिया, शायद आँखो म पानी सा भर आया था। धीरे स बोली थी शायद पर कइयो क अक्षर हमेशा कच्चे रहते हैं।"

सजय क परो तक, शीरा की आवाज उस की नसो मे उतर गयी।

सजय न सामने की आर हाथ बढाकर शीरी के हाथ को अपनी हथेली मे ले लिया, पूछा, 'क्या? मैं तुम्हे कबूल नही हूँ?"

शीरी न सिर झुका लिया, इतना, कि उस का माथा सजय की हथेली से छू गया, पर बाली नही।

"नही कबूल?" सजय जब हाथ को धीरे से पीछे हटाने लगा, तो शीरी ने काँपती हुई उँगलियो से हाथ का थाम लिया, ऊपर को आखें उठायी, नज़र भर-भर देखा, बोली, "कुछ अक्षर गूग भी होते है।"

सजय ने शीरी के कापते हुए-से हाथ को अपने होठो से छुआया। फिर जरा ऊँची सी आवाज म बोला "करीम मिया! तुम्हारी इस गूगी बटी को फिर सलाम करना पड गया।"

सजय अपने हाथ को हटाते हुए उठने लगा था, जब शीरी ने फिर एक बार उस का हाथ थाम लिया, उस की आर देखा, पूछा "बीते हुए कल के प्याले म सचमुच आन वाले कल का पानी पिया जा सकता है?"

शीरी अभी उसी तरह ही पत्थर पर बैठी हुई थी। सजय न उठकर शीरी क पास आकर, धीरे से उसे अपन पहलू से लगा लिया। देखा, करीम अभी भी दूर था। उस न झुककर शीरी के होठ चूम लिये। होल स कहा, 'मैं जानता था, तुम ही माजी क प्याले म मुझे मुस्तकबल का पानी पिलाओगी।"

'करीम मियाँ!" सजय ने फिर आवाज दी। करीम पास आया ता सजय न कहा, 'तुम कहते थे न, अदीब पगम्बर होत हैं, जा लिखते है, सच हा जाता है, देखा! उपन्यास का आखिरी हिस्सा सच हो गया।"

करीम ने हथेली से आँखों का पानी पोंछा, कहा, "मैंने सोचा था, न जाने ताजी में कौन जाने मुमताज की रूह है, पर उस की रूह तो मेरी शीरी में है।"

"अब्बा!" शीरी उठकर करीम के गले से लग गयी, "मैं आप से कहा करती थी न, मैं आप पर गयी हूँ।" और संजय की ओर देखते हुए उस ने पूछा, "नॉविल का आखरी हिस्सा? कौन-सा?"

"फिर जन्म होने वाला, जब मेरे पात्र को फिर से लहू मांस का शरीर मिलता है उनचासवें दिन।" संजय ने कहा तो शीरी को याद आ गया, "वह निर्माण-काया वाला?"

संजय ने शीरी से नहीं, करीम से कहा, "इसी धरती पर जन्नत भी होती है, दोजख भी। यहीं इनसान कई बार मरता है, फिर पैदा होता है। आज तुम्हारी शीरी ने मुझे निर्माण-काया दी है, लौटकर इस धरती पर जीने के लिए।"

करीम ने संजय को गले से लगा लिया, "शुरू से ही कहा करता था, तुम मेरे यार भी हो, बेटे भी, पर यह वक्त मेरे सपने से भी परे थी।"

और करीम ने फिर आँखों में आये हुए पानी को हथेली से पोंछा, कहा, "आज तुम ने शीरी को जो काया कहा है, इस का यही नाम रख लो, काया, और इसे हिन्दू बना के"

संजय ने करीम के होंठों पर हाथ रख दिया, "नहीं, मियाँ! मजहब बदलने की बात न मैं करूँगा, न शीरी। अभी कहा था न जैसे दो आदमी साथ मिलकर चलते हैं खतरे से बचने के लिए, उसी तरह दो मजहबों को भी मिलकर चलना चाहिए, खतरे से बचने के लिए"

"यह हो सकता है?" शीरी ने पूछा, तो संजय हँस सा पड़ा, "हाँ, हमारी दोजख का एक कानून अच्छा है यही।"

शीरी बायीं ओर थी, संजय दूसरी ओर, तो खँडहरों की ओर से बस्ती की ओर लौटते हुए करीम को लगा, आज उस की कोली भरी हुई है।

"बस्ती वाले?" शीरी ने एक बार कहा, तो संजय हँस दिया, "यह उनचासवें दिन का वरदान भी है और शाप भी, धरती पर फिर पैदा होने का मतलब ही होता है, सारी जद्दो-जहद नये सिरे से। अभी तो ताज प्रेस खोलना है अभी तो शायद उपन्यास भी जब्त होगा पर यह तो रोज के सूरज के लिए रोज के बादलों जैसी बात है।"

□□

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित अन्य उपन्यास

कहाँ पाऊँ उसे	समरेस बसु	75 00
कथा एक प्रान्तर की (पुरस्कृत)	एस के पोट्टेक्काट	50 00
मृत्युंजय (पुरस्कृत, द्वि स)	वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य	35 00
मृत्युंजय (च स)	शिवाजी सावंत	75 00
गोमटेश गाथा	नीरज जैन	25 00
अमृता	रघुवीर चौधरी	35 00
शब्दों के पींजरे में	असीम राय	20 00
सुवर्णलता (त स)	आशापूर्णा देवी	45 00
बकुल-कथा (तृ स)	,,	45 00
छिन्न पत्र	सुरेश जोशी	12 00
स्वामी (द्वि स)	रणजित देसाई	35 00
मूकज्जी (पुरस्कृत) (द्वि स)	शिवराम कारन्त	27 00
अवतार वरिष्ठाय	विवेकरंजन भट्टाचार्य	10 00
भ्रमभंग	देवेश ठाकुर	13 00
बारूद और चिनगारी	सुमंगल प्रकाश	20 00
जय पराजय	,,	26 00
बन्द दरवाजे	,,	50 00
आधा पुल (द्वि स)	जगदीशचन्द्र	14 00
मुट्ठी भर काकर	,,	15 00
छाया मत छूना मन (द्वि स)	हिमांशु जोशी	12 00
कगार की आग (द्वि स)	,,	14 00
पुरुष पुराण	विवकीराय	8 00
माटी मटाल भाग 1 (पुर , द्वि स)	गोपीनाथ महान्ती	20 00
माटी मटाल भाग 2 (पुर , द्वि स)		20 00
देवेश एक जीवनी	सत्यपाल विद्यालंकार	15 00
धूप और दरिया	जगजीत बराड	6 50
समुद्र संगम	भोलाशंकर व्यास	17 00
पूर्णावतार (द्वि स)	प्रमथनाथ बिशी	25 00
दायरे आस्थाओ के	स लि भरप्पा	9 00
नमक का पुतला सागर मे (द्वि स)	धनंजय वरागी	18 00

तीसरा प्रसग	लक्ष्मीकान्त वर्मा		
टेराकोटा (द्वि स)	,,		
आइने अकेले हैं	कृश्नचन्दर		5 00
कही कुछ और	गगाप्रसाद विमल		7 00
मेरी आंखो म प्यास	वाणी राय		10 00
विपात्र (च स)	ग० मा० मुक्तिबोध		5 00
सहस्रफण (द्वि स)	वी० सत्यनारायण		16 00
रणागण	विश्राम बेडेकर		3 50
कृष्णकली (सातवां स)	शिवानी	पपर बक	20 00
		लायब्रेरी स०	27 00
हँसली बाँक की उपकथा (द्वि स)	ताराशकर बन्द्योपाध्याय		25 00
गणदेवता (पुर, छठा स)	,,		42 00
अस्तगता (द्वि स)	'भिक्खु'		9 00
महाश्रमण सुनें ! (द्वि स)	,,		4 00
अठारह सूरज के पौधे (द्वि स)	रमेश बक्षी		12 00
जुलूस (प स)	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	पपर बक	8 00
		लाइब्रेरी	12 00
जो (द्वि स)	प्रभाकर माचवे		4 00
गुनाहो का देवता (अठारहवां स)	धर्मवीर भारती		20 00
सूरज का सातवां घोडा (दसवां स)		पेपर बक	6 50
		लाइब्रेरी	10 50
पीले गुलाब की आत्मा (द्वि स)	विश्वम्भर 'मानव'		6 00
अपने-अपने अजनबी (छठा स)	'अज्ञेय'	पेपर बैक	5 50
		लाइब्रेरी	8 50
पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय		5 50
ग्यारह सपनो का देश (द्वि स)	सम्पा लक्ष्मीचन्द्र जैन		7 00
राजसी	देवशदास आई सी एस		5 00
रक्त-राग (द्वि स)	,,		5 00
शतरज के मोहरे (पुर, चौथा स)	अमृतलाल नागर		12 00
तीसरा नेत्र (द्वि स)	आनन्दप्रकाश जैन		4 50
मुक्तिदूत (पुर, च स)	वीरेन्द्रकुमार जैन		13 00

□

इक्कीस पत्तियों का गुलाब
औरत : एक दृष्टिकोण
सफरनामा
जंग जारी है
कौन सी जिंदगी ? कौन सा साहित्य ?
अपने अपने चार बरस
एक हाथ मेंहदी एक हाथ छाला
कच्चे अक्षर
शौक सुराही
मुहब्बतनामा
कड़ी धूप का सफर
अक्षर बोलते हैं
आज के काफिर
दर्द कबीरा

आत्म कथा

रसीदी टिकट
दस्तावेज

काव्य संग्रह

धूप का टुकड़ा
कागज और कैनवस

भारतीय ज्ञानपीठ

ज्ञान की वि—
और अप्रका
अनुसंधान ... प्रका
तथा ... हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण









lack Rose
xistence
ime and Again
Globe in the Multitude
Novels
Doctor